विश्ववाणी की विशेषता

देश और विदेश के प्रसिद्ध लेखक, और कवि, राजनीतिज्ञ और नेता पत्रिका में सहयोग दे रहे हैं और उसके लिये लेख लिख रहे हैं।

पत्रिका का नामकरण विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया है।

पत्रिका के संरक्षक 'भारत में अंगरेजी राज' के रचयिता पंडित सुन्दरलाल हैं।

१—विश्ववाणी भारत की पूर्ण राजनैतिक स्वाधीनता की प्रचारक है।

२—विश्ववाणी में इतिहास की अनमोल और अलभ्य सामग्री मिलेगी।

३—विश्ववाणी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की सच्ची विवेचना करेगी।

४—विश्ववाणी में चीन, अफ़गानिस्तान, ईरान, रूस, तुर्की आदि की सही तस्वीर मिलेगी।

५—विश्ववाणी राजनैतिक गुलामी और साम्प्रदायिक कलह से कितना सम्बन्ध है इसे इतिहास से साबित करेगी।

६—विश्ववाणी मनुष्यमात्र की समता और विश्वप्रेम का प्रतिपादन करेगी।

७—विश्ववाणी सच्ची भारतीय सभ्यता का जो सब धर्मों, सम्प्रदायों और जातियों के मेल से बनी है समर्थन करेगी।

विश्ववाणी के नियम

१—हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित होती है।

२—किसी भी महीने से ग्राहक बन सकते हैं।

३—हर महीने के पहले हफ़्ते में पत्र न मिले तो अपने यहाँ के डाकख़ाने से पूछताछ करके अपनी ग्राहक संख्या के साथ पत्र लिखना चाहिये।

४—अपने पते में कोई तबदीली करना हो तो ग्राहक संख्या के साथ पत्र लिखें।

५—नमूने के अंक के लिये दस आने के टिकट भेजें।

६—विश्ववाणी में शिष्ट साहित्य तथा उपयोगी सुरुचि पूर्ण और देशी वस्तुओं के विज्ञापन को स्थान मिलेगा। ग्राम उद्योग की वस्तुओं के विज्ञापन को विश्ववाणी प्रोत्साहन देगी। विज्ञापन के दर के लिये पत्र व्यवहार करें।

७—एजेन्सी आदि के लिये पत्रव्यवहार मैनेजर से करें।

८—पत्र का चंदा इस प्रकार है :—

देश के लिये ६) रु० वार्षिक
विदेश के लिये ९) रु० ,,
बर्मा के लिये ६॥) रु० ,,
छैमाही मूल्य ३।) रु० ,,
एक अंक का ॥=)

मैनेजर—

विश्ववाणी कार्यालय

साउथ मलाका, इलाहाबाद

विषय-सूची

जनवरी १९४१

तिरंगा चित्र

दारा शिकोह

सादे चित्र—१६

नक़्शे—६

विश्ववाणी

संरक्षक—
पण्डित सुन्दरलाल जी

सम्पादक—
विश्वम्भरनाथ

वर्ष १ | जनवरी, १९४१ | अङ्क १

सामूगढ़ में दारा शिकोह की पराजय पर

विश्वम्भरनाथ

बोलो सामूगढ़ के रजकण
मेरा सुखमय संगीत कहां ?
जीवन जब था स्वर्णिम उज्वल
ऐसा वह भव्य अतीत कहां ?

ओ बता बता यमुना दुकूल
तूने देखा वह नौनिहाल ?
भारत का वह उज्वल किरीट
मोगल गरिमा का मुकुट भाल ?

वह उसी मार्ग का राही था
जिस पर कबीर मन्सूर चले;
मैं की हस्ती को आग लगा
अन्तर में जीवन ज्वाल जले।

अपने रब की व्यापक गाथा
उसने षट् दर्शन में पाई;
अपने जीवन की मर्म व्यथा
उसने उपनिषदों में गाई।

उसका शिव, सुन्दर अमर पन्थ
उसके जीवन में भेद न था;
कैसा हिन्दू कैसा मुसलिम
शुचिता थी—कोई खेद न था।

वह नई संस्कृति का पोषक
जिसके सारे व्यवधान नए;
मानवता ने पुलकित होकर
साजे सुन्दर परिधान नए।

वह था विनम्र वह था महान
इस उपवन का प्रसून प्यारा;
आशा मुखरित उद्वेलित थी
था विहंस रहा मधुबन सारा।

'हिन्दू के हित', 'सिक्खों के हित'
'इसलामी शरअ' निज़ाम न था;
जीवन में बस-कर्तव्य सजग
अतिरिक्त सिवा अंजाम न था।

अपने अन्तरतम की गांठें
उत्सुकता से खोलीं उसने;
निस्सीम व्योम को निरख परख
क़ीमत अपनी तोली उसने।

वह कहां गया दारा प्यारा
भारत का वह अरमान कहां?
'अल्लाह-उपनिषद' का कर्ता
संस्कृति का धवल निशान कहां?

बोलो अम्बर-अधिपति जयसिंह
दारा कुछ तुमसे बोला था?
वेदों के सन्त उपासक ने
मरते मरते मुंह खोला था?

"मैं ही युवराज तुम्हारा था
तुमको आलमगीरी प्यारी!
"मेरी हत्या का श्रेय तुम्हें
मैं ही था जायज़ अधिकारी!

"मैं मिटता हूँ यदि इसमें है
भारत मां का कल्याण निहित!"
तुम विदा हुए—हम चुका रहे
वह क़र्ज़ तुम्हारा ब्याज़ सहित!!

दारा का शोणित दिव्य भाल
देखा चरणों से ठुकराते?
आंखों में करुणा भरे हुए
वह हंसता था बुझते जाते!

जयसिंह नश्वर जीवन पल भर
इसका क्या तुमको ज्ञान न था?
मन में क्या लज्जा लेश न थी
क्या जाति धर्म अभिमान न था?

सिकता तट की बसने वाली
दुनिया ने तुम पर 'शर्म' कहा;
वह शठता थी, गद्दारी थी
था जिसको तुमने धर्म कहा!

तू ही कालिन्दी कूल बता
क्रमबद्ध सभी पट परिवर्तन?
धर्मान्ध प्रवृति का भारत मां की
छाती पर ताण्डव नर्तन!

केवल दारा का अन्त न था
वह दिल्ली का सिन्दूर गया!
फिर सात समुन्दर पार हमारा
सुख वैभव अति दूर गया!!

अब लाल किले के बुर्जों पर
बैठी दिल्ली विधवा रोती;
अब भी उसके मर्मस्थल में
चुप कसक कहानी है सोती!

हौले हौले कोई जाकर यदि
पूछे उस चिर योगन से;
वह सुन पायेगा दुखी कथा
उस चिन्ताग्रस्त वियोगन से।

ओ मुसलिम, सिक्ख, मराठा सत्ता
बोलो पिछली शान कहां?
कह दे लखनऊ नवाबी कह
तेरे सारे अरमान कहां?

ओ रिक्त तख्त मुर्शिदाबाद के
बोल बना सीराज़ कहां?
वह श्रेष्ठ मुग़लिया खानदान
वह भारतीय साम्राज्य कहां?

अब भी सूरत गत वैभव को
ग़म के आंसू से है धोता!
वह जीर्ण शीर्ण मुंगेर दुर्ग
क़ासिम के वैभव को रोता!

ऐ सिंह दुर्ग की प्राचीरो
पेशवा-जनित अभिमान कहां?
श्रीरंग पटन तू ही कह दे
तेरा टीपू सुलतान कहां?

सब कहां गई वह ठसक तुम्हारी
हिन्दुआने तुरकाने की ?
वह शीलहीन, हिंसक निष्ठुरता
वृत्ति स्वयं मिट जाने की ?

दो दिन की नश्वर सत्ता में
तुम सब अपनापन भूल गये !
'तप से ही राज', 'राज से रौरव'
अटल नियम क्या भूल गये ?

था कम ज़्यादा किसका कुसूर
उसका लेखा अब रहने दो;
तुम अपनी बातें सुना चुके
अब कुछ तो हमको कहने दो।

इस चक्राकार परिधि की बातें
कब तब और सुनाओगे ?
भाई हिंसक है भाई का
क्या मन में कुछ शरमाओगे ?

'हिन्दू हित' का जयघोष और
'पाकिस्ता' सदा बुलन्द करो;
अपना थोड़ा सा स्वार्थ मूर्खो
लौह कफ़स में द्वन्द करो !!

देखो वह बहिन तुम्हारी ही
कुटिया में क्यों बैठी रोती;
घर से निःवस्त्र कहां निकले
हत निरी फटी सी है धोती !

देखो वे अनगिनती बालक
क्यों तडप तड़प कर रोते हैं;
नंगे, सूखे, ज्वर से पीड़ित
भूखे, प्यासे नित सोते हैं !

उनकी करुणा ध्वनि खो जाती
चलता जीवन का दैनिक श्रम;
जाफ़र ने जिसको शुरू किया
अब तक चलता जाता वह क्रम !

मन्दिर की पूजा बन्द न हो
मातम कैसे उट्ठे हुसेन ?
निश्चय ही बाजेगाजे से
उत्सव में जावें अग्रसेन !

मुसलिम-लीगी, हिन्दू-पण्डित
साम्राज्य हमारा नष्ट किया !
इस कुत्सित मनोवृत्ति ने ही
सौभाग्य हमारा भ्रष्ट किया !

महलों को धूल धूसरित कर
क्या अब कुटिया की बारी है ?
ऐश्वर्य हमारा मिटा चुके
फिर अब किसकी तय्यारी है ?

लिल्लाह ! ग़रीबों को बख़्शो
इनके नयनों में सैन नहीं;
ये सूखी हड्डी के ढांचे
इनकी बानी में बैन नहीं !

छोड़ो अपना स्वारथ छोड़ो
कुछ रूठा भाग्य मनाने दो;
सामूगढ़ में लक्ष्मी सोई
अब उसको हमें जगाने दो।

नूतन संहित निर्माण करें
हम सब का नव सत्कार करें;
जो सुबह बिछुड़कर अलग हुए
भाई भाई से प्यार करें।

हमारा उद्देश

आजकल अख़बारों, रिसालों और पत्रिकाओं का ज़माना है। पुराने ज़माने में ऋषि, मुनि, सन्त और महात्मा अपनी कुटियों से बैठे हुए, मनुष्य समाज के सुधार और कल्याण के लिये अपने सन्देश दुनिया को भेजते रहते थे। बड़ी बड़ी सम्प्रदाएँ और संस्थाएं इन सन्देशों को जनता तक पहुंचाती थीं। अब सूरत बदल गई। जिस कर्तव्य को उस समय कुटियें पूरा करती थीं अब उसका पालन राजनैतिक संस्थाओं और व्यवस्थापक सभाओं के तूफ़ानी केन्द्रों से होता है। जनतंत्र और राष्ट्रीयता के नए आन्दोलनों ने सदाचार और धर्म की शक्तियों को दबा दिया। उन्होंने समाज की व्यवस्था को बदल दिया। सदाचार और धर्म की जगह अब राजनीति और अर्थशास्त्र को अधिक महत्व दिया जाता है। नतीजा यह है कि मनुष्य के विचारों और चेष्टाओं का मुख्य केन्द्र मन्दिरों और मसजिदों से हटकर बाज़ारों और छापेख़ानों में आगया है। मनुष्य-जीवन के बुनियादी उसूलों का पता लगाने और उन्हें व्यवहार में लाने के उपाय सोचने का महान और पवित्र कार्य अब धार्मिक मनुष्यों और धार्मिक संस्थाओं से छीनकर राजनैतिक संस्थाओं; समाचार पत्रों और पत्रिकाओं को सौंप दिया गया है। यह कार्य अत्यन्त कठिन और गहरी ज़िम्मेवारी का है।

'विश्व वाणी' अपनी इस ज़िम्मेवारी को पूरी तरह समझ कर अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो रही है। वह विश्व की वाणी को यानी इस युग की आवाज़ को समझने और अपने पाठकों तक पहुंचाने की कोशिश करेगी। वह मानव इतिहास की उन लगात प्रतिध्वनियों को समझने और पेश करने की कोशिश करेगी जो समस्त मनुष्य समाज की एकता और अखंडता और उसके सामञ्जस्य और समन्वय को प्रकट करती रहती हैं और जो भूत; वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों को एक सूत्र में बांध देती हैं। विचारों और व्यवहारों की जो बड़ी बड़ी लहरें इस समय मनुष्य समाज पर अपना असर डाल रही हैं और भावी मनुष्य जीवन की बुनियादें क़ायम कर रही हैं 'विश्व वाणी' उन सब को भी समझने, परखने और कसौटी पर कसने की कोशिश करेगी। वह जीवन के सब पहलुओं पर नज़र डालेगी और उन सब प्रभावों और शक्तियों को सामने लाएगी जो इस वक़्त दुनिया को नए सांचे में ढालने के कार्य में लगी हैं।

संसार जिस संकट से होकर इस समय निकल रहा है वह किसी भी पत्रिका की इस तरह की ज़िम्मेवारी और उसे पूरा करने की कठिनाई दोनों को बेहद बढ़ा देता है। इस लिए मुनासिब मालूम होता है कि एक बार हम संसार की इस समय की स्थिति पर एक सरसरी निगाह डाल लें।

वर्तमान संसार संकट

पश्चिम की सारी सभ्यता अर्थवादी है। पश्चिम के लोग बिजली और भाप ही को सब कुछ समझे हुए हैं। ये ही उनकी सारी उन्नति के साधन हैं। पश्चिम की इस प्रवृत्ति ने सारी दुनिया को एक ज़बरदस्त विपत्ति में डाल रखा है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के पाशविक सिद्धान्त को यूरोप ने अपने जीवन का मूलमंत्र बनाया। इसी उसूल पर चलकर यूरोप वालों ने काली, पीली और लाल क़ौमों का सारा रक्त

चूस कर उन्हें क़रीब क़रीब मुर्दा बना दिया। यूरोप वालों का यह उसूल यूरोप से बाहर की क़ौमों पर अपना काम करके मारण मंत्र की तरह अब स्वयं उन्हीं के ऊपर लौट पड़ा है। इसने यूरोप के जीने और बढ़ने को असम्भव कर दिया है। दूसरों का रक्त चूसने के काम में यूरोप की क़ौमें एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा में पड़ गईं। स्वार्थ और विषय वासना ही उनकी प्रेरक शक्तियां थीं। इस प्रतिस्पर्धा का नतीजा उस भयंकर भूकम्प के रूप में दिखाई दिया जिसने इस समय सारे मानव समाज की बुनियादों को हिला रखा है। यूरोप की संस्कृति और सभ्यता के सारे पहलू अब सतह पर आ रहे हैं और उसके सारे जीवन को बारूद के एक ढेर की तरह आकाश में उड़ाते हुए दिखाई दे रहे हैं। यूरोप का राष्ट्रीयता का सिद्धान्त अब अपनी आख़िरी सांस लेरहा है। उसके कल कारख़ाने, उसका उद्योगवाद, उसका पूँजीवाद, उसके टैंक और हवाई जहाज़, उसका सारा साम्राज्यवाद और सैनिकवाद सब इस समय अपनी अपनी क़बरें खोद रहे हैं। वह जनतंत्रवाद जो यूरोप को इतना अधिक प्रिय था चीथड़े हुआ पड़ा है। कम्यूनिज़्म, फ़ासीज़्म, नाज़ीज़्म, और वे सब रंगबिरंगे निरंकुश शासन जो यूरोप में फैलते जा रहे थे अब तोपों की आवाज़ों और फ़ौजी बाजों की ध्वनियों के साथ रंगमंच पर आ रहे हैं और फिर परदे के पीछे लोप होते हुए मालूम होते हैं। साम्राज्य टुकड़े टुकड़े हो रहे हैं। बादशाह अपने अपने तख़्त सूने छोड़ कर भाग रहे हैं। यूरोप की क़ौमें एक दूसरे को जंगल के हिंसक पशुओं की तरह निगल रही हैं। छोटे छोटे राष्ट्रों का ज़माना हो चुका और बड़े राष्ट्र एक दूसरे को ख़त्म कर देने के भीषण प्रयत्नों में लगे हैं। फ्रांस ज़ख़्मी और क़रीब क़रीब मुर्दा हालत में पड़ा है। जर्मनी और इंगलैण्ड एक दूसरे को मिटा देने की आख़िरी कोशिशों में लगे हैं। चित्र अत्यन्त करुणाजनक है। यूरोप अपनी मौत का खेल खेल रहा है। दूसरी क़ौमों को अपना ग़ुलाम बनाने, उन्हें चूसने, उन्हें आपस में लड़ाने और मिटा देने का जो नाटक यूरोप ने संसार में खेलना शुरु किया था उसी का यह शोकान्त अन्त है। सारा संसार मानो एक डरावना स्वप्न देख रहा है जो ईश्वर करे अपनी क़िस्म का अन्तिम स्वप्न हो।

आने वाली दुनिया

किन्तु इस भीषण नाटक के बीच से, तबाही और बरबादी के दृश्यों के पार, दूर फ़ासले पर आशा और प्रकाश की कुछ किरनें भी दिखाई दे रही हैं। अलग अलग राष्ट्रों की प्रभुता टुकड़े टुकड़े हो रही है। किन्तु इस राष्ट्रवाद के टूटने के साथ साथ ही एक ऐसे संघ की झलक दिखाई दे रही है जिसमें सब राष्ट्रों, सब जातियों और सब रंगों के लोग बराबरी के रिश्ते से मिल सकें और जिसकी बुनियादें सार्वभौम मानवता पर क़ायम हों। जिन लोगों ने 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' और 'जो ताक़तवर है वह ज़िन्दा रहे, जो कमज़ोर है वह मरे' (The survival of the fittest) के उसूलों को मानव समाज के अन्दर व्यवहार में लाने की कोशिश की, उनके ऊपर यही ज़हरीले उसूल ऐसी बुरी तरह और इस ज़ोर के साथ लौट पड़े कि अब बहुत सम्भव है कि मनुष्यों के परस्पर सम्बन्ध के नियम बदल दिये जावें। किसी क़ौम की क्षमता की कसौटी अब उसके पंजे और नाख़ून नहीं होंगे बल्कि उसके अन्दर एक दूसरे की मदद और भाईचारे के भाव होंगे। इस समय की विपत्ति ने यह साबित कर दिया कि जिस प्रतिस्पर्धा का मानव प्रेम और सहानुभूति से सम्बन्ध न हो उसके होते मनुष्य समाज का ज़िन्दा रहना और बढ़ सकना असम्भव है। यह प्रतिस्पर्धा इस शक्ल में अब देर तक नहीं चल सकती। इसकी जगह किसी न किसी ऐसी परस्पर सहकारिता को देनी होगी जिसकी बुनियादें परस्पर प्रेम, सहानुभूति और सेवा पर क़ायम हों। राजनीति में यूरोप का दावा था कि, एक दूसरे से लड़ने के लिये नहीं बल्कि शांति क़ायम करने और क़ायम रखने के लिये, हर राष्ट्र का बिना किसी मर्यादा के अपने को अनन्त अस्त्र शस्त्रों से सन्नद्ध करते जाना ज़रूरी है। इस तजरुबे का ग़लत और हानिकर साबित होना लाज़िमी था। उसके नतीजे इतने भीषण हुए कि अब

इसके दोहराए जाने की कोई ज़ाहिरा सम्भावना दिखाई नहीं देती। भविष्य में सिवाय इसके कोई चारा नहीं कि सब राष्ट्रों की रक्षा और उनके आपसी झगड़ों के निपटारे के लिये किसी तरह की अन्तर्राष्ट्रीय पंचायतों से या दूसरे अहिंसात्मक उपायों से काम लिया जावे। इस बात के साफ़ लक्षण दिखाई दे रहे हैं कि मौजूदा तूफ़ान के शान्त होते ही, ज्योंही लोगों की भावनाओं और उनके विचारों को फिर से स्थिर होने का मौक़ा मिला, पाशविक लड़ाइयां और विनाश का वर्तमान युग समाप्त हो जावेगा और उसकी जगह अहिंसात्मक और फलप्रद रचना का नया युग शुरू होगा। संसार के इतिहास में अनीश्वरवाद और स्वार्थ-लोलुपता का सबसे अधिक अन्धकारमय अध्याय समाप्त हो जावेगा और मनुष्य जाति पुराने समय की तरह फिर एक बार अपनी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये सदाचार संगत और अहिंसात्मक उपायों की खोज में लग जावेगी।

हिन्दुस्तान

हमें विश्वास है कि संसार की इस नई रचना में हिन्दुस्तान को बहुत बड़ा हिस्सा लेना है। यूरोप की परिस्थिति साफ़ इस ओर इशारा करती हुई दिखाई दे रही है। संसार की भावी रचना सच्चे सदाचार और मानवता की बुनियादों पर ही हो सकेगी। जिस बनावटी सदाचार को यूरोप सदाचार कह रहा है उससे अब यूरोप का भी काम न चल सकेगा। असली प्रेरणा और प्रकाश यूरोप को बाहर से लेना होगा। हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है जो इस काम में सबकी मदद कर सकता है। इतिहास के शुरू से धार्मिक और आध्यात्मिक सुधार की लहरें इस भूमि से उठ कर सारे संसार को प्लावित करती रही हैं। अब इस गिरी हुई हालत में भी इस देश के पास इतनी काफ़ी धार्मिक और आध्यात्मिक पूंजी मौजूद है जिसे वह मनुष्य समाज की सेवा में अर्पित कर सके।

यह युग दुनिया में हिंसा की पराकाष्ठा का युग है। किन्तु इस युग में भी हिन्दुस्तान पुराने समय की तरह महात्मा बुद्ध, हज़रत मोहम्मद और हज़रत ईसा के समय का दृश्य फिर से दुनिया के सामने पेश कर रहा है। ख़ास कर राजनीति में सब लोग पाशविक शक्ति को ही सबसे बड़ा हथियार और हर सरकार का आख़िरी सहारा मानते हैं। किन्तु हिन्दुस्तान ने इस विचार को ग़लत साबित करने के लिये राजनीति ही के मैदान में एक आध्यात्मिक और अहिंसात्मक आन्दोलन शुरू कर दिया है। इतिहास में यह एक नया तजरुबा है। इस क्रान्तिकारी युग का यही सबसे अधिक क्रातिमय दृश्य है। अपनी पराधीनता की वेदना में से भी हिन्दुस्तान ने इस बात को अनुभव कर लिया कि राजनीति में पाशविक शक्ति की प्रधानता से मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में पाशविकता बढ़ती जारही है, यहां तक कि लोग पाशविक बल के उपयोग को अनिवार्य और पवित्र समझने लगे हैं। यह देखकर हिन्दुस्तान की आत्मा अपने पूरे बल के साथ इस बात के ख़िलाफ़ खड़ी होगई। उसने इस स्थिति को अन्त कर देने का निश्चय कर लिया है।

सन् ५७ के प्रयत्न के बाद हिन्दुस्तान एक बार हार खाकर गिर पड़ा। विदेशियों की पाशविक शक्ति और कूटनीति ने मौक़ा पाकर इस देश की सारी जीवन व्यवस्था को उलट पुलट कर दिया। उसका धन लूट लिया। उसके हथियार छीन लिये। किन्तु इसके दो तीन पीढ़ियों के अन्दर ही अन्दर हिन्दुस्तान ने अपनी आत्मा के अन्दर ग़ोता लगाया, अपनी पुरानी आध्यात्मिक पूंजी से काम लेना शुरू किया और वह दृश्य संसार के सामने पेश कर दिया जिसकी महानता और जिसकी भावी सम्भावनाओं को संसार अभी तक पूरी तरह नहीं समझ पाया। ठीक उस समय जब कि यूरोप स्टैलिन, हिटलर और मसोलिनी जैसे शक्तिशाली निरंकुश शासक पैदा कर रहा था,—और उन्हें टैंकों, बम के गोलों और ज़हरीली गैसों के नारकीय साज़ सामान से सन्नद्ध कर रहा था, ठीक उसी समय हिन्दुस्तान एक ऐसा फ़क़ीर पैदा कर रहा था जिसे अहिंसा और आध्यात्मिक शक्ति का पैग़म्बर और शांति और परस्पर शुभकामना का सन्देशवाहक कहा जा सकता है, जिसने बिना किसी तरह के हथियारों और बिना पश्चिमी ढंग

के सैनिकों के उस ब्रिटिश साम्राज्य की बुनियादों को हिला दिया जिससे बढ़कर अभिमानी, शक्तिशाली और संगठित साम्राज्य यूरोप ने आज तक पैदा नहीं किया। हम कह चुके हैं कि इस आन्दोलन की भावी सम्भावनाओं को संसार अभी तक पूरी तरह नहीं समझ पाया। किन्तु यह वह शक्ति है जिसकी संसार अब बहुत देर तक अवहेलना नहीं कर सकता।

अहिंसा

अहिंसा का सिद्धान्त एक महान सिद्धान्त है। अहिंसात्मक असहयोग इसका साधन है। थोड़े ही दिनों के अन्दर इसने हिन्दुस्तान में नई रूह फूँक दी, हिन्दुस्तान को आत्मत्याग का पाठ पढ़ाया, हिन्दुस्तानियों में कष्ट सहन की वह ताक़त पैदा करदी जो किसी भी अन्याय के सामने झुकना नहीं जानती और उनमें वह संकल्प शक्ति भर दी जिसकी ताक़त ब्रिटिश साम्राज्य के साथ देश भर में जगह जगह टक्करें लेकर परखी जा चुकी है। संग्राम अभी जारी है। उसकी शक्ति और तीक्ष्णता बढ़ती जा रही है। किन्तु दुनिया अभी दूसरे कामों में लगी है। मौजूदा संसार व्यापी युद्ध की पाशविकता ने दुनिया की अनुभव शक्ति को कुण्ठित कर रखा है। भौतिक विजयों की चकाचौंध ने दुनिया की आंखों पर परदा डाल रखा है। ज्योंही इस अप्राकृतिक हालत से निकल कर दुनिया का दिल और दिमाग़ ठीक होगा वह इस आन्दोलन के ठीक ठीक रूप को देख सकेगी और इस बात को भी समझ सकेगी कि जो अहिंसात्मक तरीक़ा, हिन्दुस्तान ने पाशविक शक्ति का मुक़ाबला करने, उसे निकम्मा कर देने और उसकी जगह ले लेने का जारी किया है वही एक मात्र तरीक़ा उस नाशकर चक्र को तोड़ने और उससे बाहर निकलने का है जिसमें यूरोप ने अपने को और सारीदुनिया को फँसा रखा है।

संसार की इस समय की स्थिति पर हम एक सरसरी निगाह डाल चुके, इस लिये ताकि हमारे पाठक हमारे दृष्टिकोण को समझ लें। अपने देश के सम्बन्ध में 'विश्व वाणी' भारतीय इतिहास की आवाज़ यानी भारतीय आत्मा की पुकार को पाठकों के सामने लाने और उसे समझने की कोशिश करेगी। यह पुकार संक्षेप में भारत के महान आदर्शों की एकता और सारे भारत के स्त्री पुरुषों की सच्ची समता, मेल और भाई-चारे की पुकार है। इसीने हिन्दुस्तान को उन सब देशों, जातियों और धर्म के लोगों का आश्रय स्थान और उनका घर बना रखा था जो समय समय पर इस देश में आकर बसते रहे और जिनका इस सर ज़मीन ने सदा प्रेम के साथ स्वागत किया।

भारतीय जीवन की एकता

हिन्दुस्तान का शुरु से अब तक का सारा इतिहास एक सुन्दर और सिलसिलेवार कहानी है। उसकी सारी अलग अलग कड़ियां शरीर के अलग अलग अंगों की तरह एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। शुरू से अब तक इस देश ने जिन आदर्शों को अपने सामने रखा है उन सब में एक अखंड एकता व्याप्त है। देश का सारा मनुष्य समाज एक कुटुम्ब बल्कि एक शरीर की तरह है। इस देश की यह अखंड एकता ही भारत की असली और अमर आत्मा है। अपने इतिहास के अलग अलग युगों में अलग अलग तरह से और कभी कभी एक ही युग में कई परस्पर विरोधी तरीक़ों पर यह आत्मा अपने को प्रकट करती रही है। किन्तु उसकी एकता और अखण्डता इन सब विभिन्नताओं से ऊपर और उनसे कहीं अधिक महान है। हमारे अलग अलग धर्मों, अलग अलग सम्प्रदायों, तरह तरह के रीति रिवाजों, संस्थाओं, उद्योग-धन्धों, कला, चित्रकारियों, विद्याओं, फ़लसफ़ों और दर्शनशास्त्रों, सबके अन्दर व्याप्त होकर यही एकता उन सबको एक सुन्दर, सर्वाङ्गिक भारतीय जीवन के अंग प्रत्यङ्ग बनाए हुए है। हमारे इतिहास की जयों और पराजयों, हमारे संग्रामों, हमारी उम्मीदों और हमारी मायूसियों, सबके अन्दर वही एकता रमी हुई है। इन सब परिवर्तनों में भी हमारे जीवन की यही एकता क़ायम रही है और क़ायम है। भारत की इसी आत्मा ने द्रविड़ जाति से पहिले के भारतवासियों, द्राविड़ों और उनके बाद के आर्यों, इन

सबको मिलाकर पुराने समय के संयुक्त भारतीय समाज की रचना की थी। इस मेल का पता हमें उस ज़माने के उन ऊंचे दर्शनशास्त्रों, सुन्दर पदार्थों, मूर्तियों और चित्रकारियों से मिलता है जो अभी तक हर भारतवासी की आत्मा को उल्लास, उत्साह और गर्व से भर देती हैं। यही हमारे इतिहास का सबसे पहला अध्याय है। आगे चलकर भारत की इसी आत्मा ने सांस्कृतिक समन्वय का और भी बढ़िया चमत्कार कर दिखाया। एक ओर पुराने हिन्दू धर्म में सम्प्रदायों, सिद्धान्तों, नामों और रूपों का रङ्गा रङ्गी बाहुल्य और उसके साथ साथ इन सब में रमी हुई, सबसे ऊपर और सबको जीवन देने वाली एकता का साक्षात अनुभव, और दूसरी ओर इस्लामका कठोर एकेश्वरवाद, उसके शून्य देवालय, रूखी बेलौस पूजाविधि और परलोक की कँपा देने वाली कल्पनाएँ, इन दोनों को मिलाकर एक कर देने का कार्य क़रीब क़रीब असम्भव मालूम होता था। किन्तु भारत की समन्वयात्मक आत्मा ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। जो उच्च आध्यात्मिक समन्वय उसने इन दोनों के मेल से पैदा किया उसके द्वारा अद्वितीय इमारतों और चित्रकारियों, कविताओं और संगीत और इनसे भी बढ़कर 'प्रेमधर्म' या 'मज़हबेइश्क़' की वे अमर यादगारें खड़ी हो गई जो हमें मध्यकालीन भारत से विरसे में मिली हैं और जिनका हर भारतवासी को, हिन्दू हो या मुसलमान, सच्चा गर्व हो सकता है। आज हिन्दुस्तान की वही आत्मा पराधीनता के जाल में पड़ी हुई फड़फड़ा रही है और अपने विदेशी शासकों की गढ़ी हुई तरह तरह की बेड़ियों को तोड़कर फिर अपने असली रूप में आने के लिये अपनी जान की बाज़ी लगा रही है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भारत की वह प्राचीन आत्मा फिर से जाग्रत हो चुकी है। राष्ट्रीयता के अधिक व्यापक, और अधिक पवित्र अर्थों में, यानी उसके आध्यात्मिक अर्थों में, यह प्राचीन भारतीय आत्मा ही इस समय सच्ची 'भारत-राष्ट्रीयता' के रूप में प्रकट हो रही है। कठिनाइयों, भ्रान्तियों और बाधाओं का एक पहाड़ हमारे सामने है। किन्तु हमें इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इस पहाड़ के उस पार विजय हमारी बाट जोह रही है, और वह दिन दूर नहीं जब कि विश्वास, उदारता और प्रेम की बारूद इस पहाड़ को छिन्न भिन्न करके हमें उस पार पहुंचा देगी।

विश्ववाणी

'विश्व वाणी' भारतीय आत्मा की जाग्रति और भारतीय एकता की इस प्रगति को आगे बढ़ाने की भरसक कोशिश करेगी ताकि इस सर ज़मीन के रहनेवाले सब धर्मों, सम्प्रदायों और जातियों के लोग इस बात को साक्षात् कर सकें कि यद्यपि समुद्र के ऊपर बेशुमार लहरें उठती और दबती रहती हैं, और हवा के झोंके समुद्र की सतह पर तरह तरह के रंग बिरंगे दृश्य पैदा करते हैं, कभी तूफ़ान उठता दिखाई देता है और कभी समुद्र की सतह निश्चल प्रतीत होती है, तथापि इन सब खेलों, दृश्यों और विभिन्नताओं के अन्तर्गत वही एक विशाल, प्रतिष्ठ, अखंड और अचल समुद्र है जो इन सब परिवर्तनों के बाद भी क़ायम रहता है।

संक्षेप में यह पत्रिका देश के अन्दर और बाहर मनुष्य मात्र की एकता और समता का प्रतिपादन करेगी, राजनीति का सदाचार के साथ नाता जोड़ेगी, समस्त मनुष्य समाज के विचारों और प्रयत्नों में सामञ्जस्य लाने और दर्शाने की चेष्टा करेगी, धर्मों, जातियों और सम्प्रदायों के विरोध को मिटाने का प्रयत्न करेगी, आर्थिक क्षेत्र में न्याय और समता क़ायम करने की कोशिश करेगी, मनुष्य मात्र के लिये स्वतन्त्रता, स्वराज्य और स्वावलम्बन का समर्थन करेगी और अधिक पूर्ण, अधिक समृद्ध, अधिक सुखमय, अधिक प्रेममय और अधिक संयुक्त राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन तक पहुंचने में पाठकों का अपनी शक्ति भर हाथ बटावेगी।

हम आशा करते हैं कि हमारे पाठक अपनी सहानुभूति, अपने प्रेम, अपनी रचनात्मक आलोचना और अपनी सलाहों से हमारी सहायता करते रहेंगे।

तुर्की में पांच हज़ार वर्ष पुरानी आर्य सभ्यता के खंडहर

पण्डित सुन्दरलाल जी

पण्डित सुन्दरलाल जी पिछले बारह वर्षों से संसार की संस्कृतियों, सभ्यताओं और धर्मों पर एक बृहत ऐतिहासिक ग्रन्थ लिख रहे हैं। इस ग्रन्थ में ख़ास तौर पर यह दिखाया गया है कि भारतीय सभ्यता का संसार की विविध सभ्यताओं पर कितना और कैसा असर पड़ा? यह लेख पंडित जी की उसी पुस्तक के एक अध्याय का संक्षिप्त अंश है। संसार की किसी भी भाषा में आज तक इस दृष्टि से ऐसा महान ग्रन्थ नहीं लिखा गया। पंडित जी की इस पुस्तक के समाप्त होने में अभी काफ़ी समय लगेगा।

हज़रत ईसा से तीन हज़ार साल पहले एशिया कोचक से लेकर फ़िरात नदी के किनारे तक खेता या खत्ती नाम की एक आर्य जाति हुकूमत करती थी। यहूदियों के धर्म ग्रन्थ 'तौरेत' में इन लोगों को हित्ताइत या हत्ती नाम से पुकारा गया है। तौरेत में जोशुआ के पहले अध्याय के चौथे सर्ग में इन हत्तियों के देश का ज़िक्र आता है। मिस्र के पुराने शहर 'तेल अल अमर्न' की खुदाई में पुरातत्व विभाग को बहुत से लेख मिले हैं। मिस्र के फेरोओं में और खत्ती राजाओं में हज़ारों बरस तक कभी लड़ाई और कभी मेल जोल रहा। दोनों देशों के राजाओं में जो ख़त किताबत हुई है वह इस खुदाई से निकली है। मेसोपोटामिया में बाबुल और असुरिया की पुरानी सभ्यताओं के निशान भी पुरातत्व विभाग ने खोद कर निकाले हैं। बाबुल और असुरिया के सम्राटों के साथ भी हत्तियों का सम्बन्ध था। हज़रत ईसा से १८०० बरस पहले हत्ती सम्राटों ने बाबुल को जीत कर उस पर हुकूमत की थी। मिस्र के शिला लेखों में इन हत्तियों को 'खेता' नाम से पुकारा गया है और प्राचीन बाबुली इन्हें 'खत्ती' कहा करते थे।

वर्तमान तुर्की की राजधानी अंकारा के पास बाग़ज़कुई नामक गांव में पुरातत्व विभाग ने एक दबा हुआ शहर खोद कर निकाला है। इसके शिला लेखों और इसकी मूर्तियों को देख कर विद्वानों ने पता लगाया है कि यह दबा हुआ शहर ही खत्तियों की प्राचीन राजधानी था। पुरातत्ववेत्ताओं की खोजें इस बात को साबित करती हैं कि मौजूदा तुर्की ही इन खत्तियों का मुल्क था।

खत्ती एशिया कोचक में कब और कैसे पहुंचे इसमें अभी तक निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन बाग़ज़कुई की खुदाई से जो खंडहर और शिला लेख निकले हैं उनसे यह बात तो साबित हो ही जाती है कि कम से कम पांच हज़ार साल पहले एशिया कोचक में खत्ती मौजूद थे। अठारवीं सदी ईसवी से पहले एशिया कोचक, सारा सुरिया, रूम सागर के किनारे के देश, आसपास के टापू, बाबुल और असुरिया सब उनके अधीन थे। खत्तियों की दूसरी शाखाओं ने निकल कर यूनान के कुछ टापुओं पर भी क़ब्ज़ा कर लिया था।

इतिहास में सबसे पहले खत्तियों का ज़िक्र सन् २६३५ ईसवी से पहले आता है जब मेसोपोटामिया के प्रसिद्ध सुमेरी सम्राट सरगन पहले ने एशिया कोचक के एक खत्ती शहर 'पुरुष खण्ड' पर हमला किया था। सरगन के उत्तराधिकारी सम्राट नारमसिन का भी खत्ती राजा पम्ब और उसके सत्रह सामन्तों के साथ युद्ध हुआ था। अठारहवीं सदी ई० प० में खत्तियों की सत्ता अपने शिखर पर थी। उन्होंने सन् १७५८ ई० प० में मेसोपोटामिया पर हमला करके प्रसिद्ध हाम्मुराबी राजवंश का नाश कर दिया था।

इसके बाद पूरे दो सौ वर्ष तक खत्ती आपस की लड़ाइयों में उलझे रहे। इस आपसी लड़ाई में आर्यों की एक दूसरी शाखा मित्तन्नी ने समस्त सुरिया, फ़िलस्तीन, उत्तरी अरब और पूरब में असुरिया की राजधानी निनेवेह तक अपने अधिकार में कर लिया। सन् १६०० सदी ई० प० में मित्तन्नियों की हुकूमत तूनिस, हेलिओपोलि और बालबेक तक थी। मिस्री सम्राट थुतमोसि पहले और थुतमोसि तीसरे से नहारिन के मैदान में मित्तन्नियों से घमासान लड़ाई हुई। मित्तन्नियों का प्रतापी राजा दशरथ अपने समय का शक्तिवान राजा था। अपने रुतबे में वह मिस्री और बाबुली सम्राटों के बराबर था। इन तीनों ताक़तों में बाद में प्रेम सम्बन्ध क़ायम हो गया और आपस में शादी ब्याह भी होने लगे। मित्तन्नियों की सत्ता को १४ सदी ई० प० में असुरी ताक़त ने नष्ट कर दिया।

सन् १३८५ ई० प० में खत्तियों ने फिर अपना एक बार मज़बूत संगठन किया। इस समय मिस्र में प्रसिद्ध सन्त और महात्मा सम्राट इखनातन राज्य कर रहा था। इखनातन के राज्याभिषेक पर खत्ती क़ौम के राजा सेपलेल, मित्तन्नी के राजा दशरथ और बाबुल के राजा बरबारिईश ने एशिया से इखनातन को बधाई और दोस्ती के सन्देसे भेजे। राजा दशरथ ने इखनातन की मां राजमाता तिई को भी, जो राजा दशरथ के ही घराने की थी, बधाई का एक सुन्दर पत्र भेजा था।

इखनातन के बाद तूतनख़ामन मिस्र का फेरोअ बना। उस समय खत्तियों का राजा शुप्पिलु ल्युमाश था। तूतनख़ामन की एक विधवा ने शुप्पिलु ल्युमाश के एक बेटे से शादी करनी चाही। इस तरह शादी करके खत्ती राजकुमार मिस्र के सिंहासन का अधिकारी बन सकता था। वह मिस्र गया भी किन्तु उसे मिस्री सैनिकों ने मार डाला।

जब मिस्र के सिंहासन पर फेरोअ रामेस दूसरा बैठा उस समय खत्तियों का बल बहुत बढ़ा हुआ था। रामेस को भी अपना एशियाई साम्राज्य फिर से वापस जीतने का ख़याल हुआ। सन् १२८८ ई० प० में सुरिया के दक्खिन में एक दिन कादेश नामक शहर के पास ओरन्ती नदी के किनारे खत्ती सम्राट मातुल और रामेस की फ़ौजों में घमासान हुआ। दोनों ओर से क़रीब चालीस हज़ार सैनिक लड़ाई में काम आये लेकिन कादेश फ़तह न हो सका। कहा जाता है कि लड़ाई बराबर की छूटी। सम्राट रामेस अपनी राजधानी थीबी लौट आया।

आहिस्ता आहिस्ता मिस्र की एशियाई सरहद के सरदारों और वहां के राजाओं ने एक एक कर अपनी आज़ादी और मिस्री साम्राज्य से अपनी अलहदगी का ऐलान कर दिया। रामेस फिर फ़ौज लेकर बढ़ा। १५ साल रामेस और खत्ती सम्राट मुत्तलईश के बीच लड़ाई जारी रही। आख़िर दोनों के बीच बराबरी की शर्तों पर सन्धि हो गई।

सन् १२७२ ईसवी से पहले की यह सन्धि जो चांदी की तख़्ती पर लिखी गई है 'दुनिया के दो राज्यों या दो क़ौमों के बीच की सब से पुरानी सन्धि है जो इस समय मौजूद है।' इसमें १८ शर्तें हैं। इस शर्तनामे को पढ़ कर पता चलता है कि खत्तियों के देश का नाम 'खेतसार' और उनकी राजधानी का नाम 'खत्तसास' था। चांदी की तख़्ती पर इतना अच्छा नक़्क़ाशी का काम और खुदाई की गई है कि वह कला का सुन्दर और उत्कृष्ट नमूना समझी जाती है। तख़्ती में सबसे ऊपर 'सुतेख' देवता का चित्र है जो खत्ती राजा को गले लगा रहा है। एक देवी का

चित्र है जो खेतसार की महारानी 'पूडुक्षप' को गले लगा रही है। खत्ती देवता 'सुतेख', मिस्री देवता 'रे' (रवि) और दोनों राजाओं—चारों की मोहरें (सील) हैं। उसके बाद लिखा है—"शान्ति, बराबरी और भाई चारे की भली सन्धि जो दोनों महाराजाओं के बीच हमेशा के लिये अमन क़ायम करती है।" पिछले सम्बन्ध को बयान किया गया है। पिछली सन्धियों को फिर से पक्का किया गया है। दोनों में से किसी पर भविष्य में कोई और हमला करे तो दूसरा उसकी मदद को पहुँचे। दोनों तरफ़ से युद्ध के क़ैदियों की वापसी का ज़िक्र है। दोनों मुल्कों में दूसरे मुल्क के लोगों के साथ बहुत अच्छे व्यवहार की शर्त है। दोनों के देवी देवताओं को गवाह ठहराया गया है। सन्धि तोड़ने वाले को शाप और क़ायम रखने वाले को आशीर्वाद दिया गया है। इत्यादि। १३ साल बाद १२५९ ई० पू० में महाराजा खेतसार की लड़की का फेरोआ रामेस के साथ विवाह हो गया। रामेस ने खत्ती राजकुमारी को अपनी पटरानी बनाया।

किन्तु इसके बाद खत्ती कमज़ोर पड़ने गये। इस समय असुरिया (उत्तर मेसोपोटामिया) के सम्राट अपनी विजयों से चारों ओर असुरी साम्राज्य क़ायम कर रहे थे। इन्हीं में से एक प्रसिद्ध असुरी सम्राट तिगलथ पिलेसर ने सन् ११९० ई० पू० में एशिया कोचक से खत्तियों की सत्ता को सदा के लिये नष्ट कर दिया।

सन् ८५० ई० पू० में वान झील के किनारे आर्मीनिया के पास 'उरार्तु' में फिर से खत्ती सत्ता क़ायम हुई। उरार्तु की राजधानी 'तुष्प' नामक नगर में थी। यह शहर वान झील के पूरबी किनारे पर था। उरार्तु के साथ भी असुरिया की आए दिन लड़ाई होती रहती थी। अन्त में सन् ७१७ ई० पू० में उरार्तु के राजा और असुरिया के सम्राट सरगन दूसरे से कारकेमिश के मैदान में युद्ध हुआ। इस युद्ध में ही उरार्तु से भी खत्ती सत्ता का अन्त हो गया।

उरार्तु से खत्ती अधिक पूरब की ओर बाख़्त्री में आकर बस गये। इसी बाख़्त्री को आज कल बख़्तियार कहते हैं। इतिहासकारों के अनुसार यह बाख़्त्री ही आर्यों की प्राचीन जन्म भूमि है। ज़माने के हज़ारों बरस के दौर में खत्ती उस जगह लौट आये जहां से लगभग ढाई हज़ार बरस पहले उनके पूर्वज खेतसार की ओर गये थे। किन्तु खत्ती कौम के लिये यह ऐतिहासिक बदक़िस्मती का ज़माना था। सकसेन से सकों के हमले ने उन्हें बाख़्त्री छोड़ने पर मजबूर कर दिया। अनेक इतिहास लेखकों का अनुमान है कि खत्ती बाख़्त्री छोड़ कर अफ़ग़ानिस्तान के रास्ते गान्धार की ओर आये।

असुरिया की राजधानी निनेवेह की खुदाई में बहुत सी खत्ती सील मोहरें मिली हैं। शुरू शुरू की खत्ती लिपि 'चित्र लिपि' थी। इसमें विविध विचारों को ज़ाहिर करने के लिये सर, हाथ, पांव, पंजे, लोमड़ी, पक्षी, तलवार आदि के चित्र बनाये जाते थे एक एक चित्र एक एक विचार ज़ाहिर करता था। चित्रों के रुख की तरफ़ लिपि पढ़ी जाती थी। पहली लाइन दाहिने से बांए, दूसरी बांए से दाहिने और तीसरी फिर दाहिने से बांए लिखी और पढ़ी जाती थी। खत्ती लिपि से ही साइप्रस द्वीप की वर्णमाला बनी। लीसियन, कोनियन और पैम्फीलियन लिपि पर भी खत्ती लिपि की छाप है। बाबुली लिपि में भी खत्ती भाषा के शब्द मिले हैं। तेल अल अमर्न में मित्तन्नी के राजा दशरथ के तीन पत्र और अरसपि के राजा तरखुनदरब के खत्ती भाषा में लिखे हुए पत्र मिले हैं। आर्मीनिया में भी खत्ती भाषा के कई शिलालेख पाए गए हैं।

खत्ती साम्राज्य के विस्तार के साथ साथ खत्ती भाषा में भी तब्दीली आई। बाबुल और मिस्र की ज़बानों ने भी उस पर अपना काफ़ी असर डाला। खत्तियों की मूल भाषा संस्कृत थी किन्तु धीरे धीरे खत्तियों, भारतवासियों और ईरानी आर्यों की भाषा में ख़ासा फ़र्क़ पड़ गया। भाषा के साथ साथ उनके रक्त में भी सम्मिश्रण हुआ। चित्रों में उनकी नाक और कपाल देख कर पता चलता है कि उनके आर्य रक्त में दूसरे रक्तों की भी मिलावट हुई।

नीचे लिखे शब्दों से खत्ती और संस्कृत भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है—

	खत्ती	संस्कृत
एक वचन—	शाश	सा
	जामि	यामि
	जाशि	यासि
	जाज़ि	याति
	० ०	०
बहु वचन—	जावेनि	यामः
	जात्तेनि	यात्त
	जांज़ि	यान्ति
	० ०	०
	जा	याहि
	जाद्दु	यातु
	जात्तेन	यात
	जान्दु	यान्तु, आदि

उनके राजाओं में दशरथ, सुतर्ण, अर्तात्मा (संस्कृत-ऋतात्मा), शुबन्दु (संस्कृत-सुबन्धु) आदि नाम पाए जाते हैं।

खत्ती आर्यों के प्रमुख देवताओं में 'मित्राश शील', 'अरुणाश शील' और इन्दर (वैदिक-मित्र, वरुण और इन्द्र) थे। वैदिक 'नासत्य' की भी ये लोग पूजा करते थे। 'अग्निश' (अग्नि) की भी पूजा होती थी। देवी की 'जगज्जननी' के रूप में पूजा की जाती थी। जगजननी का वाहन 'हंस' था। पच्छुमी खत्ती 'तर्कुदेव' की और पूर्वी खत्ती 'तेशुप' की पूजा करते थे। साइलीमिया के खत्ती 'सन्द' देवता की पूजा करते थे। वान के खत्ती 'खाल्दि' (चन्द्रमा) को प्रधान देवता मानते थे। चन्द्रमा को ये लोग 'शैलार्दि' नाम से भी पुकारते थे। इनकी त्रिमूर्तियों में प्रमुख त्रिमूर्ति "अर्दि (सूर्य) खाल्दि (चन्द्र) और तेशुप (पवन)" की है। देवी की मूर्ति के एक हाथ में आइना, फूल या पक्षी होता था।

खुदाई से कुरबानी के चित्र भी मिले हैं। देवता के सामने अंगूरों के गुच्छे और अनाज की बालियां भी चढ़ाई जाती थीं। एक देवता का धड़ शेर का था और सर मनुष्य का था। बाद के खत्ती वैदिक देवताओं के साथ साथ सुमेरी, मिस्री और खुर्री क़ौमों के देवताओं की भी पूजा करने लगे थे। मिस्र के फेरोआ रामेश दूसरे और खत्ती राजा में जो सुलह हुई उसमें १०० देवताओं की गवाही लिखी गई थी।

इन देवताओं के अलावा खत्ती पृथ्वी, स्वर्ग, पर्वत, नदी, कुआं, वायु और मेघ आदि की भी पूजा करते थे। 'खल्कि' अन्न का देवता था। कुलदेव का 'कुल शेष', पितृदेव का 'कुमार्व' और मातृदेवी की 'निना-त्तस' नाम से पूजा की जाती थी। निनात्तस की सुमेर में 'निना' नाम से पूजा होती थी।

खत्तियों की शिल्पकला और चित्रकला का आदर्श धार्मिक था। बाग़ज़कुई की खुदाई में ज़्यादातर एक अकेले देवता या मनुष्य की मूर्ति अथवा चित्र पाये गए हैं। कहीं कहीं पैनल में एक से ज़्यादा व्यक्ति भी दिखाये गए हैं। ढलाई और धातुओं के काम में खत्ती बहुत कुशल कारीगर थे। निर्माण कला में भी उन्होंने काफ़ी तरक्क़ी की। उरार्तु के खत्ती इमारतों के बनाने में रंगबिरंगे संगमरमर इस्तेमाल करते थे। कांसे की मूर्ति ढालने का भी उन्हें ज्ञान था। खत्तियों ने यूनानी कला पर भी काफ़ी असर डाला।

खत्तियों में पुरुष और स्त्रियां दोनों सर पर लम्बे लम्बे बाल रखते थे। दोनों आधी बांह का घुटनों तक का लम्बा कुरता पहनते थे। स्त्रियां इस कुरते के ऊपर से लबादा डाल लेती थीं। यह लबादा सर से पैर तक लटकता था। जूते और चप्पल पहनने का भी रिवाज था। स्त्री पुरुष दोनों हाथों में कड़े और कानों में बाली पहनते थे। स्त्रियां हार भी पहनती थीं। मर्द हाथ में लम्बा डण्डा लेकर चलते थे। खत्ती सेना में पैदल, घुड़सवार, और रथवाले होते थे। रथ में दो घोड़े जुतते थे। धनुष-बाण, फ़रसा, तलवार, और गदा उनके हथियार थे। बाग़ज़कुई की खुदाई से दो भागों में लिखा हुआ खत्तियों का दो सौ सफ़े का एक न्याय-ग्रन्थ मिला है। सज़ा देने में खत्ती उदारता बरतते थे। वे खेती और पशुपालन को बहुत महत्व देते थे। शहद की मक्खियां भी पालते थे। अनाज में

जौ और गेहूं प्रमुख थे। जौ की शराब भी बनाई जाती थी। तोल के बाट बाबुल की ही तरह थे। सिक्के की जगह वे चांदी के टुकड़े इस्तेमाल करते थे। खुदाई में रहन, बैनामा, ख़रीद, फ़रोख्त के लेखों के अलावा ज्योतिष, गणित और वैद्यक के भी ग्रन्थ मिले हैं।

खत्तियों में पुरुषों की तरह स्त्रियां भी स्वाधीन थीं। परदे की प्रथा का उनमें ज़रा भी रिवाज न था। जब कि असुरी समाज में हज़रत ईसा से एक हज़ार साल पहले स्त्रियों को परदे में बन्द रखा जाता था खत्ती स्त्रियां हथियार लेकर युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं का मुकाबला करती थीं। खत्ती 'दुर्गा' की भी उपासना करते थे। ये अपने सरों पर लम्बी चोटी भी रखते थे।

बाग़ज़कुई की खुदाई से चट्टान पर बना हुआ पांच हज़ार साल पुराना एक चित्र मिला है। इस चित्र के सम्बन्ध में प्रसिद्ध अंगरेज़ पुरातत्ववेत्ता सर जार्ज बर्डवुड ने लिखा है—

"उसके कपड़े पहनने का तरीका गुजरात के सवर्ण हिन्दुओं के तरीक़े से मिलता जुलता है। उसकी बलदी हुई पगड़ी, कन्धे का दुपट्टा, और भारतीय शैली के नोकदार जूतों से यही मालूम होता है कि वह किसी हिन्दू की मूर्ति है।"

तुर्की के इस बाग़ज़कुई गांव के खंडहरों में वैदिक आर्य सभ्यता का ख़ज़ाना दफ़न पड़ा हुआ है। क्या ही अच्छा हो कोई हिन्दुस्तानी विद्वान जाकर उसका अध्ययन करके उसे पूरी तरह प्रकाश में लावे।

मङ्गलाशा

[श्री सोहनलाल द्विवेदी]

करुणा की वर्षा हो अविरल !
सन्तापित प्राणों के ऊपर, लहरे प्रतिपल शीतल अञ्चल !
मलयानिल लाये नव मरन्द,
विकसें मुरझाये सुमन वृन्द;
सरसिज में मधु हो, मधुकर के मानस में मादक प्रीति तरल !
कोकिल की सुन कातर पुकार,
आये बसन्त ले मधुर भार;
कानन की सूखी डालों में, फूटें नवदल कोमल कोमल।
काली रजनी का उठे छोर,
लेकर प्रकाश नव हंसे भोर;
जगती के आंगन में ऊषा, बरसावे मंगल कुङ्कुमजल।

बिन्दकी]

पूरबी बनाम पच्छिमी सभ्यता

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन

इस समय दुनिया की हालत क्या है? सारी बड़ी बड़ी क़ौमें सिर से पांव तक हथियारों से लदी हुई हैं। उन्हें एक दूसरे से ज़बरदस्त नफ़रत है। वे एक दूसरे का जीना तक बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। दुनिया के सब स्त्री, पुरुषों और बच्चों को एक भयंकर आफ़त अपने सामने दिखाई दे रही है। सब किसी की जान और माल हर वक्त ख़तरे में है। हवाई जहाज़ों की मार से बचने के लिये यूरोप के शहरों और गलियों में ज़मीन के नीचे सुरंगें और तहख़ाने बने हुए हैं। लोगों के रहने के घरों में इस तरह के कमरे हैं, जिनमें गैस का असर न हो सके। गैसों के ज़हरीले असर से बचने के लिये गैस मास्क, यानी मुंह और नाक को ढकने के लिये एक तरह के ख़ोल, बांट दिये गए हैं और रोज़ क़वायद के तौर पर लोगों को जमा करके उनका इस्तेमाल सिखाया जाता है। इन सब चीज़ों से पता चलता है कि हमारा पतन किस हद को पहुँच चुका है। मनुष्य जाति ने हज़ारों बरस की मेहनत से अपनी पूरी बुद्धि लगा कर जो कुछ थोड़ी बहुत रचना की थी, उसे अब हम अपने ईर्षा, द्वेष और कुवासनाओं को तृप्त करने के लिये, दूसरों पर हुकूमत करने और धन कमाने के चक्कर में पड़ कर, बजाय मिलकर एक दूसरे की मदद करने के एक दूसरे को नष्ट करने के प्रयत्नों में, ख़त्म करते हुए दिखाई दे रहे हैं। प्रेम, दया और परस्पर सहानुभूति की जगह ईर्षा, द्वेष और दुश्मनी चारों तरफ़ बढ़ती जा रही है। हमें अपने अस्तित्व को बनाए रखने की इतनी ज़्यादा फ़िक्र पड़ गई है कि उस अस्तित्व के असली लक्ष्य को भी हम बिलकुल भूल गए। दुनिया में शान्ति क़ायम करना अब एक थोथा स्वप्न मालूम होता है। इसमें सन्देह नहीं कि आजकल की सभ्यता यदि इन्हीं बुनियादों पर चलती रही, तो उसे ज़िन्दा रखना दुनिया के लिये हितकर नहीं हो सकता।

यह हालत आजकल की पच्छिमी सभ्यता की है। लेकिन चीन और भारत की सभ्यताएं बिलकुल दूसरे तरह की हैं। इन पुरानी सभ्यताओं में वे गुण अधिक मात्रा में नहीं हैं, जिनकी बदौलत पच्छिम की नई क़ौमों को दुनिया के रङ्ग मञ्च पर इतनी तेज़ी के साथ बढ़ने और इतनी शक्तिशाली ताक़तें बनने का मौक़ा मिला। धन और हुकूमत की तृष्णा, बड़े बनने की लालसा, इसके लिये अपने को तरह तरह के ख़तरों में डालने की हिम्मत, एक ख़ास तरह की उदारता और बहादुरी, क़ौमीयत की भावना और सामाजिक जोश, ये सब वे गुण हैं, जिन्होंने यूरोप की क़ौमों को इतना बढ़ाया और जो एशिया की पुरानी सभ्यताओं में इस मात्रा में नहीं मिलते। चीन और भारत ने इस तरह के आदमी ज़्यादा पैदा नहीं किये, जिन्होंने साइन्स की खोजों में अपनी जानें ख़तरे में डाल दी हों, जिनकी लाशें उत्तरी ध्रुव और दक्खिनी ध्रुव के बरफ़ीले मार्गों में बिछी हुई हों, जिन्होंने बड़े बड़े महाद्वीपों का पता लगाया हो, इसमें एक दूसरे के साथ होड़ की हो, जिन्होंने ऊंचे ऊंचे पहाड़ों की अगम्य चोटियों को अपने पैरों से माप डाला हो और

जिन्होंने इस ज़मीन के दूर दूर के अनसुने इलाकों को खोज निकाला हो। लेकिन, इस पर भी चीन और भारत की कौमें हजारों बरस से ज़िन्दा हैं। उन्होंने बड़े बड़े सकट झेले हैं और इन संकटों में से निकल कर भी अपने अस्तित्व और अपनी विशेषताओं दोनों को कायम रखा है। इन दोनों कौमों के इतने दिनों तक ज़िन्दा रहने से ही मालूम होता है कि ये शायद ज़िन्दगी के ठीक ठीक उसूल समझती हैं। उनमें एक अद्भुत संजीवनी शक्ति है। उनमें वह ताकत है, जिसने सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक इनकलाबों के होते हुए भी उन्हें कायम रखा या यह कहना होगा कि वे परिस्थिति के अनुसार अपने को इतना बदल लेते हैं कि जिससे उनकी ज़िन्दगी पर बुरा असर नहीं पड़ता। जिस तरह के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक इनकलाबों में से होकर इन दोनों देशों के लोगों को बार बार निकलना पड़ा है, वे इनकलाब किसी भी कम हृष्ट पुष्ट और कम मज़बूत सभ्यता को मिटा देने के लिए काफ़ी थे। मिसाल के तौर पर हिन्दुस्तान ही सदियों तक युद्धों, बाहर के हमलों, महामारियों, दुष्कालों और कुशासनों का मुकाबला करता रहा है। मालूम होता है कि जब तक किसी कौम को काफ़ी दुख और कष्ट भोगने न पड़ें, तब तक उसमें दूसरों को समझने और उनसे सहानुभूति करने का माद्दा पैदा नहीं होता। मोटे तौर पर पूरब की सभ्यताओं का लक्ष्य इस ओर इतना ज़्यादा नहीं रहा है कि वे अपनी किसी समय की हालत को बहुत ज़्यादा बढ़िया या ऊंचा करलें, जितना इस बात की ओर रहा है कि इस दुनिया की ज़िन्दगी में दोषों और कमियों के रहते हुए भी वे उसका अच्छे से अच्छा उपयोग कर सकें और अपने अन्दर और दूसरों के अन्दर भी सुख और सन्तोष, सहनशीलता और धीरज का संचार कर सकें। चीन और हिन्दुस्तान के लोग यह सोचकर ख़ुश नहीं होते कि उन्हें किसी दूसरे से लड़ना है। उनके जीवन का लक्ष्य सदा अपनी इच्छाओं को जहां तक हो सके कम करना और वासनाओं को दबा कर रखना रहा है। चीन के मशहूर महात्मा लाओत्ज़े का कहना है कि 'अजेय होने का एकमात्र तरीका दीन बनकर रहना है।' आदमी की ज़िन्दगी की असली ज़रूरत बहुत से लोगों ने जितना फ़र्ज़ कर रखा है, उससे बहुत ही कम है। पूरब के लोग अगर इस तरह की सादा ज़िन्दगी बसर करना पसन्द करते हैं जिसमें उन्हें दूसरों पर निर्भर होना न पड़े और जिस पर विधि या किस्मत के उलट-फेर बहुत ज़्यादा असर न डाल सकें, यदि वे अपने स्वभाव को इतना नम्र और दीन रखना चाहते हैं कि जिससे उनके दिलों में किसी की तरफ़ से गहरी नफ़रतें पैदा होने न पावें तो इससे हमें यह नहीं समझना चाहिये कि इनमें गरमी की या ख़ून की कमी है और वे डर कर अपने को अंधेरे में छिपा लेना चाहते हैं। जब कि पच्छिम की कौमें एक दूसरे का ख़ून बहा कर भी अपनी आज़ादी कायम रखने के लिये बेचैन रहती हैं, पूरब की कौमें पराधीनता सहकर भी दूसरों के साथ शान्ति और सुलह से रहने के लिये झुक जाती हैं। वे अपनी तकलीफ़ों और कमियों को भी अपने अन्दर सन्तोष और बर्दाश्त पैदा करने के साधन बना लेती हैं और उसी मनुष्य को सबसे ज़्यादा सुखी समझती हैं, जिसके पास दुनिया का सब से कम सामान हो। यूनान के मशहूर महात्मा दिओजिन ने एक बार अफ़लातून को यह ताना दिया था—"अगर तुम सूखी सागभाजी पर ज़िन्दगी बसर करने की आदत डाल लेते, तो तुम्हें अन्यायी राजाओं की ख़ुशामद न करनी पड़ती।" दुनिया का भविष्य अभी हमारी आंखों से छिपा हुआ है। लेकिन दुनिया के भूतकाल से हमें इस बात की चेतावनी मिल रही है कि दुनिया अन्त में उसी की होकर रहेगी, जो इस दुनिया की परवाह न करे और जिसकी निगाहें बजाय इस दुनिया के दूसरी ज़्यादा टिकाऊ दुनिया की ओर लगी हों। पूरब की सभ्यताओं की निगाह हमेशा जीवन के आध्यात्मिक पहलू की तरफ़ रही हैं। इसी पर पूरब की संस्कृतियां फली फूली हैं। इसी से उन्हें अपनी ज़िन्दगी पर वह भरोसा है, जो जल्दी से नहीं मिट सकता, जो हर वक्त उन्हें सम्हाले रखता है और जिसकी वजह से हज़ारों उलट-

फेरों के अन्दर से निकलते हुए और उन सबको देखते हुए भी उनके दिलों में घबराहट नहीं आने पाती। इसके खिलाफ़ पच्छिम की सभ्यता की निगाह सिर्फ़ इस दुनिया की ज़िन्दगी पर है। पच्छिम वालों की ज़िन्दगी कहीं ज़्यादा जंगजू और ज़ोरदार है। लेकिन इस समय पच्छिम की सभ्यता मौत के मुंह में पड़ी हुई है। जिस जादू ने उसके दिमाग़ पर असर डाल रखा था, वह अब टूट रहा है। यह सभ्यता अब अपने बचाव के लिये पूरब की तरफ़ निहार रही है। यूनान की पौराणिक कथाओं में नौजवान 'इकारस' का ज़िक्र आता है, जो बड़े बड़े पंख बनाकर और मोम से उन्हें अपने ऊपर चिपका कर ऊंचा उड़ने लगा। वह इतना ऊंचा उड़ा कि उसके पङ्खों का मोम पिघल गया और वह समुद्र में गिर पड़ा। इसी तरह के पर इकारस के बूढ़े बाप डायडेलस ने भी लगाए थे। डायडेलस नीचे ही नीचे उड़ता रहा; लेकिन निर्विघ्न घर लौट आया। यह किस्सा महज़ एक किस्सा नहीं है। पूरब की संस्कृतियों की विशेषताएं उन्हें लम्बे जीवन और टिकाऊपन की तरफ़ ले जाती हैं। पच्छिम की विशेषताएं उन्नति और खतरों का मामना करने की तरफ़ ले जाती हैं।

लेकिन, अब पूरब की सभ्यताओं में पूरब के लोगों का भी काम चलता दिखाई नहीं देता। इन सभ्यताओं में भी कुछ खास कमी है। पूरब की कौमें इस समय असहाय और अव्यवस्थित दिखाई देती हैं। वे अपने आपको पूरी तरह सम्हाल कर जीवन पथ पर आगे बढ़ने के नाकाबिल मालूम होती हैं। पूरब के लोगों में से, मालूम होता है, असली ताकत और क्षमता मिट गई। ये लोग खुद अपने मुल्कों के अन्दर खोए हुये से और नीम मुरदा हालत में इधर उधर भटकते हुए दिखाई देते हैं। उनमें केवल एक पुराने ढंग का विश्वास बाक़ी रह गया है कि अन्त में किसी न किसी तरह शारीरिक बल के ऊपर न्याय और सत्य की विजय होगी। इन लोगों में इस तरह की कमज़ोरियां आगई हैं, जिनसे उनका यदि सठिया जाना नहीं साबित होता; तो कम से कम बुढ़ापा ज़रूर साबित हो रहा है। वे इस समय उदासीन और बिखरी हुई हालत में हैं। इस लिये नहीं कि उनमें शांति या मनुष्य प्रेम बढ़ा हुआ है; बल्कि इस लिये क्योंकि वे अपने को सुरक्षित रखने की क़ीमत अदा नहीं कर सके। यह बात बड़े दुख की है। इन क़ौमों की निगाह जितनी गहरी गई, उतनी ही उनकी शारीरिक क्षमता कम होगई। उन्हें नये जीवन की, कायाकल्प की ज़रूरत है। हमारे अपने जीवन के अधूरे फ़लसफ़े और अधूरे सिद्धांतों की वजह से सारे गुण और हमारे सारे रचनात्मक प्रयत्न दुनिया के लिये फ़ज़ूल साबित हो रहे हैं। आजकल की सभ्यता जो इतनी चमकती हुई और कर्तव्यशील है, अगर अपने अन्दर सहनशीलता और दूसरों से प्रेम और पैदा करले, अगर वह व्यक्तिगत तृष्णा को कम करके मनुष्य जीवन को और खासकर दूसरों को समझने की तरफ़ ज़्यादा ध्यान दे, तो इतिहास की यह सबसे बड़ी विजय होगी।

पूरब और पच्छिम दोनों इस समय अपने अब तक के तरीक़ों को छोड़ कर इस तरह के नये विचारों और उसूलों की तरफ़ बढ़ रहे हैं, जिन्हें अन्त में सारी मनुष्य जाति उसी तरह अपना लेगी, जिस तरह उसने साइन्स की नई ईजादों को अपना लिया है। हम एक महाद्वीप के लोगों के साथ बातें कर सकते हैं। हम संगीत को धातु के टुकड़ों में भरकर जहां चाहे-जब चाहे, सुना सकते हैं। हम फ़ोटोग्राफ़ की तसवीरों में जान डाल सकते हैं और उन्हें चला फिरा और बुला सकते हैं। लेकिन, इन सबसे किसी संस्कृति की बुनियादों पर असर नहीं पड़ता। मनुष्य के जीवन और उसके दिमाग़ की बनावट इस सब से नहीं बदल जाती। इन सब नई चीज़ों को हम पच्छिमी सभ्यता के उन्हीं पुराने सांचों में भर रहे हैं। इन सांचों में नई नई चीज़ें पड़ती रही हैं। अभी तक ये सांचे इनसे नहीं टूटे थे। लेकिन अब इन सांचों ने चटकना शुरू कर दिया है। दस-बीस बरस पहले इनमें केवल बाल पड़ गए थे। अब वे बाल बढ़ते बढ़ते दरारें दिखाई देने लगी हैं। ये दरारें भी बढ़ती जा रही हैं। इन सांचों में दरारें पैदा होने के साथ साथ आजकल की सारी सभ्यता में

दरारें पैदा होगई हैं। अब इन पुराने सांचों में रहकर मनुष्य का फल फूल सकना नामुमकिन है। किन चीज़ों और किन उसूलों की क्या क़ीमत है इसे हमें नए सिरे से समझना होगा। अंगरेज़ी ज़बान में इस 'नए सिरे से समझने के लिये लफ़्ज़ 'ओरिएण्टेशन' इस्तेमाल होता है जिसके अर्थ हैं 'किसी चीज़ का ओरिएण्ट यानी पूरब से लेना'। अब मनुष्य के आन्तरिक जीवन की सच्चाइयों को पूरब की सभ्यताओं से लेना होगा। ये अन्दर की सच्चाइयां मनुष्य जाति के सुख सौख्य और उसके कल्याण के लिये उतनी ही ज़रूरी हैं जितना बाहर का संगठन और निज़ाम। इस समय की पच्छिमी सभ्यता में जो बेचैनी, अहम्भाव और ख़ुदनुमाई दिखाई दे रहीं हैं वे इस सभ्यता की कम उमरी, उसके लड़कपन और उसके कच्चेपन की पहचान हैं। पक्के और बालिग़ होने के साथ साथ ये दोष ख़ुद बख़ुद दूर हो जावेंगे। आज मनुष्य जाति का भविष्य और उसकी क़िस्मत का फ़ैसला सिर्फ़ इस बात पर निर्भर है कि वह उन गुणों और उसूलों को जिनका सम्बन्ध पूरब के धर्मों, वहां के अध्यात्म, वहां के ज्ञान मार्ग, वहां के सूफ़ियों के मज़हबे इश्क़ और वहां की रूहानियत से है जितनी जल्दी समस्त मानव जीवन का अंग बना सके। इतिहास का रंग मंच इस प्रयत्न की बाट जोह रहा है।

आज से थोड़े दिन पहले दुनिया एक बहुत बड़ी जगह समझी जाती थी। दुनिया की मुख़्तलिफ़ क़ौमें दूर दूर एक दूसरे से अलग अलग रहती थीं। तिजारत के रास्ते इतने साफ़ नहीं थे। आने जाने और सामान लाने ले जाने के ज़रिये आजकल से बहुत कम थे। दुनिया का आर्थिक संगठन एक दूसरे ढंग का था। इस सब की वजह से लोगों में दूसरों की तरफ़ से और ख़ासकर दूसरी क़ौम के लोगों की तरफ़ से एक ग़ैरियत का भाव पैदा हो गया। इसीलिये क़ौमें एक दूसरे को अपना दुश्मन समझने लगीं। इसीलिये कोई एक ऐसा व्यापक प्रवाह न था या कोई एक ऐसी व्यापक धारा न थी जिसमें सारी मानव सभ्यता एक होकर बह सके। अलग अलग सभ्यताओं के अलग अलग चश्मे थे जिनका मिलकर एक लगातार प्रवाह दिखाई न देता था। इनमें से कई चश्मे सूख भी गये और उनका जल विशाल मानव इतिहास की धारा में न आ सका। किन्तु आज सारी दुनिया एक हो रही है। सब जगह एक सी हरकत और हलचल है। पूरब और पच्छिम पहले भी एक दूसरे को सींचते और सरसब्ज़ करते रहे हैं वही बात आज फिर और ज़ोरों के साथ दिखाई दे रही है। क्यों न हम इस समय एक ऐसे फ़लसफ़े को पैदा करने की कोशिश करें जिसमें यूरोप की ऐहिकता यानी दुनियावी तरक़्क़ी और एशिया की पारलौकिकता और धर्म दोनों के ऊंचे से ऊंचे सिद्धान्त मिले हुए हों, एक ऐसा फ़लसफ़ा जो इन दोनों से ज़्यादा गहरा और ज़्यादा जीवनप्रद हो, जिसमें इन दोनों से बढ़कर आध्यात्मिक और नैतिक बल हो और जो दुनिया के लोगों के दिलों को जीत कर तमाम क़ौमों को अपना भक्त और अनुयायी बनाले।

संसार में एक भी मनुष्य भूखा रहे और मैं अजीर्ण की दवा करूं, दुनिया के लोग नंगे फिरें और मैं सुन्दर सुन्दर वस्त्रों से सन्दूक़ भरूं। यही मानव जीवन का सबसे काला कलङ्क है।

—टाल्स टाय।

आज़ाद हिन्दुस्तान में न फ़ौज होगी, न हथियार होंगे

[श्री मञ्ज़र अली सोख्ता]

[श्री सोख़्ता साहब का जीवन रोमांचक घटनाओं से भरा हुआ है। आपके दादा युक्तप्रान्त में बदायूं के रहने वाले, वहां के प्रतिष्ठित और प्रमुख रईस थे। उनका ख़ानदान मुग़ल काल के पुराने और मुख्य ख़ानदानों में से था। सन् ५७ में जब भारतीय स्वाधीनता संग्राम की लपटें उठीं, तब सोख़्ता साहब के ख़ानदान ने भी अपनी सम्पूर्ण आहुति उनमें चढ़ा दी। परिवार के अनेक व्यक्ति अंगरेज़ी फ़ौजों से लड़ते हुए मारे गये, कुछ को फांसी मिली, जायदाद ज़ब्त होगई और एक प्रतिष्ठित और कुलीन कुल अनाथ और मुफ़लिस बना दिया गया। सोख़्ता साहब जब केवल पांच बरस के थे, उनके पिता रोज़ी की तलाश में उन्हें लेकर इलाहाबाद आये। सोख़्ता साहब की मां का बचपन में ही इन्तकाल होगया था। उनकी बूढ़ी नानी ने उनका पालन पोषण किया और दूध की घूटी के साथ अंगरेज़ों के अत्याचारों का उन्हें ज्ञान कराया। इलाहाबाद में सोख़्ता साहब के पिता और पण्डित मोतीलाल नेहरू में परिचय हुआ। पण्डित जी उनके गुणों पर मुग्ध होगये। उन्हें सदा अपने बड़े भाई की तरह मानते रहे। आनन्द भवन के आंगन में सोख़्ता साहब का प्रेम से पालन हुआ। नेहरू ख़ानदान वाले सोख़्ता साहब को आज भी बड़े प्रेम से 'मन्ना भाई' कहते हैं। अपने विद्यार्थी जीवन से ही—सन् १९०८ से—सोख़्ता साहब ने भारत की उग्र राजनीति में दिलचस्पी लेनी शुरू की और इन पिछले ३२ वर्षों में उन्होंने अविवाहित रह कर, ५-७ बार जेल जाकर, देश की अनवरत सेवा की है। बीच में हाईकोर्ट के प्रतिष्ठित वकील भी रहे, रंगून के अंगरेज़ी दैनिक 'रंगून मेल' के सम्पादक भी रहे; किन्तु मनोवृत्ति में तो फ़क़ीरी थी। यरवदा जेल में सन् १९२२ में उन्हें एक साल तक गांधी जी के साथ रहने का मौका मिला। तभी से उनकी विचारधारा पलटी। आज कानपुर के पास गंगा के किनारे उनका आश्रम है, जहां ७०-८० विद्यार्थी ग्राम-उद्योग और गांधीवाद की शिक्षा पाते हैं। सोख़्ता साहब एक कठोर तपस्वी का जीवन बिताते हैं। देश में गान्धीवाद की इनसे अच्छी वैज्ञानिक विवेचना करनेवाले मुशकिल से मिलेंगे। वे गान्धीवाद के ज़बरदस्त हामी हैं। राजनैतिक शतरंज के सफल खिलाड़ियों की तरह उन्हें प्रकाश में आने और नेता बनने से नफ़रत है। वे अपनी प्रतिभा को राख में दबाकर रखना ही पसन्द करते हैं। साठ वर्ष के बूढ़े होने पर भी वे अपने उत्साह, परिश्रम व लगन में युवकों को भी मात करते हैं। 'विश्ववाणी' **इनके आशीर्वाद** के साथ आज प्रगट हो रही है। **'विश्ववाणी'** के पाठकों के लिये वे उपरोक्त **शीर्षक** से एक **लेख माला** लिख रहे हैं। **अहिंसा** के सिद्धान्त पर **सोख़्ता साहब** से **अधिक मनन और चिन्तन** गान्धी जी को **छोड़कर शायद** ही किसी ने किया हो। **प्रस्तुत लेख में ऐतिहासिक दृष्टि से अहिंसा पर विचार किया गया है।**]

(१)

अब तक के इतिहास पर एक नज़र

दुनिया में आजकल ऐसे नये नये नारे बुलन्द किये जा रहे हैं, जो पहले कभी भी सुनने में न आये थे। इनमें सब से नया नारा यह है कि "आज़ाद हिन्दुस्तान में न फ़ौज होगी, न हथियार होंगे।" जैन, बौद्ध और ईसाई धर्मों ने अहिंसा पर ज़ोर दिया है और जिन धन्धों व व्यापारों से लोगों को रोज़ी कमाने की इजाज़त दी है, उनमें 'हथियारों का बेचना' शामिल नहीं रखा। इतिहास में ऐसे महात्माओं और सम्राटों के नाम भी मिलते हैं, जिन्होंने अपने निजी जीवन में या दूसरे देशों पर हमला करने और उन्हें जीतने के लिये हथियारों के इस्तेमाल को अपने लिये उचित नहीं समझा। पर, आज तक किसी भी धर्म ने, चाहे उसका आदर्श कुछ भी रहा हो या किसी भी सम्राट ने, चाहे वह कितना ही पुण्यात्मा और धर्मात्मा क्यों न रहा हो, इस बात की कल्पना तक नहीं की कि देश का पूरा इन्तज़ाम और रक्षा बिना फ़ौजों और हथियारों के केवल अहिंसा के ही तरीक़ों से की जा सकती है। इसीलिये जब श्री राजगोपालाचारी ने यह कहा कि वे इस तरह की किसी सरकार की कल्पना नहीं कर सकते, जिसका सारा काम बिना पुलिस और फ़ौज के चल सके, तो उनका यह कहना अब तक के इतिहास की दृष्टि से ठीक था। यह नारा कि 'आज़ाद हिन्दुस्तान में न फ़ौज होगी,न हथियार होंगे' और हमारे दिल में इस बात की इच्छा कि फ़ौज व हथियारों के बिना राज का पूरा इन्तज़ाम किया जावे, मनुष्य समाज के अब तक के माने हुए उसूलों के विरुद्ध है। सरसरी तौर पर अब तक के इतिहास को देखते हुए श्री राजगोपालाचारी का कहना ठीक ही जान पड़ता है।

लेकिन, इसमें भी सन्देह नहीं कि अहिंसा के इस नारे की जड़ें पिछले इतिहास में दूर गहराई तक गई हुई दिखाई देती हैं। इतिहास से इस बात का पता चलता है कि मनुष्य समाज का पूरा रुझान शुरू से इसी तरफ़ रहा है कि अधिक व्यापक रूप में अहिंसात्मक तरीके काम में लाए जावें और धीरे धीरे अपनी ज़िन्दगी के कुल पहलू अहिंसामय बना लिये जावें। मनुष्य हमेशा से एक एक कर हिंसा के तरीक़ों को छोड़कर अहिंसा के तरीक़ों पर चलना अपने लिये ज्यादा अच्छा और ज्यादा सलामती का रास्ता समझता रहा है। अपनी ज़िन्दगी के हर क्षेत्र में वह धीरे धीरे हिंसा के उपायों और नियमों को छोड़कर अहिंसा और प्रेम के उपायों पर अमल करने की कोशिश करता रहा है। मनुष्य समाज के इस महान प्रयोग की पूरी व्याख्या हम यहां नहीं कर सकते। केवल कुछ मिसालें, जो हम नीचे दे रहे हैं, हमारे मतलब को साफ़ कर देने के लिये काफ़ी हैं।

१--स्त्रियों के साथ समाज के बर्ताव और स्त्रियों के अधिकारों में परिवर्तन।

२--कुटुम्ब के कुलपति के अधिकारों में परिवर्तन। पहले ज़माने में हर कुटुम्ब के कुलपति का कुटुम्ब के सब लोगों और उनकी जान माल पर पूरा अधिकार होता था। वह जिसे चाहे क़त्ल कर सकता था या ग़ुलाम बना कर बेच सकता था।

३--ग़ुलामी की प्रथा का अन्त हो जाना। ग़ुलामी का रिवाज और ग़ुलामों के साथ जानवरों का सा सुलूक, उनका जानवरों की तरह बेचा व ख़रीदा जाना इतिहास के ना मालूम ज़माने से शुरू होकर अभी हाल तक सारी दुनिया में जारी था।

(४)- नौकरों और मालिकों के क़ानूनी अधिकारों और आम बर्ताव में तब्दीली।

दिया है, जिनकी प्रलयंकरी लीलाएं आज हम यूरोप के युद्ध क्षेत्रों में देख रहे हैं।

गो कि हिंसा की भावना हमारी जिन्दगी के हर पहलू को दूषित कर रही है, फिर भी हम हिंसा को अमोघ अस्त्र समझ रहे हैं, और यह समझ बैठे हैं कि इसके बिना काम नहीं चल सकता। यही भ्रम हमारे दिमाग़ों पर फ़ालिज का काम कर रहा है और हमारी सारी ऊंची व अच्छी भावनाओं को मिटा रहा है। हम उसके सुधार का उपाय सोचने के बजाय हिंसा के वातावरण को फैलाने में और उसकी मशीनों को और अधिक व्यापक व मज़बूत बनाने में लगे हुए हैं। इस हिंसा से जो विश्वव्यापी नाश हो रहा है और मुसीबतें आ रही हैं, उनसे भयभीत होने के बजाय हम इस हिंसा की तारीफ़ करते हैं। उसे मनुष्य-जीवन के लिए आवश्यक और उसकी उन्नति की सच्ची कसौटी मानते हैं। हम अपने हथियारों व फ़ौजों को बेहिसाब बढ़ाते चले जाते हैं और कहते हैं कि यह हम लड़ाई के लिये नहीं, बल्कि शान्ति क़ायम रखने के लिये कर रहे हैं। युद्ध की सफलता के लिये हम अपने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन से हर तरह की आज़ादी, न्याय व समानता को जड़ से उखाड़ कर फेंक रहे हैं। उसके बाद चिल्ला चिल्ला कर हम ऐलान करते हैं कि हम इन्हीं चीज़ों को क़ायम रखने और उनकी रक्षा करने के लिये युद्ध कर रहे हैं। हम इस युद्ध को दूसरों के ऊपर एक ज़बरदस्त अहसान समझते हैं और कहते हैं कि इसका हमारी अपनी ख़ुदगरज़ी तथा लालच से कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारा दावा यह है कि हमारे युद्ध मनुष्य जीवन के उच्च और अमूल्य सिद्धान्तों की रक्षा के लिये लड़े जा रहे हैं। वे एक तरह के 'धर्म युद्ध' हैं! उनमें मदद देना प्रचण्ड वीरता, असीम त्याग, महापुण्य और सम्माननीय काम है। ऐसे धर्म युद्ध में शामिल न होना अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना बताया जाता है। इस तरह की मनोवृत्ति को हर तरह दबाना जायज़ और आवश्यक समझा जाता है। इस दमन के लिये ज़ुल्म और सख्ती करना हमारे लिये ज़रूरी हो जाता है। इसके खिलाफ़ किसी का भी कुछ करना न्याय, सत्य, व्यावहारिकता और कर्तव्य पालन से मुंह मोड़ना माना जाता है।

नतीजा यह है कि हमारे मज़हब के टुकड़े टुकड़े हो चुके हैं, हमारा सदाचार नष्ट भ्रष्ट हो चुका है, दिमाग़ फिर गया है, अक़्ल पर परदा पड़ गया है और हमारी ऊंची भावनाएं मिट चुकी हैं। पाशविक शक्ति के सामने हमने सर झुका दिया है और भय से थर थर कांपते हुये हम युद्ध के भयानक देवता की पूजा कर रहे हैं। हमारी इस पूजा ने एक नाशकारी ताण्डव नृत्य का रूप धारण कर लिया है। अबोध मनुष्य हर क्षण इस नृत्य की प्रलयंकरी गति में अपने सम्पूर्ण नाश के अधिकाधिक निकट पहुंचता जा रहा है। उसने अब तक जो रचना की थी, उसमें से बहुत कुछ नष्ट हो चुका। उसकी सभ्यता और संस्कृति का जो अंश बाक़ी बच गया है, उसके भी जड़से नष्ट हो जाने की सम्भावना है। फिर भी यह पागलपन जारी है। इस पागलपन की दर्दनाक चीख़ गम्भीर होती जा रही है और उसका विस्तार बढ़ता जा रहा है। लेकिन अभी तक शायद यह पागलपन अपनी प्रचण्ड पराकाष्ठा को नहीं पहुँचा।

यह एक लाज़मी बात है कि इस तरह के संकट मनुष्य के दिल पर गहरा असर डालें और उसे सोचने पर मजबूर कर दें। ऐसे ऐसे मौक़ों पर ही मनुष्य समाज को उसकी विनाशक भूलों से बचाने के लिये बड़े बड़े आध्यात्मिक और धार्मिक आन्दोलन जन्म लेते रहे हैं। शुरू में ऐसे आन्दोलन तुच्छ और नगण्य दिखाई देते हैं, लेकिन, धीरे धीरे वे बढ़ते हैं, उनमें शक्ति का संचार होता है, उनमें बारूद या डाइनामाइट की सी ताक़त आ जाती है और उनको दबा सकना

असम्भव हो जाता है। इन आन्दोलनों का असली मक़सद फिर से ठीक नीवों पर समाज की रचना करना और मनुष्य का कल्याण करना होता है। यह आन्दोलन आखिरकार अपने इस मक़सद को एक बड़े पैमाने पर पूरा करके रहते हैं। मालूम होता है कि इस समय हम इतिहास के एक ऐसे ही दौर में से गुज़र रहे हैं और इसी तरह के एक संसार व्यापी आन्दोलन की भनक क्षितिज पर साफ़ दिखाई दे रही है।

पिछले दस साल में एक तरफ़ जहां हथियारों और फ़ौजों की भरमार होनी शुरू हुई, वहां दूसरी तरफ़ लोगों को यह भी साफ़ दिखाई दे गया कि हथियारों और फ़ौजों से न दुनिया की ख़ुशहाली बढ़ सकती है और न शान्ति ही क़ायम रखी जा सकती है। बेहिसाब नये नये हथियारों के बढ़ते जाने का भयंकर परिणाम लोगों की नजरों के सामने आ गया। हर विचारवान आदमी और हर मशहूर राजनीतिज्ञ ने इस खतरे को महसूस कर लिया। वह दुनिया को इससे बचाने की दुहाई देने लगा। इससे पहले के महायुद्ध ने यूरोप के छोटे और बड़े सभी देशों को इतना भयभीत कर दिया था कि इस बार के युद्ध के शुरू होने के पहले सबने इस भयानक आग को दोबारा भड़कने से रोकने के लिये अलग अलग और मिलकर पूरी शक्ति लगा दी। हर ज़िम्मेवार आदमी ने और हर संस्था ने शान्ति की रक्षा का काफ़ी ईमानदारी के साथ प्रयत्न किया। लगभग डेढ़ सौ अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंसें राजनैतिक और आर्थिक गुत्थियों को सुलझाने के लिये की गई। इन कान्फ्रेंसों में पूरब और पच्छिम के छोटे और बड़े सभी देश शामिल हुए। मुल्कों से हथियार छुड़वा देने या इन हथियारों की तादाद को बहुत कम कर देने के लिये बार बार कान्फ्रेंसें होती रहीं। पर साम्राज्य प्रेमी बड़े बड़े राष्ट्र जिनके पास साम्राज्य थे—या जिन्हें साम्राज्य की भूख थी, अपनी ख़ूंख़ार प्रवृत्ति को छोड़ने के लिये तय्यार न हुए। नतीजा यह हुआ कि वे लड़ाई की ग़रज़ से नहीं, बल्कि दूसरों से डरकर अपनी अपनी फ़ौजों और अपने अपने हथियारों की तादाद बढ़ाने में लग गये। इनकी तय्यारी का उद्देश्य इतना लड़ना नहीं था, जितना दूसरों को डर दिखाना और उनपर अपना रोब जमाना था। उनकी व्यावहारिक बुद्धि, जिसका उन्हें इतना अभिमान है, उन्हें इस मूर्खता से न बचा सकी। उन्होंने चीख चीख कर शान्ति की रक्षा के नाम पर और शान्ति की दुहाई दे देकर तमाम दुनिया की शान्ति के टुकड़े टुकड़े कर डाले।

लेकिन, इस नाज़ुक वक्त में भी तोपों की गरज और बम के गोलों की भयंकर आवाज़ के बीच से दुखित मानव आत्मा की पुकार हमें साफ़ सुनाई दे रही है। बड़े बड़े राजनीतिज्ञों से लेकर स्वेच्छाचारी डिक्टेटरों तक सब इस बात का ऐलान कर रहे हैं कि मनुष्य समाज को इस भयंकर संकट से बचाने का केवल एक ही उपाय है और वह यह कि फिर से सारे समाज की नींव आध्यात्मिकता तथा सदाचार पर क़ायम की जावे। अमरीका में और खुद नष्ट प्राय यूरोप में इस बात के बड़े बड़े आन्दोलन चल रहे हैं कि समाज में स्थायी शान्ति तभी क़ायम होगी, जब हथियारों और फ़ौजों के महकमे तोड़ दिये जायेंगे। एशिया के अन्दर हिन्दुस्तान में अहिंसा का हिंसा के साथ खुला और देशव्यापी संग्राम जारी है। आत्मबल और पाशविक बल के बीच इस नये और आश्चर्यजनक युद्ध ने इतनी शक्ति और प्रभाव पैदा कर लिया है कि आज सारे संसार की नजर उस पर पड़ रही है। हिन्दुस्तान की यह नई आवाज़, उसका यह नारा कि 'आज़ाद हिन्दुस्तान में न फ़ौज होगी, न हथियार होंगे' दुनिया के लिये स्थायी शान्ति का बहुत बड़ा पैग़ाम है। हिन्दुस्तान का यह अहिंसात्मक संग्राम युद्ध में लीन देशों के लिये नैतिक बल और आत्मबल की छिपी हुई शक्ति का प्रदर्शन है, ताकि दुनिया इसे अख्तियार

करके अपने को हिंसात्मक लड़ाई के नाशकारी परिणामों से बचा सके। भारत का यह महान आन्दोलन शान्ति के तट की ओर बढ़ती हुई मानव-समुद्र की लहरों पर एक रुपहले मुकुट की तरह चमक रहा है। पर इनसानी दुनिया अभी पूरी तरह यह नहीं समझ पाई कि इस आन्दोलन की ही सफलता में सारी मानव जाति की क़िस्मत का फैसला छिपा हुआ है। मनुष्य के सच्चे कल्याण के लिये इतिहास आज हिन्दुस्तान के बताये हुये इसी रास्ते की ओर संकेत कर रहा है। इस रास्ते के सिवाय संसार में शान्ति का कोई दूसरा मार्ग है ही नहीं। वेद की एक ऋचा है—

'नान्यः पन्था विद्यते अयनाय',—अर्थात् 'मुक्ति का सिवा इसके कोई दूसरा मार्ग नहीं है।' इतिहास की गवाही अगर कुछ भी महत्त्व रखती है, तो हमें इसमें कोई सन्देह नहीं कि ज्यों ही एक बार दुनिया के लोगों ने इस आन्दोलन के महत्त्व और उसकी छिपी हुई शक्ति को समझा त्योंही वह संसार में एक बारगी ही बिजली की तरह फैल जायगा और दुनिया को वह उस अमृत का पान करायेगा जिसके लिये वह अनन्त काल से प्यासी है।

[गंगाघाट, उन्नाव]

प्राण-पीयूष

[श्रीमती होमवती देवी]

चातक ! पल-पल पी-पी रट के !
उषा बीतकर सन्ध्या आई, निशि में हुआ सवेरा,
मिल न सका पर आहत पंछी ! बिछुड़ा प्रियतम तेरा !
सूखा कण्ठ, थका मन, दृगद्वय प्रणय-पन्थ में अटके,
चातक !···

उमड़ घुमड़ घन घिरत देख के तुम समझे वह आये;
स्वास, स्वास में स्वागत ! स्वागत !, स्वाति स्वाति कह धाये !
बिखर गये कँण पृथ्वी तल पर रीते अन्तर घट के;
चातक !···

ये घन और,······और वह प्रणयी ! इनमें कौन तुम्हारा ?
ये दाहक, वे भोले पंछी ! जीवन-प्राण सहारा !
उमड़ चले सरिता सागर, तुम बिन्दु मात्र को भटके !
चातक !···

मेरठ]

यशोधरा-स्वयंबर

पंडित मोहनलाल नेहरू

पहला दृश्य

[शुद्धोधन रत्नजड़ित मसनद पर बैठे हैं, पांचो आमात्य उनके सामने फ़र्श पर। राजा अपने आमात्यों से सलाह करते दिखाई दे रहे हैं। अलग आसनों पर ऋषि विश्वामित्र और महाप्रजापति बैठे हैं। ऋषि की सफ़ेद डाढ़ी है और महाप्रजापति अधेड़ स्त्री हैं]

राजा—मुझे सिद्धार्थ की ओर से बहुत चिन्ता है। ज्योतिषियों की बात जब याद आती है तो मेरा दिल भय से कांप उठता है। इनका कहना है कि 'यह लड़का या तो कोई चक्रवर्ती राजा होगा या महान धर्माचार्य।' सिद्धार्थ को राजकुमारों के योग्य हर तरह की शिक्षा दी गई किन्तु जब देखो वह कोने खुदरों में बैठा विचार-मग्न रहता है। क्या सोचता है मालूम नहीं होता।

महाप्रजापति—मुझसे भी वह कुछ नहीं कहता। पूछती हूँ तो मुसकरा देता है। उसकी यह दशा आज से थोड़े ही है। वह जब दूध पीता बालक था, मुंह से स्तन छोड़ कर कुछ विचार मग्न-सा हो जाता था। अब तो उसकी जवानी आ गई। मेरी तो सम्मति है उसके ध्यान भटकाने को कुछ वैसी ही युक्ति करनी चाहिये जो राजा लोमापाद ने श्रृंगी ऋषि के वास्ते की थी।

विश्वा मित्र—राजन्! यह सलाह बिलकुल ठीक है। वास्तव में राजकुमार पिछले जन्म का कोई महापुरुष है। मैं तो बचपन से ही उसे देख रहा हूँ। कहने को तो मैं उसका शिक्षक था किन्तु उसे सब बातों का ज्ञान था। किन्तु राजन्! महात्मा हो या अवतार सभी को 'मदन' ने परास्त किया है। श्री रामचन्द्र जी को देखो सीता जी के फेर में जंगल जंगल रोते ही तो फिरे। नारद मुनि भी मदन के प्रताप से बन्दर बन बैठे।

राजा—महामात्य! तुम्हारी क्या राय है? तुम्हारे साथ वह कई दफ़े मृगया के लिये जा चुका है। अश्व-विद्या में तुमने उसे कैसा पाया? धनुष का निशाना उसका कैसा लगता है? उस समय तो चैतन्य रहता होगा?

महामात्य—राजकुमार का निशाना तो ऐसा ठीक बैठता है कि हमारे पुराने रणजीत योधा तक चकित रह जाते हैं। दूर पड़ी कौड़ी को वे छेद देते हैं। किन्तु किसी मृग पर वे धनुष नहीं उठाते। कहते हैं 'मनुष्य विचार करता है मुझे जीने की इच्छा है, मरने की नहीं, सुख की इच्छा है, दुख की नहीं। यदि मैं मेरी ही तरह सुख की इच्छा रखने वाले प्राणी को मार डालूं तो क्या यह उसे रुचेगा? इस लिये मनुष्य को प्राणिघात

से तो विरत ही हो जाना चाहिए, और उसे दूसरों, को भी हिंसा से विरत कराने का प्रयत्न करना चाहिये।' किसी घायल पशु को देख पाते हैं तो उसकी मरहम पट्टी करने लगते हैं। कहते हैं 'माता जिस प्रकार अपने स्नेह-सर्वस्व पुत्र को अपना जीवन खर्च करके भी पालती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों के प्रति हमें असीम प्रेम रखना चाहिये। सर्व प्राणियों के प्रति हमें ऊपर, नीचे और चारों ओर असंबाध, अवैर और अजातशत्रु मैत्री की असीम भावना बढ़ानी चाहिये।'

दूसरा मंत्री—महाराज! राजकुमार पुरुष रत्न हैं। किसी का दुख दर्द देखकर उनका जी उमड़ पड़ता है।

महाप्रजापति—मैं तो कहूँगी उसका विवाह कर दिया जावे। मैं चाहती हूँ कि कोई सुन्दर राजकुमारी उससे प्रेम सूत्र में बांध दी जावे। नहीं तो इन्द्र की महफ़िल भी उसे न रिझा सकेगी। वह घण्टों सरोवर के तटपर ध्यान मग्न बैठा रहता है। केवल कोई प्रेमिका ही उसकी विचार धारा को बदल सकती है।

वि०—राजन् यही प्रस्ताव उचित है। मैं इसका समर्थन करता हूँ।

राजा—किन्तु पूज्यवर! शाक्य जाति में पत्नी बड़ी तपस्या से मिलती है। धनुष-विद्या, अश्व-विद्या और शस्त्र-विद्या में बाजी लेने पर ही वरमाला गले पड़ती है। कुमार तो केवल विचार-विद्या के ही धनी हैं। फिर वे क्या देवदत्त, नन्द और अर्जुन जैसे शाक्य वीरों से प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं? फिर कुमार क्या स्वयंबर में शामिल होने को तय्यार होंगे?

तीसरा मन्त्री—महाराज! हाल में नगर की कुमारियों की सुन्दरता प्रतियोगिता हुई थी। इनाम बांटने का काम राजकुमार ही के सुपुर्द हुआ था। एक से एक सुन्दर कन्यायें पारितोषिक लेने आगे बढ़ती थीं और राजकुमार मौन भाव से नीची निगाह किये इनाम बांटते थे। सब से अन्त में एक महासुन्दरी युवती यशोधरा आई। केवल उसे ही राजकुमार ने आंख उठाकर देखा और उसे अपने गले का रत्न जड़ित हार उतार कर इनाम में दिया। मेरा अनुमान है राजकुमार को उससे अनुराग है। यशोधरा का स्वयंवर भी हो रहा है। ये लो कुमार स्वयं आ रहे हैं।

[राजकुमार सिद्धार्थ का प्रवेश। मंत्री खड़े होकर कुमार की अभ्यर्थना करते हैं, फिर बैठ जाते हैं।]

राजा
विश्वामित्र —आओ वत्स, तुम्हारी बड़ी आयु
महाप्रजापति हो।

महाप्रजापति—तेरी ही बात होरही थी बेटा। सुना है यशोधरा का स्वयंबर हो रहा है। हमारी इच्छा थी कि यशोधरा हमारी बहू बनती। मुझे तो सौन्दर्यवान् बहू चाहिये।

सिद्धार्थ—तुम्हारी चाहना तो उचित ही है मां। पर क्या इस सौन्दर्य ही में विकार नहीं है। वही सुन्दरी तरुणी जब वृद्धा हो जाती है, जब उसकी कमर झुक जाती है, बिना हाथ में लकड़ी लिये जब वह चल नहीं सकती, उसके सब अंग शिथिल पड़ जाते हैं, दांत गिर जाते हैं, बाल सन से सफ़ेद होजाते हैं, गर्दन हिलने लगती है, चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं, तब उसका पहले का सरस सौन्दर्य और ललित लावण्य विनष्ट हो जाता है। यह है सौन्दर्य का दोष।

राजा—बेटा मैं बूढ़ा हो रहा हूँ। पुत्रवधू की सूरत देखना चाहता हूँ। तुम्हारी ये मां भी बूढ़ी हैं। हमारे सामने तुम्हारा विवाह हो जाता, तो बहुत अच्छा था। यशोधरा जैसी रूपवती कुमारी भी बार बार नहीं मिलती। क्या इस स्वयंबर में तुम शामिल हो सकोगे?

सिद्धार्थ—माता पिता को सुखी कर सका तो अपने को धन्य समझूंगा। जो आपकी आज्ञा!

राजा—मगर बेटा ! देवदत्त, नन्द और अर्जुन धनुष-विद्या, अश्व-विद्या और खड्ग चलाने में प्रवीण हैं। तुम तो अब तक विचार-धारा में ही मग्न रहे हो। कुछ दिनों इन बातों का अभ्यास तो करलो।

सिद्धार्थ—आप निश्चिन्त रहें पिताजी। मैं यशोधरा के पिता को शिव धनुष मंगाने का सन्देश दे रहा हूँ। मेरा घोड़ा कण्टक अद्वितीय है। मेरी तलवार भी मेरी सच्ची साथी साबित होगी।

[राजकुमार का प्रस्थान]

विश्वामित्र—राजन् ! आप चिन्ता न करें। राजकुमार ने जो कहा है वह अक्षरशः सत्य उतरेगा।

[नेपथ्य में शोर गुल होता है]

राजा—देखो बाहर किस बात का झगड़ा है ?

[सिद्धार्थ, देवदत्त और अनेक भद्र पुरुष, साधू इत्यादि आते हैं। सिद्धार्थ के हाथ में एक जख्मी हंस है जिस पर वे प्यार से हाथ फेरते हैं]

देवदत्त—महाराज यह तो बड़ा अनर्थ है। हंस को मैंने बाण मार कर गिराया। शिकार मेरा है। सिद्धार्थ ने उठा लिया। ऐसा अनर्थ तो पहले कभी सुनने में नहीं आया।

सिद्धार्थ—हिंसा के अधिकार से प्रेम का अधिकार अधिक व्यापक है। जिस मनुष्य के मन से लोभ, द्वेष और मोह ये तीन मनोवृत्तियां नष्ट हो गई हैं, वही चारों दिशाओं में प्राणि-मात्र के प्रति मैत्री भाव प्रसारित कर सकता है। अपने मैत्रीमय चित्त से चारों दिशाओं में बसने वाले समस्त प्राणियों पर वह प्रेम की रस वर्षा करता है। मैंने तो अपना कर्तव्य करने की ही चेष्टा की है।

साधुगण—राजकुमार उचित कह रहे हैं। निस्सन्देह मारने वाले से अधिक बचाने वाले का अधिकार होता है।

[देवदत्त बड़बड़ाता जाता है]—राजा का लड़का है न ? साधु भी तो राजा से डरते हैं। यशोधरा के स्वयंवर में इसका बदला न लिया, तो मेरा नाम देवदत्त नहीं। अभिमान तो देखो शिव धनुष मंगा भेजने को कहा है—जैसे भीमसेन ही तो हैं। हिला भी न सकेंगे।

दूसरा दृश्य

[स्वयंबर का स्थान। बीच में मंच है, इधर उधर आसन पड़े हैं। यशोधरा कुछ सखियों के साथ आती है। हाथ में जयमाल है। एक सखी आरती का थाल लिये हुए है।]

एक सखी—राजकुमारी ! ऐसा वर चुनना जो सुन्दरता, वीरता, धन, ऐश्वर्य और प्रेम करने में अद्वितीय हो। सुना है राज कुमार भी स्वयंबर में आवेंगे।

दूसरी सखी—दुर पगली ! क्या तू जानती नहीं यशोधरा राजकुमार पर जान देती हैं।

पहली सखी—जानती तो हूँ सखी। पर राजकुमार का क्या ठीक। उन्हें तो मानस-गन्ध आती है। [सब हंसती हैं]

दूसरी सखी—चुप भी रहो। देखो लोग आ रहे हैं।

[यशोधरा पल्ला ठीक करके मंच पर सखियों सहित बैठ जाती है। विश्वामित्र, यशोधरा के माता-पिता और चार-पांच गुरुजन मंच पर आकर बैठते हैं। सिद्धार्थ, देवदत्त, अर्जुन और नन्द आदि अपनी जगह आकर बैठते हैं]

यशोधरा [धीरे से एक सखी से]—मेरा जी घबरा रहा है बहिन, मैंने तो मन ही मन सिद्धार्थ को ही अपना पति वरण कर लिया है।

सखी—सिद्धार्थ अवश्य जीतेंगे। देखो न कितने इतमीनान से बैठे हैं।

यशोधरा—पिता जी भी उन्हीं को चाहते हैं परन्तु समाज के नियमों को तोड़ने की शक्ति नहीं रखते। मुझे तो देवदत्त से डर लगता है। मेरा कलेजा धड़क रहा है। भगवान् पशुपति सहायक हों।

यशोधरा के पिता—युवको! मेरी रूपवती कन्या उसी को वरेगी जो धनुष, खड्ग और अश्व-विद्या की प्रतियोगिता में श्रेष्ठ आए।

[देवदत्त, अर्जुन, नन्द और सिद्धार्थ खड़े होते हैं। सब धनुष-बाण और खड्ग से सुसज्जित हैं]

पुरोहित—तीन सौ गज़ का निशाना है। क्या तुम में से कोई अधिक दूरी पर चाहेगा?

देवदत्त—कृपया उसे छै सौ गज़ दूर कर दें। [निशाना ठीक जगह पर बैठता है। वाह वाह की ध्वनि होती है]

अर्जुन—मेरे लिये निशाना सात सौ गज़ पर कर दीजिये। [वह भी ठीक निशाना लगाता है और वाह वाही पाता है]

नंद—कृपया आठ सौ गज़ पर निशाना कर दीजिये। [निशाना अचूक बैठता है। यशोधरा हतप्रभ होजाती है]

सिद्धार्थ—कृपया निशाने को एक हजार गज़ कर दीजिये। [निशाना ठीक बैठता है यशोधरा हर्ष से पुलकित हो जाती है]

सिद्धार्थ—पुरोहितजी, अब शिव धनुष से परीक्षा लीजिये [देवदत्त, अर्जुन और नंद धनुष उठाने की चेष्टा करते हैं, मगर वह नहीं हिलता। सिद्धार्थ सहज ही में बाण चढ़ा देते हैं। प्रतियोगी मायूस हो जाते हैं। इसके बाद खड्ग और अश्व प्रतियोगिता में भी सिद्धार्थ विजयी होते हैं। कोलाहल होता है। सिद्धार्थ की जयजयकार होती है]

पुरोहित—बेटी यशोधरा! अब तुम उठो और राजकुमार के गले में वरमाल डालो।

यशोधरा लजाती हुई आकर राजकुमार को वरमाल पहनाती है, फिर आरती करती है]

विश्वामित्र—हमारी चाहना पूरी हुई। विश्राम भवन में अब राजकुमार मदन के बन्दी होकर रहेंगे।

[सब जाते हैं]

अब

श्री पद्मकान्त मालवीय

विरह मिलन अब दोनों मेरे लिये अर्थ से हीन;
दुनिया क्या समझे पहुचा हूँ कहा स्वयं में लीन।
कोई कभी छेड़ देता है जब मस्ती में गान;
साथ साथ कारा की दीवारें भी भरतीं तान।
दुखिया कोई जब कहता निज विपत कहानी आप;
मुझको लगता मेरी ही है, मैं सुनता चुप चाप।
देख फूल मुरझाये मुझको आती अपनी याद;
भरी जवानी में ही ये भी किये गये बरबाद!
घूर घूर कर क्या देखे है दुनिया मुझको आज;
प्रेम जगत् में दीवानों का ही होता है राज।
दीपक हूँ वह मुझे जला कर स्वयं बुझादें आप;
देकर ही आशीर्वाद वह देवें मुझको श्राप!

नैनी सेण्ट्रल जेल]

इस देश पर मुसलमानों के हमले

[डाक्टर सैयद महमूद एम० ए०, पीएच० डी, बार० एट ला०; भू० शिक्षामन्त्री]

[हिन्दुस्तान पर मुसलमानों के हमलों का क्या रूप था। उनका भारत पर क्या असर पड़ा। हिन्दू मुसलिम-समस्या कैसे खड़ी हुई। मुसलिम लीग की पाकिस्तान की योजना का वास्तविक रूप क्या है आदि विषयों पर डाक्टर महमूद साहब विश्ववाणी के पाठकों के लिये एक लेख-माला लिख रहे हैं। प्रस्तुत लेख उस लेख-माला का पहला लेख है।]

इस मुल्क के हिन्दू और मुसलमानों के दिलों में इस समय एक दूसरे की तरफ़ से गहरा अविश्वास फैला हुआ है। यह अविश्वास पढ़े लिखे लोगों और मुल्क की राजनीति में हिस्सा लेनेवालों में और भी ज़्यादह दिखाई देता है। यूं तो राजनैतिक लोग अपने छोटे छोटे स्वार्थों के लिए म्युनिसिपैलटी और असेम्बली की मेम्बरियों, नौकरियों, वज़ारतों और दूसरी इसी तरह की चीज़ों के लिए तीन तीन तरफ़ से इस अविश्वास को बढ़ाते और भड़काते रहते हैं, लेकिन इस अविश्वास की असली जड़ें ज़रा ज़्यादह गहरी हैं। हमारी असली बीमारी इतनी बाहरी राजनीति की नहीं जितनी हमारे दिलों और दिमाग़ों की है। हम तरह तरह की ग़लतफ़हमियों के शिकार हैं और जान बूझ कर शिकार बनाए गए हैं। आज हम इन ग़लतफ़हमियों में से केवल एक की तरफ पाठकों का ध्यान दिलाना चाहते हैं।

यह ग़लतफ़हमी हमारे इतिहास की अनेक ग़लतफ़हमियों में से एक है। कई पीढ़ियों से हिन्दुस्तान के इतिहास की जो पुस्तकें हमारे स्कूलों और कालिजों में पढ़ाई जाती हैं, उनकी सामग्री यूरोप के लेखकों की जमा की हुई है और कुछ पुस्तकों के हिन्दुस्तानी लेखक भी अभी तक अपने यूरोपियन उस्तादों के पैदा किये हुए पक्षपात से ऊपर नहीं उठ पाए। इन पुस्तकों में हिन्दू मुसलमानों के फ़रक़ पर ज़ोर दिया जाता है, प्रेम और मेल की घटनाएं दबा दी जाती हैं, आपस के झगड़ों, लड़ाइयों विजयों, लूट और धर्मान्धता के बयानों में गहरे रंग भर दिये जाते हैं, और मुसलमानों को हिन्दू संस्कृति, हिन्दू मर्यादा, हिन्दू मंदिरों और हिन्दू मूर्तियों के नाश करनेवाला बताया जाता है, जिन्होंने हिन्दुओं के सामने दो ही बातें रखीं—या तो इसलाम स्वीकार करो और या तलवार हाथ में लो। इन 'इतिहासों' ने हमारी क़ौमी ज़िन्दगी के स्फटिक जैसे चश्मों को गंदला बना दिया है। जिन बच्चों के कोमल कानों और नाज़ुक दिमाग़ों में शुरू से इस तरह का ज़हरीला मवाद भर दिया जाता है, वे बड़े होकर एक दूसरे पर अविश्वास और एक दूसरे से नफ़रत करने लगते हैं। इन पुस्तकों का असर हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों पर बुरा पड़ता है। हिन्दुओं में ये मुसलमानों की तरफ़ से नफ़रत और ग़ुस्सा पैदा कर देती हैं, और मुसलमानों में एक झूठा और गन्दा अभिमान और इसलाम से पहले के इस मुल्क के हज़ारों बरस के शानदार इतिहास की तरफ़ से, जो—इस देश के

हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की एक समान बपौती और दोनों के लिए एक समान गौरव की चीज़ है— उपेक्षा और उदासीनता पैदा कर देती हैं। एक मशहूर अंगरेज़ इतिहास लेखक सर एच० एम० ईलियट के नीचे लिखे वाक्य से इन इतिहासों के लिखे जाने की ग़रज़ और उनके नतीजे दोनों पर काफ़ी रोशनी पड़ती है। वह लिखते हैं—

"इतिहास की इन किताबों से हमारी देसी रिआया की समझ में यह और ज्यादह अच्छी तरह आ जायगा कि हमारे नरम और न्याय पूर्ण राज में उन्हें कितने ज़बरदस्त फ़ायदे पहुँचे हैं। अगर इन किताबों के ज़रिये शिक्षा दी गई, तो मुसलमानों के समय के हिन्दुस्तान की बढ़ बढ़ कर बातें हमारे सामने कोई न कर सकेगा।......वे सब पहले के लोग, जो अभी तक केवल अपने महान और शानदार कारनामों और अपनी विजय पर विजय के लिए मशहूर हैं, जब हम उनके ऊपर से खुशामद का परदा हटा लेंगे और लपफ़ाज़ी बन्द कर देंगे, तो ज़्यादह सच्ची रोशनी में दुनिया के सामने आजायेंगे और मुमकिन है कि सारा मनुष्य समाज उन्हें धिकारने लगे। फिर वे बड़ी बड़ी बातें करनेवाले 'बाबू लोग', जिन्हें हमारे राज में ज़्यादह से ज्यादह व्यक्तिगत आज़ादी मिली हुई है और जितने राजनैतिक अधिकार आज तक किसी भी पराजित क़ौम को नहीं मिले, उनसे कहीं ज़्यादह अधिकार मिले हुए हैं, देशभक्ति की बकवास करते हुए और अपनी इस समय की हालत की गिरावटों का ज़िक्र करते हुए हमें सुनाई न देंगे।"*

हम इस समय सिर्फ़ हिन्दुस्तान पर मुसलमानों के हमलों का कुछ ज़िक्र करना चाहते हैं। आम तौर पर किसी भी देश के लोगों को दूसरे देश पर हमला करने का कोई हक नहीं है। फिर भी बाहर से हमलों का होना बाढ़ों, भूचालों आदि की तरह एक ऐसी आफ़त है, जिसके लिए कोई समय या नियम नहीं बताया जा सकता, और जिसका किसी न किसी समय हर देश के लोगों को सामना करना ही पड़ा है। साथ ही अगर हम इस देश पर मुसलमानों के हमलों का मुकाबला, उसी समय के या उसके बाद के दूसरे देशों पर और ख़ास कर यूरोप के देशों पर, वहीं के लोगों के हमलों के साथ करें और देखें कि वे हमले किस तरह हुए और उनके क्या नतीजे हुए, तो इस मामले पर काफ़ी रोशनी पड़ सकती है।

भारत पर मुसलमानों का सब से पहला हमला आठवीं सदी ईस्वी में सिन्ध पर अरबों का हमला था। करीब करीब उसी ज़माने में यूरोप के अन्दर फ्रैंक कौम के मशहूर विजेता चार्ल्स दि ग्रेट ने मध्य यूरोप और उत्तर इटली की सैक्सन, आवार, लोम्बार्ड और दूसरी कौमों को जीत कर, उनके देशों पर अपना साम्राज्य क़ायम किया। डाक्टर सीलिजर (Seeligar), जिसने ख़ास तौर पर चार्ल्स दि ग्रेट के समय का इतिहास लिखा है; लिखता है—

"साम्राज्य क़ायम करने की इच्छा और धर्म फैलाने की इच्छा दोनों चार्ल्स में साथ साथ चलती थीं। लड़ाई की जीत को वह साथ ही ईसाई धर्म की जीत मानता था। सैक्सन क़ौम के साथ उसकी लड़ाइयों में उसको अपना धर्म फैलाने की नियत और भी ज़ोरों पर थी।·········उसने आज्ञा दे दी कि जो आदमी किसी गिरजे में ज़बरदस्ती घुस जावे या गिरजे को लूटे या आग लगावे, उसे मार डाला जावे। अगर कोई आदमी ईसाई त्योहार 'लेण्ट' के दिनों में मांस खाकर ईसाई धर्म का अपमान करे, या पुराने धर्म के अनुसार अपने मुर्दे को जलावे,···या अगर कोई आदमी बपतिस्मा न ले और अपने पुराने धर्म में रहने पर ज़िद करे, तो उसे भी मार डाला जावे।"*

*(History of India as told by its own Historians"—by Sir H. M. Elliot, General Preface, Vol I.)

*(Cambridge Medieval History, Vol II, chap XIX.)

जब सैक्सन लोगों ने इन अन्यायी और निर्दय आज्ञाओं के ख़िलाफ़ विद्रोह किया, तो चार्ल्स ने जी भर कर बदला लिया। केवल वर्दन (Verden) शहर में एक दिन के अन्दर उसने साढ़े चार हज़ार सैक्सन लोगों की गर्दनें काटीं। एक तिहाई सैक्सन आबादी को ज़बरदस्ती देश से निकाल कर उनकी जगह फ्रैंक लोगों को बसा दिया गया। उत्तर सैक्सनी और नौरदल बिंगेन के पूरे ज़िले ख़ाली कर दिये गये। यानी वहां के सैक्सन लोगों को मय औरतों और बच्चों के निकाल कर बाहर कर दिया गया।"

दूसरी मिसाल सन् १०६६ ई० में नौरमन बादशाह विलियम पहले का इंगलिस्तान पर हमला था। विलियम के हमले के तरीक़ों को बयान करते हुये इतिहास लेखक जौन लिङ्गार्ड लिखता है—

"वह अपने आदमियों को लेकर यौर्क से आगे बढ़ा। उसने उनकी बहुत-सी छोटी छोटी टोलियां बना कर उन्हें सारे मुल्क में फैला दिया और हुकुम दे दिया कि जहां पाओ न किसी आदमी को छोड़ना और न किसी जानवर को। उनके घरों को, नाज को, खेती के औज़ारों को और उन सब चीज़ों को नष्टकर देना, जो मनुष्य की ज़िन्दगी को कायम रखने के लिए उपयोगी या आवश्यक हों।...कहा जाता है कि जो मर्द, औरत और बच्चे इस ज़ालिमाना हुकुम के अनुसार मार डाले गए, उनकी तादाद एक लाख से ऊपर थी। नौ साल तक यार्क और उरहम के बीच में कहीं पर एक चप्पा ज़मीन भी जोती या बोई हुई दिखाई न दे सकती थी।"*

लिङ्गार्ड लिखता है कि—"विलियम दि काङ्करर ने अपनी हकूमत का सब से बड़ा मक़सद यही बना रखा था कि देश के असली बाशिन्दों को दबा कर विदेशियों को बढ़ाया जावे। चन्द सालों के अन्दर ही गिरजे के अन्दर या राज भर के अन्दर इज़्ज़त की हर नौकरी और अधिकार की हर एक जगह और देश की क़रीब क़रीब सारी ज़मीन नारमन लोगो के हाथों में चली गई।...देश के लोगों के लिए सिर्फ़ ज़ुल्म और ज़िल्लत सहना रह गया। जगह जगह के ये छोटे छोटे ज़ालिम कर्मचारी जब चाहे और जहां चाहे बिना किसी रोक के देश वासियों का नाज और उनके जानवर लूट लाते थे, उनकी औरतों को बेइज़्ज़त करते थे और उन्हें जहां चाहे पकड़ कर ले जाते थे।"

एक दूसरा इतिहास लेखक लिखता है कि "उन दिनों की नरम से नरम लड़ाइयों में भी पराजित लोगों का कोई किसी तरह का ख़याल या लिहाज़ न किया जाता था।"*

१७ वीं सदी ईस्वी के पहिले आधे हिस्से में जर्मनीमें वह युद्ध हुआ, जिसे "थर्टी ईयर्स वार" (यानी तीस साल की लड़ाई) कहा जाता है। शुरू में यह लड़ाई प्रौटेस्टैण्ट और रोमन कैथालिक लोगों के बीच मज़हबी लड़ाई थी। धीरे धीरे यह केवल राज के लिए लड़ाई रह गई और यूरोप की बहुत सी ताक़तें इसमें खिंच आई। डाक्टर ए० डब्ल्यू० वार्ड इस लड़ाई के बारे में लिखता है—

"फ़ौजों के बढ़ने, पीछे हटने, घेरा डालने, मदद पहुँचाने, हमला करने, इलाक़ों को ख़ाली कर देने, फिर क़ब्ज़ा कर लेने वग़ैरह की जिन कार्रवाइयों का हमने ज़िक्र किया है, उनसे कहीं ज़्यादह को हमने छोड़ दिया है। इन सब में जिस किसी इलाक़े से होकर कोई फ़ौज जाती थी, या जहां कोई फ़ौज ठहरती थी, वह इलाक़ा चाहे अपने पक्ष वालों का हो और चाहे दुश्मन का, बिना भेद भाव, सारे इला[illegible] भर को पूरी तरह बरबाद कर दिया जाता था।.....जब तक लड़ाई जारी रही, ज़िले के ज़िले बिल्कुल वीरान पड़े हुए थे।" कुछ देशों का जो हाल हुआ वह यह था—बोहेमिया के ३५,००० गांवों में से मुश्किल से ६००० बाक़ी रह गए। यही हाल मोराविया का हुआ। बवेरिया को भयंकर कष्ट

*(J. Lingard : History of England, Vol II. p. 25.)

*(Adams, Political History of England Vol II. p. 36)

झेलने पड़े। "दुष्काल और निर्जनता चारों तरफ़ बेरोक सफ़ाया करती चली जा रही थीं।" लड़ाई, दुष्काल और महामारी ने मिल कर फ्रांकोनिया और स्वाबिया को उजाड़ कर दिया। लोअर पैलेटिनेट बिल्कुल वीरान जंगल मालूम होता था। जर्मनी के दूसरे हिस्सों की भी क़रीब क़रीब ऐसी ही बुरी हालत हो गई थी। यह अन्दाज़ा लगाया गया है कि थर्टी-ईयर्स वार के कारण जर्मनी की आबादी एक करोड़ साठ लाख और कुछ हज़ार से घटते घटते साठ लाख से भी कम रह गई। कुछ हिस्सों में आबादी का छठवां हिस्सा और लोअर पैलेटाइन में सिर्फ़ दसवां हिस्सा बाक़ी रह गया। खेती, तिजारत, दस्तकारी सब बेहद घट गईं। एक भयंकर नैतिक महामारी सारे देश में फैल गई। लोगों ने अपने को बेलगाम छोड़ दिया। उनकी विषय वासनाओं और उनकी तृप्ति पर कोई किसी तरह की रोक थाम न रह गई। "औरतों की वह हालत हो गई, जो किसी भी ख़ानाबदोश गिरोह या चलते फिरते कम्पू के साथ साथ चलने वाली ग़ुलाम लौण्डियों की होती है।"

यह वह हाल है, जो एक ही क़ौम के लोगों ने आपसी लड़ाई के दिनों में एक दूसरे का कर डाला। ऊपर की आख़री दोनों मिसालों में दोनों दलों के लोग एक ही ईसाई धर्म के माननेवाले भी थे। ये केवल कुछ मोटी मोटी मिसालें हैं।

जो हमले यूरोप की गोरी क़ौमों ने दुनिया की काली, लाल और पीली क़ौमों पर किये, उनकी तो बात करना ही व्यर्थ है। मसलन् स्पेन वालों ने कोर्टे (Cortes) और पिज़ारो जैसे मानव रूपी राक्षसों और दरिन्दों के नेतृत्व में मैक्सिको और पेरु के सुसभ्य, नेक, भोले और निःशंक निवासियों को दग़ा दे दे कर लूटा, उन्हें तरह तरह की यातनाएं पहुंचाईं, पूरी क़ौमों का क़त्लआम किया और लाखों को आग में जला कर इस तरह राख कर दिया कि उनकी हड्डियां भी बाक़ी न रहीं। इन हत्यारों के हाथों में इंजीलें रहती थीं, उनकी आत्मा की तसल्ली के लिए उनके पादरी उनके साथ साथ रहते थे, और वे उन मुल्कों के कमज़ोर और असहाय बाशिन्दों पर वे सब भयंकर से भयंकर अत्याचार करते जाते थे, जो उनके पापी दिमाग़ों को सूझ सकते थे। ग़ैर ईसाई क़ौमों के ख़िलाफ़ ईसाई धर्म के झण्डा बरदारों के ये काले पाप, जिन्हें पढ़ कर दिल घबरा उठता है, इतिहास लेखक प्रेसकौट की दर्दनाक किताबों में लिखे हैं।

यही हाल अफ़रीका और आस्ट्रेलेया की पुरानी क़ौमों के साथ किया गया। क़ौमों की क़ौमें दुनिया से मिट गईं। आज ईसाई पादरी और यूरोप के साम्राज्य प्रेमी ख़ुद रो रो कर कह रहे हैं कि इन काले लोगों में गोरे यूरोप वालों के जाने का नतीजा बुरा हुआ। वे अब मानते हैं कि इन अत्याचारों ही की वजह से आज अफ़रीका की रही सही क़ौमों में इस्लाम तेज़ी के साथ फैलता जा रहा है और ईसाई प्रचारकों की वहां कोई नहीं सुनता।

ये तरीक़े थे जो पच्छमी क़ौमों ने अपने साम्राज्यों को बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किये। इन के मुक़ाबले में अगर हम उन तरीक़ों पर ग़ौर करें, जो मुसलमानों ने इस्तेमाल किये, तो फ़रक़ साफ़ चमकने लगता है। मुसलमानों ने पांच सौ बरस स्पेन पर हकूमत की। जब उन्होंने आगे बढ़ कर फ्रान्स पर हमला किया, तो जर्मन सेनापति चार्ल्स दि हैमर ने उन्हें हरा कर फ्रान्स से निकाल दिया। इस लड़ाई के बारे में "आर्डियल्स आफ़ सिविलीज़ेशन" का रचयिता जे० एच० राबिन्सन लिखता है—

"इतिहास लेखक आमतौर पर इसे एक बड़ी ख़ुशक़िस्मती की बात समझते हैं कि टूर्स की लड़ाई में चार्ल्स दि हैमर और उसके जंगली सिपाहियों ने कामयाबी के साथ मुसलमानों को हरा कर पीछे हटा दिया। किन्तु यदि दक्खिन फ्रान्स में मुसलमानों को रहने का मौक़ा मिल जाता, तो बहुत मुमकिन है कि फ्रैंक (जर्मन) लोगों के मुक़ाबले में वे कहीं ज़्यादह तेज़ी के साथ साइन्स और कारीगरी को तरक़्क़ी दे सकते। फ्रैंक लोगों ने जो कुछ किया वह हमें मालूम है। स्पेन में अब मुसलमानों को 'मूर' कहते थे। यह कह सकना बहुत मुशकिल है कि गाल (फ्रान्स) के एक

हिस्से पर मूर लोगों का राज क़ायम न हो सकना अच्छी बात हुई या बुरी बात हुई ।"

मुसलमानों की स्पेन विजय की बाबत इतिहास लेखक अलीसन फ़िलिप्स लिखता है—

"देश की आम जनता को उस समय अरबों की विजय से केवल फ़ायदा ही फ़ायदा हुआ। यहूदी लोग ईसाइयों के पाशविक अत्याचारों से बच गए। वे बड़े शौक़ के साथ अरबों के दोस्त और साथी बन गए। अरबों से पहले विसिगाथ लोगों ने रोम वालों की ज़मीन की पद्धति को और उनके ज़माने के टैक्सों को क़ायम रखा था। अरबों ने आकर उस सब को बिल्कुल हटा दिया। उन्होंने उसकी जगह आदमी पीछे एक 'जज़िया' लगा दिया और ज़मीन का एक लगान मुक़र्रिर कर दिया। यह 'जज़िया' बूढ़े लोगों, औरतों, बच्चों, अपाहजों और बहुत ग़रीब लोगों से बिल्कुल न लिया जाता था। इससे किसानों और गांव के ग़रीब दलित लोगों को बेहद फ़ायदा हुआ। वे किसान, जो पहले दूसरों की गुलामी में बंधे हुए थे, अब बिल्कुल आज़ाद हो गए।"

स्पेन को मुसलमानों ने अपनी हकूमत के दिनों में ख़ुशहाल और दौलतमन्द, आन और बहादुरी का घर और साइन्स, फ़लसफ़े और तरह तरह की नफ़ीस कारीगरियों के फूलने और फलने की जगह बना रखा था। पांच सौ बरस बाद ईसाइयों ने फिर से स्पेन को जीत लिया। उनके तआस्सुब और तंग ख़यालियों की वजह से वहां धर्म के नाम पर यातनाओं और अत्याचारों का दौर शुरू हो गया। उस नाशकारी शिकंजे में लोगों की आज़ादी का ख़ात्मा हो गया, दस्तकारियों का गला घुट गया और मनुष्य के जीवन के सब सोते सूख गए। ईसाइयों ने स्पेन को फिर से जीत कर जो तबाही वहां फैला दी, उसके बुरे नतीजों से स्पेन आज तक भी पनप नहीं पाया।

अब हम हिन्दुस्तान पर मुसलमानों के हमलों की तरफ़ आते हैं।

हिन्दुस्तान पर मुसलमानों के हमले तीन दफ़े में हुए। (१) सब से पहला हमला ७१२ ई० में मोहम्मद बिन क़ासिम के मातहत अरबों का हमला था। (२) इसके बाद दसवीं सदी के आख़ीर और ग्यारहवीं के शुरू में सुबुक्तगीन और महमूद ग़ज़नवी के हमले हुए। ये दोनों एक तुर्क ख़ानदान के थे। (३) तीसरे और आख़री हमले, जिनसे फिर इस मुल्क में मुसलिम हकूमत क़ायम हो गई, दो सौ बरस बाद मोहम्मद ग़ोरी के हमले थे।

मोहम्मद बिन क़ासिम के हमले की बाबत दो बातें ध्यान में रखना ज़रूरी है। (१) यह कि अरबों की सफलता का ख़ास कारण देशी राजाओं के अत्याचार थे। (२) यह कि लड़ाई के अन्दर जो कुछ मारे गए या जो कुछ लूट हुई, उसके बाद ज्योंही अरबों ने एक बार विजय प्राप्त करके सुलह करली, उसी समय से उन्होंने हकूमत के काम में एक बहुत ही समझदारी और उदार नीति पर अमल करना शुरू कर दिया। अरबों की यह नीति यूरोप वालों के उन कारनामों के मुक़ाबले में, जिनका ऊपर ज़िक्र किया गया है, एक साफ़ दूसरी तरह की चीज़ चमकती हुई दिखाई देती है। मोहम्मद बिन क़ासिम ने जो हुकुम जारी किये उनमें से कुछ ये हैं—

"जिन लोगों का सब माल लूट लिया गया था, उनके बारे में मोहम्मद बिन क़ासिम ने हुकुम दिया कि उनमें से हरेक को बारह बारह दिरहम वज़न की चांदी दी जावे। उसने हर गांव के लोगों में से और शहरों के ख़ास ख़ास आदमियों में से कुछ को इस काम के लिए मुक़र्रिर कर दिया कि जो टैक्स पहले से मुक़र्रिर थे, वही वे लोग गांवों से और शहरों से जमा करें, ताकि रिआया में बल आजावे और लोगों को यक़ीन हो जावे कि उनकी जान माल की हिफ़ाज़त की जावेगी।"

मोहम्मद बिन क़ासिम ने ब्राह्मणों के रुतबे को क़ायम रखा और हुकुम जारी कर दिये कि ब्राह्मणों का प्रभुत्व और उनका आदर उसी तरह बना रहे, कोई उनका विरोध न करे और न उन पर किसी तरह की ज़्यादती करे। उनमें से हरेक को एक एक सरकारी ओहदा सौंपा गया।"

इराक के गवरनर हज्जाज ने, जो मोहम्मद बिन कासिम का अफ़सर और चचा था, अपने भतीजे के नाम यह हुकुम लिख कर भेजा—"चूंकि वहां के लोगों (हिन्दुओं) ने हार मान ली है और ख़लीफ़ा को टैक्स देना मंजूर कर लिया है, इसलिये अब उनसे इन्साफ़ की रू से और कुछ नहीं कहा जा सकता। हमने उन्हें अपनी हिफ़ाज़त में ले लिया है। उनकी जानों या उनके माल पर अब हम किसी तरह हाथ नहीं डाल सकते। उन्हें अपने देवी देवताओं को पूजने की इजाज़त है। किसी आदमी को भी अपने धर्म के अनुसार चलने में न मना करना चाहिये और न उसमें किसी तरह की रुकावट डालनी चाहिये। अपने घरों में वे जिस तरह भी चाहें रह सकते हैं।"*

"मोहम्मद बिन कासिम ने रईसों, बड़े बड़े लोगों और ब्राह्मणों को हिदायत की कि आप लोग अपने मन्दिर बनाइये, मुसलमानों के साथ तिजारत कीजिये, बेख़ौफ़ होकर रहिये और अपनी हालत को और ज़्यादह बेहतर करने की कोशिश कीजिये। उसने यह भी हुकुम दिया कि आप लोग ग़रीब ब्राह्मणों पर दया रखिये और उनका पालन कीजिये, अपने पूर्वजों के रस्म और रिवाजो को क़ायम रखिये, और पुरानी प्रकृति के अनुसार ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देते रहिये।"*

इसके बाद ग़ज़नवी के हमलों का समय आता है। इन हमलों की असली ग़रज़ देश जीतना नहीं था, बल्कि धन लूटना था। महमूद ग़ज़नवी को इतिहास लेखकों ने कट्टर और धर्मान्ध चित्रित किया है, किन्तु असल में उसमें धार्मिक जोश बहुत कम था। उसकी ख़ास ग़रज़ पंजाब से लेकर फ़िरात नदी तक एक साम्राज्य कायम करना थी। वह ख़लीफ़ा को भी अपने अधीन करके रखना चाहता था। हिन्दुस्तान पर उसके हमलों का ख़ास उद्देश्य अपने इस साम्राज्य कायम करने की इच्छा को पूरा करने के लिये सामान या मसाला जमा करना था। इसी लिये उसने उत्तर भारत में एक दूसरे के बाद बड़े बड़े मालदार शहरों पर हमले किये और देश को अपने अधीन करके उसपर हकूमत करने की तरफ़ उसने कभी ध्यान नहीं दिया। उसकी नीति का इससे ख़ासा अच्छा पता चलता है कि उसके राज्य की सरहद पर उसकी जो फ़ौजें लड़ती थीं, उनमें हिन्दुस्तानी फ़ौजें भी शामिल थीं। इसमें कोई शक नहीं कि ग़ज़नवी लोग हिन्दुओं के युद्ध बल और उनकी बहादुरी की बड़ी क़द्र करते थे और मालूम होता है हिन्दुओं को भी उनकी फ़ौजों में नौकरी करने में कोई एतराज़ न था। महमूद के लड़के मसूद ने अपने भाई से लड़ने के लये हिन्दू सेनापति सरवन्द राव को भेजा था, और जब उसके हिन्दुस्तानी प्रान्त के मुसलमान गवरनर अहमद नियलतिगीन ने मसूद के ख़िलाफ़ बग़ावत की, तो उसे काबू में लाने के लिये मसूद ने जयसेन के लड़के तिलक को भेजा। सलजुक तुर्कों से लड़ने के लिये उसने हिन्दू फ़ौजें जमा की। उसके उत्तराधिकारी ने हिन्दू सेनापति विजयराय को, जो किसी राजनैतिक झगड़े की वजह से ग़ज़नी से भाग आया था, फिर ग़ज़नी वापिस बुलाने के लिये ग़ज़नी के कोतवाल को उसके पास भेजा।

मोहम्मद ग़ोरी और उसके सेनापति क़ुतुबउद्दीन ऐबक के हमलों के समय मुकाबला बहुत ही कम हुआ। उत्तर भारत राजपूतों के हाथों में था, जिनमें ख़ाना-जंगियां उन दिनों बहुत बढ़ी हुई थीं। इसी से मोहम्मद ग़ोरी और क़ुतुबउद्दीन को बड़ी आसानी हुई। २५ साल से कम में सारे उत्तर भारत पर उनका कब्ज़ा हो गया। किन्तु मुसलमानों का राज कायम हो जाने का मतलब इससे ज़्यादह और कुछ नहीं हुआ कि थोड़े से बड़े बड़े राजा और जमींदार हिन्दुओं की जगह मुसलमान हो गये। सर वूल्सली हेग अपनी "केम्ब्रिज हिस्टरी आफ़ इंडिया" में लिखता है कि मुसलमान इतिहास लेखकों ने अपने उत्तर भारत विजय करने की कोशिशों को बहुत बढ़ा बढ़ा कर लिखा है। फिर भी इस बात का हमारे पास काफ़ी सबूत है कि इसलाम प्रचार से इन हमलों का कोई

*(Ibid Vol I, p. 186, and pp. 115-118.)

सम्बन्ध नहीं हो सकता था। "महमूद से लेकर हिन्दुस्तान के सब मुसलमान शासकों को, जब इसमें उन्हें सुविधा दिखाई दी, तो हिन्दू राजाओं और ज़मींदारों के पैतृक राज्य और उनकी ज़मींदारियां पहले की तरह उनही के कब्ज़े और शासन में रहने दीं और उन्हें अपने सामन्तों की तरह स्वीकार कर लिया और उनके अधिकारों को पक्का कर दिया।"

"हिन्दू प्रजा के ऊपर ही मुसलिम हाकिमों का सारा सहारा और दारमदार था। बहुत बड़े दर्जे तक राज की मातहत नौकरियां सब हिन्दुओं ही के हाथों में रहीं। इसमें कोई शक नहीं कि लगान की तक़र्रुरी और वसूली से सम्बन्ध रखने वाली क़रीब क़रीब सब छोटी नौकरियां, और आम तौर पर माल, सरकारी ख़ज़ाने और हिसाब के सम्बन्ध की सब नौकरियां, केवल हिन्दुओं से भरी रहीं। कई पीढ़ियों बाद भी हमें यही हालत देखने को मिलती है।"

"यह मानने की कोई वजह मालूम नहीं होती कि हिन्दू किसान की हालत हिन्दू ज़मींदार के मुक़ाबले में मुसलमान ज़मींदार के मातहत किसी तरह भी ख़राब रहती थी।

"इसमें शक नहीं कि हिन्दुओं और मुसलमानों के आपसी मुक़दमों में भी मुसलमानों के ख़िलाफ़ हिन्दुओं के साथ पूरा इन्साफ़ किया जाता था।"

हमला किसी देश या किसी क़ौम का भी दूसरे देश या क़ौम पर जायज़ नहीं होता, लेकिन मुसलमानों के भारत पर हमले दूसरी क़ौमो के यूरोप या और मुल्कों पर हमलों के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा इन्सानियत के और सभ्य थे। भारत के इन हमला करने वालों ने रिआया के जान माल और धर्म तीनों का कहीं ज़्यादह लिहाज़ किया और इनकी हिफ़ाज़त की।

हम अपने अगले लेख में इस चीज़ पर विस्तार के साथ रोशनी डालेंगे। हम यह बतावेंगे कि मुसलमानों पर हिन्दू संस्कृति का कितना ज़बरदस्त असर पड़ा और किस तरह धीरे धीरे इस देश में एक संयुक्त संस्कृति का निर्माण हो रहा था।

छपरा]

लक्ष्य

योगी अरविन्द

हमें अब भी कौनसी नई वस्तु प्राप्त करनी है ?

प्रेम, क्योंकि अभी तक तो हमने केवल द्वेष और आत्मसन्तोष प्राप्त किया है; ज्ञान—क्योंकि अभी तक तो हमें स्खलन, अवलोकन और विचारशक्ति की ही प्राप्ति हुई है; आनन्द—क्योंकि हम अभी तक सुख-दुःख और उदासीनता ही प्राप्त कर पाए हैं; शक्ति—क्योंकि अभी तक तो निर्बलता, प्रयत्न और पराजित विजय ही हमारे पल्ले पड़ी है; जीवन—अभी हमने जन्म, वृद्धि और मरण ही तो पाया है; और हमें प्राप्त करना है ऐक्य, क्योंकि अभी युद्ध और संघ की ही उपलब्धि हुई है न !

एक शब्द में कहें तो हमें भगवान् को पाना है और अपने आप को उनके दिव्य स्वरूप की प्रतिमा के रूप में फिर से गढ़ना है।

पाण्डिचेरी]

गीत

सुश्री महादेवी वर्मा

घिरती रहे रात !

न पथ रूँधतीं ये
गहन तम शिलायें ;
न गति रोक पातीं
पिघल मिल दिशायें ;
चली मुक्त मैं ज्यों मलय की मधुर वात !

न आँसू गिने औ'
न काँटे संजोये ;
न पगचाप दिग्भ्रान्त
उच्छ्वास खोये ;
मुझे भेंटता हर पलकपात में प्रात !

स्वजन ! स्वर्ण कैसा
न जो ज्वाल-धोया ?
हँसा कब तड़ित् में
न जो मेघ रोया ?
लिया साध ने तोल अङ्गार-संघात !

नयन - ज्योति यह
वह हृदय का सवेरा ;
अतल सिन्धु प्रिय का
लहर स्वप्न मेरा ;
कही सत्य ने रसभरी स्वप्न की बात !

जले दीप को
फूल का प्राण दे दो ;
शिखा लयभरी
साँस को दान दे दो ;
खिलें अग्निपथ में सजल मुक्ति-जलजात !

चीनी इतिहास की भूमिका

प्रोफ़ैसर तान युन-शान

[प्रोफ़ैसर तान युन-शान चीन की राष्ट्रीय सरकार की ओर से भारत में चीन के सांस्कृतिक प्रतिनिधि हैं। भारत आने के पहले प्रोफ़ैसर तान नानकिंग में भारतीय और चीनी संस्कृति के संयोजक थे। आजकल आप शान्तिनिकेतन में चीना भवन के डाइरेक्टर हैं। प्रस्तुत लेख 'विश्ववाणी' के पाठकों के लिये चीन के सम्बन्ध में प्रोफ़ैसर साहब की लेख माला का पहला लेख है।]

१—देश का नाम

पहले ज़माने में चीन का देश कई अलग अलग नामों से पुकारा जाता था। चीन वाले ख़ुद अपने मुल्क को 'चुंग हुआ' या 'चुंग कुओ' कहते हैं। 'चुंग' के मायने हैं 'बीच का', 'हुआ' का मतलब है 'फूल' और 'कुओ' 'देश' को कहते हैं। चीनी लोग मानते हैं कि उनका देश पृथ्वी के ठीक बीचों बीच में है। उसमें फूल बहुत होते हैं और लोग ख़ूब सुख से ज़िन्दगी बसर कर सकते हैं। चीनी सभ्यता दुनिया की सब से पुरानी और सब से ऊंची सभ्यताओं में से एक है। शुरू ज़माने से उस देश के लोग आस पास की जंगली क़ौमों को जीत कर अपने में मिलाते रहे या उन पर हुकूमत करते रहे। इसीलिये न उन दिनों चीन की कोई सरहद ठीक हो पाई और न हज़ारों बरस तक देश का कोई ख़ास नाम रखा गया। आबादी और इलाक़ा दोनों बढ़ते चले गए।
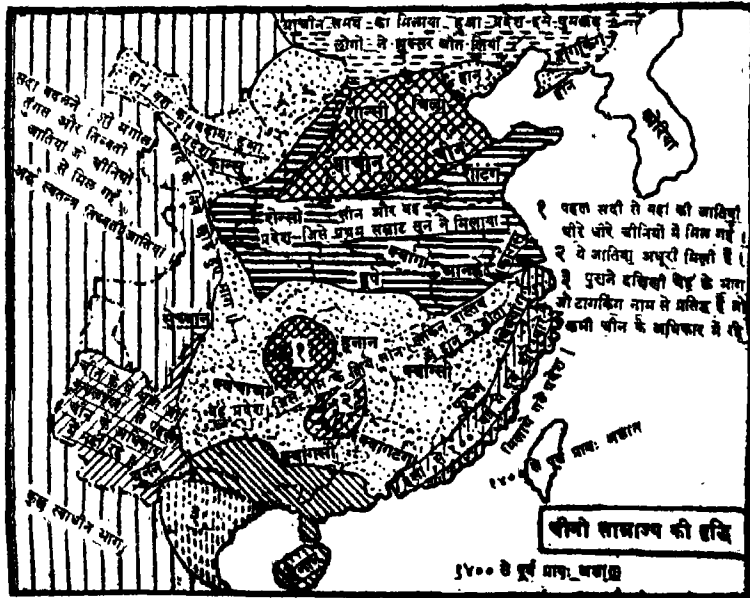
चीनी साम्राज्य की वृद्धि

१००० ई० प० (ईसवी से पहले) के क़रीब 'चीन' एक राजकुल का नाम था। इस कुल के राजाओं का उन दिनों मुल्क के उस थोड़े से उत्तर पच्छिमी हिस्से पर राज था, जिसमें आज कल कान-सु और शेन-सि के सूबे हैं। इस कुल के नाम पर ही मुल्क का वह हिस्सा 'चीन कुओ' यानी 'चीन राजाओं का देश' कहलाने लगा। धीरे धीरे इस कुल के राजाओं की ताक़त बढ़ी। उनका राज दूसरे सूबों पर भी फैला। एशिया के बीच के हिस्से में उन दिनों बहुत से छोटे छोटे देश थे, जो हमारे यहां पच्छिमी देश कहलाते थे। चीन कुओ के लोगों के साथ यहां के लोगों का आना जाना था। इसलिये इन पच्छिमी देशों के लोगों ने हमारे सारे मुल्क को चीन नाम से पुकारना शुरू कर दिया। वहां से यह नाम दक्खिन में हिन्दुस्तान और पच्छिम में यूनान और रोम तक पहुंचा। यूरोप में वह बिगड़ कर 'चाइना' हो गया। हिन्दुस्तान के 'महाभारत' ग्रन्थ में भी चीन देश का वर्णन आता है, जिससे मालूम होता है कि हिन्दुस्तान वालों को उस पुराने ज़माने में हमारे देश का पता था और उससे उनका कुछ न कुछ नाता भी था।

चीन के प्रान्तों का क्षेत्रफल और जनसंख्या

जापानी हमारे मुल्क को 'दाइतांग' यानी महातांग कहते हैं। सबब यह है कि ६१८ ई० से ९०७ ई० तक चीन में 'तांग' कुल का राज था। चीनी सभ्यता उस वक्त अपनी चोटी पर थी। जापानी अभी सभ्यता में बहुत ही नीचे थे। सैकड़ों जापानी उन दिनों तालीम पाने के लिये चीन आए। चीन से लौट कर उन्होंने अपने मुल्क में तरह तरह की विद्याओं का प्रचार किया। इन जापानियों में एक मशहूर नाम कोबोदाशी का है, जो २५ बरस तक चीन में रहा। कोबोदाशी को 'कुंगहाइ' भी कहते थे। जापान लौट कर उसने जापानी ज़बान लिखने के लिये चीनी लिखावट की मदद से एक नई लिखावट निकाली, जिसे अभी तक जापानी 'काना' या 'काता काना' कहते हैं। कोबोदाशी को ही जापानी साहित्य का जन्म देने वाला माना जाता है। जापानियों ने सारी तहज़ीब चीन ही से सीखी। जापानियों का धर्म, यानी बौद्ध धर्म भी, हिन्दुस्तान से चीन और वहां से जापान पहुंचा। जापानी सभ्यता रुपये में सोलह आने तांग राजकुल के ज़माने की चीनी सभ्यता की नक़ल है। इसीलिये जापानी आज तक चीन को 'दाइतांग' यानी महातांग कहते हैं।

सन् १९११ ई० में चीन में ज़बरदस्त इनक़लाब हुआ। पुराने राजकुलों की हुकूमत हमेशा के लिये ख़त्म हो गई। उस समय से चीन में, जो नई रिपबलिक यानी जनतंत्र या जम्हूरी राज क़ायम हुआ, उसका नाम 'चुंग हुआ रिपबलिक' रखा गया। हम लोग चाहते हैं

कि दूसरे देशों के लोग हमारे देश को अब इस नाम से यानी 'चुंग हुआ' नाम से पुकारें।

२—चीन की भूमि

इस समय दुनिया में सबसे बड़ा रक़बा ब्रिटिश साम्राज्य का है। उससे कुछ कम सोवियत् रूस का और तीसरे नम्बर पर चीन का। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य का एक बड़ा हिस्सा या तो उपनिवेश हैं, जो क़रीब क़रीब आज़ाद हैं और या वे मातहत देश हैं, जो अपनी आज़ादी के लिये चेष्टा कर रहे हैं। वह देश जो असली ग्रेट ब्रिटेन कहलाता है, चीन के छोटे से छोटे सूबे से भी छोटा है। रूस का इलाक़ा बहुत बड़ा है और लगातार एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ तक फैला हुआ है। लेकिन रूसी इलाक़े का एक बहुत बड़ा हिस्सा, जो उत्तर के आर्कटिक समुद्र से मिला हुआ और पूरब से पच्छिम तक फैला हुआ है, क़रीब क़रीब बारह महीने बरफ़ से ढका रहता है और आदमियों के रहने के नाक़ाबिल है। इनमें केवल चीन ही ऐसा देश है, जिसका इलाक़ा इतना बड़ा और लगातार है, जिसकी आबहवा बड़ी अच्छी है, और जिसकी सारी ज़मीन इधर से उधर तक ज़रख़ेज़ है। चीन इतना बड़ा है कि उसे एक महाद्वीप कहा जा सकता है।

यह देश एशिया के पूरब-दक्खिन में है। इसके पूरब में और कुछ दक्खिन में प्रशान्त महासागर है और बाक़ी सब तरफ़ एशिया के दूसरे देशों की सरहदें मिली हुई हैं। किसी ज़माने में जब कि चीन की ताक़त बढ़ी हुई थी, कोरिया, लियु चियु, फ़ारमूसा, अनाम, स्याम, बर्मा, भूतान और नैपाल सब या तो चीनी साम्राज्य के ही सूबे थे और या चीन को ख़िराज देते थे। जापान के राजा भी किसी समय चीन के सम्राटको ख़िराज दिया करते थे और चीन के सम्राट जापान के राजा को ख़िताब और ख़िलअत भेजा करते थे। जब चीन में मांचू राजकुल का ज़माना ख़त्म होने लगा और चीन में आपसी झगड़े और तरह तरह की बुराइयां पैदा हो गईं, तो पच्छिम की क़ौमों ने हमारी कमज़ोरी से फ़ायदा उठा कर चीन के थोड़े थोड़े टुकड़े इधर उधर से नोच कर आपस में बांट लिये। चीन के मातहत देशों ने भी चीनी साम्राज्य से नाता तोड़ लिया। लेकिन इस समय भी चीन का रक़बा चालीस लाख मुरब्बा मील से ज़्यादा यानी सारे एशिया के
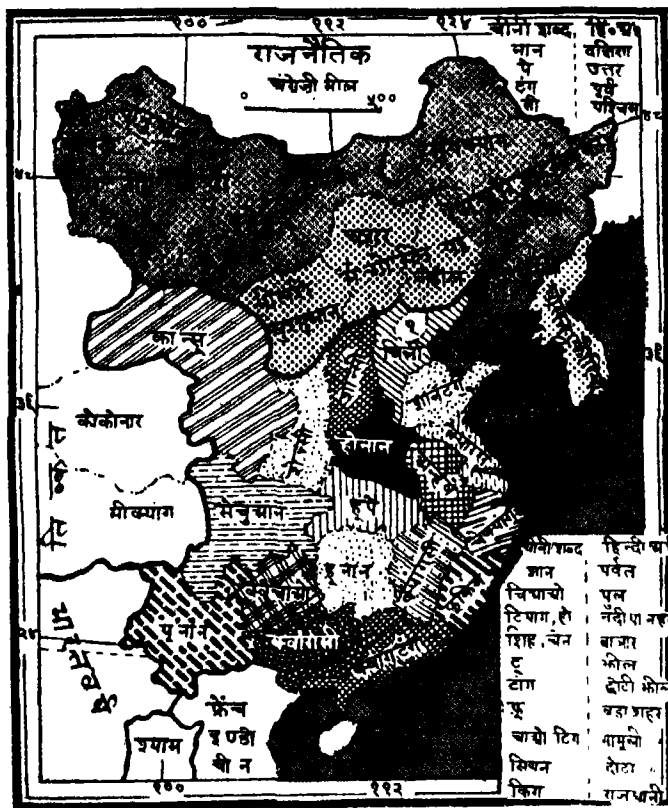
उसने सबसे पहिले मंडी खोली और लोगों को एक चीज़ के बदले में दूसरी चीज़ देना लेना सिखाया। बहुत सी जड़ी बूटी पर तजुरबा करके उसने रोगों के इलाज की बुनियाद डाली। उसने एक तरह का पञ्चाङ्ग यानी कैलेण्डर बनाया। ये सब बातें भी क़रीब क़रीब दस हज़ार साल पहले की हैं। इसके बाद से इसी तरह बहुत लोग तरह तरह की नई ईजादें करते रहे। सन् २००० ई० पू० में हुआंग-ति यानी 'पीला सम्राट' चीन पर हुकूमत करता था। उसकी प्रजा बहुत खुश और सुखी थी। उसके ज़माने में और बहुत सी नई नई काम की ईजादें हुई, जिनमें से कुछ ये हैं—१-टोपी और सिले हुए कपड़े, २-गाड़ी और किश्ती, ३-कूंडी-सोटा, ४-तीर-कमान, ५-दिशा देखने का कम्पास, ६-धातु के सिक्के, और ७-मुरदे को रखने के लिये -कफ़न। ज्योतिष में यानी तारों और नक्षत्रों का अध्ययन करने में और अलग अलग मौसमों के तय करने में भी उस ज़माने में ख़ासी नई नई ईजादें हुई।

त्सांग-चि

सम्राट हुआंग-ति के समय तक (२६९७-२५९८ ई० पू० तक) ऊपर की सब चीज़ें चीन में ईजाद हो चुकी थीं। धर्म दर्शन, यानी फ़लसफ़ा और सदाचार शास्त्र ये तीनों कुछ समय बाद हुआ, शांग और चोउ राजकुलों के समय में यानी दो हज़ार ई० पू० से १००० ई० पू० तक के ज़माने में पूरी तरह तरक्क़ी को पहुंचे। यह ज़माना चीनी सभ्यता के इतिहास में बल्कि दुनिया की तरक़्क़ी के इतिहास में सुनहरा ज़माना था।

किसी भी क़ौम के इतिहास में लिखने की विद्या कब ईजाद हुई इस बात का बड़ा महत्व है। हुआंग-ति के कई वज़ीर थे जिनमें एक 'इतिहास का वज़ीर' कहलाता था। त्सांग-चि उसका इतिहास का वज़ीर था। वही आजकल की चीनी लिखावट का ईजाद करने वाला माना जाता है। असल में उसने नई लिखावट ईजाद नहीं की बल्कि फ़ुहि्स की ईजाद की हुई पुरानी लिखावट को सुधारा और तरक़्क़ी दी। बहुत से लोग समझते हैं कि चीनी लिखावट को सीख सकना दूसरे देश वालों के लिये बहुत मुशकिल है। दुनिया की बहुत सी लिखावट सीखने के बाद मेरा यह तजरुबा है कि ऐसा समझना ग़लत है। चीनी लिखावट और चीनी भाषा
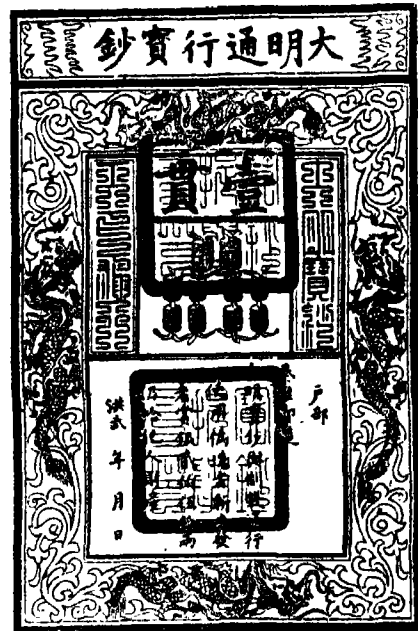
मिंगवंश के समय का काग़ज़ी नोट

दुनिया की बहुत सी भाषाओं और लिखावटों से आसान है। चीनी लिखावट को चित्रलिपि समझना भी एक बहुत थोड़े अंश में ठीक है। दुनिया की कोई

लिपि भी न पूरी तरह चित्रात्मक है और न पूरी तरह ध्वनात्मक। यही हाल चीनी लिपि का है। यह चीनी लिखावट हज़ारों बरस से ज्यों की त्यों चली आरही है। सारे चीन में जिसका रक़बा सारे यूरोप के रक़बे से ज़्यादह है यही एक लिखावट काम में आती है। इस एक लिखावट की वजह से चीनी क़ौम की एकता को बनाए रखने में बहुत बड़ी मदद मिली है। जब से चीन में लिखावट ईजाद हुई तभी से किताबें लिखी जानी और ख़ासकर ऐतिहासिक किताबें लिखी जानी शुरू होगईं। इनमें से बहुत सी किताबों के अब सिर्फ़ नाम रह गए हैं और बहुत सी किताबें अभी तक मौजूद हैं। इन में सबसे पहली किताब फ़ुस्ति के वक़्तों की 'यि-चिन' नाम की है जिसके मायने 'परिवर्तनों के नियम' हैं। 'शांग हुसु' (Shang-Hsu) २३५७ और २२०८ ई० पू० के बीच की लिखी हुई है। 'शिह-चिन' १५०० ई० पू०

महात्मा कन्फ़ूशियस

से ५०० ई० पू० तक के बहुत से गीतों का एक संग्रह है जो महात्मा कन्फ़ूशियस का जमा किया हुआ है। सिवाय वेदों के दुनिया की और कोई किताब इन चीनी किताबों से ज़्यादह पुरानी नहीं है। इन किताबों के अलावा बहुत से पुराने घरेलू गाने जगह जगह गाए जाते हैं या किताबों में मौजूद हैं। मिसाल के तौर पर २३०० ई० पू० और २२०० ई० पू० के बीच के दो गाने ये हैं —

(१) "जब सूरज निकलता है मैं उठ जाता हूँ
और जब सूरज डूबता है मैं आराम करता हूं,
पानी पीने के लिए मैं कुंवा खोद लेता हूं
और खाना खाने के लिए ज़मीन जोतता हूं,
सम्राट (ति) की हुकूमत सम्राटके पास रहे
मुझे उससे क्या लेना देना है।

(२) "ऐ ख़ुशक़िस्मत बादल ! फैलादे
अपने रंगों को चारों तरफ़,
ऐ सूरज ! और ऐ चांद ! चमकाओ
और सुन्दर बनाते रहो
दिन और रात को हमेशा हमेशा"

साइन्स का शुरू भी चीन से हुआ था। २००० ई० पू० और १००० ई० पू० के बीच में चीन में 'लु-यि' यानी छै विद्याओं और 'लुकुङ्ग' यानी छै दस्तकारियों के सीखने का ख़ास रिवाज था। छै विद्याएं ये थीं—(१) 'लि' यानी शिष्टाचार (२) 'यो' यानी गाना बजाना, (३) 'शेह' यानी तीरन्दाज़ी (४) 'यु' यानी गाड़ी रथ चलाना, (५) 'शु' यानी लिखना और (६) 'सु' यानी गणित (मैथेमेटिक्स)। छै दस्तकारियां ये थीं—(१) 'तुकुङ्ग' यानी इमारत का काम (२) 'चिनकुङ्ग' यानी धातो का काम, (३) 'शिहकुङ्ग' यानी पत्थर की इमारतों का काम, (४) 'मुकुङ्ग' यानी बढ़ई का काम, (५) 'शोउकुङ्ग' जानवरों का शास्त्र (Zoology), (६) और त्साओ-कुङ्ग यानी वनस्पति शास्त्र (Botany)। इन में से एक एक की कई कई शाखें थीं। शिष्टाचार, तीरन्दाज़ी और गाड़ी चलाना इन तीनों की पांच पांच शाखें थीं। गाने बजाने की और लिखने की छै छै। और गणित की नौ शाखें थीं। राजनीति के सिद्धान्तों;

व्यावहारिक राज शासन और युद्धविद्या, इन की बरसों तालीम दी जाती थी। इन सब पर मन्तक़ी दलीलों के साथ और एक सिलसिले और क़ायदे से लिखी हुई बड़ी बड़ी किताबें थीं। जिनमें हर मज़मून का एक एक पहलू अलग अलग समझाया गया था। मैं कहता हूं आजकल की साइन्स का असली शुरू यही था। साइन्स की सब से ज्यादह असर रखने वाली ईजादों में से कम से कम चार ईजादों का श्रेय चीन को हासिल है—कम्पास, (Compass)
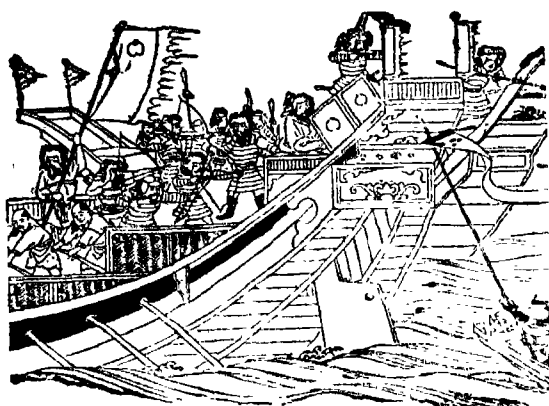
मंगोलों का जहाज़ी बेड़ा

काग़ज़ (Paper) छपाई का काम (Printing) और बारूद (Gunpowder)। असल में यही चार चीज़ें साइन्स के युग का पेशख़ेमा हैं। लेकिन यह बात भी बड़ी ध्यान देने योग्य है कि चीनी लोग बारूद का इस्तेमाल केवल खेल तमाशों; आमोद प्रमोद और आतिशबाज़ी के लिए करते थे, यूरोप की तरह दूसरों को मारने या किसी की जान लेने के लिए नहीं। इसी से पता चलता है कि चीनी सभ्यता और यूरोप की सभ्यता के बुनियादी असूलों में बहुत बड़ा फ़रक़ है।

मेरी राय में चीनी सभ्यता की चार सब से बड़ी विशेषताएं यानी ख़सूसियतें हैं—

(१) चीनी सभ्यता रचनात्मक और मौलिक थी। वह बिल्कुल चीन ही की जमीन की उपज थी। वह किसी से नक़ल की हुई या उधार ली हुई चीज़ न थी।

(२) चीनी सभ्यता का एक बहुत बड़ा गुण उसका देर तक क़ायम रह सकना है। ऊपर कहा जा चुका है कि मिस्र और बाबुल काल का ग्रास बन चुके लेकिन चीन अभी मौजूद है और बढ़ रहा है।

(३) चीनी सभ्यता बड़ी व्यापक है। मसलन् जैसा ऊपर कहा जा चुका है चीनी भाषा और चीनी लिखावट दोनों सारे यूरोप से बड़े रक़बे के ऊपर हमेशा एक ही रही हैं।

(४) अन्त में चीनी सभ्यता मनुष्य मात्र का भला चाहने वाली और सबको फ़ायदा पहुंचाने वाली है। बारूद का इस्तेमाल इसकी अच्छी मिसाल है। जो चीज़ चीन में सिर्फ़ खेल-तमाशे और ख़ुशी के लिए इस्तेमाल की जाती थी, वह दूसरे देशों में पहुंच कर मनुष्यों के नाश का सब से ज़बरदस्त साधन बन गई।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मैं यह कह सकता हूं कि चीनी सभ्यता, सिवाय हिन्दुस्तान की सभ्यता के, बाक़ी पुराने ज़माने की या आजकल की सब सभ्यताओं से अच्छी और बढ़कर है। मिस्र और बाबुल

युवान वंश के समय की बारूद ढोने की विशाल बैल गाड़ी

की सभ्यताएं इतनी देर तक न ठहर सकीं। यूनान और रोम की सभ्यताएं इतनी व्यापक नहीं थीं। आजकल की यूरोप की सभ्यता पर राय ज़ाहिर करने का अभी समय नहीं आया, लेकिन क्या सचमुच कोई है, जो यूरोप की इस सभ्यता को अब भी दिल से पसन्द करता हो?

५–दुनिया में सबसे पुराना इतिहास

चीन की पौराणिक कथाएं तो बहुत ज़्यादा दूर तक जाती हैं। उन कथाओं के अनुसार चीनियों का आदि पुरुष 'पान-कु' था जिसने इस विश्व की रचना की है---और जिसका सारी दुनिया पर राज था। उसके बाद अनेक सम्राटों और अनेक युगों का ज़िक्र आता है। लेकिन चीन का विश्वसनीय इतिहास २७०० ई० पू० से यानी सम्राट हुआंग-ति के समय से शुरू होता है।

इससे पहले चीन में बहुत से अलग अलग कबीले रहते थे जिनमें अक्सर लड़ाइयां होती रहती थीं। सम्राट हुआंग-ति ने सारे चीन को मिला कर एक बड़ा साम्राज्य कायम किया। उसी समय से समाज और शासन दोनों की नई व्यवस्था कायम हुई और सभ्यता के हर पहलू में तरक्क़ी होने लगी। हुआंग-ति
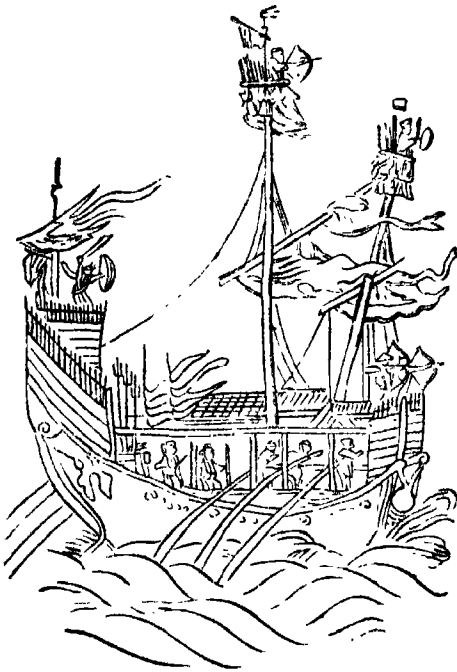
संगवंश के समय का लड़ाका जहाज

को ही चीनी क़ौम का जन्म दाता माना जाता है। चीनी अपने को उसी की औलाद मानते हैं और उसकी तख़्त नशीनी के समय से अपने देश का इतिहास शुरू करते हैं।

हुआंग-ति के पीछे एक दूसरे के बाद बहुत से सम्राट हुए जिनमें याओ नाम के एक सम्राट ने पूरे १०० वर्ष शासन किया। उसके बाद के सम्राट शुन ने ४८ वर्ष हुकूमत की। ये दोनों सम्राट याओ और शुन चीन में आदर्श राजा माने जाते हैं। महात्मा कानफ्यूसियस और मेन्सियस दोनों इन्हें आदर्श राजा कहकर बयान करते हैं। उनका ज़माना चीनी इतिहास में बड़े गौरव का ज़माना था। उन दिनों हर सम्राट अपने मरने से काफ़ी पहले ख़ुद अपनी इच्छा से गद्दी छोड़कर दूसरे को अपनी जगह देकर राजकाज से बिलकुल अलग हो जाया करता था। इसी

सम्राट शुन

लिए वह ज़माना 'शान याग' यानी 'अपनी इच्छा से पद त्याग करने का ज़माना' कहलाता है। जब कभी कोई सम्राट ऐसा न कर पाता था तो उसके मरने के बाद लोग उसकी जगह दूसरा सम्राट चुन लेते थे।

सम्राट याओ और सम्राट शुन के ज़माने में 'यु' नाम का एक बूढ़ा वज़ीर था। चीन की नदियों

में उन दिनों बड़ी बड़ी बाढ़ें आया करतीं थीं जिनसे रिआया को जानमाल का बहुत नुक़सान होता था। 'यु' ने नौ बड़े बड़े दरियाओं के दहानों को चौड़ा करके और बहुत सी नहरें काट कर इस तरह का इन्तज़ाम कर दिया कि आइन्दा के लिये इन बाढ़ों से नुक़सान होना बन्द होगया। सम्राट शुन के बाद लोगों ने यु को अपना सम्राट चुना। आठ

सम्राट यु (ईसा से पूर्व २२२५ से २१९७ तक)

बरस बाद उसने सिंहासन छोड़कर अपने एक वज़ीर 'पोयि' को सम्राट बनाना चाहा। उस वक़्त तक के सम्राट अपने सबसे योग्य मंत्री को ही अपना उत्तराधिकारी मुक़र्रर किया करते थे। बाप की गद्दी बेटे को मिलने का उस वक़्त तक चीन के सम्राटों में कोई रिवाज न था। लेकिन अब चीन की प्रजा ने पोयि की जगह शुन के एक बेटे 'चि' को ज़्यादा पसन्द किया। 'चि' ही शुन के बाद सम्राट हुआ और उसी समय से चीन में बाप की गद्दी बेटे को मिलने का रिवाज पड़ा। एक दूसरे के पीछे कई राजकुल सम्राट की गद्दी पर बैठे। इनमें सबसे ज़्यादा देर तक यानी ११२२ ई०पू० से २५५ ई० पू० तक, ८६७ साल तक चोउ राजकुल का ज़माना रहा। इन ८६७ वर्षों में इस कुल के ३७ सम्राट चीन के सिंहासन पर बैठे। यह सारा ज़माना चीन के इतिहास में सुनहला युग समझा जाता है। सभ्यता के हर पहलू से चीन ने उन दिनों बहुत बड़ी तरक़्क़ी की। बड़े बड़े सन्त, महात्मा और विद्वान पैदा हुए। महात्मा कन्फ्यूसियस और महात्मा लाओ-तु और इनके अलावा मेन्सियस, मोतु, चुआंग-तु और ह्सुनतु (Hsun tu) उस ज़माने के सबसे मशहूर महापुरुष थे। हिन्दुओं के छै दर्शन शास्त्रों से मिलते जुलते उन दिनो चीन में दस अलग अलग 'दर्शन' लिखे गए। वह ज़माना विद्या और स्वतन्त्र विचारों का ज़माना था। चीनी संस्कृति उन दिनों में ख़ूब फूली फली।

चीनी साम्राज्य उन दिनों नए सिरे से नौ 'चौ' यानी नौ सूबों में बांटा गया। हर सूबे में कई कई 'पांग' यानी रियासतें क़ायम की गईं, जिनमें कुछ बड़ी और कुछ छोटी थीं। हर रियासत एक राजा के सुपुर्द कर दी गई और उसके कुल में पैतृक बना दी गई। इनके अलावा बहुतसा इलाक़ा सीधा सम्राट के अधीन रहा जो 'हुआंग चि' कहलाता था। हर राजा को हर साल अपने राज्य के इन्तज़ाम की पूरी पूरी रिपोर्ट सम्राट को भेजनी होती थी। हर तीन साल के बाद सम्राट की तरफ़ से एक अफ़सर हर रियासत की जांच पड़ताल और वहां की प्रजा की हालत पता लगाने के लिये भेजा जाता था। इस तरह चीन की ये सब रियासतें एक सूत्र में बंधी रहती थीं, चीन भर की प्रजा की ख़ुशी और ख़ुशहाली का ख़ास ख़याल रखा जाता था और प्रजा को अन्यायी राजा की शिकायत करने और उसे हटाने का पूरा मौक़ा दिया जाता था। इन मायनों में चीन की ये रियासतें एक तरह की जनतंत्रात्मक रियासतें थीं।

उस ज़माने की दूसरी ख़ास बात लगान की प्रथा थी जिसे 'चिंग-तिएन' कहते हैं। सारी ज़मीन प्रजा की ज़मीन समझी जाती थी और सब में बराबर बराबर बांट दी गई थी। हर मुरब्बा 'लि' के नौ टुकड़े किये गए। हर टुकड़े में सौ 'मोउस' ज़मीन थी। इन नौ सौ मोउस ज़मीन में से ८०० मोउस आठ कुटुम्बों को उनके अपने गुज़ारे के लिये दे दिये गए और बीच की १०० मोउस ज़मीन सरकारी या पंचायती ज़मीनों के तौर पर छोड़ दी गई। आस पास के किसानों का फ़र्ज़ होता था कि वे बारी बारी आकर उस सरकारी ज़मीन को जोत जावें।

इस सरकारी ज़मीन की पैदावार से सरकार का सारा ख़र्च चलता था और बाकी ज़मीनों की पैदावार पर किसानों का पूरा अख़्तियार होता था। सारे देश की ज़मीन इसी तरह टुकड़ों में बांट दी गई। यह एक तरह का साम्यवाद (कम्यूनिज़्म) था। लेकिन उसे क़ायम करने के लिये यूरोप वालों की तरह चीन वालों को किसी का ख़ून नहीं बहाना पड़ा था।

यह पद्धति सदियों से अच्छी तरह चलती रही इसके बाद राजाओं के व्यक्तिगत स्वार्थ ने इसमें बाधा डाली। लड़ाइयां हुईं। इस पद्धति में उलट फेर हुए। सम्राट के अधिकार बढ़ते चले गए। चिन कुल के पहिले सम्राट ने दक्खिन में अनाम और पूरब में जापान को फ़तह किया। उसने अपने विशाल साम्राज्य के नए सिरे से २४ सूबे बनाए। यूनानी सिकन्दर की तरह यह सम्राट भी समझता था कि मैंने दुनिया को जीत लिया। उसे आशा थी कि मेरा कुल हमेशा के लिये राज करेगा लेकिन उस कुल का राज चीन में सबसे कम दिनों तक रहा। उसका बेटा बड़ा ज़ालिम था। उसने चीन की संस्कृति, दस्तकारी, उद्योग-धन्धों और तिजारत पर ध्यान देने के बजाय मुल्कों में विजय करने पर ज़्यादा ध्यान दिया। उसने पुरानी किताबों को जलवा डाला और विद्वानों को ज़िन्दा ज़मीन में गड़वा दिया। इन्हीं अन्यायों की वजह से चीन के इतिहास में पहिली बार चीनी जनता की तरफ़ से बग़ावत हुई। सम्राट गद्दी से उतार दिया गया। एक कुल को हटाकर दूसरा कुल चीन को गद्दी पर बैठा दिया गया।

यह कुल ४०३ वर्ष यानी २२० ईसवी तक चीन की गद्दी पर रहा। उस समय से लेकर १९११ ईसवी तक फिर कई राजकुल चीन की गद्दी पर बैठे जिनमें तांग कुल और सुंग कुल सबसे ज़्यादा मशहूर हैं क्योंकि इनके ज़माने की चित्रकारी और चीनी मिट्टी के बर्तन दुनिया की कला के सबसे सुन्दर नमूने गिने जाते हैं; जिनसे बढ़कर उस तरह की चीज़ें आज तक दुनिया के किसी देश ने पैदा नहीं कीं। सन् १९११ में चीन के अन्दर राजकुलों का ज़माना हमेशा के लिये ख़त्म होगया और शुद्ध जनतंत्र का ज़माना शुरू हो गया।

दिग्भ्रम

'विनोद'

—दूर, बहुत दूर से सूर्य की किरणें दिगन्तव्यापी अन्धकार को भेद कर धरातल पर पहुँच गईं। इन किरणों में कितना सौन्दर्य है!

—मानव, इन किरणों को तू अपने में बटोर ले अथवा यह नहीं तो इन्हीं किरणों में अपने को मिला दे, एक कर दे।

—देख कितना अभेद्य अन्धकार तेरे चारों तरफ़ है। इस विराट अन्धकार में लोगों की आंखें बेकार हैं। जिसने चिराग़ जलाया, वह चिराग़ की रोशनी भर ही देख पाता है, उसके लिए उतनी ही दुनिया है। जो अन्धकार में है, उसे अन्धकार ही प्रिय है, उसकी आंखें प्रकाश को सहन नहीं कर पातीं।

—इस विराट अन्धकार में एक दूसरे को न देखने और न समझने के कारण जो जहां है, उसने उतने को ही सत्य मान कर, बस उतने के ही लिए अपने को बना लिया है। जगत का श्रेष्ठतम जीव मानव अपने को अलग-अलग समझ कर, जगत को अपने लिए नहीं, जगत के लिए अपने को बना रहा है।

—सत्य इसी अन्धकार में विलीन है!

हिन्दुस्तान में इतिहास कैसे लिखा जाय

डाक्टर मेहदी हुसेन एम० ए०, पीएच० डी०, डी० लिट०

[डाक्टर मेहदी हुसेन साहब आगरा कालेज में इतिहास के प्रोफ़ैसर हैं। आपके लिखे ग्रन्थों की यूरोप और भारत के विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। डाक्टर साहब गहराई में पैठ कर मोती ढूंढ़ते हैं। आपको अपने भारतीय होने का गर्व और अपनी भारतीयता का नाज़ है। काश कि डाक्टर साहब जैसे थोड़े से विद्वान और निकल आवें तो हमारे देश की साम्प्रदायिक समस्या फ़ौरन हल हो जाय। 'विश्ववाणी' पर डाक्टर साहब की बेहद मेहरबानी है। इस लेख में डाक्टर साहब ने यह दिखाया है कि हमारे देश के इतिहास इस तरह लिखे गये हैं जिससे हिन्दू मुसलमानों के दिल हमेशा फटे रहें। इतिहास कैसे लिखना चाहिये जिससे देशवासियों में प्रेम बढ़े यह इस लेख में डाक्टर साहब ने दिखाया है।

तारीख़ नवीसी यानी इतिहास लेखनकला सिर्फ़ घटनाओं को ज्यों का त्यों बयान कर देने पर ख़त्म नहीं होती, बल्कि इतिहास लेखक की मनोवृत्ति का भी उसमें बड़ा दख़ल है। घटनाओं की छाप पहले इतिहास लेखक के ज़ेहन में पड़ती है। वहीं इस छाप पर एक ख़ास रंग चढ़ जाता है, जो बाद में क़लम के ज़रिये कागज़ पर उतरता है। इसी रंगीन छाप याने चरबे को आम बोल चाल में 'तारीख़' या 'इतिहास' कहते हैं। इस तारीख़ से न सिर्फ़ इस ज़माने के लोगों पर असर पड़ता है, बल्कि हमेशा के लिये आने वाली नसलें इससे प्रभावित होती रहती हैं। इस हैसियत से इतिहास लेखक की क़द्र एक बड़े तबीब या डाक्टर की सी है। जिस तरह डाक्टर मरीज़ की नब्ज़ देखकर और उसके बाद बदन पर आला लगाकर मर्ज़ को पहचानता है और फिर नुसखा लिख देता है, जिस पर मरीज़ की सेहत या मौत का फ़ैसला होता है, उसी तरह इतिहास लेखक एक मुल्क या एक सभ्यता और एक क़ौम के नक़्शे हस्ती को बनाने और बिगाड़ने में सहायक होता है। वह मुल्क की नब्ज़ देखता है, क़ौम की नब्ज़ देखता है और आख़िर नुसखा लिख देता है, यानी मुल्क की तरक्क़ी और तनज़्ज़ुली के कारन को इतिहास का अंश बना देता है। ग़ौर तलब बात यह है कि डाक्टर ने मर्ज़ के पहचानने में ग़ल्ती की तो ज्यादा से ज्यादा एक शख़्स की जान जाए होती है, लेकिन अगर इतिहास लेखक ने ग़ल्ती की तो सारी क़ौम की तबाही हो जाती है और मुल्क में ऐसा तूफ़ान बरपा हो जाता है जो रोके नहीं रुकता। डाक्टर ट्रिवेलियन का कहना है कि इतिहास एक ख़तरनाक चीज़ है। अगर इसका सही इस्तेमाल किया गया तो क़ौम को एक धागे में बांधने के लिये बेहतरीन चीज़ है। अगर उसको ठीक ठीक न समझाया गया, तो वह झगड़े की जड़ बन जायगी।

इसी वजह से यूरोप के तरक्की याफ़्ता मुल्कों में इतिहास के लिखने पर खास ध्यान दिया जाता है। मुल्क के खूनी नज़ारों को हर मौक़े और हर जगह पर नहीं दिखाया जाता। पेरिस में तसवीरों और मूर्तियों का बाज़ार रोज़ाना गर्म रहता है; लेकिन खूनी नज़ारों का तो कहीं पता भी नहीं चलता। फ्रान्सीसी इनक़लाब में कितना खून बहा। बादशाह का भी खून बहाया गया और अमीरों का भी। इङ्गलिस्तान का इतिहास भी खूँरेज़ी से खाली नहीं। बादशाह और पार्लिमेण्ट के बीच क़रीब क़रीब साठ बरस तक जंग होती रही और आखिर बादशाह क़त्ल किया गया। लेकिन, लन्दन में कहीं बादशाह के क़त्ल की तसवीर नहीं देखी जाती। एक स्कूल में चार्ल्स अव्वल की तसवीर थी, जो उसके क़त्ल की याद ताज़ा करती थी। उसके खिलाफ़ बड़ा एतराज़ किया गया। दलीलें और बहसें हुई।* इस क़िस्म की तसवीरों से विद्यार्थियों के दिलों पर बड़ा बुरा असर पड़ता है और यह क़ौमियत के संगठन के लिये बहुत नुकसानदेह है। आख़िरकार वह तसवीर हटा दी गई। लेकिन, लखनऊ की इण्डस्ट्रियल एक्ज़ीबीशन में, जो दिसम्बर सन् १६३६ में हुई, एक तसवीर मौजूद थी, जिसमें यह दिखाया गया कि छत्रपति शिवाजी पर अफ़ज़ल की तलवार पड़ रही है। शिवा जी पर अफ़ज़ल का तलवार सूतना ऐतिहासिक दृष्टि से सही भी मान लिया जाय, तो भी इस क़िस्म की तसवीरें विद्यार्थियों से बनवाना और इन तसवीरों को जनता के सामने पेश करना मुल्क के लिये और क़ौम की शीराज़ा-बन्दी (संगठन) के लिये हरगिज़ फ़ायदा मन्द नहीं हो सकता।

यूं तो इतिहास का असर सभी पर पड़ता है, लेकिन विद्यार्थी सब से ज्यादा असर लेता है। उसको आला दरजे का इनसान बनाने के लिये, वतन और अहले वतन के अधिकार बताने, देश और देश के भाइयों की खिदमत सिखाने के लिये, जिसे आज कल 'सिटीज़न शिप' कहते हैं, इतिहास सब से अच्छा साधन है। नौजवानों में मनुष्य मात्र और देश के लोगों के साथ मोहब्बत पैदा करना उन्हें हुब्बुल वतनी, उदारता, नम्रता सिखाना व उनकी ग़लत फ़हमियां दूर करना, उन्स यानी इन्सानियत बढ़ाना इतिहास लेखक का फ़र्ज़ है।

एक ज़माना वह था, जब हिन्दुस्तान में सिलसिले वार इतिहास लिखने का रिवाज न था। इस क़िस्म की तारीख़ नवीसी इसलाम के आगमन के बाद शुरू हुई और उस वक्त से लेकर आजतक जारी है। इस सात आठ सौ बरस के इतिहास के दो दौर हैं। एक दौर मध्य कालीन इतिहास का है और दूसरा दौर आजकल के इतिहास का है। मध्यकाल का इतिहास तंग दायरे में लिखा गया। उस दौर में सिर्फ़ मुसलमान बादशाहों, ख़ास ख़ास अमीरों और बुज़ुर्गों का हाल लिखने को इतिहास समझा जाता था। यद्यपि प्रमाण जांचे तौले जाते थे फिर भी घटनाएं मज़हबी नुक़्ते निगाह से लिखी जाती थीं और शुद्ध मुल्की और राजनैतिक मामले भी मज़हबी रंग में रंग दिये जाते थे, जो अतिशयोक्ति यानी मुबालगे से खाली न होते थे। यह बात इतिहास लेखक मिनहाज सिराज की पुस्तक 'तबक़ात नासरी' और हसन निज़ामी की 'ताज़उल मआसिर' से ज़ाहिर है। 'ताज़उल मआसिर' की हस्तलिपि के १८५ पृष्ठ पर जो इण्डिया आफ़िस में मौजूद है, लिखा है कि सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमस के ज़माने में कालिञ्जर के कुल मन्दिर ढा दिए गये और यही बात कुतुबुद्दीन ऐबक के बारे में 'इम्पीरियल गज़ेटियर' में लिख दी गई है। लेकिन, वास्तविकता यह है कि उस ज़माने के बहुत से मन्दिर कालिञ्जर में अब तक मौजूद हैं।

* यह घटना सन् १९३५ की है और लन्दन के अख़बार न्यूज़ क्रानिकल में छपी है।

कनिंघम साहब पुरातत्व विभाग की इक्कीसवीं रिपोर्ट के पृष्ठ ५८ व ६५-६६ में लिखते हैं कि कालिञ्जर के अलावा महोबा और खजुराहा के प्राचीन मंदिर मौजूद हैं। खजुराहा के मन्दिरों का हवाला सुलतान मोहम्मद बिन तुग़लक के ज़माने में भी मिलता है। इब्न बतूता इस सिलसिले में वहां के उन योगियों का भी ज़िक्र करता है, जिनसे फ़ायदा उठाने के लिए अकसर मुसलमान उनके पास जाया करते थे। खजुराहा से डेढ़ मील के फ़ासले पर क़स्बा जटकारी में एक मन्दिर मौजूद है, जो बारहवीं सदी ईसवी का है।

हैदराबाद हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस नवाब मिर्ज़ा यार जंग बहादुर कुछ मन्दिरों को अपनी आंख से देखने के बाद लिखते हैं कि "क़िला गोलकुण्डा और क़रीम नगर देखने के लिए मैं गया। ये दोनों क़िले पुराने ज़माने के हैं। इनकी चोटियों पर अब तक हिन्दुओं के मन्दिर मौजूद हैं। मुसलमानों ने इन क़िलों को फ़तह करने के बाद इन मन्दिरों को बरबाद नहीं किया। अक़सर हिन्दू अब तक तीरथ करने वहां जाते हैं।" बहरहाल मालूम होगया कि तेरहवीं सदी के इतिहास लेखकों ने मन्दिर तोड़ने के मज़मून को कैसा रंगा। इस क़िस्म के रंगे हुए घटना-क्रम फ़ीरोज़शाह के इतिहास के भी हैं, जो चौदहवीं सदी की लिखी पुस्तक है और जिसमें ज़ियाउद्दीन बरनी ने अलाउद्दीन खिलजी के उन क़ानूनों को, जो उसने देहात के छोटी जात के हिन्दू काम करने वाले यानी बलाहर और सरहङ्ग को बड़े हिन्दू सरदारों, खोतों और चौधरियों के ज़ुल्म से बचाने के लिये मुक़र्रर किया था, मज़हबी रंग में रंग दिया। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान की मौजूदा तारीख़ में अलाउद्दीन खिलजी के इस क़ानून को 'एण्टी हिन्दू लेजिसलेशन' (हिन्दू विरोधी क़ानून) का नाम दिया गया और स्कूलों में बच्चों को यह पढ़ाया जाने लगा कि मुसलमान इतिहास लेखक बरनी यह लिखता है कि अलाउद्दीन के ज़माने में हिन्दुओं की हालत ख़राब थी। लगान वसूल करने में बड़ी सख़्तियां की जाती थीं। ज़ियाउद्दीन बरनी के बयान की असलियत मिस्टर मूर लैण्ड ने समझली। वे लिखते हैं, "बरनी का मतलब 'हुनूद' शब्द से जो उसने उस जगह इस्तेमाल किया है, सारे हिन्दू नहीं बल्कि 'हिन्दू ज़र्मीन्दार' है, जो बहुत दौलतमन्द और ताक़तवर थे। मालगुज़ारी न देते थे और सरकश बन गये थे, जिससे बद इन्तज़ामी पैदा हो गई थी और बराबर बग़ावतें हो रही थीं। हमारे नज़दीक मुसलमान तारीख़ नवीसों की सब से बड़ी कमज़ोरी यह थी कि बुत परस्ती का और हिन्दुओं का, जिन्हें वह बुतपरस्त समझते थे, ज़िक्र करते वक़्त अक़्ल खो बैठते थे और ग़लत बयानियां कर जाते थे। ऐसी ही मिसालें मुग़ल सल्तनत की तारीख़ में भी मिलती हैं।

उम्मीद की जाती थी कि इस ज़माने की तारीख़ नवीसी का पाया बहुत ऊंचा होगा। इसलिए कि तरक्क़ी ने; पुरातत्व विभाग की खोजों ने, पच्छिमी सभ्यता के असर ने और हुकूमत ने आज जो आसानियां इतिहास लेखकों के लिए इकट्ठा कर दी हैं; मध्यकाल में इसका ख्वाब और ख़याल भी न था। इन सब बातों के अलावा यूरोप के मध्य काल की तारीख़ जो अब मौजूद है, उस ज़माने में न थी। सिर्फ़ यही ख़्याल कि तेरहवीं सदी से लेकर सत्रहवीं सदी तक यूरोप की क्या हालत थी, हिन्दुस्तान की इतिहास-कला को बहुत ऊंचा पहुँचा सकता है। यह वाक़या है कि २२ अगस्त सन् १५७२ ईसवी को फ़्रान्स के बादशाह ने हुक्म दिया था कि पेरिस में सब प्राटेस्टेण्ट मज़हब की रिआया क़त्ल कर दी जाय। इस क़त्ल से न बच्चे बचे और न बूढ़े, न मर्द न औरत। जर्मनी में सत्रहवीं सदी तक यह क़ानून था कि रिआया शासक के मज़हब से फिरने न पाए। स्पेन में इनक्यूज़ीशन का (वह सज़ा जिसके अनुसार अपने से भिन्न धार्मिक मत वाले को मार

डाला जाता था) दौर दौरा था। हिन्दुस्तान उस वक्त इन सब मुसीबतों और बन्दिशों से आज़ाद था।

यूरोप का एक यात्री अलेकज़ण्डर हैमिलटन क़रीब १६६० ईसवी में हिंदुस्तान आया था।

उस ज़माने में हिन्दुस्तान की हालत देखकर उसे बड़ा ताज्जुब हुआ। वह लिखता है कि हिन्दुस्तान में सभी धर्मवालों को आज़ादी है। सब धर्मवाले एक दूसरे से मिल जुल कर रहते हैं। सिवाय पोशाक के कोई चीज़ ऐसी नज़र नहीं आती, जिससे इनके मज़हब की पहचान हो सके।* शहर ठट्टा के बारे में हैमिलटन का बयान है कि रियासत का मज़हब इसलाम है लेकिन तादाद में अगर दस हिन्दू हैं, तो एक मुसलमान है। हिन्दुओं के साथ मज़हबी रवादारी पूरे तौर से बरती जाती है। वे अपने व्रत रखते और त्यौहार मनाते हैं। पारसी भी हैं, जो अपनी रस्में ज़रथुश्ती मज़हब के अनुसार अदा करते हैं। ईसाइयों को पूरी इजाज़त है कि अपने गिरजे बनाएं और अपना मज़हब फैलाएं। सूरत के बारे में भी अलेकज़न्डर हैमिलटन का बयान इसी तरह का है। मतलब यह है कि सूरत के शहर में मुख्तलिफ़ क़िस्म के आदमी हैं, लेकिन सब को मज़हबी आज़ादी हासिल है। सिर्फ मज़हब के फ़रक की वजह से किसी को तकलीफ़ देना इन लोगों का दस्तूर नहीं।

इसमें शक नहीं कि इस ज़माने में घटनाओं की जांच पड़ताल बहुत की जाती है और तारीख़ नवीसी तरक्क़ी पर है। तारीख़ की किताबें बहुत लिखी जाती हैं लेकिन यह ख्याल रहे कि तारीख़ नवीसी खाली घटनाओं को ठीक बातों बयान करने पर खत्म नहीं होती। इसमें तारीख़ नवीस की मनोवृत्ति का भी बड़ा दख़ल है। आजकल की तारीख़ के शुरू की किताबों में इस तरह के मज़मून मिलते हैं कि इसलाम पुराना मज़हब नहीं। इसके बानी (शुरू करने वाले) हज़रत मोहम्मद थे। जब हज़रत मोहम्मद हिजरत करके मदीने में आए, तो उन्होंने एक छोटी सी फ़ौज बनायी।" इसी से एक हद तक हिन्दुस्तान पर आक्रमण को भी मिला दिया जाता है। ज़रा गौर कीजिए कि असलीयत क्या है और विद्यार्थी क्या समझता है? तारीख़ 'इब्ने असाकिर' में लिखा है कि पहले नबी हज़रत नूह हैं और 'तबकात इब्निसात' में यह लिखा है कि पहले नबी हज़रत इदरीस हैं, दूसरे हज़रत नूह, तीसरे हज़रत इब्राहीम। इसके बाद हज़रत इसमाईल, हज़रत इसहाक, हज़रत याक़ूब, हज़रत यूसुफ़, हज़रत लूथ, हज़रत हूद, हज़रत स्वालेह, फिर हज़रत शुएब, हज़रत मूसा, हज़रत हारू, हज़रत इलियास, हज़रत अल्यसा, पैग़म्बर हुए। और इनके बाद हज़रत यूनुस, हज़रत अय्यु, हज़रत दाऊद, हज़रत सुलेमान, हज़रत ज़करिया, हज़रत यहिया और हज़रत ईसा हुए। सबके आख़ीर में मोहम्मद मुस्तफ़ा इब्ने अबदुल्ला नबी और पैग़म्बर हुए। सब नबी और पैग़म्बर एक के बाद एक इस्लाम की तालीम देते रहे। इससे ज़ाहिर है कि सन् ५७० ईसवी से पहले, जो मोहम्मद साहब की पैदाइश की तारीख़ है, इसलाम दुनिया में आ चुका था।

इसलाम का इतिहास यह नहीं बताता कि इसलाम को अरब के रसूल ने शुरू किया था। इस बात की पुष्टि स्वर्गीय अल्लामा सर मुहम्मद इक़बाल ने भी अपनी शायरी में, जो हज़रत इमाम हुसैन की शान में लिखी है की है; उनका कहना है कि --

सिर्रे इब्राहीमो इसमाईल बूद,
यानी आं इजमाल रा तफ़सील बूद।
रम्ज़े क़ुरआं अज़ हुसैन आमोख़्तम,
ज़ातिशे ऊ शोलहा अन्दोख़्तम्!

ज़ाहिर है कि हज़रत इब्राहीम और इसमाईल मुसलमान थे। हिन्दुस्तान की तारीख़ में सिर्फ़

* अलेकज़ेन्डर हैमिलटन के सफ़र नामे की चारों जिल्दें निज़ाम के सरकारी पुस्तकालय में मौजूद हैं।

यह लिख देना कि जब हज़रत मोहम्मद हिजरत करके मदीने आये, तो वहां उनकी इज्जत हुई और रफ़्ता रफ़्ता उन्होंने एक फ़ौज बनाली विद्यार्थी के लिये मुफ़ीद नहीं हो सकता, जब तक कि उसे यह न बताया जाय कि मोहम्मद साहब को मदीने में भी चैन न मिला और उन पर और मदीने वालों पर हमले होने लगे। उस वक्त मजबूरन अपने बचाव के लिए उन्हें तय्यार होना पड़ा और इन लड़ाइयों से, जो मजबूरी से की गई थीं, हिन्दुस्तान की लड़ाई से कोई सम्बन्ध नहीं।

सर सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी का कहना है कि— अन्धविश्वास से तास्सुब पैदा होता है। लेकिन, इल्म और जानकारी की बदौलत ग़लत फ़हमियां दूर हो जाती हैं और अच्छा सम्बन्ध पैदा हो जाता है।

ज़रा सोचने की बात है कि महमूद ग़ज़नवी और मोहम्मद ग़ोरी की लड़ाइयों को मज़हबी लड़ाइयां बताया जाता है, लेकिन इतिहास लेखकों में से कोई भी यह नहीं बता सकता कि क्या मोहम्मद ग़ोरी और उसके साथियों ने इसलाम फैलाने की ग़रज़ से हिन्दुस्तान पर हमला किया? इतिहास की प्रचलित पुस्तकों में यह भी लिखा है कि इसलाम की पैरवी करने वालों को खूंरेज़ी व लूट मार बतौर एक मज़हबी फ़र्ज़ की तरह सिखाया जाता है और इसलाम में धार्मिक सहन-शीलता का नाम नहीं। अफ़सोस यह है कि इति-हास की असली बातों और उसके सार से विद्यार्थी बेख़बर रहता है। उसको यह नहीं बताया जाता कि मध्य युग में हिन्दुस्तान की नई ज़िन्दगी शुरू हुई। एक नई संस्कृति का प्रारम्भ हुआ। यहां उन दिनों वह मज़हबी आज़ादी थी, जो यूरोप के मुल्कों को सत्रहवीं, अठारवीं बल्कि उन्नीसवीं सदी में भी नसीब नहीं हुई। ये वे बातें हैं, जिनसे पढ़ने वालों के दिलों में देश के भाई बहिनों के साथ हमदर्दी पैदा होती है, उनमें अपने मुल्क की इज्ज़त बढ़ती है, नफ़रत और वह दुश्मनी, जो म्लेच्छ, यवन और काफ़िर के सम्बोधन से पैदा होती है, घट सकती है। बजाय इसके मध्ययुग को हिन्दु-स्तान के इतिहास का सब से बुरा दौर बताया जाता है। हिन्दुओं के लिये यह मुफ़लिसी, अज्ञान और धार्मिक अत्याचारों का युग बताया जाता है। नवाब मिर्ज़ा यारजंग ने खूब लिखा है कि "यदि मध्यकाल की उस मिटती हुई संस्कृति का अन्दाज़ करना हो, तो अब भी हिन्दुस्तान के किसी पुराने शहर में चले जाइये, किसी क़सबे या गांव में ही तशरीफ़ ले जाइये। आज से दस साल पहले तक यह हालत थी कि एक ही दीवाल के साए में हिन्दू मुसलमान चैन की ज़िन्दगी बसर करते थे, आपस में भाइयों और क़रीबी रिश्तेदारों की तरह रहते थे, एक दूसरे के शादी ब्याह में शरीक होते थे, और उद्योग धन्धे वाला, चाहे वह बनिया हो या बज़ाज़, हज्जाम हो या मोची, लोहार हो या बढ़ई, सुनार हो या जुलाहा, हिन्दू और मुसलमान सबों की ज़रूरतें पूरी करता था। यह बात भी बयान करने के क़ाबिल है कि मध्य काल में हिन्दू और मुसलमान अमीरों और हाकिमों ने कभी अपनी रिआया से बचकर रहना पसन्द नहीं किया और आम आबादी से दूर सिवल लाइनें क़ायम नहीं कीं।" नवाब साहब का कहना है कि क़सबा अमेठी में खास उनके मोहल्ले के हिन्दू बच्चे उनके वालिद को चचा या दादा कहते, जैसा कि वे खुद अपने वालिद के हिन्दू दोस्तों को कहते थे। लेकिन, आज ज़माना बिल-कुल बदल गया है। हिन्दू और मुसलमान बच्चों का हिन्दू और मुसलिम बुज़ुर्गों को चचा या दादा कहना, तो दरकिनार, मोहल्ले के मोहल्ले हिन्दुओं के अलग और मुसलमानों के अलग नज़र आते हैं। एक के मोहल्ले में दूसरे मज़हब के कारीगर या हज्जाम का जाना कैसा; फ़क़ीर और साधू तक की गुज़र नहीं। मकान ऐसे बनाये जाते हैं कि

हिन्दू मुसलिम इत्तहाद की ज्वाला भड़के तो मुश्किल रहे। ऐसी तफ़ावुते रह अब कुल्लाल ताबा कुजा' यानी 'रास्ता कहां से कहां पहुँच गया है।' स्वर्गीय महाराजा किशन प्रसाद ने बसन्त के मौक़े पर अपने एक दोस्त को ये शेर लिखकर भेजे थे—

> ख़ुदा कहूँ पे कहते हैं, उन्हें परमात्मा कहिये,
> अगर परमात्मा कहता हूं कहते हैं ख़ुदा कहिये!
> मेरी वहदत परस्ती पड़ गई ऐ 'शाद' झगड़े में,
> नहीं कुछ कहते बनता है अगर कहिये तो क्या कहिये!
> ये झगड़े तो यों ही आंयगे ऐ 'शाद' अब आओ,
> मुहिब्बों से नवेदे आमदे हद्दुलहा कहिये।

इसका जो जवाब महाराजा को उनके मुसलमान दोस्त ने दिया, वह भी बयान करने योग्य है। वे लिखते हैं "अगर हिन्दू मुसलमान हिन्दुस्तान के दो दरिया हैं, तो आप उनके संगम और अगर हिन्दू मुसलमान एक जिस्म की दो आखें हैं, तो आप उनके फ़ोकस और वह नुक्ता हैं, जहां दोनों की रोशनी मिल जाती है।" अफ़सोस कि हिन्दुस्तान में अब ऐसे लोग दिन बदिन कम होते जा रहे हैं। ग़ालिबन यही देखकर नव्वाब फ़ाज़िल सर तेज बहादुर सप्रू ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि "आज से पेश्तर कभी हिन्दुस्तान में सहन शीलता की इतनी ज़्यादा ज़रूरत नहीं हुई।" आज सहनशीलता की बेहद ज़रूरत है। अब यह बता देना मुनासिब मालूम होता है कि हिंदुस्तान की तारीख़ (इतिहास) में क्या होना चाहिये—

(१) मुसलमान बादशाहों ने इस मुल्क को अपना वतन समझा। इसी सर ज़मीन में पैदा हुए। जब तक ज़िन्दा रहे, इस मुल्क की ख़िदमत करते रहे और आख़ीर इसी में मर खप गए। चंगेज़ ख़ाँ मुसलमान नहीं था। उसके अनुयायी सैकड़ों बरस तक हिन्दुस्तान पर हमला करते रहे और बाज़ दफ़ा ईंट से ईंट बजाने के लिये देहली और अमरोहा तक आ पहुँचे। इन बादशाहों ने भारत की रक्षा करने और मुग़लों को निकालने में कोई कसर उठा नहीं रखी। अपनी जान ख़तरे में डालीं, अपने बच्चों को क़ुरबान कर दिया, मगर हिन्दुस्तान पर आंच नहीं आने दी।

(२) मुसलमान आते ही यहां हिन्दुओं से ऐसे घुलमिल गए कि एक नई ज़बान की बुनियाद पड़ गई और वह ज़बान मुसलमान और हिन्दुओं की कोशिश से बढ़ी और परवान चढ़ी। डाक्टर ग्रैहम बेली ने लिखा है कि "सन् १०२७ ईसवी में उर्दू ज़बान की शुरूआत हुई और लाहौर के हिन्दुओं की गोद में इसने परवरिश पाई। हुमायूं के ज़माने से उर्दू की ख़ूब ही इज़्ज़त बढ़ी और अकबर के ज़माने में, तो यह हाल हुआ कि कोई मजलिस ऐसी न थी जहां उर्फ़ी और नज़ीरी की धूम तो हो और तुलसी और सूरदास की न हो।' हिन्दुस्तान का राजनैतिक वायुमण्डल कैसा ही ग़ुबार से धुंधला क्यों न हो, लेकिन इस सात सौ वर्ष के इतिहास में यह नौबत कभी नहीं आई कि किसी शहर या किसी सराय या मुसाफ़िर ख़ाने में हिन्दू चाय और मुसलमान चाय, हिन्दू पानी और मुसलमान पानी की सदायें बुलन्द हुई हों।

(३) मौजूदा इतिहास में यह दिखाना चाहिये कि इस सात सौ बरस के ज़माने में हिन्दू मुसलमान मिलजुल कर हिन्दुस्तानी क्योंकर बन गए और इस बात का काफ़ी ख़्याल रखना चाहिये कि इतिहास की पुस्तकें पढ़कर हिन्दू मुसलमान एक दूसरे को ग़ैर न समझें। हिन्दू मुसलमानों के राज के ज़माने को अपना ज़माना समझें, उसे अपने लिये गौरव की चीज़ समझें और मुसलमान हिन्दुओं के सहयोग पर नाज़ करें। इतिहास को इस तरह लिखने से ही हिन्दुस्तान को फ़ायदा पहुँच सकता है और जब तक हिन्दुस्तान में इतिहास लेखन का ध्येय यह न होगा, तब तक हिन्दुस्तान ग़ुलामी की ज़ंजीरों से कभी रिहाई हासिल नहीं कर सकता।

(४) शुरू से लेकर अठारवीं सदी तक हिन्दुस्तान में कोई ऐसी लड़ाई नहीं हुई, जिसको

सदी क्यों में हिन्दू मुसलिम जंग कह सकें। तैमूर अगरचे मुसलमान था, लेकिन जब उसने हिन्दुस्तान पर हमला किया, तो क्या वहां के मुसलमानों ने हिन्दुओं के साथ मिलकर उसका मुक़ाबला नहीं किया ? तैमूर ने हिन्दुस्तान पर हमला करने की जो वजह लिखी है, वह भी याद रखनी चाहिये। वह लिखता है कि हिन्दुस्तान के मुसलमान काफ़िर बन गये हैं और मुसलमान बादशाह हिन्दुओं के साथ बड़ी रिआयतें कर रहे हैं।"

(५) सब विद्यार्थियों को, चाहे वे हिन्दू हों या सिख या मुसलमान, यह बताया जाय कि मध्य काल का ज़माना हम सब का सम्मिलित भारतीय ज़माना था। निस्सन्देह, उसमें सबका हिस्सा था। उसी ज़माने में बाबा गुरु नानक पैदा हुए, बढ़े और फले। इसके अलावा हिन्दुस्तान के इतिहास को मज़हब की बिना पर न तक़सीम किया जाय। एक हिस्से को हिन्दुओं का ज़माना और दूसरे को मुसलमानों का ज़माना कहकर पुकारने की ज़रूरत नहीं। इससे गैरियत की बू आती है। निफ़ाक़ का अन्देशा है और एक होने में फ़रक़ पड़ता है। हिन्दुस्तान के इतिहास लेखक अब ऐसे हों, जो इस तरह के फ़र्क़ को गवारा न करें और जिनका यह विश्वास हो कि हिन्दुस्तान के ख़मीर में हिन्दू और मुसलमान ऐसे मिले हुये हैं जैसे लफ़्ज़ 'हम' में 'ह' और 'म' मिले हैं। 'ह' से मुराद हिन्दू और 'म' से मुसलमान। ऐसे इतिहास लेखक हों जो इस उसूल पर अमल करें।

कुफ़स्त दर तरीक़ते मां कीना दाश्तन
आईने मास्त सीना चो आईना दाश्तन !

यानी हमारे तरीक़े में कीना रखना कुफ़ है और हृदय को आईने की तरह साफ़ रखना हमारा धर्म है।

आगरा]

शिकायत

[सन् १८५७ में दिल्ली के लाल क़िले पर स्वाधीनता का झण्डा फहरा रहा था। सम्राट बहादुर शाह के बूढ़े कन्धों पर अंगरेज़ों के मुक़ाबले का भार था, किन्तु क़िले के अन्दर आज़ादी के सैनिको मे अनुशासन की कमी थी और इसीलिये दिल्ली का पतन हुआ और भारत की क़िस्मत का भी क्या जाने कब तक के लिये फ़ैसला हो गया। अपने उन्हीं अनुशासन हीन सैनिकों की शिकायत में सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र ने बड़े दुख के साथ नीचे की पंक्तियां लिखी थीं और आज भी 'ज़फ़र' की ये पंक्तियां उतनी ही सच्ची हैं।]

भलों को है लाज़िम भलाई की बातें,
बुरों को है जेबा बुराई की बातें ?
ग़जब है कि दिल में तो रक्खो कुदूरत,
करो मुंह पे हमसे सफ़ाई की बातें।
'ज़फ़र' अब ज़माना बुरा आगया है,
जिधर देखो है वां बुराई की बातें।
कफ़स में है क्या फ़ायदा शोरे गुल से,
असीरो करो कुछ रिहाई की बातें।

यह उस ज़माने की बात है

कुमारी ई० आर० बेनेट

कुमारी बेनेट लन्दन की रहने वाली हैं। उन्हें भारतीयों और भारतीय सभ्यता से बेहद प्रेम है। ऐसी कोई भारतीय छात्रा नहीं है, जो पिछले ५-६ वर्षों में लन्दन गई हो और कुमारी बेनेट के संसर्ग में न आई हो। परमात्मा नाज़ी बमों से उनकी रक्षा करे ताकि वे भारत की अधिक सेवा कर सकें। लड़ाई से पहले कुमारी बेनेट को भारत आने की बेहद लालसा थी। प्रस्तुत कहानी पढ़कर पता चलेगा कि भारतीय जीवन के सम्बन्ध में उनकी तीव्र अन्तरदृष्टि है।

महावत का उसमें ज़रा भी कुसूर न था। वह बच्चा ही उछलता कूदता अचानक हाथी के पैरों पर आ पड़ा। महावत ने तो कुशलता के साथ हाथी को मोड़ा मगर बच्चे के दिल में इतना ख़ौफ़ भर गया था कि वह भी घबरा कर हाथी की ही तरफ़ मुड़ गया। हाथी सम्हला किंतु उसका उठा हुआ पैर बच्चे की नन्ही देह पर पड़ा। एक हलकी सी चीख़ उठी और वह छोटी सी कुचली हुई लाश वहां पड़ी थी!

कामदार सुनहले रेशमी हौदे पर सैफ़ अल्लाह महावत के पीछे बैठा था। गो सैफ़ अल्लाह बंगाल जैसे महान सूबे का नौजवान उद्दण्ड सूबेदार था, ताहम वह इन्सान ही था। मरते हुए बच्चे की दिल दहला देने वाली चीख उससे भी अधिक कठोर हृदय वाले को पिघला देने के लिये काफ़ी थी।

हाथी को क़ाबू में करके महावत ने दो ज़ानू बैठाया। सैफ़ अल्लाह हौदे से उतर कर भीड़ को चीरता हुआ घास फूस से छाई उस झोपड़ी की ओर गया, जिसकी किसान गृह स्वामिनी ने अनेक मन्नतें मानकर बड़े हौसले और आशाओं के साथ उस बच्चे को जन्म दिया था। सैफ़ अल्लाह ने उससे समवेदना प्रकट की। मां की आंखों के सामने अंधेरा था और बाप गुस्से से कांप रहा था।

"न्याय! बदला! ख़ून के बदले ख़ून! महावत को सज़ा मिले!" भीड़ से तरह तरह की आवाज़ें उठीं।

सैफ़ अल्लाह ने सबको शान्त करने की कोशिश की। भीड़ के तर्ज़ को देखकर उसके शरीर रक्षक निशस्त्र महावत को घेर कर खड़े हो गए। सैफ़ अल्लाह ने कहा—

"महावत का भला क्या कुसूर था। उसने तो बच्चे को बचाने की कोशिश की। अल्लाह ही को मंज़ूर न था। किन्तु तुम्हें इसका हरजाना मिलेगा।"

"बच्चे का मोल पैसा नहीं हो सकता। महावत की मौत से ही हमें शान्ति मिल सकती है"—बाप ने कांपते हुए कहा और सारी भीड़ ने उसे दोहराया। "और यदि आप न्याय न कीजियेगा तो सम्राट हमारी

न्याय करेंगे।" बाप ने एक सांस खींच कर, ठहर कर कहा।

धमकी और सैफ़ अल्लाह ! सूबेदार का चेहरा तमतमा उठा। उसकी उठती हुई भ्रूभंगी से मालूम होगया कि उसे उनकी धमकी स्वीकार है।

" मैं जब १५ वर्ष का था तब सम्राट ने मुझे इस सूबे का सूबेदार बनाकर भेजा था और मेरा यह दावा है कि मैंने इन्साफ़ के साथ तुम पर हुकूमत की" सैफ़ अल्लाह ने घूम कर भीड़ की ओर देख कर कहा— "और जिसे मेरे इस दावे से इनकार है वह सामने आवे।"

न किसी ने जवाब दिया और न कोई आगे बढ़ा।

सैफ़ अल्लाह ने हिक़ारत से कहा—" तब तुम न्याय नहीं चाहते, बल्कि बे इन्साफ़ी की मांग कर रहे हो।"

सैफ़ अल्लाह हाथी पर बैठा और महावत ने अंकुश उठाया। भीड़ में बेचैनी फैली। बदले की आवाज़ों के साथ लोगों ने महावत पर लाठियां उठाईं। सैफ़ अल्लाह ने इशारा किया और उसके शरीर रक्षक भीड़ के ऊपर झपटे। जिस तरह आंधी के आते ही पत्तियां उड़ जाती हैं, लोग तितर बितर होगये। केवल गम्भीर मुद्रा में मां बाप वहां खड़े थे और बच्चे की लाश उनके सामने पड़ी थी।

फिर सैफ़ अल्लाह की आवाज़ नरम पड़ी—

"तुम्हारे दर्द को मैं महसूस करता हूं किन्तु महावत का उसमें बिलकुल क़ुसूर न था। तुम्हीं बताओ वह क्या कर सकता था ? "

" बदला " बाप ने गुस्से में कांपते हुए कहा। सैफ़ अल्लाह ने क्रुद्ध होकर हाथी को बढ़ने की आज्ञा दी। थोड़ी देर में हाथी बर्दवान के राजमहल में दाख़िल हुआ। जुलूस के दाख़िल होते ही महल के फाटक बन्द हो गये। सूबेदार के पीछे पीछे बच्चे के माता पिता, अपने टूटे हुए दिल लेकर महल के फाटक के सामने आकर बन्द किवाड़ों का सहारा लेकर बैठ गये। धीरे धीरे शाम हुई और रात घनी होने लगी। उस तारों भरे अनन्त आकाश के नीचे किसान दम्पति की परछाईं भी काली पड़ने लगी।

दूसरे दिन सुबह भी वे उसी तरह चुपचाप बैठे थे ! उन्होंने हटने से इनकार किया। अन्त में सूबेदार ने उन्हें दीवाने ख़ास में बुलाया।

" क्या नाम है तुम्हारा ? "

" बदला " किसान ने गम्भीर मुद्रा में कहा

"मैंने तो तुम्हें मुआवज़ा देना चाहा। मैंने शांति के साथ तुम्हारी शिकायत सुनी। तुम्हीं बताओ क्या मैंने बरसों अमन और इंसाफ़ के साथ यहां का शासन नहीं किया ! किंतु जो कुछ तुम मांगते हो वह असम्भव है " रूखे स्वर में कह कर सैफ़ अल्लाह चुप होगया।

किसान पत्नी घूंघट काढ़े, चुप ज़मीन की ओर देखती खड़ी रही। उसके पति ने ऊब कर कहा—"यदि आप न्याय न करेंगे, तो सम्राट जहांगीर हमारा न्याय करेंगे। वे तो बहुत इंसाफ़ पसंद हैं। मैं सम्राट के पास अपना दुख लेकर जाऊंगा।"

किसान की इस बदतमीज़ी से सारे दरबारी क्रोध से भर गये। एक मंसबदार ने नम्रता से उठकर कहा— "जिसकी ज़िंदगी की क़ीमत एक रुपया भी नहीं, ऐसे तुच्छ किसान से क्या सूबेदार सौदा तय करेंगे ? " सूबेदार का चेहरा तमतमा उठा। वह गुस्से में भरकर किसान दम्पति पर बरस पड़ा—

" कुत्तो ! काफ़िरो ! मैं सूबेदार हूं। मलका नूरजहां मुझे अपने बेटे की ही तरह मानती हैं। मैं और तुम्हारी धमकी से डरूं !" उसने सिपाहियों की ओर मुड़कर कहा " इन्हें क़ैद में डाल दो। वहीं पर ये अपनी मूर्खता और बदतमीज़ी पर ग़ौर करेंगे। "

कई महीने के बाद दोनों क़ैदी फिर सैफ़ अल्लाह के सामने पेश किये गये। किंतु सूबेदार के अन्याय और बदले की मांग उनकी जारी थी।

" इन्हें सड़क पर निकाल दो और ऐलान करदो कि जो भी इनसे बात करेगा या इनके साथ व्यवहार रखेगा उसे मौत की सज़ा मिलेगी। ये अहसान फ़रामोश इसी

तरह दुरुस्त होंगे।" और सैफ़ अल्लाह के इस हुक्म के साथ वे लोग महल के बाहर निकाल दिये गये।

छै महीने बीत गये और सैफ़ अल्लाह उस अनजान किसान दम्पति की बात भी भूल गया। न किसी और ने उन्हें शाही सड़क पर दोबारा कभी देखा। महल की रौनक़ और राज्य का प्रबन्ध अविरामगति से चल रहे थे।

और इन छै महीनों का दुनिया के क्रम में महत्व ही क्या है? जनता का काम चल रहा था। उसकी समृद्धि में थोड़ी बहुत वृद्धि ही हुई। वे ख़ुशी से लगान देते थे और ब्याह शादियों में मंगलोत्सव मनाते थे। लाहोर के शाही महल में सम्राट प्रेम से नूरजहां के दिल पर हुकूमत करता था और नूरजहां अमन से सम्राट के साम्राज्य पर।

सैफ़ अल्लाह नूरजहां की अपनी बहिन ही का तो लड़का था। लाहोर के महल में साम्राज्ञी की देख रेख में उसका लालन पालन और शिक्षा दीक्षा हुई। वह इतने बड़े सूबे का सूबेदार बनाया गया किन्तु एक दिन भी सम्राट को उससे शिकायत नहीं हुई। सैफ़ अल्लाह में थोड़ा अभिमान अवश्य था किंतु वह पाक और साफ़ ज़िन्दगी बसर करता था। सैफ़ अल्लाह के शासन में बंगाल के किसान सुखी, कारीगर ख़ुशहाल और व्यापारी समृद्ध थे।

और यकायक सैफ़ अल्लाह के जीवन के क्रम में बाधा पड़ी। छै महीने हुए उसने एक असहाय किसान दम्पति को राज मार्ग पर डाल दिया था। वह राज मार्ग तो सीधा दूर लाहोर से भी परे जाता था। शेरशाह की उस पवित्र स्मृति को कितने ही मुग़ल बादशाहों ने पक्का बना कर उसके दोनों किनारों को वृक्षों, पुलों, कुंओं और सरायों से सजा दिया था। कोई अंधा व्यक्ति भी साम्राज्य के एक सिरे से उस पर चल कर सुरक्षित लाहोर में सम्राट जहांगीर के महल के नीचे पहुंच सकता था।

नूरजहां ने अपने भाञ्जे सैफ़ अल्लाह को लिखा—"एक किसान और उसकी बीवी राजमहल के झरोखे के नीचे आकर इन्साफ़ की दुहाई देते हैं। वे दोनों तुम्हारे ही सूबे से आये हैं। बेटे! उनकी क्या शिकायत है? तुम जानते हो जहांपनाह ग़रीबों की शिकायत पर कितना ग़ौर करते हैं।"

पहली बार सम्राट के क्रोध की छाया सैफ़ अल्लाह की सुनहली ज़िन्दगी के चमकते हुए भविष्य पर पड़ी। सैफ़ ने फ़ौरन हरकारा भेजकर मलका मासी से प्रार्थना की कि "ख़ुदा के लिये उन्हें जहांपनाह से न मिलने दो।"

लाहोर के क़िले से मासी का जवाब आया—"मैंने उन्हें तरह तरह के इनाम देकर बिदा करना चाहा लेकिन वे तो महल के फाटक पर रावी के किनारे गिद्धों की तरह मंडरा रहे हैं।"

साम्राज्ञी का ख़याल ठीक था। शान्त आकाश में उड़ते हुए जिस तरह गिद्ध अपने उद्देश्य पर नज़र रखता है, अनजान बंगाली किसान दम्पति उसी तरह रावी की लहरों पर आंख रखते। अचानक शाम को जहांगीर का शाही बजड़ा नर्तकी की पगध्वनि, मंजीरे की लय और गायक के स्वर में मन्द मन्द वायु को चीरता, रावी की लहरों पर थिरकता हुआ आ निकलता था। शांत गम्भीर और दृढ़ वे किसान पति-पत्नी अन्तमें एक दिन बजड़े के ऐश के उत्सव को भंग करने में सफल हुए।

"सम्राट! जहां पनाह! न्याय करिये।" उनकी पुकार हवा को चीरती हुई बजड़े पर पहुँची और सहसा सारा नाच रंग मानो ठोकर खाकर निर्जीव गिर पड़ा! केवल रह गई लहरों और क्षितिज की तरफ़ दौड़ती हुई संगीत की बुझती तरंग-ध्वनि! सब कुछ मौन स्तब्ध था! केवल रावी की लहरें बजड़े से टकरा कर कभी कभी थड़, थड़, का स्वर निकाल रही थीं। उसके बाद दृढ़ किन्तु धीमे स्वर में जहांगीर की आवाज़ आई—

"कौन, जहांगीर को न्याय के लिए कौन पुकार रहा है?"

"जहां पनाह! न्याय!" कहते भीड़ को चीरते किसान किनारे की ओर बढ़ा। उसकी पत्नी चुप खोई हुई सी उसके पीछे पीछे थी।

"किनारे लगाओ !" बजड़े के मांझियों को हुक्म मिला। कामदार पोशाक पहने मांझियों ने धीरे धीरे उस सुनहले बजड़े को किनारे की ओर लगाया।

"क्या है तुम्हारी शिकायत ?" सम्राट ने प्रेम से पूछा। सम्राट को सच्चा अभिमान था कि उसके हाथों ग़रीब और अमीर सब को सदा एक सा न्याय मिलता है। ज्यों ज्यों किसान अपनी शिकायत सुनाता गया घृणा से उसकी आवाज़ भारी होती गई। सम्राट के चेहरे पर शिकन आ गई। न्याय की दुहाई देते हुए दोनों पति पत्नी ज़मीन पर लोटने लगे।

"तुम्हें न्याय मिलेगा" सम्राट ने वादा किया। कुछ अशरफ़ी उन्हें इनाम में दी गई और कुछ भीड़ में लुटाई गई। बजड़ा फिर किनारे से हट कर लहरों पर खेलने लगा। संगीत की लय और नृत्य की थाप फिर से हवा में गूंजने लगीं। किन्तु सम्राट चुप और उदासीन बैठा रहा। नाव जब महल के किनारे लगी, वह दैनिक क्रम के विरुद्ध बजाय नूर जहां के पास जाने के अपने, निजी कमरे में गया। उसने घटना की सच्चाई की जांच के लिये अपने विश्वासी अफ़सरों को बुलाकर बर्दवान भेजा।

विश्वस्त अफ़सरों ने बर्दवान से लौटकर अनिच्छा पूर्वक सम्राट को अपनी जांच के परिणाम सुनाये। अनिच्छा से इसलिये कि सैफ़ अल्लाह नूरजहां का सगा था, उसका कृपा पात्र था। महल में उसका रुतवा युवराज से कम न था। यदि वह शक्तिशाली मित्र बन सकता था, तो भयंकर शत्रु भी हो सकता था। अफ़सरों ने बच्चे की मृत्यु, दम्पतियों को जेल और देश निकाला—सारी घटनायें सुना दीं।

सम्राट ने चुप सारी बातें सुन कर अफ़सरों को बिदा किया। उसने चिन्तित भाव से सोने की क़लम उठाई और उद्धत सैफ़ अल्लाह को लिखा "किसान दम्पति के साथ न्याय करो। उन्हें शांति के साथ जीवन बिताने दो।'

जहांगीर ने आगे लिखा—"सम्राट जिस तरह अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतों के क़ायल होते हैं उसी तरह वे न्याय के भी पाबन्द होते हैं। इसीलिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि इन अभागों की भलाई का ज़िम्मा तुम्हारे ऊपर है।"

किन्तु सैफ़ अल्लाह की रगों में ईरानी ख़ून था। वही ख़ून जो नूरजहां की रगों में दौड़ता था। उसका दर्प चीत्कार कर उठा। क्या वह ख़ुद नूरजहां की बड़ी बहन का लड़का नहीं है ? क्या वह सम्राट के सब से वफ़ादार प्रधान मंत्री का नवासा नहीं है ? क्या सम्राट ने बचपन में उसे गोद में लेकर नहीं खिलाया ? क्या सम्राट ने बचपन में उसे कौतुक ही में कई बार सिंहासन पर नहीं बिठाया ? क्या सम्राट ने कई बार यह नहीं कहा कि सैफ़ को वह नूरजहां की औलाद की तरह समझता है ? क्या वह सब स्वप्न मात्र था ? ये दो अभागे अनजान किसान क्या उसके भाग्याकाश को धुंधला करने की क्षमता रखते हैं ? सैफ़ अल्लाह का चित्त ग्लानि से खिन्न होगया।

वह गम्भीरता से उनके आने की प्रतीक्षा करने लगा। ज्यों ही उसे उनके प्रान्त में दाख़िल होने की इत्तला मिली, उसने उन्हें गिरफ़्तार करवा कर जेल में डाल दिया। उन्हें प्राणदण्ड देने की उसे हिम्मत न हुई।

उसने सन्तोष के साथ गरज कर कहा—"अब सारी ज़िन्दगी उन्हें इसी तरह सड़ सड़ कर मरने दो।"

कई महीने बाद एक दिन अचानक घबड़ाये हुये सन्तरियों ने आकर सूबेदार को इत्तला दी कि वह किसान परिवार जेल से जाने कैसे भाग गया। सिपाहियों ने ज़मीन आसमान एक कर दिया मगर उनका पता न चला।

सैफ़ ने फ़ौरन अपनी मलका मासी को उस किसान दम्पति के भागने की इत्तला देते हुए लिखा कि "ख़ुदा" के लिये उन किसानों को सम्राट से न मिलने देना।" सैफ़ का सांडनी सवार ख़त लेकर तेज़ रफ़्तार से लाहोर पहुँचा, किन्तु उसके ख़त से भी ज़्यादा तेज़ रफ़्तार से उसकी बदक़िस्मती लाहोर पहुँच चुकी थी।

ख़त भेजने के बाद सैफ़ भारी तबियत से चेहल क़दमी करता रहा। चिन्ता की रेखायें उसके कपोल पर उभर आईं। किसी बात में उसका मन न लगा।

जिसकी उसे आशंका थी एक दिन सम्राट का तलबी का फ़रमान उसके पास पहुंच गया।

मुग़ल दरबार में अपने रुतबे के अनुकूल शान बान से, सैफ़ अल्लाह बंगाल का सूबेदार, लाव और लश्कर के साथ अपने स्वामी की ख़िदमत में पेश होने के लिये लाहोर रवाना हुआ। लाहोर पहुंच कर महल के सामने मैदान में उसका पेशख़ेमा पड़ गया। उसके हरम की औरतों के लिये रेशमी छोलदारियां खड़ी कर दी गईं। उसके संगीतज्ञों ने अपने वाद्य यंत्र सम्हाले, उसकी परम सुन्दरी नर्तकियों ने अपनी भौहों की कमान और सैनों के तीर दुरुस्त किये। आख़िर सम्राट संगीत, नृत्य और सुरा का क्या बेहद प्रेमी न था?

सैफ़ ने अपने एक चतुर दरबारी को सम्राट की सेवा में भेजकर मुलाक़ात की प्रार्थना की।

सैफ़ को छोटा सा जवाब मिला कि सम्राट दूसरे दिन सुबह रावी के किनारे उससे मिलेंगे। आज की रात उसे सूबेदार की हैसियत से ऐशो इशरत की इजाज़त है।

इस जवाब से अभिमानी सूबेदार की तबियत को बड़ी ठेस पहुंची। इससे पहले उसके आने की ख़ुशी में सारा शहर मोद से भर जाता था। और आज... उसका मन मसोस उठा। एक साधारण दर्शक की तरह उसके साथ बर्ताव किया गया। उसका दर्प सरोष हो उठा। उसने हुक्म दिया कि शराब और नाच के दौर चलें, मजलिस जमे और रात भर जश्न मनाया जाय।

तबलों की ठनक, मंजीरों की ध्वनि और पैरों की ठुमकी के साथ किलोल करते हुए राग, रात्रि की निस्तब्धता को चीरते, रावी की लहरों पर तैरते, पार खड़े जहांगीर के शाही महल की प्राचीरों को टक्कर देने लगे। आज की रात, बस आज की रात मानों दुनिया की विभूति और ऐश्वर्य अन्तिम महोत्सव में संलग्न हैं। समय के नापचक्र में कल नाम की भी वस्तु है, उसकी किसी को आज चिन्ता न थी।

और प्रभात ने जब उषा के कपोल चूमे। सैफ़ अल्लाह अपनी सब से अच्छी पोशाक में नदी के तट पर सम्राट के आमद की प्रतीक्षा करने लगा।

जिस समय सूरज अपनी गुलाबी किरन से क्षितिज के माथे में सिंदूर भर रहा था, क़िले के फाटक से मख़मली झूलों से सज्जित शाही हाथी मस्ताना चाल से बाहर निकला। रावी की लहरों से अठ खेलियां करता हुआ वह दूसरे किनारे की ओर बढ़ा। हाथी पर सुनहला हौदा पड़ा हुआ था और महावत के पीछे वही किसान दम्पति सिकुड़े हुए बैठे थे।

युवक सैफ़ शाही हाथी की चाल को ग़ौर से देख रहा था।

फिर उसने आश्चर्य से देखा कि स्वयं सम्राट साधारण कपड़े पहने हुए महल से बाहर निकल कर बजड़े में बैठे। मांझियों ने बजड़े को दूसरे किनारे की ओर मोड़ा।

सैफ़ हाथी की बात भूल गया। उसने गम्भीर और दृढ़ आवाज़ में अपने सैनिकों को सम्राट के इस्तक़बाल में क़तार बनाने का हुक्म दिया और ख़ुद रावी के तटपर दो ज़ानू होकर सम्राट के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

सम्राट बजड़े से उतर कर किनारे आया। उसके चेहरे पर मौत की सी गम्भीरता थी। जो सम्माननीय सूबेदार दो ज़ानू बैठा था उससे उसने एक बात न की। सम्राट ने सैफ़ के सिपाहियों को हुक्म दिया "इस आदमी की मुस्कें कसलो।"

सुबह की हवा ने सम्राट के तीखे स्वर को सैफ़ की फ़ौज के हर आदमी के कान तक पहुंचा दिया। वे सन्नाटे में चुप चाप खड़े रहे मानो उन्हें लकवा मार गया हो। जब सम्राट ने दोबारा अपनी आज्ञा दुहराई तो उसमें से दो आदमियों ने आगे बढ़कर अपने सरदार की मुस्कें कसलीं। सैफ़ न हिला न डुला।

"इसे ज़मीन पर लिटा दो" सम्राट ने हुक्म दिया।

चुप, ज़रा सी भी आवाज़ निकाले उन्हों ने अपने ही सूबेदार को रास्ते पर डाल दिया।

हाथी झूमता हुआ किन्तु धीरे धीरे आगे बढ़ा; मानो उसे भी अपने गुरुतर कर्तव्य का ज्ञान था।

महावत सहम उठा। उसने झिझक कर हसरत से सम्राट की ओर देखते हुए हाथी का रुख बदलना चाहा। "हुकुम उदूली की सज़ा मौत है", सम्राट ने सख्ती से कहा। महावत की आंखों में आसू थे, दिल में दर्द, लेकिन हाथी को पथ की रुकावट तो दूर करनी ही थी।

× × ×

जहांगीर के हुक्म से सैफ़ की मय्यत का शानदार जनाज़ा उठा। सारे दरबारी जुलूस के साथ थे। शाही बाजों के साथ लाश अन्तिम बार महल के अन्दर दाखिल हुई। जहांगीर ने हुक्म दिया—

'दो महीने तक हमारे प्यारे अज़ीज़ सैफ़ के लिये राज्य भर में मातम मनाया जायगा।"

फिर मुड़कर उसने दुखी नूर-जहां से कहा—"मैं उसे अपने बेटे की तरह प्यार करता था मलका! लेकिन न्याय के बन्धन को तो कोई सम्राट भी नहीं तोड़ सकता।"

लन्दन]

अपमानित

विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

ओ मेरे अभागे देश, तुमने लोगों को अपमानित किया आज तुमको भी अपमान के द्वारा सबके बराबर होना पड़ेगा।

मनुष्य का अधिकार छीनकर तुमने उनको ठगा, सामने दीनता पूर्वक खड़ा रहने पर भी गोद में नहीं लिया। पर आज इसी अपमान से तुमको सबके बराबर होना पड़ेगा।

मनुष्य के छू जाने को बचाने के लिए तुम दूर हट गए, मनुष्य के दिल में बैठे हुए प्राणों के देवता का तुमने अपमान किया। पर आज (उसी पाप से) विधाता के रुद्र रोष से तुम दुर्भिक्ष के दर्वाजे पर बैठे हो। अब तुमको सभी (आदमियों) के साथ बैठकर और बाँटकर खाना और पीना होगा।

तुमने अपने आसन से जिन आदमियों को धकेल दिया, जबरन् निर्वासित कर दिया, पैरों से रौंद दिया और धूल में मिला दिया; आज वहीं और उन्हीं के साथ तुमको आना होगा। बिना वहाँ आए तुम्हारा कल्याण नहीं है। जिनको तुमने नीचे फेंका, उन्होंने तुमको नीचे बांध लिया, जिनको तुमने पीछे रखा, वही आज तुमको पीछे खींच रहे हैं। अज्ञान और अंधकार में जिनको बन्द किया, आज वही तुम्हारे मंगल को, कल्याण को ढाँक रहे हैं, दबा रहे हैं और बहुत बड़ा फ़र्क़ पैदा कर रहे हैं। आज तुमको इन्हीं अपमानितों के साथ आकर बराबर होना होगा।

हज़ारों शताब्दियों से ये तुम्हारे अपमान का बोझा ढो रहे हैं, तब भी तुम इन नरों में बास करनेवाले नारायण को नमस्कार नहीं करते? तुम (अपनी गर्वीली) आँखों को झुकाकर नहीं देखते हो कि इन दीन और पतितों के बीच में, धूल में तुम्हारे भगवान पड़े हैं!

तुम देख नहीं रहे हो कि मौत का दूत तुम्हारे दर्वाजे पर खड़ा है और तुम्हारे जातीय अहंकार पर उसने अभिशाप की मुहर लगादी है! अब यदि तुम सबको एक साथ नहीं बुलाते हो और आज भी अपनी जातीयता के अभिमान में पड़े रहते हो, तो याद रखो एक दिन चिता की राख में तुम सबको बराबर मिलना पड़ेगा।

दो गीत

कुमारी रैहाना तय्यब जी

[कुमारी रैहाना तय्यब जी स्वर्गीय अब्बास तय्यब जी की लड़की हैं। कुमारी रैहाना सच्चे अर्थों में मुसलमान हैं। वे गुजराती, अंगरेज़ी, उर्दू और हिन्दी की पूर्ण विद्वान हैं। अंगरेज़ी और उर्दू की उच्चकोटि की कवि हैं। वे मोहम्मद की प्रशंसा के भी गीत गाती हैं और कृष्ण की भक्ति के भी। 'ओम्' भी कहती हैं और 'बिस्मिल्लाह' भी। क़ुरान भी पढ़ती हैं और गीता भी। उनकी दृष्टि में ख़ुदा का नूर और ज़हूर हर इनसान के अन्दर है। कृष्ण भक्ति पर उनकी अंगरेज़ी पुस्तक The Heart of a Gopi की विद्वानों ने बेहद प्रशंसा की है। गुजरात में लोग उनकी मीराबाई से तुलना करते हैं। वे प्रेम से गद्‌गद होकर भक्ति के गीत गाती हैं। उनका जीवन सरल और सच्चा है। वे अविवाहित हैं, और निरामिष भोजी हैं। इस अंक में हम उनके दो गीत दे रहे हैं।]

(१)

प्रीत की रीत

न हो सफल तेरो साधन साधो,
जुग सहस्र चाहे जतन करे।
प्रीत की रीत न जानी रे, अरु भक्ति करन की आस धरे।

प्रेम स्वरूप को प्रेमहि प्यारा,
वह तो प्रेम का सागर सारा।
प्रेम का अमृत प्रेम सों पीवे, काहे तू प्रेम सों व्यर्थ डरे?

शुष्क ज्ञान सों प्रभु न रिझावे,
उग्र तपस् सों हरि झुंझावे।
रस सों रसिया को गले लगाले, नैन में प्रेम के आंसू भरे।

ज्ञान न जानूं ध्यान न जानूं,
सिद्धि चमत्कृति को ना मानूं।
भोली रैहान तो हरि चरनन को, छाती सों चाप के रोय परे।

(२)

प्रेम की गति

मो सों न बोलो मैं तो भई बावरी !

ना पूछो मो सों हिरदे की बतियाँ,
ना कोई जाने प्रेम की गतियाँ,
देख न पाई वो श्याम सुरतियाँ,
आह कैसी वो मनहर सुरत साँवरी।

नैन की रजनि में तारे चलके,
होठ पे हास्य की बिजुली झलके,
कोमल कमल बदन क्या मलके,
तोहे क्या सुनाऊँ देखम आवरी।

झिल मिल, झिल मिल अनुपम काया,
एक झलक ही से तम्मर आया,
सुरज तो वाकी झाँकी की छाया,
कैसे कैसे वो बरनूं दिव्य प्रभाव री।

हस्त व नील सरोज की कलियाँ,
जामे से छुन छुन किरन निकलियाँ,
चन्द्र समान वो चरन कमलियाँ,
चोरे चित्त मेरो अब क्या बचाव री।

रैहान को प्रभु की प्रीत ने मारी,
बहुत लड़ी पर आख़िर हारी,
सबहि गयो तब रहे मुरारी,
मोरी अब साँची पार लगी नाव री।

बड़ौदा]

—

भारतीय संस्कृति का मेरुदंड-ज्योतिष

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

['विश्ववाणी' को इस रूप में पाठकों के सामने लाने में आचार्य हज़ारी प्रसाद जी द्विवेदी का बहुत बड़ा हाथ है। द्विवेदी जी ज्योतिष के भी प्रकाण्ड पण्डित हैं। स्वयं गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हमारे सामने आग्रह कर के द्विवेदी जी से अपनी जन्मपत्री की व्याख्या करने के लिये कहा था। प्रस्तुत लेख-माला में द्विवेदी जी भारतीय ज्योतिष की ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विवेचना कर रहे हैं। इन लेखों में पाठकों को अनेक अमूल्य बातें मालूम होंगी]

प्राचीन पंडितों ने कहा है कि ज्योतिष शास्त्र वेद भगवान् की आंख है। क्योंकि वेद यज्ञों का विधान करते हैं, यज्ञ के लिए समय का ज्ञान नितान्त आवश्यक है और समय ज्योतिष के द्वारा ही ठीक ठीक निर्धारित किया जा सकता है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र वेद की आंख है और ऐसा होकर वह अन्य सभी वेदाङ्गों से श्रेष्ठ है। भास्कराचार्य ने ठीक ही कहा है कि और सभी अंग बने ही हुए हों पर आंखें दुरुस्त न हों, तो कोई मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता (सिद्धान्त शिरोमणि, गणिताध्याय, १,९-१२)। परन्तु ज्योतिष शास्त्र वेद भगवान् की चाहे आंख हो; पर हिन्दू धर्म की वह क्या है, कुछ ठीक उपमा समझ में नहीं आती,—शायद रीढ़ है। एक बार हिन्दू धर्म की पृष्ठभूमि से ज्योतिष को हटा कर देखा जाय तो मेरी बात स्पष्ट हो जायगी। जन्म से भी पूर्व से ले कर मरण के बहुत बाद तक प्रत्येक हिन्दू के आचार-विचार और क्रिया-कर्म का शासन ज्योतिष से होता है। गांव के पुरोहित के हाथ से पंचांग छीन लिया जाय, तो वह शस्त्र-हीन योद्धा की भांति हत बुद्धि हो रहेगा। व्रत और उपवास, विवाह और उपनयन, जन्म और मृत्यु, स्वप्न और निद्रा, आहार और विहार—कहां ज्योतिष का आधिपत्य नहीं है, यह खोज निकालना कठिन है। गांव में हिन्दू के घर चूल्हा भी नहीं बन सकता, हल तक नहीं चलता, कपड़े तक नहीं पहने जा सकते, बिछौना तक नहीं बिछाया जा सकता, यदि ज्योतिष शास्त्र ने आज्ञा न दे दी हो। पर इतना ही नहीं है, ज्योतिष शास्त्र इससे भी अधिक व्यापक है। वह हिन्दू धर्म की अनन्य-साधारण विशेषता और सर्वाधिक मर्मस्थल की भी उपेक्षा करके एक समानान्तर व्यवस्था चलाने में भी सफल हुआ है। यह व्यवस्था ज्योतिष के प्रचण्ड प्रभाव का सबूत है।

संसार की सामाजिक व्यवस्था का अधिकचरा विद्यार्थी भी आंख मूंद कर कह सकता है कि जातिभेद हिन्दू धर्म की अपनी विशेषता है। अंग्रेजी में जो 'कास्ट' शब्द प्रचलित है, वह इस देश से संबंध होने के पहले वहां अज्ञात था। जब वास्को-दि-गामा के पोर्चुगीज़ अनुगामी प्रथम बार भारत वर्ष के पश्चिमी किनारे पर पहुँचे, तो यहां छुआ छूत के विशेष नियमों को देखकर

वे स्थिर न कर सके कि अपनी भाषा में इसे किस शब्द से परिचित करायें। उन्होंने लैटिन Castus के आधार पर Castas शब्द गढ़ लिया और इसका प्रयोग उन्होंने वंश शुद्धि के अर्थ में किया था। इस प्रकार यह नया शब्द पोर्चुगीजों के द्वारा सारे यूरोप में प्रचारित हुआ और संसार के समाज शास्त्र के अध्येताओं द्वारा भारतीय समाज की विशेषता के रूप में गृहीत हुआ। शुरू शुरू में यूरोपियन लेखकों ने इस शब्द से छुआछूत का ही संबंध मान लिया था पर अधिक परिचय के बाद वे समझने में समर्थ हुए कि जाति-प्रथा का छुआछूत से गौण संबंध है, विवाह और जन्म से मुख्य। और चूंकि जन्म स्वयं विवाह का फल-मात्र है, इसलिये जाति-प्रथा मुख्य रूप से विवाह के नियमों पर आधारित है। एक जाति का विवाह दूसरी जाति से नहीं हो सकता यद्यपि कभी कभी जाति के अन्तर्गत एक कुल का विवाह दूसरे कुल से हो सकता है परन्तु इन विवाहों के कठोर नियम हैं और नीचा समझा जाने वाला कुल ऊंचा समझे जाने वाले कुल को केवल लड़की दे सकता है। परन्तु विवाह के इन्हीं कठोर नियमों का नियंत्रण एक एक दम नवीन और समानान्तर वर्णव्यवस्था से ज्योतिष शास्त्र करता है। अन्यान्य सभी सामाजिक नियमों के ठीक ठीक मिलते रहने पर भी यदि ज्योतिष शास्त्र की विचित्र व्यवस्थाओं से लड़का शूद्र और लड़की ब्राह्मण सिद्ध हो जाय तो विवाह नहीं हो सकता! ज्योतिषशास्त्र की यह व्यवस्था ब्राह्मण के पुत्र को शूद्र वैश्य या क्षत्रिय बता सकती है और शूद्र की सन्तति को भी ब्राह्मण क़रार दे सकती है। जो विश्वास-परायण हिन्दू अन्य अवस्थाओं में जन्मगत जाति के दावे से तिलमात्र भी हटने को तैय्यार नहीं होते वे ही ज्योतिष शास्त्र की इस व्यवस्था को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं। एक उदाहरण लिया जाय। विश्ववंद्य महात्मा गांधी हिन्दू समाज की कठोर व्यवस्था से हमेशा के लिये बनिया हैं। पूने की लोकमान्य तिलक की स्थापित 'शुद्ध पंचांग प्रवर्तन समिति' ने भविष्य सिद्धान्त नामक एक ग्रंथ छापा है। इस में महात्मा जी की कुण्डली दी हुई है। तदनुसार महात्मा जी की जन्म राशि सिंह है। अगर इस प्रबंध के पाठक ज्योतिष कुछ भी न जानते हों' तो भी यदि वे काशी विश्वविद्यालय से प्रकाशित और पूज्य मालवीय जी द्वारा संपादित पंचांग को खोल कर पृ० ६ पर देखें तो मालूम होगा कि उक्त-राशि वाला व्यक्ति क्षत्रिय वर्ण का होता है। महात्मा जी के विवाह के अवसर पर उन्हें क्षत्रिय समझ कर ही कन्या का विचार किया गया होगा! इसीलिये ज्योतिष शास्त्र हिन्दू धर्म के समस्त सामाजिक और धार्मिक विधि-व्यवस्थाओं का अप्रतिद्वन्दी नियन्ता है।

यह ज्योतिष शास्त्र क्या है? औसत गृहस्थ 'ज्योतिष' शब्द को उन सभी विद्याओं के लिये प्रयुक्त करता है, जिन से भूत, भविष्य या वर्तमान की अज्ञात या अज्ञेय बात जानी जा सके। काक का बोलना, सियार का रोना, छिपकली का गिरना, किसी का रास्ता काटना—सब ज्योतिष के दायरे में आते हैं। अचानक किसी अंग का फड़क जाना, छींक आ जाना, हड्डी बज उठना, हथेली खुजला जाना सब के विषय में ज्योतिष को बोलने का अधिकार है। हाथ की चित्र विचित्र रेखायें, केशों की गठन, भृकुटि का तनाव, ललाट का आकुंचन, रोम-कूप के अंकुर, पैर की लकीरें—सर्वत्र ज्योतिष की व्यवस्था पहुंचती है। और फिर ग्रहों और नक्षत्रों के संचार, धूमकेतु का उदय, उल्काओं का पतन, मेघों का रंग और आकार, हवा-पानी का रुख—सर्वत्र ज्योतिष की पहुँच है। संक्षेप में, ज्योतिष इस देश के रहने वालों के बाहर, भीतर, ऊपर, नीचे, दायें, बायें सभी ओर अपना प्रभाव रखता है।

किन्तु स्वयं ज्योतिष के आचार्य इतने व्यापक अर्थों में इस शब्द का प्रयोग नहीं करते।

वराहमिहिर ने बताया है (बृहत्संहिता १९) कि अनेक विषयों का निरूपण करने वाला ज्योतिष शास्त्र मुख्यत: तीन भागों में विभक्त है—संहिता-स्कंध, तंत्र या गणित-स्कंध और होरा-स्कंध या अंग-विनिश्चय। संहिता-स्कंध को ही गर्ग ने 'शाखा' भी कहा है। स्वयं 'ज्योतिष' शब्द का जो व्युत्पत्तिगत अर्थ है, उससे जान पड़ता है कि आकाश के ज्योतिष्कों से उसका संबंध रहा होगा। परवर्ती काल में उसका क्षेत्र क्रमशः स्फीत होता गया है और वस्तुत: ज्योतिष के नाम पर ऐसी बहुत सी चीजें परवर्ती साहित्य में घुस आई हैं, जो शायद उन आचार्यों की कल्पना में भी नहीं आई थीं, जिन्होंने इस शास्त्र को वेद की आंख कहा था। नाना जातियों के नाना प्रकार के विचार और विश्वास एक पर एक जमते गये हैं और इस प्रकार के जमाव से वेद की आंख उसके अन्यान्य सभी अंगों की अपेक्षा अधिक आश्चर्य और कुतूहल की वस्तु हो गई है। कभी कभी तो ये जमे हुए स्तर वेद की आंख के पर्दे ही साबित हुए हैं और उनके द्वारा निश्चित रूप से वे सिद्धान्त और धर्म-विश्वास आच्छन्न हुए हैं, जो वस्तुत: वैदिक साहित्य की विशेषता हैं।

इस में कोई संदेह नहीं कि वैदिक युग में ज्योतिष का बहुत अच्छा ज्ञान था। वाजसनेयि संहिता के अन्तिम भाग में और छान्दोग्योपनिषद् में केवल ज्योतिषिक विज्ञान की ही चर्चा नहीं है, नक्षत्रों का निरीक्षण या सूचना करने वाले एक पेशेवर श्रेणी की भी चर्चा है। तैत्तिरीय संहिता में २७ या २८ नक्षत्रों की चर्चा है और ब्राह्मणों से निश्चित रूप से सिद्ध किया जा सकता है कि वैदिक आर्य नक्षत्रों की गति विधि को काफ़ी सावधानी से निरीक्षण करते थे। चंद्रगुप्त मौर्य्य के दरबार में जो ग्रीक आये थे। उनकी लिखित विवृतियों के उत्तर कालीन जो रूप उपलब्ध हुए हैं, उनसे स्पष्ट है कि ब्राह्मणों के ज्योतिष का प्रेम और ज्ञान चकित कर देने वाला था। परन्तु सब होते हुए भी यह आश्चर्य की ही बात कही जायगी कि वेदों में ग्रहों का कोई उल्लेख नहीं है। तैत्तिरीय आरण्यक में एक जगह "सप्त सूर्या:" शब्द आया है और इसे लेकर पंडितों में काफी बहस होती रही है कि ये सात सूर्य सात ग्रह ही हैं या नहीं। बृहस्पति और शुक्र शब्द तो निश्चित रूप से वेदों में आते हैं और यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि आकाश के ज्योतिष्कों के लिये भी उन शब्दों का प्रयोग हुआ है; पर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि इन ज्योतिष्कों से अन्यान्य नक्षत्रों का क्या भेद है, यह ज्ञान भी उन दिनों था। आज से साठ वर्ष पहले वेबर ने कहा था कि ग्रहों का आविष्कार हिन्दुओं ने स्वतंत्र भाव से किया था या किसी अन्य जाति से सीखा था, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। साठ वर्ष बाद भी यह प्रश्न जहाँ का तहां ही है।

इस प्रसंग में यह आश्चर्य की बात है कि लगधमुनि के ज्योतिष-वेदांग में, जो निश्चित रूप से हिन्दू ज्योतिष-विज्ञान का प्राचीन तम ग्रंथ है, केवल सूर्य और चंद्रमा की गतियों का ही विचार किया गया है। अन्यान्य ग्रहों की बात उसमें है ही नहीं। लगभग इसी समय ज्योतिष के दो जैन ग्रन्थ भी लिखे गये थे—सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति। इन दोनों में भी सूर्य और चन्द्र के सिवा और किसी ग्रह की चर्चा नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि वैदिक साहित्य के अन्तिम अंश 'सूत्र-साहित्य' के बनने के युग तक ग्रहों का कोई स्पष्ट ज्ञान हिन्दुओं को नहीं था। स्वयं ग्रह शब्द का अर्थ भी पकड़ने या 'सताने वाला' है और इस में ज्योतिष शास्त्रीय किसी भावना के स्थान पर पौराणिक विश्वास या फलित-विश्वास की ही सम्भावना जान पड़ती है। एक और मजे की बात इस सिलसिले में स्मरण कर ली जा सकती है। संपूर्ण वैदिक संहिताओं में शनि या राहु आदि ग्रहों की तो बात ही क्या ये शब्द किसी और

अर्थ में भी व्यवहृत हो कर प्रयुक्त हुए नहीं जान पड़ते। अन्ततः ग्रह याग की विधियों का जिन प्राचीन आचार्यों ने विधान किया है, उनको ऐसे शब्द संपूर्ण संहिता भाग में नहीं मिले। यह नियम सा रहा है कि जब कोई नई वस्तु वैदिक आचार-परंपरा का अङ्ग हो जाती रही है, तो उस से मिलते जुलते शब्द वाला मंत्र उसकी विधि में चला दिया गया है, फिर वह मिलता जुलता शब्द उस नवीन वस्तु से संबद्ध हो या नहीं। उदाहरणार्थ सिंदूर दान आज कल हिंदू विवाह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। पर है यह आर्येतर प्रथा। संभवतः नागों से इसे ग्रहण किया गया था; क्योंकि सिंदूर का एक प्राचीन नाम नागचूर्ण था। अब सारी वैदिक संहिता में सिंदूर शब्द को नहीं खोजा जा सका और अन्त में "सिंधोरिवाप्रनासः। वाला मंत्र इस कार्य के लिये चला दिया गया, जो "सिंधोः+इव" की संधि से बना है और सिंदूर के साथ केवल श्रुति-साम्य भर का संबंध रखता है। इस प्रकार के उदाहरणों पर से पंडितों ने अनुमान किया है कि ऐसी बातें बाद में वैदिक आचार-परंपरा का अंग बनी हैं।

शनि और राहु के मंत्रों को अगर देखा जाय तो यही बात सिद्ध होती है। मैंने इन मंत्रों को प्रसिद्ध स्मार्त्त आचार्य रघुनन्दन भट्ट के 'ग्रहयाग तत्व' नामक ग्रन्थ से संग्रह किया है। इस ग्रंथ की टीका से जान पड़ता है कि आचार्य ने मत्स्य पुराण और याज्ञवल्क्य के प्रमाण पर इन्हें स्वीकार किया था। शनि का मंत्र है—ओं शन्नो देवी रभीष्टये आपो भवन्तु प्रीतये। शंयोरभिस्रवंतुनः। यहां "शम्+नः" इन दो पदों में संधि हो कर 'शन्नो' बना है। 'शनि' या 'शनैश्चर' शब्द से श्रुति-साम्य के सिवा और कोई भी संबंध नहीं है। राहु का मंत्र है-' ओं कांडात्काण्डं प्ररोहन्ती' इत्यादि। इस में 'प्ररोहन्ती' पद 'राहु' के 'र' और 'ह' दो अक्षर एक साथ मिल जाने के सिवा और कोई साम्य नहीं है। भाष्यकारगण इसका अर्थ दूर्वा-परक करते हैं। इसी तरह और भी उदाहरणों द्वारा अनुमान किया जा सकता है कि इन ग्रहों के वाचक शब्दों का भी पता प्राचीन आचार्य मूल संहिताओं में न लगा सके। अर्थात् ये ग्रह बाद के प्रक्षेप हैं—ग्रंथ में नहीं, हिंदू धर्म कर्म और आचार परंपरा में।

तो फिर ये ग्रह कहां से आये। सस्ता जवाब है कि ग्रीस से आये। वेबर से बड़ा संस्कृत और ग्रीस साहित्यों का पंडित और ग्रीस महिमा का पक्षपाती शायद ही कोई हुआ हो। वेबर को यह जवाब नहीं सूझा था। उन्होंने स्पष्ट ही देखा था कि यह जवाब बेतुका और निर्मूल है। ज्यादा विचार तो आगे किया जायगा, यहां वेबर की बात ही स्मरण कर ली जाय। वेबर ने ठीक ही कहा था कि इन ग्रहों के नाम विचित्र हैं। ग्रीक नामों के साथ इनका कोई संबंध नहीं। हिन्दुओं के नव ग्रह हैं—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु। इन में मंगल पृथ्वी का बेटा है, शनि सूर्य का और बुध चन्द्रमा का। बृहस्पति और शुक्र के प्राचीन पर्याय अंगिरस् और भृगु हैं। वेबर का अनुमान है कि अथर्ववेद के दो प्रधान ऋषि अंगिरस् और भृगु के नाम पर इन ग्रहों का नामकरण हुआ है, क्यों कि ये दोनों ऋषि अनेक वैज्ञानिक तथ्यों के आविष्कर्ता थे और शायद ग्रहों के भी आविष्कर्ता ये ही रहे हों। राहु और केतु वस्तुतः पौराणिक देवता हैं और आगे चलकर इन्हें दो ज्योतिषिक बिन्दुओं का अधिष्ठाता मान लिया गया है, नहीं तो गणित ज्योतिष की दृष्टि में इनमें कभी भी ग्रहत्व नहीं था। यह ध्यान देने की बात है कि ग्रीक कल्पना के अनुसार चंद्रमा और शुक्र ग्रह के अधिष्ठातृ देवता कोई देव नहीं हैं, बल्कि देवी हैं। आगे चल कर ग्रीक विद्या से प्रभावित ज्योतिष ग्रथों में इन दोनों ग्रंथों को "स्त्री ग्रह" कहा है पर अगर शुरू ही में ये ग्रह ग्रीक पंडितों से लिये गये होते तो उनका नाम स्त्रीलिंग में ही रखा गया होता। इसलिये

यह स्पष्ट है कि ग्रहों का ज्ञान हिंदुओं को ग्रीकों से नहीं हुआ। बैबिलोन के "बाबुली" और असुरिया के "असुरों" से यह ज्ञान नहीं मिला था, क्यों कि वहां भी उक्त दोष लागू होगा। और फिर भी ग्रह वैदिक नहीं हैं। इसलिये इनका मूल कहीं अन्यत्र खोजना चाहिये। मेरा अनुमान है कि ग्रहों में से कई, जैसे बुध, बृहस्पति और शुक्र तो वैदिक आर्यों की अपनी खोज हैं, या कम-से-कम वैदिक परम्परा में, विष्णु और शिव की भांति वैदिक साहित्य से पुराने नामों के साथ जोड़ कर उसमें घुला-मिला लिये गये हैं। दूसरी बात अधिक संभव है। बाक़ी मंगल शनि, राहु और केतु निश्चित रूप से इस देश के आर्य-पूर्व निवासियों से ग्रहण किये गये हैं।

पर साथ ही यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि आर्य-पूर्व निवासियों से इन ग्रहों की पौराणिक और फलित शास्त्रीय प्रकृति के सिवा और कुछ ग्रहण करने का प्रमाण अभी तक कुछ भी नहीं मिला है। अर्थात् आर्यों ने जैसे गण-पति और शिवलिंग आदि की पूजा आर्य-पूर्व जातियों से ग्रहण की थी, ठीक उसी प्रकार इन ग्रहों की पहिचान, इनकी प्रकृति और पूजा-विधि आदि भी ग्रहण की थी। मानव-समाज शास्त्र की दृष्टि से जिन पंडितों ने विशाल भारतीय जन-समूह का अध्ययन किया है, उन्होंने लक्ष्य किया है कि इस देश में अब भी ऐसी आर्य-पूर्व जातियां हैं, जो राहु केतु की उपासिका हैं। कुछ तो ऐसी हैं, जो सामाजिक स्थिति के हिसाब से अत्यन्त निचले स्तर पर होने पर भी ग्रह-दान का अधिकारी अपने को मानती हैं और सर्वत्र उनका यह दावा स्वीकार किया जाता है। उत्तर भारत की दोसाध जाति 'राहु बाबा' या राहु देवता की उपासिका है। और ग्रहण के अवसर पर डोम जाति दान प्राप्त करने के अधिकार का दावा करती है और उसका दावा स्वीकृत होता है। डोम और दोसाध दोनों ही जातियों की सामाजिक मर्यादा बहुत नीचे है। कुछ ऐसी जातियां हैं, जो अपने को ग्रहों के दान का अधिकारी बताती हैं और उन्हें ग्रह-शान्ति का दान दिया भी जाता है। सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से ऐसे दान लेने वाले हिन्दू समाज में अत्यन्त तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाते हैं। इन बातों पर से हमारा अनुमान पुष्ट होता है कि ग्रहों की पहि-चान, उनकी प्रकृति पूजा-विधि आदि बातें आर्यों ने आर्य-पूर्व जातियों से ग्रहण की थीं। इस प्रसंग में इतना और स्मरण कर लिया जा सकता है कि साधारण जनता की दन्त कथाओं में ग्रहण के समय सूर्य और चंद्रमा पर आक्रमण करने वाले असुर 'डोम' ही होते हैं। ये डोम भारतवर्ष की अति प्राचीन जातियों में से हैं और इनके विषय में एक बहुत ही मनोरंजक, तथ्य का उद्घाटन डाक्टर ग्रियर्सन ने किया है। वह यह कि यूरोप के जिप्सी इन भारतीय डोमों की ही सन्तति हैं और 'रोम' और 'रोमनी' डोम और डोमिन शब्द के रुपान्तर के सिवा और कुछ नहीं हैं! क्या यह आश्चर्य और कौतुक का विषय नहीं है कि साहित्य शास्त्र का अत्यधिक दुलारा शब्द 'रोमान्स' और "रूमानी" संभवतः 'डोम' की ही सन्तान हैं!! और यदि सचमुच ही जिप्सी डोमों की औलाद हैं, तो उनसे अधिक रोमान्टिक होने का दावा कौन कर सकता है!!

जहां तक भारतीय शास्त्रों का संबंध है ग्रहों की चर्चा मनु की स्मृति बनने के समय तक अपरिचित ही है; परन्तु याज्ञवल्क्य की स्मृति में, कालीदास जी के ग्रंथों में इनकी चर्चा बहुत अधिक पाई जाती है। मनु की स्मृति कब बनी थी यह निश्चित रूप से नहीं मालूम। कई देशी और योरोपीय पंडित इस के पुराने रूप की रचना का काल सन् ईसवी से पूर्व काल में मानते हैं। मेरा अपना अनुमान है कि वर्तमान मनुस्मृति सन् ईसवी के दो ढाई सौ वर्ष बाद की बनी है। कम-से-कम इतना तो मूल ग्रंथ (मनुस्मृति) से ही

एक धर्म

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आजाद

[साम्प्रदायिक विद्वेष की इस बाढ़ में जबकि 'पाकिस्तान' के नारे बुलन्द हो रहे हैं, राष्ट्रपति ने क़ुरान की ही आयतों का उल्लेख देकर इस लेख में यह दिखलाया है कि ईश्वर की नजरों में सभी धर्म एक हैं। मजहब प्रेम का सन्देश देने और मिलाने के लिये आता है, लड़ाने और जुदा करने के लिये नहीं।]

क़ुरान में परमात्मा की एक विशेष आज्ञा का वर्णन है; जिसे 'अल-हुदा' के नाम से पुकारा गया है। 'अल' एक निर्देशात्मक शब्द है, जिसका अर्थ 'वह' या 'विशेष' है और 'हुदा' का अर्थ 'हिदायत' है।

"(ऐ पैग़म्बर! उनसे) कहदो कि निस्सन्देह परमात्मा की हिदायत ही 'अल-हुदा' है (यानी मनुष्य के लिये वास्तविक आज्ञा है) और हम सबको इस बात का हुक्म दिया गया है कि समस्त सृष्टि के पालन कर्ता के सम्मुख सिर झुका दें।"

सू० ६, आ० ७०।

"और याद रखो यहूदी तुमसे ख़ुश न होंगे जब तक तुम उनके सम्प्रदाय की पैरवी न करो। यही हाल ईसाइयों का भी है। किन्तु ऐ पैग़म्बर! तुम उनसे कह दो 'अल-हुदा' यानी सच्ची हिदायत तो वही है, जो परमात्मा की हिदायत है (इसलिये तुम्हारी साम्प्रदायिक दल बन्दियों की मैं कैसे पैरवी कर सकता हूँ? मेरी राह तुम्हारी गढ़ी हुई सम्प्रदायों की राह नहीं है, बल्कि ईश्वर की विश्वव्यापी हिदायत की राह है)।"

सू० २, आ० १२०।

यह 'अल-हुदा' क्या है? क़ुरान कहता है कि यह ईश्वर की वह विश्वव्यापी आज्ञा है, जो सृष्टि के आरम्भ से दुनिया में मौजूद है और वह आज्ञा बिना भेदभाव मनुष्य मात्र के लिये है। क़ुरान कहता है जिस तरह परमात्मा ने अन्त: प्रवृत्ति, इन्द्रियां और बुद्धि प्रदान करने में वंश और जाति, देश और काल का भेद नहीं रखा, उसी तरह यह ईश्वरीय आज्ञा भी हर प्रकार के भेद भाव और पक्षपात से ऊपर है। वह सब के लिये है और सब को दी गई है। इस एक आज्ञा के सिवा और जितनी आज्ञायें मनुष्यों ने समझ रखी हैं, सब मनुष्य की गढ़ी हुई हैं। ईश्वर का बताया हुआ मार्ग तो सिर्फ़ एक ही है। इसीलिये क़ुरान समस्त आज्ञाओं को मानने से इनकार करता है जिन्हों ने मानव-समाज को इस असल से हटाकर भिन्न भिन्न सम्प्रदायों और टोलियों में बांट दिया है और कल्याण तथा मुक्ति की विश्वव्यापी सच्चाई को विशेष सम्प्रदायों और गिरोहों की पैतृक सम्पत्ति बना लिया है। क़ुरान कहता है मनुष्य की बनाई हुई ये अलग अलग राहें ईश्वरीय आज्ञा कभी नहीं हो सकतीं। ईश्वर का

बताया हुआ मार्ग तो सब के लिये एकही विश्वव्यापी मार्ग है। उसी विश्वव्यापी ईश्वर निर्दिष्ट मार्ग को क़ुरान 'अल्-दीन' के नाम से पुकारता है, जिसका अर्थ है मनुष्य मात्र के लिये सच्चा दीन। इसी का नाम क़ुरान के शब्दों में 'इसलाम' है।

धार्मिक ऐक्य का तत्व

यह महान तत्व क़ुरान के सन्देश की सबसे पहली बुनियाद है। क़ुरान जो कुछ तत्व बतलाना और सिखाना चाहता है, सब इसी पर अवलम्बित है। अगर इस तत्व से नज़र फेर ली जाय, तो क़ुरान के सन्देश का सारा ढांचा छिन्न भिन्न हो जाता है। परन्तु संसार के इतिहास की आश्चर्य जनक प्रगति में यह भी एक विचित्र घटना है कि क़ुरान के इसी महान तत्व से आज संसार अनभिज्ञ है। यदि कोई व्यक्ति हर प्रकार के बाहरी प्रभाव से अलग होकर क़ुरान को पढ़े और उसके पृष्ठों में स्थान स्थान पर इस महान तत्व की अकाट्य और स्पष्ट घोषणा देखे और फिर उस संसार की ओर दृष्टि डाले, जिसने यह समझ रखा है कि क़ुरान भी अन्य धार्मिक सम्प्रदायों की तरह एक सम्प्रदाय मात्र है, तो अवश्य ही वह हैरान होकर पुकार उठेगा कि या तो मेरी निगाहें मुझे धोखा दे रही हैं और या संसार सदा बिना आंखें खोले ही अपने फ़ैसले दे दिया करता है।

इस सच्चाई को स्पष्ट करने के लिये यह आवश्यक है कि एक बार विस्तार के साथ यह बात साफ़ कर दी जाय कि जहां तक धर्म का संबन्ध है क़ुरान का आदेश क्या है और वह मनुष्य को किस मार्ग की ओर लेजाना चाहता है। इस बारे में क़ुरान ने जो कुछ कहा है, उसका सारांश इस प्रकार है —

क़ुरान कहता है कि शुरू शुरू में मनुष्य स्वाभाविक जीवन व्यतीत करते थे, उनमें न कोई परस्पर मतभेद था और न कोई झगड़े। सब की ज़िन्दगी एक ही तरह की थी और सब अपनी स्वाभाविक सादगी से सन्तुष्ट थे। फिर इनकी संख्या और आवश्यकताओं के बढ़ने पर इनमें तरह तरह के मतभेद पैदा होगये। इन मतभेदों के कारण लोग एक दूसरे से बटकर टुकड़े टुकड़े हो गये और अन्याय तथा झगड़ों की उत्पत्ति हुई। हर दल दूसरे दल से घृणा करने लगा और बलवान दुर्बलों के अधिकार हड़पने लगे। जब ऐसी अवस्था उत्पन्न होगई, तो यह आवश्यक होगया कि मनुष्य जाति की हिदायत के लिये और न्याय तथा सत्य की स्थापना के लिये ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो। ईश्वर की ओर से पैग़म्बरों के आने और उनके उपदेशों का सिलसिला क़ायम होगया। क़ुरान इन समस्त पथ प्रदर्शकों को रसूल के नाम से पुकारता है। रसूल का अर्थ है ईश्वरीय पैग़ाम पहुँचाने वाला।

"आरम्भ में मानव जाति का एक ही गिरोह था फिर वे एक दूसरे से अलग अलग होगए। यदि तुम्हारे पालन कर्ता ने पहले से यह फ़ैसला न कर दिया होता (कि भविष्य में मानव-समाज में मतभेद होगा और लोग पृथक पृथक मार्ग ग्रहण करेंगे) तो जिन बातों में लोग मतभेद रखते हैं, उनका निपटारा भी इसी दुनिया में कर दिया गया होता।"— सू० १०, आ० ३०।

"आरम्भ में सभी मनुष्य एक ही गिरोह के थे (फिर उनमें मतभेद हुआ और वे एक दूसरे से पृथक होगये), इसलिये परमात्मा ने एक के बाद दूसरे पैग़म्बरों को उत्पन्न किया। वे (सुकर्मों के परिणाम का) शुभ सन्देश देते थे और (कुकर्मों के भयानक नतीजों से) लोगों को डराते थे। उनके साथ 'अल-किताब' (यानी ईश्वरीय आदेश से लिखी जाने वाली किताब) प्रकट हुई, ताकि जिन बातों में लोगों में मतभेद हो गया था, उनमें वह किताब फ़ैसला कर दे।"—सू० २, आ० २१३।

यह आदेश किसी विशेष देश, जाति या काल के लिये ही नहीं बल्कि समस्त मानव समाज के लिये थे। इसीलिये प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में उसका एक सा आविर्भाव हुआ। क़ुरान कहता है कि दुनिया का ऐसा कोई कोना नहीं जहां मानव जाति बसी हो और जहां कोई न कोई पैग़म्बर ईश्वर की ओर से न हुआ हो।

"संसार की कोई क़ौम ऐसी नहीं है जिसमें (कुकर्मों के परिणाम से) डराने वाला (ईश्वर का कोई पैग़म्बर) न पैदा हुआ हो।"

—सू० ३५, आ० २५।

"हर क़ौम के लिये एक रसूल है। इसलिये जब रसूल (अपनी सत्य की शिक्षा के साथ) प्रकट होता है तो उस क़ौम के सारे लड़ाई झगड़ों, (अन्याय और उत्पातों) का इन्साफ़ के साथ फ़ैसला कर दिया जाता है।"—सू० १०, आ० ४८।

क़ुरान कहता है कि मनुष्य जाति के प्रारम्भिक काल में एक के बाद दूसरे कितने ही पैग़म्बरों ने प्रकट होकर भिन्न भिन्न क़ौमों को सत्य का सन्देश सुनाया है।

"और कितने ही नबी हैं जिन्हें हमने पहले के लोगों (यानी प्रारम्भिक काल की क़ौमों) में भेजा।"—सू० ४३, आ० ५।

परमात्मा के इन रसूलों और ईश्वरीय धर्म के प्रचारकों में से कुछ का वर्णन क़ुरान में किया गया है और कुछ का नहीं।

"और (ए पैग़म्बर!) हमने तुमसे पहले कितने ही पैग़म्बर भेजे। उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनका वर्णन तुमसे किया है, और कुछ ऐसे हैं जिनका वर्णन नहीं किया (यानी क़ुरान में उनका ज़िक्र नहीं किया गया है)।—सू० ४०, आ० ७८।

संसार के हर कोने में प्रकृति के नियम ईश्वर की ओर से एक से ही हैं। वे न तो कई तरह के हो सकते हैं और न परस्पर विरोधी हैं। इसलिये आवश्यक था कि यह आदेश भी आरम्भ से एक सा होता और एक ही तरह पर सब मनुष्यों को सम्बोधित होता। इसलिये क़ुरान कहता है कि ईश्वर के जितने पैग़म्बर हुए हैं, चाहे वे किसी भी युग और देश में क्यों न हुए हों, सब का मार्ग एक ही था, और सबने मानव कल्याण के लिए ईश्वर के एक ही विश्वव्यापी नियम का उपदेश दिया। कल्याण का यह विश्वव्यापी नियम क्या है? यह नियम विश्वास और सत्कर्मों का नियम है, यानी एक ईश्वर की उपासना और नेकी का जीवन व्यतीत करना। इसके अतिरिक्त और इसके प्रतिकूल जो बातें धर्म के नाम पर कही जाती हैं वह सच्चा धर्म नहीं है।

"निस्सन्देह हमने दुनिया की हर क़ौम में एक पैग़म्बर भेजा (जिनका उपदेश यह था) कि ईश्वर की उपासना करो और दुष्ट वासनाओं (यानी पाशविक वृत्तियों) के भुलावे में न आओ।"—सू० १६, आ० ३८।

क़ुरान कहता है कि दुनिया में कोई भी धर्म प्रवर्त्तक ऐसा नहीं हुआ, जिसने इसी एक धर्म पर दृढ़ रहने और भेद भावों से बचने की शिक्षा न दी हो। सब की शिक्षा यही थी कि ईश्वर का धर्म बिछुड़े हुए मनुष्यों को मिला देने के लिये है, उन्हें अलग अलग कर देने के लिये नहीं। इसलिए एक ही परमात्मा की उपासना में सब एकत्र हो जाएं और भेद भाव व झगड़े के स्थान पर पारस्परिक प्रेम और एकता का मार्ग ग्रहण करें।

"और (देखो) यह तुम लोगों का सम्प्रदाय वास्तव में एक ही सम्प्रदाय है, और मैं तुम सब का परवरदिगार हूँ। इसलिए (मेरी उपासना और भक्ति में) तुम सब एक हो जाओ (और) अवज्ञा से बचो।"—सू० २३, आ० ५४।

क़ुरान कहता है कि परमात्मा ने तुम सब को एक समान मनुष्य का चोला दिया था, परन्तु तुमने तरह तरह के वेश और नाम ग्रहण कर लिये, जिससे मानव जाति की एकता का सूत्र टुकड़े टुकड़े हो गया। तुम्हारे अनेक वंश होगये। तुम्हारे अलग अलग बहुत से देश हो गये इसलिये भिन्न

भिन्न देशों के नाम पर तुम एक दूसरे से लड़ रहे हो। तुम्हारी जातियां अगणित हैं, इसलिये हर जाति दूसरी जाति से हाथापाई कर रही है। तुम्हारे रंग एक से नहीं है, यह भी पारस्परिक घृणा और द्वेष का एक बड़ा कारण बन गया है। तुम्हारी भाषाएं भिन्न भिन्न हैं, यह बात भी एक दूसरे से अलग करने वाली है। इनके अलावा अमीर ग़रीब, स्वामी सेवक, कुलीन अकुलीन, बलवान निर्बल, ऊंचनीच, इत्यादि, अनगिनती भेद उत्पन्न कर लिये गये हैं। इन सब का उद्देश यही है कि तुम एक दूसरे से पृथक हो जाओ और एक दूसरे से घृणा करते रहो। ऐसी हालत में बतलाओ वह कौन सा सूत्र है, जो इतने भेदों के होते हुए भी मनुष्य को एक दूसरे से जोड़ दे, और बिछुड़ा हुआ मानव-परिवार फिर नये सिरे से बस जाय। कुरान कहता है कि सिर्फ़ एक ही सूत्र बाक़ी रह गया है, और वह ईश्वरोपासना का पवित्र सूत्र है। तुम कितने ही अलग अलग क्यों न हो गये हो, परन्तु तुम्हारे लिये अलग-अलग परमात्मा नहीं हो सकते। तुम सब एक ही परवरदिगार के बन्दे हो, और तुम सबकी वन्दना और भक्ति के लिये एक ही उपास्य देव की चौखट है। तुम अगणित भेद भाव रखकर भी एक ही उपासना की डोरी में बंधे हुए हो। तुम्हारा कोई भी वंश क्यों न हो, तुम्हारी कोई भी जाति क्यों न हो, तुम किसी भी दल अथवा श्रेणी के मनुष्य क्यों न हो, परन्तु जब तुम एक ही परमपिता की शरण में जाओगे, तो यह ईश्वरीय सम्बन्ध तुम्हारे समस्त पार्थिव झगड़ों को मिटा देगा और तुम सब के बिछुड़े हुए हृदय परस्पर मिल जायंगे। तब तुम अनुभव करोगे कि सारा संसार तुम्हारा देश है, सारा मानव समाज तुम्हारा परिवार है और तुम सब एक ही परम पिता की सन्तान हो।

इसलिये क़ुरान का उपदेश है कि ईश्वर के जितने रसूल आये सबकी शिक्षा यही थी कि 'अल-दीन' पर अर्थात् समस्त मानव जाति के एक विश्वव्यापी धर्म पर, तुम सब दृढ़ रहो और इस मार्ग में एक दूसरे से अलग न हो जाओ।

इसी आधार पर क़ुरान बतौर एक दलील के इस बात पर ज़ोर देता है कि यदि तुम्हें मेरी शिक्षा की सच्चाई से इनकार है, तो तुम किसी भी धर्म के ईश्वरीय ग्रन्थ से सिद्ध कर दिखाओ कि सच्चे धर्म का मार्ग इसके सिवा कोई और भी हो सकता है। चाहे जिस की मूल शिक्षा को देखो, सब का मूलाधार तुम्हें यही मिलेगा।

"(ऐ पैग़म्बर ! इनसे) कहदो अगर तुम्हें मेरी शिक्षा से इनकार है तो तुम दलील पेश करो। यह ईश्वरीय वाणी मौजूद है, जिस पर मेरे साथियों को विश्वास है, और इसी तरह की अन्य ईश्वरीय वाणियां भी मौजूद हैं जो मुझसे पहले के पैग़म्बरों पर प्रकट हो चुकी हैं। (तुम सिद्ध कर दिखाओ किसी ने भी मेरी शिक्षा के विरुद्ध शिक्षा दी हो)। वास्तव में इन (सत्य से इनकार करने वालों) में बहुधा ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें सत्य का बिलकुल पता ही नहीं है, और इसलिये उस सत्य से मुंह मोड़े हुए हैं। (ऐ पैग़म्बर ! विश्वास करो) हमने तुमसे पहले कोई पैग़म्बर ऐसा नहीं भेजा है, जिसे इस बात के सिवा कोई दूसरी बात बतलाई गई हो कि मेरे सिवा तुम्हारा कोई उपास्य नहीं, इस लिये मेरी ही उपासना करो।"—सू० २१, आ० २४।

इतना ही नहीं, बल्कि क़ुरान कहता है किसी ईश्वरीय ग्रन्थ से, किसी धर्म की शिक्षा से, किसी भी ज्ञानी व द्रष्टा की वाणी या परम्परागत आख्यायिका से तुम सिद्ध कर दिखाओ कि मेरी शिक्षा सत्य की शिक्षा नहीं है।

"अगर तुम अपने इनकार में सच्चे हो तो सुबूत में ऐसा कोई ग्रन्थ पेश करो जो अब से पहले प्रकट हुआ हो, या (कम से कम) ज्ञान या तत्वदर्शन का कोई ऐसा हवाला ही दो जो परम्परा से तुम्हें प्राप्त हुआ हो।"—सू० ४६, आ० ३।

इसी आधार पर कुरान समस्त संसारिक धर्मों के पारस्परिक समर्थन को भी बतौर एक दलील के पेश करता है, यानी वह कहता है कि इनमें से प्रत्येक शिक्षा दूसरी शिक्षा का समर्थन करती है, उसे झुठलाती नहीं। और जब हर शिक्षा दूसरी शिक्षा का समर्थन करती है, तो इससे मालूम हुआ कि इन सारी शिक्षाओं की जड़ में कोई एक ही सनातन और नित्य सत्य अवश्य काम कर रहा है, क्योंकि यदि भिन्न देश, भिन्न काल, भिन्न जाति, भिन्न भाषा और भिन्न नाम रूप में कही हुई बातें, इतने भेदों के रहते हुये, तत्व रूप से सदा एक ही हों और एक ही लक्ष्य पर ज़ोर देती हों, तो तुम्हें यह मान लेना पड़ेगा कि इन सब बातों की जड़ में कोई एक सनातन नित्य सत्य अवश्य है।

"(ऐ पैग़म्बर!) परमेश्वर ने यह ग्रन्थ (कुरान) जिसमें सचाई की शिक्षा है तुम पर प्रकट किया है। यह उन धर्म ग्रन्थों का समर्थन करता है, जो इससे पहले प्रकट हो चुके हैं। इसी तरह लोगों के पथ प्रदर्शन के लिये परमात्मा ने तौरात और इञ्जील प्रकट की थीं।"--

सू० ३, आ० २।

"हमने ईसा को इञ्जील प्रदान की, उसमें मनुष्य के लिये आदेश और प्रकाश है, और उससे पहले जो तौरात प्रकट हो चुकी थी इञ्जील उसका समर्थन करती है, उसे झुठलाती नहीं।"

सू० ५, आ ४७।

यही कारण है कि कुरान के उपदेशों का एक बड़ा विषय कुरान से पहले के आदेशों और पहले के रसूलों का वर्णन है। कुरान उनकी समानता, एक वाक्यता, और शिक्षा की अभिन्नता से धार्मिक सच्चाई के समस्त उपदेशों को प्रमाणित करता है।

बसवेश्वर के वचन

न पत्थर की बनी हुई मूर्ति ईश्वर है न मिट्टी का बना हुआ विग्रह, न लकड़ी की बनी हुई साकार-प्रतिमा। और वह भी ईश्वर नहीं है, जो पाँच धातु से बना है। सेतुबन्ध, रामेश्वर, गोकर्ण, काशी, केदार इत्यादि पुण्य तीर्थों में जो देवता मौजूद हैं, वह भी ईश्वर नहीं हैं। हे देव! वही सच्चा देव है जो अपने को पूरी तौर पर पहचान लेता है। जिसने अपने आपको पहचान लिया वही ईश्वर है।

हे देव! अपने आपको पूरी तौर पर समझने वाला ही मायातीत है। वही गुणातीत है जो अपना अज्ञान, अपना आचार, अपनी आशापाश, अपने दुर्गुण जान लेता है, वही सगुण निर्गुण का आधार और साकार निराकार की चैतन्य मूर्ति है। जो अपने अवगुणों को लात मारकर सत्य की राह पर अपने पाँव ज़ोरों के साथ जमाकर खड़ा हो जाता है, वही सच्चा देव है।

क्या अमरीका जापान से लड़ेगा ?

[नेवल कमेटी की रिपोर्ट]

प्रेज़िडेण्ट रूज़वेल्ट के तीसरी बार राष्ट्रपति चुने जाने के बाद सारे संसार की आंखें अमरीका की परराष्ट्र नीति की ओर लगी हुई हैं । क्या अमरीका इङ्गलैण्ड की अमली सहायता करेगा ? क्या जापान के ख़िलाफ़ बहादुर चीनियों को अमरीका से प्रचुर मात्रा में युद्ध की सामग्री मिल सकेगी ? इटली, जापान और जर्मनी की मैत्री को अमरीका किस भाव से देखता है ? फ़िलिप्पाइन्स द्वीप को स्वाधीन करने का वादा क्या अमरीका पूरा करेगा ? ये और ऐसे कई प्रश्न आज अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्यार्थियों के सामने हैं ।

१९४० के अप्रेल के महीने में अमरीका की सेनेट ने अपनी जहाज़ी शक्ति की जांच के लिये एक कमेटी मुक़र्रर की थी । इसके सामने कई प्रमुख जल सेनापतियों की गवाहियां हुई थीं । इन से अमरीका की विदेशी नीति पर बहुत कुछ रोशनी पड़ती है । हम यहां पर उसके कुछ अंश दे रहे हैं । चेयरमैन के एक प्रश्न पर एडमिरल स्टार्क ने उत्तर दिया कि "१९२२ के वाशिंगटन सुलहनामे के अनुसार अमरीका और इंगलैण्ड को जहां पांच जहाज़ रखने का हक़ था, वहां जापान केवल तीन जहाज़ रख सकता था । १९३४ में जापान ने उस समझौते को मानने से इनकार कर दिया और १९३६ के उस समझौते में भी शामिल होने से इनकार कर दिया, जिसके अनुसार तीनों शक्तियों को अपने जहाज़ बनाने की इत्तला एक दूसरे को देनी पड़ती ।"

चेयरमैन—एडमिरल, क्या अख़बारों की यह ख़बर सच है कि जापान ने अपनी जहाज़ी शक्ति अमरीका से एक लाख छासठ हज़ार टन ज़्यादा करली ?

एडमिरल स्टार्क—हमें यह ठीक मालूम है कि जापान चार बैटिलशिप बना रहा है, जिनमें एक एक का वज़न चालीस और तिरतालीस हज़ार टन के बीच है । इसी वज़न के आठ बैटिल शिप उसके पास पहले से हैं, जिसे जापान ने बन्दरगाह से बाहर नहीं निकाला !

चेयरमैन—बन्दरगाह से बाहर उसके पास कितने जहाज़ हैं ?

एडमिरल स्टार्क—दस ।

सेनेटर रसल—इन दस में भी क्या चालीस हज़ार टन के जहाज़ हैं ?

एडमिरल स्टार्क—नहीं । जापान के पास ४३ डिस्ट्रायर और डुबुकनी किश्ती हैं । ३२ डुबुकनी किश्ती वह और बना रहा है । जापान के पास ३६ सबमैरीन हैं और २० वह और बना रहा है । मामले को साफ़ करने के लिये मैं दोनों देशों के अंकों को तुलना आपके सामने रख रहा हूं ।

	अमरीका	जापान
बैटिल शिप—	८	८
कैरियर—	२	४
क्रूज़र—	६	८
डिस्ट्रायर—	३९	३२
सबमैरीन—	१९	२०

जापान की संख्याओं के बारे में मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता। मुमकिन है जापान की शक्ति इससे ज़्यादा हो। जापान तेज़रफ़्तार से जहाज़ी बेड़े बना रहा है। हमने १९२४ के बाद कुछ बनाया नहीं। यदि हमने जापान से अधिक तेज़ रफ़्तार से न बनाया, तो हमारी जहाज़ी शक्ति जापान से पीछे रह जायगी। यदि हम फ़िलिप्पाइन द्वीप में और गुआम में, जहाज़ी बेड़ों का अड्डा बनाएं, तो बेशक जापान पर हम अपना रोब क़ायम रख सकते हैं।

चेयरमैन–किन्तु गुआम में जहाजी अड्डा बनाने से सन् १९४६ में फ़िलिप्पाइन को स्वाधीन करने का जो हमने वादा किया है, उस पर तो कोई असर नहीं पड़ता?

एडमिरल स्टार्क—यदि हमें जापान के मुक़ाबले की तय्यारी करनी है, तो हमें इस बात की परवाह नहीं करनी चाहिये कि गुआम में हमारा जहाज़ी अड्डा बनने से फ़िलिप्पाइन की स्वाधीनता पर क्या असर पड़ेगा।

इसके बाद रीयर एडमिरल तौसिग की गवाही हुई।

चेयरमैन—एडमिरल, सुदुर पूर्वीय समस्याओं के बारे में आपकी क्या राय है?

एडमिरल तौसिग—अमरीका के लिये इस समय सब में महत्व पूर्ण प्रश्न सुदूरपूर्व का है। पिछले १५० बरस में संसार के जिस हिस्से में हमने अपनी सारी शक्ति लगाकर व्यवसाय और वाणिज्य को बढ़ाया, पिछले डेढ़ साल में वहां से हमारे क़दम बिलकुल उखड़े से दिखाई दे रहे हैं। हमें जापान के उद्देशों के बारे में कोई ग़लत फ़हमी न होनी चाहिये। जापान अपने फ़ौजी उद्देश को पूरा करने में लगा हुआ है। सुदूरपूर्व के मामलों में उदासीन रहकर हमारा काम अब नहीं चल सकता! कुछ लोगों का ख़याल है कि जापान चीन से लड़कर बिलकुल थक जायगा। जीते हुए हिस्सों से पूरा फ़ायदा उठाने के लिये उसके पास पूंजी नहीं। जापान की सारी शक्ति और पूंजी इन्ही हिस्सों की उन्नतिमें सर्फ़ हो जायगी। चूंकि पराजित और अपराजित चीन के बीच में कोई स्वाभाविक भौगोलिक रुकावट नहीं, इस लिये जापान की आगे जीतने की लालसा बराबर बनी रहेगी। फिर चीन के विजित हिस्सों में रबर, टीन, पेट्रोल आदि कच्चा माल बहुतायत से नहीं मिलता। जापान के जल सेना विभाग ने हमेशा से स्थल की लड़ाइयों का विरोध किया है। उसने हमेशा इस बात पर ज़ोर दिया है कि समुद्री रास्ते से जावा, सुमात्रा, फ़िलिप्पाइन, हिंदचीन आदि की ओर बढ़ा जाय, जहां कच्चा माल प्रचुर मात्रा में मिलता है। अर्थशास्त्रियों का वह ख़याल अब पुराना हो गया, जिसके अनुसार धन की कमी के कारण साम्राज्य वादी आकांक्षा आगे बढ़ने से रुकती है। पिछले युद्ध के बाद जर्मनी बिलकुल दिवालिया हो गया था, किन्तु अपने उसी १५ वर्ष के दिवालियेपन में उसने एक इतनी महान सेना तय्यार करली, जिसने सारे यूरोप की शान्ति को ख़तरे में डाल दिया। इटली भी फ़ाकेमस्त था, किन्तु उसने भी उसी समय के भीतर अपनी जल शक्ति, हवाई शक्ति और स्थल शक्ति को ज़बरदस्त विस्तार दिया और अबीसीनिया के साथ गहरी लड़ाई लड़ी। तीन वष पहले अर्थशास्त्रियों ने जापान की आर्थिक स्थिति को ख़तरनाक बताया था, किन्तु उसके बाद जापान तीन बरस से चीन की लड़ाई लड़ रहा है। उसके पास दस लाख मुस्तैद फ़ौज है और खरबों रुपया लगाकर वह चीन में व्यापार करने के लिये कम्पनियां बना रहा है। स्पेन एक दूसरा अकाल पीड़ित देश था, जहां तीन बरस तक भयंकर गृह युद्ध होता रहा। सुदूरपूर्व में ऐसी परिस्थिति पैदा हो गई है, जिससे हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व ख़तरे में है। हमारे युद्ध विभाग, जल सेना विभाग और मंत्रिमंडल के सामने सब में बड़ी समस्या यह है कि हम जिस लड़ाई में शामिल हों, उसमें सफलता पूर्वक विजयी हों।

जापान से लड़ने में हमें दो मुख्य उसूलों पर ध्यान रखना होगा। पहला—चूंकि फ़िलिप्पाइन और गुआम में हमारा कोई जहाज़ी अड्डा नहीं है, इसलिये हमें ग्रेट ब्रिटेन, फ़ान्स और डच सरकार से मदद लेनी पड़ेगी। सुदूरपूर्व में हमसे ज़्यादा हित इन देशों के हैं। जब तक हमें यह विश्वास न हो कि ये देश अपने

जहाज़ी अड्डे, अपने बन्दरगाह और अपनी नदियें हमारे हवाले कर देंगे, हमें कभी अकेले जापान से न लड़ना चाहिये। दूसरी बात जापान से हमारी लड़ाई समुद्री लड़ाई होनी चाहिये। जापान से हम ख़ुश्की पर नहीं लड़ सकते। जापानियों के मल्लाह और जहाज़ी अफ़सर बहुत दक्ष हैं। वे धीरज और साहस से काम लेते हैं। उनके जहाज़ों की तोप की मार औरों की अपेक्षा अधिक विकट है। उनके जहाज़ों में आत्मरक्षा की भी सुविधाएं अधिक हैं। वे दुनिया के हर हिस्सों से जहाज़ के अच्छे अच्छे कल पुरजे ख़रीद कर लाते हैं। उनको जापान की तूफ़ानी खाड़ी में जहाज़रानी की शिक्षा दी जाती है। हर जहाज़ पर उनके इन्सपेक्टर होते हैं, जो जहाज़ की ज़र्रा ज़र्रा ख़राबी को नोट करते हैं। उनके पास बरबाद कुन किश्ती, डुबुकनी किश्ती, सुरंगें बिछाने वाली और सुरंग लगाने वाली किश्ती, हवाई जहाजों का बेड़ा, उतरने वाली किश्ती आदि बेशुमार तादाद में हैं। फिर इसके अलावा उनके पास व्यापारी जहाज़ों का बेड़ा भी है। इन सब बातों पर ग़ौर करते हुए मैं नीचे लिखी बातें करने की सलाह दूंगा—

१—यदि हमें शान्ति से रहना है, तो हमें इतनी तय्यारी करनी चाहिये कि जिसे देख कर ही जापान डर जाय।

२—हमें इतने जहाज़ बनाने चाहियें कि जापान के साथ हमारा औसत ३-५ से भी अधिक हो जाय। हमें फ़िलिप्पाइन में जहाज़ी अड्डा बनाना चाहिये और गुआम में क़िलेबन्दी करनी चाहिये। हमें अपना व्यापारी बेड़ा भी मज़बूत बनाना चाहिये।

३—चूंकि हमें जापान की सही सही ताक़त नहीं मालूम लिहाज़ा हमें अंधाधुंध अपने जहाज़ बनाते रहना चाहिये; ताकि जापान की ताक़त से हमारी ताक़त में ३-५ का फ़र्क़ बना रहे।

४—हमें ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और डच ईस्ट इण्डीज से समझौता करना चाहिये कि वे फ़ारमोसा से दक्खिन की ओर हमें यथोचित वातावरण बनाए रखने में मदद दें।

जापानी साम्राज्य

सेनेटर जानसन—क्या आप जानते हैं कि सुदूर पूर्व में हमारी क्या नीति है?

एडमिरल तौसिग—फ़िलिप्पाइन को स्वाधीन कर के ख़ुद वहां से निकल आना और न सिर्फ़ वहां से निकल आना, बल्कि सुदूरपूर्व से ही निकल आना-फ़िलिप्पाइन को स्वाधीन करने का यही नतीजा होगा। किन्तु हम हरगिज़ जापान को वहां क़ब्ज़ा न जमाने देंगे।

सेनेटर जानसन—तुम फ़िलिप्पाइन को स्वाधीन भी करना चाहते हो और उनकी वैदेशिक नीति को भी अपने क़ब्ज़े में रखना चाहते हो?
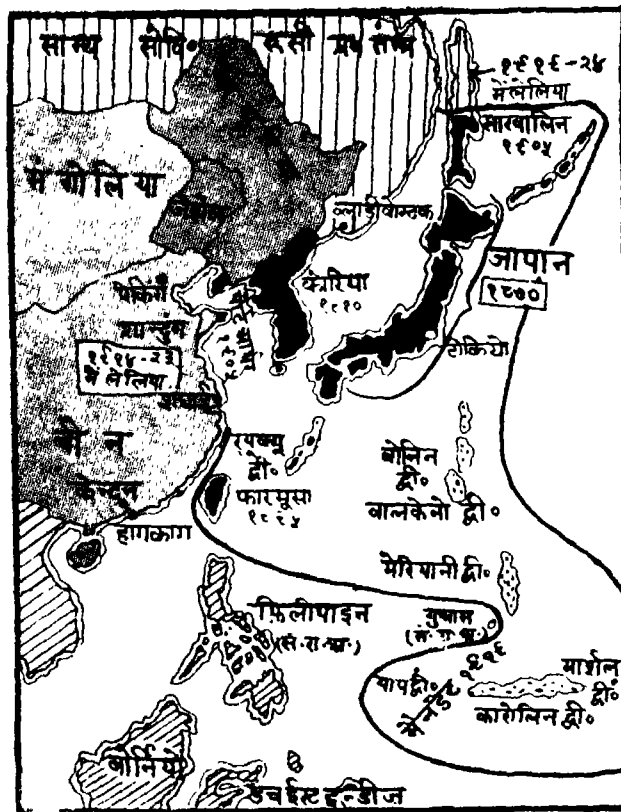
एडमिरल तौसिग—हम नहीं चाहते कि फ़िलिप्पाइन वाले गु़लाम बनें। आख़िर आस्ट्रिया और चेकोस्लोवेकिया की गु़लामी के लिये लोग इंगलैण्ड को दोष देते हैं कि नहीं?

सेनेटर जानसन—और पोलैण्ड?

एडमिरल तौसिग—पोलैण्ड को भी वे मदद नहीं दे पाए।

सेनेटर जानसन—डेनमार्क और नारवे का क्या हुआ?

एडमिरल—वहां तो वे मदद देने गए! किन्तु फ़िलिप्पाइन और उन मुल्कों में फ़र्क़ है। फ़िलिप्पाइन तो हमारे अपने बच्चे की तरह है। यदि हमें अमरीका की स्वाधीनता बचानी है, तो हम फ़िलिप्पाइन को नज़र अन्दाज़ नहीं कर सकते।

सेनेटर जानसन—क्या आपको मालूम है कि कुछ बरस पहले हमने ग्रेट ब्रिटेन के साथ मिलकर चीन की रक्षा करने का एक समझौता किया था?

एडमिरल तौसिग—हां, मैं जानता हूं।

सेनेटर जानसन—क्या आप जानते हैं कि हमारे परराष्ट्र-मंत्री स्टिमसन ने बहादुरी के साथ जापान को मंचूरिया पर क़ब्ज़ा करने से मना किया था और इंगलैण्ड के परराष्ट्र-सचिव सर जान साइमन ने हमें इंगलैण्ड की मदद का पूरा यक़ीन दिलाया था?

एडमिरल तौसिग—मुझे तफ़सील याद नहीं; किन्तु जो कुछ आप कह रहे हैं, वह ठीक ही कह रहे हैं।

सेनेटर जानसन—हम दोनों बहुत दूर तक साथ साथ गये। हमने जापान से मांचुकाओ को बचाने के प्रयत्न शुरू किये और उसके बाद जब हमारे परराष्ट्र सचिव ने मुड़कर देखा, तो सर जान साइमन ग़ायब थे। वे इंगलिस्तान की पार्लिमेंएट में तक़रीर कर रहे थे कि इंगलैण्ड को इस मामले में तटस्थ रहना चाहिये! क्या आपको वह सब याद है?

एडमिरल तौसिग—किन्तु सेनेटर, इंगलैण्ड के जहां अपने हित ख़तरे में हों, वहां इंगलैण्ड तटस्थ नहीं रह सकता। उसके व्यापक हितों पर हमला होगा, तो वह हमें ज़रूर मदद देगा।

सेनेटर जानसन—इसका अर्थ यह है कि दुनिया में ऐसी जगह उनसे मदद के लिये प्रार्थना करें, जहां उनके व्यापक हित ख़तरे में हं?

एडमिरल तौसिग—मैं समझता हूं यदि आस्ट्रेलिया पर हमला हो, तो अंगरेज़ हमारी अवश्य मदद करेंगे।

सेनेटर जानसन—इसका अर्थ यह है कि अपने अपने हित का सब ख़याल करते हैं।

एडमिरल तौसिग—यही दुनिया के सब देशों की नीति है।

सेनेटर जानसन—तब 'जनतंत्र की रक्षा' की आवाज़ लगाना तो सिर्फ़ ढकोसला है?

एडमिरल तौसिग—हां, ज़ाहिरा तौर पर तो ऐसा ही है।

सेनेटर जानसन—दूसरे लोगों की दोस्ती का हमें बड़ा कड़ुआ तजरुबा रहा। पिछली यूरोप की लड़ाई में जब हम शामिल हुये, तो लोगों ने हमारा स्वागत किया। हमसे ज़्यादा हमारे पैसे का स्वागत किया। हमें पिछली लड़ाई में शामिल होने से क्या फ़ायदा हुआ?

एडमिरल तौसिग—आप ठीक कह रहे हैं। हमारे निजी क़रज़े तक देने से लोगों ने इनकार कर दिया। जिसे देखो, वही क़र्ज़ वापस करने से इनकार करता है। यहां तक कि अनेक राष्ट्रों की सरकारों ने भी उससे इनकार कर दिया।

सेनेटर लूकास—चीन के स्वाधीनता संग्राम में मदद देने के लिये क्या हमें जापान के ख़िलाफ़ अपनी जहाज़ी ताक़त इस्तेमाल करनी चाहिये?

एडमिरल तौसिग—जी नहीं; अभी हम काफ़ी मज़बूत नहीं हैं। जब तक हम फ़िलिप्पाइन में अपना जहाज़ी अड्डा न जमा लें, तब तक हमारा दख़ल देना नामुनासिब होगा।

सेनेटर लूकास—आप कहते हैं कि दूसरे देशों की मदद से हम जापान के विरुद्ध कार्रवाई कर सकते हैं; किन्तु जैसा अभी सेनेटर जानसन ने कहा कि इंगलैण्ड के साथ हमारा समझौता था कि हम मिलकर

चीन की रक्षा करेंगे और जब हमने अपना वादा पूरा करना चाहा, तो इंगलैण्ड ने हमें पीठ दिखा दी। फिर आपने कहा कि सुदूरपूर्व में कोई क़दम उठाने से पहले हमें ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और डच ईस्ट इण्डीज़ से समझौता करना चाहिये ; किन्तु आप जानते हैं कि हाल ही में डच ईस्ट इण्डीज़ की सरकार ने एक बयान दिया है कि वे अपनी सीमा में हमारे दख़ल को बिलकुल पसन्द नहीं करते ?

एडमिरल तौसिग—सेनेटर, इन लोगों के बयान यूरोप की परिस्थिति को देखकर दिये जाते हैं और हम इन राजकीय बयानों पर कोई एतबार नहीं कर सकते। वे भ्रम पैदा करने वाले हैं।

सेनेटर लूकास—क्या अब तक इन देशों ने अपनी हर बात में हमारे साथ ऐसा ही धोखेबाज़ी का बर्ताव नहीं किया है ? क्या उन्होंने अपने सुलहनामों को महज़ रद्दी के काग़ज़ में नहीं बदल दिया है ?

एडमिरल तौसिग–हां, कुछ अंशों में जरूर; किन्तु हम इस बात का ख़याल रखें कि कोई हमारा नाजायज़ फ़ायदा न उठाने पाए। यदि जरमनी इस लड़ाई में जीतता है, तो यूरोप के तानाशाह और जापानी मिल कर हमें चूसने का इन्तज़ाम करेंगे। यदि हमने फ़िलिप्पाइन को स्वाधीन किया, तो यही होना है। चाहे पचास बरस बाद हो, मगर यही होगा।

इसके बाद मेजर इलियट की गवाही हुई।

चेयरमैन–क्या हमें सुदुरपूर्व में दख़ल देने का ख़याल छोड़ देना चाहिये ?

मेजर इलियट–मैं नहीं समझता कि इस समय चीन में हमारे दख़ल देने से कोई लाभ होगा। मेरा अनुमान है कि जापानी अपने बोझ से ख़ुद दबकर चूर हो जाएंगे। हमें इस बीच गुआम में क़िलेबन्दी करनी चाहिये। हमें उसे अस्त्र शस्त्रों से भर देना चाहिये। मुझे याद है कि समुद्रपार की ब्रिटिश सेना के इन्सपेक्टर जनरल सर इयान हैमिलटन ने सिंगापुर के जहाज़ी अड्डे के बारे में कहा था कि सब में बुरी बात कोई कमज़ोर जहाज़ी अड्डा बना कर उसे दुश्मन के लिये छोड़ देना है। यदि गुआम में हमें अड्डा बनाना है, तो वहां की क़िलेबन्दी अभेद्य होनी चाहिये; वरना अड्डा बनाने की कोई ज़रूरत नहीं, और वहां मज़बूत क़िलेबन्दी करने में तीन बरस लगेंगे।

सेनेटर टाइडिंग्ज़—क्या आप निश्चित तौर से कह सकते हैं कि चीन के युद्ध के बाद जापान अमरीका से लड़ेगा ?

मेजर इलियट–हां मैं समझता हूं यह मुमकिन है। इस वक्त जापानी जलसेना और स्थल सेना के संचालकों के बीच में काफ़ी मतभेद है। यह बात उनमें घर करती जारही है कि चीन में स्थल सेना को असफलता रही। यदि जापान का जनमत भी यही सोचने लगा, तो मुमकिन है कि 'चीन का मामला' ख़त्म करके जापानी जलसेना को अपनी विजय नीति अमल में लाने का मौक़ा दिया जाय। जापानी जलसेना हमेशा से इस बात पर ज़ोर देती रही है कि उसे दक्खिनी समुद्री साम्राज्य क़ायम करने पर अधिक शक्ति ख़र्च करनी चाहिये। उसे चीन के बजाय डच ईस्ट इण्डीज़, हिंद चीन फ़िलिप्पाइन और आस्ट्रेलिया आदि देशों की ओर तवज्जह करनी चाहिये।

सेनेटर जिलेट–यदि हम अपनी मज़बूत क़िलेबन्दी कर लें तो क्या आपकी राय में हम हमले का रुख़ ले सकते हैं ?

मेजर इलियट–नहीं, हमें बचाव का ही रुख लेना पड़ेगा। वह इसलिये कि हमारी दूसरी ज़िम्मेवारी भी हैं। हम प्रशांत महासागर और अटलाण्टिक महासागर दोनों जगह लड़ाई नहीं लड़ सकते। हम एक जगह हमला कर सकते हैं, तो दूसरी ओर से हमारा बचाव का रुख़ होना चाहिये।

सेनेटर हेल—हमें अब तक यह भी नहीं मालूम कि अपने संरक्षक द्वीपों में जापान ने कितनी तय्यारी की है ?

मेजर इलियट—हमें इस मामले में किसी तरह की सफलता नहीं मिली। लोगों ने गुप्त रूप से इस बात का पता लगाने की कोशिश की, किंतु उन्हे अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

चेयरमैन—दूसरा सवाल मेजर, यह है कि यदि जापान ने डच ईस्ट इण्डीज़ पर क़ब्ज़ा कर लिया, तब क्या हमें जापान के ख़िलाफ़ युद्ध का ऐलान करना चाहिये ?

मेजर इलियट—हम वह मौक़ा ही न आने दें, जिसमें जापान डच ईस्ट इण्डीज़ पर क़ब्ज़ा कर सके। हमें सब को साथ लेकर जापान का मुक़ाबला करना चाहिये। यदि हम जापान के विरुद्ध लड़ाई में शामिल हुए, तो मैं कुछ अन्दाज़ नहीं लगा सकता कि वह लड़ाई कब तक चलेगी ? सुदूर पूर्व में हमारा मुख्य हित व्यापारिक है। दूसरा वहां से हमें कच्चा माल रबर और टीन आदि मिलते हैं। रबर और टीन हमारे लिये बहुत महत्व रखते हैं। हमने डच ईस्ट इण्डीज़ में अरबों रुपया लगा रक्खा है। तेल भी हमें वहां से मिलता है। हां, यह एक सोचने की ज़रूरत है कि इनकी रक्षा के लिये लड़ाई मोल लेना कहांतक अक़्ल की बात होगी ?

सेनेटर लूकास—हमें रबर, टिन, मैंगनीज़ सुदूर पूर्व से मिलता है। यह कच्चा माल हमारे देश की उन्नति के लिये बेहद ज़रूरी है। क्या रबर और टिन हमें और कहीं नहीं मिल सकते ?

मेजर इलियट—नहीं, आसानी से नहीं।

× × ×

उपरोक्त गवाहों की गवाही हमने संक्षेप में उन्हीं के शब्दों में ऊपर दी है। एडमिरल स्टार्क अमरीका की जहाज़ी सेना के प्रधान सेनापति हैं। एडमिरल तौसिग अमरीका के पांचवें जलसेना विभाग के सेनापति हैं। मेजर इलियट आठ बरस तक अमरीका में जलसेना के रिज़र्व अफ़सर रह चुके हैं और इस विषय के सबसे अच्छे ज्ञाता समझे जाते हैं।

कमेटी किस नतीजे पर पहुंची, यह आज तक प्रकाश में नहीं आया।

आत्म-दीप

आनन्द, हमारे जीवन के अस्सी वर्ष बीत गए—अब दिन आ गया, मैं चला। देखो मैं आत्म-निर्भर होकर निर्भय चला जा रहा हूँ। तुम सब दृढ़ प्रतिज्ञ रहो। तुम भी हमारे ऊपर निर्भर रह कर चलना सीखो ! तुम स्वयं ही अपना दीपक हो—अपने ही अपने पर निर्भर रहो। सत्य का आश्रय ग्रहण करो—अपने से भिन्न और किसी पर निर्भर मत रहो। मैं चला जा रहा हूँ, देखो दुःख मत करना। अपना जीवन, धर्म और संघ रख जाता हूँ, यह अक्षय और अविनाशी है। इसी धर्म का तुम सब प्राणपण से पालन करो। संसार के दुःखों और कष्टों से परित्राण पाने के लिए हमने जानकार चिकित्सक की तरह तुम लोगों को औषधि दे दी है—इसी औषधि का सेवन करो। इसी बात का ख्याल रखो कि जिसका जन्म, उसकी मृत्यु और जिसकी बढ़ती, उसकी घटती होती है; संसार में सभी कुछ नाशवान है, सभी अनित्य है। यही जानकर यत्न पूर्वक अपनी मुक्ति का साधन करो।

—भगवान बुद्ध

की

एक मण्डी में

श्री दीनदयालु जी शास्त्री

[दीनदयालु जी को सन्यासाश्रमी की तो नहीं, किन्तु यात्रा की दृष्टि से 'परिव्राजक' जरूर कहना चाहिये। प्रायः हर वर्ष आप दो-एक मास ऐसी ही यात्राओं में बिताते हैं। ये यात्राएं केवल विनोद, मनोरंजन या तफ़रीह के लिये ही नहीं की जातीं। यह तो प्रकृति का अध्ययन करने के लिये सर्वोत्तम साधन हैं। जर्मनी, पोलैण्ड, स्विटज़रलैण्ड और अमेरिका आदि देशों से लोग इस देश में आकर हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों की छानबीन करते हैं और कितने ही उनकी बर्फ़ीली चट्टानों के तले अनन्त की गोद में लीन हो जाते हैं। भारत के युवकों का जीवन भी ऐसा ही साहसी एवं पुरुषार्थी बने और उनमें भी ऐसे जोखिम उठा कर साहस पूर्ण कार्य करने का उत्साह पैदा हो। इस लेख को लिखने के बाद शास्त्री जी साल भर के लिये जेल-यात्रा को चले गये हैं।]

तिब्बत एक ग़ैर आबाद देश है। हमारे व उसके मध्य में हिमालय की ऊंची दीवार खड़ी है। इस कारण जहां उस देश में आमदरफ़्त कम है, वहां व्यापार भी प्रचुर मात्रा में नहीं हो सकता। जो थोड़ा बहुत व्यापार होता है, उसके लिए हिमालय के भिन्न भिन्न धुरों के पड़ोस में अनेक अस्थायी मण्डियां आबाद हो जाती हैं। यहां गरमी के कुछ महीनों में देश-विदेश के व्यापारी एकत्र हो कर आपसी लेन-देन कर लेते हैं। तिब्बत का यही थोड़ा बहुत व्यवसाय है, जिस पर वहां के निवासियों का निर्वाह है। ये अस्थायी मण्डियां काश्मीर से लेकर आसाम तक के लम्बे प्रदेश में जगह जगह आबाद हो गई हैं। पश्चिमी तिब्बत में, जहां हम गये थे, रुदोक, गरतोक, ग्यानिमा व तकलाकोट नाम की मण्डियां मुख्य हैं।

तिब्बत
पैमाना
० १०० २०० ३००
१५३ मील = १ इंच
सुचाइननार
नानशान पर्वत
पुहाइनगोल
कोकोनार
सैदाम
दलदल
साचा
आलगनार
चारगनार
मार्को पोलो श्रेणी
आराश
कोकोशिली श्रेणी
बुकामाग्ना श्रेणी
दुगबूरी श्रेणी
खोखोसिली
कागचीनार
दंगबूरा
लेंगनाक
कराकोरम पर्वत
देमचोक
गरगन्स
लाल लवण झील
याकिन्हापचीगा
पतचोक
(पांली नदी)
न्याम्चो
थूदेनगम्बा
रवदान
मुरनाग
लंगधा
जया
पार्दिग
यामानोध
श्याब्देन
सेलिंगमो
उमसो
मोकुत्सो
तांगो गार्मी
क्यारिंगमो
नागसेसो
मोक्यूमो
तंग्रीनार
मानसरोवर झील
मानादर्रा
तुकसुम
ल्हारूगो
पेम्बा
अलादो
रागो
जम्बो
ल्हासा
ब्रह्मपुत्र नदी
शिगात्सी
पाल्ती झील
मांगजोंग
नमचा बरवा
२५४४५
राग्या
तांगशू
दोंगकर
एवरेस्ट पर्वत
२९००२
सारदा नदी
गंडक नदी
कोशी नदी
दीचू नदी
लोहितनदी

तिब्बत के अपने छोटे से प्रवास में हमारी इच्छा भी किसी एक तिब्बती मण्डी को देखने की थी। कैलाश व मानसरोवर से अपने देश को लौटते हुए हमें इन में से ग्यानिमा मण्डी में जाने का अवसर प्राप्त हुआ था।

राक्षस ताल

मानस से ग्यानिमा चार दिन का मार्ग है; किन्तु हमने लम्बी मंज़िलें तय कर के इसे तीन दिन में ही पार किया था। पहले दिन का मार्ग राक्षस ताल के साथ होकर गया है। राह में कैलाश शैल से आने वाली अनेक नदियों को भी पार करना पड़ा। हम जब राक्षसताल के आस पास पहुँचे, तो दोपहर ढल रही थी। तेज़ हवा से उल्लास पाकर ताल में ऊंची लहरें उठ रही थीं और उसकी थपेड़ों की आवाज़ दूर तक सुनाई देती थी। राहगीर को ऐसा मालूम देता था, मानो किसी समुद्र में तूफ़ान-सा उठ खड़ा हुआ है। सच-मुच राक्षस ताल तिब्बत का समुद्र ही तो है। उस का वह विशाल पाट मीलों से दिखाई देता है। उत्तर में वह चौड़ा और दक्षिण में आगे जाकर लम्बग्रीव सा हो गया है। इस ताल के मध्य में तीन चार छोटे-छोटे टापू भी नज़र आते हैं। इन में लामा लोगों का निवास है, ऐसा इधर वालों का विश्वास है। साधन के अभाव के कारण कोई यात्री वहां तक पहुँच नहीं पाता। यहां यह किंवदन्ती है कि गये ज़माने में लंका के अधिपति राक्षसराज रावण ने कैलाश पर जब हमला किया था, तो युद्ध की थकान व मेहनत से उसका सारा शरीर पसीने से सराबोर हो गया था। राक्षस ताल में रावण का वही प्रस्वेद भर कर एकत्र हो गया है। इस किंवदन्ती के आधार पर ही कैलाश के श्रद्धालु यात्री न तो राक्षस ताल के निकट से सफ़र करते हैं और न उसका जल ही ग्रहण करते हैं। वैसे उसका जल मधुर तथा अपेक्षा कृत शीतल है और सम्भवतः पाचक भी।

राक्षस ताल

राक्षस ताल के निकट ही 'बरखा' गांव में मार्ग की देख भाल के लिये इस इलाके के 'तरजय' का डेरा रहता है। तरजय का पद हमारे यहां के तहसीलदार के बराबर समझिये। वह इस प्रदेश से राज कर वसूल करता है तथा राजधानी ल्हासा को जाने आने वाली डाक के भेजने का इन्तज़ाम करता है। उसकी मदद के लिये एक दो सिपाही भी यहां रहते हैं। तरजय के डेरे के अतिरिक्त बरखा में दो चार दुकानें भी भोटिया व्यापारियों की हैं। बरखा से 'लजण्डा' 'रन्ता छू' व 'शलजङ्' होकर ग्यानिमा को सीधा मार्ग गया है। बीच में एक दो जगह मामूली चढ़ाई व उतार है अन्यथा रास्ता मैदान का है। लजण्डा में एक पहाड़ी गुफ़ा में यात्री विश्राम करते हैं। हम रात यहां न ठहर कर सीधे रन्ताछू चले गये। तिब्बत मे सूर्योदय व सूर्यास्त का दृश्य बड़ा अद्भुत होता है। हमने रन्ताछू के मार्ग में आज सूर्यास्त का आनन्द लिया। वहां एक लम्बे चौड़े मैदान में हम डेढ़ दर्जन यात्री एकत्र सफर कर रहे थे। साथ में छैसात चंवर गाय भी थीं। अभी हम मैदान के मध्य में थे कि पश्चिम की हिम धवल चोटियों में सूर्य भगवान् छिप चले। पन्द्रह दिन के बाद आज दूर में हमें हिमालय के दर्शन हुए, किन्तु निकट में ही तिब्बत की छोटी छोटी पहाड़ियों में अस्ताचल को जाते हुए सूर्य की मन्द किरणों से वह मैदान सुनहरा सा जान पड़ता

व सूखी तरकारियां सब मिल जाती हैं। हां, युक्त प्रांत के मैदान से आने के कारण इसके भाव ख़ूब मंहगे हैं। आटा रुपये में चार सेर, मसूर की दाल दो सेर, गुड़ दो सेर व सूखी तरकारी डेढ़ सेर को आप यहां से ले सकते हैं। घी, दूध, दही तिब्बत में काफ़ी होता है। इन चीज़ों की दुकानें यहां नहीं हैं। आसपास के गावों के तिब्बती गूजर फेरी लगा कर यहां ये सामान बेच जाते हैं। यही तरीक़ा मांस की बिक्री का है और वह यहां बहुत मात्रा में मिलता है।

तिब्बती वेश में लेखक के साथी

नैपाली, लदाख़ी व भोटिया व्यापारी अपना सामान बेचकर तिब्बती लोगों से ऊन, नमक व सुहागा ख़रीदते हैं। कानपुर की लाल इमली मिल में जो ऊनी माल तैयार होता है, उसमें तिब्बत का ही ऊन अधिकांश में इस्तेमाल होता है। इन तिब्बती व्यापारियों की दुकानें ग्यानिमा मण्डी में नहीं हैं, क्योंकि वे तो इस मुल्क के बाशिन्दे ही ठहरे। प्रति दिन ये तिब्बती व्यापारी लेन देन व सैर के लिये मण्डी में आते हैं और सौदा कर के घरों को वापिस चले जाते हैं।

ग्यानिमा मण्डी के नैपाली व भोटिया व्यापारी अधिकतर हिन्दू हैं और तिब्बती व लद्दाख़ी व्यापारी बौद्ध; किन्तु यहां इन दोनों धर्मों का ऐसा समन्वय हो गया है कि धार्मिक दृष्टि से कोई भेदभाव प्रतीत नहीं होता। हिमालय पहाड़ के अनेक भागों में हिन्दू व बौद्ध सभ्यता का यह नज़ारा प्रायः देखने में आता है। नैपाली व भोटिया व्यापारियों के हितों की देख रेख के लिये नैपाल व भारतीय सरकार के वाणिज्य दूत भी तिब्बत में रहते हैं। भारतीय सरकार का वाणिज्य दूत ग्यानिमा से ८० मील उत्तर में स्थित गरतोक में रहता है और वह समय समय पर भिन्न भिन्न मण्डियों का दौरा करता रहता है। जिन दिनों हम ग्यानिमा में थे, तो भारतीय-भोटिया व्यापारियों व तिब्बत सरकार में चुंगी के टैक्स की बाबत कुछ झगड़ा चल रहा था और उसे सुलझाने के लिये गरतोक से वाणिज्य दूत ग्यानिमा में आने वाला था।

तिब्बती के यहां चाय पार्टी

निवास व आराम की दृष्टि से ग्यानिमा मण्डी में हमारा यह सप्ताह अच्छी तरह गुज़रा; किन्तु पानी की दिक़्क़त इन दिनों ख़ूब रही। मण्डी के बाहर उथले पानी की दो-तीन धारायें बहती हैं। मण्डी के सब निवासी सुबह-शाम इन धाराओं को ख़राब करते हैं। बहुत से लोग रसोई आदि के काम में भी यही पानी इस्तेमाल करते हैं। वैसे स्वच्छ जल का एक चश्मा सामने वाली पहाड़ी के नीचे है; लेकिन कुछ इनेगिने सफ़ाई पसन्द लोग ही वहां जा पाते हैं। स्वयं मण्डी के अन्दर और चारों ओर मृत जानवरों का हाड़-मांस व दूसरा मैला जहां-तहां देखने में आता है। तिब्बती लोग स्वभावतः गन्दे होते हैं। उस ऊंचे पठार में रहने के कारण, उनमें सफ़ाई के प्रति उपेक्षा का होना स्वाभाविक है। स्नान तो दूर रहा, वे मुंह-हाथ भी शायद साल में एक दो बार ही धोया करते हैं। जल का स्पर्श आमतौर पर वे नहीं करते। भोजन में भी उनके जल का स्थान चाय ने ले लिया है। एक दिन इसी तरह घूमते-घामते हम एक वृद्ध तिब्बती के डेरे पर जा पहुंचे। वह

मण्डी में सुबह-शाम बिक्री के लिये दूध दही लाता था और अपनी चांवर गाय बोझ के लिये किराये पर उठाता था। सुना था कि उसके यहां बिछाने का मृगचर्म अच्छा मिलेगा। जब हम उसके यहां पहुँचे तब वह 'छड्' (एक प्रकार की शराब) पीने में मस्त था। कुछ मित्र भी उसके साथ थे। गान्धी टोपी में हमें देख कर वह डेरे से बाहर आया और आदर के साथ अन्दर लिवा ले गया। स्वागत सत्कार के बाद हम से वह 'घाण्डी बाबा' (गान्धी जी) के समाचार पूछने लगा और साथ ही छड् का एक प्याला भेंट करने लगा। हमने थोड़ा हंस कर इनकार कर दिया। तब उसने कुछ तिब्बती मिठाई व चाय हमारे सामने पेश की और कैलाश यात्रा का हाल पूछा। आखिर इस स्वागत सत्कार के बाद हमने उस से मृगचर्म लेकर बिदा ली। तिब्बती स्वभाव मे मिलनसार, ख़ुश मिजाज़ व रहमदिल होते हैं। आज अज्ञान व दरिद्रता ने उन्हें कुछ लोभी व पतित कर दिया है। यदि वहां की सरकार थोड़ा भी ध्यान दे; तो लामाओं के देश के ये निवासी काफ़ी तरक्क़ी कर सकते हैं।

ग्यानिमा मण्डी के सात दिन के इस प्रवास में हमने कुछ थोड़ा बहुत ख़रीद फ़रोख़्त भी किया। यहां की याददाश्त के लिये किसी ने काठ के प्याले लिये, किसी ने चुकटा (गरम ऊनी धुस्सा) लिया और किसी ने कस्तूरी आदि ली। लेकिन, हमारे कृष्णचन्द्र जी ने चलते समय सारी तिब्बती पोशाक ही ख़रीद ली। उस पोशाक में वे बड़े भले मालूम देते थे। अन्ततः चार अगस्त को प्रातः अपने अगुआ रामसिंह से बिदा लेकर हमने अपने प्यारे वतन के लिये प्रस्थान किया। रामसिंह को हमसे बिदा लेते समय बहुत दुःख हुआ। इतने दिन साथ रहते रहते हमसे उसे कुछ लगाव-सा होगया था। स्वभाव का थोड़ा बड़-बोल होते हुए भी वह अपने काम में हुशियार था और सत्य तो यह है कि उसके ही कारण हमें अपने तिब्बत प्रवास में अधिक परेशानी नहीं उठानी पड़ी। चलते समय हमने उसे कुछ नक़दी इनाम में दी, साथियों ने कपड़े लत्ते दिये और हरिवंश जी ने अपना टोप अर्पण किया। वह हमें मण्डी से बाहर तीन चार मील आगे तक छोड़ने भी आया और फिर आर्द्र नयनों से वापिस लौट गया।

ग्यानिमा मण्डी से चलकर हम नीति धुरे (Pass) के रास्ते अपने तीर्थ बदरीनाथ पहुंचे और वहां से पैदल हरिद्वार आये। प्रति वर्ष हज़ारों यात्री इस रास्ते से बदरीनारायण की यात्रा करते हैं। हमें भी इस सफ़र से सन्तोष मिला। हम बीस जून को कैलाश यात्रा के लिये हरद्वार से बिदा हुए थे और दो मास बाद ६०० मील का कठिन सफ़र समाप्त कर २१ अगस्त को हरद्वार वापिस आये। पर अब भी हरद्वार में गंगा तट पर बैठे बैठे हमें कैलाश व मानसकी उस कठिन तम यात्रा की याद कभी कभी हो आती है।

डिस्ट्रिक्ट जेल, सहारनपुर]

दो फूल

श्री आनन्द नारायन मुल्ला

[श्री आनन्द नारायन मुल्ला उर्दू के मशहूर कवि हैं। आपकी रचनाओं का बड़ा आदर है। आप हिन्दुस्तानी ज़बान के हामी हैं। आपकी यह कविता हिन्दुस्तानी भाषा का एक सुन्दर नमूना है।]

दो गुलाब के फूल !

कलीपने से बड़े हुए थे, दोनों, संग ही संग।
एक ही सूरज की किरनों ने, दिया था रूप औ रंग।
एक ही रात के परदे में, उतरा था हरा दुपट्टा ;
एक ही शबनम की बरखा ने; धोया गोरा चिट्टा।
आई टहलने बाग़ में, इक चंचल मदमाती नार;
एक को उसने तोड़ा, औ बालों का किया सिंगार।
डाली से भी सिवा लगा, उस सर पे फूल वो प्यारा;
जैसे बादल चीर के हंस दे, कोई रोशन तारा।
जैसे काली पलकों पे, आंसू का मोती चमके;
जैसे परबत की चोटी पे, बरफ़ की चांदी दमके।
जैसे सागर के जल थल पर, कोई टापू उभरे;
जैसे शीस पे शंकर के, गंगा की धारा उतरे।
लगा दूसरा फूल, उसी डाली पर ही कुम्हलाया;
तरस तरस के हलके हलके, सारा रूप गंवाया।
गर्म औ तेज़ हवा के झोंके, की वह ताव न लाया;
सूख के आख़िर डाली पर से, टूट के ख़ाक पे आया ?
ख़ाक में मिलकर ख़ाक हुई वे, नाज़ुक पंखड़ियां भी;
जिनको देख के जलती थीं, इन्द्रासन की परियाँ भी।
और तो और उसी क्यारी की, आँखों में वह खटका;
दूर उसे ले जाकर, माली ने घूरे पर पटका !
फिर ये कैसा भाग कहो, कैसी यह जग की रीस ?
एक नज़र की जोत बढ़ाये, एक जिगर की टीस !
एक को अपनाये औ इक को, आँख दिखाये बाग़;
एक को घर का दिया कहे, औ एक को कुल का दाग़ !
एक का हो हर कुञ्ज में चरचा, एक को जाएं भूल;
एक किसी के सर का ज़ेवर, एक के सर पर धूल !

दो गुलाब के फूल !

लखनऊ]

इसलामी दुनिया और मौजूदा जंग

डाक्टर कुँवर मुहम्मद अशरफ़ एम० ए०, एलएल० बी०, पी एच० डी०

[इस लेख के सुयोग्य लेखक डाक्टर अशरफ़ की ज़बान में जितनी ताक़त है, उतना ही उनकी क़लम में ज़ोर है। इस लेख से पाठकों को पता चल जायगा कि वे जैसे पक्के राष्ट्रवादी हैं, वैसे ही स्वतन्त्र विचारक भी हैं। इस देश के जो सम्प्रदायवादी मुसलमान इसलामी राष्ट्रों को लेकर पाकिस्तान का सपना देख रहे हैं और जो लोग उनके पीछे अपने दिल व दिमाग़ को धुंधला बना रहे हैं, उन सभी को इस लेख से उन राष्ट्रों की उस असलियत का पता चलेगा, जिस पर कि उनकी नज़रों में परदा पड़ा हुआ है। सभी साम्राज्यवादी एवं फ़ैसिस्ट ताक़तों की नज़रों में इस्लामी राष्ट्रों की हस्ती एक-सा स्थान रखती है। इङ्गलैण्ड, फ्रांस जर्मनी और इटाली, सभी—उनको अपने अधीन एवं आश्रित बनाये रखना चाहते हैं। १६१४ की लड़ाई से पहिले भी उनकी यही इच्छा थी, बाद में भी वह वैसी ही बनी रही और अब भी वह वैसी ही बनी हुई है। हिन्दुस्तान के बाहर के जिन मुसलमानों ने इसे समझ लिया है, उन्होंने अपने को अपने राष्ट्र की आज़ादी के प्रयत्नों में लगा दिया है।

जंग या ख़ूंरेज़ी इनसानी इतिहास की कोई नई घटना नहीं। सच यह है कि इनसानी तरक्क़ी इतिहास की दृष्टि से बहुत कुछ जंगों की अहसान मन्द है। दूसरे शब्दों में हम इतिहास की बहुत सी लड़ाइयों को प्रगतिशील कह सकते हैं। लेकिन हाल की पूंजीवादी लड़ाइयों को प्रगतिशील कहना ग़लत होगा। हमें यह पहलू बजाय साम्राज्यवादी लड़ाइयों के आज़ादी की उन लड़ाइयों में ढूंढ़ना पड़ेगा, जो छोटी और कमज़ोर क़ौमें साम्राज्यवादियों के असर से जान बचाने के लिये लड़ती हैं।

पुराने ज़माने और हाल की लड़ाइयों में एक बड़ा अन्तर यह भी है कि इस ज़माने की हर बड़ी लड़ाई हमारे समाज के वर्गों के फ़ायदों से नुमायां तौर पर बंधी हुई और मौजूदा समाज में ज़रूर ही तब्दीली पैदा कर देती है। चुनांचे इसी पिछली लड़ाई से एक ही वक्त में फ़ासीज़्म और क्रान्तिकारी समाज वाद के रुझान बढ़े और रूस और जर्मनी की नई राजनीति पैदा हुई। इन साम्राज्यी जंगों में समाज वादियों की हिदायत के लिये एक समाजवादी विचारक ने यह सिद्धान्त तय किया था कि "जंग के ज़माने में तुम्हारे दुशमन ख़ुद तुम्हारे मुल्क के अन्दर हैं। उन्हीं के ख़िलाफ़ उठो।"

सन् १९१४ के और वर्तमान विश्वव्यापी युद्ध में एक स्पष्ट अन्तर यह भी है कि पुरानी लड़ाइयों में

इसलामी दुनिया

और इसके पहले की लड़ाइयों में दो दल होते थे, अब इस विश्वव्यापी महान युद्ध में एक नया दल बेज़ाप्ता तौर पर बढ़ गया है। यानी, ग़ुलाम मुल्कों की आज़ादी का आन्दोलन। चीन की व हिन्दुस्तान की स्वाधीनता की लड़ाई और स्वतन्त्र देशों में मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी भावना भी एक अन्तर्राष्ट्रीय रूप ले रही है। इसी का व्यापक रूप रूस की हुकूमत और मजदूरों की क्रांतिकारी भावना है। इसलामी मुल्क इसी तीसरे और बेज़ाप्ता दल में गिने जा सकते हैं। मगर इस बात को समझने के लिये कुछ बातों का जानना जरूरी है।

(१)

भूमण्डल पर मुसलमान मोरक्को से लेकर चीन तक या यह कहिये कि अटलाण्टिक से लेकर प्रशान्त महासागर तक आबाद हैं। उनकी संख्या का ठीक ठीक पता चलाना मुशकिल है। लेकिन, यह ख़याल किया जाता है कि उनकी आबादी पचास करोड़ के क़रीब है। उनके मुल्क एक बंधे हुए सिलसिले में पाए जाते हैं, यहां के लोग सदियों से इन इलाक़ों में आबाद हैं और एक बड़ी संस्कृति के मालिक हैं। ऐतिहासिक मतभेद के होते हुए भी इन इलाक़ों में धर्म की, ज़बान की और बड़ी हद तक नस्ल की भी एकता पाई जाती है। आज भी उनका आपसी संबंध और उनकी एकता की जड़ें इतनी मज़बूत हैं, जिसकी मिसालें इतिहास में कम मिलेंगी।

चीन, जावा, सुमात्रा, हिन्दचीन आदि द्वीपोंको छोड़कर एशिया और अफ़रीक़ा के इसलामी इलाक़े में सदियों की मुसलिम बादशाहों की हुकूमत, अरबी बोली, अरबी तिजारत, तथा अरबी तहज़ीब ने उनको संगठित किया और उनकी शीराज़ाबन्दी करके उन्हें एक धागे में पिरोया। चुनांचे इसलामी इलाके में कला कौशल यानी साहित्य, कविता, संगीत, निर्माण कला यहां तक कि लिबास और रहने-सहने के तरीके में भी काफ़ी सादृश्य है। एक ज़माने में इब्न बतूता और सैदी अली रईस जैसे यात्री इन मुल्कों में इस तरह आते जाते थे जैसे कोई अपने ख़ानदान के लोगों से मुलाक़ात करने के लिये सफ़र करने निकले। आज भी मोरक्को, अलजीरिया, तूनिस, त्रिपोली और मिस्र, उत्तरी अफ़रीक़ा में, और साम, फ़िलस्तीन, शर्क़उर्दुम (यानी जोरडान नदी के पूर्व का इलाक़ा,) लेबनान, इराक़, हेजाज़ और यमन-पूरबी एशिया में, एक बड़ी अरबी एकता के अंग समझे जाते हैं। अगरचे ईरान, तुर्की या अफ़ग़ानिस्तान और हिन्दुस्तान का उत्तर पच्छिमी इसलामी इलाक़ा इस अरबी इत्तहाद का अंग नहीं मगर ख़ुद इस इलाके पर ऐतिहासिक दृष्टि से इसलामी अरबी सभ्यता का गहरा असर पड़ा है। दूसरी तरफ़ इसलामी दुनिया का वह हिस्सा है, जो एक तरफ़ रूसी और चीनी तुर्किस्तान से लेकर चीन के पूरब उत्तर में सेन्सि, नान्सि और कान्सु प्रान्त और दूसरी तरफ़ पूरबी बंगाल से लेकर जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और दूसरे द्वीपों तक चला गया है। इसकी हैसियत, इसलामी उपनिवेश की सी है, यानी बराहराश्त इस इलाके पर इसलामी राजनीति का कोई असर नहीं पड़ा। लेकिन, अरबों की तिजारत और मज़हबी प्रचार ने इस इलाके की ज़बान, सभ्यता और नस्ल के फ़र्क़ के होते हुए भी इसलामी दुनिया से मिला दिया और आज यह इलाक़ा भी मुसलमान ज़रूरतों और इसलामी राजनीति से उसी तरह प्रभावित होता है, जिस तरह एशिया या अफ़रीक़ा के दूसरे इलाके।

(२)

यह अजीब बात है कि उन्नीसवीं सदी से पहले इसलामी एकता का कोई बड़ा आन्दोलन नहीं उठा। मुसलमान बादशाहों के दौर में दुनिया के मुसलमानों को एक सूत्र में बांधने का कभी किसी को गुमान भी नहीं हुआ था। चुनांचे स्पेन के मुसलमान अनाथ होकर मिट गए और ख़ुद क्रूसेड के ज़माने में हर मुल्क के मुसलमान अपने अपने मुल्क की राजनीति में मस्त थे। इसका एक कारण यह भी था कि एक

इसलामी मुल्क या सल्तनत के मिटने से मुसलमानों के सम्मिलित जीवन में कोई ज़ाहिरा असर या बुनियादी फ़र्क़ न पड़ता था। सल्तनतों और मुल्कों में आये दिन लड़ाइयां होती थीं, मगर इन लड़ाइयों से समाज का कारबार न तो बिगड़ता था और न बदलता था।

मुसलमानों को अपनी आपसी एकता का खयाल बजा तौर पर उस वक्त पैदा हुआ, जब यूरोप का पूंजीवाद अपनी चोटी पर पहुंचा और उसके असर ज़ाहिर होने लगे। यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति और पच्छिमी पूंजीवाद के लिये तिजारती रास्तों और मण्डियों की ज़रूरत थी। भूगोल के लिहाज़ से इसलामी दुनिया कुछ ऐसी वाक़े है कि रूम सागर (भूमध्य सागर) के तीन बड़े दरवाज़े, यानी दर्रे दानियाल, नहर सुएज़ और जिब्राल्टर मुसलमान इलाक़ों में हैं। इसके अलावा मिट्टी के तेल का काफ़ी बड़ा ज़खीरा इसलामी इलाक़े में पाया जाता है। यही कारण है कि पच्छिमी पूंजीवाद व साम्राज्य की सब से पहले इसलामी मुल्कों से टक्कर हुई और पच्छिमी तिजारत ने सदियों तक अरबी तिजारत और जहाज़रानी को मिटाया। यों इसलामी दुनिया नई औद्योगिक उन्नति से वंचित थी; मगर मण्डी की हैसियत से साम्राज्यवादी और पूंजीवादी नक़्शे में एक महत्व पूर्ण स्थान रखती थी।

चुनांचे सौ दो सौ बरस मुक़ाबला करने के बाद आखिरकार इसलामी दुनिया और उसके बादशाह पच्छिमी साम्राज्य के पाबन्द हो गये और उन्नीसवीं सदी के आखीर तक ज़्यादातर इसलामी इलाक़ा पच्छिमी साम्राज्यी हुकूमतों के हाथों में आगया। इस ग़ुलाम इलाक़ों के मुसलमानों का साम्राज्यी ज़माने में सिर्फ़ यह काम रह गया कि वह अपने दस्तकारियों और पुराने उद्योग धन्धों के ढांचे को खैरबाद कहकर साम्राज्यी कारखानों का बना हुआ माल खरीदें और कच्ची जिन्स तय्यार करके सस्ते दामों उनके हाथ बेचें। जो छोटे छोटे मुसलमान उमरा बच रहे हैं, उनका काम है साम्राज्य के फ़ौजी संगठन और उसकी नीति की मदद करना। ग़ुलाम इसलामी राजनीति साम्राज्यवादी नीति की पाबन्द है।

साम्राज्यवादी देशों की ग़ुलामी से ज़ाहिरा तौर पर बाज़ इलाक़े बच गये; यहां तक कि बाज़ इसलामी हुकूमतें क़ानून और रस्मन आज़ाद भी हैं; मगर इन हुकूमतों की हैसियत 'क्लायण्ट स्टेट' यानी छुटभइयों की सी है और ये मुल्क वैदेशिक नीति में किसी न किसी दूसरी बड़ी साम्राज्यी हुकूमत के पाबन्द हैं। खुद अन्दरूनी मामलों में भी रूसी इनक़लाब से पहले ये मुल्क आज़ाद न थे। जिन लोगों ने तुर्की, मिस्र, ईरान या चीन की अन्दरूनी राजनीति का अध्ययन किया है, उन्हें इसका अन्दाज़ा है कि पच्छिमी ताक़तें इन मुल्कों के अन्दरूनी मामलों पर भी छाई हुई थीं और इन मुल्कों की क़ानूनसाज़ी, इल्मी तरक्क़ी और औद्योगिक उन्नति में रुकावट होती थीं। हर साम्राज्यी क़ौम और तमाम यूरोपियन लोगों को आज़ाद इसलामी मुल्कों में खास अख्तियार और रिआयतें हासिल थीं। इन लोगों के लिये मदरसे, व अदालतें, यहां तक कि चुंगी और सड़कें भी अलहदा थीं। पच्छिमी व्यापारी और पादरी इन मुल्कों में हाकिमों की तरह ज़िन्दगी बसर करते थे। मुख्तसर यह कि मुसलमान बादशाहों से भी ऊपर इसलामी मुल्कों पर इन लोगों की हुकूमत जारी थी और नाम मात्र के आज़ाद इसलामी मुल्क सिर्फ़ इसलिये आज़ाद छोड़ दिए गए थे कि बड़े बड़े साम्राज्यी मुल्कों में इनके बंटवारे के बारे में कोई आपसी समझौता न हो सका था। मगर इसकी कोशिशें बराबर जारी थीं। मसलन बर्तानिया और रूस में सन् १४ की जंग से पहले समझौता हो चुका था कि इराक़, फ़िलस्तीन और मिस्र पर बर्तानिया का और दर्रे दानियाल पर ज़ार का क़ब्ज़ा हो। ईरान में रूसी और बर्तानवी प्रभाव क्षेत्र क़ायम हो चुके थे। अफ़ग़ानिस्तान पूरी तरह अंगरेज़ी असर में था। शाम (सीरिया) फ़्रान्स के सुपुर्द हो गया था। ग़रज़ कि वारसाई अहदनामे पर पहले से अमल हो रहा था और अगर दुनिया की हालत उनकी ख्वाहिश के मुताबिक रहती, तो सारी की सारी इसलामी दुनिया बाज़ाप्ता पच्छिमी साम्राज्यों के क़ब्ज़े में चली जाती। अंगरेज़ी और फ़्रान्सीसी साम्राज्य की तरह जर्मन

साम्राज्य के अपने नक़्शे थे, जिनकी तफ़सील की यहां ज़रूरत नहीं। उनकी निगाहें भी तेल के चश्मों और नहर सुएज़ पर लगी हुई थीं और आज भी लगी हुई हैं। साम्राज्यी हुकूमतों को इन बुनियादी पालसियों से जुदा नहीं किया जा सकता।

(३)

मुसलमान दुनिया की आंखें पिछली जंग के बाद तब खुलीं, जब वारसाई सन्धि के अनुसार तुर्की हुकूमत के टुकड़े किये गए, समरना का शहर यूनानियों और इतालियों के हवाले कर दिया गया। जो लोग तुर्कों के ख़िलाफ़ अरबी एकता के परदे में अंग्रेज़ी साम्राज्य से षड्यन्त्र या अफ़ग़ान से साज़िशें कर रहे थे, उन्हें अब अन्दाज़ा हुआ कि साम्राज्यी पालिसी को अरब एकता से ज़्यादा यहूदियों के आबाद करने की ज़रूरत है। अंगरेज़ी साम्राज्य का सब से बड़ा ध्येय यह था कि उन्हें इराक़ के तेल के चश्मे और नहर सुएज़ की रक्षा के विचार से हवाई केन्द्र बनाने के लिए हैफ़ा (फ़िलस्तीन) का शहर मिल जाय। चुनांचे वारसाई की सन्धि ने उन्हें यह सब कुछ दे दिया। इस सुलह नामे के बाद उनकी पकड़ पहले से ज़्यादा मज़बूत होगई। अगर जंग के बाद एक अनहोनी घटना न हो जाती, तो मुसलमानों का क्षणिक जोश और ग़ुस्सा हमेशा की मायूसी और बेबसी में बदल जाता और अजब न था कि बहुत सी पुरानी तहज़ीबों की तरह मुसलमानों की कहानियां भी सिर्फ़ इतिहास के पन्नों में मिलतीं।

यह घटना रूस की मज़दूर क्रान्ति और मुसलमान तथा दूसरी कमज़ोर क़ौमों के बारे में लेनिन का कार्य-क्रम था। रूसी क्रान्ति का और जो भी असर हो, उसका सबसे ज़्यादा गहरा असर इसलामी दुनिया पर हुआ। भूगोल की दृष्टि से मुसलमानों की आज़ाद सल्तनतें ज़्यादातर रूस से मिली हुई हैं। चुनांचे रूस के ज़ार ने एक ज़माने तक इन सल्तनतों और ख़ुद अपने इलाक़ों के मुसलमानों को ख़स्ता हालत में रख छोड़ा था। सल्तनत उसमानी के जाने कितने इलाक़े रूस की बदौलत तुर्कों के हाथ से निकल चुके थे। ईरान पर रूस का असर था ही और अब रूस के ज़ार की दर्रे दानियाल पर नज़र थी।

इनक़लाब होते ही बोलशेविकों ने पहला काम यह किया कि ख़ुफ़िया अहदनामे चाक कर दिये, यानी ईरानी असर और दर्रेदानियल से ख़ुदबख़ुद हाथ खींच लिया, बल्कि कोहकाफ़ के बाज़ इलाक़े उन्होंने तुर्कों को वापस किये। इसके अलावा रूसियों ने तुर्कों की आज़ादी की लड़ाई में मुस्तफ़ा कमाल की खुलकर मदद की, जिसकी बदौलत उन्हें यूनानियों के मुक़ाबले में कामयाबी हुई और आख़ीरकार लोज़ान कान्फ्रेंस में तुर्कों ने वारसाई के सुलहनामे को फ़ाड़ कर फेंक दिया। रूसी इनक़लाबी हुकूमत ने अपने इलाक़े के मुसलमानों को आज़ाद किया और उन्हें यह हक़ दिया कि वे अपनी स्वतन्त्र और आज़ाद हुकूमत बनायें और अगर चाहें, तो रूस से पूरी तरह आज़ाद रहें। चुनांचे मुसलमान इलाक़ों के प्रजातन्त्र राज्य एक मुद्दत तक अलहदा रहने के बाद अपनी मरज़ी से सोवियत् रूस के फ़ेडरेशन में शामिल हुये।

लेनिन ने सन् १९२० ईस्वी में मुसलमान क़ौमों की ख़ास तौर पर कान्फ्रेंस की और उन्हें साम्राज्य विरोधी प्रयत्नों में रूसी मदद का यक़ीन दिलाया। इसी के साथ साथ रूस ने अफ़ग़ानिस्तान, तुर्की और ईरान से सन्धियां कीं, जिनके अनुसार हर एक राष्ट्र ने एक दूसरे पर हमला न करने का यक़ीन दिलाया।

रूस की नीति और लेनिन के कार्यक्रम से इसलामी दुनिया में नये सिरे से जान पड़ गई और आज़ादी का आन्दोलन बढ़ने लगा। अफ़ग़ानिस्तान ने ऐलान जंग करके अंगरेज़ी साम्राज्य से अपनी आज़ादी स्वीकार कराली। ईरान में रज़ाशाह पहलवी ने क़ाचार ख़ान-दान को निकाल बाहर किया। तुर्की में नये सुधारों का दौर शुरू हुआ और रूसी मदद से नए उद्योग धन्धों और पंच वर्षीय कार्य क्रम की बुनियाद पड़ी। मिस्र में साद पाशा ज़ग़लूल ने मिस्री आज़ादी का झण्डा बुलन्द किया और आख़िरकार अंग्रेज़ी साम्राज्य को बाज़ शर्तों के साथ मिस्री आज़ादी स्वीकार करनी

पड़ी। और तो और खुद इराक़ और हेजाज़ में अरबी एकता और आज़ादी के अर्थ बदलने लगे और फ़िलस्तीन में बाज़ाप्ता आन्दोलन शुरू हुआ।

(४)

यूरोप के पिछले महायुद्ध के बाद जैसा कि बयान किया गया है, जहां एक तरफ़ क्रान्ति और स्वतन्त्रता के रुझान बढ़े, दूसरी ओर यूरोप में फ़ासीज़्म का दौर दौरा शुरू हुआ फ़ासीज़्म के ऐतिहासिक विश्लेषण का यहां मौक़ा नहीं। लेकिन, यह बात समझ लेना ज़रूरी है कि इस जंग से महान पूंजीवाद की पेचीदगी और मुसीबत ज़्यादा बढ़ गई और जंग के कुछ वर्षों बाद आर्थिक ह्रास का वह सिल सिला शुरू हुआ, जो अब तक ख़त्म होने में नहीं आता। एक तरफ़ पूंजीवाद के लिये ज़मीन तंग होने लगी और दूसरी ओर मज़दूर क्रान्ति के लक्षण बढ़ने शुरू हुए।

ऐसी हालत में पूंजीवाद के लिये फ़ासीज़्म की सूरत अख़्तियार किये बग़ैर चारा ही क्या था? फ़ासीज़्म पतनोन्मुखी पूंजीवाद का वह आख़री और जीर्ण शीर्ण रूप है, जो पार्लिमेंएट और मज़दूरों की आज़ादी को चूस लेने के बाद हुकूमत से जंग का काम लेता और गोला बारूद बनाकर, इनसानों और क़ौमों के ख़ून से होली खेलकर नफ़ा कमाता है। पूंजीवाद ने इस में पेश क़दमी की और अंगरेज़ी साम्राज्य की मरज़ी और हिमायत से कमज़ोर क़ौमों की ओर बढ़ना शुरू कर दिया। हमें चूंकि इसवक्त सिर्फ़ मुसलमान मुल्कों से ताल्लुक़ है, इस लिये हम फ़ासीज़्म के सिर्फ़ उन कारनामों को बयान करेंगे जिनका सम्बन्ध इस-लामी दुनिया से है।

बर्तानवी साम्राज्य ने फ़िलस्तीन पर क़ब्ज़ा करके रूम सागर में और हाल में हज़्रमूत के इलाके को लेकर अदन की खाड़ी और अरब महासागर में अपनी स्थिति मज़बूत करली। ईरान की खाड़ी में पहले से उनका बहरैन पर क़ब्ज़ा था। यानी एक तरह से वे अरब, इराक़ और शाम में घेरा डाल चुके हैं। सुल-तान इब्नसऊद की कामयाबी में बर्तानवी साम्राज्य का हाथ रहा है और अरब और यमन से बर्तानिया को कोई ख़ौफ़ नहीं। इन सीमाओं में बर्तानिया ने अरब की एकता बल्कि इसलाम की एकता के ख़याल को आगे बढ़ाया और सादाबाद की सन्धि के ज़रिये अरब, इराक़, मिस्र, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और तुर्की को एक केन्द्र में और अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया।

बर्तानवी साम्राज्य को इस नीति की इसलिये ज़रू-रत पड़ी कि इतालवी फ़ासीज़्म के इसलामी मुल्कों के बारे में अपने मन्सूबे हैं। इतालिया को रूम सागर से बाहर जाने के लिये एक खुले दरवाज़े की ज़रूरत है। इसके अलावा इतालिया की बढ़ती हुई आबादी के लिये और तिजारत के लिये मण्डियों की ज़रूरत है। ज़ाहिर है कि उसके मन्सूबे उसी सूरत में पूरे हो सकते हैं, जब निकट पूर्व के इसलामी मुल्कों में उस का असर क़ायम हो। चुनांचे अलबानिया के अलावा इटली ने त्रिपोली पर क़ब्ज़ा कर लिया है और अब एक तरफ़ तो नहर सुएज़ के आस पास उसकी निग़ाहें हैं और दूसरी तरफ़ सोमालीलैण्ड और इथियोपिया को सुरक्षित करने के ख़याल से वह यमन पर दांत लगाए बैठा है। फ़्रांस का शाम और लेबनान पर क़ब्ज़ा है। इसके अलावा अल-जीरिया, तूनिस और मोरक्को के इलाके उसके पास पहले से ही मौजूद हैं। सादाबाद की संधि की तरह फ़्रान्सीसी साम्राज्य ने भी अरब एकता के मनसूबे बना रखे हैं, जिसका केन्द्र शाम और नेता शकेब अरसलान जैसा नामी गरामी अरब है।

जर्मनी की स्कीमों में अभी तक इसलामी दुनिया या रूम सागर प्रकाश रूप से नहीं आये। मगर इसलामी दुनिया के अंगरेज़-विरोधी आन्दोलन से जर्मन प्रोपे-गेण्डा को काफ़ी दिलचस्पी रही है। एक मुद्दत से इता-लवी रेडियो स्टेशन की तरह जर्मन स्टेशन भी अरबी प्रोग्राम सुनाते और अरबी दिलों को गरमाते रहते हैं। यूं भी पिछली निरेमबर्ग की नाज़ी कान्फ्रेन्स में सौ के क़रीब अरबी प्रतिनिधियों को निमंत्रित किया गया था।

इस सिलसिले में जापानियों का अन्दाज़ सबसे ज़्यादा हास्यप्रद और दिलचस्प है। जैसा कि शुरू में कहा गया है चीन के उत्तरी पच्छिमी इलाक़े में काफ़ी मुसलमान आबादी है। जब से जापानियों को चीन पर क़ब्ज़ा करने का ख़याल हुआ, उन्होंने मुसलमानों की तरफ़ ख़ास तौर पर ध्यान दिया। चुनांचे दो साल पहले जापानी हुकूमत के ज़िम्मेदार लोगों ने तोकियो में एक शानदार 'इसलामी कान्फ्रेंस' की, जिसमें यमन, हेजाज़, मिस्र, हिंदुस्तान, सुदूरपूर्वीय द्वीप और मंगोलिया के प्रतिनिधि शामिल हुए और रूस के भागे हुए क्रांति विरोधी दुश्मन ख़ास तौर पर इस कान्फ्रेंस में बुलाए गए। एक अरबी मदरसा और प्रेस क़ायम किया गया और 'अंजुमन इसलाम' बनाई गई, जिसकी ओर से पहली बार क़ुरान शरीफ़ छापकर जापान में बांटा गया। इसके कहने की ज़रूरत नहीं कि जापानी फ़ौजी और समुद्री अफ़सरों और वज़ीरों ने इसलाम की तालीम की 'पुर-जोश' और 'पुरख़ुलूस' (सच्चीमोहब्बत से भरी हुई) हिमायत की। मेहमानों ने जापान के इसलाम प्रेम और ऐशियाई बड़ाई के गीत गाए। नेपोलियन या क़ैसर की तरह जापानी साम्राज्य वादियों का भी यह ख़याल है कि इस तरह से चीन के पांच करोड़ मुसलमानों पर जापान की हुकूमत क़ायम होजाय, तो यह सौदा सस्ता है।

(५)

मौजूदा लड़ाई के सम्बन्ध में कोई फ़ैसला करने से पहले मुसलमानों के लिये यह ज़रूरी है कि वे पिछले बीस सालों पर नज़र रखें। इस तसवीरके कई रुख़ महत्व पूर्ण हैं। उनमें से कुछ ये हैं :—

(१) *मुसलमान रियासतें और मुल्क अपनी ख़ुद* कोई हैसियत नहीं रखते। इनकी मौजूदा आज़ादी और तरक्क़ी बड़ी हदतक रूसी क्रांति और रूसी नीति की अहसानमन्द हैं।

(२) इसलामी मुल्कों के सम्बन्ध में विविध साम्राज्यों के अपने अपने मन्सूबे हैं और ये सब मन्सूबे उनकी तिजारती और साम्राज्यवादी गरज़ों को पूरा करने के लिये हैं।

(३) आपसी मतभेद के होते हुए भी सब साम्राज्यी ताक़तें इसलामी मुल्कों में और ख़ासकर अफ़ग़ानिस्तान, ईरान और तुर्की में इस लिये और भी दिलचस्पी लेती हैं कि रूस में दख़ल देने के लिये इन मुल्कों की राजनीति पर हावी रहना और इनको क्रांति के असर से सुरक्षित रखना ज़रूरी है। शाह अमानुल्ला के निर्वासन की सब से बड़ी वजह यही थी।

(४) कमोबेश लगभग इक्कीस करोड़ आदमियों पर अरबी सभ्यता का असर बाक़ी है और अगर रूम सागर से साम्राज्यवादी असर मिट जाए, तो इन इनसानों की आज़ादी मुमकिन और अरब की एकता का ख़याल बामायने होजाता है। इसका क़रीब क़रीब पैंतालीस करोड़ मुसलमानों की ज़िन्दगी पर असर पड़ता है, जो विविध साम्राज्यों के पंजों में दबे हुए हैं।

(५) हम साम्राज्यों के बेजा दबाव और शोषण की नीति को जुदा नहीं कर सकते। यानी यह ख़याल ग़लत है कि आइन्दा इन साम्राज्यी ताक़तों की नीति *सिवाय मज़दूर क्रांति के मुसलमान मुल्कों के सम्बन्ध* में बदल सकती है।

अब हम चाहते हैं कि इस मौजूदा जंग की असलियत पर नज़र डालें। ज़ाहिर है कि बुनियादी तौर पर यह जंग साम्राज्यवादी मक़सद के लिये है, जो सन् १९१४ के जंग का उत्तर काण्ड है। जर्मनी और इंगलिस्तान दोनों इस बात पर सहमत हैं कि छोटी क़ौमों और उपनिवेशों की हैसियत बदलनी न चाहिये। हालैण्ड, बेल्जियम और फ्रांस की हार के बाद भी इनके शासित और महकूम मुल्क अब भी ज्यों के त्यों हैं। यहां तक कि हालैण्ड के इसलामी मुल्कों की निगरानी का ज़िम्मा इंगलिस्तान ने ले रखा है। जर्मनी की तरह इतालिया ने भी फ्रांस के साथ जो क्षणिक सन्धि की है, उसमें शाम और लेबनान की हैसियत की कोई चर्चा नहीं। हालांकि फ्रान्स से शाम का जो समझौता हुआ था, उसके मुताबिक इराक़ की तरह शाम की आज़ादी का भी वक़्त आ गया है। फ्रान्स के हार जाने पर बर्तानिया ने तुर्की और इराक़

से शाम के संरक्षण को ख़तम करने के बजाय 'हिफ़ाज़त' के नाम पर उस पर कब्ज़ा जमाने की बातचीत भी की थी, मगर तुर्कों ने इनकार कर दिया। ग़रज़ कि जहां तक इस्लामी दुनिया का सम्बन्ध है, साम्राज्यों के क़ायम रहते हुये मुसलमान क़ौमों की गुलाम राजनैतिक हैसियत नहीं बदल सकती।

चुनांचे इसका अन्दाज़ा ख़ुद मुसलमान मुल्कों को अच्छी तरह होगया है और यही वजह है कि अफ़ग़ानिस्तान, ईरान और तुर्की इस युद्ध में तटस्थ हैं, और इराक़, हेजाज़ और यमन भी तरह तरह के दबाव पड़ने के बाद भी अभी तक जंग में शरीक़ नहीं हुये। पिछले जून में अंगरेज़ी दबाव के सबब से मिस्री मंत्रि-मण्डल ने इस्तीफ़ा दे दिया और हसन साबरी पाशा प्रधान मंत्री हुये। मगर ऊपर मदद के सिवाय इटलीके ख़िलाफ़ ऐलाने जंग में शरीक़ होने की हिम्मत न हुई। हाल में हसन साबरी पाशा की मृत्यु के बाद सिर्रीपाशा प्रधान मंत्री मुकर्रर हुये हैं, मगर तटस्थता की नीति ज्यों की त्यों जारी है। शाह फ़ारूक़ ने अपने हाल के ऐलान में इस नीति पर बड़ा ज़ोर दिया है।

चीनी आज़ादी की जंग के मुसलमान सैनिक

जिस तरह आज़ाद इसलामी मुल्कों में तटस्थ रहने की भावना है, गुलाम मुसलिम मुल्क अपनी अपनी आज़ादी की कोशिशों में लगे हुए हैं। इसकी बेहतरीन मिसाल चीनी मुसलमानों ने पेश की है, जो इसलामी संरक्षण का इतमीनान करने के बाद आज एक तरफ़ तो चीनी कम्यूनिस्ट फ़ौजों से कन्धे से कन्धा मिलाकर जापानी फ़ौजों के मुक़ाबले में कामयाबी से लड़ रहे हैं और दूसरी तरफ़ चियांग काइ-शेक की क़ौमी फ़ौज में भी उनका नुमायां दरजा है। यह इस बात का सुबूत है कि चीनी मुसलमान जापानियों के 'इसलामी जोश, से ख़ूब वाक़िफ़ हैं और उसका सही जवाब देना जानते हैं। उमर पाइ-सुंग और दूसरे मुसलमान जनरल चीन के सेनापतियों में ऊंचा रुतबा रखते हैं।

अलबानिया, त्रिपोली, अलजीरिया, फ़िलस्तीन, शाम, मोरक्को और दूसरे मुल्कों में भी आज़ादी का आन्दोलन जारी है। मगर युद्ध की दृष्टि से समाचार-पत्र इन स्वाधीनता के आन्दोलनों को प्रकाश में लाने में विवश हैं। लेकिन, यह सब को मालूम है कि जैसे जैसे यह जंग बढ़ेगी और जंग के दलख़स्ता होंगे, इसलामी मुल्कों की आज़ादी केदिन भी नज़दीक आते जांयगे।

इसका अन्तिम निर्णय इस पर निर्भर है कि इस जंग में रूस की नीति को कहां तक सफलता मिलती है। आज भी रूस १९१७ के इनक़लाब के ज़माने की तरह इसलामी दुनिया और गुलाम देशों का सहारा है और सोवियत् के सदर के कहने के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति की तय्यारी में लगा हुआ है। तुर्की आज़ादी और चीनी मुसलमानों की रक्षा रूस की मदद के ही कारण है। मुसलमान मुल्कों में और ख़ासकर आज़ाद इसलामी इलाक़ों में रूस की हिमायत आम है और साम्राज्यवादी ताकतें रूस को बराबर शुबहे की निगाहों से देखती हैं।

इलाहाबाद]

चीनी प्रतिनिधि गांधी जी की पर्णकुटी में

——:o:——

श्री महादेव देसाई

—⊙—

पण्डित जवाहर लाल नेहरू सन् १६३६ के सितम्बर के महीने में भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से चीनी राष्ट्रीय सरकार के निमंत्रण पर चीन गये थे। उस प्रेम सम्बन्ध को स्थायी करने के लिये चीन की राष्ट्रीय सरकार ने अपने पबलिक सरविस कमीशन 'युआन' के सभापति हिज़ एक्सिलेन्सी ताइ चि-ताओ को पिछले नवम्बर के महीने में भारत भेजा। श्री ताइ चि-ताओ बापू से मिलने सेवा गांव भी गए। प्रस्तुत लेख में उसी मुलाक़ात का रोचक वर्णन है।

श्री ताई चि-ताओ गत वर्ष की पंडित जवाहर लाल जी की चीन यात्रा के उपलक्ष में उस आपसी भाई चारे के सम्बन्ध को और अधिक मज़बूत करने के लिये भारत आये हैं। पण्डित जवाहर लाल का नाम लेते ही उनका दिल कष्ट से भर आता था। जवाहर लाल जेल की चहार दीवारी के अन्दर बन्द हैं तो क्या हुआ ! वे उनके सूने आनन्द भवन जाकर उनकी बहिन से ही मिलेंगे। यदि भारत में राजनैतिक वातावरण ठीक होता, तो अखिल भारतीय महिला कान्फ्रेंस की ओर से उनकी बहिन और श्री राजकुमारी अमृतकौर को श्री ताई चीन आने के लिये निमंत्रण देते।

गान्धी जी और श्री ताई दोनों इस मुलाक़ात के लिये बेहद उत्सुक थे।। श्री ताइ २२ नवम्बर को वर्धा पहुंचे और दो दिन सेठ जमनालाल जी के यहां रहे। सेठ जी उनके स्वागत के लिये ख़ास तौर पर बम्बई से आये। उन्होंने चीनी सभापति को वर्धा की ग्राम उद्योग से सम्बन्ध रखने वाली सारी संस्थाओं का निरीक्षण कराया।

सन् १९१२ के चीन की स्वतन्त्रता के आन्दोलन में श्री ताई ने प्रमुख हिस्सा लिया था। वे चीन के महान नेता स्वर्गीय डाक्टर सुनयात सेन के दाहिने हाथ थे। उन्होंने डाक्टर सुनयात सेन के राष्ट्रीय जनतन्त्रवाद और राष्ट्रीय समाजवाद के सिद्धान्तों का चीन में ख़ूब प्रचार किया है। सन् १९२८ में जब चियांग काइ-शेक चीन के राष्ट्रपति हुए, तो श्री ताई चीनी पबलिक सरविस कमीशन के प्रधान नियुक्त किये गए। वे चीन की राष्ट्रीय महासभा कुओ मिन-तांङ्ग के प्रमुख नेता हैं और चीन से राष्ट्रपति का विशेष सन्देश लेकर गांधी जी के पास आए थे।

श्री ताई जब गांधी जी की घास फूस की कच्ची कुटिया में आए, तो श्री कस्तूरबा ने गांधी जी के हाथ से कते हुए सूत की माला उन्हें और अन्य प्रतिनिधियों को पहनाई। नंगे सिर और ढीले चीनी लबादे में श्री ताई बहुत सौम्य दिखाई दे रहे थे। श्री ताई ने खड़े होकर मार्शल चियांग काई शेक का सन्देश गांधी जी को सुनाया और उसके बाद गांधी जी के सामने एक आसन पर बैठ गये।

श्री ताई ने बात शुरू की—आज हम ज़बरदस्त मुसीबतों के बीच से गुज़र रहे हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि हम अपनी इन बाधाओं को सफलता के साथ कैसे पार कर सकते हैं। ख़ाली विजय ही तो काफ़ी नहीं है। यह भी तय करना होगा कि आगे के लिये विविध देशों के साथ हमें किस तरह का प्रेम सम्बन्ध क़ायम करना चाहिये।

गांव के चीनी पुरुष चरखा कात रहे हैं।

श्री ताई गम्भीर धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य हैं। उन के हाथ में तुलसी की माला थी और उन्होंने रचनात्मक कार्यों से बेहद दिलचस्पी दिखाई।

महात्मा जी ने उनसे कुशल क्षेम पूछकर उन्हें चरखे का सबसे नया माडेल दिखाया और चरखा कातते कातते चीनी सभापति के प्रश्नों का जवाब दिया। गांधी जी ने कहा—

"जिस तरह आप चीन में ज़िन्दगी और मौत के भयंकर संग्राम में लगे हुए हैं, उसी तरह हम भी अपने इस देश में लगे हैं। आपका देश अत्यन्त प्राचीन है और हमारा भी। आपका देश बड़ा विशाल है, किन्तु हमारा भी छोटा नहीं है। हम में और आप में बहुत सी बातें मिलती जुलती हैं। मैं अपनी एक निजी बात आपको बताऊं। जब मैं दक्खिन अफ़रीका के जोहान्सबर्ग शहर में बैरिस्टर था, तो मैं वहां के चीनी बाशिन्दों का क़ानूनी सलाहकार था। जोहान्सबर्ग में चीनियों की तादाद बारह सौ थी। मैं उनमें से हर एक को जानता था। उनके रहन सहन व रस्म रिवाज आदि सब से परिचित था। इस लिये आप यह न समझिये कि मैं चीनियों से परिचित नहीं। जिस तरह आप ज़िन्दगी और मौत की लड़ाई लड़ रहे हैं, उसी तरह हम भी लड़ रहे हैं। लेकिन, अपनी खोई हुई आज़ादी पाने के लिये हम एक तरीक़ा अख़्तियार किये हुए हैं और आप अपनी आज़ादी को बचाने के लिये दूसरा तरीक़ा बरत रहे हैं। इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं कि मैं आपके तरीक़े को बुरा कह रहा हूं। दुनिया में लोगों ने हमेशा से जो तरीक़ा इस्तेमाल किया है, आप भी उसी तरीक़े को इस्तेमाल कर रहे हैं। मैं जो उपाय काम में ला रहा हूं, राजनैतिक क्षेत्र

में उसका इस्तेमाल आज तक कभी नहीं हुआ। चूंकि आप जवाहरलाल की चीन यात्रा का व्यवहार अदा करने इतनी दूर से चलकर आये हैं, इसलिये मैं आप को और आपके ज़रिये आपके राष्ट्रपति तथा देशवासियों को अपने इस अमोघ अस्त्र सत्याग्रह के बारे में अवश्य कुछ बताऊंगा। मुझे यह अस्त्र १९०६ में दक्खिन अफ़रीका में मिला। दक्खिन अफ़रीका के भारतीयों को बचाने के जब सारे प्रयत्न निष्फल हो गये, तब मुझे यह उपाय सूझा। यदि हम इस उपाय को न इस्तेमाल करते, तो ट्रान्सवाल के सारे भारतीयों का नाश हो जाता। सन् १९२० से हम इस उपाय को कमोबेश कामयाबी के साथ इस्तेमाल करते रहे हैं और आज उसी के कारण कांग्रेस इतनी शक्तिशाली है। संक्षेप में इसका रहस्य यही है कि बहादुर से बहादुर चीनी सैनिक की तरह सत्याग्रही मौत को गले लगा सकता है, किन्तु वह आक्रमण में या रक्षा के लिये कभी भी अपने दुश्मन पर हाथ न उठायगा। यदि हम भारतीय जनता को बग़ैर हाथ उठाये बहादुरी से मरना सिखा सकने में कामयाब हुए, तो न सिर्फ़ हमें अपनी खोई हुई आज़ादी वापस मिल जायगी; वरन् दुनिया से हिंसात्मक युद्ध मिट जायंगे और दुनिया को उसकी जगह एक नया अहिंसात्मक उपाय मिल जायगा। यही हमारे आन्दोलन का सूत्र है। हम आप से प्रार्थना करेंगे कि आप हमारे सत्याग्रह संग्राम का ग़ौर से अध्ययन करें और हमारी सफलता के लिये हमें चीन की ओर से आशीर्वाद दें। इससे ज़्यादा मैं उस वक्त तक कुछ नहीं कह सकता, जब तक हम इन उपायों से अपनी आज़ादी हासिल न कर लें। किसी मेहमान से बात करते हुए काम करना असभ्यता है; किन्तु मैं जान बूझकर आपके सामने बैठा हुआ बात करते करते चरखा चला रहा हूं। यह चर्खा ही मुझे बल देता है। मैं चाहता था कि आप हमारी कताई के तरीक़े से भी वाक़िफ़ हो जांय। आपने ग़ौर किया होगा कि चरखा हमारे राष्ट्रीय झण्डे के बीचों बीच में है। चरखा ही वह ज़रिया है, जिससे जनता से हमारा सच्चा सम्बन्ध क़ायम होता है।

हज़ारों की संख्या में चीनी स्त्रियां चरखा कात रही हैं।

सभापति ताई चि ताओ ने कहा कि उन्हें गांधी जी

के सन्देश से प्रोत्साहन मिला। उन्होंने गांधी जी के सत्याग्रह संग्राम के तरीके और उसकी सफलता के बारे में अखबारों में बहुत कुछ पढ़ा था। किन्तु आज बड़े सौभाग्य की बात है कि स्वयं गांधी जी के मुंह से वह सब उन्हें सुनने को मिला। गांधी जी और कुओ मिन-तांग के उद्देश्य एक हैं, किन्तु अपने उद्देश्य की प्राप्ति में उनके उपाय अलग अलग हैं। इसका कारण अलग अलग परिस्थिति और वातावरण है।

श्री ताई कहते गये—"हमने बहुत इन्तज़ार किया, किन्तु हमारे पास जापान के हमले को रोकने का कोई दूसरा साधन न था। किन्तु अब हमें अपने देश को आत्म सम्पन्न बनाने की चिन्ता है। चीन में, हमारे गांव में, घर घर में चरखा फिर से चलने लगा है। हमारे ९० फ़ी सदी घरों में चरखा चलता है। हालाकि हमारा चरखा पुरानी तरह का है। आपने अपने चरखे में नये आविष्कार कर लिये हैं। हमतो अपने गांव के पुराने उद्योग-धन्धों को फिर से चलाने के लिये विवश हो गये। हमारे सब बड़े बड़े कारखाने और मिल जापानियों ने बम बरसा कर तोड़ फोड़ डाले। इसलिये अब हमने चरखे का सहारा लिया है और चरखे को तो कोई बम बरसा कर नहीं तोड़ सकता। आपको चरखा चलाते देखकर मुझे बहुत उत्साह मिला।"

गान्धी जी ने इसके बाद तकली के नये आविष्कार धनुष तकली पर सूत कात कर दिखाया। उन्हों ने श्री ताई को भेंट में एक चरखा भी देना चाहा, किन्तु वे सुबह ही चरखा खरीद चुके थे।

इसके बाद श्री ताई ने गान्धी जी से बिदा लेते हुए कहा—"भारत, चीन और सारे मानव समाज के लिये मैं आपकी दीर्घायु की कामना करता हूं। मैं अपने और कुओ मिन-तांग की तरफ़ से आपकी और आपके परिवार की सत्कामना चाहता हूं।

गान्धी जी ने हंसते हुये कहा—"किन्तु मेरे परिवार में तो ३५ करोड़ आदमी हैं।"

"नहीं सारा मानव समाज।" श्री ताई ने जवाब दिया।

"हां, अवश्य। पहले मैं इन ३५ करोड़ के प्रतिनिधि कहलाने के दावे को पूरा करलूं; फिर मैं सारे मानव समाज के ऊपर भी अपने दावे को पेश करूंगा। मेहरबानी करके राष्ट्रपति चियांग काइ-शेक, उनकी धर्मपत्नी, उनके अफ़सरों और उन सबको जो आत्म-रक्षा के लिये चीन में लड़ रहे हैं, मेरी शुभकामना दीजिये। परमात्मा करे, आपके देश में शीघ्र शान्ति स्थापित हो।"

जब गान्धी जी श्री ताई को बिदा करने के लिये कुटिया से बाहर निकले, तो उनकी सीधी देह को देख कर प्रेज़िडेण्ट ताई ने कहा कि "आपकी तन्दुरुस्ती तो बहुत अच्छी है।" गान्धी जी ने हंसते हुए कहा कि "चरखा मुझे तन्दुरुस्त रखता है और फिर मैं चिन्ता नहीं करता। मैंने अपनी सारी चिन्ता ईश्वरेच्छा पर छोड़ दिया है।

प्रीतम का प्याला

प्रोफ़ैसर गुरुदयाल मल्लिक

[प्रोफ़ैसर मल्लिक शान्तिनिकेतन के आदरणीय प्रोफ़ैसर हैं। सूफ़ीवाद और तसव्वुफ़ पर उनका जितना अध्ययन है उतना बहुत थोड़े विद्वानों का होगा। मल्लिक जी ऊंचे दरजे के भक्त हैं। यही नहीं प्रोफ़ैसर मल्लिक के जीवन पर सूफ़ी विचारों की गहरी छाप है। प्रोफ़ैसर मल्लिक गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गान्धी जी के बीच की कड़ी समझे जाते हैं।]

उनकी उमर क़रीब क़रीब ७० वर्ष की होगी जब मैं उनसे पहली बार अपने एक मित्र के घर पर लाहौर में मिला था। वे मेरे मित्र की पुत्री को सितार सिखाने आये थे। उस समय किसी कार्य के कारण लड़की बैठकखाने में नहीं आयी थी। मैंने कहा कि बच्ची को तो देरी हो रही ही है, इसलिये यदि आप असुविधा न समझें तो हमें एक गत सुनाने की कृपा करें। मेरे कहने के साथ ही वे बोल उठे कि बस लीजिये जनाब खुशी से सुन लीजिये, और तब उन सितार के तारों को एक बार कस-कसा कर देखा और फिर उसे उठा लिया। उंगलियां तारों को छेड़ने लगीं और झंकार ने वातावरण में एक अजब मस्ती बिखेर दी। उनके गाने में एक अलौकिक सुर भरा हुआ था और हर एक झंकार के साथ जब जब उनका सर घूमता था, लगता था कि मानो एक परवाना शमा के इर्द-गिर्द घूमता है।

गाना बन्द हुआ और सितार उनके दोनों हाथों ने नीचे रख दिया। मैं मन्त्र-मुग्ध की तरह उनके मुख-मण्डल को एक टक देख रहा था, जो किसी अलौकिक तेज से उज्वल था। वे एक क्षण ही बाद एक बार मुस्कराये और तब मुझे ऐसा लगा कि उनकी वह मुसकान किसी पूर्ण कमल दल की अपूर्व प्राकृतिक शोभा है। जब मैंने उनके हाथों को आनन्द विह्वल, अश्रुपूर्ण नयनों से देख कर छुआ तब उनसे चंदन की सुगन्ध आने लगी। मैं नत मस्तक हो गया।

इतने में वह लड़की अपना सबक़ सीखने आ गयी। वे उसके आते ही बोले "बेटा, आज तुम्हारी छुट्टी रहेगी"। लड़की वापस अन्दर चली गयी और उन्होंने मुझसे कहा "जनाब! आपको आज मेरे ग़रीबख़ाने चलना पड़ेगा।" मेरे लिये यह एक वरदान था। मैंने तुरन्त ही कहा, "बड़ी ही ख़ुशी से, जनाब"! पर एक शर्त है कि आप मुझे भी उस शमा को दिखावें, जिसने आपको परवाने की तरह पागल कर दिया है।

वे बोले—"बेटा! वह शमा तो तुम्हारे अन्दर पहले से ही जल रही है।" मैं बेसब्री से बोल उठा—"फिर मैं उसे क्यों नहीं देखता?"

वे शान्ति से एक मुसकान के साथ बोले—"धुआं हट जाने दो। अंधकार को मिटने दो। तब तुम देखोगे कि वह प्रकाश चांद और सूरज से भी अधिक तेजोमय दिखेगा।"

"आपका यह अंधकार किस प्रकार दूर हुआ?"

कुछ ठहर कर वे बोले—"बेटा! इसका उत्तर अभी रहने दो। मेरी झोपड़ी में चलो। वहीं कह सकूंगा।"

आध मील तक हम मौन उस शहर की गलियों से गुज़रते हुए एक खुले मैदान में पहुंचे। हमारे आगे एक पतली छोटी नदी आई। उसे किश्ती द्वारा पार कर हम दूसरे किनारे आ लगे। वहां से कुछ गज के फ़ासले पर ही एक झोपड़ी दिखलाई दी।

"यही है जनाब, मेरा ग़रीबख़ाना"—उन्होंने उस ओर अपनी अंगुली निर्देश की।

हम झोपड़ी के अन्दर आ गये। झोपड़ी के अन्दर ज़मीन पर एक फटी हुई चटाई, कोने में एक टूटी हुई सुराही और नज़दीक ही मिट्टी का गिलास दूसरे

कोने में एक लालटेन और उसके ऊपर दीवाल पर एक माला लटकती मुझे दीख गई।

"आप तो थक गये होंगे?" फिर एक क्षण बाद बोले, "और क्या जल पियेंगे?"

"नहीं जनाब शुक्रिया, मुझे तो शराबे-शौक़ पिलाइये," मैंने बैठते हुए कहा।

"आप किसका शौक़ करते हैं?" उन्होंने एक मुस्कान के साथ पूछा।

मैंने कहा "शौक़ उस महबूब के दीदार का, जिसको देखकर आप परवाने की तरह पागल हो गये हैं।"

"क्यों जनाब?" वे हंसते हुए बोले, "फिर वही सवाल। ऐसा मालूम होता है कि आप मुझे नहीं छोड़ेंगे।"

"आखिर छोड़ ही कैसे दूं, उसी के लिये तो यहां तक आया हूं।"

"अच्छा तो सुन ही लें। मैं एक रियासत में २५ वर्ष दरबारी गवैया था। हर रोज़ राजा साहब का दरबार होता और मुझे उसमें सितार बजाना और गीत गाना होता। कभी कभी वे मेरी ओर ख़ुश हो जाते तब खिलअत भी बख़्श देते। मैं बड़े आराम में था। लोग भी इज्ज़त करते रहते थे। लेकिन लगभग तीन चार वर्ष हुए एक दिन योंही बैठा हुआ दरबार की बातें सोच रहाथा। राजा साहब से मिले उस क़ीमती इनाम ने मुझे आनन्द में ला दिया था। लेकिन मैं पूरा पूरा आनन्द का उपभोग नहीं कर पा रहा था। मन के अंदर न जाने क्या घुस आया, जो हर समय एक उदासी भरने की कोशिश कर रहा था। न मालूम क्यों जब मैं आनन्दित होता हूं, तब अन्दर बैठा कोई रोने लगता है। अनेक रातें मुझे इसका अनुभव हुआ और मेरे दिन यों बेचैनी से जाने लगे। मैं अपने आप से बराबर पूछा करता कि आखिर यह रोना कैसा है, क्यों यह बेकली है।

"एक दिन सुबह उठा। उठ कर यों ही बैठा था कि न जाने कहां से किसी ने कहा 'आज राजा के दरबार में मत जाना। तुम्हें आज तो मेरे दरबार में आना होगा।' इस आवाज़ का मतलब मैं नहीं समझ सका। अरे, यह सब ख़्याली ख़्वाब है। यही मन ही मन सोचते मैं समय होते ही दरबारी पोशाक पहन दरबार में चला गया।

दरबार में राजा साहब ने कहा "जनाब उस्ताद साहब, आज वही मेरा पुराना गीत गाइये—

मेरी नैया कर दे पार,
सांई मेरी नैया कर दे पार,

'जैसा हुज़ूर का हुक्म' कह मैंने सर झुकाते हुए गाना शुरू किया। न मालूम कितनी देर तक गाता रहा। गाते गाते मैं अपने ही को भूल गया। मुझे लग रहा था कि आज से पहले मैंने कभी भी यह गान नहीं गाया है। दरबार ख़तम होने पर आया; लेकिन मैं समय भी भूल चुका था, समय का ख़्याल तो तब हुआ जब एक दरबारी ने कान में कहा कि "अब गाना बन्द करो; राजा साहब तख़्त पर से उठने की तैयारी कर रहे हैं।

मेरा गाना बन्द हुआ। मन न जाने कैसा हो रहा था। मैं राजा साहब के नज़दीक पांव के पास गया और झुकते हुए बोला, 'हुज़ूर अब मुझे छुट्टी देदी जाये।'

'आखीर क्यों उस्तादजी" राजा साहब ने पूछा।

"मैंने उन्हें उसी तरह कहा "कल से आपके दरबार में मेरा गाना न हो सकेगा। मुझे कल से ही राजाओं के भी राजा के दरबार में गाने का हुकम मिला है।" "पागल कहीं के" 'राजा साहब क्रोधित हो गये। दरबार जल्दी ख़तम हुआ।

"रात आई, मैं घर-द्वार सब कुछ छोड़ सिर्फ़ सितार ले वहां से चला आया। अब जब मन में आता, मैं गाता बजाता। दिन पर दिन गुज़र जाते पर मुझे भोजन न मिलता लेकिन कभी शिकायत या शिकवा नहीं करता था। मेरे अन्दर एक ऐसा सुरूर पैदा हुआ जिससे दुनियावी भूख—रोटी या रुपये की—बिलकुल मिट चली। गाते-बजाते मैं ख़ुद मुग्ध होता और मेरे जिस्म का ज़र्रा-ज़र्रा आनन्द से भर जाता। अब अन्दर का रोना न था, वहां तो कोई बैठकर राग-

दिन खिला खिलाया करता। मैं योंही भटकता-भटकता इस नदी के किनारे आ गया। यहीं सामने जो दरख़्त देखते हैं, उसी के नीचे रहा करता। वर्षा हो या गर्मी, जाड़ा हो या और कुछ, बस मेरा मन यहीं लग गया था। जब कभी कोई अल्लाह का बेली कुछ खाने को दे देता, तो खा लेता पर मांगता कभी नहीं। कुछ दिन बाद यहीं के किसानों ने मेरे लिये झोपड़ी बना दी और ढाई वर्ष से कोई न कोई अपनी बारी पर आकर दो रोटी और दो प्याज़ दे जाता है, पानी की सुराही भर जाता है और लालटेन में तेल रख जाता है। कभी कभी जब मैं इन रोटी लाने वालों के मुंह की ओर देखता हूं, तो मुझे उनके भीतर वही रोशनी दीख पड़ती है, जिसे मैंने राजा के दरबार में अन्तिम दिन देखा था, जब 'नैया कर दो पार' गाते गाते मस्त हो उठा था।

"यह झोपड़ी मेरे महबूब का महल है। उसके और मेरे इश्क़ की बात क्या कहूं, कैसे उसका वर्णन करूं? कभी कभी मेरे गान में या सितार बजाने में उसकी मुहब्बत की महक महसूस होती है।"

वे चुप हो गये। मैंने कुछ देर बाद पूछा "तो क्या उस राजाओं के राजा की ओर से मुझे भी कुछ हुक्म आयेगा?"

"ज़रूर। उसके हुक्म से ही एक प्यादा जन्म जन्मान्तर से तुम्हारी तलाश में है, जब वह तुम्हें इस दुनिया के मेले में पहचान लेगा तब ख़ुदा का—राजा का—हुक्म देगा।

वर्षों गुजर गए हैं उनसे मिले। वे दिन न जाने कितने पीछे चले गये हैं। पर उसकी याद और उस प्यादे की प्रतीक्षा अब तक हो रही है। लेकिन प्रीतम का प्यादा अभी तक मेरे पास नहीं आया है। पर कभी कभी यह भी मन में आ जाता है कि कहीं वह प्यादा मेरे सामने आकर और मेरे द्वारा स्वागत न पाने पर लौट तो नहीं गया। हो सकता है, मैंने उसे न पहचाना हो।

लेकिन आख़िर वह आया कैसे होगा? क्या उसका रूप होगा? या उसका रूप न होकर आवाज़ ही आवाज़ है, जो अंदर से उठती है और अंदर से ही अपने आने की सूचना देती है। लेकिन एक बार जब मैं उस पर विचारता हूं, तब लगता है कि उसका प्रकाश सूरज जैसा होगा। वह उसी के जैसा विश्व रूप होगा। और यदि वह वाणी है तब क्या उसकी वाणी आकाश-व्यापी नहीं होगी? क्या उस विश्ववाणी की सत्ता इस जगत पर आकाश की तरह व्याप्त नहीं होगी? यह सब तो मन के प्रश्न हैं, इनका निर्णय मैं तो ख़ुद ही नहीं कर सका हूं। मुझे तो बार बार लगा करता है कि प्रीतम का प्यादा आकर चला गया है। और जब मैं इसकी कल्पना करता हूं कि वह चला गया है, मेरी आंखों से आंसू आ निकलते हैं और मन उस समय न जाने किसकी प्रतीक्षा से निराश होकर गाने लगता है—

'सोया था दीवार तले,
जब आये तुम दरवाज़े।
नींद खुली नहिं, द्वार बन्द था,
लौट गये तुम जीवन नाथ हमारे।
नींद खुली तब सुनी तुम्हारे क़दमों की आवाज़,
जान लिया मैंने तुम आये थे मेरे दरवाज़े।

रात्रि में जब आकाश तारों से झलझला उठता है मैं अपनी कोठरी से बाहर ताकता रहता हूं और प्रति-क्षण यही आशा करता हूं कि प्रीतम का वह प्यादा आ रहा है। लेकिन आशा निराशा में मेरे प्रतीक्षा के दिन चले जा रहे हैं। प्रियतम का प्यादा एक बार फिर लौट कर आजाये। मेरे दरवाज़े के सामने से गुज़रे, कैसी भी उसकी पोशाक हो, सुनहरी या सुन्दर या मृत्यु से भी भयंकर—मैं उसका अपने सम्पूर्ण जीवन से प्रेम पूर्वक स्वागत करूं और प्रणाम करूं। और उस समय उस आनन्द में लीन होकर मैं गा उठूंगा।

मेरे घर प्रीतम आया,
मेरे घर ठाकुर आया।
अपना महल छोड़कर मेरे घर में ठौर लगाया।
वह अनन्त अनुरागी, मेरा राग सुनन को आया।
वह ख़ुद मरम चितेरा मेरी छवि देखन को आया।
मेरे घर प्रियतम आया,
मेरे घर ठाकुर आया।

दिल का गुबार

श्री प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

आजकल सरकार ने विभिन्न दलों और स्वयंसेवक संगठनों पर—उनकी क़वायद और वेष आदि पर पाबन्दी लगा रक्खी है—परन्तु महात्मा गांधी ने कांग्रेस कर्मियों की जो वर्दी बनाई है उस पर कोई भी सरकार पाबन्दी नहीं लगा सकती। खद्दर की धोती और कुर्ता, सर पर गांधी टोपी और पांव में चप्पल। इस से विना कहे ही यह पता लग जाता है कि अमुक व्यक्ति देश की आज़ादी चाहने वाली फ़ौज का एक सिपाही है। यह पूछने की ज़रूरत नहीं पड़ती कि आप कौन हैं? खादी और गांधी टोपी आज स्वतंत्रता के प्रतीक बन गये है। खादी ने यह प्रतिष्ठा क्यों प्राप्त कर ली? इसका कारण यह नहीं है कि गांधी जी ने इसका प्रचार किया बल्कि इसका मुख्य और आधारभूत कारण यह है कि चर्खा देश की संस्कृति का मूल आधार है। खादी के आधार पर अर्थ संगठन और उसके कारण समाज व्यवस्था भारत में युगों तक चलती रही है। मुस्लिम लीग कांग्रेस और गांधी जी के सभी कामों का विरोध करती है परन्तु लखनऊ में उसे भी खादी के प्रोत्साहन और प्रयोग का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। खादी ही राष्ट्रीय एकता का अन्तर सूत्र है—यह बात मैं यों ही नहीं कह रहा हूँ दार्शनिक दृष्टि से भी भेद में अभेद साक्षात्कार के भारतीय सांस्कृतिक आदर्श का परिधानात्मक आधार और रूप खादी में ही रहा है और है। इसी लिए भारतीय जनता-जनार्दन को सब से अधिक प्रभावित करने वाली संस्था खादी ही है।

गाड़ी में सफ़र करते हुए मैंने यह अनुभव किया है कि जिस डिब्बे में मैं रहता हूँ उसमें कुछ राष्ट्रीयता का वातावरण सा पैदा हो जाता है। और यदि तकली लेकर मैं बैठ जाता हूँ तब तो कहना ही क्या? कांग्रेसवादी और गांधी भक्त समझ कर जनता गांधी जी और कांग्रेस के बारे में पूछ ताछ करती है जिससे अपने विचारों के प्रचार का अनायास अवसर मिल जाता है और विभिन्न विचार के लोगों के ख़यालात जानने का पूरा पूरा मौक़ा मिलता है। ऐसा ही एक सुन्दर मौक़ा मुझे १० नवम्बर की रात को देहरादून-देहली एक्सप्रेस से सफ़र करते हुए मिला। रेल में भी कभी कभी बहुत ही उपयोगी और सुन्दर बातें हो जाती हैं। दिल खोल कर बात चीत करने का ऐसा अवसर शायद ही कहीं मिलता हो और सो भी इतने थोड़े समय में।

देहरादून से देहली को जाने वाली गाड़ी रात को ८ २० पर चलती है। मुझे गढ़ मुक्तेश्वर तक जाना था। मुझे यह भ्रम था कि गाड़ी ८ बजे ही चलती है। इसलिए मैं क़रीब आध घंटा पूर्व ही स्टेशन पर पहुँच गया। जाते ही खाली डिब्बे में मैंने बिस्तर बिछाया और बैठ गया। इतने में ही हमारे डिब्बे में दो हैटधारी पुरुष आये। उनकी शकल सूरत से ऐसा लगता था मानो यह भूल कर थर्ड क्लास के डिब्बे में घुस आये हों। दूर की यात्रा के कारण आते ही उन दोनों ने अपने सोने के लिये जगह बनानी शुरू

कर दी। एक साहब मेरे सिर पर, और दूसरे साहब ने मेरे सामने की सीट पर अपने अपने बिस्तर खोल दिये। बैठते ही उन दोनों की जो घरेलू बातें हुईं उनसे मैंने अनुमान किया कि ये दोनों आदमी मुसलमान हैं। मैं अपनी सीट पर बिस्तर बिछाये बैठा था। घरेलू बात चीत से फ़ुर्सत पाते ही कौतुकपूर्ण भाव-भंगी में एक साहब ने मुझसे मुखातिब होकर पूछा—

"क्यों, भाई साहब, सत्याग्रह का क्या हाल है।

मैंने देखा मेरा कांग्रेसी वेष देखकर इस भाई ने यह प्रश्न किया है।

वे कहने लगे—"मुसलमानों का तो अब गांधी जी पर बिलकुल एतबार नहीं रहा। मुसलमानों ने तो हमेशा के झगड़े से तङ्ग आकर अब यह फैसला किया है कि हिन्दुस्तान के दो टुकड़े किये जावें। सब तरीक़े अज़मा कर जब हार गये तब ही उन्होंने यह तरीक़ा सोचा है।"

मैंने कहा—"लेकिन पाकिस्तान एक ख़्वाब है, कभी पूरा नहीं हो सकता। इससे तो झगड़े मज़बूत होंगे।"

"आप लोग ऐसा सोचते होंगे परन्तु मुसलमान तो पाकिस्तान बनाने पर तुले हुए हैं।" —वे साहब बोले—"जिस प्रकार जुदा गाना इन्तख़ाब की आप लोग मुख़ालिफ़त करते रहे परन्तु वह होकर ही रहा इसी प्रकार पाकिस्तान का विरोध करते रहिए लेकिन यह भी होकर रहेगा।"

"आपने यह कैसे समझ लिया कि आप जो सोचते हैं वही सही तरीक़ा है और लोग जो कुछ सोचते है वह ग़लत ही है। क्या आपने यह कभी नहीं सोचा कि पृथक चुनाव मुल्क को एक न होने देने के लिए हमारे दुश्मनों का षड्यन्त्र है, बदक़िस्मती से हम उसे अच्छा समझने लगे हैं।"

"हिन्दू मुस्लिम मेल के लिए जो कोशिशें की गईं उनकी नाकामयाबी के बाद अब पाकिस्तान के अलावा और क्या इलाज है?" "सबसे पहिला और आख़िरी इलाज तो है हमारी आज़ादी" "लेकिन आज़ादी भी तो अंग्रेज़ तब तक नहीं दे सकते जब तक हिन्दू मुस्लिम एकता न हो जाय। यदि हिन्दू मुसलमान एक हो जाते तो अंग्रेज़ हिन्दुस्तान को आज़ाद कर देते।"

"यह बात कि हिन्दू मुसल्मान कभी एक नहीं हुए—ग़लत है। नेहरू रिपोर्ट पर तो जिन्ना साहब के भी दस्तख़त हो गये थे। प्रयाग में पण्डित मदन मोहन मालवीय जी की कोशिशों से यूनिटी कांफ्रेन्स एक सब पसन्द नतीजे पर पहुँच गई थी। परन्तु एक ऊंचे सरकारी मुलाज़िम ने ही मुसलमानों को अधिक अधिकार देने का लालच देकर मेल न होने दिया।"

"हां, कांग्रेस और हिन्दू सभा वाले हमेशा मुसल्मानों को अपने मतलब साधने के औज़ार के तौर पर ही इस्तेमाल करते रहे। मुसल्मानों की अब तक कोई जमात नहीं थी, कोई नेता नहीं था अब मुसलमानों को किसी की ज़रूरत नहीं।"

"माफ़ कीजियेगा—'हमें किसी की ज़रूरत नहीं' यही ज़हनियत ही फ़िर्क़ावाराना मसले की जड़ है। हमारा यक़ीन है-हिन्दू मुसल्मान दोनों को एक दूसरे की ज़रूरत है। कोई भी क़ौम दूसरे से बिलकुल अलहदा होकर नहीं बढ़ सकती।

इसके बाद हम दोनों फिर पाकिस्तान के मसले पर आगये। मुसलमान नौजवान बोला —"हिन्दुओं ने यह कह कह कर कि मुसल्मान तो हिन्दुस्तान को मुल्क ही नहीं समझते, यह लोग अरब और मक्के के गीत गाते हैं, हमें ग़ैर मुल्की बना दिया है इसलिए हम इस मुल्क में एक अपना ही मुल्क बना कर रहना चाहते हैं। हम हिन्दू की ग़ुलामी में नहीं रहना चाहते।"

"अच्छा, कभी आपने यह भी सोचा कि जिसको आज आप हिन्दू कहते हैं कभी हिन्दुस्तान के अक्सर मुसल्मान उन्हीं में थे। हिन्दुस्तानी मुसल्मानों ने सिर्फ़ मज़हब ही बदला है असल में

इन दोनों का खून एक ही है। और तरह से भी आपने सोचा, पाकिस्तान में जो हिन्दू और सिक्ख होंगे उन्हें भी कुछ कहने का हक़ होगा या नहीं? और फिर अगर हिन्दू मैजारिटी में जो मुसलमान हों वे भी तो मुसलमान ही हैं। "हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में जो एक दूसरे के साथ बद सलूकी होगी उसका बदला दोनों अपने यहां के वासी हिन्दुओं और मुसलमानों पर वैसा ही सलूक करके लेंगे।"

"तब तो आज से भी बुरी हालत होगी। आज दो आदमी लड़ते हैं, तब दो मुल्क और प्रान्त एक दूसरे पर हमेशा हमले किया करेंगे।" "लेकिन बहुमत और अल्पमत का क्या हल होगा?"

वे साहब बोले।—"इसका हल तो सीधा है। पंजाब, सिंध, सीमा प्रांत और बंगाल में मुसलमानों की ज्यादा तादाद है। ऐसे ही दूसरे सूबों में हिंदुओं की ज्यादा संख्या है। सिर्फ मुसलमान ही नहीं, हिन्दू और सिक्ख भी तो अल्पमत में हैं इस लिए कुछ ऐसे बराबर उसूल और तरीक़े बना लेने चाहिएं जिनसे दोनों क़ौमों को जहां जहां वे मैनारिटी में हों अपनी हिफ़ाज़त की गारण्टी मिले। मज़हबी सभा बनाने, जलूस आदि निकालने और अलहदा संगठन करने या ज़बान, संस्कृति, सभ्यता आदि की हिफ़ाज़त वगैरह सवालों को तय कर लेना चाहिए। जिन सूबों में भला मुसलमानों की मैजारिटी है वहां उन्हें क्या ख़तरा हो सकता है? असल में पूछिये तो वहां हिन्दुओं को ही ख़तरा है।"

"अजी, हम यह चाहते हैं कि मुस्लिम इण्डिया में हम जो चाहें सो कर सकें।"

"आप यदि हिन्दू और सिक्खों को मिटाना चाहें सो भी?"

"नहीं, यह नहीं, वे भी रहें और हम भी रहें।"

"यह तो हम भी चाहते हैं और आज भी है। इसका इलाज तो दोनों क़ौमों की साझीदारी में ही है।" मैंने कहा।

"महात्मा गांधी पर अब हमारा बिलकुल भी विश्वास नहीं रहा—कांग्रेस एक हिन्दू जमात है। हिन्दुस्तान में तो नेशनल, नेशनलिस्ट, क़ौम परस्त यह लफ़्ज़ बहुत बदनाम हो चुके हैं। मेरे ख़याल में अब इन्हें तो हटा ही देना चाहिए।"

"महात्मा गांधी और कांग्रेस पर हिन्दू सभाई हिन्दू, मुस्लिम-परस्ती का इलज़ाम लगाते हैं और आप इन्हें मुसलमानों का दुश्मन बताते हैं—आख़िर यह किसके नुमाइन्दे हैं? असल में एक बात मैं आप से अर्ज़ करूं, आप महात्मा गांधी को समझने के लिए उनका अध्ययन कीजियेगा और इसके लिए मैं आप से दरख्वास्त करूंगा कि उनके 'हरिजन' अख़बार की फ़ाइल पढ़ जाइये—और भी जो कुछ उन्होंने लिखा है वह भी पढ़िये तथा गांधी जी की आत्म कथा भी ज़रूर देखिये। फिर आप जैसी चाहें उनके बारे में राय क़ायम कर सकते हैं। बाक़ी रहा मुसलमानों का सवाल सो हिन्दुस्तान में ऐसे दिन फिर आ सकते हैं जब मुसलमान गांधी जी पर वैसा विश्वास करें जैसा कभी खिलाफ़त के दिनों में करते थे। यह बात यूरोप में घटने वाले हालात पर ही बहुत कुछ मुनहसर है। आख़िर यह मनमुटाव कभी तो ख़तम होंगे ही नहीं तो हमीं ख़तम होंगे। मुझे तो बचपन के दिन याद आते हैं जब मैं गांव के बड़े बूढ़े मुसलमानों को चाचा कहा करता था। हिन्दू मुसलमान एक दूसरे की शादियों में आते जाते थे। अब यह हालत नहीं है। लेकिन वही हालत असली है और वापस आकर ही रहेगी। आप जैसे और मुझ जैसे नौजवानों पर यह ज़िम्मेदारी है कि हम वह हालत पैदा करें। बात मुश्किल ज़रूर है लेकिन अनहोनी नहीं।"

"यह तो ठीक है, लेकिन महात्मा गांधी ने भी तो हिन्दू मुस्लिम मिलाप के लिए कुछ भी नहीं किया।"

"माफ़ कीजिये, शायद आप भूल रहे हैं। महात्मा गांधी ने इसीलिए देहली में उपवास किया था तब मरहूम मौलाना मोहम्मद अली भी जीते थे। उन दिनों की एक बात तो कभी नहीं भुलाई जा सकती। तब गांधी जी के पास मौलाना गौ ले गये थे और बोले थे कि—"बापू जी, यही गाय ही दोनों कौमों में मेल करवायेगी।"

"हिन्दू महासभा और कांग्रेस में क्या फ़र्क है? मुझे तो कोई फ़र्क नहीं मालूम होता।" वे साहब बोले। "हिन्दू महासभा और कांग्रेस में एक ही आदमी हैं। मुस्लिम लीग को ठगने के लिये ही ये दो बना दी गई हैं।"

"यह बात नहीं, हिन्दू सभा का कोई भी मेम्बर कांग्रेस का ओहदेदार नहीं बन सकता। असल में आपको ग़लत फ़हमी है। और फिर मैं तो सभी जमायतों को मान और इज्ज़त की दृष्टि से देखता हूँ। सभी मुल्क की बेहतरी का ख्याल करने लगें तो कोई भी बुरी नहीं। एक दिन यह होगा।"

"आपसे मिलकर बहुत ख़ुशी हुई। आप तो बहुत अच्छी उर्दू बोलते हैं। कांग्रेस वाले तो उर्दू को मिटाना चाहते हैं।"

"यह आपने और ग़ज़ब ढा दिया। मैं जिस ज़बान में बात कर रहा हूँ इसी का नाम हिन्दी है। इसी को आप उर्दू कहते हैं।

"उर्दू तो हिन्दू मुसलमान दोनो की ज़बान है; उर्दू को तो असल में हिन्दुओं ने ही पाला पोसा है।"

"हिन्दी के बारे में भी यही बात है। 'हिन्दी' यह नाम भी एक मुसलमान का ही रक्खा हुआ है। बहुत से मुसलमान कवियों ने हिन्दी की ख़िदमत की है।" "लेकिन हिन्दी ज़बान तो समझ ही नहीं आती। पिछले दिनों मसूरी में एक जलसे मे मैं गया वहां हिन्दी में लेक्चर हो रहा था मुझे कुछ भी समझ में नहीं आया।" "जब कुछ मौलवी फ़ारसी, अर्बी से मिली उर्दू में बोलते हैं तो वह भी बहुतों को समझ में नहीं आती। लेकिन मैं आप से एक बात कहूँ—जो लोग, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, अगर ऐसी भाषा में बोलेंगे जो लोगों की समझ में नहीं आती, तो वे अपना ही नुक़सान करेंगे। मैं तो ऐसी ज़बान में बोलना पसन्द करूंगा जिसमें बोलकर मैं सुनने वालों तक अपने ख्यालात पहुँचा सकूं।"

अब हमारी गाड़ी मुरादाबाद स्टेशन पर आ गई थी, क़रीब दो बज रहे थे।

"आप सो जाइये, अब आप थक गये होंगे।" मैंने कहा।

गढ़ मुक्तेश्वर स्टेशन पर मुझे उतरना था। आदाब अर्ज़ नमस्कार के साथ वे साहब बोले—"मेरा नाम अब्दुल अज़ीज़ है। मैं लाहौर के मेडिकल कालेज में लास्ट ईयर में पढ़ता हूँ। आपका इस्म शरीफ़?"

"कभी देहरादून आइये तो मुझे भी मिलियेगा। मेरा नाम धर्मदेव शास्त्री है।

"ज़रूर मिलूंगा आपसे मिलकर बहुत ख़ुशी हुई है। आपके साथ बातचीत करके मैं कांग्रेसी तो नहीं बना हां, खद्दर का क़ायल हो गया हूँ। खद्दर एक ठोस चीज़ है—इन्शा अल्ला अब आप को मैं खादी की पोशाक में मिलूंगा।"

देहरादून]

मेरे दाहिने कोई दो सौ गज़ के फ़ासले पर गिरजा है। वहां अन्धेरा और निस्तब्धता है। कभी वह दिन थे कि ऐसी विपत्ति के समय स्त्रियां, बूढ़े व बच्चे गिरजे में इकट्ठे हो जाते और परमात्मा से प्रार्थना करते कि वह उनकी ओर से लड़े। क्यों? यह जो पास के गांव का गिरजा है, वह एक आदमी का बनवाया हुआ है जिसने समुद्र में तूफ़ान आने पर यह प्रार्थना की थी कि यदि वह अपने घर सही सलामत पहुंच जायेगा, तो अपने गांव में एक गिरजा बनवाएगा। लेकिन, यह सब अतीत की बातें हैं। मेरा ख्याल है कि जो सबसे नादान हैं उनमें से भी कोई ऐसे समय परमात्मा से कुछ आशा नहीं कर रहा है। हमारा पादरी भी किसी न किसी कोने में शायद ऐसे ही भुन भुना रहा है जैसे कि हम यहां भुन भुना रहे हैं।

× × ×

अब मेरे दाईं ओर मेरी पड़ौसिन ने दबे पांव दरवाज़ा खोला। उसने मेरी ओर सन्तोष से देखा और पूछा क्या कुछ दिखाई देता है? मैंने नकारात्मक उत्तर दिया। तब ऋतु और बारिश के बारे में बात-चीत हुई, जिसकी कि हमारे बाग़ को बहुत जरूरत थी फिर तमाशे की चर्चा चली। दो पौधे मुर्झा रहे थे। उसने कहा कि यह ठीक से बोए नहीं गये हैं। मैंने कहा—नहीं, कारण दूसरा है। यह बात चल रही थी कि लगभग ठीक हमारे सिरपर तोप (मशीन-गन) की घर-घर सुनाई दी। तब काले बादलों के पीछे से एक हवाई जहाज़ का ख़ाका सा भूरे आकाश में प्रवेश करता दिखाई दिया। यह एक जर्मन जहाज़ है, जिसे हमारी मशीन गन की आग ने बादलों में से ढूंढ़ निकाला है। एक क्षण में उसके चारों ओर श्वेत प्रकाश का एक फेरा बन गया। आतिश बाज़ी की तरह से आग के लाल लाल गोले पास की पहाड़ी पर से उठने शुरू हुए और उसके शिखर पर बिजली-सी चौंधिया रही। धुंए के धब्बे ने हवाई जहाज़ को चारों ओर से घेर लिया। हवाई हमले का मुकाबला करने वाली तोपें गोलियां दाग़ रही हैं। चूक गया! चूक गया! क्या निशाने हैं!" मेरा पड़ौसी कहता है। उस समय उत्तेजना से वह नाच रहा है। उसका गंजा सिर चांदनी में ख़ूब चमक रहा है। अपनी स्त्री से, जो अपने बच्चों को छाती से लगाए उसके सिर पर से झांक रही है वह कहता है, "पीछे हट, पीछे हट।"

मैं भी कुछ कुछ अपने पड़ौसी की ही तरह उत्तेजित हूं। उस समय कुछ फिलासफ़ी नहीं सूझती। मालूम होता है कि सिर पर केवल ख़ून सवार है। तो भी मेरे मन में शत्रु के लिए, जिसने अभी मेरी जाति के कुछ लोगों को मार डाला है, कुछ घृणा नहीं है। हां, जीवन को क्रीड़ा-भूमि समझने का वह भाव अवश्य है; जो प्रत्येक बर्तानिया—निवासी की रगों में समाया हुआ है।

हवाई जहाज़, जिसका सञ्चालन ग़ज़ब का है, बाल बाल बच जाता है। हमारी आग उसका पीछा करती है, जैसे कुत्ते लोमड़ी का। शत्रु का जहाज़ ठीक उसके नीचे से खिसक जाता प्रतीत होता है। बम-बम—दो बम्ब के गोले गिरते हैं। ज़मीन से जलते हुए अंगारे उठते हैं। जहाज़ के पंखों की आवाज़ कुछ कम होनी शुरू होती है, आख़िरकार बिलकुल सुनाई नहीं देती। मेरा पड़ौसी और मैं—दोनों—एक गहरी सांस लेते हैं—"ओह! निकल भागा।"

पीछे घूमकर मैंने देखा कि मेरी नौकरानी पिछले दरवाज़े से खिसक गई और सचमुच बुद्धिमान रही, क्योंकि एक कोने से अपने शरीर को सटाए हुये वह सारा तमाशा देखती रही। हम मूर्ख अपने दरवाज़े पर इधर उधर घूमकर व्यर्थ ही ख़तरा सिरपर लिए रहे।

"श्रीमती स्मिथ!" मैंने पलट कर कहा, "हमने ग़लती की। किताब में लिखा है कि हवाई आक्रमण के समय किसी भी हालत में किसी को घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए।' "जी हां" कह कर वह चुप रह जाती है और तब अजीब ढंग से आंख घुमाकर कहती है कि "पतीली में पानी उबल रहा है। मैं आपके लिए चाय का सुन्दर प्याला तैयार करने जा रही हूं।" मैंने चाय की चुस्कियां लेते हुए अपने से पूछा, "क्या मैंने ठीक किया"? जहां तक किताब की बात है—निश्चय से 'नहीं' क्योंकि किताब में लिखा है कि हवाई

आक्रमण के समय किसी को भी घर से नहीं निकलना चाहिए।" लेकिन, मुझे इसका अफ़सोस नहीं है, क्योंकि मैंने एक आश्चर्य जनक दृश्य तो देखा; और यदि मर जाऊँ तो मुझे कोई रोने वाला भी नहीं। लेकिन, मेरा यह पड़ोसी अपनी स्त्री और बच्चों के साथ...!! ओह! अपने दोष पर परदा डाल कर पड़ोसी के दोष देखना आसान है।

लेकिन धर्म की दृष्टि से मुझे क्या करना चाहिए था? मैंने पञ्चशील ग्रहण किया! एक दृष्टि से यह अच्छा ही था। लेकिन, इतने से क्या होता है? मैं उत्तेजित होगया। शायद मुझे शान्त और उपेक्षा युक्त रहना चाहिए था या मुझे नहीं रहना चाहिए था! क्या एक साधारण आदमी को उस समय जब उसके दोस्त और देशवासी मारे जा रहे हों, शान्त और उपेक्षा से रहना चाहिए? मैंने इच्छा की कि शत्रु मार गिराया जाय! हां, यह सत्य है; लेकिन, तब भी मेरे मन में उसके प्रति घृणा नहीं थी और यदि वह मेरे दरवाज़े पर अब भी लाया जाय तो मैं, जैसा कि औरों ने किया, उसे पुलिस के हवाले करने से पहले चाय का प्याला देता, चाहे वह मुझे तथा मेरे सम्बन्धियों को मारने का प्रयत्न कर रहा था। इस तरह विचार करता हुआ मैं एक बार फिर अपने बिस्तरे पर आ लेटा। हमारे गांव के इतिहास में जो सैक्सन समय से आरम्भ होता है, हवाई आक्रमण का यही पहला अनुभव था। इसके पीछे दिन-रात और होने वाले हैं। यह तो उनका अग्रदूत मात्र रहा। हम बच गए। लेकिन, उनका क्या हाल जो ठंडे होगए? वह रोते हुए रिश्तेदार, वह नष्ट होगए घर बार और काहे के लिये?

कहावत है कि लड़ाई लड़ाई है। लेकिन; उन बेकसूर लोगों को जो लड़ाई में हिस्सा नहीं लेते, मार गिराने से क्या लाभ? सचमुच ऐसा भयानक कृत्य कोई नहीं कर सकता, जब तक उस जाति ने जो ऐसे कृत्यों के लिए ज़िम्मेवार है, कोई महान् पाप न किया हो। तथागत ने और ईसा ने दोनों ही ने शिक्षा दी है कि *"जो बोएगा, सो काटेगा।"*

क्षत्रिय की वीरता का क्या हुआ? शत्रु से लड़ाई में आमने-सामने डट कर लड़ना और निस्सहाय की सहायता करना। अर्जुन को यदि कृष्ण ने कहा होता कि जाओ और जाकर सोते हुए किसानों के गाँव को नष्ट करो, तो उसका उत्तर क्या होता?

कब हम बर्बरता को छोड़ कर मनुष्य बन सकेंगे?

हे मैत्रेय!* क्या वह समय नहीं आया कि जो प्रकाश भारत में २५०० वर्ष पूर्व दिखाई दिया था, वह हमें भी दिखाई दे।

* बौद्धों का विश्वास है कि भावी-बुद्ध मैत्रेय बुद्ध होंगे।

पाकिस्तान आर्थिक दृष्टि से सफल नहीं हो सकता

श्री अनीसुर्रहमान

इन दिनों हमारे मुल्क में पाकिस्तान के आन्दोलन का बहुत ज़्यादा चरचा है। प्रेस और प्लेटफार्म से बहुत ज़ोरों के साथ इसका प्रचार किया जा रहा है। लेकिन, इसके ज़बर्दस्त समर्थकों में भी बहुत कम लोग ऐसे होंगे, जिन्होंने इसके हर पहलू पर अमली नुक़्ते नज़र से ग़ौर करके अपनी राय क़ायम की हो। इस मसले के तमाम पहलुओं पर इस संक्षिप्त लेख में रोशनी डालना नामुमकिन है। इस लिये हम यहां सबसे महत्वपूर्ण पहलू यानी सिर्फ आर्थिक दृष्टि से ही विचार करेंगे।

पाकिस्तानी सूबों की वर्तमान आर्थिक स्थिति

पाकिस्तानी स्कीम की सब से बड़ी कमज़ोरी उत्तरी पच्छिमी सूबों की आर्थिक कमज़ोरी है। पाकिस्तान में शामिल होने वाले चार सूबों में पंजाब, सिन्ध, सरहद और बलूचिस्तान में, आख़िरी तीन सूबे तो ऐसे हैं, जो अपने शासन का ख़र्च भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। इन्हें अपनी हुकूमत का इन्तज़ाम करने के लिये केन्द्रीय सरकार के आगे हाथ फैलाना पड़ता है। सिन्ध के सूबे को केन्द्रीय सरकार से एक करोड़ पांच लाख और सरहद के सूबे को एक करोड़ वार्षिक की रक़म सहायता के बतौर मिलती है। सिन्ध जैसे बड़े प्रांत का इतने दिनों तक बम्बई के साथ मिले रहने का सबब यही था कि सिन्ध आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ा होने के नाक़ाबिल था। इसी तरह सरहद के सूबे के सुधार दिये जाने के ख़िलाफ़ भी यही दलील पेश की जाती रही कि वह दूसरों के समान स्वतन्त्र सूबा बनने के बाद अपनी शासन संस्थाओं का भार बर्दाश्त न कर सकेगा। फिर बलूचिस्तान को देखिये, तो इसकी हालत और भी ज़्यादा ख़राब नज़र आती है। बलूचिस्तान की स्थानीय आमदनी नाममात्र की है और इसके सम्बन्ध में यदि यह कहा जाय तो मुबालग़ा न होगा कि बलूचिस्तान के तमाम ख़र्च केन्द्रीय सरकार को ही बरदाश्त करने पड़ते हैं।

ग़रज़ कि पाकिस्तान के चार सूबों में तीन की यह हालत है। रह जाता है पंजाब। उसकी आमदनी लगभग ग्यारह करोड़ रुपया सालाना है। लेकिन, यह रक़म महज़ सूबे के ही ख़र्च के लिये काफ़ी होती है। उन्नति की दूसरी योजनाओं पर ख़र्च करने के लिये इसके पास पैसे नहीं बचते। इसी से आप अन्दाज़ा कर सकते हैं कि २८ ज़िलों के सूबे में शिक्षा पर हुकूमत सिर्फ २५ लाख रुपये सालाना की रक़म ख़र्च कर पाती है। इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि पंजाब में शिक्षा की बहुत कमी है। बहर हाल हम यह कह सकते हैं कि पंजाब अपने पैरों पर खड़ा है; लेकिन वह किसी तरह इस लायक़ भी नहीं है कि अपने दूसरे ग़रीब मुसलिम पड़ोसी सूबों की मदद कर सके।

फ़ेडरेशन के खर्च

हिन्दुस्तान से अलहदा होने के बाद सब से पहले सवाल हमारे सामने यह आता है कि इन दिवालिया सूबों (सिन्ध, बलूचिस्तान और सरहद) की कमी कौन पूरी करेगा? अगर उत्तर पच्छिम के चारों मुसलिम सूबों की सम्मिलित आमदनी को जोड़ा जाय, तो वह किसी तरह सोलह सतरह करोड़ से नहीं बढ़ती। अगर हम यह मान भी लें कि ये सोलह सतरह करोड़ इन चार सूबों का राज चलाने के लिये काफ़ी भी हो जायगे, तो फिर दूसरा भयानक सवाल यह आ खड़ा होता है कि 'पाकिस्तान फेडरेशन' के ख़र्च कहां से आवेंगे, जो सोलह सतरह करोड़ से कम न होंगे? पाकिस्तान स्कीम के हमदर्द इस सवाल का जवाब यह देते हैं कि इस वक्त इन चार मुसलिम सूबों से जो केन्द्रीय सरकार को चुंगी, नमक, रेलवे व इनकम टैक्स वग़ैरह की मदों से तेईस-चौबीस करोड़ रुपया सालाना की आमदनी है,

उसी को फ़ेडरेशन के ख़र्च के लिये इस्तेमाल किया जायगा। लेकिन, यहां सवाल यह पैदा होता है कि प्रस्तावित पाकिस्तान किसी रूप में हिन्दुस्तान के साथ रहेगा या बिलकुल अलहदा होगा? यदि दूसरी सूरत होगी, तो उसे अपनी रक्षा का खुद ही इन्तज़ाम करना होगा। इस वक्त उत्तर पच्छिम सीमा की हिफ़ाज़त पर भारत सरकार का पैंतीस करोड़ रुपया सालाना ख़र्च हो रहा है। ज़ाहिर है कि अगर पाकिस्तान यह बोझा अपने कन्धे पर लेगा, तो उसे इस रक़म का बन्दोबस्त ख़ुद ही करना पड़ेगा। लेकिन, अगर पाकिस्तान किसी न किसी शक्ल में हिन्दुस्तान के साथ शरीक़ रहता है और पाकिस्तान की रक्षा का बोझा भी हिन्दुस्तान के कन्धे पर रहता है, तो इस सूरत में भी हिन्दुस्तान को अपनी रक्षा के बदले कुछ न कुछ रक़म देनी ही पड़ेगी; जो किसी भी सूरत में उससे कम न होगी, जो ये सूबे फ़िलहाल केन्द्रीय सरकार को दे रहे हैं।

फ़र्ज़ कीजिये कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान से इस तरह का कोई सम्बन्ध न रहेगा, जैसा कि पाकिस्तानी भाइयों का ख़्याल भी है; तो पाकिस्तान अफ़ग़ानिस्तान या ईरान की तरह एक ख़ुद मुख़्तार आज़ाद सल्तनत होगी और ज़ाहिर है उसे अपनी रक्षा का इन्तज़ाम स्वयं करना होगा। उस वक्त इसकी दो सीमाएं होंगी, जिसकी हिफ़ाज़त ज़रूरी होगी। एक उत्तर पच्छिमी सरहद और दूसरी वह सरहद जो पाकिस्तान को 'हिंदू' हिंदुस्तान से अलग करेगी। इस सरहद की रक्षा के लिये भारत सरकार को ३५ करोड़ रुपये सालाना ख़र्च करने पड़ रहे हैं। उत्तर पच्छिमी कोने पर तीन बड़े मुल्कों की सीमाएं मिलती हैं। चीन, अफ़ग़ानिस्तान और रूस। रूस जैसे ताक़तवर पड़ोसी से हिफ़ाज़त के लिये पाकिस्तान को वैज्ञानिक ढंग के ज़बरदस्त अस्त्र शस्त्रों का प्रबन्ध करना होगा। यह ठीक है कि रूस का सिद्धान्त किसी देश पर हमला करना नहीं है; लेकिन, हुकूमत की हैसियत से रक्षा का इन्तज़ाम तो हर सूरत में लाज़िमी है। साथ ही साथ यह भी है कि अगर पाकिस्तान किसी मुल्क से लड़ना न भी चाहेगा, तो वह एक बीच के राज्य की हैसियत से हिंदुस्तान और रूस, चीन, अफ़ग़ानिस्तान की हर एक नोक झोंक में बेल्जियम की तरह हमेशा रौंदा जायगा। इस सिलसिले में एक बात यह भी ग़ौर करने के क़ाबिल है कि रूसी रेलवे और फ़ौजी केन्द्र तीन सौ मील की दूरी पर क़ायम हो चुके हैं और ईरान की सरहदों तक जर्मनी के असर पहुँच चुके हैं। अब ज़रा पाकिस्तान की उत्तरी सीमा का मुलाहज़ा कीजिये, जो 'हिंदू' हिंदुस्तान को 'मुसलिम' हिंदुस्तान से काटेगी। ये सरहद सिमले की पहाड़ी से शुरू होकर अम्बाला, बहावलपुर और सिंध के पूरे सूबे को पार करती हुई कच्छ की खाड़ी से जा मिलेगी; जिसकी लम्बाई चौदह सौ मील के करीब होगी। ज़ाहिर है कि इस लम्बी सरहद पर भी पाकिस्तान सरकार को करोड़ों के ख़र्च से एक बड़ी फ़ौज रखनी होगी। क्योंकि जब हिन्दू और मुसलमान एक मुल्क में पड़ोसी की हैसियत से नहीं रह सकते, तो फिर दो हिन्दू और मुसलिम पड़ोसी सल्तनतें बग़ैर लड़े भिड़े किस तरह रह सकती हैं। फिर लड़ाई के कारण भी मौजूद हैं,—यानी हिन्दू हिन्दुस्तान में चार करोड़ मुसलमानों का रहना और पाकिस्तान में डेढ़ करोड़ हिन्दू और सिखों का होना।

यह भी एक स्पष्ट सत्य है कि आज़ाद हिन्दुस्तान पाकिस्तान के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा अज़ीमुश्शान और ताक़तवर होगा। हिमालय पहाड़ से लेकर रासकुमारी तक और बर्दवान से लेकर अम्बाला तक २८ करोड़ का एक राष्ट्र होगा, जिसके हाथ में मुल्क के तमाम खनिज पदार्थ, उपजाऊ ज़मीनें, कल कारख़ाने और अरबों दौलत होगी। इस राष्ट्र के लिये बीस पच्चीस लाख की एक स्थायी फ़ौज रखना कोई मुशकिल बात न होगी। लेकिन, उसके बरख़िलाफ़ पाकिस्तान शायद डेढ़ दो लाख फ़ौज का भी भार बरदाश्त न कर सकेगा। इस वक्त ईरान की फ़ौजी ताक़त एक लाख पांच हज़ार है और अफ़ग़ानिस्तान की कुल साठ हज़ार। फ़ौज के साथ ही साथ पाकिस्तान को लड़ाई के नये वैज्ञानिक साधन का एक बहुत बड़ा ख़ज़ाना रखना होगा, जिसके बग़ैर किसी सुसज्जित सेना का दो दिन

भी मुक़ाबला करना कठिन होगा। मतलब यह है कि पाकिस्तान को अरबों रुपयों के टैंक, हवाई जहाज़, मशीन गनें, आर्मर्ड कार और गोला बारूद ख़रीदना पड़ेगा, जो पाकिस्तान की वर्त्तमान आर्थिक स्थिति को देखते हुए बिलकुल नामुमकिन है। हमें तो डर है कि जब तक सिमले से लेकर कच्छ की खाड़ी तक पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच एक मैजिनो लाइन न बनाई जायगी, तब तक "इसलाम ख़तरे" से बच नहीं सकेगा। इस परिस्थिति में अपनी हिफ़ाज़त के लिये यदि पाकिस्तान को किसी न किसी यूरोपियन पूंजीवादी देश के सामने हाथ फैलाना पड़े, तो उसका अर्थ इसके सिवाय कुछ नहीं कि पाकिस्तान आर्थिक तौर पर उसका ग़ुलाम हो जाय।

पाकिस्तान में उद्योग धन्धों की उन्नति

यहां हमें यह भी सोचना चाहिये कि क्या यह सम्भव है कि पाकिस्तान के आमदनी के ज़रिये बढ़ाये जांय! दुनिया में हुकूमतों की आमदनी का सबसे बड़ा ज़रिया उद्योग धन्धे हैं। जो मुल्क उद्योग धन्धों में जितना आगे हैं, मौजूदा दुनिया में उनको उतना ही ऊंचा स्थान प्राप्त है। जो देश उद्योगवादी नहीं और जिनका दारमदार सिर्फ़ काश्तकारी पर है, उनका दुनिया में कोई भविष्य नहीं। बल्कि होता तो ऐसा आया है कि कृषि प्रधान मुल्कों को किसी न किसी उद्योगवादी मुल्क का ग़ुलाम होकर रहना पड़ा है। चीन, मिस्र, दक्खिन अफ़रीका और दक्खिन अमरीका की मिसाल हमारे सामने है। यह कहना कि खेती के ज़रिये पाकिस्तान को दूसरे मुल्कों की श्रेणी में खड़ा किया जा सकता है, एक हास्यप्रद बात है। उद्योग धन्धे न होने का लाज़मी नतीजा हुकूमत की ग़रीबी है और हुकूमत की ग़रीबी का असर राष्ट्र निर्माण के काम पर पड़ेगा। इन मुसलिम सूबों की खेती की हालत ऐसी नहीं कि कोई खेती का आमदनी कर लगाया जा सके, बल्कि क़ौमी हुकूमत का तो यह कर्तव्य होगा कि वह अपने काश्तकारों के सर से टैक्स का बोझा ज़्यादा से ज़्यादा हलका करे। उत्तर पच्छिम के मुसलिम सूबों में उद्योग धन्धों को जो कैफ़ियत है, वह सब को मालूम है। हिन्दुस्तान के तमाम उद्योग केन्द्र-पाकिस्तान से बाहर हैं। सिन्ध, बलूचिस्तान, सरहद और काश्मीर का तो कोई ज़िक्र ही नहीं। पंजाब में चन्द ऊन और होज़री के कारख़ानों के कोई बड़ा कारख़ाना नहीं है। दूसरी महत्वपूर्ण ज़रूरत की चीज़ों के, जैसे लोहा, सीमेण्ट, चीनी, कपड़ा, जूट आदि के, वहां कोई बड़े कारख़ाने नहीं।

इतना ही नहीं पाकिस्तान में कल कारख़ानों की तरक़्क़ी की आगे भी कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती। किसी मुल्क की उद्योग धन्धों की तरक़्क़ी के लिये सबसे ज़रूरी चीज़ें कोयला व लोहा हैं और इन्हीं की पाकिस्तान में सब से ज़्यादा कमी है। यह कहना कि खनिज पदार्थ पड़ोसी मुल्कों से ले लेंगे, एक बड़ी भूल है। पड़ोसी मुल्कों से खनिज माल लाने में ज़्यादा मंहगा पड़ने की वजह से कारख़ानों के माल के तय्यार करने में लागत ज़्यादा पड़ जायगी और दूसरे पड़ोसी मुल्क कब क्या रुख़ अख़्तियार करें, इसका कोई निश्चय नहीं। इस सिलसिले में दूसरी महत्वपूर्ण बात मण्डी और बाज़ार हैं। बदक़िस्मती से पाकिस्तान के पास ये भी मौजूद नहीं। पाकिस्तान के पास कोई उपनिवेश नहीं, जहां जाकर वह अपना माल खपाए। सिन्ध, बलूचिस्तान सरहद और काश्मीर के बाशिन्दों की ग़रीबी मशहूर है। यदि किसी प्रान्त में ख़रीदने की शक्ति है, तो वह सिर्फ़ पंजाब में है। कोयला, लोहा और बाज़ार ये तीन चीज़ें मौजूदा दुनिया में जितनी हैसियत रखती हैं, वह इसी से ज़ाहिर है कि गुज़श्ता तीन सौ बरसों में जितनी जंगें हुईं या अब भी जो भीषण लड़ाई यूरोप में लड़ी जा रही है, उसका कारण यही कोयला, लोहा और बाज़ार हैं। यदि हम यह कहें कि मौजूदा राजनीति कच्चे माल और बाज़ार की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति है, तो बेजा न होगा। अब तो यह भी साबित हो गया है कि किसी देश के पास कोयला लोहा आदि होते हुये भी यदि उसमें अपने को बचाने की क्षमता नहीं है, तो वह भी बेकार है। गुज़श्ता जंग में और वर्तमान जंग में

जर्मनी इसी नुक़्ते नज़र से अलसैस और लोरेन की मांग पेश कर रहा था। पाकिस्तान में कल कारख़ानों के केन्द्र न होने के कारण कारीगरों की भी कमी है। ग़रज़ यह कि पाकिस्तान को अपने उद्योग धन्धों की तरक़्क़ी के लिये अफ़ग़ानिस्तान और ईरान की तरह यूरोपियन मुल्कों का मुंह जोहना पड़ेगा। या फिर उसी 'काफ़िर' हिन्दुस्तान की ख़ुशामद करनी पड़ेगी, जहां ये चीज़ें इतने बड़े परिमाण में मौजूद हैं कि जिसका अब तक तख़मीना भी नहीं लगाया जा सका।

कृषि प्रधान देश बनाम उद्योगवादी देश

इस बात से लाजवाब होकर कि पाकिस्तान में कल कारख़ानों की उन्नति की कोई आशा नहीं, उस के दावेदार यह दलील पेश करते हैं कि देशी उद्योग धन्धे न होने के कारण बाहर से माल की आमद बढ़ेगी और उसके साथ साथ हमारी जहाज़ी चुंगी की आमदनी भी बढ़ेगी। लेकिन, यह तो बिलकुल बच्चों की सी बातें हैं। इसमें शक नहीं कि आयात बढ़ने से पाकिस्तान की चुंगी में ५-१० करोड़ रुपये का इजाफ़ा हो सकता है, किन्तु इन दस करोड़ रुपयों की प्राप्ति के लिये सौ करोड़ रुपये विदेशी व्यापारियों के जेबों में डालने पड़ेंगे और इस तरह मुल्क की दौलत बराबर घटते घटते देश बिलकुल कंगाल हो जायगा।

इस सिलसिले में पाकिस्तानियों ने एक अजीबो ग़रीब दलील पेशकी है। वह यह कि मुसलमानों और हिन्दुओं के आर्थिक हित जुदा जुदा हैं। हिन्दू क़ौम व्यापारी क़ौम है और मुसलमान खेतिहर हैं। मुसलमान क़ौम कच्चा माल पैदा करती है और हिन्दू क़ौम उससे कच्चा माल ख़रीद कर चीज़ें बनाती व फ़ायदा उठाती है। यदि पाकिस्तान की योजना नहीं चली और केन्द्रीय सत्ता हिन्दुओं के हाथों में रही, तो वे हमारे कच्चे माल को अपने हित में यहीं रोक लेंगे। सिन्ध की रुई, पंजाब का गेहूं और बंगाल का जूट बाहर न भेजने देंगे, चाहे हमें बाहर से उसके कितने ही ज़्यादा दाम मिलें। हिन्दू केन्द्रीय शक्ति हमें मजबूर करेगी कि हम अपना कच्चा माल इसी मुल्क में इन्हीं की क़ीमत पर इन्हीं के हाथ बेचें। इतनाही नहीं, अपने माल की खपत के लिये हिन्दू केन्द्रीय सत्ता राष्ट्रीय उद्योग की रक्षा के नाम पर बाहर के माल पर कड़ी चुंगी लगा देगी। इसलिये मुसलमानों को लाचार हो कर हिंदुस्तानी मिलों का मंहगा कपड़ा और दूसरी चीज़ें ख़रीदनी पड़ेंगी। इस तरह मुसलिम किसान दोनों तरफ़ से लूटे जायंगे। यानी कम दाम पर उनसे कच्चा माल ख़रीद कर फिर उसी से तय्यार माल ज़्यादा दाम पर उन्हीं के हाथ बेचा जावेगा। लेकिन इन अक़्लमन्दों से कोई पूछे कि अगर सिन्ध, पंजाब, सरहद, काशमीर, बलूचिस्तान और बंगाल के छः–सात करोड़ मुसलमानों के हित खेती से ही हैं, तो क्या यू० पी०, बिहार, आसाम, सी० पी०, मद्रास, बम्बई वग़ैरह के तेईस-चौबीस करोड़ हिन्दू काश्तकारों के हित क्या खेती से नहीं हैं? अगर किसी का उद्योगवादी हित हो सकता है, तो सिर्फ़ दस बीस लाख हिन्दुओं का। लेकिन, बाक़ी तेईस करोड़ हिन्दू क़ाश्तकारों के तो वही हित हैं, जो मुसलमान क़ाश्तकारों के। यदि मुट्ठी भर हिन्दू व्यापारी थोड़े से मुसलमान क़ाश्तकारों को चूसते हैं, तो उससे कहीं ज़्यादा हिन्दू क़ाश्तकारों को भी लूटते-खसोटते हैं।

सारांश यह कि आर्थिक दृष्टि से पाकिस्तानी सूबे इतने कमज़ोर हैं कि वे कभी भी अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकते। भविष्य में उनका यही काम रह जायगा कि वे किसी न किसी साम्राज्य के उपनिवेश बन कर रह जांय। उन्हें कच्चा माल दें और फिर उनसे तैयार माल ख़रीदें।

मौजूदा लड़ाई के बाद दुनिया में छोटे छोटे मुल्कों का कोई भविष्य नहीं दिखाई देता। ऐसे वक़्त में जब कि दुनिया संसार भर का फ़ेडरेशन और बड़े बड़े राजनैतिक केन्द्र क़ायम करने की ओर ध्यान दे रही है; हमारे भाई पाकिस्तान का दरबा बनाने की बात सोच रहे हैं।

सेवागाँव की एक झलक

पण्डित सुन्दरलालजी

पिछले दो महीने से पण्डित सुन्दरलाल जी बापू की आज्ञा से सेवागाँव में हैं। सारी दुनिया की निगाहें इस समय सेवागाँव पर हैं। पण्डित जी ने अपने आश्रम के जीवन पर और बापू के दैनिक कार्य-क्रम पर जो पत्र भेजा था उसे हम विश्ववाणी के पाठकों के सामने रखने का लोभ संवरण न कर सके। पत्र इस तरह शुरू होता है—

तुम चाहते हो कि मैं गीता पर अपना लेख पूरा करके भेजूं लेकिन यहां फ़ुरसत इतनी कम मिलती है कि उसके पूरा होने की कोई सूरत नज़र नहीं आती। मेरी दिनचर्या से तुम्हें आश्रम के जीवन की एक झलक मिल जावेगी।

सुबह ठीक चार बजे उठने की घण्टी बजती है। नींद में मैं कभी कभी घण्टी नहीं सुन पाता। एक सज्जन कृपा करके मुझे आकर उठा देते हैं। चार बज-कर बीस मिनट पर प्रार्थना होती है किन्तु मैं आजकल उसमें नहीं जा सकता। चार बजे सुबह से पांच बजे तक एक घण्टा मेरी ड्यूटी शास्त्री जी की सेवा में बंधी हुई है। ये शास्त्री जी पचास से कुछ ऊपर उमर के एक दक्खिनी ब्राह्मण हैं। संस्कृत के पूरे पण्डित, वेदों और शास्त्रों के पूरे ज्ञाता और अङ्गरेज़ी के अच्छे विद्वान, धर्मनिष्ठ और ईश्वरभक्त। क़रीब दस वर्ष हुए इन्हें किसी तरह कोढ़ की बीमारी लग गई। बापू (गांधी जी) दूर दूर से अपने बीमार प्रेमियों और मित्रों को बुलाकर यहां रखते हैं, इलाज कराते हैं और ख़ुद हर मरीज़ की देख भाल करते हैं। आचार्य नरेन्द्र देव को भी इस सिलसिले में यहां आकर रहने के लिये तार दिया था। शास्त्री जी के लिये एक अलग सुन्दर कुटिया बनी है। इलाज हो रहा है। लेकिन बीमारी पूरे ज़ोर पर है आज सात दिन से वे निर्जल उपवास कर रहे हैं। २४ घण्टे कोई न कोई उनकी सेवा में रहता है। ड्यूटियां बदलती रहती हैं। सुबह चार से पांच तक मेरी ड्यूटी रहती है।

पांच और छै के बीच में नित्यकर्म से निपट कर नहा धोकर और नाश्ता कर के बापू की कुटिया में कुछ मिनट के लिये जा बैठता हूं। बापू क़रीब सवा सात बजे टहलने जाते हैं। साथ चला जाता हूं। रास्ते में कभी कुछ बात चीत भी हो जाती है। क़रीब आठ-बजे बापू शास्त्रीजी की कुटिया में जाते हैं।

इस बार यहां आकर मैं कभी कभी यह महसूस करता हूं कि दुनिया में जिस एक आदमी को समझना चाहिये था, उसे पिछले २४ साल के अन्दर इतना अच्छा परिचय होते हुये भी, अभी तक पूरी तरह सम-झने की कोशिश न की। जिस आदमी के सर पर चर्खा संघ, ग्राम उद्योग संघ, तालीमी संघ, हरिजन संघ जैसी संस्थाओं को चलाने का पूरा बोझ है, जो इतनी बड़ी सरकार के साथ ऐसा अनोखा युद्ध छेड़े हुए है, जिसे रोज़ प्रान्त प्रान्त के नेताओं और काम करने वालों को बहसें करके हिदायतें देनी पड़ती हैं और उन्हें गुमराही से बचाना पड़ता है, जिसे हिन्दुस्तान में शायद सब से ज़्यादह पत्रों का जवाब देना पड़ता है,

और जिसकी मुलाक़ातों में नौ नौ घण्टे से ऊपर ख़र्च होते हैं—वह सुबह सैर से लौटकर कुष्ठ रोग के एक ऐसे मरीज़ की कुटिया की, जिसका मर्ज़ अपने पूरे ज़ोर पर है, अपने हाथ से सफ़ाई करता है, सारा सामान एक जगह से हटा कर दूसरी जगह रखता है, कुटिया में झाड़ू देता है और फिर रोज़ नियम पूर्वक अपने हाथ से धीरे धीरे उस रोगी के सारे शरीर की मालिश करता है, उसके ज़ख़्मों से दबाकर पीप निकालता है और उसके खुरण्ट उतारता है। शास्त्रीजी को बापू को इस तरह सेवा करते देखकर और उस सेवा के साथ साथ शास्त्री जी से धर्म चर्चा और प्रेम की बातें करते हुए सुनकर मुझे इतिहास के दो ही व्यक्तियों की याद आती है। एक हज़रत ईसा जो अपने कोढ़ियों और पतितों के प्रेम के लिये मशहूर हैं और दूसरे हज़रत उमर जिन्हें ईरान और रोम जैसी दो दो ज़बर दस्त ताक़तों के साथ लोहा लेते हुए और अपनी महान सल्तनत का पूरा इन्तज़ाम करते हुए भी रोज़ अपनी कमर पर मश्क लादकर अनेक बेवाओं के घरों में जाकर पानी भर आने के लिये फ़ुरसत मिल जाती थी। ख़ैर! बापू के चरित्र का यह केवल एक पहलू है।

आठ से दस तक मेरी ड्यूटी रसोई के अन्दर खाना बनवाने की रहती है। इस काम में मेरे साथ कुछ नेक बहिनें भी हैं जो कभी कभी थोड़ी ही देर में दया करके कह देती हैं—"अब आप जाइये, हम सब करलेंगे।"। उनकी दया की बदौलत तुम्हें यह ख़त लिख रहा हूं। दस से बारह तक मेरी ड्यूटी फिर शास्त्री जी के पास रहती है। वे लेटे रहते हैं और मैं उन्हें गीता सुनाता रहता हूं। कल मैं जानकर गीता नहीं ले गया। मैंने उन्हें मौलाना रूम की मसनवी से कुछ चीज़ें सुनाईं। सुनकर वे बड़े ही प्रसन्न हुए।

पिछले महीने मेरी ड्यूटी नौ से दस तक पाखाना साफ़ करने की थी। अब वह काम दूसरों के सुपुर्द है। पारी बदलती रहती है।

मेरे साथ एक दूसरे सज्जन श्री एच० सी० दासप्पा भी हैं। ये मैसूर के बड़े वकील थे। वहां की स्टेट कांग्रेस के सदर थे। एक तरह की गठिया हो गई जिससे बदन हिलाना तक मानो आरे से चीरना जैसा हो गया। डाक्टरों से ज़्यादा फ़ायदा न हुआ। तब बापू ने मैसूर से यहां बुला कर रखा। इलाज कराया। अभी इलाज चल रहा है। सिर्फ़ मौसम्बी के रस पर रह रहे हैं। अब इतना फ़र्क़ है कि तीन मील पैदल सैर कर आते हैं। बड़े प्रेमी और सरल स्वभाव हैं।

दोपहर को ११ बजे खाने की घण्टी बजती है। एक ख़ास बराम्दे में सब साथ बैठ कर खाना खाते हैं। बापू सुबह का नाश्ता अपने कमरे में करते हैं और दो पहर और शाम को सबके साथ बैठ कर खाना खाते हैं। खाना शुरू करने के पहले—

ओं सहना ववतु, सहनौ भुनक्तु,
सह वीर्यम् करवा वहै
ते ज्विनाऽ वधीत मस्तु,
मा विद्विषा वहै; ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

पढ़ा जाता है। हरेक को अपने खाने के बरतन ख़ुद मांजने पड़ते हैं। समझदार आदमियों से यह भी आशा की जाती है कि वे पकाने और परोसने के बरतनों में से भी थोड़े बहुत मांज कर रखदें। शास्त्री जी के यहां ड्यूटी की वजह से मुझे बारह बजे भोजन मिलता है।

डेढ़ बजे से दो भाई और बहिन मुझसे हिन्दी उर्दू पढ़ने आते हैं। डेढ़ घण्टे उन्हें पढ़ाना पड़ता है। फिर चार से पांच तक डाक्टर सतीशचन्द्र दास को हिन्दी पढ़ाता हूं। डाक्टर दास साठ बरस की उमर के स्वस्थ, बड़े प्रेमी और भावुक व्यक्ति हैं। विलायत में डाक्टरी की तालीम पाई। नैपाल में चीफ़ मेडिकल अफ़सर रहे। फिर दस बरस दार्जिलिङ्ग में चोटी के डाक्टर रहे। अब सब छोड़कर अपनी स्त्री और एक बच्चे समेत आश्रम में रहते हैं। आश्रम के मेडिकल अफ़सर हैं। बापू के बड़े भक्त हैं।

मैंने एक दिन पूछा आपने दार्जिलिङ्ग की प्रैक्टिस क्यों छोड़ दी? कहने लगे—"मैं रोज़ देखता था कि जो लोग मुझे इलाज के लिये बुलाते थे उनके रोज़मर्रा के खाने में या उनकी आदतों में छोटी छोटी तब्दीलियां कर देने से वे अच्छे हो सकते थे। यदि मैं यह

कहता तो वे न सुनते। वे दवाइयां ही चाहते थे और दवाइयां फ़ायदा कम करती हैं नुक़्सान बहुत ज़्यादह। मुझे रुपये की ज़रूरत थी वैसा ही करना पड़ता था। धीरे धीरे मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कारने लगी। मैं छोड़कर चला आया। यहां मेरी आत्मा सन्तुष्ट है। डाक्टर दास उपवास को बहुत मुफ़ीद बताते हैं और ख़ुराक ठीक करने पर बहुत ज़ोर देते हैं। एक तरह के प्राकृतिक इलाज के मानने वाले हैं। खाने के बारे में और *ख़ास कर क्या क्या चीज़ें एक साथ खाई* जा सकती हैं और क्या क्या नहीं इस बारे में मैंने उनसे बहुत सी नई बातें सीखी हैं।

शाम को पांच बजे फिर घण्टी बजती है और खाने को पहुंचना होता है। बापू के खाने की ख़ास चीज़ें हैं—कच्चा लहसन पिसा हुआ, कच्ची प्याज़ कटी हुई, एक डब्बे में पालक या और कोई कच्चा साग, बकरी का दूध और कुछ डबल रोटी के टुकड़े या खाखरा (सोडा डालकर पापड़ की तरह सिकी रोटी), नाश्ते में दूध के साथ सन्तरा या मौसम्बी और कुछ ताड़ का गुड़। दोपहर और शाम के खाने के वक़्त किसी किसी को अपने डब्बे में से थोड़ा सा पिसा हुआ लहसन और थोड़ी सी कटी प्याज़ और कच्चा साग दे देते हैं। मेरे दूध के कटोरे में भी आजकल दोनों समय क़रीब छै छै मासे पिसा हुआ लहसन डाल देते हैं। उनकी यह ख़ास कृपा है और मुझे दूध में लहसन मिला कर खाने की आदत पड़ गई है।

शाम के खाने के बाद मैं फिर कुछ मिनट के लिये बापू की कुटिया में जा बैठता हूं। क़रीब सवा छै बजे शाम को उनके साथ टहलने चला जाता हूं। सात बजे प्रार्थना की घण्टी बजती है। प्रार्थना के बाद आश्रमवासी मर्द और औरतों के एक रजिस्टर से नाम पुकारे जाते हैं और हरएक को बोलकर लिखाना पड़ता है कि उसने दिन में कितना सूत काता। हफ़्ते में डाक्टर दास का कम से कम तीन दिन तन्दुरुस्ती पर व्याख्यान होता है। बापू का आग्रह है कि डाक्टर दास हिन्दुस्तानी में ही लेक्चर दें।

प्रार्थना के बाद जब मैं अपनी कोठरी में आता हूं तो तीन भाई फिर उस समय मुझसे हिन्दी उर्दू पढ़ने आते हैं। दस बजे सोता हूं। चार बजे फिर उठ जाता हूं। दिन में जब भी अवकाश मिलता है धनुष तकली पर सूत कातता हूं। वह ज़रूरी है। इससे तुम्हें पता चल गया होगा कि मैं दिन भर क्या करता हूं।

यहां की मण्डली सचमुच बड़ी प्यारी है। किसी किसी को शुरू में देखकर बड़ा धोखा होता है। एक *सज्जन बड़े मेहनती और हर जगह काम करते दिखाई* दिये। मैं समझता था शायद थोड़ी सी हिन्दी जानते होंगे। फिर मालूम हुआ कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के एम० एस-सी० हैं। बड़े ख़ामोश और सच्चे काम करने वाले हैं। फ़ैज़ाबाद के रहने वाले हैं और नाम है कृष्णचन्द्र। एक दूसरे सज्जन जो यहां गांव में जाकर काम करते हैं उन्हें भी मैं ऐसा ही समझा था। बाद में मालूम हुआ कि वे नागपुर यूनिवर्सिटी के बी० ए०, एलएल० बी० हैं। ये बुरहानपुर के रहने वाले हैं और नाम है मुन्नालाल।

कई लोग यहां सकुटुम्ब रहते हैं। एक सज्जन बम्बई यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट हैं, विलायत हो आए हैं, गुजरात कालेज के प्रोफ़ैसर रह चुके हैं और कई भाषाओं के विद्वान हैं यहां रहते हैं। एक बार जब इन्हें तपस्या की सूझी तो ५७ दिन उपवास किया और होठ सी लिये। अब बापू की राय से होठ खोलकर दिन भर चरखा कातते और आश्रम और गांव के छोटे छोटे बच्चों को अङ्गरेज़ी हिन्दी वग़ैरह पढ़ाते हैं। इन का नाम भनसाली जी है।

एक दिन सुबह भनसाली जी ग़ुसलख़ाने से नहा कर निकले। मैंने कहा "अगर आप अपना कनस्तर मुझे दे सकें तो मैं इसी से नहाकर आपको लौटा दूंगा।" कहने लगे—"आप मुझे माफ़ करेंगे। यह वह कनस्तर है जो पाख़ाने धोने वग़ैरह के भी काम आता है। मैं इसी से नहा लेता हूं। आपको एतराज़ न हो तो ले लें।" मैंने एक क्षण सोचा और फिर जवाब दिया—"जिससे आप नहा सकते हैं उससे मैं भी नहा सकता हूं।" उनसे कनस्तर ले लिया।

यहां के रहने वालों में मद्रासी, गुजराती, महाराष्ट्र, पेशावरी, पंजाबी, बंगाली, मारवाड़ी, युक्त प्रान्तीय, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी हैं। एक जापानी भी हैं। धनुष तकली को ईजाद करने वाले वह मशहूर पोलिश इञ्जीनियर भी हैं जिन्होंने अपना नाम मारिस फ्रीडमैन से बदल कर भारतानन्द कर लिया है। बड़े सीधे, खद्दर के बड़े विश्वासी और प्रेमी। लेकिन यहां की प्रार्थना में नहीं बैठते। मैंने एक दिन वजह पूछी तो मालूम हुआ उनका विवेक उन्हें बक़ बांधकर बैठने की इजाजत नहीं देता। हैं पक्के आस्तिक। राज कुमारी अमृत कौर भी हैं जो आजकल के अर्थों में भी पूरी सांस्कृतिक हैं। बापू के प्रति उनकी भक्ति और स्नेह सचमुच अगाध है। बहिन अम्तुस्सलाम जो हाल में सिन्ध के मामले में मशहूर हो चुकी हैं मुझे सादगी और त्याग की मूर्ति दिखाई दीं।

मेरी कोठरी के दाहिने तरफ़ बन्नू के रहने वाले एक हिन्दू इञ्जीनियर हैं। विलायत में शिक्षा पाई है और ६५०) रु० मासिक की नौकरी छोड़कर यहां आए हैं। बांई तरफ़ किसी समय के मशहूर क्रान्तिकारी पृथ्वी सिंह जी हैं जिनका सारा समय आजकल बीमारों और कमज़ोरों की मालिश करने में जाता है। श्री अर्जुनलाल जी सेठी के पुराने साथी और मेरे बीस बरस पहले के वर्धा के मेज़बान श्री रामनारायन चौधरी अपने बाल बच्चों समेत यहीं रहते हैं और चरखे खादी में लगे हैं। एक और बंगाली नौजवान, सुरेन्द्रनाथ सरकेल, पढ़े लिखे किसी समय के सज़ायाफ़्ता क्रान्तिकारी हैं। वे सुबह से रात तक शैतान की तरह मुशकिल से मुशकिल मज़दूरी में लगे रहते हैं।

कस्तूर बा, बापू के जीवन की साथी, प्रेम की मूर्ति हैं। उनका त्याग कई अंशों में किसी तरह बापू के त्याग से कम नहीं। हिन्दी वालों ने ज़बरदस्ती उन्हें 'बा' से 'बाई' कर रखा है। आश्रम के व्यवस्थापक श्री चमनलाल हैं। बीस बरस से बापू के साथ हैं। रोज़ मर्रा के व्यवहार में उनसे ज़्यादा अहिंसा का पालन करने वाला मुशकिल से मिलेगा। श्री कृष्ण दास गांधी खादी के विशेषज्ञ हैं। उनसे बढ़कर खादी के विषय में जानने वाला कोई दूसरा नहीं है। खुर्जा के रहने वाले बलवन्त सिंह यहां खेती और गो शाला का काम देखते हैं। बापू उन्हें गायों का प्रतिनिधि मानते हैं। श्री पारनेरकर एग्रिकल्चर के ग्रेजुएट हैं और डेरी के चार्ज में हैं। बापू के सगे भाई के पोते कन्नू गान्धी भी यहां रहते हैं। उमर क़रीब २२ बरस है और अपना एक भी मिनट व्यर्थ नहीं खोते। आन्ध्र के हरिजन युवक श्री प्रभाकर हर समय दूसरों की सेवा में लगे रहते हैं। एक मद्रासी ईसाई श्री आर्यनायकम भी यहां रहते हैं। ये बुनियादी शिक्षा के विशेषज्ञ हैं। इनकी पत्नी श्रीमती आशा आर्यनायकम बंगाली हैं और बड़े अच्छे स्वभाव की हैं। इनके अतिरिक्त श्री अमृत लाल चैटरजी, जो किसी समय जरायम पेशा क़ौमों के जेलर थे, यहां रहते हैं। काफ़ी सख़्तियां करनी पड़ती थीं अब अहिंसा के पुजारी हैं। श्री महादेव देसाई को तो सभी जानते हैं।

बापू जितना काम करते हैं वह सचमुच एक चमत्कार है। कभी कभी रात को दो-तीन बजे जब सब सोते रहते हैं वे ख़त लिखते या लिखाते नज़र आते हैं। अकसर रात को ८-९ बजे तक दिन भर की मेहनत से चूर हो जाते हैं और ख़ून का दबाव उस समय दो सौ से ऊपर पहुंच जाता है। तब डाक्टर ज़बरदस्ती आकर उनका काम बन्द करता है। एक बार शाम को छै बजे दो बङ्गाली सज्जन उनसे बंगाल की परिस्थिति पर कुछ ज़रूर बातें कर रहे थे। बापू उनसे अरविन्द बाबू के आजकल के विचारों के बारे में पूछ रहे थे। बातों में शामकी सैर का वक़्त निकल गया। प्रार्थना की घण्टी बजी। दोनों सज्जनों ने विदा ली। मैंने पूछा—"बापू! आज तो आप सैर को नहीं जायंगे, अब प्रार्थना होगी।" जवाब दिया "नहीं, सैर को ज़रूर जाऊंगा। मैं और कुछ भी काम छोड़ दूं, सैर करना नहीं छोड़ सकता। विलायत में (राउण्ड टेबिल कान्फ्रेंस में) मुझे और वक़्त नहीं मिलता था तो ढाई बजे रात को टहलने जाता था! प्रार्थना के बाद चलूंगा।"

एक दिन शाम को सैर में रास्ते भर बातें होती

रहीं। लौट कर कोई सवा आठ बजे बापू अपने कमरे में गुये। मैं कुछ कर ही रहा था कि एक दम दीवार से लग गए। पहले मुझे हाथ से इशारा किया और फिर कहने लगे—"अब समझ लो बापू नहीं है, मर गया!" मैं घबरा गया। डाक्टर ने इशारा किया। मैं कमरे से बाहर चला आया। ख़ून का दबाव काफ़ी बढ़ गया था। ऐसे अवसर पर बापू को अन्दर से मालूम होने लगता है कि अब 'बस'। रोज़ जान की बाज़ी लगी रहती है। शायद ही दुनिया में कोई दूसरा शख़्स इस तरह काम करता हो। एक दिन मुझसे कहने लगे—"ब्लड प्रेशर बढ़कर फिर घट जाता है, जो किसी दिन न घटे तो बस......" बापू इस तरह कार्य कैसे चला लेते हैं उसके ऊपरी कारण मैं ये समझ पाया हूं—

(१) क़रीब दो मील सुबह और दो मील शाम का टहलना कभी बन्द नहीं होता। बारिश में उतनी ही देर बराम्दे में टहलते हैं। लकड़ी के सहारे या किसी के कन्धे पर हाथ रख कर ही वे टहलते हैं।

(२) टहलते समय बच्चों के साथ हंसते हुए चलते हैं। लेकिन कभी कभी किसी को गम्भीर बातचीत का समय भी दे देते हैं।

(३) सुबह क़रीब ८॥ से ९॥ तक उनके शरीर की तेल की मालिश होती है। मालिश करने वाले अपने हुनर में निपुण हैं। मालिश में कभी कभी पत्र व्यवहार भी करते रहते हैं। कभी कभी मालिश कराते कराते सो लेते हैं।

(४) मालिश के बाद रोज़ गरम टब में लेटकर देर तक स्नान करते हैं! कभी कभी टब में लेटे लेटे भी कुछ सो लेते हैं। जिस दिन इस तरह टब में नींद आ जाय उस दिन बड़े ख़ुश होते हैं।

(५) तीसरे पहर को पेडू पर गीली मिट्टी रख कर कुछ देर तक लेटे रहते हैं। जिस दिन आंखें ज़्यादह थक जाती हैं उस दिन दोनों आंखों पर भी गीली पट्टी रख लेते हैं। इस बीच दूसरों से बातचीत बराबर जारी रहती है। एक दिन मौलाना अबुल कलाम से भी इसी तरह बातें कीं।

ख़ुराक का ख़ास ख़याल रखते हैं और खाने में ख़ूब समय लेते हैं। दूध, कच्चा लहसन, कच्ची प्याज़, कच्ची पत्तियां, साग वग़ैरह सब एक में मिलाकर खाते हैं। खाना चबाने में क़रीब एक घण्टा वक़्त लेते हैं।

(७) गम्भीर से गम्भीर बातों में भी बीच बीच में हंसते और क़हक़हा लगाते रहते हैं। बड़े आदमियों में इतना हंसमुख व्यक्ति दुनिया में बिरला ही होगा।

(८) जहां तक मुमकिन हो बिलकुल खुले मैदान में सोते हैं। गरदन तक कपड़े ओढ़े रहते हैं।

आश्रम के ज़्यादातर लोग हिन्दू हैं किन्तु उनमें किसी में संकीर्णता नहीं है। इनके दिलों में दूसरे धर्म वालों के लिये हित कामना और प्रेम है। सब से भाईचारे
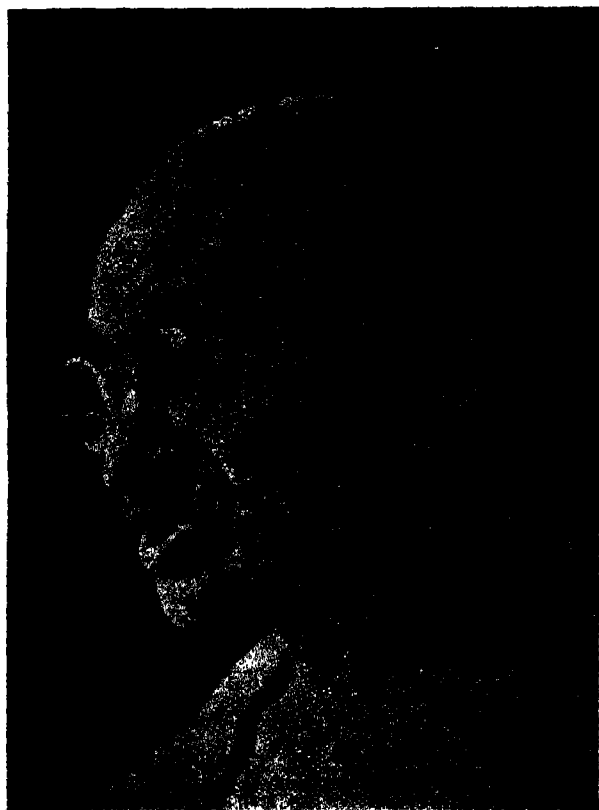
का भाव है और सबकी एक समान सेवा की इच्छा है। इनके मुक़ाबले में कांग्रेस वालों में दूसरा ही रंग है। आजकल की राजनीति और चुनाव के क़ायदों ने अन्दर ही अन्दर अधिकांश कांग्रेस वालों के दिलों को गंदला कर रखा है। ये चुनाव के क़ायदे ढाले ही इस रंग में गये हैं कि हिन्दू मुसलमान दोनों पर जादू चल गया है। लेकिन कांग्रेस वालों पर इस जादू का चलना ज़्यादा दर्दनाक है। मिनिस्ट्रियों के साथ साथ यह रोग ख़ूब बढ़ा। आज गुरू नानक की तरह कहने वालों की कितनी ज़रूरत है जो आकर कहें कि—

ना हम हिन्दू ना मुसलमान,
दोनों बिच बसे शैतान।

इस सम्बन्ध में कई बार बापू से खुलकर बातचीत हो चुकी है। आज तो राम और रहीम के बीच में फ़र्क़ पैदा हो गया है।

यहां की प्रार्थना हिन्दू प्रार्थना की दृष्टि से बड़ी सुन्दर है, किन्तु कम से कम बापू के यहां दुनिया और आशा करती थी। यहां हम ऐसी प्रार्थना देखना सुनना चाहते थे जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख आदि सब एक साथ बैठ सकें। बापू के आंगन में तो सारे विश्व को समाना चाहिये। हर एक को उसमें रस मिलना चाहिये। अगर सचमुच सब धर्म मूल में एक हैं हम सब का परमात्मा एक है और हम सब भाई बहिन हैं तो ऐसी प्रार्थना सम्भव तो होनी ही चाहिये।

बापू ने मुझे बड़े प्रेम और आग्रह के साथ यहां रोक रखा है। कल मौलाना अबुल कलाम ने कलकत्ते से मुझे फ़ोन किया था कि अभी मैं रुकूं और उनके वरधा पहुंचने पर बापू से विस्तृत बातें होंगी। दो महीने मुझे यहां आये हो चुके और कितना रहना पड़ेगा, नहीं मालूम।

अमर वाणी बोल तू

श्री चन्द्रनाथ मालवीय "वारीश"

विश्ववाणी! बोल तू!

(१)

विश्ववासी जाग जायें,
द्वेष औ हिंसा भुलायें;
प्रेम से गूंजें दिशायें,
अमर वाणी! बोल तू!

(२)

दूर हों जग की व्यथायें,
हों रुचिर फिर से कलायें;
हों महत् नव भावनायें,
कल्पना रस घोल तू!

(३)

त्रसित दुख से त्राण पायें,
ज़ुल्म से परित्राण पायें;
ज्ञान औ सम्मान पायें!
द्वार-गौरव खोल तू!!

कुछ अपने विषय में

गुरुजनों के आशीर्वाद और प्रोत्साहन का ही परिणाम 'विश्ववाणी' का यह पहला अङ्क है। गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने हम पर कृपा करके इस पत्रिका का नामकरण किया। 'विश्ववाणी' नाम उन्हीं का दिया हुआ है। उनकी यह कृपा हमारा सौभाग्य है और हम सदा गुरुदेव के साथ विश्ववाणी के इस सम्बन्ध को अभिमान से स्मरण करेंगे। परमात्मा गुरुदेव को चिरायु करे ताकि उनके चरणों के निकट बैठकर हमें अपने लक्ष्य की ओर पहुंचने में प्रकाश मिलता रहे।

विश्ववाणी के सम्पादक ने पिछले बीस बरस में जो कुछ भी सीखा है उसका सारा श्रेय पूज्य पण्डित सुन्दरलाल जी को ही है। उन्हीं के मार्ग प्रदर्शन का परिणाम है कि आज हमने इतना गुरुतर भार लेने का साहस किया है। उन्होंने दया करके विश्ववाणी के मार्ग प्रदर्शन का ज़िम्मा अपने ऊपर लिया है यह विश्ववाणी के पाठकों का सौभाग्य है। सच तो यह है कि गुरुदेव के नामकरण और पण्डित जी के संरक्षण को पाकर विश्ववाणी साहस और उत्साह के साथ अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ सकेगी।

विश्ववाणी के मुख पत्र का चित्र शान्तिनिकेतन के प्रसिद्ध कलाकार आचार्य नन्दलाल बोस का बनाया हुआ है। मास्टर मोशाय ने, जैसा कि नन्द बाबू को शान्तिनिकेतन के आश्रमवासी कहते हैं, इस मुख चित्र में विश्ववाणी का वैज्ञानिक प्रतीक रेखाओं में अंकित करके दिखाया है। कंगूरों से तात्पर्य विश्व से है, तीन गोल रेखायें शक्ति की प्रतीक हैं। छोटी बड़ी धारायें वाणी का रूप हैं—पुण्य धारायें और कलुषित धारायें। विचार धारायें बिन्दु में ही सीमित रहती हैं, फिर शक्ति पाकर एक दायरा बनाकर क्षीण हो जाती हैं। यही इस मुख चित्र का तात्पर्य है। मास्टर मोशाय स्वयं अपनी डिज़ाइन पर कुछ नहीं लिखते अन्यथा इस मुख चित्र पर अधिक प्रकाश पड़ सकता था। हम मास्टर मोशाय की इस कृपा के आभारी हैं।

विश्ववाणी के प्रकाशन का विचार हम पिछले डेढ़ वर्ष से कर रहे थे। इस सम्बन्ध में हमने अपने विदेशी मित्रों को भी लिखा था। अनेक अङ्गरेज़, जर्मन, फ्रेञ्च, तुर्क, चीनी और अमरीकन मित्रों ने हमें अपने सहयोग का विश्वास दिलाया था। इसी बीच यह विश्वव्यापी विनाशकारी युद्ध छिड़ गया। हमें यह तक नहीं मालूम कि हमारे इन कृपालु मित्रों का क्या हश्र हुआ! लड़ाई की समाप्ति पर ही हमें, यदि हमारा सौभाग्य हुआ, तो इन मित्रों के सहयोग से विश्ववाणी को वास्तविक विश्ववाणी बनाने का सुअवसर मिल सकेगा।

देश के विद्वानों और नेताओं से जो अनायास सहयोग हमें प्राप्त हुआ है उससे तो हमें यही मालूम होता है कि जिन विचारों को लेकर हम आगे बढ़ रहे हैं उन्हीं पर देश गम्भीरता से सोच रहा है। हम तो केवल देश की सब से बड़ी आवश्यकता को पूरा करने में अपनी तुच्छ शक्ति से आगे बढ़े हैं। समय ही बतावेगा कि कहाँ तक हमें अपने प्रयत्न में सफलता मिली। हम महात्मा गांधी के इन उद्गारों का समर्थन करते हैं कि 'परिणाम से ही हमारी परीक्षा होगी।'

एक शब्द अपने उन बीसों साथियों से जो बीच ही में हमसे अलग होकर आज जेल की चारदीवारी के भीतर बन्द हैं। यदि वे बाहर होते तो उन्हें विश्ववाणी को इस रूप में देखकर बेहद खुशी होती। उनकी प्रेरणा से और इस अनुमान से कि शायद हम विश्ववाणी के द्वारा देश की आज़ादी की लड़ाई को कुछ थोड़ा बहुत आगे बढ़ाने में हेतु होंगे, आज हम बाहर हैं। वरना हमारी जगह तो अपने उन्हीं सहयोगियों के साथ जेल के भीतर होती। परमात्मा हमें शक्ति और साहस दे ताकि हम अपनी सेवा से जनता के हृदय में घर कर सकें।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद।

फ़रवरी १९४१

संरक्षक—पण्डित सुन्दरलाल

वार्षिक मूल्य ६) | एक अंक का ॥=)

इस अङ्क के प्रमुख लेखक

सारा देश विश्ववाणी के साथ है

विश्ववाणी पर देशव्यापी सम्मतियाँ

विश्ववाणी का देशव्यापी अभिनन्दन

'विश्ववाणी' ने भारत की राजनीति और साहित्य में एक नया अध्याय खोला है। हम अपने आदर्शों की महानता, अपने उद्देश्यों की गम्भीरता और अपने मार्ग के संकटों को खूब समझते हैं। 'विश्ववाणी' अभिमान के साथ जीना चाहती है और ग़ुलामी की ज़िन्दगी से मौत को बेहतर समझती है। यह खुशी की बात है कि सारे देश ने अपूर्व उत्साह के साथ 'विश्ववाणी' का स्वागत किया है। देश के कोने कोने से हमारे पास जो सैकड़ों पत्र और संदेशे आये हैं, उनमें से कुछ संक्षेप में हम पाठकों के सामने पेश कर रहे हैं—

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

'विश्ववाणी' जिस आला मक़सद को लेकर निकली है मुल्क को उसी की बेहद ज़रूरत है। हर हिन्दुस्तानी को इसे पढ़ना चाहिये।

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन

ऐसे महान उद्देश्य को लेकर जिस साहस के साथ आपने 'विश्ववाणी' निकालने का आयोजन किया है मैं उसकी प्रशंसा करता हूं।

सर मिर्ज़ा इस्माइल, दीवान, मैसूर

आला मक़सदों के साथ 'विश्ववाणी' निकालने के लिये शुभकामना।

आचार्य क्षितिमोहन सेन, शान्तिनिकेतन

मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने आपकी पत्रिका का नाम करण किया। 'विश्ववाणी' की सफलता के लिये हम लोग जो कुछ भी कर सकेंगे अवश्य करेंगे।

प्रोफ़ैसर तान-युन-शान, शान्तिनिकेतन

'विश्ववाणी' के उद्देश्यों के साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। मुझसे जो कुछ सेवा हो सकेगी मैं करूंगा।

मौलवी अब्दुल हक़ साहब, दिल्ली

'विश्ववाणी' के आम मज़मून से मुझे पूरी हमदर्दी है। हिन्दी उर्दू दोनों ज़बानों में 'विश्ववाणी' निकलनी चाहिये। ख़ुदा करे 'विश्ववाणी' कामयाब हो।

आचार्य देव शर्मा, गुरुकुल कांगड़ी

'विश्ववाणी' की नीति आदि देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

प्रोफ़ैसर मोहम्मद हबीब, मुसलिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़

'विश्ववाणी' की कामयाबी के लिये मेरी दुआ क़ुबूल कीजिये। मुझसे जो कुछ ख़िदमत हो सकेगी करूंगा।

श्रीमती उमा नेहरू

मैं 'विश्ववाणी' का उसके महान उद्देश्यों के साथ स्वागत करती हूं। मैं उसकी सफलता की कामना करती हूं। 'विश्ववाणी' इस देश और बाहर की विविध संस्कृतियों, विविध धर्म और विविध मानव-आत्माओं की एकता की उपासक है। मुझे विश्वास है 'विश्ववाणी' इस दिशा में सारे देश को रास्ता दिखायेगी।

सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवी सम्पादक 'बाम्बे-क्रानिकल'

'विश्ववाणी' जैसे रिसाले की मुल्क को बेहद ज़रूरत थी। हिन्दू-मुसलिम समस्या के सुलझाने में 'विश्ववाणी' हमें रास्ता दिखायेगी। पण्डित सुन्दरलाल जी आपके पथ प्रदर्शक हैं यह आपका सौभाग्य है।

डाक्टर हीरानन्द शास्त्री, डाइरेक्टर आफ़ आर्कियालाजी, बड़ौदा

'विश्ववाणी' सदा मीठी ही होगी और जनता इसे बड़े चाव से सुनेगी। यह हमें उस पवित्र ध्वनि के श्लोक का स्मरण कराती है, जिसका संकेत ऋग्वेद में है और जिसका मुख्य उद्देश्य संसार को जगाना है।

पण्डित मोहनलाल नेहरू

परमेश्वर आपकी मेहनत सफल करे और आपकी मैगज़ीन लोक प्रिय हो।

सर तेजबहादुर सप्रू

'विश्ववाणी' का पहला नम्बर मिला। शुक्रिया। आज मुल्क में हिन्दू मुसलिम नाइत्तफ़ाक़ी छाई है। 'विश्ववाणी' की आज जितनी ज़रूरत है उतनी कभी न थी।

श्री ई० आर० रेड्डी, वाइस चान्सलर, आन्ध्र यूनिवर्सिटी

बीमारी की वजह से मैं 'विश्ववाणी' के पहले अङ्क के लिये लेख न भेज सका। क्षमा करें। मैं 'विश्ववाणी' की कल्याण कामना करता हूं।

डाक्टर ग़ुलाम सैय्यदैन, डाइरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्सट्रक्शन, काश्मीर

मेरा मुद्दत से यह ख़याल है कि यदि हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे की तहज़ीबी क़दरों का अहसास पैदा करना चाहते हैं, तो ज़रूरत इस बात की है कि मुसलमान हिन्दुओं की तहज़ीब का मुताला करें और उसके रोशन पहलुओं को पेश करें; उसी तरह हिन्दू भी करें। इस वजह से मैं आपकी इस कोशिश का बहुत ख़ुशी और सच्चे दिल से स्वागत करता हूं। मैंने आल इण्डिया एजूकेशन कान्फ्रेंस उदयपुर में अपनी तक़रीर में आपकी 'विश्ववाणी' का ज़िक्र किया था। मैं बराबर 'विश्ववाणी' की सेवा करता रहूंगा।

महाराज कुमार डाक्टर रघुवीरसिंह, सीतामऊ

यह देखकर हर्ष हुआ कि आपने भारतीय संस्कृति की एकता को साबित करने और उसको बढ़ाने का बीड़ा उठाया है। भारत के सम्मुख आज अपनी भावी संस्कृति के स्वरूप को निश्चित करने का एक बहुत बड़ा प्रश्न है। उस प्रश्न को हल करने में 'विश्ववाणी' बहुत सहायता देगी। 'विश्ववाणी' हमारी हिन्दी के ही लिये नहीं बल्कि समस्त भारतीय साहित्य के वास्ते गौरव की वस्तु होगी।

शमशुलउलेमा डा० हिदायत हुसेन, रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल

'विश्ववाणी' के आदर्श ऐसे हैं कि उसका सारे मुल्क में ख़ूब प्रचार होना चाहिये।

आचार्य नरेन्द्रदेव

'विश्ववाणी' देखी। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि हिन्दी में इतनी उच्चकोटि की कोई दूसरी मासिक पत्रिका नहीं है।

डाक्टर के० एम० अशरफ़

'विश्ववाणी' का पहला नम्बर ख़ूब रहा। मुझे यक़ीन है कि 'विश्ववाणी' मुल्क के कोने कोने में फैल जायगी। इसी में मुल्क की बेहतरी है।

प्रोफ़ैसर ए० एन० वाडिया, मैसूर यूनिवर्सिटी

मैं 'विश्ववाणी' के आदर्शों और उद्देश्यों की सराहना करता हूं। 'विश्ववाणी' में लेख लिखकर मुझे ख़ुशी होगी। मैं आपकी इस अनमोल मासिक पत्रिका की सफलता चाहता हूं।

श्री मोहम्मद मिरज़ा, लाइब्रेरियन, जामा मसजिद लाइब्रेरी, दिल्ली

'विश्ववाणी' के प्रकाशन के लिये मुबारकबाद। मैं हर तरह आपकी ख़िदमत के लिये तय्यार रहूंगा।

श्री सीतारामजी सेकसरिया, कलकत्ता

'विश्ववाणी' का पहला अंक बहुत सुन्दर है। हिन्दी में शायद ऐसी पत्रिका अभी तक नहीं निकली। इस उद्योग के लिये आपको बधाई।

प्रो० फ़ैज़ी, सेक्रेटरी, इस्लामिक रिसर्च एशोसियेशन, बम्बई

मुझे हिन्दू-मुस्लिम एकता में बेहद दिलचस्पी है। ख़ुदा आपकी 'विश्ववाणी' को हर तरह की कामयाबी दे।

मौलवी सय्यद हाशमी, एडीटर 'इस्लामिक कलचर', दिल्ली

मुझे यक़ीन है 'विश्ववाणी' सच्ची हिन्दू-मुस्लिम एकता की बुनियाद रखेगी। मैं दिल से आपकी कामयाबी चाहता हूं।

श्री लक्ष्मीकान्त झा, आई०सी०एस०, पटना

'विश्ववाणी' का पहला अंक बहुत ही सुन्दर निकला। सभी लेख उच्चकोटि के हैं। मेरी बधाई स्वीकार कीजिये।

श्री मक़्सूदआलम, कैटलागर, खुदाबख़्श लाइब्रेरी, बांकीपुर

आप के इरादे मुबारक। हर देशभक्त हिन्दुस्तानी आपका हाथ बंटाना अपना फ़र्ज़ समझेगा।

श्री दरबारीलाल 'सत्यभक्त', संस्थापक सत्य-समाज, वर्धा

उपयोगिता के नाते मैं आप की पत्रिका का स्वागत करता हूं। 'विश्ववाणी' के द्वारा नई मानवता का निर्माण होगा।

सैयद इनायत अली, सम्पादक 'नदीम' गया

आप ने एक बड़े नेक मक़सद की तरफ़ क़दम उठाया है; हम आपकी कामयाबी के लिये दिल से दुआ मांगते हैं।

श्री जयनारायण व्यास, मन्त्री अखिल भारतीय देशी राज्य-प्रजा-परिषद, जोधपुर

पण्डित सुन्दरलाल जी के संरक्षण में 'विश्ववाणी' में सदा जीवन की ज्योति जगमगाती रहेगी।

श्री मज़रअली सोख़्ता, 'सेवाकुंज' उन्नाव

'विश्ववाणी' की छपाई सफ़ाई में अजीब सादगी है, जो देखने वाले के दिल पर गम्भीर असर डालती है। इस सादगी में ही 'विश्ववाणी' की भव्यता है।

श्री मदनलाल गाडोदिया, अरविन्द आश्रम, पांडिचेरी

'विश्ववाणी' का उद्देश्य सराहनीय है। 'विश्ववाणी' जनता को अपने सच्चे कर्तव्य कर्म का ज्ञान करायेगी।

महाकवि वल्लतोल (मलयालम) कोचीन

मुझे इसमें ज़रा भी संशय नहीं कि पण्डित सुन्दरलालजी के संरक्षण में 'विश्ववाणी' देश को सच्चा सांस्कृतिक-मार्ग दिखायेगी।

श्री आर० कृष्णमूर्ति, सम्पादक 'कल्कि' मद्रास

'विश्ववाणी' से साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी पूरी होगी। ईश्वर करे 'विश्ववाणी' का देश भर में प्रचार हो।

श्री सत्यनारायण, मन्त्री द० भा० हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास

'विश्ववाणी' की मैं पूर्ण सफलता चाहता हूं। इसके प्रचार में मेरी सेवाएं हमेशा आपके सामने हाज़िर हैं।

प्रोफ़ेसर ए० श्रीनिवास राघवन एम० ए०, मद्रास

मुझे इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि 'विश्ववाणी' देश में सांस्कृतिक पुनर्जीवन का हेतु बनेगी।

प्रोफ़ैसर ए० चन्द्रहासन एम० ए०, महाराजा कालेज, एरनाकुलम

'विश्ववाणी' के महान उद्देश्य हैं। उसे सफलता अवश्य मिलेगी।

पं० वि० कृष्णय्या, प्रिंसिपल हिन्दी-विद्यापीठ, बेजवाड़ा

'विश्ववाणी' के महान आदर्शों की प्रशंसा कर मैं उसका मूल्य घटाना नहीं चाहता। मैं हर तरह 'विश्ववाणी' की सेवा करने को तय्यार हूं।

पण्डित वृजनन्दन शर्मा, द० भा० हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास

आपका यह प्रयास जो अभी हिन्दी में अकेला दीखता है, ज़रूर सफल होगा। हिन्दी में ध्येय को लेकर चलने वाली पत्रिकाओं की बड़ी ज़रूरत है। आपने जो विषय चुना है, उस पर तो और भी अन्धकार छाया है। जिस पत्र पर पण्डित सुन्दरलालजी का बरद हस्त है, उस पत्र का मैं नियमित पाठक और प्रचारक रहूंगा।

श्री रंगनाथ दिवाकर, हुबली, कर्नाटक

'विश्ववाणी' सांस्कृतिक एकता का प्रश्न हाथ में लेकर सामने आई है। हिन्दुस्तान में जो नई चेतना पैदा हुई है, उससे तमस तो हट गया; लेकिन संकुचित भाव लेकर हम झगड़ रहे हैं। हमारी संस्कृति अलग और हमारी भाषा अलग के झगड़े चारों ओर फैले हुए हैं। 'विश्ववाणी' को इसका मुक़ाबला करने में सफलता मिले।

पण्डित हिरण्मय, साहित्यरत्न, मैसूर

'विश्ववाणी' हिन्दी-मासिक-पत्रिका-संसार में एक नवीन युग का निर्माण करेगी।

चि० लक्ष्मीनारायण शर्मा, हिन्दी विद्यालय, तेनाली, आन्ध्र

'विश्ववाणी' का स्वागत है। 'विश्ववाणी' का प्रचार करना मैं अपना कर्तव्य और सौभाग्य समझूंगा।

श्री रघुबरदयालु, मन्त्री, तामिल नाडु हिन्दी-प्रचार सभा, त्रिचिनापल्ली

आपकी आयोजना बड़ी सुन्दर है। हमारे देश के लिए 'विश्ववाणी' के प्रकाशन की बड़ी आवश्यकता थी। हिन्दी-साहित्य की एक बड़ी कमी अब दूर हो गई।

पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी, टीकमगढ़

'विश्ववाणी' का पहला अंक देखा। इस महान प्रयत्न के लिए हार्दिक बधाई।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, जबलपुर

परिस्थितियों से विवश होकर 'विश्ववाणी' में कुछ न लिख सकी माफ़ करना। इसमें सन्देह नहीं 'विश्ववाणी' एक आदर्श पत्रिका है।

आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, शान्तिनिकेतन

'विश्ववाणी' के क़रीब क़रीब सभी लेख पढ़ गया; बहुत अच्छी सामग्री है। 'विश्ववाणी' का भविष्य निस्सन्देह बहुत उज्ज्वल है। शुरू से अन्त तक आपने एक बहुत ही उत्तम मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर', सीतामढ़ी

इतनी उदार भावनाओं के साथ हिन्दी में किसी पत्र के निकालने का प्रयास सर्वथा नूतन और स्तुत्य है। मेरी सहानुभूति पूरी मात्रा में आपके साथ है।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, लाहौर

'विश्ववाणी' का प्रथम अंक बहुत ही अच्छा निकला है। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सारनाथ

'विश्ववाणी' का पहला अंक मिला। हिन्दी के दूसरे मासिक पत्रों को देखकर यह सोचता हूं कि कौन सा लेख पढ़ूं; किन्तु 'विश्ववाणी' को देखकर, सोचता हूं कि इसमें कौन सा लेख छोड़ने लायक है। कुछ भी छोड़ने लायक नहीं है। सभी लेख ऊंचे दर्जे के हैं।

डा० दुर्गाप्रसाद पाण्डे, पी० एच-डी०, पटना

'विश्ववाणी' की पहिली पुकार इतनी व्यापक और सर्वतोमुखी हो सकती है, तो मुझे पूरा विश्वास है कि इससे हिन्दी भाषा-भाषी जनता को सदा जीवन और जागृति के नये नये सन्देश मिलते रहेंगे। आपकी पत्रिका के आदर्श और आप लोगों के प्रयत्न स्तुत्य हैं।

श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द, बनारस

पण्डित सुन्दरलाल जी के संरक्षण में 'विश्ववाणी' निकली है। वह अपने उद्देश्य को अवश्य पूरा करेगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि आपका उद्योग सफल हो।

श्री जनार्दनराय नागर, उदयपुर, मेवाड़

'विश्ववाणी' सदा महान वाणी रहेगी।

कविवर श्री सोहनलाल द्विवेदी, लखनऊ

जितने अच्छे लेख मुझे 'विश्ववाणी' में पढ़ने को मिले, उतने हिन्दी के अन्य मासिक पत्रों में दुर्लभ हैं। बधाई।

श्री ज्वालाप्रसाद ज्योतिषी, बी० ए०, सागर

'विश्ववाणी' का प्रथम अंक देखा। बहुत सुन्दर चीज़ है। 'विश्ववाणी' राष्ट्र को एक नई स्फूर्ति और नई चेतना देगी।

श्री नर्मदाप्रसाद खरे, जबलपुर

आपकी 'विश्ववाणी' के द्वारा हिन्दी गौरवान्वित होगी।

आचार्य धर्मदेव शास्त्री, देहरादून

जिस पत्र के संरक्षक पण्डित सुन्दरलाल जी हों, उसकी उपयोगिता और सफलता असन्दिग्ध है।

श्री रामनारायण यादवेन्दु, बी० ए०, एल-एल बी०, आगरा

इसमें सन्देह नहीं कि 'विश्ववाणी' हिन्दी भाषा की आदर्श और सर्व श्रेष्ठ पत्रिका बनेगी।

श्री शंकरदेव विद्यालंकार, गुरुकुल सूपा, गुजरात

'विश्ववाणी' के प्रकाशन से बड़ा हर्ष और परितोष हुआ। आपके पावन अनुष्ठान का मैं अभिनन्दन करता हूं। 'विश्ववाणी' हिन्दी-साहित्य के पत्रिका क्षेत्र में नवीन स्फूर्ति, नूतन चेतना और नव-प्रेरणा प्रदान करेगी। सचमुच बड़े दिनों के बाद हिन्दी में एक बढ़िया पत्रिका के दर्शन हुए।

पण्डित सत्यदेव विद्यालंकार, सम्पादक 'हिन्दुस्तान', दिल्ली

'विश्ववाणी' का पहला अङ्क बहुत ही सुन्दर रहा। मैं हर तरह आपके काम में हाथ बटाऊंगा।

सुश्री महादेवी वर्मा, प्रयाग

'विश्ववाणी' का ध्येय महत है। मेरा सहयोग आपके पत्र को सुलभ ही रहेगा।

पं० रामलाल पांडेय, सम्पादक 'आईने अकबरी,' कानपुर

आप धन्य हैं जो 'विश्ववाणी' द्वारा एकतामृत बरसा कर विश्वव्यापी कलहाग्नि को शान्त करने के लिये सचेष्ट हुए हैं। ईश्वर आपके पवित्र उद्देश्य को सफल करें।

श्री जैनेन्द्र कुमार, दिल्ली

मैं हर तरह आपसे सहमत हूं। मैं 'विश्ववाणी' के लिये जो कुछ कर सकूंगा ज़रूर करूंगा। मेरा पूरा सहयोग आपको मिलेगा।

डाक्टर महदी हुसेन, आगरा

जो महान काम आपने शुरू करने का इरादा किया है, उस पर मैं आपको मुबारकबाद देता हूं। मैं अपने लेख आपको भेजता रहूंगा।

प्रोफ़ेसर एम० ए० शुस्तरी, मैसूर

मैं इस नए हिन्दी मासिक पत्र का स्वागत करता हूं। ऐसे पत्र की देश को बहुत ज़्यादा ज़रूरत थी। यह बिखरे हुए विचारों को एकत्र करके उन्हें जोड़ेगा। समाज के सब अंगों का यह प्रतिनिधि होगा और भारत के हित को सम्पूर्ण मानव समाज के हित की दृष्टि से देखेगा। मैं कल क्वेटा के रास्ते तेहरान जा रहा हूं। ईरान से लौटकर 'विश्ववाणी' को देखकर मुझे प्रसन्नता होगी।

कविवर सियारामशरण गुप्त, चिरगांव

'विश्ववाणी' जिस उद्देश्य और ध्येय को लेकर उदित हो रही है, वह अत्यन्त स्तुत्य है। मेरी शुभ-कामना बराबर उसके साथ रहेगी।

डाक्टर मो० हफ़ीज़ सय्यद, प्रयाग

महान आदर्शों वाली 'विश्ववाणी' के प्रकाशन के लिये आपको बधाई है।

कमला देवी चौधरी, मेरठ

'विश्ववाणी' के उद्देश्य की मैं समर्थक और प्रशंसक हूं। ऐसे पत्र की हमारे राजनैतिक जीवन और साहित्यक जीवन को विशेष आवश्यकता थी।

उर्दू के प्रसिद्ध कवि पं० आनन्द नारायण मल्ला, लखनऊ

मुझे विश्वास है 'विश्ववाणी' उन हिन्दी पत्रिकाओं में से होगी, जो दूसरों के नुक्तेनज़र को ध्यान में रखते हुए अपनी बात पेश करेगी और इस तरह वह सच्ची हिन्दुस्तानी ज़बान और साहित्य बनाने में सफल होगी।

प्रोफ़ैसर अहमदअली, लखनऊ

'विश्ववाणी' की अरसे से ज़रूरत थी। मैं इसकी सफलता चाहता हूं। मैं हर तरह 'विश्ववाणी' की सेवा करूंगा।

श्री गजानन मुक्तिबोध, उज्जैन

'विश्ववाणी' के प्रकाशन का उद्योग सचमुच महान है और आज कल उसकी बहुत ज़रूरत है। हमारे साहित्य में, विचारों और कला के जगत में, जो अराजकता फैली हुई है, वह तब तक दूर नहीं हो सकती, जब तक सच्चे आदर्शवादी संगठित न हों।

श्री के० जगन्नाथ, सम्पादक 'कलैमगल', मद्रास

परमात्मा आपके मासिक 'विश्ववाणी' की बड़ी उम्र करे। मैं 'कलैमगल' का विशेषांक निकालने में व्यस्त था इसलिये आपको लेख न भेज सका। क्षमा कीजियेगा। 'विश्ववाणी' के लिये लेख लिखना तो एक बहुत बड़ा सौभाग्य है। मैं अपना लेख शीघ्र ही भेजूंगा।

श्रीमती हाजरह बेगम, लाहौर

'विश्ववाणी' का पहला नम्बर देखा। बहुत ख़ूब रहा। कोशिश कीजिये कि उर्दू वाले भी 'विश्ववाणी' के ऐसे अच्छे मज़मूनों से महरूम न रहें। मैं अपना लेख आपको भेज रही हूं।

कविवर मैथिलीशरण गुप्त, चिरगांव

'विश्ववाणी' सुन्दर निकली। आप जिस ऊंचे उद्देश्य को लेकर बढ़े हैं इसके अनुरूप शक्ति और साहस प्रभु आपको दें और आप सफलता प्राप्त करें। मेरी शुभकामनाएं स्वीकार कीजिये।

पंडित सुन्दरलाल जी, सेवागांव (वर्धा)

'विश्ववाणी' ख़ासी अच्छी निकली है। मुझे पूरा विश्वास है तुम उसे सफलता के साथ चला ले जाओगे और देश को सच्ची तरक़्क़ी की राह पर बढ़ाने के लिये उसे उपयोगी बना सकोगे। मुझे विश्वास है कि 'विश्ववाणी' हज़ारों आदमियों का मार्ग प्रदर्शन करेगी।

लेखकों, एजेण्टों, और ग्राहकों के पचासों पत्र 'विश्ववाणी, की प्रशंसा में आये हैं, जिन्हें स्थानाभाव के कारण हम देने में असमर्थ हैं।

विषय-सूची

फरवरी १९४१

छत्रपति शिवाजी

From an old painting in the Bibliotheque Nationale, Paris
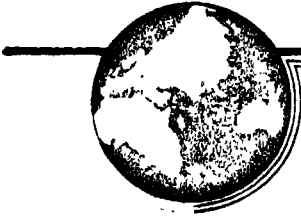
संरक्षक—
पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक—
विश्वम्भरनाथ

वर्ष १ | फ़रवरी, १९४१ | अङ्क २

उदार मराठा नरेश

रावबहादुर श्री गोविन्द सखाराम सरदेसाई

महज़ इतिहास की पुरानी घटनाओं के आधार पर किसी क़ौम की उन्नति या उसकी अवनति के कारणों को समझ सकना बहुत मुशकिल बात है। हर शख़्स अपनी तरह से इसके अलग अलग अन्दाज़े लगायेगा। यह मैं इसलिये कह रहा हूं कि मराठा शासकों की नीति को मैंने जिस रोशनी में देखा है उसी को मैं यहां पेश कर रहा हूं।

यदि एक दूसरे को काटती हुई कई रायें हमारे सामने आएं, तो इतिहास के विद्यार्थी की हैसियत से हमें हक़ और न्याय का फ़ैसला ही देना होगा। मैं इसलिये मराठों का तरफ़दार नहीं बनना चाहता चूंकि मैं भी मराठा हूं। यदि मैं मराठों की अच्छी बातों और उनकी उन्नति का ज़बरदस्त प्रशंसक हूं, तो मैं उनकी कमज़ोरियों और उनकी कमियों को बुरा कहने में भी नहीं चूकता। 'हिन्दू पद पादशाही' और 'हिन्दू साम्राज्य' इन शब्दों ने अलग अलग लोगों पर अलग अलग असर डाला। इतिहास के विद्यार्थियों को मुझे यह बताना है कि इन शब्दों का कितना बेजा प्रयोग किया गया है।

मैं यह मानता हूं कि मराठों ने, जिनमें छत्रपति शिवाजी भी शामिल थे, भारत में हिन्दू पद पादशाही के निर्माण का प्रयत्न किया, किन्तु उनका लक्ष्य राजनैतिक से अधिक धार्मिक था। न शिवाजी को और न पेशवाओं को ही इस बात का कभी ख़याल हुआ कि दिल्ली के तख़्त पर कोई हिन्दू सम्राट बैठे। वे मुसलमान शासकों से केवल पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता का ही दावा पेश करते थे। उन्हें तब तक इस बात की परवाह नहीं थी कि दिल्ली के तख़्त पर कौन शासन कर रहा है, जब तक उनके धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न होता था।

शिवाजी को अपनी जन्मभूमि स्वतन्त्र करने में ही सन्तोष था। औरंगज़ेब के नाम अपने मशहूर पत्र में शिवाजी ने अपने सिद्धान्तों का ज़िक्र किया है और बाद के पेशवा अपने व्यवहार में शिवाजी के क़ायम

किये हुए सिद्धान्तों पर ही चले। पेशवाओं को ऐसे अनेक अवसर मिले जबकि यदि वह चाहते, तो दिल्ली के तख़्त पर हिन्दू सम्राट को बैठा सकते थे। कम से कम १७५४ ईसवी और १७५९ ईसवी में तो वे यह बड़ी आसानी से कर सकते थे। सन् १७७१ ईसवी में जबकि मराठों की सत्ता अपने शिखर पर थी, पेशवा माधोराव ने सम्राट शाह आलम को रक्षा का वचन दिया और उसे दिल्ली के तख़्त पर फिर से बैठाया। यदि पेशवा माधोराव उस वक्त चाहता, तो वह शाह आलम की जगह आसानी से किसी हिन्दू को दिल्ली के तख़्त पर बैठा सकता था। महाद जी सींधिया ने जब विद्रोही ग़ुलाम क़ादिर को परास्त किया, तो दिल्ली की सत्ता उसकी मुट्ठी में आ गई और अगर उस वक्त वह चाहता, तो दिल्ली में हिन्दू हुकूमत क़ायम कर सकता था। महाद जी को इसी में सन्तोष रहा कि मुग़ल सम्राट ने गोवध के विरुद्ध और ज़्यादह कड़ा फ़रमान जारी कर दिया और मथुरा, प्रयाग, काशी, गया आदि धार्मिक स्थानों की हुकूमत और इन्तज़ाम का अधिकार मराठों के हाथों में दे दिया।

यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि मराठों को राजनीति और धर्म का व्यवहार-ज्ञान न था। वे यह नहीं समझ पाए कि राजनीति और धर्म अलहदा नहीं किये जा सकते। आजकल भी हिन्दू मुसलिम प्रश्न को हम महज़ धार्मिक या महज़ राजनैतिक उपायों से हल नहीं कर सकते। पेशवाओं ने अपने लगभग सौ वर्ष के शासन में अनगिनती पत्र अपने नायबों और सरदारों को लिखे हैं और उन्हें इस बात की हिदायत दी है कि सिवाय तीर्थ स्थानों का प्रबन्ध करने के वे मुसलिम शासन में किसी तरह का हस्तक्षेप न करें।

मराठों को न तो मुसलमानों के धर्म से किसी तरह का झगड़ा था और न उनके सम्प्रदाय से। मराठे मुसलमानों के धार्मिक रस्मरिवाज और उनके धार्मिक त्योहारों में किसी तरह का दख़ल न देते थे। वे इसलाम की उतनी ही इज़्ज़त करते थे जितनी अपने धर्म की।

शिवाजी क़ुरान मजीद की उतनी ही क़द्र करता था, जितनी उसके दिल में अपने धर्म-ग्रन्थों की थी। शिवाजी के धर्म गुरुओं में यदि एक समर्थ गुरु रामदास थे, तो दूसरे गुरु केलाशी के बाबा याक़ूत भी थे। शिवाजी का प्रधान जल-सेनापति इब्राहीम ख़ां नामक एक मुसलमान था। आगरे के क़िले से शिवाजी के जिस नौकर ने शिवाजी के भाग निकलने में सहायता देकर अपनी जान को जोखिम में डाला, वह एक मुसलमान फ़र्राश था। कई बरसों तक हैदर नामक एक विश्वस्त और योग्य मुसलमान शिवाजी का प्राइवेट सेक्रेटरी रहा। बाद को इसी मुल्ला हैदर को उसकी ईमानदारी और न्याय प्रियता के कारण सम्राट औरंगज़ेब ने दिल्ली का प्रधान क़ाज़ी यानी न्यायाधीश मुक़र्रर किया।

अपने मुसलमान विरोधियों के साथ पेशवा भी यही नीति बरतते रहे। पानीपत के मैदान में मराठों के प्रधान सेनापति सदाशिव राव भाऊ को, जबकि सम्पूर्ण नाश सामने दिखाई दे रहा था, अपने प्रधान तोपची इब्राहीम ख़ां गर्दी पर पूरा विश्वास था। अहमद शाह अब्दाली ने इब्राहीम ख़ां को हर तरह का लोभ दिया, मगर वह वफ़ादार तोपची अपने स्वामी मराठों के साथ सच्चा और ईमानदार रहा। जब तक उसके प्राण में प्राण रहे, उसकी तोपें अफ़ग़ान सेनाओं का भयंकर संहार करती रहीं। दिल्ली सम्राट के वज़ीर, दोनों ग़ाज़ीउद्दीन कई मराठा सरदारों की मित्रता का अभिमान करते थे। उस ज़माने में अपनी भारत भूमि की सेवा में जिन हिन्दू मुसलमानों ने मिलकर एक उद्देश्य और एक हित के लिये जिस प्रेम और आपसी विश्वास का परिचय दिया, उनकी मिसालें इतिहास में भरी पड़ी हैं। महान सम्राट अकबर, सन्त कबीर और गुरु नानक, अबुल फ़ज़ल और फ़ैज़ी आदि अनेक सन्त और राजनीतिज्ञों ने भारतवासियों के सामने एकता और प्रेम का सुन्दर आदर्श उपस्थित किया। इस तरह हिन्दू मुसलमानों ने मिलकर भारत के बीते हुए गौरव की रचना की थी और अब भी हिन्दू और मुसलमान फिर से एक

मराहठों को करदेने वाले राज्य
पेशवा का राज्य
गायकवाड़
भोंसला
सीन्धिया
होल्कर
कोल्हापुर
धार
मराहठों से अलग स्वतन्त्र राज्य
अंग्रेजी राज्य
अवध
उड़ीसा
इलाहाबाद
हैदराबाद
जयपुर
कोटा
इन्दौर
पूना
गोदावरी नदी
नर्मदा नदी
सोन नदी
घाघरा नदी
गंगा नदी
सिन्ध नदी
ब्रह्मपुत्र नदी
महानदी
जैसलमेर
३०
२५
२०
१५
७०
७५
८०
८५
९०
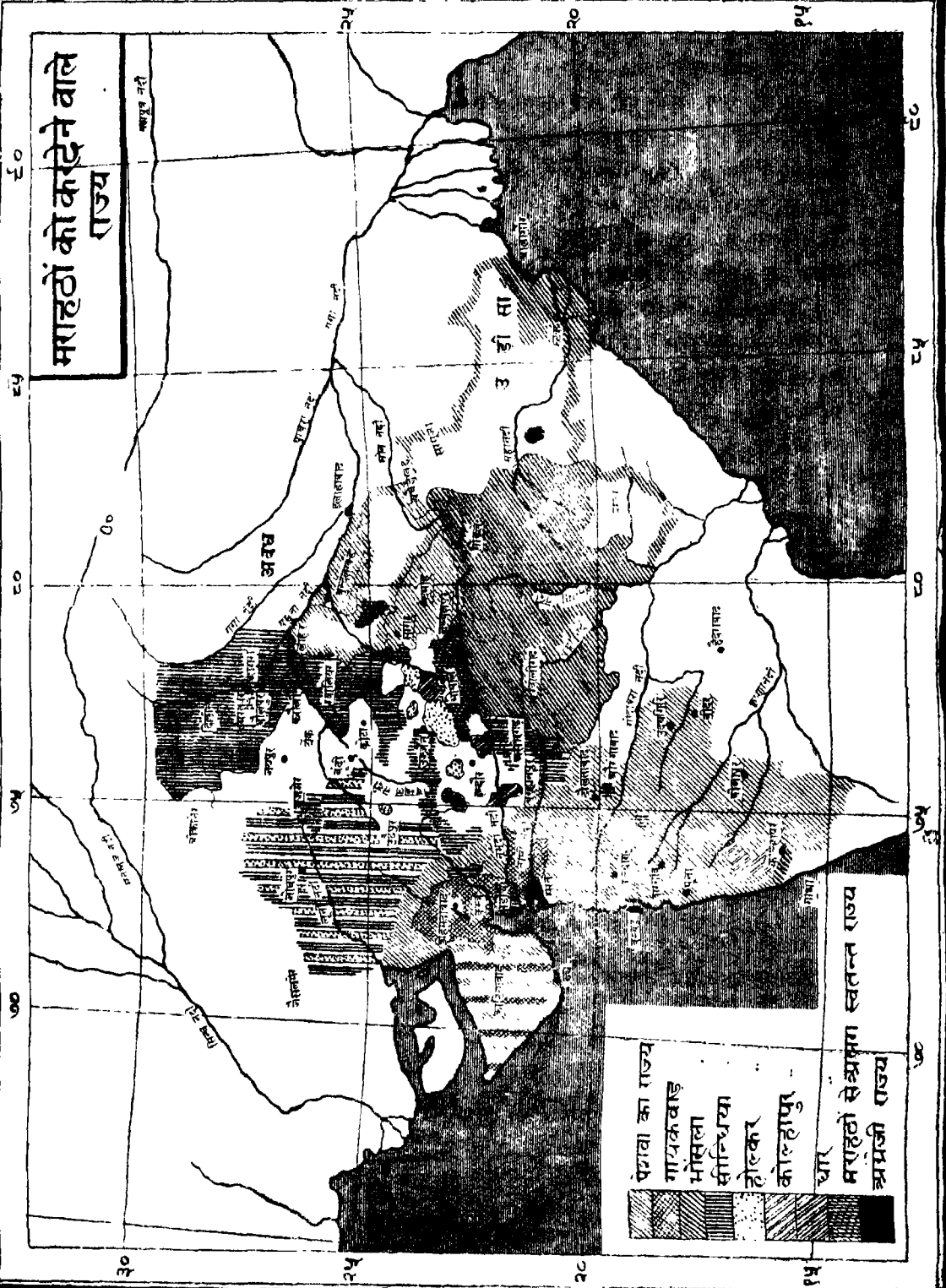
बार यदि उसी एकता और विश्वास को अपने दिल में जगह दें, तो वे अपने देश को दोबारा गौरव के शिखर पर पहुँचा सकते हैं। अपने प्यारे देश के लिये मिलकर वे कैसी कैसी आश्चर्यमय बातें कर सकते हैं।

हम अपने अज्ञान के कारण यह नहीं समझते कि इतिहास यदि सही तरीक़े से पेश किया जाय तो उससे देश को कितना और क्या क्या लाभ हो सकता है। इतिहास कोई अमिट पत्थर की लकीर नहीं है। इतिहास समय समय पर बदलता रहता है और अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाता रहता है। एक प्रमुख दार्शनिक इतिहास के कर्तव्य पर लिखता है—

"इतिहास को समय समय पर नए रंग रूप में पेश करने की आवश्यकता होती है। इसलिये नहीं कि बीती हुई घटनाओं के कुछ नए पहलू सामने आते हैं, न इसलिये कि कुछ नई खोजों का पता चलता है, बल्कि इसलिये कि दुनिया के हर दौर में जो लोग शरीक होते हैं, उनके अपने दृष्टिकोण और अपनी आवश्यकताएं होती हैं और इतिहास का फ़र्ज़ है कि वह उस दृष्टिकोण का समर्थन करे और उनकी आवश्यकताओं को पूरा करे। इसी दृष्टिकोण से बीती हुई घटनाओं की नई जांच पड़ताल ज़रूरी होती है। इस हमेशा बदलने वाली दुनिया में, राष्ट्र में भी जो उलटफेर होते हैं और नई समस्याएं पैदा होती हैं, इतिहास का यह फ़र्ज़ है कि उन समस्याओं के लिये हल बताए।" *

* छत्रपति शिवाजी की मृत्यु के क़रीब ७५ साल के अन्दर १८ वीं सदी के मध्य में मराठों की सत्ता अपने शिखर को पहुंच चुकी थी। मुग़ल साम्राज्य उस समय अत्यन्त जर्जर हालत में था और दो सौ साल से ऊपर के उस पुराने साम्राज्य के खंडहरों में से उत्पन्न होकर मराठों का साम्राज्य एक बार समस्त भारत पर फैलता हुआ मालूम होता था। स्वयं दिल्ली और दिल्ली का सम्राट दोनों मराठों के हाथों में थे। रघुनाथ राव की मराठा सेना राजधानी से आगे बढ़ कर लाहौर विजय कर चुकी थी और पराजित अफ़ग़ान सेना को अटक के पार भगा कर पंजाब का सूबा मराठा साम्राज्य में शामिल कर चुकी थी।

बालाजी बाजीराव पेशवा की मसनद पर था। पेशवा के अलावा मराठा साम्राज्य के चार मुख्य स्तम्भ यानी 'महाराष्ट्र मण्डल' के चार मुख्य सदस्य, सींधिया, होलकर, गायकवाड़ और भोंसला थे। ये चारों चार बड़े बड़े राज्यों के स्वतंत्र शासक थे, किन्तु सब पेशवा को अपना अधिराज मानते थे। उसे बराबर ख़िराज देते थे और हर लड़ाई में आज्ञा मिलने पर अपनी सेनाओं सहित पेशवा की सहायता के लिए हाज़िर हो जाते थे। पहले पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली सम्राट फ़र्रुख़सीयर के दरबार में हाज़िर होकर प्रसिद्ध देश हितैषी भाइयों सय्यद अब्दुल्ला और सय्यद हुसैनअली की मदद से सम्राट से मराठा राज के लिए 'स्वराज' का परवाना हासिल किया। सम्राट ने फ़रमान जारी कर दिया कि इस मराठा 'स्वराज' के अलावा दक्खिन के सूबेदार के बाक़ी तमाम इलाक़ों पर भी मराठों को 'चौथ' मिला करे। पेशवा ने सम्राट की वफ़ादारी की क़सम खाई और अपनी सेना द्वारा साम्राज्य की रक्षा करते रहने का वादा किया। रघुनाथ राव ने दिल्ली सम्राट ही के नाम पर अफ़ग़ानों से पंजाब विजय किया और जिस मराठा सरदार को वहां की हुकूमत सौंपी उसे 'दिल्ली सम्राट' का एक सूबेदार कहकर नियुक्त किया।

सम्राट शाह आलम सानी की एक फ़ारसी कविता आज दिन तक प्रसिद्ध है—

"माधोजी सींधिया फ़र्ज़न्द जिगर बन्देमन,
हस्त मसरूफ़ तलाफ़ीए सितमगारिए मा।"

अर्थात्—"माधोजी सींधिया, जो मेरे जिगर का टुकड़ा और मेरा बेटा है, मेरे दुःखों को दूर करने में लगा हुआ है।"

—सम्पादक

साम्प्रदायिकता

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

धर्म का तत्व तो यह है कि वह मानव जाति पर ईश्वरोपासना और सदाचरण के मार्ग खोल दे। ईश्वर के इस नियम को घोषित करदे कि संसार की अन्य वस्तुओं की तरह मनुष्य के कर्मों के भी अलग अलग गुण और अलग अलग फल होते हैं। अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है। परन्तु लोग इस सचाई को तो भूल गये और धर्म की असलियत केवल वंशों, जातियों, देशों और तरह तरह के रीति रिवाजों को ही समझ बैठे। नतीजा यह हुआ कि मनुष्य की मुक्ति और उसके कल्याण का मार्ग यह नहीं समझा जाता कि उसका विश्वास या उसके कर्म कैसे हैं; बल्कि सारा दारमदार इस पर आगया कि कौन किस विशेष जत्थे या सम्प्रदाय में शामिल है और कौन नहीं है। अगर एक आदमी किसी ख़ास मज़हबी गिरोह में शामिल है, तो यह विश्वास किया जाता है कि उसे मुक्ति मिल गई और उसने धार्मिक सत्य प्राप्त कर लिया। अगर वह शामिल नहीं है तो विश्वास किया जाता है कि मुक्ति का द्वार उसके लिये बन्द है। मानो साम्प्रदायिकता और दल बन्दी ही धर्म की सचाई, अन्त समय की मुक्ति और सत्य तथा असत्य की कसौटी है। विश्वास और कर्म कोई चीज़ ही नहीं रहे। यद्यपि समस्त धर्मों का लक्ष्य एक ही है, और सब एक ही विश्वम्भर प्रभु के उपासक हैं, तथापि प्रत्येक सम्प्रदाय का यही विश्वास है कि धर्म की सचाई सिर्फ़ उसी के पल्ले पड़ी है और बाक़ी सारे मनुष्य उससे वञ्चित हैं। प्रत्येक धर्म का अनुयायी दूसरे धर्मों के विरुद्ध घृणा और पक्षपात की शिक्षा देता है और संसार में ईश्वरोपासना और धर्म का मार्ग सर से पैर तक ईर्षा और द्वेष, घृणा और बर्बरता, हत्या और रक्तपात का मार्ग होगया है।

धर्म का लक्ष्य तो ईश्वरोपासना और नेक काम था, धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष का नाम नहीं था। कोई भी मनुष्य, चाहे वह किसी वंश या जाति का क्यों न हो, और किसी भी नाम से पुकारा जाता हो, अगर वह ईश्वरनिष्ठ और सदाचारी है, तो वह ईश्वरीय पथ का पथिक है और उसे मुक्ति प्राप्त होगी। क़ुरान मजीद में लिखा है—"**बला, मन अस्लम वजहहू लिल्लाहे व होव मुहसिन**। यानी कोई भी व्यक्ति, किसी भी वंश, जाति या सम्प्रदाय का क्यों न हो, यदि उसने परमात्मा के सम्मुख भक्तिभाव से सर झुकाया और सदाचार का जीवन व्यतीत करना स्वीकार कर लिया, तो उसने मुक्ति और कल्याण प्राप्त कर लिया, उसके लिये कोई खटका अथवा ग़म नहीं है। क़ुरान में यहूदियों और ईसाइयों के परस्पर झगड़ों पर लिखा है—

"और यहूदियों ने कहा कि ईसाइयों का धर्म कुछ नहीं है। इसी तरह ईसाइयों ने कहा कि यहूदियों के पास क्या धरा है? हालाकि दोनों ईश्वरीय ग्रन्थ पढ़ते हैं और दोनों के धर्म का उद्गम स्थान एक ही है। ठीक ऐसी ही बातें वे लोग करते हैं, जो धर्मग्रन्थों का ज्ञान नहीं रखते।" सू० २, आ० ११३।

धार्मिक गिरोह बन्दी का परिणाम यह हुआ कि एक दूसरे को झूठा कहनेवाले जत्थे क़ायम होगये। प्रत्येक जत्था दूसरे जत्थे को झुठला रहा है और हर

जत्था सिर्फ़ अपने को ही मुक्ति और कल्याण का ठेकेदार समझता है।

प्रश्न यह है कि जब धर्म एक होने के स्थान पर अगणित जत्थों और सम्प्रदायों में बंट गया और हर जत्था केवल अपने को ही सच्चा और बाक़ी सबको झूठा बतलाने लगा, तो अब इस बात का फ़ैसला कैसे हो कि वास्तव में सत्य कहां है। क़ुरान कहता है कि वास्तविक सत्य तो सबके पास है, किन्तु व्यवहार में सबने उसे खो रखा है। सबको एक ही धर्म की शिक्षा दी गई थी और सबके लिये एक ही विश्वव्यापी आदेश था; लेकिन सबने वास्तविक तत्व को नष्ट कर दिया और ईश्वरीय पथ पर मिल जुल कर रहने के स्थान पर अलग अलग गिरोहबन्दियां कर लीं। अब प्रत्येक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से लड़ रहा है और समझता है कि मुक्ति और कल्याण मेरी ही पैतृक सम्पत्ति है, दूसरों का इसमें कोई हिस्सा नहीं। क़ुरान में लिखा है—

"उससे बढ़कर अन्यायी और कौन हो सकता है, जो परमात्मा के उपासना-मन्दिरों में किसी को परमात्मा के स्मरण और कीर्तन करने से रोके, अथवा उन मन्दिरों के नष्ट करने का प्रयत्न करे? जो लोग ऐसे ज़ुल्म और उपद्रव करते हैं वे वास्तव में इस योग्य नहीं हैं कि परमात्मा के मन्दिरों में पैर भी रखें। स्मरण रखो, ऐसे आदमियों को इस लोक में अपकीर्ति और परलोक में महान यंत्रणा भोगनी पड़ेगी।" —सू० २ आ० ११४।

विविध धर्मों की इस गिरोहबन्दी का परिणाम यह हुआ कि परमात्मा के उपासना-मन्दिर तक अलग अलग हो गये। यद्यपि सब धर्मों के अनुयायी एक ही परमात्मा के मानने वाले हैं, तथापि यह सम्भव नहीं कि एक धर्म का अनुयायी दूसरे धर्म वालों के बनाये हुये उपासना-मन्दिर में जाकर परमात्मा का नाम ले सके। इतना ही नहीं, बल्कि प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग केवल अपने ही उपासना-मन्दिर को ईश्वर की उपासना का स्थान समझते हैं और दूसरे सम्प्रदायों के उपासना-गृहों का उनकी नज़रों में कोई आदर ही नहीं। यहां तक कि लोग कभी कभी धर्म के नाम पर दूसरों के उपासना-गृहों को नष्ट भ्रष्ट तक कर डालते हैं। क़ुरान कहता है इससे बढ़कर अन्याय मनुष्य और क्या कर सकता है कि ख़ुदा के बन्दों को उसकी पूजा करने से रोके, और केवल इसलिये रोके कि वे किसी दूसरे सम्प्रदाय में शामिल हैं, या किसी उपासना-गृह को केवल इसलिए गिरादे कि वह हमारा नहीं बल्कि दूसरे सम्प्रदाय वालों का बनवाया हुआ है। क्या तुम्हारे गढ़े हुये सम्प्रदायों की भिन्नता से परमात्मा भी भिन्न भिन्न हो गया? क्या एक सम्प्रदाय का बनवाया हुआ उपासना-गृह परमात्मा का उपासना-मन्दिर है, और दूसरों का बनवाया हुआ उपासना-गृह परमात्मा का मन्दिर नहीं है?

क़ुरान परमात्मा के बनाये हुये इस नियम का ऐलान करता है कि "जिस किसी ने भी अपने कर्मों से बुराई कमाई उसका फल बुरा है, और जिस किसी ने भी भलाई कमाई उसका फल अच्छा है।" जिस तरह संखिया खाने से खानेवाला मर जाता है, चाहे वह किसी सम्प्रदाय का हो और दूध पीने से स्वस्थ और पुष्ट होता है, चाहे पीनेवाला किसी भी वंश, जाति या सम्प्रदाय का क्यों न हो; इसी तरह अन्तर्जगत में भी प्रत्येक कर्म का एक गुण विशेष है, जो कर्म करने वाले के जन्म, जाति या सम्प्रदाय विशेष के कारण बदल नहीं सकता। क़ुरान में लिखा है—

"जो कोई भी बुराई करेगा उसका फल उसे भोगना होगा। उस समय न तो किसी की मित्रता ही उसे ईश्वरीय कोप से बचा सकेगी और न किसी की सहायता।" सू० ४ आ० १२३।

इन धार्मिक दलबन्दियों के ही परिणाम स्वरूप हर गिरोह वाला यह समझता है कि सच्चाई और ईमानदारी की जो कुछ भी आज्ञायें ईश्वर ने दी हैं, वे इसलिये नहीं हैं कि सब मनुष्यों के साथ सच्चाई और ईमानदारी का व्यवहार किया जाय, बल्कि केवल इसलिये हैं कि अपनी सम्प्रदाय वालों के साथ कोई बुराई न की जाय। लोग कहते हैं कि अगर कोई व्यक्ति हमारा सहधर्मी नहीं है, तो हमारे लिये उचित है कि हम जिस तरह भी चाहें उससे फ़ायदा उठावें,

सच्चाई और ईमानदारी के नियमों को ध्यान में रखने की हमें कोई आवश्यकता नहीं। ऐसा विश्वास रखना परमात्मा के धर्म पर प्रत्यक्ष झूठ थोपना है। ईश्वर का बताया हुआ धर्म तो यह है कि हर व्यक्ति के साथ नेकी करनी चाहिये और हर अवस्था में सच्चाई से काम लेना चाहिये। चाहे कोई भी व्यक्ति हो और किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का क्यों न हो, सफ़ेद हर हाल में सफ़ेद है और काला हर हाल में काला है। कोई सफ़ेद वस्तु इसलिये काली नहीं हो सकती कि वह किसी विशेष आदमी को दी गई है और कोई काली चीज़ इसलिये सफ़ेद नहीं हो सकती कि वह किसी जाति अथवा सम्प्रदाय विशेष के हाथ से निकली है। सच्चाई हर हालत में सच्चाई है और झूठ हर हालत में झूठ।

क़ुरान के आविर्भाव के समय अरब में तीन बड़े बड़े मज़हबी गिरोह थे, यहूदी, ईसाई और अरब के मूर्ति पूजक; और ये तीनों हज़रत इब्राहीम को एक समान प्रतिष्ठा और आदर की दृष्टि से देखते थे, क्योंकि तीनों सम्प्रदाय वालों के आदि पुरुष इब्राहीम ही थे। क़ुरान इन तीनों के सामने सीधा सीधा सवाल रखता है। वह कहता है यदि धर्म की सच्चाई सम्प्रदाय विशेष पर ही निर्भर है, तो बतलाओ तौरात से पहले भी ऐसे आदमी मौजूद थे या नहीं जिन्हें ईश्वर से आदेश मिला हो? अगर थे तो उनका मार्ग क्या था? स्वयं तुम्हारे वंश के यानी इसराईल वंश के तमाम पैग़म्बरों का मार्ग क्या था? हज़रत इब्राहीम ने अपने बेटों और पोतों को जिस धर्म की शिक्षा दी थी, वह धर्म कौन सा था? हज़रत याक़ूब मृत्यु शय्या पर जब अपने बेटों को धर्म पर दृढ़ रहने का अन्तिम उपदेश दे रहे थे, तो वह धर्म कौन सा था? इसलिये इन तुम्हारे गढ़े हुये धार्मिक दायरों से परे भी मुक्ति का कोई उच्चतर मार्ग मौजूद है, जो उस समय भी मानव समाज के सामने था, जब कि तुम्हारे इन सम्प्रदायों का नाम निशान तक न था। क़ुरान कहता है कि यही मार्ग धर्म का वास्तविक मार्ग है और इसे प्राप्त करने के लिये किसी सम्प्रदाय विशेष की आवश्यकता नहीं।

क़ुरान कहता है ईश्वरीय धर्म की जड़ यही है कि मनुष्यमात्र परस्पर भाई और सब एक हैं। उसकी जड़ भेद और घृणा नहीं है। ख़ुदा के जितने भी रसूल दुनिया में आये, सबने यही शिक्षा दी कि तुम सब बुनियादी तौर पर एक ही सम्प्रदाय और एक ही जाति हो और तुम सबका पालनेवाला भी एक ही है। इसलिये उचित है कि सब उसी एक परवरदिगार की उपासना करें और एक घराने के भाई-बन्दों की तरह मिल जुल कर रहें। यद्यपि प्रत्येक धर्म के संस्थापक ने इसी मार्ग का उपदेश दिया था तथापि हर धर्म के अनुयायी इस मार्ग से हट गये। परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक देश प्रत्येक जाति और प्रत्येक वंश ने अपना अलग अलग जत्था बना लिया और प्रत्येक जत्था अपने ही तौर तरीक़ों में मग्न हो गया।

एक दूसरे के बाद सब पैग़म्बरों ने यही शिक्षा दी थी कि ईश्वर की वन्दना करो और सदाचरण का जीवन व्यतीत करो। परमात्मा के सम्मुख तुम सब एक ही गिरोह और एक ही सम्प्रदाय हो। तुम सबका एक ही पालनहार है। तुममें से कोई गिरोह दूसरे गिरोह को अपने से अलग न समझे और न कोई गिरोह दूसरे गिरोह का विरोधी हो। लेकिन लोगों ने इस शिक्षा को भुला दिया।

क़ुरान के सूरा दो में जगह जगह यह कहा गया है कि ईश्वरीय धर्म का मार्ग कर्म-मार्ग है, और प्रत्येक मनुष्य के लिये वही होता है, जो उसके कर्मों की कमाई है। किसी मनुष्य की मुक्ति या उसके कल्याण में इस बात से कोई सहायता नहीं मिल सकती कि उसके गिरोह में बहुत से पैग़म्बर या महान पुरुष हो चुके हैं या वह नेक मनुष्यों के वंश से है या किसी पिछली क़ौम के साथ उसका पुराना सम्बन्ध है। इसलिये साम्प्रदायिकता और गिरोहबन्दी की ओर से तबियत हटाकर नेक कर्मों की ही तरफ़ ध्यान देना चाहिये।

चीन की जन-क्रान्ति

प्रोफ़ैसर तान युन-शान

इतिहास को विविध कालों और हिस्सों में बांट देना ज़रा मुशकिल काम है। जो घटनायें इतिहास के दौर को बदल देती हैं, उनकी बुनियादें दूर गहराई में जाकर दिखाई देती हैं, हालांकि बरसों पहले उनके आसार शुरू हो जाते हैं। वर्तमान चीन का इतिहास कहने को तो चीनी जन-क्रान्ति के बाद ही शुरू होता है, किन्तु हम इतनी ज़बरदस्त जन-क्रान्ति को उस समय तक नहीं समझ सकते, जब तक कि हम उस राजनैतिक और सामाजिक स्थिति को न जानें, जिसकी वजह से यह जन-क्रान्ति सम्भव हुई। जन-क्रान्ति का सही अन्दाज़ा लगाने के लिये हमें उसके पहले के चीन की हालत जान लेना ज़रूरी है।

जन-क्रान्ति के पहले चीन में चिंग कुल के सम्राट राज कर रहे थे। इस कुल के कई महान सम्राट चीन की गद्दी पर बैठे। चिंग कुल को माञ्चुओं ने सन् १६४४ ईसवी में क़ायम किया था और उसके दस राजाओं ने १९११ ई० तक चीन पर राज किया। चीन ने इन राजाओं के ज़माने में बेहद उन्नति की। शुरू शुरू में तो अन्नाम, स्याम, बर्मा, भूतान और नैपाल चीन के दरबार को ख़िराज देते थे। सम्राट कांग-हुसी के समय में तो रूस के सम्राट पीटर-दी-ग्रेट ने चीनी सम्राट की कृपा प्राप्त करने के लिये समय समय पर उसे अमूल्य उपहार भिजवाये। सन् १७९३ ई० में इंगलिस्तान के राजा ने सम्राट चीन-लुङ्ग की सेवा में अपना एक विशेष दूत, लार्ड मैकार्टनी को, बहुत से उपहारों समेत भेजा। लार्ड मैकार्टनी ने घुटने टेक कर चीनी सम्राट का अभिवादन किया। सम्राट चीन-लुङ्ग ने इस अवसर पर जो पत्र इंगलिस्तान के राजा को भेजा, वह पढ़ने लायक़ है। चीनी सम्राट ने लिखा—

"तुम्हारे राजदूत ने तुम्हारे उपहार और तुम्हारा पत्र मुझे दिया। मुझे यह सुनकर ख़ुशी हुई कि मेरे प्रति तुम बेहद वफ़ादार हो। तुम्हारा देश बहुत दूर है मगर फिर भी तुम मेरे प्रति अपनी भक्ति प्रकट करते हो। मैंने तुम्हारे दूत से मुलाक़ात की है और अपने मंत्रियों को आदेश दिया है कि वे उसकी और उसके साथियों की ख़ातिरदारी करें।

"मैं तुम्हारी इस विनती को स्वीकार नहीं कर सकता कि तुम्हारे कुछ आदमी यहां से आकर यहां तुम्हारे व्यापार की निगरानी करें। यह मेरे दैवी साम्राज्य के नियमों के विरुद्ध है।

"हमारा दैवी साम्राज्य चार समुद्रों के बीच में है। अपनी प्रजा पर शासन करने के अतिरिक्त मेरी और कोई आकांक्षा नहीं है। तुम्हारे अमूल्य और क़ीमती उपहार का मेरी नज़रों में कोई मूल्य नहीं। तुम्हारे दूत ने मेरे यहां की धन दौलत देखी ही है।

"हमारा दैवी साम्राज्य सब तरह से सम्पन्न है। हमें किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं। इसलिये बाहर के जंगली मुल्कों के अनगढ़ माल को अपने देश में लाने की मैं इजाज़त नहीं दे सकता।

"मुझे विश्वास है कि मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति और वफ़ादारी क़ायम रहेगी। इसी में तुम्हारा और तुम्हारे देश का कल्याण है।"

केवल डेढ़ सौ बरस पहले चीन के सम्राट ने असभ्य इंगलिस्तान के जंगली राजा को यह ख़त लिखा था।

चीन उस समय उन्नति के शिखर पर था फिर भी उसके पतन के लक्षण दिखाई देने लगे थे। जिन मांचुओं ने चिङ्ग राजकुल क़ायम किया था वे पूर्वोत्तर चीन के रहनेवाले असभ्य बाशिन्दे थे। किन्तु तख़्त पर बैठते ही इस कुल के सम्राटों ने चीन की प्रजा का हर तरह से उपकार किया। लेकिन एक शताब्दी के शासन के बाद चिङ्ग सम्राट अकर्मण्य और उनके राज कर्मचारी पतित होने लगे। चारों तरफ़ रिशवत का बाज़ार गर्म हो गया। चीन का प्रधान मंत्री हो-कुन सब में बड़ा रिशवत ख़ोर निकला। उसने बीस वर्ष की नौकरी में ८० करोड़ चीनी अशरफ़ी की दौलत इकट्ठा करली, जब कि राज्य की सालाना आमदनी केवल सात लाख अशरफ़ी थी। अन्त में उसकी सारी जायदाद ज़ब्त करली गई और उसे फांसी की सज़ा मिली। किन्तु हो-कुन की फांसी ने भी राज्य के पतित अफ़सरों में कोई सुधार नहीं किया।

देश में चारों ओर अराजकता फैलने लगी। जगह जगह बग़ावतें खड़ी होगईं। जगह जगह धार्मिक क्रान्तियां भी हुईं। मिओ क़ौम ने क्वि-चाओ प्रान्त और मुसलमानों ने सिन-किआङ्ग प्रान्त में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। दक्खिन पूर्व के समुद्री किनारे पर जल-डाकुओं ने आफ़त मचा दी। इसके बाद ताइ-पिङ्ग में ईसाइयों की बग़ावत शुरू हुई। इस बग़ावत को शुरू करनेवाला हुङ्ग हि्सु-चुआन नामक धार्मिक प्रवृत्ति का चीनी ईसाई था। उसने स्वाधीनता और समता के नारे बुलन्द किये और देश में आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक सुधारों की मांग पेश की। उसने एक राजकुल भी क़ायम कर लिया। वह अपने को हज़रत ईसा का छोटा भाई कहता था। एक बार तो पन्द्रह सूबों ने उसके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। किन्तु हुङ्ग हि्सु चुआन ने अपने सुधारों से चीन की पूरी सामाजिक व्यवस्था ही बदलनी चाही, इसीलिये जनता ने उसे ठुकरा कर फेंक दिया। अपनी घटती हुई सत्ता और नष्ट होती हुई शक्ति के साथ चिङ्ग राजकुल की ज़िन्दगी कुछ दिनों के लिये और बढ़ गई।

देश की इन आन्तरिक क्रान्तियों के साथ साथ चीन पर विदेशियों के आक्रमण भी शुरू हो गये। सन् १८४० में सम्राट ताओ-कुआङ्ग के समय में अंगरेज़ों के साथ चीन की लड़ाई हुई। अंगरेज़ चीन में ज़बरदस्ती अफ़ीम बेचना चाहते थे। चीनी सम्राट ने इसका विरोध किया। इस लड़ाई को 'ओपियम-वार' (अफ़ीम विरोधी लड़ाई) कहा जाता है। इस लड़ाई में चीन की हार हुई। नान-किङ्ग की सुलह के अनुसार शंघाई और अन्य चार बन्दरगाहों में अंगरेज़ों को सुविधा और अतिरिक्त अधिकार मिले। हांग-काङ्ग अंगरेज़ों को दे दिया गया और जुरमाने की एक बहुत बड़ी रक़म अंगरेज़ों की जेब में डाली गई। चीन के ऊपर जो ज़ालिमाना और अत्याचारी सन्धियां लादी गईं, उनमें यह पहली सन्धि थी। सन् १८६० में अंगरेज़ और फ़्रान्सीसियों ने मिलकर पीकिङ्ग पर गोलाबारी की। शहर को जीभर कर लूटा और पराजित देश से सन्धि के नाम पर डाकुओं का सा बर्ताव किया। बहुत सी रक़म वसूल की गई और कई बन्दरगाह इन लोगों ने हड़प लिये। सन् १९१५ में सम्राट कुआङ्ग-त्सु के ज़माने में चीन पर जापानियों ने भी हमला किया। परिणाम स्वरूप फ़ारमोसा के टापू पर जापानियों का क़ब्ज़ा हो गया। जापान ने भी युद्ध के जुरमाने के नाम पर गहरी रक़म वसूल की और कई बन्दरगाहों पर क़ब्ज़ा कर लिया। कोरिया पर भी जापान का अधिकार हो गया। सन् १९०० में 'बाक्सर की क्रान्ति' हुई और इंगलिस्तान, रूस, जापान, जर्मनी, फ़्रान्स, अमरीका, आस्ट्रिया और इटली मिलकर गिद्धों की तरह चीन पर टूट पड़े। चिङ्ग राज सत्ता के टुकड़े टुकड़े हो गये किन्तु विशाल चीन को अपनी हीनता का ज्ञान होने लगा और इसी ज्ञान के अन्दर सन् १९११ की महान जन-क्रान्ति की चिनगारी छुपी हुई थी।

महान जन-क्रान्ति और चीनी जन-तन्त्र

किन्तु इस महान क्रान्ति को वर्णन करने से पहले इस क्रान्ति के महान नेता डाक्टर सुनयात-सेन के

"सफ़ल क्रान्ति की तीन सीढ़ियां होती हैं। (१) संघर्ष और युद्ध (२) क्रान्तिकारी नेताओं के हाथ में शासन की थोड़े दिनों बागडोर और (३) बाद में जनता के हाथों में शक्ति। अभाग्यवश चीन मे यह सब नहीं हुआ और उसी के परिणाम हमें भुगतने पड़े।"

युआन की चालाकी से बजाय नानकिङ्ग के पीकिङ्ग जनतंत्र की राजधानी बना दिया गया। वह ज़ाब्ते से जनतंत्र का सभापति भी चुन लिया गया। धीरे धीरे उसने सारी शक्ति अपने हाथों में कर ली। फिर उसने अनेक क्रान्तिकारी नेताओं को अपने हुक्म से फांसी पर चढ़ा दिया। युआन अपने स्वार्थ के लिये सारे देश को बलिदान करने पर तुल गया। डाक्टर सुनयात सेन ने जब यह देखा, तो उन्होंने एक नया राजनैतिक दल 'चिङ्ग हुआ के मिङ्ग-तांग' (चीनी क्रान्तिकारी दल) सङ्गठित किया। युआन शिकाइ अभिमान में चूर था। उसने नवम्बर १९१५ में पार्लिमेण्ट तोड़ कर अपने को चीन का सम्राट ऐलान कर दिया। पहली जनवरी १९१६ को उसने अपने राज्याभिषेक की तारीख़ मुक़र्रर की। उसके इस ऐलान के साथ साथ सारे देश में विद्रोह की लपटें दौड़ गईं। किन्तु इसी बीच मौत उसे खींच ले गई। उसका राज्याभिषेक का भी सपना उसके साथ साथ क़ब्र में चला गया।

युआन मर गया किन्तु देशद्रोह के जो बीज वह बो गया था वे भी फलने फूलने लगे। डाक्टर सुनयात सेन ने देश को सङ्गठित करने का प्रयत्न किया। किन्तु जगह जगह स्वार्थी खड़े हो गये, जिन्होंने फ़ौज इकट्ठा करके थोड़ी थोड़ी जगह में अपनी हुकूमतें क़ायम करलीं। ये लोग 'वार लार्ड' (युद्ध-अधिपति) कहलाते थे। उत्तर चीन में ये अनगिनित तादात में पैदा हो गये। उनकी आपस की लड़ाइयों के कारण सारा देश मौत के मुंह में जाने लगा। दक्खिन में क्रान्तिकारियों ने डाक्टर सुन की अध्यक्षता में उत्तर के इन ख़ुदगरज़ अधिपतियों का विरोध जारी रखा। जगह जगह आपसी लड़ाइयां चल रही थीं और हमारे महान देश का भविष्य अन्धकार में छिप गया था।

जब देश में आपसी लड़ाई चलती हो, तो विदेशी, गिद्धों को भी मांस नोचने का अवसर मिलता है। हमारे पड़ोसी जापान के भी हम पर दांत थे। यूरोप में (सन् १९१४-१९ का) महायुद्ध चल रहा था। इस अवसर से फ़ायदा उठाकर जापान ने हमारे देश पर हमला कर दिया और काओ-चि रेलवे और काओ-चु की खाड़ी पर क़ब्ज़ा कर लिया। युआन शिकाई ने जापान के साथ २१ सन्धियों के सुलहनामे पर अपने दस्तख़त कर दिये। यह सुलहनामा बहुत अपमान जनक शर्तों का था। चीनी अब तक उस सुलहनामे की तारीख़ ९ मई १९१५ ई० को लज्जा के साथ याद करते हैं। उस सुलहनामे का यूरोपीय राष्ट्रों और अमरीका ने बड़ा ज़बरदस्त विरोध किया। अन्त में जापान को वह सुलहनामा रद्द करना पड़ा।

यूरोपीय महायुद्ध से छुट्टी पाकर यूरोप के मुल्कों ने भी लालच की निगाहों से चीन को देखा। हमारी आपसी लड़ाइयों को इन्होंने ख़ूब उकसाया। विविध वार-लार्डों को युद्ध की सामग्री देकर आपस में बेहद लड़ाया। अन्त में पहली जुलाई सन् १९२१ को अमरीका के राष्ट्रपति हार्डिङ्ग की दावत पर, बेल्जिअम, फ्रान्स, इङ्गलैण्ड, इटली, जापान, हालैण्ड, अमरीका और चीन के प्रतिनिधियों का सम्मेलन वाशिंगटन में हुआ। इस सम्मेलन में यह तो स्वीकार कर लिया गया कि चीन को अपनी स्वाधीनता का अधिकार है, किन्तु इन बाहरी मुल्कों ने चीन में अपने व्यापार को बढ़ाने की गरज़ से नई नई रुकावटें हमारे देश पर लाद दीं। हम मजबूर थे। हमने सर झुकाकर सब कुछ क़ुबूल कर लिया।

किन्तु जनता का गुस्सा अन्दर ही अन्दर भड़का। सब ने यह समझ लिया कि जब तक ये देश घातक वार लार्ड रहेंगे, तब तक चीन का कल्याण नहीं हो सकता। इन्हें मिटाने का देश ने निश्चय कर लिया और एक बार फिर पूरे उत्साह के साथ

डाक्टर सुनयात सन

जन्म–सन् १८६७]

मृत्यु–१२ मार्च, १९२५]

डाक्टर सुनयात सेनके नेतृत्व में दूसरी क्रान्ति के लिये ज़बरदस्त तय्यारियां शुरू हो गईं।

चीनी राजनीति में नये युग का प्रारम्भ

डाक्टर सुनयात सेन ने चीनी राष्ट्रीय महासभा चुङ्ग कुओ मिङ्ग ताङ्ग (Chung kuo Ming Tang) का फिर से संगठन किया। डाक्टर सुन ने यह देखा कि जब तक देश को सैनिक शिक्षा न दी जायगी, तब तक उत्तर के युद्ध अधिपतियों का मुक़ाबला नहीं हो सकता। पुराने सेनापतियों का कोई भरोसा नहीं। नए सेनापतियों की तालीम के लिये एक नया सैनिक विद्यालय खोला गया। इस विद्यालय का नाम 'हुआङ्ग-पु' मिलीटरी एकेडमी रखा गया। जनरल चियाङ्ग-काइ-शेक इसके प्रिन्सिपल मुक़र्रर हुए। इसी विद्यालय के कारण चीन में नया जीवन शुरू हुआ।

कुओ मिङ्ग-ताङ्ग ने अपना आफ़िस कैण्टन के शहर में खोला। डाक्टर सुन उसके सभापति हुए। डाक्टर सुन के ही सिद्धान्तों पर इस राष्ट्रीय महासभा का संगठन किया गया। डाक्टर सुन को डिक्टेटर चुना गया। उधर एक चीनी देशभक्त ईसाई वार-लार्ड फेङ्ग यु-ह्सिआंग ने प्रयत्न करके आपसी लड़ाइयों को बन्द करवाया और डाक्टर सुनयात सेन को समझौते की बात चीत के लिये पीकिङ्ग बुलवाया। डाक्टर सुन ने उत्तर के इन वार लार्डों के पश्चाताप को देखकर पीकिङ्ग जाने का निश्चय किया। वे जापान होते हुए पीकिङ्ग पहुंचे भी। किन्तु पीकिङ्ग पहुंच कर दैवी विधान से १२ मार्च १९२५ को चीन के इस तपस्वी महान नेता का स्वर्गवास हो गया। चीन का मार्ग प्रदर्शक ही चला गया। सारा देश एक बार फिर अन्धकार और निराशा में डूब गया।

पहली जनवरी १९२६ को कैण्टन में अखिल चीनी कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस कांग्रेस ने जनरल चियाङ्ग काइ-शेक को चीन का प्रधान सेनापति मुक़र्रर किया। जुलाई में जनरल चियांङ्ग ने अराजक प्रान्तों पर अपना हमला शुरू किया और सन् १९२८ तक पूरे देश ने राष्ट्रीय सरकार की अधीनता स्वीकार कर ली। राष्ट्रीय सरकार की राजधानी अब कैण्टन से उठकर नानकिङ्ग शहर में आगई। इस तरह डाक्टर सुन के सिद्धान्त के अनुसार क्रान्ति की पहली मञ्ज़िल (संघर्ष और युद्ध की) समाप्त हुई। इसके बाद कुओ मिङ्ग-ताङ्ग ने देश का शासन भार सम्हाला। इस सारे समय में हमारे देश के सामने दो रुकावटें थीं (१) हमारे देश पर जापान की लालच की निगाह और (२) मास्को से थर्ड इण्टर नैशनल का लगातार बेजा दख़ल।

सन १९३१ में जब याङ्ग-त्सि नदी की भयंकर बाढ़ से सारा देश त्रस्त था, जापान ने हमारे तीन पूर्वीय प्रान्तों पर हमला करके जेहोल पर क़ब्ज़ा कर लिया और अपने संरक्षण में 'मञ्चुकुओ' नामक एक नई सल्तनत क़ायम की। किन्तु जापान के अत्याचारों ने हमारा एक उपकार भी किया। जापान के ही कारण सारा चीन राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बंध गया।

कम्यूनिस्टों की तरफ़ से भी हमें बहुत परेशानी उठानी पड़ी। उन्होंने देश की राष्ट्रीयता का प्रचार करने के बजाय आपसी लड़ाई का ही प्रचार शुरू किया। अन्त में विवश होकर कुओ मिङ्ग-ताङ्ग महासभा से सारे कम्यूनिस्ट सदस्यों को निकाल दिया गया। बाद में कम्यूनिस्टों ने कियाङ्गसी के प्रान्त में अपनी स्वतन्त्र रियासत क़ायम करके राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। अन्त में नानकिङ्ग की सरकार को विवश होकर कियाङ्गसी पर आक्रमण करना पड़ा। कम्यूनिस्ट हार गये। किन्तु नानकिङ्ग की सरकार ने उनके साथ नरमी का बर्ताव किया। बहुत से कम्यूनिस्टों ने पश्चाताप किया और कुओ मिङ्ग-ताङ्ग में फिर से शामिल हुये। बिना इस तरह की एकता के चीन जापान से और दूसरे आक्रमणकारी विदेशी राष्ट्रों से मुक़ाबला नहीं कर सकता। हर्ष की बात है कि चीन में आज सब मिलकर अपने देश की रक्षा के प्रयत्न कर रहे हैं।

चीनी राष्ट्रीय सरकार की नीति

मई सन् १९३१ में नानकिङ्ग में राष्ट्रीय पंचायत की बैठक हुई। इस पञ्चायत ने डाक्टर सुनयात सेन

के सिद्धान्त पर एक देश का शासन विधान तय्यार किया। केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों में राज्य प्रबन्ध की ज़िम्मेवारी बांट दी गई। तय हुआ कि राष्ट्रीय सरकार का अध्यक्ष सदा धार्मिक प्रवृत्ति का कोई बुज़ुर्ग ही चुना जाया करे। उस अध्यक्ष पर कोई ज़िम्मेवारी नहीं रखी गई। राष्ट्रीय सरकार के मातहत पांच विशेष विभाग (यु आन) खोले गये। ये पांचों यु आन पांच मन्त्रियों के अधिकार में हैं। ये पांच यु आन हैं—(१) शासन प्रबन्ध यु आन, (२) धारा सभा यु आन, (३) न्याय यु आन, (४) सरकारी अफ़सरों को मुक़र्रर करने वाला यु आन और (५) नियंत्रण यु आन। हर यु आन में एक सभापति, एक उपसभापति और कुछ मन्त्री होते हैं। शासन प्रबन्ध करने वाले यु आन की सत्ता और सब यु आनों से अधिक है। इसमें मन्त्रियों की तादाद भी ज़्यादा है। ये पांचों यु आन अलग अलग हैसियत से चीन के राष्ट्रीय महासभा कुओ मिङ्ग-ताङ्ग के प्रति ज़िम्मेवार हैं। इन यु आनों के अतिरिक्त और कई स्वतन्त्र सरकारी मोहकमे हैं, जैसे राष्ट्र पुनर्निर्माण कमीशन, राष्ट्रीय सैनिक कौन्सिल, राष्ट्रीय अर्थ-समिति, और यूनिवर्सिटी शिक्षा समिति आदि। इनके अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारें, ज़िले की सरकारें, म्युनिसिपैल्टी आदि भी हैं। हर प्रान्तीय सरकार में एक चेयरमैन और उसके मातहत कई अफ़सर हैं। प्रान्तीय सरकारों के मातहत सेक्रेटेरियट, फ़ाइनेन्स मोहकमा, माल मोहकमा, शिक्षा का मोहकमा, सड़कें और इमारतें आदि बनाने का मोहकमा वग़ैरह हैं। हर म्युनिसिपैल्टी का एक मेयर— है और उसके मातहत शहर के प्रबन्ध के लिये कई मोहकमे हैं। ज़िले का प्रबन्ध एक मजिस्ट्रेट के मातहत होता है। यह पूरा शासन विधान डाक्टर सुन के ही सिद्धान्तों पर क़ायम किया गया है।

राष्ट्रीय सरकार के सभापति और पांचों यु आनों के सभापति और उप सभापतियों को कुओ मिङ्ग-ताङ्ग की एक्ज़िक्यूटिव कमेटी ही चुनती है। इस समय चीनी राष्ट्रीय सरकार के सभापति श्री लिन शेन हैं। पांचो यु आनों के सभापति क्रमशः जनरल चियाङ्ग काई-शेक, श्री सन फो (डाक्टर सुनयातसेन की पहली पत्नी के लड़के) श्री चु चेङ्ग, श्री ताई-ची-ताओ और श्री यु यु-जेन हैं। इन सब पर कुओ मिङ्ग ताङ्ग की एक्ज़िक्यूटिव कमेटी का पूरा अधिकार है। भारतीय राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस का जो संगठन है, उसी से मिलता जुलता सङ्गठन हमारी चीनी राष्ट्रीय महासभा कुओ मिङ्ग ताङ्ग का है। इस समय हमारी राष्ट्रीय महासभा के राष्ट्रपति जनरल चियाङ्ग काई शेक हैं और वही एक तरह से हमारे मुल्क के डिक्टेटर हैं। मौजूदा चीनी सरकार डाक्टर सुनयात सेन की ही क़ायम की हुई नीति पर चल रही है।

आज कल हमारे देश का सबसे बड़ा शत्रु हमारा पड़ोसी जापान है। जापान ही के कारण हमारे देश में ज़बर्दस्त राष्ट्रीय एकता क़ायम हो गई है। जापान पिछले तीन बरस से अपने भयंकर अत्याचारों से हमारे देश को रौंद रहा है, परन्तु चालीस करोड़ आबादी का हमारा देश आज अपने कर्तव्य को समझता है। सारे संसार ने जापान के वहशियाने हमले की निन्दा की है। किसी भी राष्ट्र के लिये यह सज़ा कम नहीं है। जापान आज हम चालीस करोड़ चीनियों की घृणा का पात्र है।

मुसलमानों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

डाक्टर सैयद महमूद

मुसलमानों पर यह एक इलज़ाम लगाया जाता है कि चूंकि वे विदेशी विजेता की हैसियत से हिन्दुस्तान आये, इसलिये वे इस देश के निवासियों से अलग अलग रहे। कहा जाता है चूंकि हिन्दुओं के साथ मुसलमानों का कुछ भी सादृश्य नहीं है और विदेशी सहधर्मियों के साथ बहुत कुछ है, इसलिये इस देश की भलाई बुराई से मुसलमानों को कोई सरोकार नहीं है। अब हमें देखना चाहिये कि इस मामले में इतिहास क्या रोशनी डालता है?

यह बात हर एक को माननी पड़ेगी कि थोड़े सों को छोड़कर क़ौम के लिहाज़ से हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों के शरीर की बनावट और गठन, रङ्ग और रूप बिलकुल एकसां है। पुराने अरबों, तुर्कों और ईरानियों का आज भारत में कहीं पता तक नहीं चलता। जिन अरब सैनिकों ने मोहम्मद बिन क़ासिम के सेनापतित्व में सिन्ध पर हमला किया था, या जिन अरब ख़ानदानों ने सिन्ध पर सैकड़ों वर्षों तक हुकूमत की थी, उनके आज नाम निशान तक नहीं मिलते। गज़नवी, ग़ोरी, मुग़ल, तुर्क और अफ़ग़ानों के अलावा दूसरी मध्य एशिया की जिन मुसलमान क़ौमों ने हिन्दुस्तान पर हमला करके यहां राज क़ायम किया और जिनकी सन्तानों ने लगभग पांच सौ वर्ष यहां राज किया, उन सब का आज पता तक नहीं चलता। मुसलिम शासकों ने न अपने जातीय अभिमान की परवाह की और न अपने रक्त को शुद्ध बनाये रखने की। उन्होंने भारतीय जन समुदाय में अपने आपको मिला दिया। मुसलिम शासन-काल में जिन क़ौमों, फ़िरक़ों, क़बीलों और ख़ानदानों की धूम थी, आज न उनकी चरचा है और न कोई उन्हें जानता है। वे सब मिलजुल कर एक हो गये। यह काम कोई एक दो दिन में नहीं हुआ, यह सैकड़ों वर्षों के साथ साथ रहने का परिणाम है। धर्म परिवर्तन, शादी ब्याह, इसी देश में हमेशा के लिये बस जाने की अभिलाषा, अपनी मातृभूमि से किसी तरह का कोई सम्बन्ध न रखना आदि ऐसी बातें थीं, जिनसे मुसलमान क़ौम के लिहाज़ से बिलकुल भारतवासी बन गये। हिन्दू और मुसलमानों का धर्म अलग अलग है मगर रंग एक है, रूप एक है और क़ौम एक है।

हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने हिन्दुओं की ही तरह अपना सामाजिक सङ्गठन किया। बाहर के मुसलमानों में कोई जात पांत नहीं मगर यहां के मुसलमानों ने हिन्दुओं की तरह ही अपनी अलग अलग बिरादरियां बना लीं। सय्यदों का रुतबा ब्राह्मणों की तरह, मुग़ल और पठानों का क्षत्रियों की तरह, शेख़ वैश्यों की तरह और बुनकर और दीगर पेशेवालों की समता शूद्रों से होने लगी। ये फ़रक़ न सिर्फ़ आर्थिक या कामधन्धों की वजह से होगये बल्कि हिन्दुओं की तरह मुसलमानों की ये बिरादरियां पैदाइशी होगईं। लोगों को अपनी ऊंची बिरादरी पर अभिमान होने लगा।

प्रत्येक समाज के संगठन में स्त्री का एक विशेष स्थान है। इस मामले में अरब और तुर्की समाज में और हिन्दुओं में बहुत फ़र्क़ है। लेकिन हिन्दुस्तान में मुसलमानों ने अरबों और तुर्कों के तरीक़े को नहीं बरता। मुसलमान औरतों ने अपनी हिन्दू बहिनों का ही चलन अपनाया। शृङ्गार, वेशभूषा, आभूषण, मिलने जुलने, रोज़मर्रा के व्यवहार सब बातों में उन्होंने अपना हिन्दू बहिनों का तरीक़ा बरतना शुरू किया। मुसलमानों के शादी ब्याह बिलकुल हिन्दुओं की तरह ही होने लगे। निसबत, हलदी, मेंहदी, तेल, मंडवा, बरात, जलवा, कङ्गन आदि तमाम रस्में मुसलमानों ने ज्यों की त्यों हिन्दुओं से ले लीं। शादी की रस्म में हिन्दू और मुसलमानों में केवल एक फ़र्क़ रह गया और वह यह कि हिन्दुओं में वर और वधू हवन कुण्ड के चारों तरफ़ वेद-मन्त्रों की ध्वनि के साथ सात भांवर डालते हैं, मुसलमानों में क़ाज़ी क़ुरान की आयत पढ़कर निकाह करा देता है। छोटी उम्र में लड़कियों की शादी, विधवा विवाह की रोक, स्त्रियों के ऊपर पुरुषों का अनन्य अधिकार, और परदा ये सब बातें हिन्दू और मुसलमान दोनों में एक सी हैं।

यह सही है कि धार्मिक त्योहार और व्रत उपवास दोनों के अलग अलग हैं, किन्तु उनके मनाने का तरीक़ा बहुत कुछ एक सा है। मोहर्रम और दशहरा एक तरह से मनाया जाने लगा। शबे बरात और शिवरात्रि, रमज़ान, ईद और नवरात्रि के उत्सव एक ही तरह से होने लगे। इनके अतिरिक्त और बहुत से मेले, तीज और त्योहार पड़ते थे, जिनमें दोनों हिस्सा लेते थे। यहां तक कि एक दूसरे के भी मेलें तमाशे में हिन्दू मुसलमान शामिल होते थे। हज़ारों मुसलमान होली खेलते थे और लाखों हिन्दू मुहर्रम मानते थे।

मुसलमानों ने मृतक के क्रिया-कर्म में बहुत से हिन्दू रिवाज अपना लिये जैसे तीजा, दसवां आदि। इसके अलावा गर्भवती स्त्री का पंच मासा, सत मासा और बच्चे की पैदाइश की छठ, बच्चे की खीर चटाई, सालगिरह, मुण्डन, कनछेदन हिन्दू मुसलमान दोनों एक ही तरह से मनाने लगे। ऐसे रस्म रिवाज जो ख़ालिस हिन्दू थे, जैसे सती और जौहर, ये भी मुसलिम स्त्रियां अपने पति के मरने पर करने लगीं। इब्न बतूता मोहम्मद बिन तुग़लक और एनुलमुल्क की लड़ाई का हाल लिखता है, जिसमें एनुलमुल्क के हारने पर उसकी पत्नी ने जौहर व्रत किया था। 'जाफ़र नामा' में लिखा है कि भटनैर के सूबेदार कमालुद्दीन की पत्नी ने तैमूर के ख़िलाफ़ लड़ाई में जाते समय जौहर व्रत किया था। अमीर ख़ुसरो ने इस सम्बन्ध में लिखा है।

चूं ज़ने हिन्दी कशे दर आशिक़ी दीवाना नेश्त,
सोख़्तन बर शमा शौहर कार हो परवाना नेश्त !

किसी भी समाज की आन्तरिक भावनाओं का सब से सुन्दर परिचय उस समाज के लोगों की पोशाक से मिलता है। इस निगाह से यदि हम देखें तो हमें पता चलेगा कि किस तरह भारतीय मुसलमानों ने अरब, ईरान और मध्य एशिया की पोशाकों को छोड़ कर भारतीय वेश भूषा को अपनाया। अरबी अमामा, झब्बा, रज़ा, तहमद, तस्मा, और मध्य एशिया के कुला, निमा, मोज़ा सब यहां आकर ग़ायब हो गये और उनकी जगह हिन्दू पगड़ी, चिरा, कुरता, अंगरखा, पटका, दुपट्टा, पाजामा और जूते ने ले ली।

यदि हम बाहरी बातों को छोड़कर संस्कृति और सभ्यता पर ग़ौर करें, तो हम देखेंगे कि यहां भी उसी तरह का समन्वय हुआ है। ज़रा इस बात पर भी ध्यान दिया जाय कि इस सच्ची भारतीय संस्कृति के निर्माण में मुसलमानों ने कितना त्याग किया है ? भाषा के ही प्रश्न को लीजिये। किसी क़ौम की भावनाओं और उसके विचारों को ज़ाहिर करने का सबसे महत्वपूर्ण ज़रिया भाषा ही है। इसलाम की पवित्र भाषा अरबी है। जो मुसलमान आक्रमक सबसे पहले सिन्ध में आए अरबी उनकी मातृ भाषा थी। हालांकि उसका पढ़े लिखे लोग ही अध्ययन करते हैं; ताहम अरबी हिन्दुस्तान के हर हिस्से में प्रचलित है। मध्य एशिया के जो विजेता यहां आये उनकी मातृ भाषा

तुर्की थी और मुसलिम शासन के प्रारम्भ से उसके ख़त्म होने तक सरकारी भाषा फ़ारसी थी। आज हिन्दुस्तानी मुसलमान इन तीनों में से एक भी भाषा नहीं बोलते और न विजेताओं ने ही इन भाषाओं को पराजितों के ऊपर लादा।

इसके विपरीत मुसलमानों ने हिन्दुस्तानी भाषाओं को अपना लिया और अपनी भाषाओं के शब्दों से उन्हें सजाया और संवारा। पंजाब के मुसलमान पंजाबी बोलते हैं, बंगाल के मुसलमान बङ्गला बोलते हैं, गुजरात के मुसलमान गुजराती और महाराष्ट्र के मुसलमान मराठी बोलते हैं। तात्पर्य यह कि जो जिस प्रान्त में रहते हैं, वह उसी प्रान्त की भाषा बोलते हैं। उस जगह के हिन्दू और मुसलमान एक ही भाषा में अपने विचारों को प्रकट करते हैं। केवल एक ही भाषा रह जाती है, जिस पर आज बहस मुबाहिसा छिड़ा हुआ है और वह है 'उर्दू'। किन्तु उर्दू मुसलमानों की ज़बान है ही नहीं। वह हिन्दुस्तान से बाहर किसी मुसलिम देश में नहीं बोली जाती। उसे कोई मुसलिम विजेता बाहर से यहां नहीं लाया। उर्दू हिन्दी भाषा का ही एक रूप है। उसके अधिकांश शब्द, उसका वाक्य-विन्यास, उसका व्याकरण, सब यहीं से लिया गया है। वास्तव में उर्दू का मूल रूप वह भाषा है, जो दिल्ली के आस पास बोली जाती है और जिसे खड़ी बोली कहते हैं। जब मुसलमान दिल्ली और उसके आस पास बस गये, तो वे भी यही बोली बोलने लगे। यही बोली बाद मे साहित्य की भाषा बन गई। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने इसके साहित्य को बढ़ाया और सजाया। सच पूछा जाय तो अंगरेज़ी के प्रचार के पहले यही उर्दू भारतवर्ष की बोलचाल की भाषा थी। हिन्दी-उर्दू के वर्तमान वाद-विवाद पर हम बाद में कुछ कहेंगे।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि मुसलमानों ने भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं को उन्नति देने में कोई कसर बाक़ी नहीं रखी। पंजाबी, हिन्दी और बङ्गला की उन्नति का एक बहुत बड़ा कारण यह है कि मुसलमान नवाबों, उमराओं और मुसलमान लेखकों और कवियों ने इन भाषाओं की उन्नति को बहुत प्रोत्साहन दिया। आज यदि इन भाषाओं को अपनी उन्नति का गर्व है, तो उसका श्रेय हिन्दू और मुसलमान दोनों को मिलना चाहिये। इन भाषाओं के लेखकों की सूची में अनेक प्रसिद्ध मुसलमानों के नाम मिलते हैं। यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दू और मुसलमान दोनों की रचनाओं में एक ही तरह के भावों का चित्रण मिलता है। लोगों के लिये यह बता सकना नामुमकिन है कि अमुक कविता एक मुसलमान की लिखी है या हिन्दू की। पंजाबी और बंगला के हिन्दू और मुसलमान लेखकों की शैली बिलकुल मिलती जुलती है। उसमें किसी तरह का फ़र्क़ नहीं पाया जाता। दोनों में एक ही सांस्कृतिक धारा दिखाई देती है। बल्कि यदि हिन्दुस्तान के मुसलमान लेखकों और कवियों की रचनाओं और ईरान, तुर्की और मिस्र के कवि और लेखकों की रचनाओं की तुलना की जाय, तो साफ़ फ़र्क़ नज़र आयगा। दोनों की संस्कृति, तर्ज़, और सोचने के तरीक़ों में अन्तर है। अंगरेज़ों का शासन यहां क़ायम होने से पहले भारतवर्ष के हिन्दू और मुसलमानों का सांस्कृतिक समन्वय पूरी तरह हो चुका था। विविध प्रान्तों में रहने वाले मुसलमानों ने अपने अपने प्रान्तों की भाषायें अपना ली थीं। उन्हीं में बोलते थे, उन्हीं में लिखते थे और उन्हीं में सोचते थे।

सांस्कृतिक समन्वय की यह धारा सिर्फ़ भाषा और साहित्य तक ही सीमित नहीं रही। उसका असर दर्शन, विज्ञान और कला पर भी पड़ा। गणित, ज्योतिष, भूगोल, हकीमी, धर्म शास्त्र आदि सभी बातों में एक दूसरे की अच्छी बातों को एक दूसरे से सीखा गया। किन्तु दोनों संस्कृतियों का सबसे ज़बरदस्त समन्वय कला के क्षेत्र में हुआ।

मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में आने से पहले कला के क्षेत्र में एक नई तरह की कला को जन्म दिया था। किन्तु जब से वे इस देश में आकर बसे, उन्होंने भारतीय कला की विशेष बातों को अपनी कला में शामिल करना शुरू कर दिया। तेरहवीं सदी से लेकर

उन्नीसवीं सदी तक मुसलमानों ने जो इमारतें, क़िले और मक़बरे बनाये, उनमें यही एकता और समन्वय की तसवीर दिखाई देती है। दोनों कलाओं का सम्मिश्रण साफ़ चमकता हुआ नज़र आता है।

भारतीय पुरातत्व विभाग के भूतपूर्व डाइरेक्टर सर जान मार्शल ने कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया के भाग तीन के "मुसलिम काल की इमारतें" शीर्षक अध्याय में लिखा है—

"जब हिन्दू और मुसलिम निर्माण कला का समन्वय हुआ, तो मुसलिम निर्माण कला ने हिन्दू शैली से बहुत कुछ ग्रहण किया। हिन्दू विचारधारा को प्रकट करने वाली हिन्दू शक्लें, बेलबूटे और नक्क़ाशी किसी न किसी रूप में मुसलिम विजेताओं की इमारतों में शामिल कर ली गई। इस तरह, जो हिन्दू चीज़ें मुसलिम इमारतों में ली गईं, उनकी तादाद बेशुमार है। मुसलिम कला के ऊपर हिन्दू शैली का यह क़रज़ा तो ठोस और ऊपर दिखाई देता है। किन्तु भारतीय मुसलिम कला पर हिन्दू कला की दो बातों ने सबसे अधिक गम्भीर प्रभाव डाला और वे दो बातें हैं—इमारतों की मज़बूती और मज़बूती के साथ ही साथ उनकी भव्यता। दूसरे मुल्कों में मुसलिम निर्माण कला में दूसरी विशेषतायें हैं। यरूसलम में हरे और सुनहले पत्थरों की पट्टियां इमारतों में दीवार या फ़र्श पर लगाई जाती हैं ईरान में बढ़िया से बढ़िया रंगों में मकानों के टाइल रंगे जाते हैं; स्पेन की मुसलिम निर्माण कला में कल्पना ने अजीबो ग़रीब शैलियां पैदा की हैं; किन्तु किसी भी मुल्क में मुसलिम कला में इमारतों की मज़बूती और भव्यता का इतना सुन्दर समन्वय नहीं हुआ, जैसा कि हिन्दुस्तान में। ये दो ऐसी विशेषता हैं, जो वास्तव में हिन्दुस्तान की अपनी हैं और ये ऐसी विशेषता हैं, जो निर्माण कला में दूसरी विशेषताओं से ज़्यादा महत्व रखती हैं।"

भारत की पहली मुसलिम इमारत ११९१ ईसवी में कुतुबुद्दीन ऐबक़ की बनवाई हुई दिल्ली में 'क़ुव्वतुल इसलाम' नामक एक मसजिद है। इस मसजिद के विषय में सर जान मार्शल लिखते हैं—

"इस मसजिद को चाहे भीतर से देखिये चाहे बाहर से यही मालूम होता है कि कोई हिन्दू इमारत है। सिर्फ़ पीछे की दीवार के पांच मेहराबों को छोड़कर इस इमारत में एक भी चिन्ह ऐसा नहीं है, जिससे इसका मुसलमानीपन जाहिर होता हो।"

क़ुतुबुद्दीन के दो सौ वर्ष बाद फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ को भी इमारतें बनाने का बेहद शौक़ हुआ। इतिहास लेखक उसके बनवाये हुए शहर, क़िले, महल, मसजिदें और मक़बरों आदि की एक लम्बी सूची पेश करते हैं। तुग़लक़ काल की निर्माण कला के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इस ज़माने में मुसलिम इमारतों पर से हिन्दू असर बेहद कम हो गया। ताहम—

"जिन शिल्पकारों और मेमारों ने इन तुग़लक़ी इमारतों को तामीर किया, वे सब के सब भारतीय वातावरण में पैदा हुए थे, यहीं पले और बड़े हुए थे। उनकी रगरग में भारतीयता व्याप्त थी; फिर उनकी कला में भारतीय असर कैसे न पड़ता? हालांकि उनके रास्ते में रुकावटें थीं और वे चोटी के कारीगर भी न थे, फिर भी उनकी छेनी और हथौड़े भारतीय कला की ही छाप छोड़ गये। इस तरह इन सारी इमारतों के पीछे एक भारतीय विचारधारा ही दिखाई देती है। हर डिज़ाइन में हिन्दू शैली ढूंढ़ लीजिये। इसको जोरदार शब्दों में कहा जा सकता है कि मुसलमानों को भारत में रहते रहते ज्यों ज्यों ज़्यादा दिन बीतते गये, त्यों त्यों उनकी कला पर भारतीयता का गहरा पुट चढ़ता गया।"

मुग़लों की निर्माण कला के सम्बन्ध में यहां कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। मुग़ल निर्माण कला का परिपक्व रूप अकबर के समय में हुआ। अकबर एक निश्चित भारतीय कला का जन्मदाता था। शाहजहां का झुकाव ईरानी कला की ओर था। किन्तु शाहजहां भी अकबर की भारतीय कला पर अपनी गहरी छाप न छोड़ सका। निर्माण कला के विशेषज्ञों का कहना है कि शाहजहां की इमारतों का बाहरी हिस्सा ईरानी शैली का है, किन्तु इमारतों के भीतर शुद्ध भारतीय कला के ठोस नमूने नज़र आते हैं।

यदि हम इस सिद्धान्त को मानलें कि कला के ही द्वारा किसी राष्ट्र या क़ौम की आत्मा का परिचय मिलता है, तो यह एक निर्विवाद सत्य है कि मध्य कालीन भारत की निर्माण कला में एक ही आत्मा और एक ही संस्कृति के दर्शन मिलते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद से हिन्दू या मुसलमानों की

बनवाई हुई एक भी इमारत ऐसी न मिलेगी, चाहे वह क़िला या महल हो अथवा देवालय या मसजिद, जिस पर इस सम्मिलित भारतीय कला की छाप न पड़ी हो; ऐसी कला जिसे मुसलिम संरक्षता में हिन्दू शिल्पियों ने उन्नत किया था। पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर में राजा मानसिंह के बनवाये हुये महल इस भारतीय मुसलिम कला के सब से पहले नमूने हैं; जिस तरह मुसलमान शासकों के बनवाये हुये मक़बरों, महलों और मसजिदों पर इस कला की छाप है; उसी तरह वृन्दावन के वैष्णव मन्दिरों, हिन्दू राजाओं और साधुओं की समाधियों और छतरियों और भारत भर में फैली हुई असंख्य हिन्दू इमारतों पर भी इसी सम्मिलित कला की छाप है।

चित्र कला के क्षेत्र में भी इसी समन्वयात्मक कला के दर्शन मिलते हैं। प्राचीन भारतीय चित्र कला और ईरानी और मध्य एशिया के चित्रकला का एक सर्वाङ्ग सुन्दर सम्मिश्रण किया गया। ईरानी और मध्य एशिया के चित्रकारों ने भारतीय चित्रकारों के निकट बैठकर भारतीय कला के सुन्दर आदर्शों को अपनी कल्पना शक्ति से और अधिक परिष्कृत किया। दोनों, हिन्दू और मुसलमान, कलकारों ने नई शैली को यकसां अपनाया। उस समय के किसी चित्र को देखकर यह कह सकना असम्भव है कि अमुक चित्र का बनाने वाला कोई हिन्दू है या मुसलमान। जगह जगह इस नई कला के केन्द्र क़ायम किये गये। राजपूताना के राजपूत राजाओं, कांगड़ा की रियासतों और मध्य भारत के शासकों ने इस नई चित्रकला को प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त विविध सूबों में जहां मुग़ल सूबेदार रहते थे या स्वतन्त्र मुसलिम शासकों ने अपने अपने दरबारों में इस कला को बेहद बढ़ाया। अलग प्रान्तों में और अलग अलग दरबारों में स्थानीय वातावरण के कारण थोड़ी थोड़ी बाहरी भिन्नता इन चित्रकारों की कृतियों में दिखाई देती है, किन्तु वास्तविक अन्तरात्मा एक है। वही सुन्दरता, वही भव्यता, वही रोमाञ्च, वही रहस्यवाद इस नई कला के विविध रूपों में दिखाई देता है और इस कला की एकता को क़ायम रखता है।

कला में संगीत का प्रमुख स्थान है। यह हर आदमी जानता है कि मुसलिम संगीतज्ञ जिस संगीत का अभ्यास करते हैं, वह बिलकुल हिन्दुओं की ही है। यूं उत्तर भारत और दक्खिन भारत की संगीत कला में ऊपरी अन्तर है या एक शैली या दूसरी शैली में भी थोड़ा बहुत अन्तर है, किन्तु यह अन्तर धर्म के कारण नहीं है। इस अन्तर की वजह सिर्फ़ स्थानिक है। मुसलमानों ने हिन्दू प्रणाली का अध्ययन किया और नये नये यन्त्रों, नये रागों और नई शैलियों से संगीत के क्षेत्र को विस्तृत किया। हिन्दुओं ने भी इन नये बाजों और नये राग-रागनियों को उत्सुकता और खुले दिल से सीखा। हिन्दू उस्तादों के मुसलिम शिष्य और मुसलिम उस्तादों के हिन्दू शिष्य आम बात थी। आज गुरू और शिष्य में कोई अन्तर ढूंढ़ना असम्भव है। संगीत और नृत्य के क्षेत्र में मुसलिम और हिन्दू कला का सम्पूर्ण मिश्रण और अद्भुत समन्वय सफलता के साथ हो गया।

किन्तु सांस्कृतिक समन्वय का कोई वर्णन उस समय तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक हम इस बात को न जानें कि धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू धर्म ने इसलाम पर क्या प्रभाव डाला। हम अपने अगले लेख में इस धार्मिक समन्वय को और इसलाम पर हिन्दू धर्म के प्रभाव को विस्तार के साथ बयान करेंगे।

कला और राजनीति

—०—

प्रोफ़ैसर चिन्तामणि कर

—:०:—
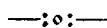
प्रोफ़ेसर कर कलकत्ता विश्वविद्यालय में मूर्ति-निर्माण कला के विशेषज्ञ हैं। इस लड़ाई के पहले प्रोफ़ेसर कर एक वर्ष तक पेरिस में रहे और वहां के प्रसिद्ध कलाकारों से उन्होंने मूर्तिकला की शिक्षा पाई। प्रोफ़ेसर कर ने फ्रान्सीसी कलाकारों के जीवन पर मार्मिक प्रकाश डाला है। उन्होंने इस लेख में यह दिखाया है कि राजनीति से कलाकार का क्या सम्बन्ध है और कलाकार का जीवन महान तपस्या का जीवन है। यह हर्ष का विषय है कि प्रोफ़ेसर कर ने विश्ववाणी के पाठकों के लिये आगे भी लिखते रहने का वचन दिया है।

पेरिस पहुंचने के चार दिन बाद डाक्टर देव ने कहा—"चलिये आपको एक आर्तलिये (कलाकारों की कर्मशाला) में ले चलूं। आप मूर्ति-निर्माण की विशेष शिक्षा लेना चाहते हैं। शायद इस आर्तलिये में आपको इसकी सुविधा मिल जाय।"

मैं उनके साथ 'ल एकेदमी द ल ग्रान्द्र शमियेर' के कला-विद्यालय में गया। इस कला-विद्यालय के नाम पर ही सड़क का नाम है। रास्ते में दोनों ओर बहुत से कला-विद्यालयों के साइन बोर्डों पर नज़र पड़ी। पेरिस में कलाकारों ने अपनी एक अलग बस्ती ही बना ली है। किसी किसी सड़क के दोनों किनारों के सभी मकानों में स्टूडियो बनी हुई हैं।

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक फ्रान्सीसी कलाकार राजकृपा पर ही निर्भर रहते थे। राजा की कृपा से ही उन्हें प्रतिष्ठा और पैसा दोनों मिलते थे। जब से पेरिस में जनतन्त्र सरकार क़ायम हुई, तब से कला पर शिक्षा विभाग का नियंत्रण हो गया है। पहले कला धनियों की दासी थी, अब उसे सरकारी बेड़ियां पहना दी गई। कला को अपनी उन्नति के लिये जिस स्वतन्त्र वातावरण की ज़रूरत थी, वह न मिल सका। इसीलिये फ्रान्स में कलाकारों ने अपना स्वतन्त्र सङ्गठन बनाया।

फ्रान्स की आधुनिक कला के जन्मदाता महान कलाकार सेजान् को सरकारी प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हो सकी। उन्हें सरकारी नियंत्रण के बाहर कला की साधना करनी पड़ी। सरकारी विद्यालयों में एक निर्धारित कार्यक्रम मान कर चलना पड़ता है और एक बंधी हुई तारीख़ के भीतर भर्ती होना पड़ता है। ग़ैर सरकारी विद्यालयों में इस तरह का कोई नियम नहीं है। छात्र किसी भी समय भर्ती होकर काम शुरू कर सकता है। कोई दरजों की क़ैद भी नहीं है। एक ही कमरे में सिद्धहस्त कलाकार भी काम सीखता है और साधारण विद्यार्थी भी। अनेक कलाकार, जो अपना निजी माडेल रखने की सामर्थ्य नहीं रखते, वे भी यहां पर काम करते हैं। सप्ताह में एक दिन कोई विख्यात कलाकार आकर कला के सम्बन्ध में व्याख्यान देता है और उनकी कृतियों की समालोचना भी करता है। विद्यालय की फ़ीस अलग और अध्यापक की अलग होती है; किन्तु अध्यापक की सहायता लेना न लेना विद्यार्थी की मरज़ी पर है।

लेखक, आचार्य जिओमानेल्लि और उनकी पत्नी

के बन्दी नागरिक

कलाकार रोदाँ]

'ग्रान्द शमियेर' पेरिस का एक ऊंचे दरजे का ग़ैर सरकारी कला-विद्यालय है। भास्कर्य यानी प्लास्टर से मूर्ति बनाने के विश्व विख्यात आचार्य रोदां के शिष्य प्रसिद्ध कवि और भास्कर बुर्देल ने इस विद्यालय को क़ायम किया था। वह इसी में भास्कर्य की शिक्षा देते थे। उनके बाद उन्हीं के योग्य शिष्य ब्लेरिक उनके स्थान पर काम कर रहे हैं। ब्लेरिक की गणना आज अमरीका और यूरोप के श्रेष्ठ भास्करों में है।

मोंसिये ब्लेरिक का विस्तृत ललाट, उन्नत नासिका, स्निग्ध चितवन और ऋषियों सी डाढ़ी देखकर मैंने उन्हें अनातोल फ्रान्स का एक नवीन संस्करण समझा। वे एक मामूली कोट और पतलून पहने हुए थे। अपनी साधारण पोशाक में ही वे भव्य दिखाई देते थे। मालूम होता था कि उनकी बचपन की सरलता ज्यों की त्यों बनी हुई है। उनके बोलने के तर्ज़ में भी एक आकर्षण था। उस समय तक मैंने फ्रेंच भाषा नहीं सीखी थी। किन्तु उनके हाथों के परिचालन से उनकी बात इतनी साफ़ हो जाती थी कि भाषा न जानने का क्षोभ मेरे मन से दूर हट गया। उनकी बात समझने में मुझे ज़रा भी मुशकिल नहीं हुई। जब तक मैंने फ्रान्सीसी नहीं सीखी, मेरे एक सहकर्मी मेरे लिये दुभाषिये का काम कर देते थे।

प्रथम परिचय के बाद जब आचार्य ब्लेरिक को मालूम हुआ कि मैं 'यान्दु' (हिन्दू) हूं, तो उन्होंने कहा—"शिव, बुद्ध, नटराज को छोड़कर तुम हमारे पास कला सीखने आये हो ?"

मैंने कहा—"उन कलाकारों का पता आधुनिक भारत को नहीं है। भारतीय कला के इतिहास में बड़ा अन्तर रह गया है।"

आचार्य ब्लेरिक ने कहा—"इससे क्या होता है ! हम कला की आधुनिक व्याख्या कर सकते हैं, किन्तु कला की कुशलता तो प्राचीन भारत, प्राचीन मिस्र और प्राचीन यूनान के कला भण्डारों में ही मिलती है। बौद्ध और शैव कला के स्रष्टा अपनी रचना के लिए अनुप्रेरणा लेने और कला कौशल सीखने विदेश तो नहीं गये थे। छेनी हथौड़ा लेकर वे तो पहाड़ की कन्दराओं में गये थे। प्रकृति से ही उन्हें अपनी अमर कृतियों के लिये प्रेरणा और शिक्षा मिली थी। प्रकृति और इन कलाकारों की रचनाओं को अपना गुरू बनाओ और भारत में जाकर काम शुरू कर दो। हम लोग तो पुरानी कला का गर्व नहीं कर सकते, यूनान कर सकता है, लेकिन आज उनका देश पतन के गड्ढे में पड़ा हुआ है; मिस्रकी भी वही दशा हुई। लेकिन तुम्हारी रगों में तो अब भी उन्हीं स्रष्टाओं का ख़ून बह रहा है! वह दार्शनिक दृष्टि आज भी तुम्हारी नज़रों से दूर नहीं हुई है। उसकी अवहेलना करके तुम यहां हमारे पास सीखने आये हो ?"

भारत के प्रति, भारतीय कला के प्रति उनके गम्भीर अनुराग और उनकी श्रद्धा को देखकर मेरा मस्तक झुक गया।

धीरे धीरे ग्रान्द शमिये के सभी लोगों से मेरा परिचय हो गया। एक दिन मेरे एक सहपाठी ने पूछा कि मैं कम्यूनिस्ट हूं या नहीं ? मैंने कहा—नहीं। फिर उसने सवाल किया कि तब मैं सोशलिस्ट हूं या फैसिस्ट ? जब उसने सुना कि मैं तीनों में से एक भी नहीं हूं, तब उसे बेहद अचरज हुआ। उसने पूछा—"क्या इन तीनों के अतिरिक्त भी भारत में कोई राजनैतिक मत है ?"

मैंने कहा—"मैं कलाकार हूं, राजनीति से मेरा सरोकार ही क्या ?"

उसने हैरत से मेरी ओर देखकर कहा—"क्या कह रहे हो ? समाज ही राजनीति का आधार है। क्या कलाकार समाज के बाहर है ? तुम मूर्ति बनाते हो, चित्राङ्कन करते हो, यह तुम्हारा पेशा है; किन्तु देश की भलाई बुराई से तुम्हारी भलाई बुराई भी बंधी हुई है। कलाकार होने से क्या हुआ, क्या तुम अपने अन्य देशवासियों की तरह अङ्गरेज़ों के ग़ुलाम नहीं हो ? कला, साहित्य, विज्ञान और संस्कृति के मूल में राजनीति ही है। राजनैतिक अवनति के साथ साथ

कर कहा—"इस साहबी पोशाक में काम कैसे करोगे ?" दूसरे दिन उनके हुक्म के मुताबिक मैं नीले रंग की पतलून पहिन कर उनकी कर्मशाला में गया। बालों को धूल से बचाने के लिये उन्होंने एक काग़ज़ की टोपी दी और उसके बाद कहा—"रास्ते पर एक पत्थर पड़ा हुआ है, जाकर उसे उठा लाओ।"

पत्थर बाज़ार में पड़ा हुआ था। ख़ासी भीड़ थी। मैं तो शर्म से गड़ सा गया। नीले पतलून और काग़ज़ की टोपी में मैं बिलकुल भांड़ सा लग रहा था। मन के भीतर परिश्रम की मर्यादा तो थी नहीं, इसलिये यही मालूम होता था कि लोग एक टकटकी लगाए मुझे देख रहे हैं। हालांकि मुझे देखने की वहां फ़ुरसत किसे थी !

मैंने बड़ी मुशकिल से पत्थर का एक कोना उठाया और फिर हार कर खड़ा हो गया। आचार्य ने आकर मुझे चुपचाप खड़े देख कर पूछा, तो मैंने जवाब दिया "यह काम मुझसे न होगा।" वे बोले तुमने कोई नई बात नहीं कही। जाकर स्टूडिओ से दो गोल लकड़ी ले आओ। ढकेल कर यह पत्थर वहां तक जायगा। पत्थर स्टूडियो तक पहुँचा कर मैं क्षुब्ध हो गया। आचार्य ने बड़े प्यार से पीठ पर हाथ फेर कर कहा—"कलाकार का जीवन दुःख का जीवन है। शायद तुम रास्ते से यहां तक पत्थर लाने की मज़दूरी देने का पैसा भी नहीं कमा सकोगे। कलाकार को तो सभी अवस्थाओं के लिये तय्यार रहना चाहिये।"

शिक्षा समाप्त करने के बाद जब मैं बिदाई के समय उन्हें फ़ीस के बाक़ी रुपये देने गया, तो मेरे दोनों हाथों को दाबकर वे कहने लगे—"कर ! इन्हें रहने दो। ईश्वर ने मुझे खाने भर को दिया है। तुम विदेशी हो। इस लड़ाई की परिस्थिति में मुझसे ज़्यादा तुम्हें रुपयों की ज़रूरत है। उन्हें तुम मेरी ओर से जहाज़ में जलपान के लिये रखना। तुम चले जा रहे हो। समय ऐसा नहीं है कि तुम्हें रहने की सलाह दूं। लेकिन स्टूडियों में अकेले काम करने में मन न लगेगा। कमरे के जिस कोने में तुम काम करते थे, उधर निगाह जाते ही मुझे कितना कष्ट होगा शायद यह तुम नहीं समझ सकोगे।" यह कह कर आचार्य की आंखें डबडबा आई।

फ़्रान्सीसी जनता शायद दुनिया के दूसरे देशों की अपेक्षा कला को ज़्यादा समझती है। उसकी रुचि भी औरों से अच्छी है। इतवार के दिन सरकारी कला संग्रहालयों में टिकट नहीं लगता। उस दिन गरीब जनता बहुत बड़ी तादाद में इन गैलरियों में जाती है और अध्यापकों के भाषण सुनती है। कला को समझने की चेष्टा करती है।

पेरिस विश्वविद्यालय की एक छात्रा मेरे एक मित्र के साथ मेरे बनाये हुये चित्र देखने आई। चित्र देखने के बाद उसने कहा—"आपका बनाया हुआ एक चित्र मैं खरीदना चाहती हूं; किन्तु मेरे पास इतना पैसा नहीं कि मैं अपनी इच्छा पूरी कर सकूं। अगर आप चाहें, तो चित्र के बदले में मैं आपका माडेल बनने को तय्यार हूं। फ़्रान्स एक विशाल साम्राज्य पर हुकूमत करता है। यों भी वह एक धनी मानी देश है; लेकिन यहां की धन दौलत केवल मुट्ठीभर लोगों के हाथ में है। क्रान्ति ही इसका इलाज है और इसी की चेष्टा में हम लोग लगे हुए हैं।"

वर्त्तमान युद्ध छिड़ने के क़रीब तीन हफ़्ते के बाद मेरे एक मित्र ने आकर कहा कि वह मेरा एक चित्र खरीदना चाहते हैं। मैं सुन कर चकित हो गया। वह फ़ौज में भरती हो गये थे। अगले दिन ही मोरचे पर जाने वाले थे। मैंने कहा—"आप तो लड़ाई पर जा रहे हैं चित्र ख़रीद कर क्या होगा ? पता नहीं लड़ाई में क्या हो ?"

मेरे हाथ में रुपये रखते हुये मित्र बोले—"यदि मैं मारा गया, तो इस चित्र से सुख पाने की लालसा मन की मन में रह जायगी। यदि बच कर लौट आया, तो इस चित्र के न मिलने का दुःख बना रहेगा। आपका चित्र मुझे अच्छा लगा, इसीलिये इसे ख़रीद रहा हूं। आगे क्या होगा, यह सोचने के लिये मेरे पास समय नहीं है।"

गरमी के मौसम में इतवार तथा छुट्टियों के दिन कलाकार अपने चित्रों और मूर्तियों को लेकर चौराहों पर जमा हो जाते हैं। फ़ुटपाथ पर और दीवारों पर चित्रों और मूर्तियों को सजा देते हैं। इन कलाकारों की कला की प्रदर्शनी पेरिस के शहर में पचासों जगह सज जाती हैं। उनके पास इतने पैसे नहीं कि बड़ी प्रदर्शनियों में अपने चित्रों को भेजें। फिर भी वे हतोत्साह नहीं होते। वे गैलरियों, नुमाइशों और कला प्रतियोगिता के फ़ैसलों की परवाह नहीं करते। रास्ते के किनारे चित्रों को सजा कर बेचने में उन्हें संकोच नहीं होता। इन कलाकारों के चित्रण में जन-सामान्य की दुःख-कथा का ही चित्रण रहता है। जनता की इनके साथ सहानुभूति होती है।

यूरोप से लौटे हुए बहुत से मित्र अकसर सवाल करते हैं—"आप लोग हमारे देश के दैनिक जीवन का चित्र, साधारण रास्ते, गांव, शहर आदि का चित्र क्यों नहीं बनाते? क्या इनमें कला नहीं है? वर्तमान यूरोपीय कला तो साधारण जीवन से ही प्राण दायिनी शक्ति लेती है।" लेकिन उपरोक्त बातें कहने के समय वे यह भूल जाते हैं कि हमारा देश हर तरह से पिछड़ा हुआ देश है। हम राज-नीति में भी पिछड़े हुए हैं। हमारे कलाकार आज भी धनियों के दास बने हुये हैं। पुराण, रामायण, महाभारत आदि की हमारी प्राचीन पृष्ठभूमि ही मिटती जा रही है। कलाकारों की विचार-धारा गति-हीन सी होती जा रही है। आधुनिक विषयों को लेकर ही कला नहीं बन सकती। कला की जड़ें तो हमारी संस्कृति में गहराई तक गई हुई हैं। उसे व्यक्त करने के लिये हृदय की भाषा तथा सहानुभूति की आवश्यकता है।

यहां के अनेक कलाकार किसान, मज़दूर और ग्रामीण जीवन का भी अंकन करते हैं, किन्तु उनकी कृतियां को देख कर मालूम होता है कि कलाकार के हृदय में विषय वस्तु के प्रति तनिक भी सहानुभूति नहीं है। मालूम होता है कलाकार की हृदय की आंख ही अभी नहीं खुली।

आम जनता और ख़ास कर कलाकारों में कला-बोध तथा प्रगतिशील दृष्टि कोण जाग्रत करने के लिये राष्ट्रीय कला-संग्रहालय की ज़रूरत है। इसके अलावा उपयोगी समालोचना के बिना कला और साहित्य जीवित नहीं रह सकते। समालोचना से ही दोष और गुणों का विचार किया जा सकता है। इस विशाल देश की प्राचीन सभ्यता का बोझ हम सर्वत्र लादे फिरते हैं; लेकिन आज तक एक भी केन्द्रीय राष्ट्रीय संग्रहालय नहीं बन पाया। कला-संग्रहालय ही कलाकारों के पुण्य तीर्थ होते हैं और वहीं से वे देश के नव-निर्माण की प्रेरणा लेते हैं।

पुराने ज़माने के लोग

प्रोफ़ैसर अहमद अली एम० ए०

ज़िन्दगी एक दरिया की तरह बहती है और उसके बहाव को कोई नहीं रोक सकता। जब हम ज़िन्दगी के एक ख़ास दौर से गुज़रते हैं, तो उसके बहाव को देख नहीं सकते, क्योंकि हम ख़ुद उसकी रौ में बहते होते हैं। उसके भंवर में फंसे हुये खिंचे खिंचे चले जाते हैं और हमको ज़िन्दगी का यह बहाव महसूस तक नहीं होता। दरख़्त हवा में झूमते हैं। उनकी नाचती हुई परछाईं स्थिर सतह पर अपना अक्स डालती हैं और उनकी पत्तियां सर धुनती हुई दिखाई देती हैं। जीवन की सतह पर हमारी मिसाल भी इन्हीं थरथराती हुई परछाइयों की तरह है—मगर दरिया बहता जाता है, हमारी परछाइयों से लापरवाह और पत्तियों के मग्न-नृत्य की ओर बग़ैर आकर्षित हुए।

कभी कभी हमें यह ख़याल आता है कि हम क्या हैं और क्या हो सकते थे, लेकिन जब तूफ़ान सर से गुज़र जाता है, तभी हम अपनी नज़र उस पर जमा सकते हैं। उसी वक्त हम भावनाओं से मुक्त होकर उसकी विस्तृत विवेचना कर सकते हैं।

ज़िन्दगी एक झूमता हुआ वृक्ष है, जिसकी तसवीर कोई कैमरा नहीं उतार सकता। हम तो सिर्फ़ उसकी गुदगुदी ही महसूस कर सकते हैं। उसके आनन्द दायक नृत्य से लुत्फ़ उठा सकते हैं।

गुज़र जाने के बाद ही हम चीज़ों की कल्पना और उनका विश्लेषण कर सकते हैं। उनकी मन्थता को जान सकते हैं। उसकी अथाह गहराई को महसूस कर सकते हैं।

स्मृति में तूफ़ान की याद नहीं रहती। राजनैतिक उथल पुथल का निशान तक नहीं होता और हम पर आजकल जो गुज़र रही है, इसकी याद हमसे बहुत दूर होती है। खाने कमाने के लिये कशमकश, इन्सानियत का शानदार जीवन-संग्राम और अपनी हालत की बेहतरी और अधिकार के लिये युद्ध, हमारी स्मृति से बहुत दूर होता है। स्मृति दिल के सारे ज़ख्मों को भर देती है। सब मतभेद मिट जाते हैं क्योंकि स्मृति, जो थके हुए दिलों को लोरियां देकर सुला देती है, न्याय प्रिय है।

× × ×

मेरे बचपन की सब से ज़्यादा जीती जागती तसवीर मेरे दादा की याद है। वे एक बड़ी बूढ़ी उम्र के बुज़ुर्ग थे और उन लोगों में से थे, जो अब क़रीब नायाब हैं। बर्तानवी साम्राज्य के दौर दौरे तथा उत्पत्ति और खपत के पूंजीवादी तरीक़ों के शुरू होने के साथ ही जागीरदारी ज़माने के इस तरह के लोग अब बहुत कम नज़र आते हैं। कभी कभी देहली या लखनऊ जैसे शहर की किसी तंग गली में हमें ऐसे दो चार लोग दिखाई दे जाते हैं। वे अपने आस पास की हर चीज़ से मुंह मोड़ लेते हैं और पश्चिमीय सभ्यता और विचार को स्वीकार करने से परहेज़ करते हैं। सड़कों पर चलते हुए शायद उनको ख़ुद झेंप मालूम होती है। वह अपने को कुछ बीते

हुए ज़माने का महसूस करते हैं। ग़ालिबन वह तहज़ीब के इस नये दौर को पसन्द नहीं करते, जो उन पर लाद दिया गया है। लेकिन फिर भी वे अपना सर ऊंचा रखते हैं, शायद यह सोचकर कि वे भी कभी कुछ थे और इनकी आंखों ने भी बहुत कुछ देखा है। इन्होंने अभी अपने लिबास को नहीं छोड़ा है और अब भी वे अपना मलमल का अंगरखा और पुराने तर्ज़ के सुर्ख़ रंग के जूते पहने नज़र आते हैं। उनकी डाढ़ियां बनी संवरी और चढ़ी हुई होती हैं, या बड़ी शान से सीनों पर गिरी रहती हैं। उनकी डाढ़ियां मौलवियों की उन डाढ़ियों से भिन्न होती हैं, जो गन्दी और उलझी हुई होती हैं और जिनमें कोई ख़ूबसूरती और शान नहीं होती। पुराने शरीफ़ों की डाढ़ी में एक शान होती थी। वे पट्टे रखते थे, उनमें तेल लगाकर कंघी से संवारते थे और बीच से मांग निकालते थे। देहली में वे कड़ी दीवार की गोल कामदार टोपियां पहनते और लखनऊ में सफ़ेद चिकन की छोटी छोटी टोपियां, जो उनके सर पर बीचोंबीच बड़ी सफ़ाई से रखी रहतीं।

लखनऊ वालों की आदत और तर्ज़ तरीक़े में कुछ औरतपन पाया जाता है। उनकी चाल ढाल में एक ज़नाना लोच होता है, जैसा पुराने ज़माने की मुहज़्ज़ब तवायफ़ों में पाया जाता था। जब वे सलाम करते हैं, तो उनकी पतली कमर बल खा जाती है। उनके हाथों में एक नर्तकी की अदा आजाती है। ऐसा मालूम होता है कि ऊपर गरदन के ख़म और नीचे हाथों की अदा को मिलाकर वे हवा में एक मेहराब बना रहे हैं। इसके बरख़िलाफ़ देहली के लोगों में मरदानगी ज़्यादा है।

मैं यहां पुराने शरीफ़ों का ज़िक्र कर रहा हूं। अब तो हम में मर्दानगी बाक़ी रही नहीं। हमारी मर्दानगी तो अब ग़ुलामों की सी है, जिन पर सिर्फ़ हुक्म चलाया जाता है।

मेरे दादा का क़द छै फ़ुट दो इंच था। वह बड़े डील डौल के थे और उन का रोबदार व्यक्तित्व था। उनकी डाढ़ी सफ़ेद थी और बीच में से इधर उधर चढ़ी रहती थी। उनका सर गंजा था, मगर चारों तरफ़ सफ़ेद और नर्म बालों के लच्छे थे। वे इस उम्दगी से कटे हुए होते थे कि उनका किनारा एक तलवार की तेज़ बाढ़ की तरह मालूम होता था। वे एक बलिष्ट सैनिक की तरह तन कर एक सीध में चलते थे और उनकी सूफ़ियाना रंग की कामदार टोपी उनके सर पर ज़रा आड़ी रखी रहती थी। उनकी निगाहों और आवाज़ में बड़ा रोब और दबदबा था।

गर्मियों के ज़माने में वे हमेशा तन्ज़ेब का अंगरखा पहनते थे, जो इस तरह बना होता था कि एक तरफ़ का सीना खुला रहता था (उस ज़माने में अन्दर कपड़ा पहनने का रिवाज न था)। जाड़े में वे जामादार का अंगरखा पहनते थे, जिसमें आमतौर पर स्याह ज़मीन पर सफ़ेद सादे फूल बने होते थे। वे चुस्त मोहरी का चूड़ीदार पाजामा पहनते, पैरों में धुंधले शोख़ रंग का जूता होता, जिस पर सुनहरे काम का एक फूल बना होता और जिसकी नोक ऊपर को मुड़ी होती। इस पर जब वे अंगरखा पहनकर खड़े होते, तो बेहद शानदार मालूम होते। कभी कभी जाड़ों में वे साफ़ा बांधते थे, जिसके पेंच बहुत कसे हुए होते थे और उनकी एक भौं को ढक लेते थे। इससे वे चुस्त तो बहुत मालूम होते, लेकिन ख़ौफ़नाक से हो जाते।

वह ज़नानख़ाने में सिवाय खाने के वक़्त के बहुत कम आते थे। वे अपनी चाय ख़ुद बनाया करते थे। जब कभी वे घर में आते, तो अपने आने की ख़बर देने के लिये ज़ोर से खकारते, ताकि औरतों में अचानक न पहुंच जांय। इनकी आवाज़ सुनते ही बालिग़ लड़कियां, बहुएं और दूसरी बीवियां अपने दुपट्टे सम्हाल कर सरों को ढक लेतीं और अदब से बैठ जातीं। बच्चे ख़ामोश होकर भाग जाते। इनकी चाल में तो अानाई हमेशा से थी, यहां तक कि ७६ वर्ष की उम्र में इन पर लकवा गिरा; इसके बाद से वे बराबर बिस्तर पर पड़े रहते। या तो किसी से बातें किया करते या अकेले ग़म खाया करते; लेकिन इनकी निगाहों और

आवाज़ में अब भी वही रोब दाब था। इनके शौक कीमिया, मछली का शिकार, पुराने चीनी के बर्तनों का भण्डार जमा करना, दवाएं तय्यार करना वग़ैरह थे। हर तरह के फ़कीर और सूफ़ी इनके पास आया करते थे और घण्टों इनसे नायाब जड़ी बूटियों के सम्बन्ध में बातें किया करते। मकान का मरदाना हिस्सा पौधों से भरा हुआ था और इनमें छोटे बड़े अजीब अजीब पत्तियों के कांटेदार पौधे थे, जो एक कीमियागर के साज़ और सामान का हिस्सा होते हैं। अलमारियों में बहुत से पत्थर, हर क़िस्म की दवाएं, ख़ुश्क जड़ी बूटियां और फूल भरे हुए थे।

दादा अब्बा अपने बिस्तर पर पड़े पड़े भी प्रयोग किया करते और हमेशा नये नुसख़े की तलाश में रहते। रोज़ शाम को नौकर जामे मसजिद जाया करता और नई बूटियां लाता। लेकिन जहा तक मुझको याद है, इनको सोना बनाने में कभी कामयाबी नहीं हुई, अलबत्ता मां से मुझे मालूम हुआ था कि मेरे नाना, जो मेरे दादा के चचेरे भाई थे, एक मरतबा कामयाब हो गये थे। किसी फ़क़ीर ने इनको एक शीशी में कोई चीज़ दी थी, जिसके ज़रिये उन्होंने एक तांबे के पैसे को सोने में बदल दिया था और जिससे मेरी मां के लिये कान की बालियां बना ली गई थीं। इसके बाद, उन्होंने इसको सन्दूक़चे में बन्द करके रख दिया। लेकिन इनके दोस्त क़लन्दरशाह सूफ़ी को जब यह मालूम हुआ कि मेरे नाना के हाथ कीमिया लग गई है, तो उन्होंने इसको नष्ट कर देने का हुक्म दिया; क्योंकि इससे आदमी लालची हो जाता है और उसका दिल ख़ुदा और सूफ़ियों की तरफ़ से फिर जाता है। मेरी मां को, जो उस वक्त बहुत छोटी थीं, इस अप्राप्य चीज़ के नष्ट हो जाने का बड़ा दुःख हुआ, जो तांबे को सोने में बदल देती थी—लेकिन मेरे नाना, जो एक सूफ़ी बुज़ुर्ग थे और क़लन्दरशाह से मोहब्बत करते थे, आपस के सम्बन्ध को बिगाड़ना न चाहते थे और उन्होंने क़लन्दरशाह की दिलशिकनी के डर से दौलत की कुंजी को नष्ट कर दिया—दोस्ती के ख़ातिर कौन अपनी दौलत के एक हिस्से की भी क़ुरबानी गवारा करेगा? और फिर आजकल!...

मुझे मेरे दादा के एक दोस्त ख़ूब याद हैं। उनका नाम नादिरशाह था। वे फ़क़ीर थे। हमेशा एक काला कम्बल लपेटे रहते थे। वे बूढ़े थे मगर शानदार। जब कभी हम उनकी मौजूदगी में घर से बाहर निकलते, तो वे हमारे सर पर हाथ फेरते और हमको आशीर्वाद और दुआ देते। वे दादा के सबसे ज़्यादा गहरे दोस्त थे। उनकी ख़ातिर दादा अब्बा बहुत कुछ कर डालते। जब कभी किसी परेशानी में फंसे होते तो फ़ौरन नादिरशाह को बुलाते। उन्होंने मुझको कुछ तावीज़ दिये थे, जो दस ग्यारह बरस की उम्र तक चांदी के ख़ोल में सिले हुए मेरे गले में पड़े रहते थे।

दादा के एक और कीमियागर दोस्त थे। लेकिन मैं इनसे घबराता था, क्योंकि वे मुझे दोबारा ख़तना का डर दिलाकर धमकाते थे। हालांकि यह सब मज़ाक़ ही मज़ाक़ था, लेकिन मैं सहम जाता था। एक दिन उन्होंने मेरा कान काट खाया। वे एक लड़के की कहानी सुना रहे थे, जिसने अपने बाप के दोस्त की तरफ़ से बेपरवाही बरती थी। उन बुज़ुर्ग ने उस वक्त तो कुछ न कहा, लेकिन एक दिन लड़के को बुलाया और उसके कान में कुछ कहने के बहाने से झुककर उसके कान की लो काट ली। उन्होंने वाक़ई बताते बताते मेरा कान भी काट खाया। मैं सोचता हूं कि कहीं मैंने तो कभी अज्ञान में इनकी तरफ़ से बेपरवाही नहीं बरती थी।

इसी तरह और बहुत से लोग अकसर मेरे दादा से मिलने आया करते थे। बहुत से गम्भीर और पागल क़िस्म के लोग। लेकिन इनको पागल कहना अधर्म होगा। इनको मज्ज़ूब "कहना चाहिये। ये वे लोग हैं, जिन पर आध्यात्मिकता का एक ऐसा दौरा आता है, जिसके कारण इन पर एक विशेष रंग छा जाता है। वे दुनिया से मुंह मोड़ लेते हैं। कहा जाता है कि दुनिया का कारख़ाना सूफ़ियों की बदौ-

लत चल रहा है। हर सूफ़ी का एक ख़ास प्रभाव क्षेत्र होता है। ये लोग बेग़र्ज़ फ़क़ीर होते हैं और सूफ़ियाना ज़िन्दगी बसर करते हैं। कोई इनके रुतबे को नहीं जानता; लेकिन वह अपने प्रभाव क्षेत्र की देखभाल करते हैं। हम साधारण लोग इनको नहीं जान सकते। सिर्फ़ ऊंचे दरजे के सूफ़ी इनको पहचान सकते हैं।

बहुत से ऐसे लोग हमारे घर आया करते थे, हालांकि दादा कोई सूफ़ी न थे। अलबत्ता वे सूफ़ियों और फ़क़ीरों की क़द्र बहुत करते थे। मगर उनके सूफ़ी दोस्त सबके सब कीमिया बनाने में बहुत दिलचस्पी लेते थे। वह अजीब ओ ग़रीब जड़ी बूटियों के अप्राप्य नुसख़े रखते थे और सांपों वग़ैरह के बारे में इनको बड़ी जानकारी थी। मेरे दादा भी सांपों के बारे में बहुत कुछ जानते थे और उन्हें हाथ से पकड़ लेते थे।

बाज़ और दूसरी तरह के फ़क़ीर भी हमारे घर आया करते थे। इनमें से एक चालीस बरस की उम्र का अन्धा था। वह अन्धा हाफ़िज़ के नाम से मशहूर था। वह हमेशा नंगा और गन्दगी में लिथड़ा हुआ रहता। उसकी डाढ़ी की तरह सर और जिस्म के बाल भी उलझे रहते। वह हमेशा हाथ में एक बड़ी लाठी लिये रहता और हमारे घर आम तौर पर रात को डोली में बैठकर आता। वह शायद ही कभी सोता और सारी रात, चाहे जाड़ा हो या गरमी, इधर उधर घूमा करता था। लोग उसे बहुत पहुंचा हुआ फ़क़ीर समझते। असली मज्ज़ूब! उनके ख़याल में इसे इल्म ग़ैब भी हासिल था। वह बहुत बचपने से मज्ज़ूब हो गया था और कहा जाता है कि उसने बहुत सी करामातें भी दिखाई थीं। वह कभी कोई अर्थपूर्ण बात न कहता। उसकी गुफ़्तगू सदा उलझी हुई होती थी। जब लोग उससे अपने भविष्य की बात पूछते या ख़ास कोई मुशकिल मामला समझना चाहते तो सवाल को अपने दिमाग़ में लेकर हाफ़िज़ जी के पास बैठ जाते और वह अकसर इसकी उलझी हुई बातचीत और इशारों में अपने सवाल का जवाब पा लेते।

महायुद्ध के ज़माने में अन्धे हाफ़िज़ पर ग़ुस्से और ग़ज़ब की हालत तारी रहती और वह अपना डंडा ज़मीन पर बार बार पटकता। जब तक वह घर में रहता किसी फ़िक्र में इधर उधर घूमता फिरता और एक क्षण भर भी दम न लेता। लोग कहते कि वह जंग का सब हाल जानता है कि इस वक़्त कहां लड़ाई हो रही है, कौन जीत रहा है और कौन हार रहा है। मैं कभी नहीं भूल सकता कि वह अपनी ही गन्दगी में लुथड़ा हुआ फ़र्श पर पड़ा रहता था और उसमें से सड़ायन्ध आती थी। वह फ़र्श को भी गन्दा कर देता और अपनी उंगली को गन्दगी में तर करके सूंघता। मगर लोग उसे पागल न समझते। उनके ख़याल में वह एक मज्ज़ूब था।

दादा के पास और भी फ़क़ीर आया करते थे। लेकिन वे कुछ एक दो तो थे नहीं। चुनांचे मैं बहुतों से नावाक़िफ़ था।

दादा की सबसे ज़्यादा दिल पसन्दगी की चीज़ उनकी ज़ायक़ेदार दवाइयां थीं। ये दवाइयां वे हम लोगों को बांटते थे। चाह के साथ वे इन्हें बनाते थे। सब लड़कों में, जो मेरे भाई होते थे, मैं ही सबसे छोटा था और मुझी को वे सबसे ज़्यादा चाहते थे। चुनांचे सब लड़के मुझी को दादा अब्बा के पास चूरन लेने के लिये भेजते। मैं बेखटके उनके पास चला जाता और कहता—"दादा अब्बा, मुझे ज़रा सा चूरन दे दीजिये।"

वे प्रेम से मुसकराते और अपने पुराने नौकर को जो बरसों से उनकी ख़िदमत में रहा करता था पुकारते—"ग़फ़ूर, उस बोतल को अलमारी से निकाल ला।"

ग़फ़ूर जो अपने स्वामी की तरह ख़ुद भी बूढ़ा हो गया था लड़खड़ाता हुआ अलमारी तक जाता और ग़लती से दूसरी बोतल उठा लाता।

"यह नहीं, दूसरी बड़ी बोतल जो मैंने तुमसे कहा था।" दादा अब्बा ऊंची आवाज़ करके कहते। फिर बोतल से एक चुटकी चूरन निकाल कर मेरी हथेली पर रख देते।

"थोड़ा सा और दादा अब्बा ?"

"बस अब नहीं। यह ज़्यादा नहीं खाया जाता।"

"लेकिन फ़लां फ़लां भाई भी मांग रहे हैं।" मैं गिड़गिड़ा कर कहता और वे कुछ चुटकियां चूरन और दे देते। मैं उसे ज़बान से चाटता हुआ बाहर निकल जाता। मेरे भाई बाहर की तंग गली में मेरा इन्तज़ार करते होते और दौड़ कर मुझे पकड़ लेते।

लेकिन चाय पीने में हम सब को बड़ा लुत्फ़ आता था। शाम को हम सब पांच या छै लड़के, जो पांच-सात साल की उम्र के थे, दादा अब्बा के बड़े कमरे में जमा हो जाते। कभी कभी हम लोग बुलाये जाते और कभी ख़ुद से पहुंच जाते। दादा अब्बा आराम करते और सोते होते और हम सब अपनी छोटी छोटी मुट्ठियों से उनके पांव पर मुक्कियां लगाते। तब ग़फ़ूर समादार जलाता। मुझे नहीं मालूम कि क्यों इस ज़माने में चाय तय्यार करने के लिये समादार इस्तेमाल किये जाते थे। ग़फ़ूर समादार लाता और पास रखता। जब पानी सनसनाने लगता तो दादा अब्बा इसमें दारचीनी और इलायची डाल देते ताकि इसमें ख़ुशबू आ जाय। वे किसी दूसरे को चाय न बनाने देते। जब चाय तय्यार हो रही होती, तो ग़फ़ूर चीनी के प्याले और चमचे लाता। इस दरमियान में दादा अब्बा हमारा सबक़ दोहराते या हुरूफ़ कहलाते। और जब हममें से कोई सबक़ भूल जाता, तो हम सब डर जाते, क्योंकि दादा अब्बा को ग़ुस्सा आ जाता और वे बिगड़ने लगते, हालांकि आमतौर पर वे मेहरबान रहते थे।

एक मरतबा मैं और कुछ मेरे बड़े भाइयों ने बड़ी चची का एक रुपया चुरा लिया। दर असल रुपया लुढ़क गया था और हमने चुपके से उसे उठा लिया था। हमने इसको जाकर भुना लिया और उसके चौंसठ पैसे कर लिये। हमने दो पैसे के बिसकुट और मिठाई ख़रीदी। उस ज़माने में चीज़ें वाक़ई सस्ती मिलती थीं; और बाक़ी पैसों को पोशीदा जगह पर रख दिया। लेकिन किसी ने इनको देख लिया। अब तो हम सब बहुत डरे कि कहीं दादा को इसका पता न चल जाय। लेकिन जिस बात से डरते थे वही हुई। दादा अब्बा को बेहद ग़ुस्सा आया और उन्होंने कहा कि मैं तुम सब को मार डालूंगा। उन्होंने अपनी तलवार के निकाले जाने का हुक्म दिया, जो एक बड़े लकड़ी के सन्दूक में बन्द रहती थी। यह सन्दूक एक अंधेरी कोठरी में रखा हुआ था, जिसके अन्दर जाने के लिये लालटेन की ज़रूरत पड़ती थी; तब उन्होंने मेरे बड़े भाइयों को बुलाया और उनकी आंखों के सामने तलवार चमकाई। दोनों ने पाजामे में पेशाब कर दिया और ख़ौफ़ के मारे उनका रंग फ़क़ हो गया। शायद मेरे कमसिन होने के ख़याल से उन्होंने मुझको तलवार से नहीं धमकाया, लेकिन उनकी आवाज़ ही मेरे हवास उड़ा देने के लिये क्या कम थी। हम सब ने वादा किया कि आइन्दा चोरी न करेंगे और अच्छे लड़कों की तरह रहेंगे।

मगर जब हम चाय के लिये भूखे कुत्तों की तरह दादा अब्बा के चारों तरफ़ बैठे रहते थे, तो हमको कोई ख़ौफ़ नहीं होता था। वह आमतौर से मज़े मज़े की बातें करते, मोहब्बत से पेश आते और कहानियां सुनाते। जब चाय तय्यार हो जाती, तो उसको वे चीनी की छोटी छोटी प्यालियों में डालते। ये चीनी के प्याले हमारे आजकल की प्यालियों की तरह न थे। ये बहुत ख़ूबसूरत असली चीनी के थे। इनमें दस्ता न था। इनका पेंदा तंग और मुंह कुशादा था। चमचे भी चीनी के थे, जिनमें नीले फूल बने हुए थे। चाय दूर से महकती थी और अकसर बेसब्री में हम अपने ओंठ हिला लेते थे। हमको छोटे छोटे फूले फूले बिसकुट दिये जाते, जिनको हम चाय में डुबाकर चमचे से खाते। चाय ऐसी मज़ेदार होती थी कि इसके बाद मैंने कभी ऐसी मज़ेदार चाय पी ही नहीं और न मैं इसका मज़ा कभी चख सकूंगा।

दादा की चन्द और बातें मुझे याद हैं। ये याद एक अच्छे मज़बूत आदमी की है, जिसे ज़िन्दगी के बोझ ने ख़त्म कर दिया।

वे ७० बरस के थे जब मेरे वालिद, जो उनके छुटे बेटे थे, बीमार हुए। हर तरह का इलाज किया

गया। तमाम डाक्टरों और हकीमों ने जवाब दे दिया। बहुत से मौलवियों ने अपने अक़्ली गद्दे लड़ाये और अपनी जांच के मुताबिक जादू टोने और आसेब वग़ैरह का इलाज किया; मगर उनकी हालत ख़राब होती गई।

शुरू शुरू में तो वालिद दादा अब्बा के साथ मकान के मरदाने हिस्से में ही रहते थे; क्योंकि इसी में सहूलियत थी। दूसरे पुराने ज़माने के लोग ज़नान ख़ाने में ज़्यादा देर तक रहना पसन्द न करते थे। दादा के सूफ़ी और फ़क़ीर दोस्त आते और दुआएं मांगते। मगर उनकी हालत रोज़ बरोज़ ख़राब होती गई। तब वे मकान के अन्दर पहुँचा दिये गये, ताकि इनकी तीमारदारी अच्छी तरह हो सके। दादा पर फ़ालिज गिर चुका था और हर दूसरे तीसरे वह अपने बेटे को देखने एक छोटी सी चारपाई पर चार आदमियों की मदद से लाये जाते और कुछ घण्टे गुज़र जाने के बाद वह उसी तरह बाहर ले जाये जाते।

वालिद की हालत जब और ख़राब हो गई, तो ताज़ी हवा के ख़ातिर उन्हें कोठे पर ले जाया गया। दादा अब्बा ने महसूस किया कि उनकी हालत मायूस करने वाली है और वे जब उन्हें देखने के लिये कोठे पर लाये गये, तो ज़ीने की तंगी की वजह से बड़ी दिक़्क़त हुई। ये देखकर कि उनके लाने ले जाने में कितनी दिक़्क़त होती है; वे फूटकर रो पड़े। मैंने उन्हें ज़िन्दगी में पहले पहल रोते देखा। वे एक बेबस और बूढ़े आदमी के ख़ामोश औ दर्द से भरे आंसू थे। उन्होंने ज़बान से कुछ न कहा लेकिन सब समझ गये कि वे बहुत मायूस हैं।

आख़िर एक दिन वालिद का इन्तक़ाल हो गया। मुझे याद है कि दादा अपने पलंग पर पड़े हुए रोते थे। मेरे सामने इस वक्त भी उनकी तसवीर है—वे धार धार रो रहे हैं। उनकी सिसकियों से पलंग हिल रहा है। ये एक बूढ़े आदमी की सिसकियां हैं, जो महसूस करता है कि इसकी हस्ती अब दुनिया में सिर्फ़ एक फ़िज़ूल की मद है।

मुझे याद है कि फिर वे जनाज़े के पीछे पीछे एक डोली में क़बरिस्तान ले जाये गए। उनकी आंखें सुर्ख़ थीं और सूज गई थीं। वे सिसकियां लेते और ज़िन्दगी की नश्वरता की शिकायत करते। अपनी इस बेचारगी पर रोते कि बेटे के जनाज़े को कांधा भी न दे सकते थे। मय्यत क़ब्र में उतारी जा रही है। खुदी हुई मिट्टी के ढेर पर दादा अब्बा डोली में बैठे हुए हैं। लेकिन वे क़ब्र के अन्दर नहीं देख सकते, क्योंकि उनके आगे आदमियों की भीड़ है।

भीड़ छंटती है। मय्यत क़ब्र में है। कहार डोली को क़ब्र के किनारे तक लाते हैं। लोग स्वर्गीय वालिद का चेहरा आख़िरी बार उनके प्यारों को दिखाते हैं। दादा अब्बा का बूढ़ा और कमज़ोर जिस्म सिसकियों से कांप रहा है।

लोग क़ब्र में मिट्टी डाल रहे हैं। दादा अब्बा अपने कांपते हुए हाथों में थोड़ी सी मिट्टी उठाते हैं। कहार डोली को क़ब्र के क़रीब ले जाते हैं। आंखों से दो क़तरे आंसू के इस ताज़ी मिट्टी पर गिर पड़ते हैं, जो वे हाथों में लिये हुए हैं। वे बेबसी से हाथों की मिट्टी क़ब्र में गिरा देते हैं और चेहरा ढंक लेते हैं।

× × ×

बेटे की मौत के तीन बरस बाद दादा और ज़िन्दा रहे। हालाकि वे ज़िन्दगी से थक कर आज़िज़ होगये थे। वे अक़सर रोते थे, लेकिन उनका ख़ात्मा बहुत शान्ति से हुआ। इन पर एक मर्तबा फ़ालिज गिर ही चुका था। एक मरतबा और गिरा। इनका दाहिना हाथ और दाहिना पांव पहले ही बेकार था अब की बार बाएं हाथ और पैर पर असर हुआ।

मरने से कुछ पहले वे बहुत चिड़चिड़े होगये थे और हर तीमारदार को इनकी ख़फ़गी का सामना करना पड़ता था। सिर्फ़ एक बूढ़ी मामा उनको चुप करा सकती थी और उनकी तबियत के माफ़िक़ काम कर सकती थी। दादा अब्बा अपने लड़के के मरने के बाद ज़नानख़ाने में पंहुचा दिये गये थे। यह मामा भी अपनी जवानी के ज़माने से हमारे ही यहां मुलाज़िम थी और लोग कहते थे कि वह दादा की दासता

थी। इनसे उसके एक लड़का भी हुआ था, जो बचपन ही में मर गया था। वही दादा की रोक थाम कर सकती थी, क्योंकि न तो वे उनकी बातों की परवाह करती और न उनके मिज़ाज की। यह देख कर तकलीफ़ होती कि वह अपने बूढ़े मालिक से कितनी बेपरवाही से पेश आती है। दादा अपनी कमज़ोर आवाज़में कुछ कहते, लेकिन वह न सुनती। अगर कोई उससे कहता कि सुनो देखो क्या मांग रहे हैं, तो वह जवाब देती—

"इनकी यही आदत है। उनको किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं। वे सिर्फ़ मुझे परेशान करते हैं"···लेकिन किसी का कुछ बस न चलता, क्योंकि वही उन्हें ख़ामोश कर सकती थी। फिर इसमें शक नहीं कि अब वह सब बोझ महसूस कर रहे थे।

वह रात में शान्ति के साथ गुज़र गये। उनकी ज़बान आख़िरी वक्त तक उनके क़ाबू में रही और मौत से कुछ पहले उन्होंने सबको दुआयें दीं और अपने तमाम प्यारों को, जो वहां नहीं थे या मर गये थे, याद किया।···मौत से कुछ ही पहले वह ग़फ़लत में थे और कुछ बड़बड़ाते थे। एक मरतबा उन्होंने किसी को मुख़ातिब किया, जो अरसा हुआ मर चुका था और उससे बुलन्द आवाज़ में कहा कि मैं तुम्हारे पास आ रहा हूं। यह मालूम होता था कि वे बरी रहे थे। मगर थोड़ी देर में वे समझ की बातें करने लगे। हर एक को दुआ दी और आख़िरी रुख़सत ली।

······जब सुबह मैंने उन्हें बिस्तर पर पड़े देखा, तो वे मरे हुए नहीं मालूम होते थे। उनके चेहरे पर शान्ति थी। उनकी पेशानी पर अब भी वही शान मौजूद थी। लेकिन वह शख़्शीयत कहां थी, सिर्फ़ एक बेजान ख़ोल बाक़ी रह गया था।

उनका इन्तकाल ८० वर्ष की उम्र में हुआ। उनके साथ एक नस्ल का ख़ात्मा हो गया। वह उन लोगों में से थे, जिनको हिन्दुस्तान की जंगे आज़ादी ख़ूब याद थी, जिसे हमारे अंगरेज़ इतिहासकार सन् १८५७ ईसवी का ग़दर कहते हैं। उन्होंने अपने भाइयों, प्यारों, बुज़ुर्गों और हमवतनों को बेदारी से क़त्ल होते देखा। हर रोज़ भागने वालों की लाशें खण्डहरों और गांवों में पड़ी मिलती थीं और हर रोज़ वे एक क़तार में खड़े किये जाते और उनके सर काट लिये जाते। उन्होंने औरतों को बेआबरू होते हुए, बच्चों को कुचले जाते और हज़ारों को भूखों मरते देखा था। उन्होंने अपने बादशाह को गिरफ़्तार होते हुए और मुल्क से निकाले जाते देखा था। उनकी आंखों के सामने शाहज़ादे ज़िबह किये गये और उनके सर दिल्ली दरवाज़े पर लटकाये गए, जो अब भी ख़ूनी दरवाज़े के नाम से मशहूर है। उन्होंने अपने वतन और अपने शहर पर अंगरेज़ों को क़ाबिज़ होते हुए देखा। उनके हाथों उन्होंने हिन्दुस्तान की तहज़ीब और उसकी अज़मत को ख़ाक में मिलते हुए देखा था।

फिर क्या ताज्जुब कि अंग्रेज़ों के लिये उनके दिल में नफ़रत थी और इस क़दर कि हम भी इतनी नफ़रत नहीं कर सकते। उन्होंने अपने सबसे बड़े बेटे को, जब उन्होंने अंगरेज़ी पढ़ना शुरू किया, घर से निकाल दिया और उन बेचारों को अपने चचा के घर पनाह लेनी पड़ी, ताकि वे अपना पढ़ना जारी रख सकें। अंगरेज़ों की हर चीज़ के साथ इस क़दर नफ़रत ग़ालिबन उनके बढ़े हुये तास्सुब की बिना पर थी। लेकिन आज हम इसको समझ सकते हैं और पसन्द करते हैं। इनके बेटों की नसल ऐसी थी जो ग़ालिबन न अंगरेज़ों से नफ़रत करते थे और न मेहनत ही करते थे। वे अंगरेज़ों के नीचे काम करते थे, क्योंकि अंगरेज़ इनको मुलाज़मत देते थे। लेकिन अब पहिये ने पूरा चक्कर ले लिया है। हम अपने मुल्क को आज़ाद देखना चाहते हैं। यह ऐसी आज़ादी है, जो पहले नहीं हासिल हो सकती थी, जिसका अनुमान भी हमारे बुज़ुर्ग न कर सकते थे।

इखनातन, उसकी रानी और छै राजकुमारियाँ सूर्य की पूजा कर रहे हैं।

[समकालीन चित्र]

पत्थर पर खुदा हुआ इखनातन का सिर
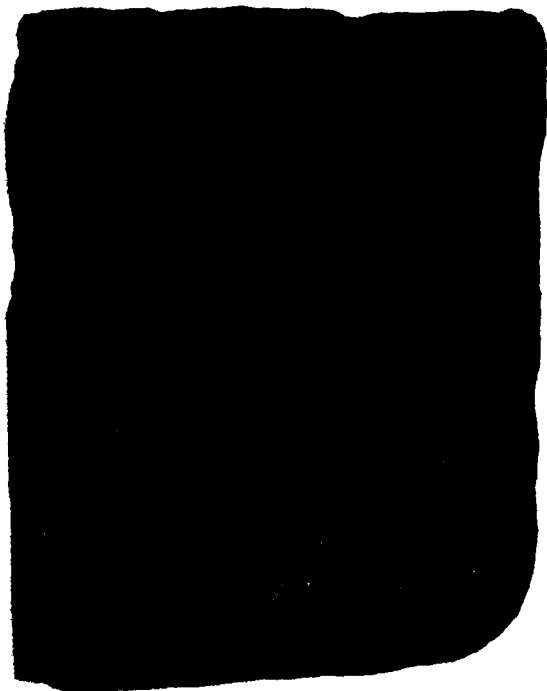
[समकालीन मूर्ति]

कमल के फूलों से इखनातन की रानी अपने पति की अभ्यर्थना कर रही है।

[समकालीन मूर्ति]

इखनातन के कलाकारों ने जिस प्राकृतिक चित्रकला को जन्म दिया

[एक समकालीन चित्र]

मिस्र का तपस्वी पेरोए इखनातन

——०ः०——

पण्डित सुन्दरलाल

—:०:—

हज़रत ईसा से चौदह सौ वर्ष पहले महान मिस्री साम्राज्य की भीतरी हालत यह थी—

(१) मिस्री क़ौम अनेक देवी देवताओं को मानती और पूजती थी। पूजा के तरीक़े दिन बदिन बेहद पेचीदा और जटिल होते जा रहे थे। मन्दिरों की दौलत और जागीरें बेहद बढ़ती जा रही थीं। पुरोहितों का बल इतना बढ़ गया था कि साम्राज्य की हुकूमत और इन्तज़ाम में वे खुले दख़ल देते थे। 'आमन' देवता के सबसे बड़े मन्दिर का प्रधान पुजारी अकसर पेरोए का वज़ीर आज़म होता था। धन और ऐश्वर्य के साथ पुरोहितों का चरित्र भी गिरने लगा था।

(२) साम्राज्य भर की छावनियों में विदेशी तनख़ाहदार सिपाही और ज़्यादहतर उनके विदेशी अफ़सर भरे हुए थे। ये लोग कुछ एशिया के अलग अलग देशों के थे, कुछ दक्खिन नूबिया के काले हब्शी और कुछ यूरोप के दक्खिनी किनारों और आस पास के टापुओं के नीम जङ्गली यूरोपियन। इन्हें आमतौर पर मिस्री विचारों और मिस्री आदर्शों से कोई प्रेम न था। मगर सारा साम्राज्य इन्हीं के हाथों में था।

(३) मिस्र के लोगों में ऐश परस्ती, आराम तलबी, दुनिया की सब क़ौमों से अपने को ऊंचा गिनना और धर्म के नाम पर तरह तरह के अन्ध विश्वास फैले हुये थे।

ठीक ऐसे समय, जब कि मिस्र की यह हालत थी, जब कि एक तरफ़ मिस्री साम्राज्य अपनी चोटी पर था और दूसरी तरफ़ उसी साम्राज्य की बदौलत साम्राज्य और देश दोनों के नाश के बीज चारों तरफ़ बिखरे हुये दिखाई देते थे, मिस्र में एक ऐसी महान आत्मा का जन्म हुआ, जो अशोक और अकबर की तरह दुनिया के बड़े सम्राटों, मनुष्य जाति के बड़े से बड़े भला चाहने वालों और बड़े से बड़े दार्शनिकों और पैग़म्बरों में गिना जाता है। यह पेरोए आमेन होतेप चौथा था, जो बाद में पेरोए इखनातन के नाम से मशहूर हुआ।

पेरोए आमेन होतेप चौथा ऊंचे दरजे का विचारक त्यागी और निर्भीक सुधारक था। उसने अपने देश की हालत पर ग़ौर किया। उसकी नज़र बहुत दूर तक जाती थी।

उसने देखा कि सबसे पहले मिस्र के मन्दिरों और उनके पुजारियों के बल को तोड़ना ज़रूरी था। इन लोगों के पास अथाह धन हो गया था। इनकी जागीरें साम्राज्य के कोने कोने में, नूबिया में और एशिया में फैली हुई थीं। जागीरों के साथ इनकी साज़िशें चलती थीं। मिस्र से बाहर के देशों को चूसने और उन्हें मिस्र के अधीन बनाये रखने में इनका बहुत बड़ा फ़ायदा था। लेकिन जनता के पुराने विश्वास की वजह से इन पुरोहितों का सारी मिस्री क़ौम के दिलों और दिमाग़ों पर राज था। आमेन होतेप चौथे

ने महसूस किया कि इन मन्दिरों और पुरोहितों के बलको तोड़ने के लिये मिस्री जनता के धार्मिक विचार और विश्वास को ठीक करना ज़रूरी है ।

मिस्री उन दिनों सैकड़ों देवी देवताओं की पूजा में विश्वास करते थे, जिनमें कुछ बड़े और कुछ छोटे समझे जाते थे, और जिनका जटिल पूजा पाठ बिना पुरोहितों के न चल सकता था। वे इस अन्ध विश्वास और रूढ़ियों में फंसे हुये थे। आमेन होतेप ने इस अन्ध विश्वास को दूर करना और मिस्रियों के विश्वास को एक ज़्यादह सीधा, सच्चा और अमली रूप देना ज़रूरी समझा। उसने इसके लिये अपने ही देश के धार्मिक और दार्शनिक साहित्य पर नज़र डाली।

सब देवी देवताओं से ऊपर, इन सबको बनाने वाले, एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर की कल्पना मिस्र में हज़ारों साल पहले से मौजूद थी। आमेन होतेप से बहुत पहले मिस्रके अनेक विद्वानों को अपने अलग अलग देवी देवताओं की पूजा में एक सामञ्जस्य पैदा करने, अपने यहां की धार्मिक या पौराणिक कहानियों को एक दार्शनिक रूप देने, उनका इस तरह अर्थ करने, जो विवेक के सामने ठहर सके और अपने बड़े बड़े देवताओं को उसी एक सर्वशक्तिमान परमेश्वर के अलग अलग रूप या उसकी अलग अलग विभूतियां दिखाने की सूझ चुकी थी। इस दार्शनिक समन्वय का मिस्री किताबों में ख़ूब ज़िक्र था। साम्राज्य की बदौलत दूर दूर के देशों के साथ मिस्रियों का मेल जोल जब बढ़ने लगा, तो वहां के विद्वानों को और भी ज़्यादह मालूम होने लगा कि मनुष्य जाति एक है और यदि सबका एक सम्राट हो सकता है, तो सारे विश्व का ईश्वर भी एक है। जिस तरह मिस्री दार्शनिकों ने उन दिनों अपनी पौराणिक कथाओं का अर्थ करना शुरू कर दिया था, उसकी एक मिसाल यह है—

हज़ारों साल से 'ताह' (Ptah) कारीगरों का ख़ास देवता माना जाता था। समझा जाता था ताह ही कारीगरों के दिमाग़ों में नई नई चीज़ों के नक़्शे पैदा करता है। मेम्फ़ी नगर में ताह का एक बड़ा मन्दिर था। ताह के एक भक्त ने एक पुस्तक लिखी, जिसमें उसने दिखाया कि इस सारे विश्व का जो यह इतना बड़ा कारख़ाना चल रहा है, उसके पीछे, जो महाचैतन्य काम कर रहा है, उसी का नाम 'ताह' है। वही सबसे ऊपर सारी सृष्टि का रचने वाला और उसे चलाने वाला है, यहां तक कि सब देवता उसी से पैदा हुये। वह सब के दिलों के अन्दर है। सृष्टि से पहले तमाम चीज़ों की कल्पना इसी महाचैतन्य के अन्दर मौजूद थी और अब भी है। सृष्टि को रचने के लिये उसने पहले अपने अन्दर से 'शब्द' को पैदा किया। 'ताह' से शब्द पैदा हुआ और उस शब्द से सारी सृष्टि ज़हूर में आई। इस तरह ताह एक सर्वोपरि परमात्मा की एक शक्ति या उसकी एक ख़ास विभूति का नाम होगया।

चीन के पुराने 'ताओ' धर्म में ताओ की कल्पना और इस मिस्री विद्वान की इस 'ताह' की कल्पना, दोनों में इतनी ज़्यादह समानता है कि बहुत मुमकिन है पच्छिम एशिया से होकर चीनी विचार भी उन दिनों मिस्र तक पहुंचे हों।

चेतन्य या मन की जगह यहूदियों, भारतवासियों वग़ैरह की तरह मिस्री 'हिपु' कहते थे, जिसका अर्थ है दिल। दिल को वे आदमी के अन्दर विचार उत्पन्न होने की जगह मानते हैं। दिल ही को अन्तरात्मा, ज़मीर या कान्शेन्स के मायनों में भी काम में लाते थे।

यूनानी दर्शन शास्त्र के अन्दर 'लोगस' यानी शब्द का ख़ास महत्व और इञ्जील के अन्दर सृष्टि से पहले शब्द के ज़हूर में आने का वर्णन, हज़रत ईसा का 'ईश्वरीय शब्द' कह कर पुकारा जाना—ये सब विचार मिस्रके इस ज़माने के फ़लसफ़े से लिये गये। पौराणिक कथाओं को इस तरह रूपक समझ कर, उनके मायने निकालना यूनानियों ने मिस्रियों ही से सीखा।

'ताह' ही की तरह और बड़े बड़े देवताओं को भी एक परमेश्वर के रूप या उसकी अलग अलग विभूतियां बताया गया।

दर्शन शास्त्र की किताबों से हट कर जहां तक व्यवहार का ताल्लुक़ था, मिस्र में तीन बड़े देवता उस समय बराबर की टक्कर के थे। मेम्फ़ी नगर में 'ताह',

थीबी में 'आमन' और हेलियोपाली में 'रे'। इन में रे सब से पुराना था और आमन के पुजारी सब में ज़्यादा धनी और बलवान। इन देवताओं में कौन बड़ा था और कौन छोटा, इस बात की लागडाट और झगड़े भी उनके भक्तों में होते रहते थे। बेशुमार छोटे छोटे देवी देवताओं में भी इसी तरह की लाग डाट बढ़ रही थी। जनता ज़्यादातर कर्तव्य विमूढ़ और पथ भ्रष्ट थी। मालूम होता था कि मिस्र की मूक आत्मा अब इन सब को छोड़ कर केवल एक सर्वोपरि परमेश्वर की सीधी सादी पूजा की ओर जाना चाहती थी।

आमेन होतेप ने मिस्री आत्मा की इस मूक पुकार और मिस्री क़ौम की इस ज़रूरत को समझ लिया। उसने उपदेश देना शुरू किया कि परमेश्वर एक है, वही सब क़ौमों, सब देशों और सब प्राणियों का एक समान ईश्वर है। वह निराकार, सर्वशक्तिमान, सब को पैदा करने वाला और सबका पालने वाला है। उसके सिवाय और किसी भी देवी या देवता की पूजा करने की ज़रूरत नहीं है।

इसके साथ ही आम लोगों के लिये उसने नाम और रूप की ज़रूरत को भी महसूस किया। हज़ारों साल से मिस्री जनता सूरज को अपना सब से बड़ा देवता मानते आई थी। एशिया वग़ैरह के दूसरे देशों में भी सूरज की पूजा होती थी। आमेन होतेप ने सूरज को निराकार ईश्वर का सबसे बड़ा चिन्ह, उसकी सबसे बड़ी सृष्टि और सबसे बड़ी विभूति बताया और इस ख़याल से सूरज की पूजा को आम लोगों के लिये जायज़ बताया।

मिस्र में सूरज की कई नामों से और कई शक्लों में पूजा होती थी। इनमें मुख्य नाम 'आमन' और 'रे' थे। इनके अलग अलग मन्दिर थे। आमेन होतेप ने इन दोनों को सूरज ही के नाम बताया। लेकिन इन मन्दिरों के पाखण्डों को तोड़ने के लिये उसने पुरानी किताबों में से सूरज का एक नया नाम 'आतन' ढूंढ़ निकाला। उसने 'आतन' ही को सूरज का और ईश्वर का मूल नाम बताया, जिनमें निराकार आतन और साकार सूरज इन दोनों के अलावा और किसी भी देवी देवता की पूजा को उसने पाप बताया।

आमेन होतेप चौथे ने इस बात का ऐलान किया कि निराकार आतन ने मुझे ख़ास सन्देश देकर मनुष्यों के विचारों और विश्वासों को सुधारने के लिये भेजा है। वह अपने को 'आतन का बेटा' 'पैग़म्बर' और 'द्रष्टा' बतलाता था।

फेरोए आमेन होतेप ने आतन के कई सुन्दर भजन बनाये, जो दुनिया के धार्मिक साहित्य में बहुत ऊंचे दरजे के माने जाते हैं। ये भजन इस सुधारक फेरोए के विचारों को ख़ासा चित्रित करते हैं। इञ्जील में 'हिम्नज़' नामकी पुस्तक के एक सौ चारवें भजन में पद के पद, ख़ासकर उसके बीस से छब्बीस तक के पद आमेन होतेप के एक भजन से तरजुमा करके लिये गये हैं। उसके भजनों के कोई कोई पद निराकार परमेश्वर और साकार सूरज दोनों के लिये पढ़े जा सकते हैं। उसके एक भजन के नीचे लिखे पद 'निराकार आतन' की स्तुति में हैं—

ऐ ज़िन्दा 'आतन' तुझ से
ही जीवन का प्रारम्भ है।
तू ही माता के पेट में
बच्चे को गढ़ता है।
तू ही पुरुष के अन्दर
वीर्य बनाता है।
तू ही मां के शरीर के अन्दर
बच्चे में जान डालता है।
तू ही बच्चे की तसल्ली
करता है, ताकि वह रोये नहीं।
गर्भ के अन्दर तू ही
खाना पहुंचाता है।

तेरे सब काम कितने अनन्त हैं!
वे हमारी आंखों से ओझल हैं!

ऐ अनन्य ईश्वर! तेरे सिवा
कोई दूसरा ईश्वर नहीं है!

तूने अपनी इच्छा से
इस ज़मीन की रचना की !
उस समय जबकि तू ही था !
तूने आदमी को बनाया,
सब छोटे बड़े जानवरों को ?

उन सबको जो ज़मीन पर रहते हैं !
जो अपने पैरों पर चलते हैं !
उन सबको जो आसमान में हैं !
जो अपने परों से उड़ते हैं !
तूने हर आदमी के लिये
उसकी जगह मुक़र्रर की !

वे अलग अलग ज़बानें बोलते हैं;
उनकी शक्लें अलग अलग हैं;
उनके रङ्ग अलग अलग हैं !
तू ही अलग अलग करने वाला है
तूने अलग अलग क़ौमें बनादी हैं !

इस नीचे की दुनिया में नील
नदी का बनाने वाला तू है !
एक नील नदी तूने
आसमान में बहा रखी है !
ताकि उसका जल सबके लिये बरसे !
उस ऊपर की नील नदी से सब आबादियों
में सबके खेतों को पानी पहुँचाता है !

तेरा इन्तज़ाम कितना बढ़िया है,
ऐ अनन्त के मालिक !
आकाश की नील नदी सब देशों के लिये है !
और सब देशों के पशुओं के लिये है,
जो अपने पैरों पर चलते हैं !
इस नीचे की दुनिया की नील
नदी मिस्र के लिये बहती है !
इस तरह तेरी किरनें हर बग़ीचे
को हरा भरा रखती हैं।

तू ही ऋतुओं का बनाने वाला है !
तू अकेला तरह तरह की शक्लों
में सौन्दर्य पैदा करता है !
शहर क़स्बे और आबादियां !
शाह राहों के ऊपर या दरियाओं के किनारे !
सब आंखें तुझे अपने सामने देखती हैं !
क्योंकि इस पृथ्वी के ऊपर
दिन का 'आतन' तू ही है।

तू मेरे दिल के अन्दर है !
और कोई तुझे नहीं जानता---
सिवाय तेरे बेटे इखनातन के !
तूने उसे अच्छी तरह सिखा दिया
है कि तेरी लीलायें क्या हैं !
और तेरी शक्ति कितनी है !
संसार तेरे हाथ में है !
क्योंकि तूने ही सबको बनाया है।
तू ही काल है !
तूने यह सब अपने बेटे के लिये किया है
जो तेरे ही अङ्गों से पैदा हुआ है ।

उसी भजन के ये दूसरे पद साकार 'आतन' सूरज की सुन्दर स्तुति हैं—

आसमान पर तेरा उगना कितना सुन्दर है ?
जब तू आसमान के पूरब के सिरे पर उगता है !
सारी पृथ्वी को तू अपनी सुन्दरता से भर देता है !
तेरी किरनें सब मुल्कों को घेर लेतीं हैं !
तू सब को अपने प्रेम में बांध लेता है !
तू दूर है, लेकिन तेरी किरनें ज़मीन पर हैं !

तू आसमान पर है लेकिन हमारे
दिन तेरे क़दमों के निशान हैं !
जब तू आसमान के पच्छिमी
सिरे में डूब जाता है !
दुनिया के ऊपर मृत्यु का
सा अंधेरा छा जाता है !

शेर अपनी मांदों से निकल पड़ते हैं !
सब सांप, जो काटते हैं !
अंधेरा राज करने लगता है !
दुनिया खामोश हो जाती है !
जिसने इन सब को बनाया था,
वह अपने क्षितिज में आराम
करने चला गया !
पृथ्वी चमकने लगती है !

जब तू अपने क्षितिज से निकलता है !
जब तू दिन में आतन बनकर चमता है !
अंधेरा दूर हो जाता है !
जब तू अपनी किरनें फेंकता है !
तब दुनिया में सब अपने अपने
काम में लग जाते हैं !

सब जानवर अपने हरे चारे पर पहुँच जाते हैं !
सब दरख्त और पौधे लहलहाने लगते हैं।
दलदलों में पक्षी उड़ते फिरते हैं !
तेरी स्तुति में अपने अपने पर ऊंचा किये हुये !
किश्तियां नदी के ऊपर आने जाने लगती हैं !
चूंकि तू निकल आया सब रास्ते खुल जाते हैं !
तेरे सामने नदी की मछलियां कूदने लगती हैं।
विशाल समुद्र के बीच में तेरी किरनें पड़ती हैं !

अपने अलग अलग भजनों में आमेन होतेप ईश्वर को सब देशों, सब क़ौमों यहां तक कि "सब पशु पक्षियों और दरख्तों तक का ईश्वर" "सब का बाप और सब की मां" बताता है, "पक्षी और मछलियां तक उसकी स्तुति करते हैं।" एक निराकार 'आतन' की औलाद की हैसियत से सब आदमी, बल्कि सब जानदार "भाई भाई हैं"। 'आतन' सबका भला करता है, इसलिये हम "सबको एक दूसरे से प्रेम करना चाहिये।" प्रेम और सत्य इन दो पर वह सबसे ज़्यादह ज़ोर देता था। अपने को वह "वह जिसका जीवन सत्य पर क़ायम है;" कहता था। देश और जाति के भेद भाव और ऊंच नीच के विचार को वह इतना ग़लत समझता था कि जब कभी साम्राज्य के देशों की शुमार होती थी, वह पच्छिम एशिया के सुरिया देश और काले हब्शियों के नूबिया देश की शुमार हमेशा मिस्र से पहले करता था।

केवल अपने भाइयों की हिंसा के सहारे जीने वाले तनख़्वाहदार फ़ौजी सिपाहियों को खत्म करने का उसे एक ही तरीक़ा सूझा। मिस्री क़ौम के झूठे घमण्ड को तोड़ने; उनके चरित्र को सुधारने और उनमें फिर से सादगी लाने का यही एक मात्र तरीक़ा हो सकता था। उसने खुलेआम उपदेश देना शुरू किया कि किसी भी देश को उसकी इच्छा के ख़िलाफ़ अपने अधीन रखना पाप है। वह कहा करता था कि "इस सारे साम्राज्य और एशिया के सारे प्रान्तों के मुक़ाबले में इनसान की ज़िन्दगी का आदर्श, उसका फ़लसफ़ा, उसका विश्वास ज़्यादह महत्व की चीज़ है।" साम्राज्य को वह अपने देश और धर्म दोनों के लिये हानिकर बताता था। अपने इन उसूलों को वह इतनी सच्चाई से पालता था कि यदि किसी मुल्क में बग़ावत होगई, तो उसने फ़ौज भेजकर बाग़ियों को दबाने की इजाज़त देने से साफ़ इनकार कर दिया। मिस्री राजघरानों की हज़ारों साल की परम्परा को तोड़ कर उसने मामूली आदमियों का सा सीधा सादा जीवन व्यतीत करना, अपनी विदुषी स्त्री और विदुषी माता के साथ, जो दोनों एशिया की थीं, अपने बच्चों की उंगलियां पकड़ कर सब के सामने मामूली प्रजा की तरह गलियों में घूमना और जहां तहां लोगों को जमा करके रोज़ उपदेश देना शुरू कर दिया। सचमुच उसकी सारी ज़िन्दगी किताब की तरह खुली और सच्चाई पर क़ायम थी।

इस अनोखे मिस्री पैग़म्बर फेरोए के उपदेश दो हज़ार साल तक सभ्य संसार में इतनी अच्छी तरह गूंजते रहे कि १३०० साल बाद हज़रत ईसा के उपदेशों में आमेन होतेप के वाक्य के वाक्य ज्यों के त्यों मिलते हैं। उसके अनेकों वाक्य इञ्जील और क़ुरान में पाये जाते हैं। वह अपने को आतन का ख़ास बेटा कहता था। इसलाम के कलमे "एक अल्लाह के सिवाय दूसरा ख़ुदा नहीं है और मोहम्मद उसका भेजा हुआ 'रसूल' है"—के दोनों टुकड़े अलग अलग ज्यों के त्यों इखना-

तन के भजनों में मिलते हैं, केवल अल्लाह का नाम आतन है और मोहम्मद की जगह इखनातन। यह बात जानने के योग्य है कि क़ुरान के अन्दर भी कलमे के दोनों टुकड़े यानी एक "ला इलाह इल्लल्लाह" और दूसरा "मोहम्मद उर्रसूलिल्लाह" किसी एक जगह एक साथ नहीं मिलते।

आमेन होतेप के उपदेशों में दुनिया के दूसरे बड़े बड़े सन्त महात्माओं के उपदेशों की तरह एक रहस्य-वाद, योग, समाधि और ज्ञानेन्द्रियों से परे की चेतनता का भी ज़िक्र मिलता है। इसमें शक नहीं कि वह एक महान आत्मा था और संसार के सम्राटों में अपनी क़िस्म का शायद अकेला। यूरोप के बहुत से विद्वान उसे "इतिहास में पहला पैग़म्बर" कहते हैं।

अपने समय की मिस्री कला और चित्रकारी पर भी उसके उपदेशों का गहरा असर पड़ा। कृत्रिमता और बनावट की जगह स्वाभाविकता और प्रकृति की ओर वापिस लौटने की रुचि बढ़ी। बाद की यूनानी कला ने इससे बहुत कुछ सीखा।

प्रजा के लिये उसने आतन के कई नये मन्दिर बनवाये, जिनमें गोल सूरज की पूजा होने लगी। उसने उपदेश दिया कि जिस तरह निराकार ईश्वर से निकल कर चेतन्य की किरनें सब मनुष्यों, जानवरों और सारे विश्व को जीवन देती हैं, उसी तरह साकार सूरज से गरमी की किरनें निकल कर, जिनके बग़ैर पृथ्वी पर जीवन क़ायम नहीं रह सकता, चारों ओर फैलती और सबको गरमी देती हैं। ये किरनें आदमी के हाथों में समाप्त होती हैं और उन्हें लेने के लिये हर आदमी के हाथ में एक 'जीवन का चिन्ह' होता है जो इस शकल का है '♀'। इस चिन्ह को उसने जीवन का चिन्ह मुक़र्रर किया। ईसाई 'क्रास' का निशान बाद में इसी मिस्री जीवन चिन्ह से लिया गया।

साम्राज्य के दूर दूर के लोगों ने आमेन होतेप के इन व्यापक उपदेशों की क़द्र की। आतन के मन्दिर जगह जगह बन गये, जिनमें नया 'जीवन चिन्ह' गोलाकार सूरज के साथ साथ रखा जाने लगा। इस तरह सारे साम्राज्य में एक से धार्मिक विचार फैलने लगे।

इससे पहले मिस्र में जो क़बरें बनती थीं, उनमें भूतों प्रेतों, चुड़ैलों और शैतानों की ख़ौफ़नाक तसवीरें भरी रहती थीं। समझा जाता था कि मरने के बाद मनुष्य की आत्मा का इनसे सामना होता है। उनका मुक़ाबला करने के लिये क़बरों पर तरह तरह के जन्तर मन्तर बने होते थे। इखनातन ने अपने अनुयाइयों में इस सबको बन्द कर दिया। नई क़बरें अब सुन्दर क़ुदरती तसवीरों से सजी हुई केवल एक यादगार की चीज़ें रह गई।

मिस्री बादशाहों की पुरानी परम्पराओं से बचने और पुराने रिवाजों को तोड़ने के लिये इस फेरोए ने ३०० मील नीचे अपनी एक नई राजधानी बनाई। इस नये शहर का नाम उसने 'अखे-तातन' (आतन का क्षितिज) रखा। यह सुन्दर शहर, जो किसी समय महलों का शहर कहलाता था और जिसकी हाल में खुदी हुई सुन्दर ऊंची इमारतों और साफ़ चौड़ी सड़कों को देखकर आजकल के यात्री भी दङ्ग रह जाते हैं, उत्तर से दक्खिन तक आठ मील चौड़ा और पूरब से पच्छिम तक कहीं बारह मील और कहीं सत्रह मील लम्बा था। बाद में यह 'तल-अल अमर्ना' के नाम से मशहूर हुआ।

शुरू में आमन होतेप ने अपने धार्मिक विचारों के फैलाने के लिये राज की शक्ति का किसी तरह का उपयोग नहीं किया। वह केवल एक मामूली सुधारक या उपदेशक की तरह लोगों में बैठकर उन्हें उपदेश देता रहता था। प्रजा को उसने पूरी मज़हबी आज़ादी दे रखी थी। यहां तक कि उसने पुराने मन्दिरों की सरकारी जागीरें तक ज्यों की त्यों रहने दीं।

लेकिन उसके उपदेशों का क़ुदरती नतीजा यह हुआ कि मन्दिरों का बड़प्पन और उनकी आमदनी तेज़ी के साथ घटने लगी। थीबी से राजधानी हटा लिये जाने की वजह से थीबी के मशहूर और सब से बड़े मन्दिर 'आमन' देवता के मन्दिर को ज़्यादह धक्का लगा। आमन के बलवान और घमण्डी पुजारियों ने अब इस फेरोए के ख़िलाफ़ लोगों को भड़काया। कुछ फ़ौजी अफ़सर, पुराने दरबारी और

कर्मचारी भी इन लोगों के साथ मिल गये। साज़िश की गई। मिस्र में आमेन होतेप चौथे के ख़िलाफ़ एक ज़बरदस्त बग़ावत हुई।

पेरोए ने बाग़ियों के साथ नरमी का बर्ताव किया। वह हिंसा के विरुद्ध था। इस बार उसने केवल आमन के मन्दिर की सरकारी जागीरें ज़ब्त कर लीं। उसने अपना पुराना नाम 'आमेन होतेप' जिसमें आमन नाम आता था, बदल कर अपना नाम 'इखनातन' रख लिया, जिसका अर्थ है 'आतन की आत्मा।' अपनी एक लड़की का नाम, उसने बेकेत-आतन (आतन की दासी) रखा। पुरानी सरकारी इमारतों में जहां जहां देवता शब्द बहु वचन में आता था, सब जगह से मिटवा कर उसने एक वचन करवा दिया। अपने घरों में या मन्दिरों के अन्दर लोग जिस देवता की चाहे पूजा कर सकते थे; लेकिन आम जगहों में या सार्वजनिक तौर पर सिवाय आतन के किसी देवी देवता की पूजा अब जुर्म क़रार दे दी गई। आतन की पूजा में पूजा के पुराने तरीक़े और मन्त्र तक सब बदल दिये गये, जिसमें किसी पुरोहित की ज़रूरत न पड़ती थी।

बाहर के देशों के साथ इखनातन का व्यवहार शुरू से बहुत अच्छा रहा। उसके तख़्त पर बैठने के समय खत्ती क़ौम के राजा सेपलेल, मित्तन्नी के राजा दशरथ और बाबुल के राजा बर्रा बरि आश ने एशिया से इखनातन को बधाई और दोस्ती के सन्देश भेजे थे। राजा दशरथ ने इखनातन की मां राजमाता तिई को भी जो दशरथ के ही घराने की थी, बधाई का एक सुन्दर पत्र भेजा था। बर्रा बरि आश का एक बेटा इखनातन के दरबार में पहुंचा। इखनातन ने अपनी एक बेटी के साथ उसका विवाह किया। बर्रा बरि आश ने अपने बेटे की बहू के लिये मुंह दिखाई में एक हज़ार से ऊपर जवाहरात की एक सुन्दर माला भेजी। यहां यह कह देना ज़रूरी है कि खत्ती और मित्तन्नी लोग वैदिक आर्य देवताओं की पूजा करते थे।

शान्ति के इस अद्भुत पुजारी ने मिस्र में अपने उपदेश और सुधार जारी रखे। सन् १३५८ ई० पू० में इस सन्त और तपस्वी पेरोए की मृत्यु हुई। चेहरे से वह यति और संयमी दिखाई देता था। दूर एक जङ्गली घाटी के निर्जन कोने में एक छोटी सी सादा क़ब्र के अन्दर जो उसने ख़ुद पहले से खुदवा रखी थी, उसे दफ़न कर दिया गया।

उसके कोई बेटा न था। उसका एक दामाद साकेरे और उसके बाद दूसरा दामाद तूतेन खातन गद्दी पर बैठा। विरोध बढ़ता ही जा रहा था। पुजारियों के दबाव में आकर तुतेन खातन अपनी राजधानी को फिर नए शहर आखेतातन से हटाकर थीबी में ले गया। किसी प्राणी को अब आखेतातन में रहने की इजाज़त न थी। थोड़े ही दिनों में इखनातन का बसाया हुआ वह सुन्दर और शानदार शहर वीरान होकर मिट्टी के नीचे दब गया।

इखनातन का प्रयत्न फल न सका। पुराने अन्धविश्वास फिर ज़ोरों से चमके। साम्राज्य की प्यास मिस्रियों में क़ायम रही और बढ़ती गई।

इखनातन की फ़ौज में एक आदमी हार्मबाब नाम का था। तरह तरह की साज़िशें करके और पुरोहितों के साथ मिलकर सन् १३५० में वह पेरोए के तख़्त पर बैठ गया। मिस्र में उसने आतन की पूजा तक जुर्म क़रार दे दी। आतन के मन्दिर गिरवा दिये गये। इखनातन की क़ब्र को भी उसने खुदवा डाला। जगह जगह से इखनातन के नाम को मिटवा डाला। हुक्म दे दिया कि आइन्दा सरकारी काग़ज़ों में अगर कहीं इखनातन का नाम आवे, तो उसके नाम की जगह "आखेतातन का मुजरिम" लिखा जावे।

इस तरह उस समय के मिस्री अधिकारियों ने अपने देश की सब से महान आत्मा, उस देश के सबसे बड़े दूरदर्शी और सच्चे मानव प्रेमी की यादगार को मिटाना चाहा।*

* पण्डित सुन्दरलाल जी के महान ग्रन्थ संसार की सभ्यताओं के इतिहास के, मिस्र के अध्याय का, एक छोटा सा अंश। —सम्पादक

चङ्गेज़ नामा

शम्शुलउलेमा डा०, एम० हिदायत हुसेन एम० ए०, डी० लिट्

डाक्टर साहब रायल एशियाटिक सोसायटी आफ़ बेङ्गाल के प्रसिद्ध खोजी और इतिहासज्ञ हैं। इतिहास के कितने ही छिपे हुए पहलू खोज निकालने का श्रेय डाक्टर साहब को है। अपनी उदार वृत्तियों के लिये डाक्टर साहब भारतीय इतिहासज्ञों में प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत लेख में डाक्टर साहब ने सम्राट अकबर द्वारा बनवाये हुए इस हस्तलिपि ग्रन्थ का वर्णन किया है। 'चंगेज़ नामा' नामक यह ग्रन्थ सैकड़ों चित्रों से सुसज्जित और सुनहले काम से भरा हुआ कला की अनमोल सामग्री है। हाल ही में यह हस्तलिखित ग्रन्थ प्रकाश में आया है।

'चङ्गेज़ नामा' में तैमूर और उसके उत्तराधिकारी बाबर, हुमायूं का पूरा और सम्राट अकबर के केवल बाईस वर्ष के शासन का वर्णन है। चूंकि इसी समय यह ग्रन्थ लिखा गया, इसलिये अकबर के बाक़ी शासन काल का इसमें वर्णन नहीं है। इस ग्रन्थ की यह अनमोल हस्तलिपि अब तक सुरक्षित रखी है। सम्राट अकबर के नौरत्न अबुल फ़ज़ल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आईने अकबरी' के पृष्ठ ११७ में लिखा है—यूं तो सम्राट अकबर ने सैकड़ों सचित्र और सुन्दर ग्रन्थ तय्यार करवाये, किन्तु इनमें नौ ग्रन्थ ख़ास तौर पर प्रसिद्ध हैं—(१) दास्तान हमज़ा १२ जिल्दों में है, जिसमें चतुर कलाकारों ने इस कहानी के चौदह सौ उद्धरणों के लिये आश्चर्यजनक चित्र बनाकर दिये हैं; (२) चङ्गेज़ नामा, (३) ज़फ़र नामा, (४) अकबर नामा, (५) रज़्म नामा या महाभारत, (६) रामायण, (८) नल-दमन, (८) कलिल वा दिमन और (९) अय्यार दानिश।

इनमें से चङ्गेज़ नामा को छोड़कर बाक़ी सभी ग्रन्थ बहुत मशहूर हैं। चङ्गेज़ नामा के सम्बन्ध में इतिहास के विद्यार्थियों को बहुत थोड़ा परिचय है। वैसे तो चङ्गेज़ और उसके वंशजों के सम्बन्ध में अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये हैं, किन्तु अकबर ने स्वयं इस ग्रन्थ को तय्यार करवाया, यह इसकी विशेषता है। इस ग्रन्थ के मुख पृष्ठ पर सम्राट शाहजहां का अपने हाथ का लिखा हुआ एक वक्तव्य है, जिससे पता चलता है कि यह ग्रन्थ अकबर के शासन काल में तय्यार कराया गया है। शाहजहां ने लिखा है—

"इस ग्रन्थ में विश्व-विजयी तैमूर और उसकी औलाद सम्राट बाबर, सम्राट हुमायूं और सम्राट अकबर के शासन काल के बाईसवें वर्ष तक का संक्षिप्त वर्णन है। यह ग्रन्थ शाहबाबा के शासन में तय्यार किया गया था।" (शाहजहां अकबर को 'शाहबाबा' ही कहा करता था।)

इस हस्त लिखित ग्रन्थ के कुछ शुरू के पृष्ठ और कुछ बाद के इसमें नहीं हैं। अकबर के शासन के उन्नीसवें साल में जो गुजरात के हमले का वर्णन है, उसके बाद के पृष्ठ इसके गुम हो गये हैं। इस तरह अकबर के बीसवें, इक्कीसवें और बाईसवें वर्ष के शासन का इसमें वर्णन नहीं है।

इस ग्रन्थ की दूसरी विशेषता इसकी चित्रकला है। चित्रों की कुल संख्या ११२ है। बीच बीच में कहीं कहीं कुछ चित्र आमने सामने के पृष्ठों पर भी हैं। चित्रकारों की चतुर तूलिका ने चित्रों में इतने

कोमल भाव भर दिये हैं कि सारे चित्रों में एक आश्चर्य जनक सजीवता आ गई है। रङ्गों का चयन, पृष्ठ भूमि और भावों के प्रदर्शन, सब में कलाकार ने अपना कमाल दिखाया है। बदक़िस्मती से जिल्द बांधते समय जिल्दसाज़ ने तसवीर के नीचे का निकला हुआ काग़ज़ काट डाला। हर चित्र के नीचे कलाकार का नाम लिखा हुआ था और इस तरह जिल्दसाज़ की इस भयङ्कर भूल से दुनिया इन सुन्दर कृतियों के महान कलाकारों के नामों से वञ्चित हो गई। फिर भी ५१ चित्र इस तरह के हैं, जिनमें चित्र के अन्दर कलाकारों ने अपने नाम लिख दिये थे और उन्हें देखने से मालूम होता है कि इनमें अधिकांश हिन्दू चित्रकार थे। अबुल फ़ज़्ल ने अपनी आईने अकबरी में इनमें से सिर्फ १३ चित्रकारों का ज़िक्र किया है। कुछ चित्र तो एक ही नाम के दो चित्रकारों के हैं। इनमें जो पद में बड़ा होता था उसके नाम के आगे 'कलां' और पद में जो छोटा होता था उसके नाम के आगे 'ख़ुर्द' जोड़ दिया जाता था। किसी किसी चित्र को दो कलाकारों ने मिलकर बनाया है; ऐसी सूरत में दोनों कलाकारों के नाम उस पर लिखे हैं। किसी किसी चित्र में रेखाङ्कन (ड्राइङ्ग) एक ने किया है, रङ्ग दूसरे ने भरा है और 'चित्रनामी' (finishing touch) तीसरे ने किया है। तीनों कलाकारों का ऐसे चित्रों में ज़िक्र है।

मिस्टर हैवल अपने ग्रन्थ "इण्डियन स्कल्पटर एण्ड पेण्टिङ्ग"(भारतीय शिल्पकला और चित्रकला) के पृष्ट १९६ में लिखते हैं कि चित्रकारों के काम में बट वारे की यह प्रथा शायद सम्राट अकबर ने डाली थी; किन्तु मुग़ल काल के चित्रकारों में अधिक दिनों तक यह प्रथा क़ायम न रह सकी।

इन नौ में से दो सचित्र हस्त लिखित ग्रन्थों के कुछ अंश अनेक पुस्तकालयों में बिखरे हुए पड़े हैं। इङ्गलिस्तान के साउथ किनसिङ्गटन शहर में जो 'विक्टोरिया एण्ड एलबर्ट म्यूज़िअम है, उसमें 'अकबर नामा' का कुछ हिस्सा पड़ा हुआ है! अकबरनामा के इस हिस्से में ११० चित्र हैं। अकबर का तय्यार कराया हुआ 'रज़्मनामा' (महाभारत) महाराजा जयपुर के पास सुरक्षित रखा है। हैवल ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १९७ में लिखा है कि इस महाभारत ग्रन्थ को तय्यार कराने में अकबर ने छै लाख रुपये ख़र्च किये थे। (उस समय के छै लाख रुपये तो आज पचास लाख से भी अधिक हैं।) श्री परसी ब्राउन ने अपनी पुस्तक "इण्डियन पेण्टिङ्ग्ज़ अण्डर मुग़ल्स" (मुग़लों के ज़माने में भारतीय चित्रकला) के पृष्ठ १०८ में लिखा है कि 'दास्तान अमीर हमज़ा' नामक पुस्तक के २५ सचित्र पृष्ठ विक्टोरिया और अलबर्ट म्यूज़िअम में हैं और उसी ग्रन्थ के ६१ सचित्र पृष्ठ वियना के 'आर्ट एण्ड इण्डस्ट्रियल म्यूज़िअम' में हैं।

चङ्गेज़ नामा के कुछ सुन्दर और दिलचस्प चित्रों में कुछ ये हैं—

(१) बालक तैमूर अपने हमजोलियों के साथ राजा राजा का खेल खेल रहा है।

(२) तैमूर और अमीर हुसेन की सन्धि। दोनों एक दूसरे को गले लगा रहे हैं।

(३) तैमूर का शाह मन्सूर पर आक्रमण, जिसमें शाह मन्सूर मारा जाता है। सत्रह वर्ष का मिरज़ा शाह रुख इस चित्र में तैमूर के साथ है।

(४) हुमायूं काबुल, ग़ज़नी क़न्दहार और पञ्जाब की सल्तनत मिरज़ा कामरान को अता कर रहा है।

(५) हुमायूं की गुजरात विजय, जिसमें बहादुर शाह भागता हुआ दिखाया गया है।

(६) सम्राट अकबर के जन्म के समय का दृश्य। हुमायूं की बीवी हमीदा बानू बेगम अमरकोट के दुर्ग में अकबर को जन्म दे रही हैं। प्रसव के बाद मां हरी पोशाक पहने थकी हुई एक कोचकर पर लेटी है। शिशु अकबर को ऊंची तातारी टोपी पहनाए हुए एक धाय ने गोद में ले रखा है। अन्तःपुर में ख़ूब ख़ुशियां मनाई जा रही हैं। स्त्रियां ख़ुशी से फूली नहीं समातीं। इसी तसवीर के नीचे के हिस्से में तरदी बेग ख़ां अमरकोट से पन्द्रह कोस दूर हुमायूं को अकबर के जन्म का शुभ संवाद सुनाने जा रहा है। अकबर के जन्म की यह बहुत ही सुन्दर तसवीर है।

चीनी ग्राम-गीत

कुमारी विद्या नेहरू, बी० ए०, टी० डी०

—:o:—

भारत और चीन दोनों देश महान हैं, प्राचीन हैं और दोनों का सांस्कृतिक सम्बन्ध और आदान प्रदान हज़ारों बरस पहले से चला आता है। सम्राट अशोक और सम्राट कनिष्क के धर्म-प्रतिनिधियों ने चीन के जीवन पर अमर छाप छोड़ी है। हज़ार बरस पहले चीनी यात्री हुएन्त्सांग और फ़ाहियान की भारत यात्रा का वर्णन हमारे गौरव पूर्ण भारतीय इतिहास की टूटी हुई कड़ी है। फिर श्री ताइ-चि-ताओ के कहने के मुताबिक दोनों देशों में सांस्कृतिक अन्धकार छा गया। हमारी आपस की बान्धवता नष्ट होगई और उसे फिर से जोड़ने का महत् श्रेय कवि रवीद्रनाथ ठाकुर को प्राप्त हुआ। उसके बाद ज्यों ज्यों दोनों देशों का राजनैतिक आन्दोलन शक्ति सञ्चय करता गया, त्यों त्यों भारत और चीन की सहानुभूति भी एक दूसरे के प्रति दृढ़ होती गई। इस आपसी सम्बन्ध की अन्तिम छाप पण्डित जवाहर लाल नेहरू की चीन-यात्रा और श्री ताइ चि-ताओ की भारत-यात्रा है।

पिछले कई बरस से चीन के सम्बन्ध में हिन्दी, अङ्गरेज़ी और दूसरी भारतीय भाषाओं में बहुत सा साहित्य प्रकाशित हुआ है। इस साहित्य से चीनी जनता के जीवन की जो थोड़ी बहुत झांकी हमें *मिलती* है, उससे पता चलता है कि दोनों देशों की सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन, आचार-विचार और *इस सबकी आधार-शिला, धार्मिक प्रेरणा, कितनी मिलती जुलती और क़रीब क़रीब एक है। किन्तु* व्याकरण और छन्दों की गति विधि से बंधा हुआ साहित्य, उस देश के महज़ थोड़े से व्यक्तियों के जीवन का परिचय देता है और ग्राम साहित्य में देश की कोटि कोटि जनता के सुख-दुख, आचार-विचार, रूढ़ि और कर्म काण्ड, विरह और प्रेम की सच्ची तसवीर मिलती है। आज हम 'विश्ववाणी' के पाठकों के सामने चीनी ग्राम-गीतों के कुछ नमूने पेश करेंगे। इनसे चीन की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक दशा पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। क़रीब क़रीब समस्त चीन में ये गीत गाये जाते हैं।

चीनी जनता मुख्यतर कृषि-प्रधान है। साल के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक कड़ी मेहनत करके, धूप और शीत सहकर वे अपने दिन गुज़ारते हैं। कभी कभी थोड़े से त्योहार और पर्व उनकी इस ज़िन्दगी के क्रम को सजीव बना देते हैं। इसीलिये उस दुख और सन्तोष के देश में मेले और तमाशे बड़ी उत्सुकता और प्रतीक्षा से देखे जाते हैं। बच्चे और बूढ़े, स्त्री और पुरुष, युवक और युवतियां हंस, खेल और गाकर जीवन के आने वाले दुखों के लिये अपने को अधिक तत्पर बनाते हैं। साल के अन्तिम दिन नौरोज़ पर चीन में ख़ूब उत्सव मनाया जाता है, यज्ञ होता है और यज्ञों में अनेक देवी और देवताओं का आह्वान किया जाता है।

त्साओ वांग-येह चीनियों के कुलदेव और त्साओ नाइ-नाइ चीनियों की कुलदेवी समझी जाती

हैं। ये दोनों देवी देवता दो घड़ों के चौकीदार समझे जाते हैं जिनमें प्रत्येक प्राणी के पाप पुण्य का हिसाब बन्द रहता है। ये दोनों देवता २३ दिसम्बर की रात को इन घड़ों को लेकर स्वर्ग के देवता यू हुआंग ताति के पास जाते हैं। स्वर्ग देवता इन घड़ों को खोल कर प्रत्येक मनुष्य की सज़ा जज़ा का हिसाब लगाता है। अगले वर्ष के लिये कुछ को सज़ा मिलती है और कुछ इनाम पाते हैं। त्साओ वांग-येह की प्रशंसा में एक गीत है—

त्साओ वांग येह !
ओ यज्ञ के देवता तुम महान
याग कुल के प्रतिनिधि हो,
घोड़े पर सवार तुम्हारे हाथ में भाला
है, तुम तीर की तरह उड़ते हुए स्वर्ग
में परमात्मा का साक्षात्कार करने
जाते हो !

नये वर्ष को ख़ुशी में एक गीत है। बच्चे ख़ुश हो होकर गा रहे हैं—

स्वागत नये वर्ष ! स्वागत नये वर्ष !
घण्टे और घड़ियालों की ध्वनि में
आज हम अपने दुख भूल जायें !
भाई ख़ुशी में भर रहा है
और बहिन उछल कूद रही है,
माता-पिता हमें तरह तरह के उपहार दे रहे है,
सबसे हमें मुट्ठी मुट्ठी भर पैसे मिल रहे है ?

इस मुट्ठी मुट्ठी पैसों के उपहार को 'या-सूइ-चईन' कहते हैं। यह नौरोज़ को मिलता है और बच्चे इन पैसों को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक ख़र्च करने को स्वतन्त्र होते हैं। किन्तु ग़रीब परिवार को जिसे खाने के भी लाले हों ये त्योहार आप जैसे लगते हैं। नौरोज़ के दिन एक ग़रीब व्यक्ति के भावों को व्यक्त करने वाला गीत है—

नया वर्ष आ रहा है !
कैसा दुर्भाग्य है ! लड़के नई टोपी और
लड़कियां गहने मांगती हैं,
बहुयें मायके जाने के लिये नये
कपड़ों की फ़रमाइश करती हैं,
वृद्धा पत्नी को मोमबत्ती चाहिये
बुद्ध मन्दिर आलोकित करने को,
मालपुआ बनाने को आटा चाहिये।
नया वर्ष आ रहा है !
मेरा दुर्भाग्य आ रहा है !

नौरोज़ के बाद दूसरा महत्वपूर्ण त्योहार शरद ऋतु में चांद की पूजा का दिन है। उसी दिन सब लोग छैमाही हिसाब किताब करते हैं। बहुतों के लिये यह त्योहार लाभ और सुख लाता है और बहुतों को हानि और दुख का सन्देश देता है। उस दिन घरों में 'यूएहपिङ्ग' नामक मिठाई बनती है। ये चन्द्रमा के आकार की बनती हैं और उस दिन खाई जाती हैं। अंगूर का भी यही मौसम होता है। इस त्योहार के सम्बन्ध में एक गीत है—

शरद ऋतु आ रही है !
शरद ऋतु का उत्सव आ रहा है !
कुछ लोग ख़ुशी से नाच रहे हैं
और कुछ दुख से उदास हैं !
कुछ लोग यूएह-पिङ्ग खा रहे हैं,
कुछ लोग अङ्गूर खा रहे हैं,
शरद ऋतु आ रही है !

किसानों के देश में वर्षा का बेहद महत्व है। उनके जीवन का सुख दुख उस पर निर्भर करता है। वर्षा का सन्देश लाने वाले इन्द्र धनुष पर एक गीत है—

पूर्व दिशा में इन्द्र धनुष निकला है;
अब सुहावना मौसम आवेगा !
पश्चिम दिशा में इन्द्र धनुष निकला है,
वर्षा अवश्य होगी !
यदि दक्खिन में इन्द्र धनुष निकल आये—
तो भयंकर दुष्काल छा जायगा,
रोटी के लाले पड़ जायेंगे,
बच्चों को बेचना पड़ेगा !

भारत में जिस तरह नीलकण्ठ, कउये, उल्लू आदि पक्षियों की आवाज़ शुभ या अशुभ समझी जाती है उसी तरह चीन में भी। चीन में किकी दिवी पक्षी का बोलना बड़ा शुभ माना जाता है। इस सम्बन्ध में एक गीत है—

शुभ किकी दिवी बोल रही है,
मधुर सुन्दर स्वर में बोल रही है!
अब पिता बहुत सा धन कमायेंगे,
मा को और बेटे होंगे,
यदि भाई का विवाह हुआ—
तो भाभी को भी बेटे होंगे—
जो मुझे 'छोटे चाचा' कह कर पुकारेंगे!

इसके अतिरिक्त बहुत से गीत सुन्दर उपदेशों और विचारों को प्रकट करते हैं। एक बूढ़ा आदमी जिन्दगी की आखरी मञ्ज़िल पर पहुँच कर हसरत और निराशा के साथ अपने अतीत की आलोचना करते हुए कहता है—

मैं बूढ़ा होगया और मेरी डाढ़ी सुफ़ेद होगई!
बचपन में सोचा था नगाड़ा बजाने का काम करूं!
लेकिन वह काम मुश्किल लगा!
फिर मैंने सोचा मैं टोपियां ही बुनूं,
किन्तु मैं एक भी अच्छी टोपी न बुन सका!
फिर मैंने सोचा मैं जुड़ाई का ही काम करूं
किन्तु टूटी केटली जोड़ना मेरे लिये कठिन था
फिर मैंने सोचा मै बढ़ई का काम करूं
किन्तु आरी चलाना भी मेरे वश के बाहर था!
तब मैंने सोचा कि मैं पुरोहित ही बन जाऊं!
लेकिन धार्मिक नृत्य भी सहल न थे!
मेरे मन में आया हाय मैं औरत
होकर ही क्यों न पैदा हुआ?
किन्तु सीने पिरोने का काम
तो और भी मुश्किल होता!
मैंने शिक्षक का काम करने की बात सोची,
किन्तु मेरे लिये पढ़ा सकना असम्भव था!
तब मैंने सोचा मैं क़साई ही हो जाऊं?
किन्तु सुअर तो मुझसे न ज़िबह होता!
इसी सोच विचार में बूढ़ा हो गया
और डाढ़ी भी सुफ़ेद होगई

आलसी छात्र एक न एक हीला हवाला देकर पढ़ने से बच जाता है। ऐसे छात्र का गीत है—

बसन्त प्रकृति की पुस्तक पढ़ने का मौसम है,
उस ऋतु में काग़ज़ की पुस्तक
कितनी अस्वाभाविक है,
ग्रीष्म ऋतु का दोपहर सोने के लिये बना है,
और शरद ऋतु में मच्छड़
पढ़ने का अवसर ही नहीं देते,
शिशिर और हेमन्त के
बरफ़ीले दिन पढ़ने के योग्य नहीं,
वर्ष बीत जाता है और मेरी
पुस्तकें बन्द पड़ी रह जाती हैं!

चीन के नाविक तो हज़ारों वर्ष से अपनी जहाज़-रानी के लिये प्रसिद्ध हैं। वहां की बड़ी बड़ी नदियां लाखों नाविकों की जीविका के साधन हैं। ऐसे ही एक नाविक का गीत है—

दक्खिन से उठने वाले बादल,
किश्ती को समुद्र में निकालने
की सूचना देते हैं!
बादल उत्तर दिशा में छा रहे हैं,
अब बाढ़ का पानी घरों में भर जायगा!
बादल पूरब की ओर इकट्ठा हो रहे हैं,
तूफ़ान से बचने की तय्यारी करो!
बादल पच्छिम में जमा हो रहे हैं,
मेघों की देवी नियाग भी वर्षा के वस्त्र पहनेंगी!

इस देश की तरह चीन में भी रोते हुये बच्चों को डराकर सुलाया जाता है। उनसे कहा जाता है कि 'माहू' नामक एक दैत्य आ रहा है। इस सम्बन्ध में एक गीत है—

सोजा मेरे राजा बेटे!
ना तो माहू आय!...

सोजा मेरे राज दुलारे !
ना तो मेढ़ा खाय !
सोजा मेरी आंखों के तारे !
झब्बा बाबा आय !
पीठ पे उसके बड़ा नगाड़ा !
बेटे को डरवाय !

एक सुन्दरी अपने प्रियतम के बिछोह में अन्य मनस्क सी बैठी है। उसकी सखी उससे प्रश्न करती है—

सखी—बीबी, तू अपने बाल क्यों नहीं संवारती ?
सु०—मेरे पास बालों का तेल ही नहीं !
स०—तुम अपना मुंह क्यों नहीं धोतीं ?
सु० मेरे पास साबुन ही नहीं !
स०—तुम खाना क्यों नहीं खातीं ?
सु०—कोई साथी ही नहीं !
स०—तुम दीपक क्यों नहीं जलातीं ?
सु०—तूफ़ान जो उठ रहा है !
स०—फिर घर का फाटक क्यों नहीं बन्द करतीं ?
सु० तुम से सच कहदूं—मुझे उनकी प्रतीक्षा है !

चीन में कभी कभी बड़ी लड़कियों की सगाई छोटे लड़कों से हो जाती है। ऐसी लड़कियों को अपने पति के यहां जाकर रहना पड़ता है। वे अपनी सास की सेवा करती हैं और उस दिन की प्रतीक्षा करती हैं जब उनका वर वयस को प्राप्त हो। इन बहुओं के साथ सास कभी कभी क्रूरता का बर्ताव भी करती है। ऐसी ही एक बहू के विषय में उसकी छोटी बहन कहती है—

मेरी बड़ी बहिन का सत्रहवां साल पूरा होगया,
चार वर्ष में वह इक्कीस की हो जायगी !
तब उसका दूल्हा कुल दस बरस का होगा !
एक दिन दोनों साथ साथ पनघट को जायगे,
बहिन अपने दूल्हे से कितनी ऊंची लगेगी ?
बहिन कहेगी—'यदि मेरी सास मुझे सतायेगी—
'तो ऐ मेरे दूल्हे ! मैं तुझे इसी कुंये में फेंक दूंगी !'

भारत की तरह चीन में भी विधवा का जीवन वैसा ही त्रसित और पीड़ित होता है। इस सम्बन्ध में एक गीत है—

नियांग नियांग देवी का पर्व आ रहा है,
सधवा स्त्रियां देवी को धूप देंगी।
सब सन्तान की प्रार्थना करेंगी,
किन्तु मैं, विधवा, धूप देकर—
किस वरदान की कामना करूं ?

मुङ्ग राजाओं के शासन काल में विधवाओं का पुनर्विवाह पाप समझा जाता था। मिङ्ग राजाओं के शासन काल में यदि कोई विधवा वैधव्य के बीस साल पवित्रता से गुज़ार दे तो राज्य की ओर से उसका आदर और सम्मान किया जाता था और उसके नाम की तख़्ती सड़कों और चौराहों पर लटका दी जाती थी। उसके परिवार के मर्दों से राजकीय बेगार न ली जाती थी। नियांग-नियांग देवी की त्रिमूर्ति के रूप में पूजा होती है। इस त्रिमूर्ति में एक सन्तान देती है, दूसरी प्रसव आसान बनाती है और तीसरी आंख की बीमारियां दूर करती है।

भारत की ही तरह चीन में भी ब्याह शादियों में बेहद चहल पहल रहती है। दुलहन की बिदा पर एक चीनी गीत है—

दुलहन की पालकी आठ कहार उठाएंगे,
दुलहन सुसराल के लिये बिदा हो रही है !
भाई अपनी बहिन को पालकी में बिठा रहा है;
बहिनें आंसू भर कर अपनी बहिन
को बिदा कर रही हैं !
घंटे बज रहे हैं और आतिशबाज़ी छूट रही है !
गड़ ! गड़ ! धम ! धम !
का नाद गगन में छा रहा है।

ज़बर्दस्ती सङ्गीन के ज़ोर पर विदेशी साम्राज्य-वादियों ने अफ़ीम को चीनियों के ऊपर लादा। इस अफ़ीम ने चीन का जितना सर्वनाश किया है उसका रोमाञ्चकारी वर्णन एक नीचे लिखे गीत में है—

अफीम किसी अन्य देश से चीन में आई,
अब वह चारों दिशा में हमारे
देश वासियों की हत्या कर रही है ! मौत
से पहले लोग मौत के मुंह में जा रहे हैं !
अफीमची उस तरह दीपक जलाकर
बैठते हैं जैसे क़ब्र के पास जलता है !
धन और शक्ति का नाश हो रहा है !
अन्त में न उनके पास अन्न रहेगा,
न पहनने को वस्त्र रहेंगे !
कड़ी सरदी में इनके अङ्ग प्रत्यङ्ग ठिठुर जायंगे !
कहीं कोई साथी न रह जायगा !
न भात होगा न नमक मिलेगा !
धीरे धीरे जीवन की अन्तिम घड़ी आ रही है !

यह हर्ष की बात है कि चीन की राष्ट्रीय सरकार अपने देश को अफ़ीम के सर्वनाश से बचाने के लिये अथक प्रयत्न कर रही है। चीन की राष्ट्रीय महासभा ने जगह जगह अफ़ीम विरोधी सभायें कीं, अफ़ीम विरोधी दिवस मनाये और वहां की सरकार ने अफ़ीम पीने पर भारी सज़ाओं के क़ानून बनाये।

चीन की राष्ट्रीय जन-क्रान्ति के पहले चीन के शासन प्रबन्ध की जो कैफ़ियत थी उस पर भी कई गीत हैं। किसान की गाढ़ी मेहनत की कमाई सरकार जिस तरह उसकी टेंट से छीन लेती है इस सम्बन्ध में किसान कहता है—

हमने संगीत की मधुर ध्वनि
में धान के रोपे लगाये !
हमारी आशाओं के साथ साथ
धान के पौधे भी फले फूले !
कड़ी मेहनत के बाद बैल
घास चर रहे हैं !
सरकारी अधिकारी चावल
के पकवान खा रहे हैं !
हम किसान धान के छिलकों
पर गुज़र कर रहे हैं !

लगान वसूल करने वाले सरकारी दफ़्तरों के सम्बन्ध में एक गीत है।

सरकारी दफ़्तर का फाटक
दक्षिण दिशा में खुलता है !
जहां हमें नक़द लगान चुकाना पड़ता है—
न जिसकी कोई वजह है
और न जिसमें कोई तुक है !

चीनी जाति संगीत की बेहद प्रेमी है। उनके ग्राम गीतों में ग़जब की मिठास और लोच होता है। जापानियों के भयंकर अत्याचार भी चीनी जनता के संगीत प्रेम को नहीं दबा सके। संगीत की तान उनके उत्साह को अक्षुण्ण बनाये हुये है।

चीन के इतिहास में इस बात के उल्लेख मिलते हैं कि प्राचीन चीन में कई सम्राटों ने राज्य की ओर से इस तरह के सरकारी अफ़सर मुकर्रर कर दिये थे जो गांव गांव घूम कर ग्राम्य गीतों को इकट्ठा करते थे। अनेक न्याय प्रिय सम्राट इन गीतों को सुन कर अपनी प्रजा की भलाई-बुराई, सुख-दुख और उसके साथ साथ अपनी प्रशंसा और शिकायत के समस्त भावों से परिचित हो जाते थे। इससे पता चलता है कि चीन के राजनैतिक और साहित्यक इतिहास में उस प्राचीन ज़माने में ग्राम गीतों को कितना महत्व दिया जाता था।

———

तुर्की की जन-क्रान्ति

श्री बे बुरहान बल्गी

श्री बल्गी अंकारा के रहने वाले एक प्रसिद्ध तुर्क विद्वान हैं। तुर्की क्रान्ति का जितना अच्छा अध्ययन श्री बल्गी का है उतना बिरले ही किसी का होगा। श्री बल्गी सफल लेखक और अच्छे वक्ता भी हैं।

सन् १८४८ ईसवी में यूरोप के सभी देशों की जनता ने लड़कर या शान्ति से, नागरिक अधिकार यानी मनुष्य के अधिकार प्राप्त कर लिये थे। हर देश में मध्यम श्रेणी के नागरिक राजनैतिक सत्ता के अधिकारी बन गए थे। किन्तु तुर्की सुलतानों ने इस तरह के कोई अधिकार अपनी प्रजा को नहीं दिये। तुर्की साम्राज्य में तुर्कों के अलावा एक बहुत बड़ी तादाद दूसरी क़ौमों की भी थी। सारे साम्राज्य में मध्यम श्रेणी के लोगों को साम्राज्य के उत्थान पतन में अपना कोई हित दिखाई न देता था। न उनके कोई अधिकार थे और न उन्हें कोई आशा थी।

एक तुर्क को भी तुर्की के उसमानी सुलतानों से क्या प्रेम हो सकता था? उसे ज़बान खोलने तक का अधिकार न था। साम्राज्य की दूरस्थ सीमाओं पर विजय करते हुए, या हार खाकर पीछे हटते हुए, उसका काम केवल अपने को बलिदान कर देना था। देश में अधिकारियों और मुल्लाओं का बोल बाला था। मामूली तुर्क की सुख दुख की ज़बान समझने वाला तक कोई न था। किन्तु यह परिस्थिति कब तक रह सकती थी। न सिर्फ़ ईसाई प्रजा ने बल्कि तुर्कों ने भी सम्राट के ख़िलाफ़ अपनी भावनाओं को व्यक्त करना शुरू किया। साम्राज्य के विविध देश टूट टूट कर अलग होने लगे। मिस्र अपनी स्वाधीनता का झंडा फहराने लगा। उसके बाद अन्य बाज गुज़ार देशों ने भी मिस्र की तरह अलग होने की तय्यारी की। थोड़े बहुत अधिकार प्रजा को दिये गये किन्तु उनसे कोई वास्तविक लाभ न हुआ। सुलतान अब्दुल हमीद ने तुर्कों को ख़ुश करने के लिए 'पैन इसलामी' नारे ईजाद किये। किन्तु लोगों को ख़ाली नारों से क्या फ़ायदा होता? वे व्यक्तिगत अधिकार चाहते थे। शासन प्रबन्ध में वे भी अपनी आवाज़ चाहते थे। सुलतान अब्दुल हमीद ने बहुत दिनों राज किया। यिलडीज़ के महल में सुलतान राज करता था और महल के बाहर देश में ज़ुल्म का राज था।

किन्तु तुर्की क़ौम की आत्मा को कब तक इस तरह दबाकर रक्खा जा सकता था? समय के तक़ाज़े ने हम तुर्कों के अन्दर एक महान नेता कमाल अतातुर्क पैदा किया। हमारी क़ौम को ज़बरदस्त क़ुर्बानी करनी पड़ी और बेहद इम्तहान देने पड़े मगर हम उनमें खरे निकले और आज जो कुछ भी तुर्की का रूप है वह अतातुर्क के नेतृत्व और तुर्की क़ौम की तपस्या का फल है। जब अतातुर्क बीमार पड़े, तो लोगों ने तकलीफ़ से पूछा अब तुर्की क़ौम को कौन रास्ता दिखायेगा? किन्तु अतातुर्क के निधन के बाद हमने इस्मत इनोनु जैसे योग्य व्यक्ति के हाथों में अपनी बाग़डोर दे दी। तुर्की क़ौम को अब कोई भय नहीं। उसे अपने वतन के लिये जीना और मरना आता है। हम जानते हैं अभी हमारे अन्दर कमियें,

हैं किन्तु हम तुर्क राष्ट्र-निर्माण के महत्व को समझने लगे हैं। कमाल अता तुर्क ने एक बार कहा था—

"जो इनसान पैदा होता है वह मरता है। हम तो नाशवान हैं किन्तु आइन्दा आने वाली नसलों के लाभ के लिये अपना जीवन देकर हम अपने को अमर कर सकते हैं। हर समझदार आदमी यही करेगा। जिन्दगी का सच्चा आनन्द और सुख तभी हासिल हो सकता है, जब हम औरों के कल्याण के लिये अपना जीवन उत्सर्ग करें। जो आदमी यह करता है, उसे यह भी न सोचना चाहिये कि लोग उसके कार्य की प्रशंसा करेंगे और उसके उपकार के आभारी होंगे! मैं तो यहां तक कहूंगा कि सब में सुखी वह है, जो यह भी न चाहे कि लोग उसके उपकार को याद रखें।

"हर एक आदमी की अपनी अपनी पसन्द होती हैं। कुछ लोग फूलों के पौधे लगाने और बागवानी का शौक रखते हैं। कुछ लोग इनसानों के कल्याण का शौक रखते हैं। क्या वह व्यक्ति जो फूलों का शौक रखता है फूल से कुछ बदला चाहता है? नहीं कुछ भी नहीं। वह महज अपने शौक के लिये करता है। उसी तरह जो व्यक्ति मानव समाज के कल्याण का शौक रखता है, उसे भी उस माली की तरह किसी बदले की आकांक्षा न रखनी चाहिये। जिनकी ऐसी भावना होगी वही अपने वतन की सच्ची सेवा कर सकते हैं। जो व्यक्ति वतन और क़ौम के कल्याण के बजाय अपने स्वार्थ को पहले रखता है, वह खुदगरज़ और नाकारा जीव है। और ऐसे नेता जो यह समझते हैं कि देश और क़ौम की भलाई केवल उनके कारण है, अभिमानी हैं और वे देश को सच्चा लाभ नहीं पहुँचा सकते। निस्वार्थ और निराभिमानी क़ौम के सेवकों पर ही वतन का भविष्य निर्भर करता है। किसी नेता का यह सोचना भी गलत है कि उसके बाद क़ौम की तरक्क़ी रुक जायगी। जो सिद्धान्त व्यक्ति के साथ है, वही सिद्धान्त मुल्क के साथ है। आज दुनिया के सब राष्ट्रों की क़िस्मत क़रीब क़रीब एक दूसरे से जुड़ी हुई है। आज दुनिया सार्व भौमिक मानव एकता की ओर जा रही है। इसीलिये मनुष्य का फ़र्ज़ है कि वह सिर्फ़ अपने मुल्क के फ़ायदे की ही बात न सोचे, बल्कि समस्त दुनिया के कल्याण की चेष्टा करे। हर समझदार आदमी इसी में अपना और सब का फ़ायदा समझता है। दूसरे देशों में सुख और शान्ति की चाहना का ही दूसरा रूप अपने देश में सुख और शान्ति क़ायम करना है। यदि दूसरे देशों में शान्ति और अमन नहीं है, तो हमारा देश भी कब तक सुख और शान्ति से रह सकता है?

"इसीलिये मैं चाहता हूं पहले अपने वतन को प्यार करो और उसकी ख़िदमत करो। उसके बाद दुनिया के तमाम मुल्कों के बाशिन्दों को अपना भाई और उनके वतन को अपना वतन समझो। कौन कह सकता है कि दूर देश में आज जो एक आफ़त उठ रही है, वह किसी न किसी दिन हमें भी अपना शिकार न बनायेगी। इसीलिये हमें सारी पृथ्वी को एक देह समझना चाहिये और विविध देशों को उसी एक देह के विविध अंग.........।"

तुर्की के नये राष्ट्रपति इस्मत इनोनु ने भी अपनी एक तक़रीर में ऐलान किया था कि जिस तरह व्यक्तियों की स्वतन्त्रता का सिद्धान्त क़ायम होगया है, उसी तरह राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का भी सिद्धान्त स्वीकार होना चाहिये। हमें इस तरह के राष्ट्रों का एक परिवार बनाना चाहिये, जो प्रेम और शान्ति से रहना चाहें और जो दूसरे देशों की आर्थिक और नैतिक स्वाधीनता के सिद्धान्त के हामी हों, और जो तोपों और बमों की जगह समझौते की बुनियाद पर अपने मतभेदों का फ़ैसला करने के लिये रज़ामन्द हों।

तुर्कों को मौजूदा समय के समस्त सुख और साधन मिलें और तुर्क अपने पड़ोसी देशों के साथ सुलह और समझौते से रह सकें—यही कमाल अतातुर्क की भावना थी। वर्तमान तुर्की का यही बुनियाद है। लोग हैरत से पूछते हैं—आख़िर हमारी क़ौम ने इतनी जल्दी इतनी तरक्क़ी कैसे करली? मुस्तफ़ा कमाल ने सब से पहले राष्ट्रीय जीवन की एकता को भंग करने वाली सारी प्रवृत्तियों के ख़िलाफ़ जेहाद का ऐलान किया। और ये प्रवृत्तियां थीं क्या? इसलाम के अन्दर जो कठमुल्लापन आ गया था, तुर्की की उन्नति में वह सब से बड़ा बाधक था। इसी लिये यह ज़रूरी मालूम हुआ कि इस प्रवृत्ति को मिटाने के लिये ख़लीफ़ा का पद और उसके तमाम धार्मिक और राजनैतिक असर नष्ट किये जायं। यह आवश्यक दिखाई दिया कि मज़हबी बन्धनों से इनसान की आत्मा को मुक्त किया जाय और धर्म को जिस अंधेरे गड्ढे में धार्मिक प्रवृत्ति ने गिरा दिया है, उसे उठाकर मनुष्य की आत्मा में उसको जगह दी जाय।

मज़हब के नाम पर कठमुल्लों ने निरीह जनता के जीवन की प्रत्येक गति विधि पर जिस तरह क़ब्ज़ा जमा रखा था, अतातुर्क ने सब से पहले तुर्की जनता को उससे बन्धन-मुक्त किया। लोगों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी इसलामी कर्म काण्डों के उसूलों पर नहीं बल्कि राजनैतिक उसूलों पर चलाई जाने लगी। सड़कों पर मज़हबी परेडों की मुमानियत हो गई। इसलाम और दूसरे तमाम धर्मों के धर्माध्यक्षों को अपने मज़हबी चोग़े पहन कर सड़क पर निकलने की मुमानियत कर दी गई। वे अपनी मज़हबी पोशाकें अपने मन्दिरों या गिरजों या दूसरे पूजा-स्थानों के अन्दर ही सिर्फ़ पहन सकते थे। इस सब में इतनी सख़्ती की ज़रूरत क्यों हुई? इसलिये कि पूरब के लोग धार्मिक रूढ़ियों और कर्म काण्डों को ही जीवन का आधार बना बैठते हैं। पच्छिम वाले धार्मिक भावना निकल जाने के बाद रूढ़ियों को भी छोड़ देते हैं, किन्तु पूरब वाले धार्मिक भावना जाने पर भी रूढ़ियों को पकड़े रहते हैं। इसीलिये पूर्वीय देशों में फ़ैज़, तारबूश, पगड़ी या टोप पहनने का भी एक महत्व है। वे पहनने वालों के धार्मिक चिन्ह समझे जाते हैं और बग़ैर इन चिन्हों को मिटाये हुये, उनके अन्ध विश्वासों को नहीं मिटाया जा सकता। इसलिये हमारे तुर्की में एक वैज्ञानिक वातावरण पैदा करने के लिये यह ज़रूरी होगया कि धर्म के इन ऊपरी चिन्हों को हम जड़ से मिटा दें। साइन्स ठोस आधार पर चलती है, अकाट्य दलीलें उसका साधन हैं, स्वतन्त्रता और समता उसका लक्ष्य है, नया मानव और नई मानवता बनाना उसका उद्देश्य है। अलग अलग क़ौमों को मज़हब और मिल्लत के तंग दायरों में हमेशा के लिये बन्द रखने के बजाय एक प्रेम से परिपूर्ण मानव समाज की स्थापना में हमारा दृढ़ विश्वास है। विज्ञान ने जिस नये मानव की रचना की है, वही तुर्की का आदर्श है। तुर्कों का पूरा विश्वास है कि विज्ञान ही पूरब और पच्छिम के विरोध-भाव को जड़ से मिटायेगा। तुर्की ही पूरब और पच्छिम को जोड़ने वाला पुल है।

कमाल अतातुर्क ने इन्हीं बुनियादों पर नए तुर्की समाज की रचना की। उन्होंने तुर्कों को स्वदेशी बन्धनों और विदेशी असर से मुक्त किया। तुर्की स्वाधीनता का संग्राम साम्राज्यवाद और निरंकुशवाद दोनों के विरुद्ध था। कमाल अता तुर्क ने स्त्रियों को स्वाधीन किया। पहले वह एक क़ैदी मुर्गी की तरह बैठकर अंडे सेती थी! अब वह राष्ट्र निर्माता है। मैजिस्ट्रेट, अफ़सर, पार्लिमेण्ट की सदस्य, न्यायाधीश और हवाई जहाज़ की संचालिका, सब जगह तुर्की महिला दिखाई देगी। तुर्की महिलाओं ने एक स्वर से अतातुर्क का साथ दिया। प्रत्येक माता अतातुर्क के सिद्धान्त दूध की घूटी के साथ अपने बच्चे के दिल में उतार देती है। इस तरह तुर्की क्रान्ति की संरक्षक न सिर्फ़ खुली संगीनें हैं, बल्कि राष्ट्र की ये क्रान्तिकारी माताएं भी हैं।

तुर्की की शिक्षा-समस्या इंगलैण्ड और फ्रान्स से भिन्न थी। पच्छिम के देशों में इस बात पर बहस थी कि शिक्षा का क्रम कैसा हो? किन्तु अपढ़ तुर्की में तो नये सिरे से शिक्षा देने का सवाल था। न मदरसे थे और न शिक्षक। सब से पहले इसी का इन्तज़ाम करना था। किताबों और पढ़ाई के लिये पैसों का प्रश्न था। हमारे देश में इतना धन नहीं। इमारतें बनाने के साधन नहीं। मजबूरन हमें एक ही मदरसे की इमारत में दिन में दो बार स्कूल का वक़्त रखना पड़ता है। पढ़ने वाले ज़्यादा हैं, बैठने की जगह नहीं है। वही शिक्षक विद्यार्थियों की दूसरी पांत को दोबारा पढ़ाते हैं। सुलतानों के वक़्त में लड़के मदरसों से जी चुराते थे और न उनके वालदैन ही उन्हें ख़ुशी से स्कूल भेजते थे। इस समय तुर्की में ५३ फ़ी सदी पढ़े लिखे लोग हैं। हर क़स्बे में एक पंचायत घर है। उसमें नौ विभाग हैं, जहां इतिहास, कला, भूगोल, संगीत और खेल कूद की शिक्षा दी जाती है। गावों में भी शिक्षकों के दल घूम घूम कर तालीम देते हैं। उन्हीं पंचायत घरों में लोग अख़बारों से ख़बरें पढ़ कर भी सुनाते हैं, वहीं संगीत और तरह तरह के दिलचस्प कार्यक्रमों से जनता को शिक्षा दी

जाती है। यदि तुर्की के पास साधनों का बाहुल्य होता, तो शिक्षा का काम अब तक समाप्त होगया होता। हर बात हमें नये सिरे से करनी पड़ रही है।

और अनेकों दिक़्क़तें हमारे सामने हैं। तुर्की के पूरबी हिस्सों में अभी सड़कें तक नहीं हैं। सुलतानों के ज़माने में सड़कों का निरा अभाव था। धीरे धीरे ही यह दिक़्क़त दूर होगी।

उद्योगवाद के सम्बन्ध में हम तुर्कों की एक निश्चित राय है। हमारी नज़रों में पच्छिमी देशों का उद्योगवाद बिलकुल ग़ैर ज़रूरी है। तुर्की इस तरह का माल नहीं बनाना चाहता, जिनके लिये कच्चा माल बाहर से मंगाना पड़े या तय्यार माल को बेचने के लिये बाहरी देशों में भेजना पड़े।

तुर्की में एक बात और है, जिसका यूरोप के देशों से मिलान नहीं। हमें काम करने की जल्दी नहीं रहती। वक़्त के बिताने में हमें अधिक परेशानी नहीं होती। पच्छिमी देशों में लड़के तक घड़ी की सुइयों पर नज़र रखते हैं, किन्तु जिन मुल्कों में उद्योगवाद नहीं है, वहां के लोगों को खेती किसानी के सिलसिले में साल में सिर्फ़ दो बार वक़्त की परवाह करनी होती है। फ़सलें कटकर जिस वक़्त भी नाज का निपटारा हुआ, फिर तुर्क किसान सूरज डूबने के साथ सोते हैं और सूरज निकलने पर जागते हैं। किन्तु तुर्कों को अब केवल किसान बनकर ही सन्तोष नहीं, वे धीरे धीरे अपने यहां तरह तरह के उद्योग धन्धों को तरक़्क़ी दे रहे हैं। सैकड़ों तुर्क विद्यार्थी विदेश में जाकर विज्ञान और इञ्जीनियरिंग की तालीम पा रहे हैं। समस्त तुर्क मिलकर और अपनी सारी शक्ति लगाकर, एक नई सभ्यता और समाज का निर्माण कर रहे हैं।

हमारे सामने दिक़्क़तें बेहद हैं, किन्तु हमने दृढ़ता से यह फ़ैसला कर लिया है कि तुर्की को दुनिया के सर्वोच्च देशों की श्रेणी में पहुंचा कर ही हम दम लेंगे।

हमारे नैतिक आदर्श

—हमें यह पूरी तरह ध्यान में रखना होगा कि जिन सदाचार शून्य स्वार्थमय नीवों पर यूरोप ने अपनी आजकल की सभ्यता को क़ायम करना चाहा और जिनके बल उसने भारतीय जीवन को इतनी भयंकर हानि पहुँचाई, उनका नतीजा अन्त में क्या हुआ? आजकल की सारी यूरोपियन सभ्यता अपने अद्भुत विज्ञान, विशाल पुतलीघरों, विचित्र साम्राज्यवाद और नवीन भयंकर पूंजीवाद को लेकर दो सौ साल भी सुख चैन से न जी सकी। आज यूरोप मनुष्य मनुष्य के बीच कलह, श्रेणी श्रेणी के बीच कलह, और देश देश के बीच कलह का मक़तल बना हुआ है। यूरोप ही के हर देश की ६० फ़ीसदी आबादी के लिये यह अन्तर्वर्गीय और अन्तर्राष्ट्रीय कलह और प्रतिस्पर्धा, दुख विपत्तियों और सार्वजनिक नाश का कारण साबित हो रही है। किन्तु विविध यूरोपियन देशों के जिन शासकों को पूंजीवाद और नवीन साम्राज्यवाद के नशे ने उन्मत्त कर रक्खा है वे अभी तक अपनी इस घातक प्रवृत्ति से पीछे हटने के लिये तैयार नहीं हैं, और न शायद वे अभी तक उसे घातक अनुभव करते हैं। नतीजा यह है कि पिछले महायुद्ध से कहीं अधिक भयंकर और विकराल नया महायुद्ध इस समय संसार की आंखों के सामने फिर रहा है, जो सम्भव है, वर्त्तमान यूरोपियन सभ्यता के लिए मौत का ताण्डव नृत्य साबित हो। वास्तव में समस्त अर्वाचीन यूरोप इस समय एक कठिन परीक्षा के तापत्रिदिव्य में से निकल रहा है।—सुन्दरलाल

प्राचीन भारत की इमारतें

डाक्टर डी० आर० भण्डारकर एम० ए०, पी-एच० डी०

प्राचीन भारत में जिस चीज़ से आम तौर पर इमारतें बनती थीं, वह ईंट थी। मोहें जो-दड़ो में जो इमारतें निकली हैं; वे मिट्टी के गारे से जोड़ी हुई ईंटों की बनी हैं। वहां जो ईंटें इस्तेमाल की गई हैं, उनकी औसत माप ११"+५॥"+२॥" यानी लम्बाई, चौड़ाई और उनकी उंचाई का औसत ४: २: १ है; जो इमारतों के लिये बिलकुल उपयुक्त है। मोहें जो-दड़ो की इमारतें हज़रत ईसा से चार हज़ार बरस पहले की बनी हुई हैं। मोहें जो-दड़ो के बाद भारत में जिस निश्चित काल की इमारतें मिलती हैं, वह ३२५ से १७५ ईसवी से पहले का मौर्यकाल है। इस ज़माने की ईंटें बहुत बड़ी होती थीं। इनकी माप २१॥"+१४॥"+३।" है। किन्तु ११ वीं सदी ईसवी तक इनकी माप घटते घटते ९॥"+९॥"+२" रह गई। अंगरेज़ी राज शुरू होने के बाद, जिस नाप की ईंटें भारत में इस्तेमाल की जाती हैं, उससे कहीं बड़े नाप की ईंटें प्राचीन भारत में काम में लाई जाती थीं।

यह न समझना चाहिये कि प्राचीन भारत के लोग मकान बनाने के लिये केवल काम चलाऊ बड़ी ईंटें बनाना ही जानते थे। वे कच्ची मिट्टी की बेल-बूटेदार (टेराकोटा) ईंटें भी बना लेते थे। सौभाग्य से गुप्तकाल के कुछ मन्दिर अब तक सुरक्षित हैं। इस तरह का एक मन्दिर मध्य प्रान्त के सिरपुर गांव में है। इस मन्दिर की ईंटों में बेलबूटे बनाए गए हैं और इस तरह का बारीक काम किया गया है, जिस तरह का काम आम तौर पर पत्थरों पर किया जाता है। ये ईंटें चारों तरफ़ से चिकनी और बराबर हैं। इनके कोने पत्थर की तरह पैने हैं और इनका रंग उम्दा और यकसां है। ईंटों की चिनाई इतनी सुन्दर है कि जोड़ दिखाई तक नहीं देते। इनकी जुड़ाई की मोटाई १।२० इंच है। चिनाई में जो गारा इस्तेमाल किया गया है, वह मिट्टी का है और उसकी पर्त कारतूस के कागज़ से मोटी नहीं है। इस तरह की और टेराकोटा ईंटें बहुत बड़ी तादाद में बंगाल के राजशाही ज़िले में पहाड़पुर की खुदाई में मिली हैं। इनमें से कुछ ईंटें पांचवीं सदी ईसवी की हैं और अपने ढंग की बहुत ही सुन्दर हैं।

पालिस की हुई चमकदार ईंटों से भी प्राचीन भारत के लोग परिचित थे। सन् १९०८-९ के जाड़ों में पेशावर के निकट शाह जी की ढेरी की खुदाई करते हुए स्वर्गीय डाक्टर स्पूनर को एक बौद्ध स्तूप मिला, जिसमें सक सम्राट कनिष्क के रखे हुए भगवान बुद्ध के कुछ स्मृति चिन्ह मिले। इस खुदाई में डाक्टर स्पूनर को लेखों से विभूषित कुछ ईंटें मिलीं, जो एक तरफ़ खुरदरी थीं और दूसरी तरफ़ चिकनी। जिस तरफ़ चिकनी थीं; परीक्षा करने पर मालूम हुआ, उधर पालिस किया हुआ है। इस तरह ईंटों की पालिस, लोगों की कल्पना से परे, उस पुराने ज़माने के भारतीयों को मालूम थी।

लोगों को यह सुनकर भी ताज्जुब होगा कि प्राचीन भारत के लोग पकी हुई ईंटों का भी इस्तेमाल जानते थे। सन् १९१४-१५ में मुझे ग्वालियर की रियासत में बेसनगर की खुदाई करने का काम मिला। एक जगह मुझे हवन-कुण्ड या यज्ञ-कुण्ड जैसी चीज़ मिलीं। इसके वहां कई प्रमाण थे। किन्तु मैंने सोचा कि वैज्ञानिक तरीक़े से इन यज्ञ-कुण्डों का निश्चय करने का सब में अच्छा तरीक़ा यह है कि इनकी दो तीन ईंटों को भेज कर उनकी जांच कराई जाय। इस काम के लिये मैंने पूना कृषि-कालेज के प्रिन्सिपल डाक्टर एच० एच० मैन को कष्ट दिया। उन्होंने थोड़े दिनों के बाद इन ईंटों की परीक्षा करके उसके नतीजे और साधारण पकी हुई मिट्टी के तुलनात्मक अंक मेरे पास भेजे। उनके अनुसार ये ईंटें बहुत अच्छे क़िस्म की पकी हुई थीं और ग्लास ब्लो पाइप में कड़ी आंच में गरम करने पर भी ये आसानी से पिघली नहीं। आज कल जितनी अच्छी भट्टियां इस काम के लिये इस्तेमाल की जाती हैं, उतनी अच्छी भट्टियां उस ज़माने में न थीं। फिर भी डाक्टर मैन के अनुसार ये विशेष ईंटें भट्टी में कड़ी आंच देकर पकाई गई थीं।

यह तो हुई ईंटों की बात। अब हम इमारतें बनाने में जो दूसरी वस्तु इस्तेमाल की जाती है, यानी पत्थर, उस पर ग़ौर करें और यह समझें कि प्राचीन काल के लोग पत्थर का कैसा इस्तेमाल करते थे। यह कहने की एक साधारण आदत पड़ गई है कि इमारतों में पत्थर का इस्तेमाल यहां सम्राट अशोक के समय यानी २५० ईसवी से पहले शुरू हुआ। यदि इसके साथ हम यह मान लें कि इसके पहले भी संगतराशी का रिवाज था, तो हम इसे मान सकते हैं। अशोक के समय की पत्थरों की विशेष वस्तु, उस समय के, स्तूप और खम्मे हैं। ये खम्मे दो हिस्सों में बंटे होते थे। नीचे सादे होते थे और ऊपर काम बना होता था। इस ऊपर के हिस्से को 'कैपिटल' कहते हैं। नीचे का हिस्सा ३२ फ़ुट ९ इंच होता था और ऊपर का ६ फ़ुट ९ इंच। सब में ख़ास बात यह है कि ये पूरे स्तूप एक ही पत्थर के बने होते थे। इस काम के लिये उस ज़माने के कारीगरों को क़रीब ४० फ़ुट लम्बे और ४ फ़ुट चौड़े पत्थर पहाड़ियों से काटने पड़े होंगे। इस बीसवीं सदी में भी, जब हम अपनी वैज्ञानिक उन्नति की इतनी शेख़ी मारते हैं, यह काम आसान नहीं। पत्थर काट कर, उसके एक एक टुकड़े के इतने बड़े बड़े सुन्दर और गोल चिकने स्तूप बनाकर उन पर ऐसी पालिस करना, जिसमें आइने की तरह अपना मुंह देख लो, यह एक आश्चर्य जनक काम है। इसके लिये हम अपने पूर्वजों की जितनी प्रशंसा करें, थोड़ी है। किन्तु इसी में इस कला की इति नहीं। जिस कंकरीले पत्थर के बने हुये अशोक के स्तूप हैं, वह भारत में सिर्फ़ मिर्ज़ापुर ज़िले के पास चुनार की पहाड़ियों में ही मिलता है। इसका अर्थ यह है कि ये स्तूप वहीं काटे गए होंगे और देश के विविध हिस्सों में सैकड़ों मील दूर उन्हें ले जाया गया होगा। इतने बड़े पत्थरों को ले जाकर सैकड़ों मील दूर खड़ा करना कोई आसान बात नहीं है। किस तरह उन्हें ले गए होंगे? कम से कम आजकल तो यह काम बहुत मुशकिल है।

प्राचीन भारत के संगतराशों ने एक दूसरी दिशा में भी कमाल हासिल किया है। संसार के यात्रियों को जो वस्तु आश्चर्य से भर देती है, वह यहां की पत्थरों में तराशी हुई गुफाएं हैं। सन् १९११ में जब ब्रिटिश सम्राट दिल्ली दरबार के लिए बम्बई में उतरे, तो वे बम्बई के निकट एलिफैण्टा की गुफाएं देखने गए। चूंकि मैं वेस्टर्न सर्किल के पुरातत्व विभाग का डाइरेक्टर था, इसलिये बम्बई की सरकार ने मुझे सम्राट का पथ प्रदर्शक बनने को कहा। मैंने सम्राट की पार्टी के लिए एक गाइड बुक छपाई। सम्राट के साथी उसे पढ़ते जाते थे और घूम घूमकर एलिफैण्टा की गुफ़ाएं देख रहे थे। एकाएक वे सब सम्राट के चारों ओर इकट्ठा होगए और सम्राट ने मेरी ओर मुख़ातिब होकर गाइड में दी हुई एक इमारत का महत्व पूछा। मैंने बताया वह एक मन्दिर है, जो एक

एलोरा की गुफाओं में एक ही चट्टान से काटा हुआ सुप्रसिद्ध कैलाश मन्दिर
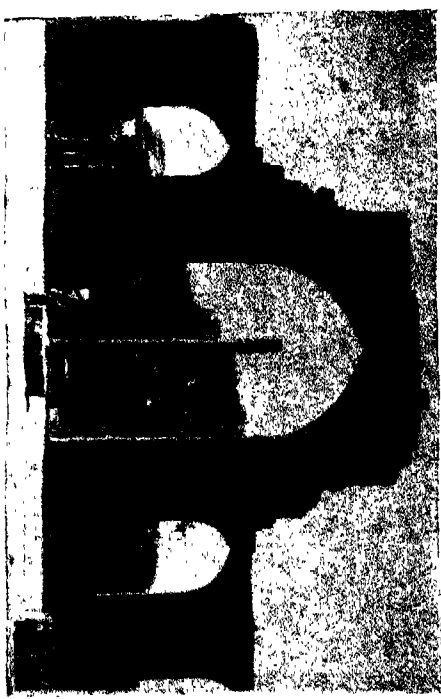
दिल्ली में कुतुब मीनार के पास लोहे का स्तम्भ
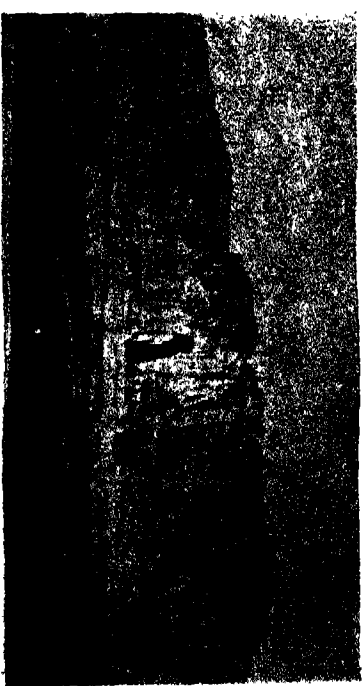
बामियां (अफ़ग़ानिस्तान) की पहाड़ी में बौद्ध गुफ़ाएँ। पहाड़ के बीचों बीच में ८० फुट ऊँची बुद्ध की मूर्ति है। हूणों ने अफ़ग़ानिस्तान की इस सभ्यता को मटिया मेट कर दिया।

अमरावती स्तूप

शाहाबाद का शेरगढ़

एरण (सागर) के ये खण्डहर समुद्रगुप्त के बनवाये

एक प्राचीन लेरा का सिंहद्वार दूसरी सदी ईस्वी
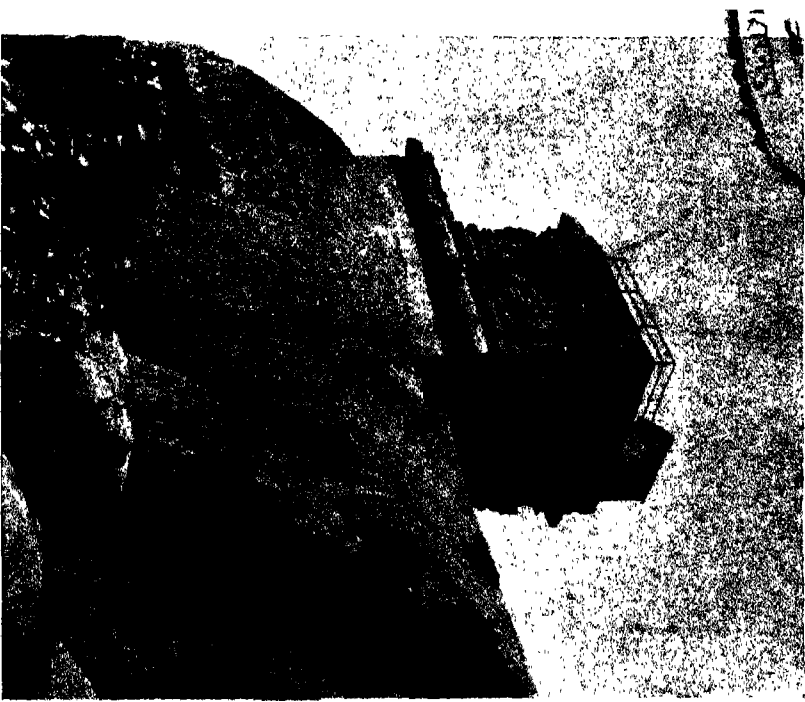
मामल्लपुरम में पल्लवों का बनवाया एक ज्योति स्तम्भ
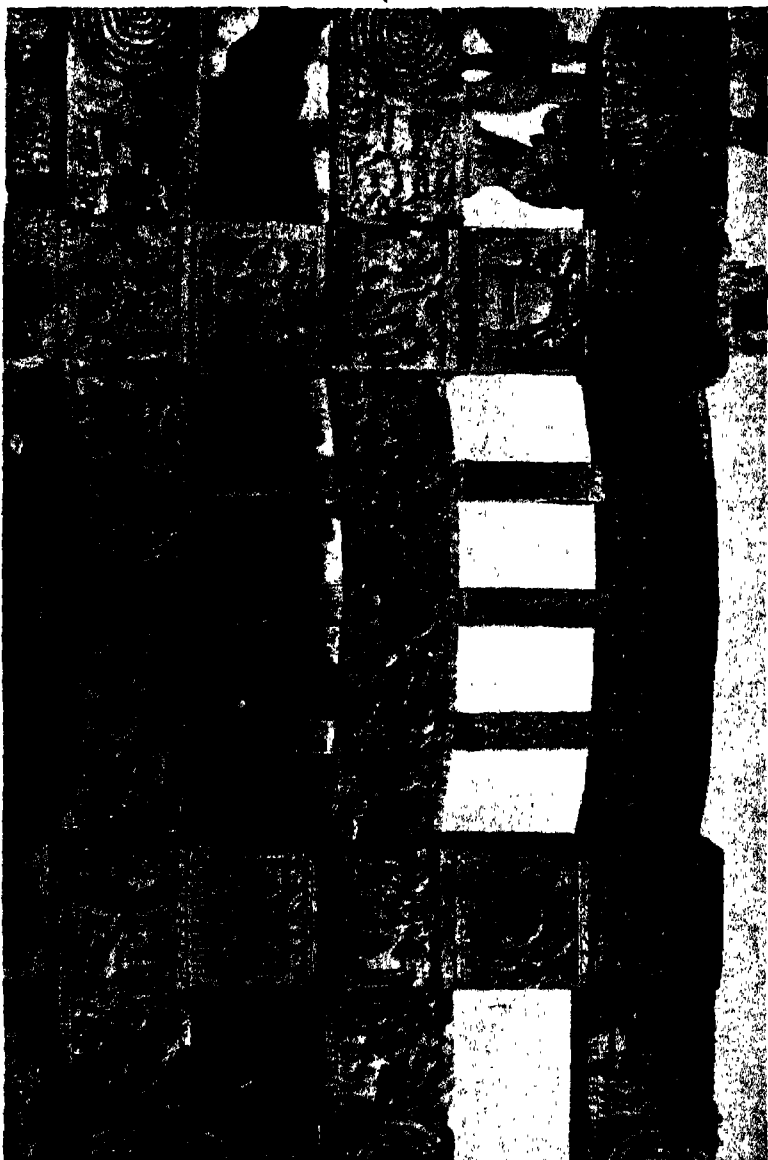
सांची की सुन्दर कारीगरी का नमूना

ही पत्थर काटकर बनाया गया है। सम्राट ने जवाब दिया "असम्भव" और उनके साथियों ने भी यही शब्द दोहराया। मैंने उत्तर दिया "तब आप में से कोई भी इस मन्दिर के पत्थरों का जोड़ ढूंढ़ निकाले, जिससे यह साबित हो कि यह मन्दिर एक पत्थर से काटकर नहीं, बल्कि बहुत से पत्थर जोड़कर बनाया गया है।" यह सुनकर सम्राट और उनके साथी गुफ़ा में मन्दिर को ग़ौर से देखने लगे और थोड़ी देर बाद सम्राट और उनके साथी कहने लगे—"आश्चर्य! आप ठीक कह रहे हैं।"

एक पहाड़ी में मन्दिर काट लेना आश्चर्य जनक है, किन्तु भारत में इस तरह की १२०० कटी हुई गुफ़ाएं अब तक पाई गई हैं। देखते देखते मेरे लिये तो उसमें इन दर्शकों की तरह कोई आश्चर्य की बात नहीं रह गई। फिर एलिफेण्टा के गुफ़ा मन्दिर तो अजन्ता और एलोरा के मुक़ाबले में बहुत छोटी चीज़ हैं। ये शाही दर्शक यदि अजन्ता और एलोरा की गुफ़ाएं देखते, तो क्या कहते और ख़ासतौर पर यदि वे एलोरा की 'कैलास' गुफ़ा देखते तो आश्चर्य से भर जाते। इनमें से अधिकतर गुफ़ाओं में मन्दिरों का भीतरी भाग ही है। मन्दिरों का बाहिरी हिस्सा पत्थर काटकर नहीं बनाया गया। इसीलिये इन्हें गुफ़ा कहते हैं। किन्तु एलोरा में जो कैलास मन्दिर है, उसका अन्दरूनी और बाहिरी हिस्सा दोनों काटकर बनाए गए हैं। पहाड़ी की ढाल पर मन्दिर के आस पास २८० फ़ुट लम्बा, १६० फ़ुट चौड़ा और १०६ फ़ुट गहरा पत्थर काटना एक बहुत बड़ा कमाल है। इतने बड़े बड़े पत्थर काटकर एक मन्दिर बनाना और उसमें न सिर्फ़ उसका भीतरी हिस्सा बल्कि बाहरी हिस्सा भी दिखाना, उसे तरह तरह की पच्चीकारी, बेल बूटे और नक़्क़ासी से सजाना हर दर्शक के हृदय को आश्चर्य से भर देता है।

पत्थर की निर्माणकला भारत में प्रचलित होने के पहले इमारतों में ईंट की तरह लकड़ी का उपयोग भी साधारणतया प्रचलित था। किन्तु लकड़ी सब में अधिक नष्ट होने वाली वस्तु है और प्राचीनकाल के उसके बहुत थोड़े अवशेष मिलते हैं। कलकत्ते के इण्डियन म्यूज़ियम में इस तरह के दो लकड़ी के अवशेष अब तक हैं, जो रेलिंग के लिए इस्तेमाल किये गए थे। ये टुकड़े मौर्यकाल के हैं और पटने में मिले हैं। मालूम होता है कि ये टुकड़े पटने के चारों ओर जो लकड़ी की शहर पनाह बनी थी, उसके अवशेष हैं। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ ने इस शहर पनाह का अपने ग्रन्थों में रोचक वर्णन दिया है। मैंने सुना है कि पटने की खुदाई में इस रेलिंग के और टुकड़े भी मिले हैं और पुराने ज़माने की एक नाली भी मिली है, जिसका पटाव लकड़ी से किया गया था।

चौथी वस्तु जो प्राचीन भारत में इमारतें बनाने में इस्तेमाल होती थी, वह लोहा था। किन्तु लोहे का इस्तेमाल अभी थोड़ा बहुत शुरू हुआ था। जो लोग दिल्ली गए हैं और दिल्ली के पास क़ुतुब मीनार देखी है, उन्होंने क़ुतुब मीनार के पास एक लोहे का स्तम्भ भी देखा होगा। इस स्तम्भ पर जो लेख खुदा हुआ है, उसके अनुसार यह स्तम्भ पांचवीं सदी ईसवी का बना हुआ है। यह ज़मीन से २२ फ़ुट ऊंचा है और सतह पर इसका डायमीटर १६-४ इंच है और ऊपर कैपिटल पर १२-०५ इंच। स्वर्गीय डाक्टर फ़रग्यूसन ने कहा था कि "इसे देखकर हमारी आंखें खुल जाती हैं कि उस प्राचीन काल के भारतीय लोहे का इतना बड़ा स्तम्भ ढाल लेते थे, जितना बड़ा कि बहुत थोड़े अरसे पहले तक यूरोप वाले न ढाल सकते थे और अब तक मुशकिल से ढाल पाते हैं।" यह एक आश्चर्य की बात है कि पूरे चौदह सौ बरस तक आंधी और पानी सहकर भी इसमें ज़रा भी ज़ंग नहीं लगा और इसका लेख अब तक उतना ही साफ़ और स्पष्ट है, जितना चौदह सौ बरस पहले रहा होगा। इसमें अब किसी तरह का सन्देह नहीं रह गया कि यह स्तूप शुद्ध लोहे का बना है। इसके टुकड़ों का कई बार परीक्षण हुआ और वे शुद्ध लोहे के साबित हुये। इसमें किसी भी तरह की मिलावट नहीं पाई गई। यह स्तूप अपने क़िस्म की अकेली मिसाल नहीं है। लोहे का एक

दूसरा स्तूप मध्य भारत में धार रियासत में मिला है, जो ४३ फ़ुट ४ इंच ऊंचा और शुरू में १०। इंच चौड़ा है। पुरी के निकट कोनार्क के मन्दिर की छत में बड़े बड़े लोहे के शहतीर भी पाए गये हैं। वे ९ इंच मोटे और २३ फ़ुट लम्बे हैं। किस तरह इन्हें ढाला गया होगा, यह अब तक नहीं पता चल सका।

इस ज़माने में जब लोहे का इस्तेमाल होता था, तो यह भी सवाल उठता है कि क्या प्राचीन ज़माने के भारतवासी फ़ौलाद का इस्तेमाल भी जानते थे? बेसनगर की खुदाई का मैं ज़िक्र कर चुका हूं। यहां हेलियोडोरस का बनाया हुआ एक स्मारक था। हेलियोडोरस तक्षशिला के यूनानी राजा अन्तियालसिदस के दूत की हैसियत से विदिशा के दरबार में रहता था। जब मैंने इस स्मारक की नीव खुदवाई, तो मुझे बुनियाद में कुछ लोहे के टुकड़े मिले। मैंने इनमें से एक लोहे के टुकड़े को सर राबर्ट हैडफ़ील्ड के पास जांच के लिये भेजा। उसके जवाब में सर राबर्ट ने मुझे दो ख़त लिखे। उन्होंने अपने दूसरे ख़त में मुझे लिखा—"मैंने इस टुकड़े की फिर परीक्षा की और ताज्जुब है कि मुझे इसमें ७ फ़ी सदी कारबन मिला। ज़ाहिर है कि यह टुकड़ा फ़ौलाद का है। तपाकर और पानी में बुझा कर यह सख़्त बनाया गया है। मुझे पहली मरतबा इतने प्राचीन काल का यह फ़ौलाद का टुकड़ा मिला है, जिसमें कारबन पाया गया। इसलिये यह फ़ौलाद का नमूना बड़ा ऐतिहासिक महत्व रखता है।" सर राबर्ट हैडफ़ील्ड को इसमें इतनी दिलचस्पी हुई कि उन्हों ने अपनी जांच के नतीजे फ़राडे सोसायटी के सामने पढ़ कर सुनाए और जो २७ नवम्बर १९१४ के 'एञ्जीनियर' में छपे हैं।

यह भी सवाल उठता है कि क्या प्राचीन भारत वाले मेहराब का इस्तेमाल जानते थे? २५० ई० पू० मौर्यकाल की एक मेहराब स्वर्गीय काशी प्रसाद जायसवाल को पटने में मिली थी और जो इण्डियन म्यूज़िअम में रखी हुई है। यह भी सवाल उठता है कि क्या मुसलिम काल के पहले भारतवासियों को चूने के गारे का इस्तेमाल आता था? आमतौर पर जो नमूने मिलते हैं, वे मिट्टी के गारे के मिलते हैं। मौर्यकाल की कुछ इमारतों में जो गारा मिलता है, वह जांच के बाद उतना ही मज़बूत पाया गया, जितना रोम की पुरानी इमारतों का गारा है। मोहं जो-दड़ो में जो एक बड़ा तालाब मिला है, उसमें ईंट जोड़ने में बिटूमन इस्तेमाल किया गया है। हमें प्राचीन भारत में सिंचाई के लिये बड़ी बड़ी नहरें, झील, बांध आदि बनाने के प्रमाण और अवशेष मिलते हैं। उनपर जितना विस्तार से लिखा जाय, उतना ही थोड़ा है।

संस्कृति और परिस्थिति

—०:०—

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

—:०:—

यदि आप आधुनिक हिन्दी-साहित्य की प्रगति से तनिक सा भी परिचय रखते हैं, तब आपने अनेकों बार पढ़ा या सुना होगा कि हिन्दी आश्चर्यजनक उन्नति कर रही है, कि उसने भारत की अन्य सभी भाषाओं को पछाड़ दिया है, कि हिन्दी-साहित्य—कम से कम उसके कुछ अंग—संसार के साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। जब से साहित्य की समस्या भाषा—अर्थात् 'राष्ट्रभाषा'—के विवाद के साथ उलझ गई है, तब से इस ढंग की गर्वोक्तियां विशेष रूप से सुनी जाने लगी हैं। निस्सन्देह ऐसे 'रोने दार्शनिक' भी हैं, जो प्रत्येक नई बात में हिन्दी का ह्रास ही देखते हैं—और राष्ट्रभाषा की चर्चा चलने के समय से तो ऐसे समय-असमय खतरे की घंटी बजाने वालों की संख्या अनगिनत होगई है—लेकिन इन गर्वोक्तियों से आप सभी परिचित होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

क्या आपने कभी इनकी पड़ताल करने का यत्न या विचार किया है ? क्या ये पूर्णतया सच्ची हैं ? यदि इनमें आंशिक सत्य है, तो कितना और क्या ? यदि हमारी प्रगति विशेष लीकों में पड़ रही है, तो किनमें और कैसे ?

इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न मैं नहीं करूंगा। मैं न तो सस्ते आशावाद से और न चोट पड़ते ही बें बें करने वाले निराशावाद से ही आपको सन्तोष दिलाना चाहता हूं। इन प्रश्नों का उत्तर प्रत्येक को अपने ढंग से खोजना चाहिए, मैं केवल उस खोज के प्रति वैज्ञानिक उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग रखने पर ज़ोर देना चाहता हूं। और इसीलिए साहित्य के प्रश्न को साहित्य के या साहित्यालोचन के संकुचित घेरे से निकाल कर मैं उसे एक सांस्कृतिक विभूति के रूप में दिखाना चाहता हूं। यह रूप उसे कैसे प्राप्त होता है, यह जानने के लिए आपको समाज के संगठन की ओर ध्यान देना होगा।

साहित्य—साहित्य की शिक्षा—अन्ततोगत्वा एक स्थानापन्न महत्व रखती है। पुराने सामाजिक संगठन के टूटने से उसकी सजीव संस्कृति और परम्परा मिट गई है—हमारे जीवन में से लोकगीत, लोकनृत्य, फूस के छप्पर और दस्तकारियां क्रमशः निकल गई हैं और निकलती जारही हैं, और उनके साथ ही निकलती जारही है वह चीज़, जिसके ये केवल एक चिन्ह मात्र हैं—जीवन की कला, जीने का एक व्यवस्थित ढंग, जिसके अपने रीति-व्यवहार और अपनी ऋतुचर्या थी—ऐसी ऋतुचर्या, जिसकी बुनियाद जाति के चिर-संचित अनुभव पर क़ायम हो। बात केवल इतनी नहीं है कि हमारा जीवन देहाती न रहकर शहरी होगया है। जीवन का ढंग ही नहीं बदला, जीवन ही बदला है। अब समाज न देहाती रहा है न शहरी, अब उसका संगठन ही नष्ट होगया है। उसे ऐक्य में बांधने वाला कोई सूत्र नहीं है; जो जहां सुविधा पाता है, वहां रहता है, अपने पड़ोसियों से उसका कोई *जीवित सम्बन्ध*, धमनियों के प्रवाह का सम्बन्ध, नहीं रहता; सम्बन्ध

रहता है भौगोलिक समीपता का, बिजली, पानी, मोटर-ट्राम की मारफ़त।

यदि आप को इस बात में कुछ अत्युक्ति जान पड़ती हो, तो अपने देखे हुए किसी मिल इलाक़े को याद कीजिए। यदि आपने उसे बनते हुए देखा है—लापरवाही और अवज्ञा से खड़े किये गए उन कुरूप स्तूपों को, मानव-जाति के और आस पास के प्रदेश के प्रति घोर उपेक्षा से मुंह बाए हुए; यदि आपने कलकत्ते के 'गार्डन रीच' या बम्बई के 'बुरली चाल्स' जैसे दृश्य देखे हैं, तब आप समझ सकेंगे कि यह विनाशक क्रिया, मानव-जीवन की स्वाभाविकता का यह ध्वंस, समाज-संगठन के ह्रास का ही बाह्य लक्षण है।

इस स्थापना से कोई निस्तार नहीं है कि पुरानी संस्कृति मर रही है, और संस्कृति का प्रश्न हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है। यह दुहराने की आवश्यकता नहीं कि पुरानी व्यवस्था के टूटने का कारण मशीन है। लेकिन मशीन-युग का जीवन ठीक क्या परिवर्तन लाता है, यह समझ कर ही संस्कृति पर उसका प्रभाव समझ में आएगा। इसके लिए क्षण भर आधुनिक मिल मज़दूर और पुराने दस्तकार की तुलना कीजिए। आज के मज़दूर के लिए यह सम्भव है कि तीस या चालीस या पचास साल तक एक अकेली क्रिया को दुहराने मात्र के सहारे वह उतने समय तक अपने परिवार का पेट पाल सके। मसलन् नित्य प्रति आठ घण्टे तक सेफ़टी उस्तरे के ब्लेड को मोम में डुबोकर पैक करने के लिए रखते जाना—बिल्कुल सम्भव है कि पांच-छः प्राणियों के कुनबे को पालने वाला व्यक्ति आयु भर यही एक क्रिया करता रहा हो! इसका मिलान कीजिए पुराने लुहार से—अपने वर्ग का कितना अनुभव संचित ज्ञान, कितनी लम्बी परम्परा, उसकी मेहनत को अनुप्राणित करती थी! वह सब अब नहीं रहा, आज के श्रमिक के लिए जीवन का अर्थ है एक निरर्थक यांत्रिक क्रिया की बुद्धिहीन अनवरत आवृत्ति! पुराना दस्तकार निरक्षर होकर भी शिक्षित और संस्कृत भी होता था; आज का मज़दूर जासूसी क़िस्से और सिनेमा पत्र पढ़कर भी घोर अशिक्षित है—उसकी जीवन की शिक्षा एक अकेली अर्थहीन यांत्रिक क्रिया तक सीमित है।

अब आप समझ सकते हैं कि कैसे यन्त्र-युग जीवन में वह परिवर्त्तन लाता है, जो वास्तव में जीवन का प्रतिरोध है। हम लोगों में से जो यन्त्र-युग की बुराइयों पर ध्यान देते हैं, वे प्रायः उसे एक आर्थिक संकट के रूप में देखते हैं—बेकारी की समस्या के रूप में। लेकिन प्रश्न आर्थिक से बढ़कर सांस्कृतिक है। मशीन से केवल रोज़गार नहीं मारा जाता, मशीन से मानव का एक अंग मर जाता है, उसकी संस्कृति नष्ट होती है, और उसका स्थान लेने वाली कोई चीज़ नहीं मिलती! मशीन-युग के मानव का जीवन दो अवस्थाओं में बंट जाता है—एक जिसमें मेहनत है पर जीवन स्थगित है; दूसरा जिसमें जीवन को पाने की उत्कट प्यास है। वास्तविक अवकाश की, शान्ति की, अवस्थाएं दोनों ही नहीं हैं; फिर भी ऐसे विभाजन से वह समस्या पैदा हो गई है, जिसे the Problem of Leisure कहा जाता है। यह समस्या यन्त्र-युग की देन है।

यह नहीं है कि पुराने ज़माने में अवकाश नहीं होता था। निस्सन्देह तब भी किसान लोग 'सुस्ताने' बैठते थे—दो एक हाथ चिलम या ताड़ी पीने में, और गपशप या गाली-गलौज करने में समय बिताते थे; लेकिन वह सुस्ताना जैसे जीवन का एक उपांग, (by-product) था, उसका ध्येय और अन्त नहीं। उनके लिए 'फ़ुरसत' का वक़्त केवल काम के लिए ताज़ा होने का साधन था। क्योंकि उस समय उनका रोज़गार ऐसा था कि यद्यपि उससे उनकी तर्क या कल्पना शक्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलता था, तथापि उसमें हाथ की सफ़ाई और विशेष ज्ञान का प्रयोग करने के लिए काफ़ी गुंजाइश होती थी और उससे तोष प्राप्त होता था। उसके बाद वे फ़ुर्सत नहीं, विश्राम चाहते थे। 'फ़ुरसत' का मूल्य कम था, इसका एक प्रमाण यह भी है कि वे प्रायः दिन छिपते ही सो जाते थे, विश्राम के बाद अपने काम के प्रति उनमें स्वागत भाव हो सकता था। किन्तु आज

परिस्थिति इनके सर्वथा प्रतिकूल है। आज के श्रमिक के लिए रोज़गार एक पदार्थ है, जिसके दाम लगते हैं, बस। उसमें उसकी किसी तरह की भी रुचि नहीं है, उसके लिए वही साधन है (पैसा पाने का) और ध्येय है फ़ुरसत। इस प्रकार जीविका का फल, उसका अर्थ, उतनी देर के लिए स्थगित कर दिया जाता है, जितनी देर वह जीविका कमाई जाती है—जीना और जीविका कमाना साथ-साथ नहीं चलते, परस्पर विरोधी होकर चलते हैं। काम का समय पूरा होने पर, घण्टा बजने पर ही उसे अपने को मानव समझने का अधिकार मिलता है और वह जीने का यत्न कर सकता है। उसे 'फ़ुरसत' मिलती है; वह अपने को ख़ाली पाता है और एकाएक किसी वस्तु के लिए तड़प उठता है, जिससे वह ख़लिश मिट जाय, वह अपने को 'तृप्त' मान सके, स्थगित जीवन से होने वाली क्षति पूर सके।

यह स्पष्ट है कि ऐसे समय का उपयोग ही किसी व्यक्ति की संस्कृति की कसौटी है। हमारा आजकल का श्रमजीवी इस फ़ुर्सत के समय क्या करेगा? ऊपरी दृष्टि से देखा जाय, तो उसके पास अनेकों उपाय हैं। लेकिन जिस मशीन ने फ़ुरसत पैदा की है, उसी ने उसके उपयोग भी विशेष लीकों में डाल दिए हैं। इस क्रिया की भी हम अभी जांच करेंगे।

ऊपर कहा गया कि आधुनिक युग—दो क्रियाओं में बंट जाता है—श्रम, जो अन्ततः यांत्रिक और तोष शून्य है; तथा अवकाश, जो मूलतः श्रम की अवस्था की क्षति पूर्ति है; स्थगित जीवन का थकान से भागना या कम से कम मनोरंजन है। अतः आधुनिक जीवन में संस्कृति के और उसके प्रमुख अंग बल्कि केन्द्र साहित्य के लिए कोई स्थान है, तो दूसरी अवस्था में ही है। आज साहित्य का यही मुख्य उपयोग है और मेरी समझ में यही उसके लिए सबसे बड़ा ख़तरा।

फ़ुरसत का उपयोग साधारणतया मनोरंजन के लिए होता है—मनोरंजन भी एक विशेष प्रकार का—जो अपनी परिस्थिति को भूलने में सहायक हो, अर्थात् एक तरह का नशा हो। देखिए, इस बारे में आधुनिकता का एक पुजारी 'मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ' क्या कहता है—बिना अपने कथन का भीषण अभिप्राय समझे—

"लोग, विशेषतया स्त्रियां, गल्प साहित्य में प्रकारान्तर से उन मानवीय अनुभूतियों की तृप्ति खोजती हैं, जो आज के उलझे हुए और संकीर्ण जीवन में पूरी नहीं हो पातीं। अपने तंग भीड़-भरे और हड़बड़ाए जीवन में, अधिक गहरी अनुभूति के स्पन्दन और खिंचाव को प्राप्त करने का समय और अवसर न पाकर वे अपनी स्वाभाविक वासना की तृप्ति के लिए गल्प-साहित्य की ओर झुकते हैं···सभ्यता से बंधे हुए लोग वासनाओं की तृप्ति के लिए गल्प-साहित्य की ओर झुकते हैं...इसीलिए लोग सुखान्त कहानी पसन्द करते हैं। जीवन में अपने परिश्रम में सफलता का सन्तोष न पाकर, हताश लोग गल्प-साहित्य में सान्त्वना खोजते हैं; उपन्यास के नायक-नायिका की परिस्थिति में अपने को डालकर वे एक अल्पकालिक और भ्रामक तृप्ति पाते हैं।"

अर्थात वे जीवन की कमी उसकी छाया से पूरी करते हैं। लेकिन जिन लोगों के जीवन में अनुभूति की गहराई और विशालता और सूक्ष्मता के लिये स्थान नहीं है; उनका यह छाया-जीवन भी कच्चा और छिछला ही हो सकता है। जिस व्यक्तिका काम उसके व्यक्तित्व को पुष्ट नहीं करता, वह छाया-जीवन से जो तृप्ति प्राप्त करेगा, उसका उसके जीवन की यथार्थता से कोई सम्बन्ध नहीं होगा—क्योंकि यथार्थता से तृप्ति न मिल सकने के कारण ही तो वह उससे भागता है। और फिर, ऐसा व्यक्ति वह परिश्रम करने को भी तय्यार नहीं होगा, जो मनोरंजन के लिए ज़रूरी है—अतः उसकी क्षतिपूर्ति नशे का ही रूप ले सकती है।

इस तरह की 'क्षति पूर्ति' मनोरंजन कदापि नहीं है, क्योंकि यह पुष्ट और सञ्जीवित नहीं करती, बल्कि उसे यथार्थता से छूट भागने का आदी बनाकर और भी कमज़ोर और जीवन के लिए अयोग्य बनाती है।

इस प्रकार व्यक्ति एक अन्धेरे चक्कर में पड़ जाता है, जिससे उसका निस्तार नहीं।

आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं के, सिनेमा-थियेटरों के, अख़बारों, रेडियो और ग्रामोफ़ोन के बारे में भी यही बात सच है। अप्राकृतिक मनोरंजन, अर्थात् जीवन से भागने के ये सब साधन मिलकर जीवन को सस्ता बना रहे हैं—उसका अर्थ और महत्व नष्ट कर रहे हैं। इनका प्रयत्न यही है कि 'मनोरंजन' के लिए ज़रा भी प्रयास—मन को एकाग्र करने का भी प्रयास—न करना पड़े। आधुनिकता की प्रगति यह है कि सस्ती, ऊपरी और तात्कालिक ('सामयिक') रुचि की बातों को छोड़कर अन्य सभी को निरुत्साहित किया जाय, सस्ती और ऊपरी मानसिक प्रवृत्तियों के लिए खाद्य दिया जाय। आपने लक्ष्य किया होगा कि इधर हिन्दी के एकाधिक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं ने जानते बूझते हुए अपना "स्टैण्डर्ड" नीचा किया है, ताकि उसका आकर्षण अधिक सार्वजनिक हो सके। यह परिवर्तन आकस्मिक भी हो सकता था, लेकिन मैं जानता हूं कि ऐसा चेष्टा पूर्वक किया गया है, क्योंकि "आधुनिक पत्र का क्षेत्र व्यापक होना चाहिए—आज का युग जनता की जाग्रति का युग है और उसमें जन-साधारण को पसन्द आने वाली चीज़ें चाहिए!" जन-साधारण की पसन्द के लिए पत्रों में जो सस्तापन लाया जाता है, वह केवल शब्दों का होता है, भाषा का नहीं। उसके लिए हमारी अनुभूति और मानसिक प्रगति के धातु में खोट मिलाया जाता है, हमारा जीवन सस्ता और हल्का किया जाता है।

शायद इसमें आपको अत्युक्ति जान पड़े या यहां स्पष्ट न हो। एक उदाहरण ले लीजिए। एक ज़माना था, जब हिन्दी भाषी लोगों के लिए 'मुहब्बत' शब्द का अर्थ कुछ ऊंचा नहीं था, उसमें किसी घटिया भाव की ध्वनि थी। लेकिन प्रेम शब्द में ऐसी कोई ध्वनि नहीं थी—उसका धातु खरा था। पर, जब से सिनेमा की कृपा से प्रेम नगर में प्रेम का घर, प्रेम ही का आंगन, प्रेम की छत और प्रेम के द्वार, प्रेम की नदी बन गई, तब से क्या अब किसी आत्माभिमानी व्यक्ति के लिए किसी दिव्य अभिप्राय से यह कहना सम्भव रहा है कि—मैं तुम से 'प्रेम' करता हूं? मेरा अनुमान है कि आप किसी को सच्चे दिल से भी यह कहते सुनेंगे, तो मुस्करा देंगे। क्योंकि यह सिक्का खोटा हो गया है, बाज़ार में दुकान-दुकान पर तिरस्कृत होता है, और उसका चल जाना एक झूठ का चल जाना है। जाली प्रामिसरी नोट की तरह उसके साथ एक प्रामिस तो है, पर उसकी पूर्ति नहीं, प्रामिस को सच्चा करने वाला गोल्ड-रिज़र्व नहीं रहा है।

और केवल शब्द ही सस्ता नहीं हुआ है, उसका प्रयोग करने वालों का मानसिक जीवन भी उतना ही सस्ता हुआ है; क्योंकि प्रेम का नगर और घर और मन्दिर और नदी तो हैं, लेकिन प्राण-स्रोत सूख गया है, और यदि वह कहीं फूट निकलना भी चाहे, तो कम से कम इस मार्ग से नहीं बह सकता। वह गहरा अर्थ इस शब्द से सदा के लिए अलग हो गया है।

मैं प्रायः उस समस्या की परिभाषा तक पहुँच गया हूं, जो मैं आपके सामने उपस्थित करना चाहता हूं, जो मेरी समझ में हमारे आधुनिक जीवन की मौलिक समस्या है और जिसका हल किए बिना हमारा भविष्य अंधेरा है।

किन्तु उस समस्या को उपस्थित करने से पहले मैं दो एक बातें और स्पष्ट कर देना चाहता हूं।

मैंने ऊपर भाषा के सस्ते किए जाने और पत्रों का स्टैण्डर्ड गिराये जाने का उल्लेख किया है। इससे एक ग़लतफ़हमी भी हो सकती है। मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि यह उतार अकारण पैदा कर दिया जाता है। निस्सन्देह परिस्थिति की मजबूरी वहां भी है, और विकट रूप में है। इस मजबूरी की पड़ताल भी आरम्भ से की जाय, क्योंकि इससे भी संस्कृति की समस्या पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

मशीन युग बेहद उत्पत्ति का युग है। और बेहद उत्पत्ति तभी लाभप्रद हो सकती है, जब उसकी

मशीनरी से पूरा काम लिया जाय और सारी उपज तत्काल बाज़ार में खप जाय। मुनाफ़े के सिद्धान्त पर आश्रित आधुनिक व्यवस्था में बेहद उत्पत्ति का अर्थ होता है कारख़ानों—बल्कि समूचे वर्गों और नगरों—को व्यक्तिगत लाभ के लिये संगठित करना और प्रतियोगिता में चलाना। उसका उद्देश्य मांग की पूर्ति करना नहीं, उपज के लिये मांग ढूंढ़ना या पैदा करना हो जाता है।

इस परिस्थिति का परिणाम यह है कि आधुनिक जीवन विज्ञापन की नींव पर खड़ा है—बिना विज्ञापन के आधुनिक सभ्यता चल नहीं सकती। आधुनिक विज्ञापन बाज़ी की उन्नति का यही कारण है। एक व्यक्ति ने कहा है कि आधुनिक युग में किसी कला ने उन्नति की है तो 'विज्ञापन-कला' ने! पत्र-पत्रिकाएं इस विज्ञापन का साधन हैं। शायद उनकी उन्नति का भी यही कारण है! क्योंकि आधुनिक पत्र-साहित्य का मुख्यांश विज्ञापनों पर जीता है। कई ऐसे भी पत्र हैं, जिनकी लागत उनके चन्दे के मूल्य से कहीं अधिक—कभी कभी दुगुनी तक—होती है। यह कमी विज्ञापन की आमदनी से पूरी होती है। अतः स्पष्ट है कि जहां एक ओर विज्ञापन प्राप्त करने के लिये बड़ी ग्राहक-संख्या की ज़रूरत होती है, वहां दूसरी ओर बड़ी ग्राहक-संख्या के साथ साथ विज्ञापन का भी महत्व अधिक हो जाता है। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि पत्र के किसी अंश का कोई मोल है, तो विज्ञापन के अंशों का, क्योंकि प्रकाशन और वितरण का ख़र्च इतना बढ़ गया है कि चन्दे से कभी पूरा नहीं हो सकता। आपने नहीं सुना होगा, एक नये अमेरिकन पत्र को एक वर्ष में पांच लाख डालर का घाटा इसलिए हुआ था कि उसने विज्ञापन-दर निश्चित करते समय ग्राहक-संख्या का जो अन्दाज़ा लगाया था, ग्राहक-संख्या उससे लगभग दुगुनी हो गई और फलतः बिकने वाली प्रत्येक प्रति पर उसे घाटा उठाना पड़ा!

इस परिस्थिति का सम्पादक के लिये क्या परिणाम होता है? अगर वह पत्र का मालिक भी है, तब तो स्पष्ट है कि उसे एक विराट् व्यापारिक उद्योग के अंग के रूप में प्रतियोगिता में पड़ना पड़ेगा; लेकिन अगर वह केवल वैतनिक कर्मचारी है, तो भी क्या वह उस प्रतियोगिता से मुक्त है? जब तक प्रकाशन एक व्यवसाय है, तब तक उसे मुनाफ़ा देना होगा; अतः सम्पादक को चाहे कितनी भी स्वतन्त्रता दी जाय, एक बात की स्वतन्त्रता उसे नहीं दी जायगी—पत्र की ग्राहक-संख्या घटने देने की स्वतन्त्रता। पत्र का मालिक सदिच्छा रहने पर भी यह स्वतन्त्रता नहीं दे सकता—यह मैं अपने छोटे से अनुभव से भी जानता हूं। इस प्रकार सम्पादक का काम जनता को शिक्षित करना और प्रेरणा देना नहीं रह जाता, बल्कि उसे वह देना जो वह मांगती है, और वह भी अन्य प्रतियोगियों की अपेक्षा कुछ अधिक चटपटे और आकर्षक रूप में। और यह तो हम पहले ही देख चुके कि जनता क्या मांगती है, यह निर्णय करने की सम्पादक तो क्या, वह स्वयं भी बेचारी स्वतन्त्र नहीं है। वह निर्णय मशीन-युग द्वारा उत्पन्न हुई परिस्थिति ही उसके लिए कर देती है। तब इस विराट् नियति-चक्र की भीषणता का कुछ अनुमान हम कर सकते हैं...!

आधुनिक युग मशीन-युग है। मशीन के विस्तार से प्राचीन समाज व्यवस्था और संस्कृति नष्ट हो रही है, और फ़ुरसत नाम की एक नयी वस्तु पैदा हो रही है। फ़ुरसत का समय बिताने के लिये सामग्री एक विशेष प्रकार की ही हो सकती है, क्योंकि उसी का रस लेने की सामर्थ्य आधुनिक मानव में बचती है। इसका परिणाम है कि पुरानी संस्कृति के मरने के साथ नई के मान नहीं बन रहे, हमारा मन और आत्मा संकुचित हो रहे हैं और हम यथार्थता का सामना करने के अयोग्य बनते जा रहे हैं। दूसरी ओर, मशीन-युग के साथ जो Mass Production आया है, उसके लिए विज्ञापनबाज़ी आवश्यक है। विज्ञापनबाज़ी स्वयं मशीन-युग की विशेषताओं को उग्रतर बनाती है, और साहित्य को सस्ता, घटिया, और एक रस बनाने का कारण बनती है।

संस्कृति का मूल आधार भाषा है, और भाषा का चरम उत्कर्ष साहित्य में प्रकट होता है। अतः साहित्य का पतन संस्कृति का और अन्ततः जीवन का पतन है—मशीन-युग हमारे जीवन को सस्ता, घटिया और अर्थहीन बना रहा है।

क्या हमारे लिये कोई उपाय है, कोई आशा है ? क्या साहित्य का नष्ट होता हुआ चमत्कार फिर से जाग्रत हो सकेगा ? कोई महान प्रतिभा शाली व्यक्ति तो अपने लिए मार्ग निकाल ही सकेगा, और प्रतिभा में क्रान्ति करने की शक्ति होती है; लेकिन साहित्य केवल प्रतिभा के सहारे नहीं जी सकता, उसका स्टैण्डर्ड ऊंचा बनाए रखने के लिये बहुत से अच्छे साहित्य सेवी भी चाहियें और विदग्ध रुचि के पाठकों का समुदाय भी चाहिये।

तो प्रश्न को इस रूप में देखना चाहिये—'क्या आज के बड़े और बिखरे हुए यन्त्रमय और वर्गों मे भी उसी ढंग की सजीव और Dynamic संस्कृति क़ायम रखी जा सकती है, जैसी पुराने वर्गों में या वर्गों के छोटे छोटे मण्डलों में बनी रहती थी ?' यदि इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है, तब साहित्य का भविष्य अंधेरा है, क्योंकि जनता-जनार्दन को जो नहीं चाहिये वह नहीं रहेगा। यदि उत्तर अनुकूल है, तभी कुछ आशा हो सकती है, लेकिन तब प्रश्न उठता है, कैसे ?

इस प्रश्न का कोई बना बनाया उत्तर नहीं है, हल हमें तय्यार करना होगा और उसका चित्र अभी बहुत धुंधला ही दीखता है। यह तो प्रायः सिद्ध हो गया है कि दैन्य और बेकारी और चिन्ता से मुक्ति मिलने से ही संस्कृति और सुरुचि अपने आप नहीं प्रकट हो जाती। अतः संसार की आर्थिक अवस्था सुधरने और जीविका का स्टैण्डर्ड ऊंचा होने से एक विश्व-संस्कृति या एक राष्ट्रीय संस्कृति भी स्वयं पैदा नहीं हो जायगी। यह झूठी आशा इसलिए और भी असान हो जाती है कि आज भी ऐसे अनेकों कर्कश किन्तु बलिष्ट स्वर हैं, जो चिल्ला रहे हैं कि आर्थिक अवस्था का सुधार और सामाजिक वैषम्य का अन्त ही एक मात्र ध्येय है, साहित्य और कला भाड़ में जायं—या रहें भी तो राजनैतिक उद्देश्यों की अनुचर होकर !

कुछ लोगों का यह भी विचार है कि किसी तरह की क्रान्ति के पहले ह्रास का निकृष्टतम तल छूना होगा, कि साहित्य के महान आदर्श पीढ़ियों की उपेक्षा के नीचे दब कर ही पुनः अंकुरित होंगे और सौन्दर्य के दुर्भिक्ष से आक्रान्त जगत को नये प्राण देंगे। हो सकता है कि ऐसा समय आने तक साहित्य-कारों और साहित्य-शिक्षकों का एक संगठित समुदाय संसार को पुनः शिक्षित बनादे—इतिहास में ऐसे उदाहरण तो हैं कि एक भौगोलिक क्षेत्र एकाएक पुनः शिक्षित बन गया हो—सांस्कृतिक पुनर्जीवन असम्भव तो नहीं है। लेकिन क्या यह डर बना हुआ नहीं है कि संसार की वर्तमान प्रगति को देखते हुए ऐसा भी सम्भव है कि साहित्य को वह मौक़ा न मिले—वह घुट कर मर जाय ? संसार भर में जिन लोगों को स्वतन्त्र सौन्दर्य से प्रेम है, उनके हृदयों में यही डर बसा हुआ है—फिर उनके राजनैतिक विचार और दृष्टिकोण कितने ही भिन्न क्यों न हों। साहित्य की कला जो ग़रीबों से कभी बहुत दूर नहीं रही थी, कभी गर्वीली और मुक्त थी; लेकिन आज हम देखते हैं कि वह बन्दिनी है और व्यभिचार के लिए मजबूर है, जब कि विज्ञापन बाज़ों की चुनी हुई एक नटनी "मिस लिटरेचर" उसका स्वांग कर रही है।

तब त्राण कहां से होगा ? हमें समझ लेना चाहिए कि हमारा उद्धार मशीन से नहीं होगा, प्रचार या विज्ञापन से भी नहीं होगा, अगर उद्धार का उपाय कोई है, तो वह संस्कृति की रक्षा और निर्माण की चिर जागरूक चेष्टा और उस चेष्टा की आवश्यकता में अखण्ड विश्वास का ही मार्ग है। साहित्य का, कला का, चमत्कार मर रहा है, मरा अभी नहीं है; अगर उस चमत्कार को पैदा करने वाले पतन और निराशा से बच सकते हैं, और उससे मुक़ाबले की शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं, तो अभी परित्राण सम्भव है।

और इस शक्ति को उत्पन्न करने का एक मात्र मार्ग है शिक्षा—शिक्षा, जो निरी साक्षरता नहीं, निरी जानकारी नहीं, जो व्यक्ति की प्रसुप्त मानसिक शक्तियों का स्फुरण है। यदि यह कथन बहुत अस्पष्ट जान पड़े, तो समझिये कि ज़रूरत है रुचि-संस्कार की, परख करने की, ट्रेनिंग की। बिना गहरी और विस्तृत अनुभूति के संस्कृति नहीं है, और बिना वैज्ञानिक आलोचना मूलक ट्रेनिंग के ऐसी अनुभूति नहीं है। महान् ट्रेजेडी के दिव्य और शोधक प्रभाव के आस्वादन के लिए, वीर-काव्य की गरुड़ की उड़ान की चपेट सहने के लिए, लय और सौन्दर्य में डूबने के लिए, अपने भीतर नीर-क्षीर विवेचन की प्रतिभा पैदा करने के लिए, मानसिक शिक्षण नितान्त आवश्यक, बल्कि अनिवार्य है। इसके लिए अधिक परिश्रम विचार और एकाग्रता की ज़रूरत है।

यदि शिक्षण आधुनिक जगत के प्रति अपना दायित्व पूरा करना चाहता है, तो उसे यह दुहरी जागरुकता पैदा करनी होगी। एक तो ऊपर वर्णित सांस्कृतिक विकास की क्रियाओं के प्रति और दूसरे तात्कालिक भौगोलिक और मानसिक परिस्थिति के प्रति; और हमारी रुचियों, आदतों विचार धाराओं और जीवन-प्रणालियों पर उस परिस्थिति के असर के प्रति।

स्वस्थ संस्कृति में हम नागरिक को स्वतन्त्र छोड़ कर आशा कर सकते हैं कि उसकी परिस्थिति से ही उसकी संस्कृति उत्पन्न और नियमित होगी। किन्तु आज यदि हम जीवन के गौरव की रक्षा करना चाहते हैं, तो हमें परखने और मुक़ाबला करने की शक्ति को संगठित करना होगा, हमें एक आलोचक राष्ट्र का निर्माण करना होगा।

यह अतिरिक्त जागरुकता ही बचने का एक मात्र उपाय है। ऐसे ही जागरूक व्यक्तियों के द्वारा वह प्रचेतन instinct of self preservation कार्य कर सकेगा, जो हमारी resistance की बुनियाद है।

साहित्य की दिशा-भूल

पिछले दिनों एक बार हमने इस बात की खोज की थी कि देहात के सर्वसाधारण पढ़े-लिखे लोगों के घर में कौन-सा मुद्रित वाङ्मय [छपा हुआ साहित्य] पाया जाता है। खोज के फलस्वरूप देखा गया कि कुल मिलाकर पांच प्रकार का वाङ्मय पढ़ा जाता है:—

[१] समाचार पत्र, [२] शालोपयोगी पुस्तकें, [३] उपन्यास, नाटक, गल्प-कहानियां आदि, [४] भाषा में लिखे हुए पौराणिक और धार्मिक ग्रन्थ, और [५] वैद्यक सम्बन्धी पुस्तिकाएँ।

इससे यह अर्थ निकलता है कि हम यदि लोगों के हृदय में उन्नति करना चाहते हैं, तो उक्त पांच प्रकार के वाङ्मय की उन्नति करनी चाहिए।

पारसाल का ज़िक्र है। एक मित्र ने मुझसे कहा, "मराठी भाषा कितनी ऊँची उठ सकती है, यह ज्ञानदेव ने दिखाया; और यह कितनी नीचे गिर सकती है यह हमारे आज के समाचार पत्र सिखा रहे हैं!" [साहित्य-सम्मेलन के] अध्यक्ष की आलोचना का और हमारे मित्र के उद्‌गार का अर्थ "प्राधान्येन व्यपदेशाः" सूत्र के अनुसार निकालना चाहिए। अर्थात् उनके कथन का यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि सभी समाचार पत्र अक्षरशः पैसिफ़िक महासागर की तह तक जा पहुँचे हैं। मोटे हिसाब से परिस्थिति क्या है, इतना ही बोध उनके कथनों से लेना चाहिए। इस दृष्टि से दुःख पूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि यह आलोचना यथार्थ है।

लेकिन इसमें दोष किसका है? कोई कहते हैं सम्पादकों का; कोई कहते हैं, पाठकों का; कोई कहते हैं पूँजीपतियों का। गुनाह में ती[illegible] ही शरीक हैं, और 'कमाई का आधा हिस्सा' तीनों को बराबर-बराबर मिलने वाला है, इसमें किसी को कोई शक नहीं। परन्तु मेरे मत से—अपराधी ये तीनों भले ही हों—अपराध करने वाला दूसरा ही है, और वही इस पाप का वास्तविक 'धनी' है। वह कौन?—साहित्य की परिभाषा करने वाला, बढ़ोरा अथवा रुचिभ्रष्ट साहित्यकार! —विनोबा

प्राचीन भारत में सत्याग्रह

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

जब कभी कोई सत्याग्रह के बारे में पूछ बैठता है कि आखिर यह सत्याग्रह एक दम नई चीज़ है अथवा इसे इतिहास ने पहले भी कभी जाना है ? तो प्राय: यही उत्तर दिया जाता है कि इतिहास तो हिंसापूर्ण युद्धों की कहानी का ही दूसरा नाम है। हिंसात्मक युद्धों की कहानी में अहिंसात्मक युद्धों के लिए क्या जगह ? कोयलों की खान में से जैसे सोने की आशा करना अनुचित है, उसी प्रकार इतिहास में सत्याग्रह को ढूंढ़ना नावाजिब। पर बौद्ध अनुश्रुति का कहना कुछ दूसरा है।

जातक कथाओं में जो कि हमारे देश के दो हजार वर्ष पुराने कहानी-साहित्य का संग्रह है, एक कथा आई है, जिसे पढ़कर विश्ववाणी के पाठक निर्णय करें कि प्राचीन भारत में सत्याग्रह था वा नहीं ? कथा इस प्रकार है :—

"पुराने समय में बनारस के ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व* राजा की पटरानी की कोख से पैदा हुए। उनके नामकरण के दिन कुमार का नाम रखा गया—'शीलवान कुमार'। सोलह वर्ष की आयु होने पर वह सब शिल्पों में निष्णात् हो पिता के मरने पर राजा बना। क्योंकि वह बहुत धार्मिक था, धर्मराज था, इसलिये लोग उसे 'महा शीलवान राजा' कह कर पुकारते थे।

उसने नगर के चारों दरवाज़ों पर चार दान शालाएं, बीच में एक, प्रवेश द्वार पर एक, इस तरह ६ दान शालाएं बना दरिद्र मुसाफ़िरों के लिए भोजन का प्रबन्ध किया। वह स्वयं सदाचार का बड़ा ध्यान रखता था, उपोसथ व्रत करता, शान्ति, मैत्री और दया की भावना से परिपूर्ण हो, वह सब जीवों से ऐसे प्रेम करता, जैसे कोई गोद में बैठे अपने पुत्र से। ऐसा था वह धार्मिक राजा !

उसके एक अमात्य ने षड़यन्त्र किया, लेकिन उसका पता लग गया। मन्त्रियों ने राजा को खबर दी। राजा ने तहक़ीक़ात कराई, तो बात सत्य निकली। उस वज़ीर को बुलवा कर राजा ने कहा—'अरे अन्धे, अरे मूर्ख तू ने बहुत अनुचित किया, अब तू मेरे राज्य में नहीं रह सकता, अपने बीवी बच्चों और अपने धन दौलत को लेकर मेरे राज्य से निकल जा।'

वह काशी की सीमा से निकल कोशल नरेश के राज्य में जा पहुंचा। वहां राजा की सेवा में रह कर धीरे धीरे उसका बहुत विश्वासपात्र हो गया; तब एक दिन बोला—

'देव ! बनारस का राज्य मक्खी रहित शहद के छत्ते जैसा है। राजा बहुत कोमल स्वभाव का है। थोड़ी सी सेना से वाराणसी राज्य जीता जा सकता है।'

राजा ने सोचा बनारस राज्य बड़ा है; लेकिन यह कहता है कि थोड़ी सी सेना से उसे जीता जा सकता है। कहीं यह काशी नरेश का गुप्तचर तो नहीं !

*सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त करने से पूर्व अनेक जन्म ग्रहण किये। उन सब पूर्व जन्मों में उनकी संज्ञा बोधिसत्व है।

राजा—कहीं तुम गुप्तचर तो नहीं हो ?

—देव ! मैं गुप्तचर नहीं हूं। सच्ची बात कहता हूं। यदि मेरा विश्वास न हो, तो कुछ आदमियों को भेज कर काशी नरेश के गांव लुटवावें। आदमी जब उनको पकड़ कर राजा के पास ले जायंगे, तो वह उन्हें कुछ धन देकर बिदा कर देगा।

राजा ने सोचा, यह बहुत बढ़ बढ़कर बात बना रहा है। मैं इसके कथन की परीक्षा ही क्यों न करूं। उसने अपने आदमी भेज कर काशी नरेश के गांव पर हमला करवा दिया। लोग उन्हें पकड़ कर राजा के पास ले गए। राजा देखकर बोला—

राजा—तुम गांव को क्यों लूटते हो ?

डाकू—देव ! बिना लूटे जी नहीं सकते।

राजा—तो मेरे पास क्यों नहीं आये ? अब जाओ; ऐसा मत करना।

उन डाकुओं को धन दौलत दे छोड़ दिया। उन्होंने जाकर कोशल नरेश से सब हाल कहा। कोशल नरेश ने केवल इतने से ही विश्वास नहीं किया। उसने कुछ और आदमी भेजकर राज्य का मध्यवर्ती हिस्सा लुटवाया। उन डाकुओं को भी बनारस के राजा ने उसी प्रकार धन दौलत देकर छोड़ दिया। पर इतने पर भी कोई क़दम न उठा, फिर कुछ आदमी भेजकर बीच बाज़ार लुटवाया। राजा ने उन डाकुओं को भी वैसे ही धन देकर छोड़ दिया।

'सचमुच बनारस का राजा बहुत ही धार्मिक है। मैं उसका राज्य हड़पूंगा,' सोच कोशल नरेश सेना लेकर निकल पड़ा।

उस समय बनारस के राजा के पास एक हज़ार ऐसे योद्धा थे, जिनके सामने यदि मस्त हाथी भी आते, तो भी वह पीछे न लौटते; जिनके सिर पर यदि बिजली भी गिर पड़ती, तो भी जो न डरते; जिनको यदि महाशीलवान राजा आज्ञा दे देते, तो वह सारे जम्बू द्वीप को आधीन करके छोड़ते। उन्होंने जब सुना कि कोशल नरेश बढ़ा चला आ रहा है, तो वह राजा के पास गए और बोले—

—देव ! कोशल नरेश बनारस राज्य को आधीन करने के लिए चला आ रहा है। हमें आज्ञा दें, हम जाकर उसे अपने राज्य में क़दम रखने के पहले, पकड़ लायें।

राजा—तात ! मेरे कारण किसी को कष्ट नहीं होना चाहिए। जिसे राज्य की इच्छा है, वह राज्य ले ले; तुम मत जाओ।

कोशल नरेश सीमा पारकर राज्य में दाख़िल हुए। अमात्यों ने राजा से जाकर वैसे ही कहा। पर बनारस के राजा ने उन्हें भी रोक दिया। कोशल नरेश ने नगर के दर्वाज़े पर पहुँच कर सन्देश भेजा—

'राज्य दो या युद्ध करो।'

राजा ने उत्तर भिजवाया—

'मेरे साथ युद्ध करने की ज़रूरत नहीं, राज्य ले लो।

अमात्यों ने फिर कहा—

—'देव ! हम कोशल नरेश को नगर की सीमा में घुसने न देंगे। नगर से बाहर ही उसे पकड़ लेंगे।'

राजा ने पहले की तरह से उन्हें भी रोक दिया और नगर के दर्वाज़े खुलवा कर सभी वज़ीरों सहित महल में जा बैठे।

कोशल नरेश बहुत बड़ी सेना के साथ बनारस में प्रविष्ट हुआ। उन्होंने देखा कोई भी मुक़ाबला करने वाला नहीं है। दर्वाज़े खुले हैं। वह सीधे महल पर चढ़ गया। वहां निरपराध शीलवान महाराजा की और उनके एक हज़ार मन्त्रियों को क़ैद कर अपने सैनिकों को आज्ञा दी—

'जाओ, इन अमात्यों को और इस राजा को पकड़ कर दोनों हाथ पीछे बांधकर कच्चे श्मशान में ले जाओ, वहां गले तक गहरे गढ़े खोदकर उनमें इन सबको एक एक कर खड़ा करके बालू भर दो। इसका ख़्याल रखना कि किसी के हाथ बाहर न रह जांय। रात को गीदड़ आकर अपना काम करेंगे।'

सैनिकों ने उस चोर राजा* की आज्ञा पा, अमात्यों सहित बनारस के राजा के हाथ पीछे बांधकर घसीटा। उस वक्त भी शीलवान महाराजा ने चोर राजा के प्रति मन में तनिक भी मैल न आने दिया। उन अमात्यों में एक भी ऐसा नहीं था, जो राजा के अनुशासन को न मानता। वे सभी ऐसे अनुशासन से जीवन बिताते थे।

उन सैनिकों ने शीलवान महाराज और उनके मन्त्रियों को कच्चे श्मशान में ले जाकर बीच में शीलवान महाराज और उनके दोनों ओर सब मन्त्रियों को करके गढ़े में उतारा। फिर उन गढ़ों को गले तक बालू से भर अच्छी तरह कूटकर चले गए।

शीलवान महाराज ने अपने मन्त्रियों को सम्बोधित करके कहा—

—'तात! चोर राजा के प्रति क्रोध न करना, उसके प्रति मैत्री की ही भावना करना।'

आधी रात के समय मनुष्यों का मांस खाने के लिए शृगाल आ पहुंचे। उन्हें देखकर राजा और अमात्यों ने एक स्वर से शोर मचाया। शृगाल डर कर भाग गए। लेकिन उन्होंने जब पीछे मुड़कर देखा तो किसी को न पाया। वे फिर आये। इधर से भी फिर शोर मचा। वे फिर भागे। लेकिन एक भी आदमी को पीछे न आता देख उन्होंने सोचा कि ये सब वध्य-मनुष्य होंगे। इसलिए वे फिर लौटे। इस बार लोगों के चिल्लाते रहने पर भी वे नहीं भागे। गीदड़ों का नेता राजा के पास आया। बाकी गीदड़ मन्त्रियों को खाने पहुँचे। उपाय-कुशल राजा ने उसे अपने पास आता देख, गीदड़ों के नेता को अपने को खाने का मौका देते हुए गर्दन ऊपर उठाई और ज्यों ही गीदड़ों का नेता उसे खाने के लिये आगे बढ़ा, राजा ने उसे किसी संडासी से पकड़ लेने की तरह ठोड़ी के नीचे दबा लिया। गीदड़ों के नेता ने जब देखा कि वह किसी तरह भी नहीं छूट सकता, तो उसने बुरी तरह चिल्लाना शुरू किया। बाक़ी गीदड़ उसकी आवाज़ सुनकर समझ गये कि उसे किसी न किसी आदमी ने पकड़ लिया है। मृत्यु-भय से डर कर सभी भाग निकले। राजा द्वारा ज़ोर से पकड़े हुए गीदड़ के इधर उधर करने के कारण बालू ढीली हो गई, उसने भी मृत्यु भय से डर कर चारों पैर से राजा पर बालू उछाला। राजा ने बालू को ढीला हुआ जान गीदड़ को छोड़ दिया। फिर इधर उधर हिल, दोनों हाथ बाहर निकाल, गढ़े के किनारों पर रख, राजा बादलों में से चन्द्रमा के बाहर होने की तरह, गढ़े के बाहर आया। साथ के सभी मन्त्रियों को आश्वासन दे, बालू हटा सबको बाहर निकाला।

उस समय कुछ लोग एक मुर्दे को यक्षों की सीमा पर श्मशान में छोड़ गए। वे यक्ष उसे आपस में बांट न सकने के कारण शीलवान महाराज के पास गये—'देव, इसे हमें बांट कर दें।'

राजा—'यक्षो! मैं इसे तुम्हें बांट तो दूं, लेकिन मैं परिशुद्ध नहीं हूं। मैं स्नान करूंगा।'

यक्ष चोर राजा के लिए रखा हुआ सुगन्धित जल उठा लाये। फिर उसके वस्त्र लाकर दिये। चारों प्रकार की सुगन्धियां लाकर दीं। नाना प्रकार के फूल लाकर दिये। फिर पूछा अब क्या आज्ञा है?

राजा ने कुछ खाने की इच्छा प्रकट की। वे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन उठा लाये। राजा के खा चुकने पर और मुंह हाथ धो लेने पर चोर राजा के लिए बना हुआ, पांच प्रकार की सुगन्धियों से युक्त, पान लाकर दिया। उसे खा चुकने पर पूछा—'अब क्या आज्ञा है?'

राजा—'चोर राजा के सिर पर टंगी हुई मंगल खड्ग उठा लाओ।' यक्ष ले आये।

राजा ने उस मुर्दे को सीधा खड़ा कर तलवार के एक प्रहार से दो टुकड़े कर, दोनों यक्षों को बराबर बांट कर दिया। फिर तलवार को धोकर बांध कर खड़ा हुआ। उन यक्षों ने मनुष्य मांस खा प्रसन्न चित्त हो पूछा—'महाराज अब और क्या करें?'

---

* कौशल नरेश के लिए मूल पाली कथा में इससे आगे इसी शब्द का प्रयोग है—अनुवादक

राजा—अच्छा तो अब तुम अपने प्रताप से मुझे तो राजा के शयनागार में पहुंचा दो और इन मन्त्रियों को इनके घर। उन्होंने 'अच्छा' कह वैसा ही किया।

उस समय चोर राजा अपने शयनागार में पड़ा सो रहा था। काशी नरेश ने उस गहरे सोए हुये राजा के पेट को तलवार की नोक से छू दिया। वह घबरा कर उठा और दीपक के प्रकाश में शीलवान महाराज को पहचान कर अपने को सम्हालता हुआ बोला—

महाराज, इतनी रात बीतने पर चारों तरफ़ से दर्वाज़े बन्द रहने पर, पहरेदारों के रहते आप यह तलवार बांधे यहां कैसे पहुँचे !'

राजा ने सविस्तार अपने पहुँचने का हाल कहा।

चोर राजा का दिल भर आया। वह बोला—

'महाराज ! मैंने मनुष्य होकर भी तुम्हारे सद्‌गुणों को न जाना। पर इन मुरदों का मांस खाने वाले कठोर हृदय यक्षों ने तुम्हें पहचान लिया। राजन् ! अब मैं तुम्हारे जैसे शीलवान नरेश के प्रति द्वेषका भाव नहीं रख सकता।'

इतना कह, उसने तलवार लेकर शपथ खाई और राजा से क्षमा याचना की।

दिन होने पर शहर में मुनादी कराई, सभी श्रेणियों को, सभी अमात्यों को, सभी ब्राह्मणों को और सभी गृहस्थों को इकट्ठा कर, उनके सम्मुख शीलवान राजा के गुणों की प्रशंसा की। फिर एक बार सबके सामने राजा से क्षमा मांग काशी नरेश को, उनका राज्य सौंपते हुए कहा—

'अब से मैं आपके राज्य की हिफ़ाज़त करूंगा। यदि आपके राज्य में कोई उपद्रव होगा, तो उसे दबाना मेरा धर्म होगा।'

अपनी सारी सेना लेकर कोशल नरेश अपने देश को लौट गया।

अशोक की धर्म-विजय

कलिंग-विजय के बाद अशोक के मन में भारी 'अनुशोचन' हुआ। उसने अनुभव किया कि "जहां लोगों का इस प्रकार वध, मरण और देशनिकाला हो, वहां जीतना न जीतने के बराबर है"। उसने निश्चय किया कि अब वह ऐसी विजय न करेगा। अपने बेटों-पोतों के लिए भी उसने यह शिक्षा दर्ज की कि वे "नयी विजय न करें और जो विजय बाण खींच कर ही हो सके, उसमें भी क्षमा और लघुदण्डता से काम लें। धर्म के द्वारा जो विजय हो उसी को असल विजय मानें।" दक्खिनी सीमा के राज्यों के विषय में उसने अपने अधिकारियों को लिखा—"शायद आप लोग जानना चाहें कि सीमा पर के जो राज्य अभी तक जीते नहीं गये हैं, उनके विषय में राजा क्या चाहता है। मेरी······यही इच्छा है कि वे मुझ से डरें नहीं, मुझ पर भरोसा रक्खें······वे यह मानें कि जहां तक क्षमा का बर्ताव हो सकेगा, राजा हम से क्षमा का बर्ताव करेगा"—जयचन्द्र विद्यालङ्कार

आज़ाद हिन्दुस्तान में न फ़ौज होगी न हथियार होंगे

श्री मञ्जुर अली सोख्ता

२

राजनैतिक दृष्टि

हम अपने पिछले लेख में यह बता चुके हैं कि किस तरह मानव जीवन के हर क्षेत्र में हिंसात्मक तरीक़े और हिंसात्मक संस्थाओं से धीरे धीरे हिंसा की भावना कम होती जा रही है और उनकी जगह अधिक दयापूर्ण और प्रेमपूर्ण भाव काम में लाये जा रहे हैं। हमने यह भी कुबूल किया था कि आम तौर पर राजनीति पर और ख़ास तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर अहिंसा और प्रेम की भावनाओं का बहुत थोड़ा असर पड़ा है। किन्तु हमने यह भी लिखा था कि इस समय दुनिया एक ज़बरदस्त इनक़लाब की प्रसव-वेदना में से होकर निकल रही है और इस क्षेत्र में भी उलट फेर होने लाज़िमी हो गये हैं। यहां पर हम इस सवाल के सिर्फ़ राजनैतिक पहलू पर ही ग़ौर करेंगे और यह देखेंगे कि इस क्षेत्र में भी तब्दीली की ख्वाहिश ने यूरोप की ज़िन्दगी में और सारी दुनिया में हथियारों के बढ़ाने और फ़ौजकशी पर क्या असर डाला।

इस समय दुनिया नये विचारों की भयङ्कर प्रसव-वेदना अनुभव कर रही है। यूरोप इस समय नाशकारी युद्ध में फंसा हुआ है। चारों तरफ़ बरबादी और तबाही फैली हुई है। लोगों की ज़िन्दगी नरक बन गई है। इतिहास में इतनी खौफ़नाक तसवीर दूसरी नहीं मिलती। यूरोप की इस समय की कैफ़ियत दुनिया को इस बात को सोचने के लिये मजबूर कर रही है कि दुनिया से इस नारकीय युद्ध का कैसे पीछा छूटे? सारी दुनिया आज इस बात पर एक राय है कि यदि फ़ौजों और हथियारों को इतना ही महत्व दिया जायगा, जितना इस समय दिया जा रहा है, तो सभ्यता के टुकड़े टुकड़े हो जायंगे और इनसानी ज़िन्दगी की कोई क़ीमत न रह जायगी। यह संसार के नव-निर्माण की शुभ सूचना है। यूरोप का भावी राजनैतिक नव-निर्माण किस दिशा में हो सकता है, इसका अन्दाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है। हेग की अन्तर्राष्ट्रीय अदालत, लीग आफ़ नेशन्स, निशस्त्रीकरण सम्मेलन, स्थायी शान्ति क़ायम करने की सब की ख्वाहिश, 'सब मिल कर अपने को बचायें' इस सिद्धान्त और आदर्श से सबकी सहमति—ये सारी बातें निश्चित तौर से इस बात का इशारा करती हैं कि हवा का बहाव किस रुख है। हम यहां इन सारी बातों पर विस्तार से बहस नहीं करेंगे, हमारे इस लेख से जिन बातों का बुनियादी तौर पर सम्बन्ध है, उन्हीं पर एक सरसरी निगाह डालेंगे।

आज इस बात को क़रीब क़रीब सभी स्वीकार कर रहे हैं कि यूरोप के छोटे छोटे मुल्कों की उम्र अब ख़त्म हो गई। उनकी मौत को स्वाभाविक ही कहना चाहिये। इन मुल्कों के ख़ात्मे का यूरोप और सारी दुनिया की राजनीति पर बहुत बड़ा असर पड़ेगा। जहां तक यूरोप का ताल्लुक़ है, इन छोटे छोटे मुल्कों के मिटने का अच्छा ही असर पड़ेगा। यूरोप के कुशल राजनीतिज्ञ इन्हीं छोटे छोटे मोहरों को लेकर अपनी राजनैतिक शतरंज के कुशल दांव पेंच खेल कर अपनी शक्ति बढ़ाते और सारे यूरोप की शान्ति को वक़्तन-फ़-वक़्तन ख़तरे में डालते रहते थे। इन छोटे छोटे मुल्कों में लगातार विरोध, अराजकता और फ़ौजकशी का कोलाहल मचा रहता था और ये

मुल्क यूरोप की आन्तरिक शान्ति को हर वक़ ख़तरे में डाले रहते थे। इनके ख़ात्मे से यूरोप के राजनैतिक क्षितिज का विस्तार होगा और नैतिक और आर्थिक दृष्टि से उसके रास्ते से वे सब मुशकिलें दूर हो जायगी, जिनकी वजह से यूरोपीय राष्ट्रों में उदारता और व्यापकता आ सकना क़रीब क़रीब नामुमकिन था। इन छोटे छोटे मुल्कों में से अधिकांश फ़्रान्स की जन-क्रान्ति के बाद जनतन्त्र के सिद्धान्तों की बुनियाद पर क़ायम हुये। इनके ग़ायब हो जाने से यूरोप से जनतन्त्र के इतिहास का एक अध्याय समाप्त हो जाता है। इसके साथ साथ जनतन्त्रात्मक संस्थायें, बहुमत दल द्वारा शासन का सिद्धान्त, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, विचारों को व्यक्त करने की आज़ादी आदि बहुत-सी बातों का भी ख़ात्मा हो गया। जन तन्त्रात्मक शासन-प्रणाली का एक चक्कर मालूम होता है पूरा हो गया और जनतन्त्र की इस ख़ाक से निरंकुश स्वेच्छा-शासन बड़े वेग के साथ सतह पर आता दिखाई दे रहा है, कि जिस शासन की सारी बागडोर सर्वेसर्वा डिक्टेटरों के हाथों में होगी। दुनिया की राजनीति बुरी तरह रोग-ग्रस्त दिखाई दे रही है और मालूम होता है प्रकृति अपने स्वाभाविक भाव से उसे सचेष्ट और स्वस्थ करने के लिये उसका एक बहुत बड़ा आपरेशन कर रही है।

निरंकुश डिक्टेटरी की स्थापना ज़ाहिरा तौर पर एक साफ़ बुराई ही दिखाई देती है; किन्तु इस समय यह डिक्टेटरी विविध शक्तियों को सङ्गठित करके उन्हें एक सूत्र में बांधने का काम देगी। यह डिक्टेटरी यूरोप के वृहत् जीवन में इस समय रीढ़ का काम करेगी। यह यूरोप की आर्थिक और राजनैतिक शक्ति को अधिक विस्तृत और व्यापक बनायेगी। इस डिक्टेटरी का वास्तविक रूप देखने के बाद अराजकता की बुनियादों पर बेशुमार हथियार बन्दी का ख़याल दुनिया को छोड़ना पड़ेगा। इसी डिक्टेटरी की नीवों पर यूरोप सच्चे जनतन्त्र और सच्ची मानवता का निर्माण करेगा। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के नाम पर आज जो पागल प्रवृत्तियां समाज में पैदा हो गई हैं, इस नव-निर्माण में उनका कोई स्थान न होगा। इस व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ने ही यूरोप के सारे जीवन का नाश कर दिया और आज यूरोप की जो दुर्गति दिखाई दे रही है, उसका बहुत बड़ा सबब यही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है। यूरोप में आज हम जिस भयङ्कर नाशकारी दृश्य को देख रहे हैं, शायद उसके बिना आज यूरोप के नव-निर्माण के जो शुभ लक्षण दिखाई दे रहे हैं, उनकी सम्भावना असम्भव होती। जब यूरोप ने अपने को उस फ़ालिज से बचाने में असमर्थ पाया, जो उसके शरीर के जोड़ों और उसकी नसों को ज़हरीला बना रहा था, तभी मानों यह भयङ्कर युद्ध उसे बचाने के लिये आ खड़ा हुआ।

इस युद्ध के नतीजे चाहे जो हों, लेकिन यूरोप की प्रगति बहुत कुछ हमारी ऊपर बताई हुई दिशा में ही होगी। मौजूदा युद्ध में या तो ब्रिटेन जीतेगा या जरमनी और या यूं ही दोनों दल थक थका कर युद्ध बन्द कर देंगे। ब्रिटेन और जरमनी में यदि कोई जीतेगा, तो वही यूरोप का एकछत्र निरंकुश सर्वेसर्वा बन जायगा। जिस आदमी को सत्य की ज़रा भी तलाश है, वह इससे इनकार नहीं कर सकता कि ये दोनों देश सिर्फ़ यूरोप की इसी डिक्टेटरी के लिये लड़ रहे हैं और वाक़यात कुछ ऐसे हो रहे हैं कि जो भी दल जीतेगा पूरी तरह यही करके छोड़ेगा। हां यदि दोनों दल लड़ते लड़ते थक गये, तब फिर 'सब मिल कर एक दूसरे की रक्षा करें' (collective security) का सिद्धान्त अमल में आयेगा। एक राष्ट्र संघ (League of nations) भी बनेगा। किन्तु इस बार जो राष्ट्र संघ बनेगा, उसके हाथों में वास्तविक शक्ति होगी। पिछले राष्ट्र संघ के मुक़ाबले में वह कहीं ज़्यादा अमली होगा। लेकिन चाहे राष्ट्र संघ बने या एक ही राष्ट्र छत्रपति होकर यूरोप के सारे देशों को अपने असर में करले यूरोप के सभी प्रभावशाली राष्ट्र मिलकर, अपने मत भेद भुलाकर, अपनी सारी शक्ति को एकत्रित करके सबकी भलाई के ही रास्ते पर क़दम उठायेंगे। जिस तरह आज डिक्टेटरी की सूरत में देश के समस्त साधन केन्द्रीय

सत्ता के हाथों में हैं, उसी तरह यूरोप के नव-निर्माण में सारे यूरोप के साधनों को सबके फ़ायदे के लिये इकट्ठा करने में सभी राष्ट्र केन्द्रीय सत्ता या राष्ट्र संघ को मदद देंगे। जिन पुराने समाज सङ्गठनों या शक्तियों से विरोध की सम्भावना हो सकती थी, उनका इस युद्ध के दबाव से ख़ात्मा हो गया। लोकार्नो के सुलहनामे से संसार जिन परिणामों की आशा रखता था, यह नई व्यवस्था उसी उम्मीद को पूरा करेगी। यह नई व्यवस्था यूरोप निवासियों को एक सम्मिलित यूरोपीय राष्ट्रीयता के नाम पर सोचना और अमल करना सिखायेगी। इसके बाद यूरोप एक सङ्गठित और अमेद्य शक्ति की हैसियत से दुनिया के सामने खड़ा होगा।

किन्तु बदक़िस्मती से जो ताक़तें इस तब्दीली के लिये यूरोप को मजबूर कर रही हैं, वे आर्थिक और राजनैतिक हैं। स्वभावतः जो तब्दीली होगी, वह नैतिक से अधिक आर्थिक होगी, मानवीय से अधिक राष्ट्रीय होगी। इन तब्दीलियों से यूरोप में शान्ति क़ायम होगी, उसकी ख़ुशहाली और क़ूवत भी बढ़ेगी, मगर फिर भी न तो उसके दृष्टिकोण में कोई फ़र्क़ होगा और न उसकी नैतिकता में कोई विशेष अन्तर आयगा। जब यूरोप में आन्तरिक शान्ति होगी, तब वह सारी दुनिया के लिये एक ख़तरा बन जायगा। उसकी सम्मिलित शक्ति सारी दुनिया के दिमाग़ों पर एक डरावने और भयङ्कर स्वप्न का काम करेगी। आज जरमनी में जो जरमन जाति की श्रेष्ठता का क़ौमी अभिमान है और जो वैज्ञानिक तरीक़ों से जरमनी के सारे जीवन में प्रविष्ट किया गया है, वह वास्तव में यूरोप का ही विश्वास है। जरमनी में जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह यूरोप की ही भावनाओं और उसी की उम्मीदों का ही प्रतिबिम्ब है। यूरोप ने हमेशा 'गोरे आदमियों' की निगाह से ही सोचा और अमल किया है। उसकी नज़रों में सिर्फ़ 'गोरा आदमी' है। उन्हीं के फ़ायदे और उन्हीं से हमदर्दी की बात वह सोचता है। यूरोप की मौजूदा लड़ाई का ध्येय भी यही है कि काले आदमियों के मुल्कों का फिर से बटवारा किया जाय, काले आदमियों के चूसने का हर गोरी क़ौम को यकसां मौक़ा दिया जाय। इसलिये ज्यों ही यूरोप ने अपनी इस आपसी लड़ाई से फ़ुरसत पाई, वह अपना सारा ध्यान और अपनी सारी शक्ति अपने इस मक़सद को हासिल करने में लगा देगा। अमरीका भी या तो लड़ भिड़कर या सुलह से, चूसनेवालों के इसी गिरोह में शामिल हो जायगा। फिर इस महा विकराल दानव का बोझ दुनिया की अगोरी क़ौमों को सम्हालना होगा। जापान और मध्य पूर्व की दूसरी क़ौमें, जो अब तक इन गोरी शक्तियों की कृपा और उनकी आपस की ईर्षा की वजह से आज़ाद हैं, शोषितों की टोली में आ जायेंगी और एशिया और अफ़रीका के विशाल महाद्वीप इन गोरी क़ौमों के शिकारगाह का काम देंगे।

मौजूदा परिस्थिति की यही राजनैतिक पृष्ठ भूमि है और जब हम इस रोशनी में दुनिया के दूसरे मुल्कों पर निगाह दौड़ाते हैं कि जिनके साथ यूरोप का वास्ता पड़ेगा, तब हमें दिखाई देता है कि इन मुल्कों के सामने एक ज़बरदस्त ख़तरा है। इन मुल्कों को कष्ट झेलते आज सैकड़ों बरस हो गये। यूरोप के फ़ौलादी पञ्जे में उनकी असहाय स्थिति और उनके भयङ्कर कष्ट इतिहास की सब में बड़ी दुखान्त घटना है। जिन जिन क़ौमों से यूरोप का वास्ता पड़ा है, उनमें बहुत सी क़ौमें मिट चुकीं और अनेक मिट रही हैं। अमरीका के आदिम निवासी क़रीब क़रीब सब नष्ट हो गये। आस्ट्रेलिया के पुराने बाशिन्दों का भी यही हाल हुआ और अफ़रीका की बीसों क़ौमें दुनिया के परदे से मिट चुकीं। इनके मिटने की सारी ज़िम्मेवारी यूरोप की आर्थिक और राजनैतिक नीति पर है। सिर्फ़ एशिया के मुल्कों ने मुक़ाबले का कुछ माद्दा दिखाया है। किन्तु यूरोप की भयङ्कर शोषण-नीति ने उन्हें भी असहाय और भिखमङ्गा बना दिया है।

एशिया की इन क़ौमों की सभ्यता और संस्कृति की जो शिक्षा है, उसकी वजह से ये यूरोप वालों के

शाही ऐलानों और उनके वादों पर एतबार करते रहे। वे समझते रहे कि ये यूरोपियन मुल्क उनकी भलाई के इच्छुक हैं। उन्होंने बेहद तकलीफ़ें उठाईं, मगर अपने यूरोपियन मालिकों के तरफ़ वफ़ादार बने रहे। किन्तु लगातार तजरुबों से वे समझ गये कि यूरोपियन मुल्कों के वादे और उनके ऐलान झूठे होते हैं। अब एशिया वालों के दिलों पर यह विचार गहराई के साथ घर करता जा रहा है कि यूरोपियन क़ौमों के राजनैतिक व्यवहार में न तो कोई ईमानदारी है और न कोई सदाचार है और न उनमें कोई मानव-भावना है। इस दृढ़ धारणा ने उनके दिलों से यूरोप के सहयोग और सदिच्छाओं के ज़रिये उद्धार पाने की आशा का आख़री तौर पर ख़ात्मा कर दिया।

फिर वह इस बात का भी सपना देखते रहे कि यूरोप के विविध देशों के आपसी झगड़ों और आपस के ईर्षा-द्वेष से ही उनकी कुछ भलाई हो जाय। फिर उन्हें यह भी ख़्याल था कि एक दूसरे के दुश्मनों की मदद से वह गुप्त षड्यन्त्र करके अपनी ग़ुलामी के जुए को फेंक सकते थे। लेकिन लगातार तजुरुबे ने उनके इस सपने की निरर्थकता को भी साबित कर दिया। यूरोप के तमाम मुल्कों की हमेशा की यह नीति रही है और आजकल भी है कि वह एक दूसरे के ख़िलाफ़ ऐसा कोई काम न करें कि जिससे काले आदमियों पर गोरी क़ौम की प्रभुता में कोई ख़ास फ़र्क़ पड़े। इसी का नतीजा है कि उनके आपस के ज़बर्दस्त मतभेदों के होते हुए भी, वे समस्त एशिया और अफ्रीका को अपने पैरों के नीचे रखने में सफल हुए हैं। यहां तक कि पिछले महायुद्ध ने भी ग़ुलाम मुल्कों पर उनके साम्राज्यवादी देशों के बन्धनों को बजाय ढीला करने के कसा ही है और इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस सारे ज़माने में लड़ाई के दबाव की वजह से किसी भी यूरोपियन देश ने अपने एक भी आश्रित ग़ुलाम देश को स्वाधीन नहीं किया। किसी भी यूरोपियन देश ने अपने दुश्मन के ग़ुलाम आश्रित देश को आज़ाद होने में मदद नहीं दी। लड़ाई के दौरान में मालिक ज़रूर बदले हैं; मगर ग़ुलामी नहीं बदली। वजह साफ़ है। ग़ुलाम मुल्कों की इस तरह की आज़ादी शोषण की नीति का अन्त कर देगी और दुनिया के मामलों में सब को एक से अधिकार दे देगी, सब का बराबर का दर्जा कर देगी। और इसका नतीजा यह होगा कि न सिर्फ़ व्यक्तिगत राष्ट्रों की अमूल्य हुकूमतों का ही अन्त होगा, बल्कि सारी गोरी क़ौम को इससे ज़बर्दस्त नुक़सान पहुँचेगा। इस मौजूदा युद्ध को ही लीजिये, इसमें भी हर जगह वही नीति बर्ती जा रही है। इंगलैण्ड, इस संकट की घड़ी में भी, हिन्दुस्तान का स्वतन्त्र और अपनी मर्ज़ी से दिया हुआ सहयोग अपनी ही रक्षा के लिये क़बूल करने को तय्यार नहीं है। वह हिन्दुस्तान के सैनिक साधनों को बहुत जांच पड़ताल और सावधानी के साथ इस्तेमाल कर रहा है। वह इस बात का कोई मौक़ा देना नहीं चाहता कि हिन्दुस्तान सैनिक दृष्टि से किसी क़िस्म की स्थायी और सच्ची ताक़त हासिल कर ले। जर्मनी आज बार बार चीख़ चीख़ कर इस बात का ऐलान कर रहा है कि वह अपने दुश्मन के ग़ुलाम मुल्कों को छुएगा तक नहीं। और कई मामलों में हम देखते हैं कि ग़ुलाम क़ौमों को बिलकुल पशुओं की तरह समझा जा रहा है और एक आक्रमक दूसरे आक्रमकों के हाथों में उन्हें इस तरह से सुपुर्द करता है, जैसे वह कोई ज़ायदाद हों। उनके हितों और उनकी आज़ादी का कोई ख़याल नहीं किया जाता। ये सारी चीज़ें इस बात को साबित करती हैं कि इस लड़ाई के नतीजे से एशिया और अफ्रिका की क़ौमों को कोई मुक्ति नहीं मिलती। यदि उन्हें अपनी ग़ुलामी से मुक्ति मिलेगी, तो वह ख़ालिस उनके अपने संगठन से, अपने साधनों से और अपनी शक्ति से। एशिया और यूरोप के सामने आज यही सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। उन्होंने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया है कि अपनी आज़ादी के लिए वे किसी विदेशी शक्ति पर निर्भर नहीं कर सकते। उन्हें अपनी आज़ादी अपनी ही शक्ति और साधनों से प्राप्त होगी। किन्तु अपनी राजनैतिक स्वाधीनता को प्राप्त करने के लिए ख़ास तरह की

शक्ति की ज़रूरत है और जब वे इस शक्ति के लिये अपने को देखते हैं, तो उन्हें पता चलता है कि वह शक्ति उनके पास नहीं है। इस शक्ति का माप आज भी यही है और हमेशा से यही रहा है कि—कितनी फ़ौज़ है और कितने अस्त्र शस्त्र हैं! दुनिया की गोरी क़ौमों ने सदियों से इस बात का षड़यन्त्र रचा है कि एशियाई और अफ्रिका की क़ौमों के पास न फ़ौजें हों और न हथियार हों। जब एशियाई और अफ्रिका की क़ौमें अपनी इस कमी को देखती हैं, तो अफ़सोस और डर से उनका दिल भर जाता है। कुछ समय पहले तक जो लोग संगठित हिंसा द्वारा आज़ादी हासिल करने की सम्भावना पर विश्वास रखते थे, आज इस बात को साफ़ समझ गये हैं कि ऐसे प्रयत्न किसी तरह सफल नहीं हो सकते। हमलों से बचने के लिए मैजिनो और सीगफ्रिड लाइन जैसी ज़बर्दस्त क़िलेबन्दी, बड़े बड़े लड़ाई के जहाज़, हज़ारों की तादाद में नहीं बल्कि लाखों की तादाद में हवाई जहाज़, बम, टैंक, मशीनगन, ज़हरीली गैस, इनकी तादाद और मिक़दार, जो आजकल की लड़ाई की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए काफ़ी हो, इस लड़ाई के सामान को बनाने के लिए अटूट धन, साइंस का ज्ञान और इनके बनाने और इस्तेमाल करने के लिए टेकनिकल बारीकी—ये सारी चीज़ें जब नज़रों के सामने आती हैं, तो बड़े से बड़े आशावादी षड़यन्त्रकारी का जोश ठंडा पड़ जाता है। यह बात भी वे अच्छी तरह समझते जा रहे हैं कि लड़ाई में फ़ौजी तय्यारी के ये सारे साधन सिर्फ़ सरकार ही अपने काम में ला सकती है। जंजीरों से जकड़ी हुई कोई ग़ुलाम क़ौम जिसके राष्ट्रीय जीवन का ज़र्रा ज़र्रा विदेशी हुकूमत नियन्त्रित और संचालित करती हो, चुपचाप इन साधनों की उन्नति करने की आशा नहीं कर सकती। यदि इस तरह के साधन उन्हें मिल भी जायं, तो भी वे उन्हें अपनी मुक्ति के लिये इस्तेमाल नहीं कर सकते। किन्तु एशिया और अफ्रिका की क़ौमों के पास न तो ऐसे साधन ही हैं और न उन्हें अपने फ़ायदे के लिए इस्तेमाल करने और उन्हें तरक़्की देने के उन्हें अवसर ही मिल सकते हैं। इसलिए उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न कि—वे यूरोप से भी कहीं ज़्यादा बड़े पैमाने पर मौजूदा सैनिकवाद की उन्नति न कर लेंगे, तब तक उन्हें अपनी ग़ुलामी से छुटकारा नहीं मिल सकता—का कोई जवाब नहीं मिलता और जब तक इस सवाल का जवाब नहीं मिलता, तब तक उनकी क़िस्मत पर ताला पड़ा हुआ है।

इसी भयंकर संकल्प-विकल्प में आज बदक़िस्मती से एशिया और अफ्रिका के लोग पड़े हुए हैं। अपनी ग़ुलामी से छुटकारा पाने के लिए जितनी हिंसात्मक तय्यारी की ज़रूरत है, उसका संगठन कर सकना उनके लिए नामुमकिन है। और अगर वह ये संगठन नहीं कर पाते, तो उनके लिए भी उसी क़ब्र का दरवाज़ा खुला हुआ है, जिसमें क़िस्मत ने बहुत सी उन ग़रीब क़ौमों को भेज दिया, जिन पर यूरोपीय मुल्कों का ज़बर्दस्त क़ब्ज़ा था।

इसी महत्व पूर्ण घड़ी में हिन्दुस्तान मैदान में आया। उसके आन्दोलन ने इतिहास में एक नया और बहुत ज़बर्दस्त अध्याय खोला। मानवता की महा-पुजारिन भारतीय आत्मा ग्रसित मानवता के दुःखों को अधिक बर्दाश्त न कर सकी। हिंसा के नाशकर परिणामों ने उसकी आत्मा को बेचैन कर दिया और उसने यह फ़ैसला कर लिया कि मज़लूमों की जागृति को वह अपनी शक्ति भर आगे बढ़ाएगी। किन्तु वह हिंसा का मुक़ाबला हिंसा से नहीं करेगी। उसने युगों से देखा है कि हिंसा ने हिंसा को बढ़ाया है और हिंसा के एक दौर के बाद हिंसा का उससे भी बड़ा दूसरा दौर आता है। उसने दृढ़ता के साथ यह निश्चय किया कि वह हिंसा का सत्य और क्षमा से मुक़ाबला करेगी। जिस ख़ुराक पर हिंसा फलती फूलती है, वह उसे वह ख़ुराक न देगी। भारतीय आत्मा का यह पैग़ाम दुनिया के कोने कोने में पहुँच गया है और उसकी प्रतिध्वनि अनेकों मुल्कों में सुनाई दे रही है। भारतीय आत्मा का स्वर स्पष्ट है—

"ऐ पृथ्वी के दुखी देशो, देखो! यूरोप अपने बन्दियों की देह पर ही क़ाबू कर सकता है, उनकी

आत्मा पर नहीं। ऐ दुखी देशो, अपनी आत्मा को जगाओ और तुम्हारी आत्मा की ज़बर्दस्त जागृति तुम्हारी देह को भी स्वतन्त्र करा देगी।"

भारत का यह दिव्य सन्देश दुनिया के चारों कोनों तक पहुंच गया है और इन्सानों की समझदार जमातें उसे ग़ौर से सुन रही हैं। लोग उसमें उस स्वर्गीय संगीत की ध्वनि सुन रहे हैं, जो उन्हें प्रोत्साहन दे रही है और जिसके बारे में वह समझते थे कि वह दुनिया से हमेशा हमेशा के लिए मिट गई। आत्मबल हिंसा पर क़ाबू पा सकता है, यह ऐसा विचार है कि जो बुनियादी तौर पर इन्सानी ज़िन्दगी की प्रचलित माप तौल को बदलता हुआ दिखाई दे रहा है। और अगर यह सही है, तो यह पीड़ित मानवता के ज़ख़्म पर दैवी मलहम का काम देगा,—ऐसे मौक़े पर हमें यह ऐसी अक्सीर दवा मिली है जबकि भविष्य में हमें अपनी ज़िन्दगी की कोई आशा न रह गई थी। युद्ध के दहकते हुए नरक की विकराल ज्वालाएं और उसकी भयंकरता ने सारे संसार को किंकर्तव्य विमूढ़ कर दिया है। और वह इन चारों तरफ़ से उठती हुई लपटों से बचने के लिए बदहवास होकर कांप रहा है। पाशविक बल के नाशकारी असर इतने भयंकर रूप से चारों तरफ़ छा रहे हैं कि हिंसा के बड़े से बड़े दावेदार आज परेशान दिखाई देते हैं। वे उनकी भयंकरता को समझ रहे हैं। किन्तु उनसे बचने का उन्हें कोई चारा दिखाई नहीं देता और वह बेबस और बेकस उसकी लपेट में खिंचे चले जा रहे हैं। यदि इससे बचने का कोई दूसरा तरीक़ा निकल आए और कारगर तरीक़े से उसका प्रदर्शन किया जा सके, तो दुनिया का कोई मुल्क उसको क़बूल करने से न हिचकेगा और यूरोप ख़ुद इस नये तरीक़े को अख़्तियार कर लेगा।

एशिया और अफ़्रिका के पास हिंसा के कोई साधन नहीं हैं। न उनके पास हथियार हैं, न उनके पास फ़ौजें हैं, शायद भाग्य ने ही दया करके इस मंज़िल के तमाम रास्ते उनके लिए बन्द कर दिये। जैसे जैसे वह इस दिशा में अपनी मजबूरी को समझते जा रहे हैं, उनका दिल बैठता जाता है और यूरोपीय फ़ौजकशी की पैराए की कोई चीज़ खड़ी करने की उनकी सारी उम्मीदों पर ठंढा पानी पड़ता जाता है। इस तरह भाग्य ने ही मानो उन्हें अहिंसा का यह अमर सन्देश देने के लिए चुना है; क्योंकि हिंसा की तरफ़ से उनकी उम्मीदों का जब तक पूरा ख़ात्मा न हो गया होता, वे सच्चे जी से और लगन के साथ अपने उद्धार के इस सब से अधिक मानवीय तरीक़े को क़बूल न करते।

इस तरह हिन्दुस्तान ने अपने इस दिव्य सन्देश के लिए एक ऐसा मौक़ा चुना है कि जब दुनिया इस तरफ़ आस लगाए और टकटकी जमाए बैठी है। वह अपनी स्वाभाविक अन्तर दृष्टि, आध्यात्मिक ज्ञान और अपने ईसार यानी आत्माहुति के प्रकाश में भव्य पथ पर अग्रसर हो रहा है। उसकी ज़िन्दगी का पूरा इतिहास उसे अपने इस मिशन की ओर बढ़ने का अधिकार देता है। अत्याचारियों की हिंसा और ज़ुल्म न उसे अपने रास्ते से हटा सकेंगे और न उसे निराश कर सकेंगे। पाशविक बल के तमाम हमलों का वह अपने आत्मिक बल, जिसमें फ़ौलाद की सी ताक़त है; और अपनी दृढ़ शक्ति से मुक़ाबला करेगा। मौत और नाश और हिंसा के दूसरे तरीक़े उसे अपने पथ से विचलित न कर सकेंगे। अपने प्राचीन ऋषियों की तरह आज वह हवन कुण्ड की उठती हुई लपटों में ख़ुद अपनी आहुति चढ़ा रहा है, और उसकी इस पवित्र आहुति से या तो प्रलयंकरी लपटें ही शान्त हो जायंगी और या वह स्वयं भस्म होकर अपने आपको राख में मिला देगा। उसकी अपूर्व क़ुर्बानी, उसका आध्यात्मिक तरीक़ा और उसकी आहिंनी आत्मशक्ति निराश दुनिया में आशा और विश्वास पैदा करेगी और उन्हें भी इस प्रज्वलित यज्ञ में आहुति बनने का निमन्त्रण देगी। उसकी आध्यात्मिक आत्माहुति एक बार यूरोप की बेख़बर सोई हुई आत्मा को भी झकझोर कर जगा देगी। धीरे धीरे यूरोप की आत्मा जागेगी और वह अपने और दुनिया के नाश के रास्ते को बदलेगी।

क्या-रूस जापान में मेल हो सकता है ?

श्रीमती कैथलीन बार्न्स

श्रीमती कैथलीन बार्न्स अमरीका की प्रसिद्ध लेखिका हैं। सुदूर पूर्व की समस्याओं के जितने गम्भीर लेख श्रीमती कैथलीन लिखती हैं, वे उनके अपने व्यापक अध्ययन का परिणाम हैं।

संसार की अव्यवस्थित परिस्थिति में एशिया के अन्दर रूस की क्या नीति होगी—आज हर जगह इस बात की चरचा है। पोलैण्ड और फ़िनलैण्ड की लड़ाई और रूमानिया के बटवारे के बाद रूस की नीयत पर लोगों को बेहद शक होगया है। लोगों का अनुमान है कि एशिया के अन्दर लाल साम्राज्य क़ायम करने में रूस को महज़ अवसर की तलाश है।

आज इस बात के बेहद अन्दाज़ लगाए जा रहे हैं कि स्टालिन एक न एक दिन चीन को धोखा देगा। कई बरस हुए बेकार राजनीतिज्ञ इस बात के अन्दाज़े लगाया करते थे कि रूस और जापान कब तक एक दूसरे से युद्ध शुरू करेंगे और उस युद्ध के क्या नतीजे होंगे! किन्तु जब रूस और जापान में युद्ध होने के बजाय जापान और चीन में युद्ध शुरू होगया, तब इस बात के अन्दाज़े लगाए जा रहे हैं कि रूस किस हद तक चीन को मदद देगा। लोगों का अनुमान है कि नाज़ी पुरोहित रूस-जापान का विवाहोत्सव सम्पन्न करा देगा, जिसकी दावत में चीन का पुलाव पकेगा। लोग इस बात के भी अन्दाज़े दौड़ा रहे हैं कि जो चीन के विविध दल मिल कर, जापान का मुक़ाबला कर रहे हैं; इन दलों की एकता कब तक चल सकेगी? इनके अन्दाज़ों को पढ़कर इनकी कल्पना शक्ति की तारीफ़ ही करनी पड़ेगी!

किन्तु १९४० का साल ऐसा न था, जिसमें अन्दाज़ों की दुनिया में कोई रह सकता। बड़े बड़े नीतिशास्त्रियों के अन्दाज़े ग़लत साबित हुए। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक अजीब अनिश्चित ढंग से चल रही है। सोवियत् रूस की राजनीति भले ही हमारी समझ में न आए, किन्तु एक बात स्पष्ट हो गई है कि रूस कठमुल्लापन से काम नहीं लेता। रूस ने मार्क्सवाद को रूढ़ि नहीं बनाया। उनके मार्क्सवाद में फैलने और सिकुड़ने की गुंजायश है। आज सोवियत् रूस का मुख्य ध्येय समाजवादी क्रान्ति का विश्वव्यापी प्रचार नहीं, बल्कि आत्म रक्षा है। सोवियत् की नज़रों में यही सफल विश्वक्रान्ति के लिये पहला अमली क़दम है। इसी ध्येय की प्राप्ति के लिये यूरोप और एशिया में सोवियत् की नीति में समय समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। १९३९ के सितम्बर से, जब से यूरोप में युद्ध शुरू हुआ है, प्रश्न उठता है कि क्या सोवियत् की एशियाई नीति में कोई परिवर्तन हुआ है?

जब यूरोप का युद्ध शुरू हुआ, उस समय रूस और जापान मंगोलिया की सरहद पर ग्रीष्म ऋतु का फ़ौजी प्रदर्शन कर रहे थे। दोनों देशों में बेहद मनोमालिन्य था। उसी समय रूस ने चीन के साथ एक नई सन्धि करके चीन को और अधिक युद्धकी सामग्री देने का वादा किया था। किन्तु जब से जर्मनी और

रूस का समझौता हुआ है, तब से जर्मनी के आग्रह पर रूस और जापान के आपसी सम्बन्ध में भी थोड़ा बहुत ख़तरा कम हुआ है। इसके बाद से रूस और मांचूकाओ की सरहदी लड़ाई ख़त्म होगई और रूस की बताई हुई सरहद को लेकर एक आरज़ी समझौता होगया है। रूस ने जापान की उस सलाह को भी मान लिया है, जिसके अनुसार साइबेरिया और मांचूकाओ की सरहदों की जांच के लिये एक कमीशन मुक़र्रर होगया है। हालांकि रूस और जापान के बीच का व्यापार क़रीब क़रीब ख़त्म होगया था, फिर भी नए सिरे से मास्को के जापानी राजदूत ने व्यापारिक समझौते की चर्चा छेड़ी है।

ज़ाहिरा तौर पर दो बड़े सवाल—जिन पर रूस, जापान का समझौता हुआ है, वह हैं—चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवे की फ़रोख़्त की क़ीमत का झगड़ा और मछली पकड़ने की शर्तों पर मतभेद। (लाखों मन मछली हर साल साइबेरिया के समुद्र तट से पकड़ कर बाहर भेजी जाती है।) पहले चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवे सोवियत् के क़ब्ज़े में थी। बाद में उसे सोवियत् ने मांचुकाओ को बेच दिया। किन्तु उसकी क़ीमत की आख़री किश्त मांचुकाओ ने सोवियत् को अदा नहीं की। सोवियत् का कहना था कि मछली पकड़ने का सवाल उस वक्त तक हल न होगा, जब तक मांचुकाओ सरकार रेल की ख़रीद की आख़री किश्त न अदा करदे। मांचुकाओ का कहना था कि बेचने से पहले रेलवे पर जितना क़रज़ा था, यह उस किश्त से ज़्यादा था, जो मांचुकाओ की सरकार को अदा करना पड़ा। दो बरस से झगड़ा चल रहा था। अन्त में अब जाकर मांचुकाओ की सरकार ने जापान के पास वह रक़म बतौर अमानत के जमा करदी है और उसके लिये एक कमीशन मुक़र्रर होगया है, जो जांच करके फ़ैसला देगा और जो कुछ सोवियत् का निकलेगा वह रक़म जापान सोवियत् को अदा करेगा। इसके बाद मछली पकड़ने के सम्बन्ध में भी जापान और रूस में एक क्षणिक समझौता होगया है। स्थायी समझौता अब इस साल सन् १९४१ में होगा।

इस सारे झगड़े में रूस को ही फ़ायदा हुआ है। (१) रूस के मन के मुताबिक सोवियत्-मंगोलियन सरहद तय होगई, (२) चाइनीज़ ईस्टर्न रेलवे की आख़री किश्त के बारे में रूस के मन के मुताबिक समझौता हो गया और (३) रूस के फ़ायदे को देखते हुये मछली पकड़ने की शर्तें तय हो गईं।

अब दोनों मुल्कों की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर ज़रा ग़ौर कीजिये। जर्मनी से समझौता करने के बाद पहली बार रूस दुतरफ़ा हमले के ख़तरे से बरी हुआ है। जापान को अब लड़ाई की सूरत में रूस के विरुद्ध जर्मनी से मदद की कोई आशा नहीं रही। जापान के विरुद्ध रूस के हाथ में इस समय तुरुप का पत्ता है। जापान के राजनीतिज्ञों ने हाल में इस बात का ऐलान किया है कि वे रूस के साथ मैत्री पूर्ण बर्ताव रखना चाहते हैं। रूस के प्रधान मंत्री मोलोतोव ने भी यही ऐलान किया है; किन्तु एक शर्त के साथ। वह शर्त यह है कि रूस जापान के साथ समझौता करने में अपने हितों का ज़र्रा भर भी बलिदान नहीं करेगा।

इस सिलसिले में चीन का सवाल भी उठता है। यह कहा जाता है कि रूस-जापान समझौते की बुनियादी शर्त यह होगी कि रूस चीन को जो सहायता दे रहा है, वह बन्द करे। किन्तु देखने वालों को पिछले अगस्त से इसमें कोई फ़रक़ नहीं दिखाई देता। सिंकियांग के रास्ते बेशुमार रूस का बना हुआ लड़ाई का सामान चीन पहुंच रहा है। जनरल चियांग काइ-शेक ने हाल में ऐलान किया था कि फ़िनलैण्ड की लड़ाई के बाद रूस चीन को अधिक से अधिक मदद दे रहा है। दोनों देशों का आपसी सम्बन्ध बहुत प्रेम पूर्ण है। स्टालिन के जन्म दिन पर चियांग काइ-शेक ने शुभ कामना भेजी थी। चीनी प्रजातंत्र के संस्थापक सुनयात सेन की निधन-तिथि पर सोवियत पत्रों ने चीनी स्वाधीनता संग्राम की तारीफ़ में लेख लिखे थे। हाल ही में सोवियत् और चीन की व्यापारिक सन्धि फिर से दोहराई गई

है। इतनी सुविधाएं चीन को किसी राष्ट्र ने नहीं दीं। दोनों देशों के बीच अभी हाल ही में हवाई जहाज़ के आने जाने का रास्ता खुला है। कोई भी बाहरी देखने वाला यह नहीं कह सकता कि दोनों देशों में प्रेम पूर्ण बर्ताव में किसी तरह की भी कमी है।

जबकि चीन और रूस के बर्ताव में कोई बात शंका की नहीं है, चीन के राष्ट्रीय दल कुओमिन्तांग और वहां की कम्युनिस्ट पार्टी में थोड़ा बहुत मत भेद पैदा हो गया है और लोग अन्दाज़े दौड़ाने लगे हैं कि ये दोनों दल कब तक समझौते से रह सकेंगे? किन्तु यह समझौता उस वक्त तक क़ायम रहेगा, जब तक दोनों दल इस समझौते के उद्देश्य जापान का मुक़ाबला करने के लिये तत्पर रहेंगे। न जापान हमला करता और न इन दोनों दलों में इतनी मज़बूत एकता होती। 'मिलकर जापान का मुक़ाबला करो' यही दोनो दलों का मौजूदा नारा है।* मैडम सुनयात सेन को अपने कम्यूनिस्ट विचारों के कारण चीन छोड़कर बाहर जाना पड़ा था। मैडम सुनयात सेन की छोटी बहिन ही मैडम चियांग काइ-शेक हैं। दोनों बहिनों में अरसे तक परस्पर मनोमालिन्य रह चुका है। पहली मरतबा दोनों बहिनें मिलकर चीन की राष्ट्रीय सरकार को मदद दे रही हैं।

किन्तु चीन के विविध दलों का समझौता उस वक्त तक चल सकता है, जब तक एशिया के अन्दर रूस की एक अनुकूल नीति है। यदि चुंङकिङ्ग की सरकार ने किसी कारण वश जापान को आत्म समर्पण किया, तो चीन के प्रति रूस की नीति पर भी असर पड़ेगा। इसकी तीन सूरतें हो सकती हैं। (१) १९३७ के पहले की उदासीन वृत्ति, (२) चीन के कम्यूनिस्टों को युद्ध के लिये प्रोत्साहन और मदद और (३) चीन के जिस हिस्से पर जापान का अधिकार न हो, वहां जापान के साथ समझौता करके सोवियत् प्रणाली का शासन क़ायम करना। इनमें पहली सूरत की ही ज़्यादा सम्भावना है।

किन्तु यह तो उस सूरत में होता, जब रूस को जापान से ख़तरा होता और रूस जापान को सुलह की इतनी बड़ी क़ीमत देता। आठ बरस पहले रूस ने जापान के साथ इस तरह के सुलहनामे की बात की थी। पर तब रूस को जापान से खतरा हो सकता था। लेकिन आज जबकि जापान बरसों के युद्ध के बाद थका हुआ और पस्त है, तब रूस को इतनी क़ीमत अदा करने की कोई जरूरत नहीं। आज तोकियो में इतनी शक्ति नहीं कि वह अपने उत्तरी पड़ोसी के साथ गहरी उलझन मोल ले।

बहरहाल इस समय सोवियत् की नीति अपने सभी पड़ोसियों के साथ समझौता करके अपने हितों को सुरक्षित रखने की है। जब तक उसके हितों पर कोई गहरा हमला नहीं होता, उससे किसी को कोई डर नहीं होना चाहिये।

*गत दिसम्बर में कम्यूनिस्ट पार्टी और कुओमिनताङ्ग के मत भेद की चर्चा समाचार पत्रों में छपी थी। अभी तक उस समाचार की विस्तृत रिपोर्ट नहीं आई। हाल में जो ख़बरें छपी हैं उनमें कहा गया है कि कम्यूनिस्टों की एक डिवीज़न के सारे हथियार रखा लिये गये हैं। बहरहाल चीन के कम्यूनिस्ट यह हरगिज नहीं चाहते कि उनका देश जापान के चुङ्गल से निकल कर अमरीका के चुङ्गल में जकड़ जाय।—सम्पादक।

'पुष्पक-विमान' कोरी कल्पना न थी

अगस्त्य मुनि के आविष्कार

श्री द्वारका प्रसाद गुप्त, एम० एस-सी०, एल-एल० बी०

पिछले पन्द्रह बरसों से हवाई-जहाज़ों को बिला रुके उड़ाने की धूम मची हुई है। सबसे पहले कर्नल लिण्डबर्ग ने न्यूयार्क से पेरिस तक बिला रुके हुये हवाई-जहाज़ उड़ाया। तब से लोगों का यह ख़याल हो गया है कि हवाई-जहाज़ की यही सब से पहली अविराम उड़ान थी। किन्तु यदि पुराने लेखों में कोई सच्चाई है, तो अविराम गति से हवाई-जहाज़ की पहली उड़ान न्यूयार्क से पेरिस की उड़ान नहीं थी, बल्कि लङ्का से अयोध्या तक की उड़ान थी।

वाल्मीकि रामायण संस्कृत का एक महाकाव्य है, जो यूनानी काव्यों से कई सदी पहले का है। इसके अनुसार अयोध्या के राजा ने विमान में बैठकर यह यात्रा पांच दिन में पूरी की थी। उनके विमान का नाम 'पुष्पक-विमान' था। पुष्पक-विमान का अर्थ है 'तितली' जैसा। रामायण में इस यात्रा की तय्यारी और पुष्पक विमान का पूरा बयान मिलता है।

इस हवाई उड़ान के सच्चे होने का सब से सन्तोष जनक सुबूत यह है कि रामायण में उन सब स्थलों और स्थानों का बहुत सुन्दर और सच्चा वर्णन मिलता है, जहां जहां होकर पुष्पक विमान उड़ा है। बग़ैर आकाश मार्ग से उड़े यात्रा के दृश्यों और रास्ते की भौगोलिक स्थिति का वर्णन शायद दैवी कल्पना से ही कोई कर सकता था।

एक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान श्री वामन रा० कोकटनूर ने भारत के प्राचीन वैज्ञानिक खोजों पर काफ़ी रोशनी डाली है। डाक्टर कोकटनूर ने मिस्र के प्राचीन उल्लेखों का ख़ूब अध्ययन किया है। उसी अध्ययन में उन्हें प्राचीन भारत और प्राचीन मिस्र के गहरे सम्बन्ध का पता चला। वहीं से उन्हें यह भी पता चला कि आजकल रसायन शास्त्र ने जो कुछ तरक्क़ी की है, उसका श्रेय प्राचीन भारत और प्राचीन मिस्र को ही है।

अमेरिकन केमिकल सोसायटी के एक अधिवेशन में डाक्टर कोकटनूर ने एक निबन्ध पढ़ा था, जिसमें उन्होंने सप्रमाण इस बात को साबित किया था कि हाइड्रोजन और आक्सिजन की खोज सबसे पहले कैविण्डिश और प्रीस्टले ने नहीं की, बल्कि प्राचीन भारत के ऋषियों ने की थी। डाक्टर साहब ने यह भी सिद्ध किया है कि, रसायन शास्त्र का आदि स्रोत भी प्राचीन भारत ही है। अमरीकन वैज्ञानिकों ने डाक्टर कोकटनूर की खोजों के महत्व और उसकी मौलिकता की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है और उनके निबन्ध संसार की अनेक भाषाओं में छप चुके हैं।

अगस्त्य एक पौराणिक ऋषि हैं, जिनके नाम का ज़िक्र ईसा से दो हज़ार वर्ष पहले तक के भारतीय ग्रन्थों में आता है। अतः जो हस्तलिपि अगस्त्य संहिता के नाम से पुकारी जाती है, वह वास्तव में बहुत पुरानी है। अगस्त्य संहिता वैदिक काल के बाद की, किन्तु महाकाव्य-काल के पहले की है। इस ग्रन्थ के अनुसार हाइड्रोजन, आक्सिजन आदि गैसों, सूखी बैटरी, इलेक्ट्रोपेटिंग, पतंगों और गुब्बारों आदि की खोज का श्रेय अगस्त्य मुनि को है। अपनी विविध खोजों के अनुसार अगस्त्य मुनि के कई नाम भी पड़ गये हैं, जैसे अगस्त्य का एक नाम घटयोनि है यानी 'विद्युत-घट के आविष्कारक'। इस सिद्धान्त के अनुसार हेनरी फ़ोर्ड का दूसरा नाम 'फ्लिवर' और मारकोनी का 'रेडियो' होगा।

अगस्त्य संहिता की जो हस्तलिपि डाक्टर कोकट-नूर को मिली है, वह उज्जैन में थी और सोलहवीं सदी में संग्रह की हुई है। इस हस्तलिपि में हाइड्रोजन और आक्सिजन का ज़िक्र गुब्बारा बनाने के सम्बन्ध में संयोगवश आया है। वास्तव में इन गैसों को अगस्त्य इन नामों से नहीं जानते थे। किन्तु इन गैसों के जो नाम अगस्त्य मुनि ने रखे हैं, वे कहीं ज़्यादा उपयुक्त हैं। उन्होंने हाइड्रोजन का नाम हल्केपन के कारण 'ऊर्ध्व गामिन' और आक्सिजन का 'प्राण वायु' रखा है। वे इन्हें गैस के बजाय वायु कहते थे। अंग्रेज़ी भाषा में इसका नाम हाइड्रोजन इसलिये पड़ा कि इसके जलने से हाइड्रो यानी पानी बनता है। आक्सी-जन शब्द लैवोइज़ियर ने एक यूनानी धातु से बनाया है, जिसका अर्थ है 'तेज़ाब'। क्योंकि उनका मत था कि यह गैस प्रत्येक तेज़ाब का अनिवार्य अङ्ग है। जर्मन भाषा के नामों से भी यही अर्थ निकलता है। लेकिन चूंकि प्रत्येक तेज़ाब में आक्सीजन की मात्रा नहीं होती, इसलिये यह नाम ग़लत है। अगस्त्य के नाम इन नामों से कहीं ज़्यादा शुद्ध हैं और वास्त-विकता के नज़दीक भी हैं।

अगस्त्य संहिता के अनुसार सूखी बैटरी बनाने की विधि इस प्रकार है—

"तांबे की साफ़ पत्तर को मिट्टी के बर्तन में रख कर उस पत्तर के चारों ओर नीला थोथा भर दे। उस पर लकड़ी का नम बुरादा लपेट दिया जाय। फिर एक पारा चढ़ा, जस्ते का पत्र बुरादे के ऊपर रखना चाहिये। इन दोनों के स्पर्श से प्रकाश पैदा होता है, जिसका नाम 'मित्रा वरुण' (धनोद + ऋणोद = अधिक विद्युत) है। इसके द्वारा पानी दो गैसों में विभाजित हो जाता है—ऊर्ध्वगामिन और प्राण-वायु। इस प्रकार के सैकड़ों घटों को मिलाने से बड़ी सबल शक्ति पैदा की जा सकती है।"

अपने रसायन शास्त्र के ज्ञान से डाक्टर कोकट-नूर समझ गये कि यही तरीक़ा है, जिसके अनुसार सूखी बैटरी बनाई जाती है। पर वे यह न समझ सके कि पारा चढ़े जस्ते का इसमें क्या योग होता था। बाद में उन्हें एक बैटरी बनाने वाले से मालूम हुआ कि पारा जस्त-पट की दिक् प्रधानता को रोकने के लिये चढ़ाया जाता है। अगस्त्य मुनि आगे लिखते हैं—

"जब यह ऊर्ध्व गामिन एक छिद्रविहीन (जिसके सूराखों में होकर हवा भी न गुज़र सके) थैले में भर दी जाती है और यह थैला विमान के सिरे से बांध दिया जाता है; तब ऊर्ध्व गामिन गैस अपने हलके-पन के कारण उस विमान को आसमान में उड़ा ले जाती है।"

इसके बाद गुब्बारे के थैले को छिद्रविहीन बनाने की विधि का वर्णन है। इसके लिये एक रेशमी थैला विशेष पेड़ों की छालों के रस में डुबाया जाता है। इन पेड़ों में दूध जैसा रस निकलता है। सम्भवतः ये रबर के ही पेड़ रहे होंगे। इस रस में डुबा कर सुखाने के बाद यह थैला एक दूसरे पेड़ के रस में जिसमें एक दूसरा रसायनिक पदार्थ हरिमिन (टैनिन) होता है, डुबाया जाता है। फिर सुखा कर मोम चढ़ाया जाता है। अन्त में शकर और चूने से बने एक प्रकार के मिश्रण को इस पर चढ़ाते हैं। इस प्रकार यह थैला ऐसा हो जाता है कि इसमें भरी हुई हवा बाहर नहीं निकल सकती।

इस हस्तलिपि का रसायन शास्त्री ही कुछ अर्थ निकाल सकते थे। क्योंकि इसमें यह स्पष्टतया नहीं कहा गया कि दूसरी बार 'टैनिन' रस का प्रयोग होता है। केवल पेड़ ही का नाम दिया है। रसायन शास्त्र के अपने ज्ञान से डाक्टर कोकटनूर ने यह नतीजा निकाला कि दूसरा द्रव्य टैनिन होना चाहिये; क्योंकि इस पेड़ के रस में यह रसायनिक पदार्थ मिलता है। बाद में एक रबर-शास्त्र-विशेषज्ञ से मालूम हुआ कि टैनिन से रबर का अधः क्षेपण हो जाता है, जिससे कि वह सिल्क पर ठीक तरह एक सी जम जाती है।

अगस्त्य मुनि की इलैक्ट्रोपेटिंग की विधि

सूखी बैटरी बनाने के बाद अगस्त्य मुनि क़लई करने की तरकीब का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"इस प्रकाश से यानी इस बिजली से तांबे पर सोने या चांदी का पानी चढ़ा सकते हैं। यदि अम्लीय किये हुये पानी में सोना या चांदी शोरे के साथ घुला हुआ मौजूद हो, तो इस प्रकार सोना चढ़े तांबे को 'सहस्र घटज' कहते हैं। ज़ाहिर है कि शोरे के साथ पानी में जो चीज़ घुली होती है, वह 'स्वर्ण श्यामिद,' 'स्वर्ण हरिद' या 'स्वर्ण नोषेत' में से ही हो सकती है।"

प्राचीन ग्रन्थों से यह प्रमाणित होता है कि ईसाई धर्म से पहले के भारतवासी हवा और जल के नियमों को जानते थे और इन दोनों की आपसी समानता को भी मानते थे। फ़र्क़ सिर्फ़ यही है कि पानी की सतह के ऊपर आवागमन होता है और हवा के भीतर। ईसा के ८०० बरस पहले की लिखी हस्त लिपियों से पता लगता है कि प्राचीन भारतवासी भौतिक विज्ञान भी जानते थे, क्योंकि यह निश्चित रूप से लिखा मिलता है कि प्रकाश, ताप और शब्द लहरों के रूप में आगे बढ़ते हैं।

वे हवा और पानी की धाराओं का उपयोग भी जानते थे। उनके गुब्बारे पाल की सहायता से चलते थे और विशेष तौर से पाली गई चिड़ियां उनके गुब्बारों का मार्गप्रदर्शन करती थीं। ये चिड़ियां विविध जाति के नर मादाओं के समागम से पैदा की जाती थीं। ये अतुल शक्तिशाली और तेज़ बुद्धि की होती थीं। रामायण में वर्णित पुष्पक विमान में इस प्रकार की सैकड़ों चिड़ियां बांधी गई थीं।

संस्कृत की जिस मूल पुस्तक का स्वर्गीय श्री रमेश चन्द्र दत्त ने अनुवाद किया है, उसमें अगस्त्य मुनि के पास राम का आना और उनसे परामर्श लेने का ज़िक्र है। श्री रमेशचन्द्र दत्त लिखते हैं—

"राम का दक्षिण में भ्रमण करना, उनका अगस्त्य मुनि से मिलना तथा गोदावरी के तट पर निवास करना आदि बातों का वर्णन इस ग्रन्थ में मिलता है। अगस्त्य मुनि का सम्बन्ध दक्षिण भारत से था। अगस्त्य मुनि के सम्बन्ध में अनेक दन्त कथायें प्रचलित हैं। कहते हैं उनके सामने विन्ध्याचल पर्वत भय से दण्डवत् करता था। उन्होंने अपने विज्ञान कौशल से हिन्द महासागर के पानी को सोख लिया था। यह सम्भव है कि इस नाम का कोई धार्मिक उपदेशक सब से पहले विन्ध्या की उपत्यका को पार कर आगे बढ़ा हो और तीन हज़ार साल पहले दक्षिण में आर्य उपनिवेश क़ायम किया हो। वह वैज्ञानिक, खोजी, तथा उपनिवेश संस्थापक सभी कुछ थे। वे एक तरह से भारतीय कोलम्बस थे, जिन्होंने दक्षिण भारत से उत्तर भारत का सम्बन्ध क़ायम किया।

बसन्त स्वागत

विश्वम्भरनाथ

कहती हो तुम आज तुम्हें मैं कोई अच्छा गीत सुनाऊं ;
नव-बसन्त के स्वागत में इक सुन्दर सी रचना रचलाऊं !

विहंस रहा हो जीवन-उपवन चहक रही हो डाली-डाली ;
पुलकित प्रकृति भाल पर रखकर लाई हो सोहाग की लाली !

वनमाली दे आज सजा तू मञ्जरियों की बन्दन माला ;
यह उत्सव का समय वेदनाओं पर हमने ताला डाला !

आज कुञ्ज बन बीथि बाटिका करती हों शोडष शृङ्गार ;
मुकुलित सारा दिग दिगन्त तुम सह न सकोगी यौवन भार !

आज अनोखी चहल पहल में इस झंकृत कोलाहल में ;
आज वायु कण कण में परिमल उड़ता जाता पल पल में !

ढाले जा तू आज अनोखी बुग़दादी, बसरी, शीराज़ी ;
आज न फ़तवे का डर कोई आज न कोई मुल्ला क़ाज़ी !

आज सुनेगा कौन तुम्हारी मधु-निशान्त की बेला है ;
अस्त व्यस्त परिधान सम्हालो—रूप राषि का मेला है !

इन उन्माद भरी अलकों का सूखे यह सारा पानी ;
दर्द भरा अन्दाज़ न छेड़ो आज रहेगी मनमानी !

पतझड़ के इस पटाक्षेप पर मत्त हुई माधवी लता ;
तरुण-अरुण-लावण्यलोक का पूंछ रहे हैं सभी पता !

यौवन की छत्रच्छाया में बरस रहा सौन्दर्य सुधा ;
चित्र-लिखित सी आज दिखाई देती है सारी वसुधा !

आज पपीहा तेरे स्वर में विरह विधुर आवाज़ न हो ;
इस उपवन में आज लुट रहा मधु-बुलबुल नासाज़ न हो !

श्यामा अपनी कूक सुनाये जा ओ अविचल दीवानी ;
ओ उन्मत्त, सरस-रस-लोभी मधुकर आज न हो ज्ञानी !

यह विस्मृति की बेला लेकिन आज बसन्त मनाये कौन ;
महायुद्ध के अग्नि-काण्ड में तोरण-द्वार सजाये कौन ?

तोपों की गड़गड़ ध्वनि में 'पी कहां' पपीहा-ध्वनि खोई ;
आज बमों से क्षत विक्षत होकर सारी वसुधा सोई !

लाखों नव युवती ललनाओं का सौन्दर्य-सुहाग गया;
उन मीठे चुम्बन, आलिङ्गन का मादक अनुराग गया!
फूलों से कोमल बच्चों की लोथ सड़क पर पड़ी हुई;
मात्र क्षणों का ही सौदा है मौत द्वार पर खड़ी हुई!

कल तक थे समृद्ध, विधाता जाने कैसे रुष्ट हुआ?
शायद नाज़ी में ही इनसे प्रथम बार सन्तुष्ट हुआ!!
लिओपोल्ड क्या याद तुम्हें काङ्गो सुकुमारी का क्रन्दन?
बहुत दिनों की बात बेल्जियन सेना का ध्वज-आरोपन!
आज फ्रान्स भू-पतित विची में—इस जीवन में तोल कहाँ?
सुरिया के अरबों का, औ अब्दुल क़ादिर का मोल कहाँ?
श्रेष्ठ डचों का गौरव, हिटलर के चरणों पर लीन हुआ;
जावा, बाली—रबर और टिन खानों में गतिहीन हुआ!
निस्सहाय क़ौमों के शोषण से ही तुम समृद्ध हुये;
पर शतायु भी हो न सके क्यों इतनी जल्दी वृद्ध हुये?
रूज़वेल्ट तुम आज कर रहे मानव-अधिकारों की बात;
सैको और वेन्ज़ेती का क्या भूल गये सारा अनुपात?
दुनिया को उपदेश दे रहे अपने घर पर दृष्टि करो!
अपने ही निग्रो भाई पर ज़रा कृपा की वृष्टि करो!!
कहो निपन के आरीता—साम्राज्य चीन पर राज करो;
समर भूमि का यश खोया—हाराकीरी का साज करो!
बर्लिन के निर्द्वन्द नाज़ियो रच जगती का नष्ट-विधान;
महानाश के पथ पर चलकर गा न सकोगे गौरव गान!

कहती हो दुनिया को छोड़ें उत्सव हमी मनायें ना;
देहरा, नैनी की जेलों के लौह-द्वार सजवायें ना?
आज अभागे भाई बहिनों के तन पर आवरण नहीं है;
दो टुकड़े मिल सकें आज भूखों को कोई शरण नहीं है!
तुम कहती हो विस्मृत होकर आज बसन्त मनाना होगा;
बिजली की इस चका चौंध में मुरझा रूप सजाना होगा!
किन्तु पारखी भ्रमर न अपने मन में कोई भूल करेंगे;
इन सूखी सी पंखुड़ियों को कौतुक ही में धूल करेंगे!

आगे आगे

(The March of Life)

श्री गजानन्द माधव मुक्ति-बोध

(१)

मेरे नव-जीवन का विराम—भरता रहता है मनो-धाम !
गति में ही उसकी संसृति है, पग पग में उसके उन्नति है ;
अनुभव नित होते अविश्राम, मन सदा तृषित सन्तत सकाम !
मेरे नव-जीवन का विराम, भरता रहता है मनो-धाम !

(२)

मानव-जीवन चलता रहता है आगे आगे दिवा-याम !
पग कभी पङ्क में फंसते हैं, होते हैं बेबस निराधार ;
तुम मत समझो यह हुआ व्यर्थ, इससे बल मिलता है अपार !
इस मलिन भाव से ही निकला, है अनायास वह पुण्य राग ;
भरता रहता है सुबह-शाम, मानव-मन कलिका का पराग !
मानव-जीवन चलता रहता है, आगे आगे दिवा-याम !

(३)

अपने ऊपर चढ़कर बढ़ता, है जीवन-विटप सहस् शाख !
आश्रय देता है अपने में, नित स्वप्न-खगों को लाख लाख ;
इसकी छाया में वे चञ्चल नित करते रहते हैं गुहार !
सविकार स्वप्न होते जाते पुलकित गीतों में निर्विकार ;
जीवन-तरु बढ़ता जाता है, क्षण-क्षण में विकसित हो अपार !
अन्तर्धारा को बहने में, फिर मिल जाती है नई आंख ;
अपने ऊपर चढ़कर बढ़ता है, जीवन-विटप सहस् शाख !

(४)

मानव-जीवन में बहने वाली, अन्तर्धारा नहीं अन्ध !
बौद्धिक सीमा को लांघ तोड़ देती है सारे जाल-बन्ध ;
इस जीवन के घुलते जाते, गलते जाते हैं व्यङ्ग, द्वन्द !
काले मेघों पर आलोकित है इन्द्र धनुष का रुचिर रूप ;
दुख के सागर पर तैर रहीं, चञ्चल सुख-नौकायें अनूप !
भर उठती करुण राग से फिर, सूने स्वर वाली मधुर बीन ;
नव-नव छिद्रों से बह-बह कर, अन्तर्धारा होती नवीन !
अपने को ही तब आलोकित, करता है नश्वर दीप मन्द ;
मानव-जीवन में बहने वाली, अन्तर्धारा नहीं अन्ध !

(५)

सागर असीम के पार शून्य में, बसा हुआ है द्वीप एक !
भारान्वित हैं सौरभ अनेक, जिसके सूनेपन में अकूल ;
पत्ती-पत्ती है चहक रही, डाली-डाली पर खिले फूल !
जिसकी सूनी साँसों में, बहता रहता मंजुल गीत-प्राण ;
जिसके मृदु तारों पर कंप कर, कम्पन बन जाता स्वर वितान !
खुलकर उठता उन्मुक्त भान; चलने को हो पागल नितान्त ;
सागर असीम के पार शून्य से; उसी द्वीप में मधुर शान्त !
कुछ निकले नौकायें लेकर, भोले भाले नारी औ नर ;
उत्ताल तरङ्गों से लड़कर, वे ऊबे कभी न जीवन भर !
कुछ डूबे लहरों से लड़कर, निर्बल से सबल हुये सत्वर ;
लहरें थीं भूखी प्रलयङ्कर, वे भोले थे नारी औ नर !
पर पहुँच गये सपने लेकर, वे सपनों के मालिक अनेक ;
सागर असीम के पार शून्य में, बसा हुआ है द्वीप एक !

(६)

ओ चिन्तक ! अपनी तत्व प्रणाली में न बाँध जीवन अबाध !
जीवन-गति-विधि का ज्ञान नहीं, तबतक मतकर तू यह प्रयास ;
यह निस्संबल है बुद्धि तुच्छ, व्यक्तित्व बहे रे ! अनायास !
तब समझेगा तू आत्मदान की यह महानतम नई रीत ;
इस आत्म-सौख्य के विविध रूप, इस आत्म त्याग में निहित प्रीत !
ओ चिन्तक ! अपनी तत्व प्रणाली में न बाँध जीवन अबाध ;
अपनी समझेगा भूल कभी, तेरी सब होगी विफल साध !

(७)

होता भविष्य का सर्वोदय, जब ओझल हो जाता अतीत !
हम डाल-डाल पर गुञ्जित हैं, हम उषः काल के विहग-गीत ;
हम मिटते से धूमिल अतीत की डाल रहे हैं नई लीक !
हम रोम-रोम में भर लाये, अपनी जिज्ञासा का विकास ;
हम जन्मे हैं स्वागत करने, नभ का निर्झर नूतन प्रकाश !
होता भविष्य का सर्वोदय, जब ओझल हो जाता अतीत ;
हम में भविष्य मुसकरा रहा, हम अचराचर के हुए मीत !

जिस राह पे चल तोसे आन मिलूं

कुमारी रैहाना तय्यब जी

कोई ऐसो गुरू मोहिं लादो प्रभो
जासे निशदिन तुम्हरी बात करूं ;
जो आप भी सत्य का मार्ग गहे
जाको हाथ पकड़ मैं राह चलूं ।

जाकी जिह्वा पे हो हरिनाम सदा
जाके नैन में हो हरि रूप बसा ;
जाके दिल में हो प्रेम महा सागर
मैं पियासी हूँ प्रेम के घूंट पियूं ।

तुम सब में समान बसो भगवन्
जैसे कारी घटा में रहे बिजुरी ;
कोई ऐसो मिले जामें द्वैत नहीं
मैं तो वाही से सद् उपदेश सुनूं ।

कोई हिन्दू कहे या कहे मुसलिम
कोई खृष्टि—ये नाम के भेद सभी ;
हटे नाम औ रूप का परदा अगर
बस फिर तो तुम्हीं को सजन निरखूं ।

तुम एक, सन्देश भी एकहि है
ये तो बानिहि बानी में फेर पर्‌यो ;
तुम एक पिता हम बाल सभी
मैं अपने ही बन्धु से कैसे लड़ूं ?

क्या हिन्दू, मुसलमां, ईसाई
सब तुमको भजें निशदिन प्रियतम ;
ये आस प्रकाश के भेद सभी
इस फ़र्क दुई से मैं काहे डरूं ?

जब काया है एक औ एकहि मन
फिर झगड़ूं मैं कासे पियारे सजन ;
इस जग में सभी हैं भाई - बहन
फिर प्रीत की रीत न क्यों बरतूं ?

अल्लाह भी तू, परब्रह्म भी तू
जिनवीर भी तू, गौतम भी है तू ;
प्रभु मन जितने तेरे नाम उतने
प्रभु सब नामों में तोहि क्यों न भजूं ?

ये जग है इबादतगाह तेरी
रही एकहि मूरत, लाख पुजारी ;
रैहा ! कहे ऐसी राह बता
जिस राह पे चल तोसे आन मिलूं ।

आई फिर आहुति की बेला

श्री सोहनलाल द्विवेदी

आई फिर, आहुति की बेला !

बैठो दूर न अब बनवासी,
छोड़ो मन की सभी उदासी,

जननी की कातर पुकार पर
करो नहीं अवहेला !
आई फिर, आहुति की बेला !

कुछ समिधायें शेष रही हैं,
तरुण अरुण क्या ज्वाल बही हैं ?

यह निरग्नि - बंदी जीवन अब
कब तक जाये झेला ?
आई फिर, आहुति की बेला !

तुम भी अपना अर्घ चढ़ाओ,
पूर्णाहुति दे सुयश बढ़ाओ,

तिल तिल दे दो दान हठीले !
आज मुक्ति का मेला !
आई फिर, आहुति की बेला !

सच्चा धर्म

प्रो० मोहम्मद मुसलिम, एम० ए०

तू दीन धरम के गीत न गा, भेद इनके अगर मालूम नहीं;
संसार का सेवक है धर्मी, पर एक का भी महकूम नहीं;
मिसकीन सही मोहताज नहीं, कमज़ोर सही, मज़लूम नहीं;
वह तख़्त से हो महरूम तो हो, इज़्ज़त से मगर महरूम नहीं।

ईमान है सब का ज़ोर, जिसे हाथ आये ये धन मुनइम है वही।
बुद्ध, हिन्दू, मसीह, पारसी, सिक्ख, मिल जाय जिसे मुसलिम है वही॥

इक सबसे बड़ी शक्ती है वो, गुन, ज़ात औ उसका नाम नहीं;
यज़दाँ भी वही, यहवा भी वही; केवल वह रब औ राम नहीं;
गुन, ज्ञान दया की शिक्षा ले, औ नाम से कोई काम नहीं;
जप, तप की नुमाइश धर्म नहीं, ईमान नहीं इसलाम नहीं।

जो हिर्सो हवा के बुत पूजे, तौहीद का दावा क्यों वो करे।
मुसलिम वो नहीं मुशरिक है अगर, बातिल से दबे ताक़त से डरे॥

धर्मी है वो सत्य का सेवक वीर, हो जिसको न तन औ जान का ग़म;
तड़पाये जिसे इन्साँ की तड़प, बेचैन रखे ईमान का ग़म;
हो भूख से बढ़कर भीख में दुख, हाजत से सिवा अहसान का ग़म;
है हंस प्रेम के सागर का, क्या मेंह का डर तूफ़ान का ग़म;

बुध, हिन्दू, मसीह, मुसलिम औ सिख, जिस रंग में हो जिस भेष में हो।
धर्मी है पुजारी न्याय का वो, जिस रूप में हो जिस देश में हो॥

ये आरती, पूजा-पाठ, भजन, तसबीह, तलावत सौमो सलवात;
भगवान को कुछ दरकार नहीं, है हम्दो सना से पाक वो ज़ात;
दोज़ख़ का वह हैबत नाक समाँ, जन्नत की हो सनाकाना सिफ़ात;
ये मौलवी पण्डित की है कथा, पर मुझ से भी सुन लो भेद की बात;

सब दर्स हविस के भूत के हैं औ बन्दये बारी कोई नहीं।
सब जपते हैं माला ईश्वर की, पर हक़ का पुजारी कोई नहीं॥

क्या तुर्क, मलिछ क्या काफ़िर, दुष्ट, क्या फ़र्क़ेजबा औ नस्लोवतन ;
है सबकी रगों में एक लहू, एक आत्मा, एक जीव, एक बदन ;
गो फूल हैं लाखों रंग बिरंग, पर एक ही भूमी एक चमन ;
बन मेघ दयाँ का सब पे बरस, बसती हो कि रेगिस्ता या बन ;

सब धर्मों का बाबा एक है गुर, इनसान बन औ इनसान बना।
इन्सा न बना तो हे ईश्वर ! जो भी तू बना शैतॉं न बना॥

भूख और रति

श्री भगवती प्रसाद चन्दोला

फैला पल्ला खाली कोरा,
मँगती का यह दीन निहोरा !

धूलि-धूसरित यह ग़रीबनी
नागफनी भी है खिलती ;
और जवानी की बिन-चाही
भीख इसे भी है मिलती !

अरे, नहीं पर मिलती जग में
भीख कहीं इस भूखी को,—
यौवन की यह राजदुलारी
तरसे रोटी रूखी को !

भूख और रति पर जीवन की
होड़ लगी है अरे, यहाँ ;
रतिपति तो हैं हुए सदय
पर अन्नपूरणा गई कहाँ ?

फैला पल्ला खाली कोरा,
मँगती का यह दीन निहोरा !

साम्प्रदायिक समस्या का हल पाकिस्तान नहीं

श्री अनीसुर्रहमान

एक अरसे से हमारे देश में साम्प्रदायिक समस्या को हल करने की कोशिश की जा रही है। हर सम्प्रदाय अपनी जान इसे सुलझाने की ही चेष्टा में लगा हुआ है। लेकिन यह गुत्थी दिन पर दिन उलझती ही चली जा रही है। पिछले तीस बरस से जो लोग देश की राजनैतिक प्रगति से जानकारी रखते हैं, उन्हें याद होगा कि सन् १९०६ में मुसलमानों के बड़े बड़े नेताओं ने यह तै कर दिया था कि साम्प्रदायिक समस्या का हल सिर्फ़ पृथक निर्वाचन से ही हो सकता है। मुसलिम नेताओं के इस फ़ैसले को लार्ड मिण्टो ने भी मान लिया था और अब तो यह पृथक निर्वाचन हमारे देश की राजनीति का ज़रूरी अङ्ग हो गया है। लेकिन पिछले तीस बरस से इस देश में पृथक निर्वाचन जारी रहने के बाद भी साम्प्रदायिक समस्या अपने भयानक वेश में खड़ी हुई है, और पहले से भी ज़्यादा मुशकिल दिखाई दे रही है। पृथक निर्वाचन हो गया मगर मुसलिम क़ौम की हिफ़ाज़त न हो सकी। पृथक निर्वाचन के बाद भी इसलाम का ख़तरा बाक़ी रहा और अब एक दूसरा ही नारा है, यानी—पाकिस्तान! ख़ैर इससे इतना तो हुआ कि यह बात इन साम्प्रदायिक नेताओं ने भी मान ली कि हिन्दू-मुसलिम समस्या का हल अलग चुनाव नहीं है और पिछले तीस बरस तक इन्होंने जो मुसलमानों का नेतृत्व किया, वह भख मारा और मुसलमानों को ग़लत रास्ता दिखाया।

आज वे ही साम्प्रदायिक नेता जो कल तक अलग चुनाव के गीत गा रहे थे, आज पाकिस्तान का राग अलाप रहे हैं। यहां हमें देखना यह है कि क्या पाकिस्तान सचमुच साम्प्रदायिक समस्या को हल कर सकता है? पाकिस्तान की तमाम स्कीम को देख जाइये। कहीं पर भी आपको मुसलिम अल्प मत की समस्या का हल नहीं मिलेगा और यही पाकिस्तानी स्कीम की सब में बड़ी कमज़ोरी है।

आबादियों का तबादला

शुरू शुरू में पाकिस्तानी स्कीम के प्रवर्तकों ने आबादियों के तबादले को भी अपनी स्कीम में रखा था और लोगों ने भी यही समझा था कि जो मुसलमान हिन्दू बहुमत वाले सूबे में रहते हैं, वे अपना वतन छोड़ कर हिजरत करके पाकिस्तान में चले जायेंगे। लेकिन आगे चल कर उन्होंने अपनी हिमाक़त महसूस की और यह ऐलान कर दिया कि आबादी का परिवर्तन नहीं होगा और जो जहां है वहीं रहेगा। इसका साफ़ मतलब यह है कि पाकिस्तान सिर्फ़ मुसलिम सूबों के लिये बनेगा और जहां जहां मुसलमान अल्पमत में हैं, वहां उन्हें 'ज़ालिम' हिन्दुओं के संरक्षण में ज़िन्दगी बसर करनी होगी।

अगर इस स्कीम पर अमल किया जाता, तो बीस करोड़ हिन्दू-मुसलमानों को अपनी जगह बदलनी पड़ती। ज़ाहिर है इतने बड़े पैमाने पर इस

आसमान के नीचे आबादियों का तबादला नामुमकिन है और यह तजवीज़ पेश करना ही मूर्खता थी। पाकिस्तानी स्कीम के एक समर्थक ने तो यह तक कह दिया कि उत्तर भारत मुसलमानों को दे दिया जाय और दक्खिन भारत हिन्दुओं को। सतपुड़ा के दक्खिन में बसने वाले मुसलमान उत्तर भारत में चले आवें और उत्तर भारत के हिन्दू दक्खिन भारत में चले जावें। लेकिन इन महाशय ने यह सोचने की तकलीफ़ ही न उठाई कि जो जगह दक्खिन भारत के साठ लाख मुसलमान ख़ाली करेंगे, उस जगह पर उत्तर भारत के बारह करोड़ हिन्दुओं को कैसे भेजा जा सकता है?

हिन्दू हिन्दुस्तान के मुसलमान

पाकिस्तानी भाई भी इस बात से इनकार नहीं करते कि मुसलमानों की एक ज़बरदस्त तादाद हिन्दू हिंदुस्तान में रह जायगी। मगर वे इस तादाद को घटा कर बताते हैं और कहते हैं कि आठ करोड़ मुसलमानों में से सिर्फ़ दो ढाई करोड़ मुसलमान ग़ैर पाकिस्तानी इलाक़े में रह जायंगे। लेकिन जब बटवारा होगा, तो किसी न किसी सिद्धान्त के अनुसार ही होगा। जब समूचे हिन्द की पवित्रता को नष्ट करने की कोशिश की जा रही है, तो प्रान्तों की वर्तमान सीमायें भी तो क़ायम नहीं रह सकतीं। यहां पर यह सिद्धान्त मानना पड़ेगा कि जिस जगह ५१ फ़ी सदी मुसलमान हों, वह जगह मुसलिम हिन्दुस्तान में जाय और जहां ५१ फ़ी सदी हिन्दू हों, उसे हिन्दू हिन्दुस्तान में मिला दिया जाय। इस सिद्धान्त के अनुसार हमें पञ्जाब के बारह ज़िले, यानी हिसार, रोहतक, गुड़गांव, करनाल, अम्बाला, शिमला, कांगड़ा, होशियारपुर, जालन्धर, लुधियाना, फ़ीरोज़पुर और अमृतसर के जिलों को, जिनमें हिन्दू आबादी ५१ फ़ी सदी से ज़्यादा है, पाकिस्तान से अलग करके हिन्दुस्तान में मिला देना होगा। इन बारह ज़िलों की कुल आबादी ९८ लाख है, जिसमें २१ लाख मुसलमान हैं। मतलब यह है कि इन बारह ज़िलों के निकालने से ये २१ लाख मुसलमान भी पाकिस्तान से निकल जायंगे।

क़रीब क़रीब यही कैफ़ियत बङ्गाल की भी है। बङ्गाल के बर्दवान डिवीज़न और प्रेज़ीडेन्सी डिवीज़न में हिन्दुओं का बहुमत है। इन दोनों डिवीज़नों में बारह ज़िले हैं, जिनमें एक करोड़ तैंतीस लाख हिन्दू और साठ लाख मुसलमान हैं। इस इलाक़े को किसी तरह भी पाकिस्तान में शामिल नहीं किया जासकता। इस तरह बङ्गाल के भी साठ लाख मुसलमानों को हिन्दू हिन्दुस्तान में चला आना पड़ेगा।

फिर जब हम कशमीर की रियासत पर नज़र दौड़ाते हैं, तो यह देखते हैं कि जम्मू के प्रान्त में हिन्दू बहुमत है। इस तरह ऊधमपुर, मदौरा, कथुआ, चैननी और जम्मू ख़ास के ज़िलों को पाकिस्तान का हिस्सा नहीं बनाया जा सकता। लीजिये पञ्जाब और बङ्गाल के तो दो टुकड़े हुए ही थे, अब कशमीर भी आधा रह गया और इसके साथ भी मुसलमानों की एक बड़ी तादाद हिन्दुस्तान में चली गई। इस तरह लगभग एक करोड़ से ज़्यादह मुसलमान निकल कर मुसलिम प्रान्तों से हिन्दू हिन्दुस्तान में चले आये।

अब ज़रा रियासतों के मामले को ग़ौर कीजिये, तो इसमें भी पाकिस्तानियों के लिये सिवाय नुक़सान के कोई फ़ायदा नज़र नहीं आता। ज़ाहिर है कि यहां भी इसी उसूल को मानना पड़ेगा कि जिस रियासत में मुसलमानों का बहुमत हो, उसे मुसलिम हिन्दुस्तान में रखा जाय और जहां हिन्दुओं का बहुमत हो, उसे हिन्दू राज में मिला लिया जाये। इस कसौटी पर सिर्फ़ दो बड़ी रियासतें कशमीर और भावलपुर पाकिस्तान में रहती हैं और भोपाल, रामपुर, टोंक, जावरा, जूनागढ़ और सबसे बढ़कर हैदराबाद जैसी अज़ीमुश्शान रियासत मुसलमानों के हाथों से निकल जाती हैं। पाकिस्तान के बाज़ प्रवर्तकों ने हैदराबाद और रामपुर को पाकिस्तान में शामिल कर लिया है। लेकिन जब कशमीर को सिर्फ़ इस वजह से कि उसमें मुसलमानों का बहुमत है, पाकिस्तान में मिला लिया जाता है, तो कोई वजह नहीं कि हैदराबाद, भोपाल वग़ैरह को, जिसमें हिन्दुओं का बहुमत है, हिन्दू हिन्दुस्तान में क्यों न मिलाया जाय!

हिन्दुस्तान की कुल देशी रियासतों की आबादी ७ करोड़ २१ लाख है, जिसमें ६ करोड़ १५ लाख हिन्दू और १ करोड़ ६ लाख मुसलमान हैं। कशमीर, भावलपुर, कलात, लासबेला, खैरपुर, कपूरथला आदि रियासतें मुसलिम सूबों में हैं। इन सब रियासतों की कुल मुसलिम आबादी ४३ लाख है। इसका अर्थ यह है कि रियासती आबादी में से कुल ४३ लाख ही पाकिस्तान में आसकेगी। बाक़ी ६३ लाख रियासती मुसलमानों को हिन्दू राज्य में रहना होगा।

पंजाब और बंगाल का जो इलाक़ा अलग कर दिया गया था, उसकी आबादी में यह रियासती आबादी जोड़ दी जाय, तो क़रीब पौने दो करोड़ मुसलमान पाकिस्तान से निकल जाते हैं। इस तादाद में यू० पी०, बिहार, मध्यप्रान्त, उड़ीसा, मद्रास, बम्बई, अजमेर और दिल्ली के प्रान्तों की मुसलिम आबादी भी जोड़ दी जाय, तो वह ३ करोड़ ७५ लाख हो जाती है। यहां यह ज़िक्र कर देना उचित होगा कि सारे भारतवर्ष में मुसलमानों की आबादी ७ करोड़ ७४ लाख है। इस तरह मिस्टर जिन्ना के पाकिस्तान में ५० फ़ीसदी मुसलमान ही आ सकेंगे और बाक़ी ५० फ़ी सदी मुसलमानों को हिन्दू राज्य के जुये के नीचे रहना पड़ेगा।

अब ज़रा इस तसवीर का दूसरा पहलू भी देखिये। हिन्दू हिन्दुस्तान में तो पौने चार करोड़ मुसलमान रह जाते हैं; लेकिन पाकिस्तान में सिर्फ़ १ करोड़ ५३ लाख हिन्दू और सिख रहते हैं।

मुसलिम लीग के नेतृत्व की असफलता

मुसलिम लीग का दौर दौरा भी हुआ और बड़े धूम धाम से पाकिस्तान की स्कीम भी बनी, लेकिन मुसलिम अल्पमत का सवाल जहां था वहीं रहा। पिछले तीन वर्षों से मुसलिम लीग का काम सिर्फ़ यह रहा कि वह कांग्रेसी सरकारों को हर तरह से बदनाम करे। अगर इनकी दास्तानों पर एतबार कर लिया जाय, तो शायद दुनिया के लोग चंगेज़ और हिलाकू के ज़ुल्म भूल जांय। इनके कहने के मुताबिक कांग्रेस ने मुसलमानों की जान, माल, इज्ज़त, आबरू, संस्कृति, सभ्यता और मज़हब तक पर हमले किये। लेकिन आज कांग्रेस के उन सब ज़ुल्मों को भूल कर मुसलमानों को मिस्टर जिन्ना फिर उन्हीं ज़ालिम हिन्दुओं के रहम पर छोड़ने को तय्यार हैं। मुसलिम लीग को जो कुछ ताक़त मिली, वह इन्हीं कांग्रेसी सूबों के मुसलमानों से मिली है; वरना हर शख़्स जानता है कि सिन्ध, सीमाप्रान्त, बंगाल और पञ्जाब में मिस्टर जिन्ना की कोई वक़त नहीं। मगर मुसलिम लीग ने बजाय अल्पमत मुसलमानों की हिफ़ाज़त करने के बहुमत की हिफ़ाज़त शुरू कर दी! पाकिस्तानियों के मुताबिक युक्त प्रान्त के १४ फ़ी सदी, बिहार के १० फ़ी सदी, बम्बई के सात फ़ी सदी, मद्रास और सी० पी० के चार फ़ी सदी और उड़ीसा के एक फ़ी सदी मुसलमानों की हिफ़ाज़त की तो ज़रूरत नहीं, बल्कि पञ्जाब के ५६, सिन्ध के ७५ और सरहद के ९० फ़ी सदी मुसलमानों की हिफ़ाज़त की ज़रूरत है! फिर इसलामी संस्कृति की रक्षा का जो दावा किया जाता है, उसके पूरा करने की क्या सूरत है? इसलामी संस्कृति के सारे असर और उसकी छाप तो यू० पी० और देहली में रह जाती है। यहीं उर्दू ज़बान के केन्द्र हैं। यहीं मुसलमानों के ऐतिहासिक स्थान हैं। मगर हमारे मुसलिम सम्प्रदायवादी इस सारी दौलत को छोड़कर, हारी हुई सेना की तरह पाकिस्तान के क़िले में पनाह लेना चाहते हैं!

पाकिस्तान और वर्तमान रियासत

पाकिस्तान से साम्प्रदायिक मसला हल होना तो दूर रहा, बल्कि जिन प्रान्तों में मुसलमान अल्पमत में हैं और वहां उन्हें जो ज़बरदस्त रिआयतें मिली हुई हैं, वे भी पाकिस्तान के बनने के बाद छिन जायंगी। जैसे यू० पी० में मुसलमानों की १४ फ़ी सदी आबादी है। लेकिन उन्हें यू० पी० असेम्बली की २२८ सीटों में से ६४ सीटें मिली हुई हैं। यानी २८ फ़ी सदी सीटें मुसलमानों के क़ब्ज़े में हैं। इसी तरह बिहार के १५२ मेम्बरों में ४० मुसलमान हैं, हालाकि उनकी

आबादी १० फ़ी सदी से ज़्यादह नहीं। पाकिस्तान में ये सारी रिआयतें बन्द हो जायंगी। पाकिस्तानी भाई किस लिये अपने इन चार करोड़ भाइयों की क़ुरबानी करने के लिये तय्यार होंगये ? इस सारे आन्दोलन का, जो धर्म के नाम पर खड़ा किया गया है, निचोड़ यह है कि पञ्जाब में मज़बूत मुसलिम हुकूमत क़ायम कर दी जाय। पञ्जाबी लीडर सिन्ध, बलूचिस्तान, सरहद और कशमीर पर एक पञ्जाबी साम्राज्य क़ायम करना चाहते हैं। मुसलमानों की आबादी सिन्ध में २८ लाख, कशमीर में २५ लाख, सरहद में २२ लाख और बलूचिस्तान में ३ लाख है। यानी इन तमाम प्रान्तों की कुल मुसलिम आबादी ७८ लाख है। इसके मुक़ाबले में अकेले पञ्जाब की मुसलिम आबादी १ करोड़ २१ लाख है। अगर इन सूबों का कोई फ़ेडरेशन बना और उसमें एक लाख पर एक मेम्बर चुना गया, तो २८ सिन्धी, २५ कशमीरी, २२ सरहदी और ३ बलूची मेम्बरों के मुक़ाबले में १२१ पञ्जाबी मेम्बर होंगे। इसका मतलब यह है कि इसलाम के नाम पर पाकिस्तानी एक पञ्जाबी साम्राज्य क़ायम करना चाहते हैं।

एक ज़बरदस्त धमकी

सवाल उठता है कि पाकिस्तान बनने पर यदि हिन्दू हिन्दुस्तान वालों ने अपने यहां के अल्प मत मुसलमानों पर ज़ुल्म किया, तो पाकिस्तानी लोग किस तरह अपने भाइयों की मदद करेंगे ? यह जवाब दिया जाता है कि अगर हिन्दू, मुसलिम अल्प मत पर ज़ुल्म करेंगे, तो हम भी इसका बदला अपने इस्लामी राज के हिन्दू अल्प मत से लेंगे। लेकिन सवाल तो यह है कि बदला लेने की ताक़त किसमें होगी—चार करोड़ पाकिस्तानी मुसलमानों में या तेईस करोड़ हिन्दुओं में ?—और वह चार करोड़ भी हिन्दुस्तान के दो कोनों (पंजाब और बंगाल) पर बंटे होंगे, जो वक़्त आने पर एक दूसरे की मदद भी न कर सकेंगे। लेकिन इसके विपरीत हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक और अम्बाला से हुगली तक, तेईस करोड़ का एक राष्ट्र होगा, जिसके हाथ में देश की तमाम उपजाऊ ज़मीनें, खनिज पदार्थ, कल कारख़ाने और बेशुमार दौलत होगी। जैसा कि आम तौर पर सभी लोग जानते हैं कि वर्तमान युद्ध शारीरिक बल का युद्ध नहीं है, बल्कि इसे जंगी सामानों और मशीनों की लड़ाई कहा जा सकता है, जिसके लिए दौलत को पानी की तरह बहाना पड़ता है। हमें डर है कि पाकिस्तान की सालाना आमदनी शायद आजकल के मशीन युद्ध में एक दिन के लिए भी काफ़ी न होगी। अख़बार पढ़ने वाले जानते हैं कि ग्रेट ब्रिटेन का इन दिनों सिर्फ़ लड़ाई पर इक्कीस करोड़ रुपया रोज़ाना ख़र्च हो रहा है।

मतलब यह है कि हिन्दू हिन्दुस्तान से तो यह उम्मीद भी की जाती है कि वह बीस पच्चीस लाख की फ़ौज खड़ी करे और अपनी कोयले और लोहे की खानों की मदद से टैंक, हवाई जहाज़, बनाकर साल दो साल लड़ाई चलाले जाय। लेकिन पाकिस्तान के पास खरबों रुपये का यह सामान कहां से आयेगा ? आजकल के ज़माने में अगर कोई छोटा राष्ट्र ख़ुद अपनी हिफ़ाज़त करले, तो यही ग़नीमत है। भला वह दूसरे राष्ट्रों की क्या मदद कर सकता है ? ग्रेट ब्रिटेन जैसा साम्राज्य अपने दोस्त पोलैण्ड की जो सहायता कर सका, वह सबको मालूम है !

सारांश यह है कि हिन्दू सूबों के मुसलमानों के आंसू पोंछने के लिए पाकिस्तानियों के पास सिवाय इसके कोई दलील नहीं कि अगर उन पर ज़ुल्म हुआ, तो वह इसका बदला अपने राज्य के हिन्दुओं से लेंगे। यह तो बच्चों की सी बात मालूम होती है। मान लीजिए अगर हिन्दू हुकूमत ने अपने आधीन पांच हज़ार मुसलमानों को बरबाद कर दिया, तो क्या पाकिस्तानी भाई अपनी हुकूमत के पांच हज़ार हिन्दुओं को कटवा देंगे ? आज दुनिया का कोई भी सभ्य राष्ट्र यह हत्या नहीं कर सकता। एक मिनट के लिये यह मान भी लें, तो भी इस में मुसलमानों का ज़्यादा नुक़सान है। हिन्दू इलाक़े में तीन करोड़ पचहत्तर लाख मुसलमान रह जाते हैं; लेकिन

इसके विपरीत मुसलिम इलाक़े में सिर्फ़ एक करोड़ ३८ लाख हिन्दू रहते हैं। अगर किसी दिन पच्चीस करोड़ जन संख्या रखने वाली हिन्दू क़ौम यह फ़ैसला कर ले कि इसके एक करोड़ ३८ लाख भाई नहीं सही और अपने पौने चार करोड़ मुस्लिम अल्पमत को बरबाद कर दे, तो हिन्दुस्तान में मुस्लिम क़ौम तो आधी ही रह जायगी।

नाकामयाबी का इक़रार—

मिस्टर मोहम्मद अली जिन्ना ने दिल्ली में एक बयान देते हुए कहा था।

"इसलामी रियासतों (पाकिस्तान) में मुसलमानों की कुल आबादी छै करोड़ होगी और हिन्दू रियासतों में तीन करोड़ का मुस्लिम अल्पमत होगा। इसलिये छै करोड़ के फ़ायदे के लिए तीन करोड़ को क़ुरबान हो जाना चाहिये।"

लीजिए कांग्रेस ने तो मुस्लिम अल्प मत पर सिर्फ़ ज़ुल्म ही किया था—लेकिन मिस्टर जिन्ना, तो इन बेचारों की बलि ही चढ़ा रहे हैं। जो कुछ भी हो इस बात का तो तमाम पाकिस्तानी भाइयों को इक़रार है कि उनकी स्कीम से हिन्दू बहुमत वाले सूबों के मुसलमानों का मामला नहीं सुलझता, बल्कि और ज़्यादा भयानक रूप अख़्तियार कर लेता है, क्योंकि जब पाकिस्तान में इसलामी हुकूमत क़ायम होगी, तो हम क्योंकर मान लें कि हिन्दू हिन्दुस्तान में प्रति क्रिया स्वरूप एक कट्टर धार्मिक शासन क़ायम न होगा? और जब वर्तमान प्रजातन्त्र विधान के आधीन कांग्रेसी हुकूमत से मुसलमानों को इस क़दर तकलीफ़ पहुंची, तो एक कट्टर हिन्दू राज्य में इनकी क्या हालत हो सकती है?

एक ज़बरदस्त ख़तरा

यहां एक बात और भी ग़ौर करने की है। हम यह किसी तरह नहीं मान सकते कि हिन्दुस्तान के बंटवारे के बाद यह दोनों क़ौमें निश्चिन्त होकर बैठ जांयगी और आपस में पड़ोसी का सा बर्ताव रखेंगी? हिन्दू हिन्दुस्तान में मुसलमानों की काफ़ी तादाद मौजूद होगी और मुस्लिम हिन्दुस्तान में हिन्दुओं की। ज़ाहिर है कि हिन्दू हिन्दुस्तान में किसी एक मुसलमान का क़त्ल या मुसलिम हिन्दुस्तान में एक हिन्दू का क़त्ल, इन दोनों राष्ट्रों को एक दूसरे से जंग पर आमादा कर देने के लिए काफ़ी होगा। और इस बात की कौन गारण्टी दे सकता है कि इन 'दो मुल्कों' में आए दिन इस तरह की घटनाएं न होंगी? क़ुरबानी या बाजे के मामले पर कहीं भी एक छोटा सा बलवा होगा और यह दोनों इसलामी और हिन्दू फ़ौजें एक दूसरे पर झपट पड़ेंगी। और फिर या तो सारा हिन्दुस्तान पाकिस्तान हो जायगा या फिर पाकिस्तान को भी हिन्दू सङ्गठन में मिल जाना पड़ेगा। इतिहास तो हमें बतलाता है कि जिस हुकूमत के क़ब्ज़े में गंगा और जमुना की तराइयां रहीं, उसी ने सारे हिन्दुस्तान पर शासन किया। हां इतिहास में कभी कभी ऐसा भी हुआ है कि बंगाल, पञ्जाब, सिन्ध, राजपूताना या दक्खिन में ख़ुदसरों ने सर उठाये हैं और अपनी बादशाहत का ऐलान करके अपने सिक्के जारी कर दिये हैं। लेकिन इन्हें हमेशा हार खानी पड़ी है और दिल्ली और आगरे की गवर्नमेंट के आगे झुकना पड़ा है।

———

निग्रो सन्त-मां

कुमारी ज़ोरा नील हर्स्टन

—:o:—

इस लेख में न्यूयार्क की एक निग्रो हब्शी महिला-सन्त का वर्णन है। सदियों की पददलित निग्रो क़ौम के अन्दर भी महान आत्मायें हैं, यह इस लेख को पढ़कर मालूम होगा। इस लेख की लेखिका स्वयं एक निग्रो महिला हैं। अपनी जाति की एक महान आत्मा के उद्‌गार को वे जितनी अच्छी तरह रख सकती थीं, उतनी अच्छी तरह कोई दूसरा न रख सकता था। अगले अङ्क में हम निग्रो जाति और निग्रो संस्कृति के सम्बन्ध में और लेख 'विश्ववाणी' के पाठकों के सामने पेश करेंगे।

न्यूयार्क शहर में यदि आप सेंट क्लाउ की सीधी सड़क पकड़ लें और नहर के किनारे चलते हुए दक्षिण की तरफ़ मुड़ कर फ़्लड स्ट्रीट की तरफ़ घूम पड़ें, तो सामने ही आपको एक बहुत बड़ा बाग़ मिलेगा। इस बाग़ के चारों ओर ऊंची ऊंची दीवारें हैं, जिन पर जगह जगह क़रीब आधे दर्जन झंडे फहराते रहते हैं। बाग़ के बीच में एक गिरजा है, जिसके ऊपर ग्रीक क्रास बना हुआ है। बाग़ में एक ऊंचा ख़ेमा खड़ा है, जिसके ऊपर संयुक्त राष्ट्र अमरीका का झंडा फहराता रहता है।

फ़्लड स्ट्रीट और इस चहार दीवारी के बीच का पथ संकरा और दलदली है और मजबूरन लोगों को पैदल ही चलना होता है। चहार दीवारी के प्रवेश-द्वार पर एक बड़ा सा लोहे का फाटक है, जिसमें एक घंटा लटका रहता है। अन्दर जाने के लिए दर्शक को घंटा बजाना पड़ता है और तब लोहे का वह दर्वाज़ा झनझना कर खुलता है। किन्तु फाटक पर ही एक नोटिस लगा हुआ है—"सन्त मां को व्यर्थ कष्ट न दिया जाय।" इस चहार दीवारी से घिरे हुए उद्यान की, जिसे 'मातृ सदन' कहते हैं, संचालिका 'सन्त-मां' हैं। और सन्त मां के व्यक्तित्व की छाप यहां इंच-इंच ज़मीन पर साफ़ दिखाई देती है।

किन्तु दर्शक सीधा मां के ख़ेमे में प्रवेश नहीं कर सकता। दर्शक को पहले गिरजे में जाकर प्रार्थना करनी होती है और उस समय तक प्रार्थना करनी होती है, जब तक सन्त मां का आसन न डोले। उसके बाद सन्त मां स्वयं बुला भेजती हैं। सन्त मां का ख़ेमा दस हज़ार ईसवी पूर्व से लेकर इस बीसवीं सदी तक के दृश्यों का मानो एक बहुरंगी अजायब-घर है। क़िस्म क़िस्म के झंडे, तरह तरह के परदे, संसार के विविध धर्मों की मूर्तियां, जो भक्तों ने भेजीं और जो ख़ुद सन्त मां ने बनवाईं; चमक दार पीतल का हवन कुण्ड और तरह तरह के लैम्प भक्त का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इस मकान में लैम्पों की संख्या ही ३५६ है। लेकिन यह सब लैम्प वेदी के पास नहीं जलते। वेदी के पास जलने वाले लैम्प तो बहुत पवित्र समझे जाते हैं।

ख़ेमे की दीवारें और छतें लाल सफ़ेद और नीले रंगों से रंगी हुई हैं। सन्त मां की पूजा का कमरा भी तीन रंगों में है। रंगों की लकीरें बल खाते हुए सांप

की डिज़ाइन की हैं। पूरे वातावरण में निग्रो संस्कृति की छाप दिखाई देती है। और निग्रो सांपों की चित्र-कारी बड़े चाव से करते हैं।

कमरे में एक तख़्ती पर लिखा है "हां, आपको बात करने की अनुमति है।"

यदि मैं सारे उद्यान, इसके बिज़ेंटाइन गिरजे, यहां की सजावट और यहां की कारीगरी, हवन कुण्ड और सन्त मां का पूजा-स्थल सब का वर्णन करने लगूं, तो पूरी एक जिल्द भर जायगी। थोड़े ही इन्त-ज़ार के बाद मुझे सन्त मां से साक्षात करने का सौभाग्य मिला। सर से पैर तक वह सफ़ेद लिबास से ढकी हुई थीं।

सन्त मां का दरबार ख़ेमे के सब में बड़े कमरे में लगता है। ऊंचे चबूतरे पर मां का आसन, उसके पास ही एक पियानो, आरकेस्ट्रा के बाजे, काफ़ी का बर्तन, लकड़ी का स्टोव, अंगीठी, कुर्सी और टेबुल, चारों ओर करीने से फैले हुए थे। कमरे में जितनी कुर्सियां थीं पीठ लगाने का उनमें सहारा न था।

सन्त मां का नाम है कैथराइन। किन्तु रूस की साम्राज्ञी कैथराइन भी अपने सोने के सिंहासन पर बैठ कर इतनी तेजस्वी न दिखाई देती होगी, जितनी मामूली चौकी पर बैठ कर यह निग्रो कैथराइन सन्त मां। सन्त मां के चेहरे के भाव और उनके बात करने का ढंग सुनने वाले की तबीयत पर गहरा असर डालता है। उनके तर्ज़ तरीक़े में किसी तरह का भी हल्कापन नहीं पाया जाता। वे अपनी चीज़ वस्तु की सम्हाल और अपने घर की सफ़ाई स्वयं करती हैं। और इसमें असर डालने की भावना नहीं होती; यह उनकी अपनी सच्ची भावना है। सन्त मां यदि चाहतीं, तो अफ्रीका के किसी निग्रो क़बीले की सफल मातृदेवी बन सकती थीं। किन्तु उन्होंने अपने कर्तव्य का दूसरा ही क्षेत्र चुना। मां के सामने पहुँचने पर हमने घुटने टेक कर उन्हें प्रणाम किया। जाने क्यों उनके सामने जाकर भक्ति की भावना ने हमारे सारे दर्प को चूर कर दिया। पढ़ने में यह भले ही अजीब मालूम पड़े, किन्तु मां के सामने घुटने टेकना हमे बड़ा ही स्वाभाविक जान पड़ा। मां ने हमे आशीर्वाद दिया और पूछा—

"बेटी कहो कैसे आई ?"

"मां, मैं ज्ञान की जिज्ञासा में आई हूं।"

मां ने एक चुटकी नमक दिया और भक्तों की मंडली की ओर इशारा करके कहा—

"आपने सुना, ये ज्ञान की तलाश में आई हैं।"

"बेटी, परमात्मा और मुझ में ध्यान-मग्न हो-ओ। जब तुम गिरजे में बैठी थीं, तभी मैंने तुम्हारी उपस्थिति अनुभव कर ली थी। बेटी यह नमक खा लो और फिर परमात्मा की चिन्तना करो।" यह कह कर उन्होंने एक चादर मंगवा कर मन्त्र-ध्वनि के साथ मेरे ऊपर डाल दिया। मैंने उस समय सन्त मां से नहीं कहा कि मैं उनका विवरण लिखना चाहती हूं। लेकिन इसकी इजाज़त कई भेंटों के बाद उन्होंने दे दी।

मैं सन्त मां के साथ क़रीब दो हफ़्ते रही। रोज़ उनकी प्रार्थना में शामिल होती थी। प्रार्थना के बाद भण्डारा होता था और हर एक को मां अपने हाथ से प्रसाद देती थीं, और प्रेम से हर एक के सर पर हाथ फेरती थीं। अविश्वासियों की नज़रों में भले ही इसका कोई मूल्य न हो; किन्तु इससे भक्त को एक दैवी प्रेरणा मिलती है।

इधर ख़ेमे में प्रार्थना होती थी और उधर पास ही पिंजड़े में बैठे हुए तोतों का एक जोड़ा आवाज़ लगा रहा था। और जब इनकी आवाज़ तेज़ हो जाती थी, तो सुफ़ेद रंग का ककातू पक्षी भी शोर करने लगता था। प्रार्थना होती रहती थी और तीन कैनरी पक्षी भी चहकते रहते थे। प्रार्थना-भवन के बाहर चार कुत्ते, एक गदहा, अपने बच्चों के साथ एक बकरी, बहुत सी मुर्ग़ियां और एक भेड़ प्रार्थना के बीच ही में ख़ेमे के एक दर्वाज़े से आकर दूसरे दर्वाज़े से निकल जाते थे। मानों उस प्रार्थना के वे भी एक अबाध्य अंग थे। बैप्टिस्ट या मैथाडिस्ट या किसी भी सम्प्रदाय के गिरजे के भीतर यदि इनमें से कोई पशु चला जाता, तब तो वह

गिरजा अपवित्र हो जाता। सन्त मां के प्रार्थना मन्दिर में यह बात न थी। अंगीठी के पास बैठने के लिए दो कुत्ते आपस में लड़ रहे थे। मां की चौकी के पीछे तीन बरस से छोटे तीन बच्चे किलकारी मारकर खेल रहे थे; किन्तु न तो वक्ता का ही ध्यान बदलता था और न श्रोताओं का ही। वक्ता के ध्यान में प्रभु मसीह की मूर्ति थी और वही मानो दुनिया के सारे क्रम संचालित करती थी।

अन्य धार्मिक महन्तों की तरह सन्त मां व्यक्तित्व के दबाने में विश्वास नहीं करतीं। वह नवीनता को प्रोत्साहन देती हैं। उस चहार दीवारी के भीतर हंसी खुशी की लहर बहती थी। वहां के सभी पशुओं के साथ दया और प्रेम का बर्ताव होता था।

भक्तों से कभी धन की भेंट नहीं मांगी जाती। कोई देदे तो स्वीकार करली जाती है किन्तु न देने वालों का भी उसी प्रेम से स्वागत होता है। जो मां के निवास में रहते हैं, उनका सारा खर्च मां ही देती हैं। मां संगीत को प्रोत्साहन देती हैं और इस बात को भी देखती हैं कि बच्चे ठीक समय से स्कूल चले जाते हैं।

वहां के सारे वातावरण में एक गम्भीर कैथालिक धार्मिकता है। किन्तु कैथालिक बन्धनों में मां जकड़ी हुई नहीं हैं। उन्होने जिस धर्म में भी सत्य के दर्शन पाये, उसे ही आदर से स्वीकार किया। मां की एक सब में सुन्दर प्रार्थना है—

"प्रभु की आज्ञा है, मैं उनका सन्देश तुम तक पहुँचा दूं कि यह सारी दुनिया प्रभु की हथेली पर रखी हुई है।

"इस पृथ्वी के नीचे कोई नरक नहीं। क्या अपनी ही सांस जलाने के लिए प्रभु नरक का निर्माण करता?

"नीले आसमान के परे कोई स्वर्ग भी नहीं है। इस पृथ्वी और उस नीले आसमान के बीच में विचरण करने वाले प्राणी के हृदय में ही तो स्वर्ग-राज्य है।

"हमारी मृत्यु के बाद इस आत्मा का क्या होता है? क्यों, वह पेड़,दूब और प्राणियों में लीन हो जाती है। तुम्हारा मांस, जिसे धरती मां ने दिया था, उसी को धरोहर के रूप में वापस मिल जाता है।

"हमारी बुद्धि हमारे ही अन्दर कुछ निर्माण करना चाहती है, किन्तु दूसरे ही के कल्याण में हम अपने कल्याण का निर्माण कर सकते हैं।

"स्त्री ही इस दुनिया का नेतृत्व कर सकती है। क्या गर्भ की ही परमात्मा ने सब से पहले रचना नहीं की? और क्या उसी गर्भ से काल नहीं पैदा हुआ है? और वे सभी चीज़ें, जो पृथ्वी और आकाश को पूर्ण बनाए हुए हैं?

"कुछ लोग नेक कामों के करने में अशक्त हैं; किन्तु बुराई करने में शक्तिवान हैं।

"यदि वह चाहता, तो दुनिया के सब से बड़े महल में जन्म ले सकता था। यदि उसने एक निग्रो की झोपड़ी में जन्म लिया है, तो वह इसीलिए कि परमात्मा यह चाहता था कि वह एक शक्तिहीन और अत्याचार पीड़ित जाति के उद्धार का निमित्त बने।

"परमात्मा कुछ लोगों के पतन में उतना ही प्रसन्न होता है, जितना कुछ के उत्थान में। और क्या सन्तोंने यह नहीं बताया कि पतन ही उत्थान की सीढ़ी है?

"यह मनुष्य का काम नहीं कि वह इनकी वजह जाने।

"जो सन्तों और पैग़म्बरों ने कहा है, उसकी शिक्षा न दो। बाग़ में जाकर शुद्ध हवा से फेफड़े भर कर सोचो कि क्या उन सन्तों और पैग़म्बरों की शिक्षा उचित थी?

"किसी में आत्मा की प्रेरणा नहीं दिखाई देती, किन्तु उसके परिणाम दिखाई देते हैं।"

सन्त मां जिस समय आशीर्वाद दे रही थीं, उसी समय किसी दुर्भावना की हल्की सी रेख उनके मन में आई और वे मुंह ढांप कर बैठ गई। जब वह दुर्विचार उनके मन से दूर हुआ, तब आशीर्वाद का क्रम आगे बढ़ा। इसके बाद खाना आया; किन्तु वह बांटा नहीं गया। सन्त मां को जब प्रेरणा हुई, तब लोगों में ना बंटा।

सन्त मां का रुतबा उनके भक्तों में प्रभु ईसा के ही बराबर समझा जाता है।

शुक्रवार के दिन सारे काम काज बन्द रहते हैं। बढ़ई आरा चला सकता है और नाप सकता है; लेकिन लकड़ी जोड़ कर उसमें कील नहीं ठोंक सकता। सन्त मां जब प्रेम से सर पर हाथ फेरती हैं, तो लोगों की बहुत सी छोटी मोटी बीमारियां दूर हो जाती हैं। कुछ बीमारियां वह नुसख़ों से दूर करती हैं और किसी किसी को कैस्टर आयल और एप्सम साल्ट भी देती हैं। वह रोगियों का प्रार्थना-भवन में भी इलाज करती हैं और यदि रोगी आने में असमर्थ हो, तो उसके घर जाकर उसकी चिकित्सा करती हैं। उनका चरणामृत बोतलों में भर कर उनके भक्तों के पास जाता है और लोग संकट के समय इस चरणामृत को आंखों पर लगाते हैं और सर पर छिड़कते हैं।

प्रार्थना-भवन में कोई आदमी पालथी मार कर नहीं बैठता। इसमें विश्वात्मा का अपमान समझा जाता है।

मसीह के सम्बन्ध में सन्त मां की धारणा है कि जोसफ़ मसीह का सौतेला बाप था। सन्त मां की राय में सभी मनुष्य सौतेले बाप होते हैं; क्योंकि सभी बच्चे परमात्मा के हैं और परमात्मा ही असली पिता है। इन्सानी पिता तो केवल निमित्त है।

सन्त मां के सभी भक्त उनका दिया हुआ स्मरण चिन्ह पहनते हैं। स्त्रियां कोरी मलमल का लबादा पहनती हैं और पुरुष दाहिने बाज़ू पर एक पट्टी बांधते हैं। सब अर्ध चन्द्र यानी सलीब का बैज लगाते हैं, जिस पर एम० सी० एस० "मां कैथराइन सन्त" अक्षर लिखे रहते हैं। इन चिन्हों को, भक्तों को हर जगह पहन कर जाना होता है।

उनके सभी भक्त उनके अपने बच्चों की तरह हैं। उनके भक्तों में यदि निग्रो की तादाद बेशुमार है, तो गोरे अमरीकनों की भी संख्या कम नहीं है। सन्त मां का कहना है—"मेरे बच्चों में सब तरह के लोग हैं। मैं जो उनकी मां ठहरी। उनमें से कुछ धर्मात्मा हैं, कुछ सज़ायाफ़्ता मुजरिम हैं, कुछ के सरों पर गर्भपात की ज़िम्मेवारी है, कुछ वेश्यागामी हैं और कुछ रात का पेशा करने वाले हैं, यानी चोर भी हैं—किन्तु वे सब मेरे बच्चे हैं। परमात्मा की औलाद में भी तो सभी तरह के लोग हैं और जब पिता परमात्मा को उनसे नफ़रत नहीं, तो फिर मैं मां होकर अपने इन बच्चों से कैसे नफ़रत करूं?"

इसके बाद मां ने मुझे बिदा किया। मां ने कहा देखो विश्वास को जीवन का आधार बनाओ। प्रार्थना विश्वास को दृढ़ करने का साधन है। संशय विश्वास के महल को गिरा कर ज़मीन में मिला देता है। जाओ विश्वास रखो और प्रार्थना करो।

कभी कभी मां प्रार्थना के बाद अपने प्रवचन में अपने जीवन के अनुभव भी बताती हैं।

सैकड़ों मनुष्य मिलेंगे, जो आपको अपना अनुभव सुनाएंगे कि किस तरह सन्त मां के ऊपर विश्वास ने ही उन्हें मरणान्तक रोगों से मुक्त किया। किस तरह सन्त मां के ऊपर विश्वास ने उन्हें पतित से सदाचारी और पापात्मा से पुण्य-पथ का पथिक बनाया।

सन्त मां का धर्म मातृ-मार्गी है। सिर्फ़ परमात्मा और मां को ही उसमें प्रधानता है। उनके धार्मिक विश्वासों में बच्चे की पैदाइश को बहुत महत्व है। उनके उद्यान का नाम ही मातृ-सदन है। गर्भिणी माता या नवजात शिशु को मातृ-सदन में निश्चय आश्रय मिलेगा। सन्त मां इस बात को नहीं पूछतीं कि गर्भ जायज़ शादी का परिणाम है या नाजायज़ वासनाओं का। मातृ-सदन दोनों के लिए एकसां खुला है।

सन्त मां बार बार इस चीज़ पर ज़ोर देती हैं कि शिशु का जन्म पापमय नहीं होता और जो स्त्री मातृत्व के पुण्य कर्तव्य को गर्भपात से रोकती है, उसको ईश्वर कभी क्षमा नहीं करेंगे।

सन्त मां ने किसी से दीक्षा नहीं ली। वे स्वयं दीक्षित हैं। ईसा, मुहम्मद और बुद्ध की तरह परमात्मा का पैग़ाम उन्हें अपने ही दिल के भीतर सुनाई दिया। परमात्मा और सन्त मां के बीच में किसी का दख़ल नहीं।

जिस समय परमात्मा का पैग़ाम मिला, सन्त मां की शादी हो चुकी थी। किन्तु वह तो मीरा की तरह गिरधर को अपना पति बना चुकी थीं। उन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लिया और उपवास तथा प्रार्थना से अपने ब्रह्मचर्य को सम्भव बनाया।

उनके पति को अपनी पत्नी की सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले दो सप्ताह तक प्रार्थना करनी पड़ी। इसके बाद सन्त मां ने उन्हें दीक्षा दी। छै महीने तक उन्होंने गुरु और शिष्य की तरह पवित्र जीवन बिताया। उसके बाद पतिदेव अपनी वासनाओं पर क़ाबू न पा सके और वे मातृ-सदन की ही एक महिला के साथ भाग खड़े हुए।

पहले सन्त मां अपनी प्रार्थनाएं जेक्सन एवन्यू में किया करती थीं, किन्तु लोगों की भीड़ इतनी बढ़ने लगी कि अधिकारियों को प्रबन्ध करना मुश्किल हो गया। तब सन्त मां के धनी शिष्यों ने यह बड़ी सी ज़मीन मोल ली जहां आज यह मातृ-सदन है। एक बार सन्त मां ने मातृ सदन के भीतर मोटर चलाने का अभ्यास शुरू किया। मोटर क़ाबू से बाहर हो गई और चहार दीवारी की बाढ़ को तोड़ते हुए बाहर निकल कर रुक गई। मां ने अपने भक्तों को आवाज़ दी कि मुझे यहां से बाहर निकालो; मैं मातृ-सदन की पवित्र भूमि के बाहर क़दम न रखूंगी। लोग उन्हें हाथों हाथ मातृ-सदन के भीतर लाये और जिस जगह वह बैठाई गईं, वह जगह बहुत पवित्र समझी गई। मां के भक्त उस जगह एक कुंआ खुदवा रहे हैं और मेरे इस लेख के लिखने के समय तक वह कुंआ बन कर तैय्यार नहीं हुआ है।

माता

अपने इस क्षुद्र पार्थिव मन से माता को समझने और परखने की चेष्टा मत करो। मन का यह स्वभाव है कि यह अपने नाप और मान से, अपने संकीर्ण तर्क-वितर्क और प्रमादी धारणा से, अपने अथाह दर्प भरे अज्ञान और अपने तुच्छ ज्ञान की सर्वोपरि मान्यता से समझना और परखना चाहता है; उन चीज़ों को जो सर्वथा उसकी कक्षा से बाहर हैं। धुंधला सा प्रकाश पाने वाली अन्धता के बन्दीगृह में आबद्ध मन भगवती शक्ति के पद विक्षेपों की अबाध बहुधा गति को नहीं समझ-बूझ सकता। मन की लुढ़कती-पुढ़कती समझ माता की दृष्टि और कर्म की द्रुत गति और विविधता का पीछा नहीं कर सकती, उनकी गति का मान मानवी मन का पैमाना नहीं है। माता के बहुविध विभिन्न रूपों के द्रत परिवर्तन, उनके छन्द निर्माण और छन्द भङ्ग उनकी क्षुद्रता के द्रुत वेग और उनके गति रोध, किसी की समस्या का विचार किसी प्रकार से तो किसी दूसरे की समस्या का विचार किसी दूसरे प्रकार से—ऐसे उनके नाना विध मीमांसा-प्रकार, उसका कभी एक धागे को उठाना और फिर तुरन्त रख देना और दूसरे धागे को उठाना—रखना और इस तरह सब धागों को एक सूत्र में ग्रथित करना, इन सब बातों को ठीक तरह से न समझने के कारण घबराया हुआ मन नहीं देख सकता, कि कैसे परमा शक्ति अज्ञान की इस गहनता को भेद कर चक्कर काटती हुई बड़ी तेज़ी के साथ ऊपर परमा ज्योति की ओर चली जा रही है। इसलिए यही अच्छा है कि तुम अपना हृदय उनकी ओर खोल दो और यही यथेष्ट है कि अपनी हृत्प्रकृति से उन्हें अनुभव करो और हृत्पद्मलोचन से उन्हें देखो, वे ही सत्य के सम्मुख होते और उसके इशारे पर चलते हैं। तब माता स्वयं ही तुम्हारे मन, हृदय, प्राण और शरीर चेतना को उनके हृतत्त्वों के द्वारा प्रबुद्ध कर देंगी और अपनी रीति-नीति और प्रकृति भी दिखा देंगी।

—योगी अरविन्द

बलिदान

श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द

प्रभाती की मांग का सिन्दूर पोंछ कर भीखू ने इस जग से नाता तोड़ लिया। रह गई प्रभाती बेवा और बेकस। उसके मन में अपने विवाहित जीवन की सारी स्मृतियां एक के बाद एक आने लगीं। उसके पति भीखू का कितना बड़ा कारबार था! अपनी बनारसी साड़ियों के लिये उसका कारख़ाना कितना मशहूर था! उस कारख़ाने से कितनों को रोज़ी मिलती थी। और भीखू ने कभी इस बात में फ़रक़ नहीं किया कि उसके कारीगरों में कितने हिन्दू और कितने मुसलमान हैं। उसमें मालिक और नौकर का फ़रक़ नहीं था। वह अपने कारीगरों को अपने बेटों की ही तरह मानता था। प्रभाती पति के इशारे पर चलती और भीखू भी उसका बड़ा लिहाज़ करता। प्रभाती को कई बच्चे हुए; लेकिन दैवयोग से कोई जीता न बचा। पर फिर भी वह ख़ुश थे। आपस के प्रेम ने उनके जीवन को स्वर्ग बना रखा था। पर आज?—आज तो प्रभाती अकेली है। यह कारख़ाना, ये कारीगर—वह औरत की ज़ात! भला यह सब उससे कैसे पूरा होगा। और फिर काहे के लिए?

बहुत दिन यूं ही चलता रहा; कारख़ाना बन्द और प्रभाती भीखू के वियोग में व्याकुल। एक दिन कारख़ाने का बूढ़ा कारीगर हुसेन मालकिन से आकर बोला—"बहू जी, कम से कम हम लोगों की ज़िन्दगी तक यह कारख़ाना चलता रहे। बड़े मालिक आपके ससुरजी ने यह रोज़गार शुरू किया था; तब से जो आपके दर्वाज़े आया हूं, तो यहीं से रोटी मिलती है। कैसा दुर्भाग्य है मेरा कि दो दो मालिक चले गए और मैं ऐसा ही बैठा रहा। कैसे धर्मात्मा थे वे। मगर बहू जी, शायद परमात्मा के दरबार में धर्मात्मा की ही पूंछ पहले होती है। बहूजी, आप मालिक के नाम से धर्मशाला खुलवाएं और कुंआ-तालाब बनवादें।" कहते-कहते हुसेन का दिल भर आया।

प्रभाती बोली—"तुम्हीं लोगों का तो अब भरोसा है। मेरी राय है कि कल से कारख़ाने का काम शुरू हो जाय। काम शुरू हो गया। ज़ोरों से शुरू हो गया। पुराना कारख़ाना था, होशियार कारीगर थे, दूकान की साख थी; काम पहले जैसा चल निकला। निपूती बेवा भला पैसे को क्या करेगी? सोच-सोचकर मुहल्ले के हिन्दुओं को प्रभाती से ईर्षा हो गई। धीरे-धीरे अन्दर की ईर्षा ने कानाफूसी का रूप लिया और फिर खुले आम चर्चा होने लगी।

एक दिन मुहल्ले वालों का डेपुटेशन प्रभाती के पास आकर बोला—"मुसलमान कारीगरों को रखना तुम्हारी जैसी बेवा के लिए ठीक नहीं है। और फिर इनका विश्वास ही क्या। क्या जाने कब ये तुम्हारी इज्ज़त उतार लें।"

प्रभाती बोली—"इनका विश्वास न करूं तो फिर किसका करूं? मेरे ससुर के वक्त से ये काम कर रहे हैं। कोई आज के थोड़े ही हैं। मेरे पति ने भी तो कभी हिन्दू-मुसलमानों का फ़रक़ नहीं किया, तो फिर मैं कैसे फ़रक़ करूं?"

लोगों ने कहा—"भीखू की बात छोड़ो; अपनी फ़िकर करो।

प्रभाती—मेरा भी तो ज़माना बीत रहा है। अब तक निभी है, तो थोड़े दिन और निभ जायगी।"

एक बुढ़िया बोली—नहीं बहू, जैसा लोग कहें वैसा चलो, समय बड़ा ख़राब है।

प्रभाती—समय ही मेरा क्या कर लेगा? जो कुछ बिगड़ना था बिगड़ चुका। माना मेरे कारीगर सब मुसलमान हैं, मगर इसी ड्योढ़ी में तो छोटे से बड़े हुए हैं। फिर फूल बोने से तो कांटे नहीं मिलेंगे।

बुढ़िया—फ़िज़ूल बदनामी फैलेगी बहू। सांप पालोगी, तो डसने का भी डर रहेगा। फिर लोग उंगली उठाएंगे अलग।

प्रभाती—तो मुझसे तो यह नहीं होगा। ठगने वाले से ठगा जाने वाला अच्छा होता है। और डरके ही दुनिया कैसे चलेगी। इस डर से ही तो खाई बढ़ती जाती है।

बुढ़िया—ख़ैर तुम्हारी मर्ज़ी।

प्रभाती—बड़ों का काम सीख देना ही है अम्मा! आंख खोल कर चलना हमारा काम है।

एक दिन बनारस का शहर मानो धांय धांय कर जल उठा। प्रभाती ने सुना कि हिन्दू-मुसलमानों में चल गई। जगह-जगह मारकाट और ख़ून ख़राबी का बाज़ार गरम हो गया। और एकाएक मुहल्ले के हिन्दुओं ने मिलकर प्रभाती का कारख़ाना घेर लिया। बूढ़े हुसेन ने लपक कर दर्वाज़ा बन्द कर दिया। बाहर जै महावीर के नारों से वायु मण्डल गूंज उठा और भीतर कारख़ाने के मुसलमान कारीगर भय से थर थर कांपने लगे।

प्रभाती पहले तो सन्न होगई; फिर अपने डर को समेट कर उनसे बोली—घबराओ नहीं; मेरे रहते कोई तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगा। उन्हें अन्दर करके प्रभाती दर्वाज़े के पास आई। लाठियों की चोट से दर्वाज़े के बूढ़े पल्ले रह रह कर थरथरा जाते थे।

प्रभाती ने संयत स्वर से कहा—आप लोग चाहते क्या हैं?

भीड़ से आवाज़ आई—दर्वाज़ा खोलकर मुसलमानों को हमारे हवाले करो।

प्रभाती—ईश्वर के लिए दया करो।

भीड़ में से किसी ने कहा—ख़ूब रही, दया की बात करती हो! कुछ सुना भी है तुमने हिन्दुओं पर क्या बीत रही है?

प्रभाती—तो उनके पाप का फल इन्हें दोगी?

"हमको तो बदला निकालना है। मुसलमान मुसलमान सब एक से।"

प्रभाती—हिन्दुओं के शास्त्रों में तो शरणागतों की रक्षाकी बड़ी महिमा है।

"तेरा कोई मरता तब तू इसका दुख दरद जानती।"

प्रभाती—भैय्या आज होली है। आज के दिन तो दुश्मन भी दोस्त बन जाता है। आज तो रंग गुलाल की होली है। तुम क्या ख़ून की होली खेलोगे?

"जब चारो ओर ख़ून बह रहा हो, तो हम कैसे मानव बने रहें?"

प्रभाती—दानवों के ही बीच में तो मानव खिलेगा। शास्त्रों में एक पक्ष की रक्षा के लिए अपने प्राण देने वालों के बहुत वृतान्त मिलते हैं। तुम लोग भी तो उन्हीं की सन्तान हो। उनके नाम पर कालिख मत पोतो। तुम मानव बने रहोगे, तो दानव भी मानव में बदल जायगा।

"अच्छा चुप भी रहो; हम उपदेश सुनने नहीं आये हैं। जल्दी दर्वाज़ा खोलो।"

"तब तुम क्यों व्यर्थ मानव होने का दम भरते हो। जैसे वे वैसे तुम। धरम में यह नहीं लिखा है कि

तुम राक्षस बन जाओ। जब तुम में सद्गुण नहीं रहेंगे, तो कैसे मनुष्य कहला सकोगे। हां, जब तक मेरे दम में दम है, मैं तुम्हें भीतर न आने दूंगी।"

उन धर्म के अन्धों ने एक साथ चीत्कार किया और इसके बाद दर्वाज़े पर कुल्हाड़ियां पड़ने लगीं। जन-समूह के सामने भला उस दर्वाज़े की क्या बिसात थी, जो टिक सकता। एक ही रौंद में उसकी धज्जियां उड़ गईं। पागल भीड़ आगे बढ़ी। प्रभाती ने अपने आपको उनके रास्ते में फेंक दिया। उठी हुई लाठियां पहले ही धावे में प्रभाती के ऊपर बरस पड़ीं। क्षत विक्षत होकर प्रभाती ज़मीन पर गिर पड़ी। गरम गरम ख़ून फ़र्श पर बहने लगा। प्रभाती अस्पष्ट स्वर में कहती गई—"ईश्वर के लिए दया करो; अपने ही भाइयों के ख़ून से होली न खेलो। तुम्हें परमात्मा कभी माफ़ न करेगा। परमात्मा करे मेरे ही ख़ून से तुम्हारी प्यास बुझ जाय।" इसके बाद प्रभाती का निर्जीव शरीर चुप और शान्त पड़ा था।

भीड़ को मानो सकता मार गया। लोग दबे पांव वापस लौट गए।

चारों ओर सन्नाटा छाया था। बूढ़ा हुसेन और उसके ११ मुसलमान कारीगर अपनी मालकिन को घेर कर ढार ढार रो रहे थे। हुसेन ने अपने अल्लाह से प्रभाती की दुआ की कामना की। रोते रोते बोला—"तुम मानवी नहीं देवी थीं बहू। हम हत्यारों को तुम एक सीख सिखा गईं। एक दिन था जब मेरे सामने तुम्हारे ब्याह की पालकी इस दर्वाज़े पर आई और आज मेरे ही सामने तुम्हारी अर्थी यहां से उठ रही है।"

दङ्गाई चुप अपने अपने घरों में बैठे थे और प्रभाती के मुसलमान कारीगर लाश को घेरे रो रहे थे। बूढ़ा हुसेन बड़ी मुश्किल से एक पण्डित जी को दाह कर्म के लिए राज़ी करके लाया। अर्थी बनी और वो ग्यारहों मुसलमान राम नाम सत्य की आवाज़ लगाते, अपनी मालकिन को कन्धा देते श्मशान की ओर चले।

मर्म न काहू जाना

पूरब दिशा हरी को बासा, पच्छिम अलह मुकामां।
दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा॥
जेते औरत मर्द उपानी, सो सब रूप तुम्हारा!
कबीर पोंगरा अलह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु सोइ लखाई।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहूँ खुदाई॥
हिन्दू कहें राम मोंहि प्यारा, तुरुक कहें रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मूए, मर्म न काहू जाना॥

—कबीर

बुनियादी हिन्दुस्तानी कान्फ्रेंस

——(:o:)——

सैय्यद मुत्तलबी फ़रीदाबादी

—◌—

आज हमें ध्यान देना पड़ेगा कि हिन्दुस्तानी भाषा से हमारा मतलब किस भाषा से है ? क्या हिन्दुस्तानी वह हिन्दी है, जिसमें बहुत से संस्कृत के कठिन और अप्रचलित शब्द रख दिये जाते हैं और जिसके लिखने का ढंग इतना पेचीदा होता है कि उर्दू लिखने-पढ़ने वाले तो कुछ भी नहीं समझ पाते ? पर शहरों के आम अनपढ़ लोग और देहाती भी उसको नहीं समझ सकते और क्या हिन्दुस्तानी वह उर्दू है, जिसमें फ़ारसी और अरबी के कठिन शब्दों की भरमार होती है और जिसके लिखने का ढंग भी कुछ कम पेचीदा और अनघड़ नहीं होता और जनता के लिए इसका समझना बहुत कठिन बल्कि असम्भव होता है। अगर हम दोनों साहित्यिक भाषाओं को या उनमें से किसी एक को भी हिन्दुस्तानी मान लें, तो वह झगड़ा जो आजकल छिड़ा हुआ है, ख़त्म होता नहीं मालूम होता। इस प्रकार देश की एक भाषा बनने की समस्या इस दर्जे तक ज़रूरी समस्या बनी चली आरही है कि इस तरह उलझे रहना, जैसा वह अब है, सिर्फ़ अफ़सोसनाक ही नहीं, बल्कि एक जान लेलेने वाला ख़तरा बना रहता है। मुझे याद है कि एक दफ़ा इलाहाबाद में प्रगतिशील लेखकों की एक सभा में आचार्य नरेन्द्रदेव ने बड़ी मज़ेदार बात काका को लक्ष्य करके कही थी और वह यह कि हमें (प्रान्त के रहने वालों को) इस बात से बहुत दुःख है कि हमारे देश का नाम भी हमसे छीन लिया गया है और हमारी भाषा पर भी आक्रमण होते हैं। यह बात है भी सच कि अंग्रेज़ी राज के क़ायम होने से पहले हिन्दुस्तान जिस देश को कहा जाता था, उसका अर्थ देश का वह हिस्सा था, जिसके एक तरफ़ नर्मदा और दूसरी ओर सतलज नदी, एक तरफ़ बंगाल देश और एक तरफ़ गुजरात है। लेकिन अब तो हिमालय पहाड़ से कन्याकुमारी तक जो मुल्क चला गया है, उस सब को ही हिन्दुस्तान कहते हैं। वह हिस्सा हिन्दुस्तान देश था। उसकी बोली हिन्दुस्तानी कहलाती थी। इससे यह मतलब नहीं कि मौजूदा हिन्दुस्तान को हिन्दुस्तान न कहा जाय और उसकी बोली, जो अन्तर प्रान्तीय कारोबार करे; उसे हिन्दुस्तानी न कहा जाय, बल्कि यह बात इसलिए कही गई है कि हम बुनियादी हिन्दुस्तानी के बनाने के लिए सोच विचार करें, तो याद रखना चाहिए कि यह ज़रूरी नहीं है कि उससे और दक्षिण की बोलियों से ज़रूरी तौर पर ऐसा वास्ता पैदा करने की अनमेल और बेजोड़ कोशिश की जाय, जिससे भाषा का ही खात्मा हो जाय।

उत्तरी भारत की देहाती बोली पर मुझे भी थोड़ा बहुत सोच विचार का अवसर मिला है। फिर बिहार, गुजरात और पंजाब के दोस्तों से बहुधा मशविरा भी हुआ है। उनके सामने मैने ब्रज भाषा, हरियानी और मेवाती की कविताएं सुनाई हैं; वह कहते हैं कि इस, देहाती बोली से जिस क़दर हमारी बोलियां (गुजराती बिहारी, बंगाली) करीब और मिलती जुलती हैं, उतनी

साहित्यिक हिन्दी या उर्दू से नहीं मिलतीं। फिर वह यह भी मानते हैं कि पंजाब, बिहार और गुजरात के देहाती लोग इस हिन्दुस्तानी बोली को भी, जो देहली, हैदराबाद, लखनऊ, लाहौर बम्बई और कलकत्ता आदि सारे मुल्क के शहरों में बोली जाती है और जो न पंजाबी है, न गुजराती और न बिहारी, और न मेवाती, न हरियानी, अच्छी तरह समझ लेते हैं। लेकिन वह उस हिन्दी और उर्दू को बिलकुल नहीं समझ सकते, जिसके नाम पर आज मुल्क भर में बड़ा भारी झगड़ा फैला हुआ है। इसका अर्थ यह है कि हमारी इस बोली में, जो साधारणतः शहरों में बोली जाती है और देहाती बोलियों में जिन्हें हम ब्रजभाषा, हरियानी, मेवाती, बिहारी, पंजाबी, और गुजराती वग़ैरह कहते हैं; और जो उत्तरी भारत की बोलियां हैं, उनमें बड़ी भारी एकरंगी मौजूद है। और इसलिए हिन्दुस्तानी को हम अगर पूरी कोशिश और मेहनत करें, तो एक साफ़ और पाक ऐसी भाषा की शकल में सामने रख सकते हैं, जिसके सम्बन्ध में कम से कम उत्तरी हिन्दुस्तान की अन्तर प्रान्तीय भाषा होने का दावा किया जा सके। इस तरह मौजूदा खींचातानी या तो बिलकुल ही ख़तम हो जाय, वर्ना बस इतनी रह जाय कि हर माक़ूल आदमी इस झगड़े से घृणा करके मुल्क के दुश्मनों और झगड़ालुओं के झगड़ा करने से ज़्यादा उसे महत्व न दे।

लेकिन यह काम कुछ आसान नहीं। योग्यता और मेहनत दोनों चीज़ों की ज़रूरत है। और इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि हमारे बहुधा प्रगतिशील साहित्यकार इतनी विभिन्न राजनैतिक और ग़ैर राजनैतिक उलझनों और कामों में लगे रहते हैं कि वह इस ज़िम्मेवारी से सम्भवतः घबरा जाएं। पर अगर इस ज़रूरी काम को पूरा करने के लिए वह तमाम विद्वान दोस्तों को साथ लेकर इस काम में कोशिश करें, तो मैं समझता हूं कि वह मुल्क की एक बहुत बड़ी सेवा करेंगे। इस सिलसिले में मेरा प्रस्ताव यह है कि आगामी मई के महीने में गुजरात, बिहार, पंजाब, यू० पी० और हरियाने के साहित्य और भाषा सम्बन्धी सवालों पर ग़ौर करने वाले दोस्तों को एक जगह जमा करें और इस सभा में बुनियादी हिन्दुस्तानी का एक उद्देश्य मानकर अलग अलग खोज करने वाली कमेटियां पंजाबी, गुजराती, बिहारी, हरियानी और ब्रजभाषा के लिए बनाई जायं, जो हिन्दुस्तान के शहरों की बोलचाल और अपनी देहाती बोलचाल के सम्मिलित शब्दों को खोज निकालें और उसकी एक ब्योरेवार सूची बनाकर एक दूसरी कांफ्रेंस में इन सब अलग अलग सूचियों को पेश करें। आपस में तुलना करने के बाद एक पूरी सूची ऐसे शब्दों की तय्यार कर ली जाय, जो विभिन्न स्थानों में काम करने के लिए एक सम्मिलित बोर्ड के ज़िम्मे कर दी जाय, जो अपने काम को पूरा करने के बाद इस मसले को दूसरी कानफ्रेंस में पेश करे। मई के महीने में हम जो बैठक बुलाना चाहते हैं, उसमें यह बात निश्चय कर ली जाय कि सम्मिलित शब्द मानने के लिए क्या क्या उद्देश्य सामने रखने चाहिएं।

यह कुछ पंक्तियां मैंने केवल इस मतलब से लिखी हैं कि वह तमाम विद्वान, जो मई की बैठक में शरीक हो सकें, इस सवाल पर पूरी तरह विचार कर लें। इसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दुस्तानी भाषा के बनाने और मान लेने के मसले पर कोई और प्रस्ताव नहीं पेश हो सकेंगे। इस जलसे से पहले जो भी प्रस्ताव आएंगे, उन सब को बैठक में पेश किया जायगा।*

* इस अपील के बाद ही सैयद साहब गुड़गांव [पञ्जाब] में व्यक्तिगत सत्याग्रह करते हुए पकड़े गये और उन्हें एक साल की सज़ा होगई। बहुत से प्रगतिशील साहित्यक भी आज जेल में हैं। किन्तु हम सैयद साहब के इस प्रस्ताव का दिल से समर्थन करते हैं और उम्मीद करते हैं कि इस पर दूसरे भाई भी अपने विचार प्रकट करेंगे—सम्पादक

शास्त्रीयता और रसिकता

श्री "धूमकेतु"

यह द्वन्द सनातन है। इन दोनों के बीच का विसंवाद भी सनातन है। इस विसंवाद में से संवाद (सुमेल) उपजाने की आवश्यकता भी युग युग पुरानी है। जब जब यह संवाद उत्पन्न होता है, जब शास्त्रीयता रसिक बनती है और रसिकता शास्त्रीय होती है, तब तब दुनिया को कोई न कोई महान् कृति, कोई न कोई महान पुरुष, अथवा कोई महान् घटना देखने को मिलती है।

शास्त्रीयता का दावा है कि जो इसकी सीमा में न आ सके, वह अनधिकारी माना जाय। रसिकता का दावा यह है कि किसी भी प्रकार से सीमाको—दायरे को विस्तृत बनाया जाय। इसी में रसिकता का कर्तव्य पूरा हो जाता है। इन दोनों के संवाद को सिद्ध करने के लिए पुरुषार्थ करने वाले प्रत्येक साधक की आकांक्षा यह रहती है कि इन दोनों के दायरे—वृत्त—केवल एक दूसरे की परिधि को स्पर्श करके ही न रह जाँय। वे दोनों समग्र रूप में एक दूसरे में व्याप्त हो जाँय, इसी में जनता का कल्याण है, जनता का उत्कर्ष है, जीवन और कला की सार्थकता है।

शास्त्रीयता और रसिकता का संग्राम-निरत यह विरल द्वन्द्व जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, भिन्न भिन्न रूप में, भिन्न भिन्न नामों से कार्य करता रहता है। पुरुष स्त्री को कहता है—"इसमें तेरा अधिकार नहीं, यह तेरा विषय नहीं है। इसमें तो सूक्ष्मता से अवलोकन करना है।" पुरुष की इस वाणी में शास्त्रीयता की प्रतिध्वनि है। स्त्री की रसिकता उसे अपने नित्य के कठिन जीवन व्यवहार में अयोग्य प्रतीत होती है। परन्तु जब इन के बीच में प्रेम की सुनहरी जंजीर आती है, तब दोनों को प्रतीत होता है कि एक के बिना दूसरे की महत्ता ही नाम शेष है।

शास्त्रीयता और रसिकता का यह मामला, क्रोधित बन कर एक दूसरे की ओर पीठ करके बैठे हुए दो मित्रों का सा है। शास्त्रीयता कवि को कहती है—इसमें छंदोभंग है, यतिभंग है, लय नहीं है, अलंकार नहीं है, शब्दाडम्बर नहीं है, अतः यह कविता नहीं। रसिकता कवि को कहती है—इसमें छन्द की गुलामी है, यति का दासत्व है, शब्दों का प्रभुत्व है। इसमें ऊर्मि नहीं, कल्पना नहीं, भावना नहीं, अतः इसमें कविता नहीं!!

इन दोनों की मैत्री—इन दोनों का सुसंवाद—साधने के लिए प्रयत्न शील साधक कहते हैं—तुम दोनों एक दूसरे को ताल दो, एक दूसरे के ताल के आधार पर संवादी नृत्य करो। ऐसा करने पर तुम वस्तुतः कुछ महान देख सकोगे!

शिल्पी, कलाकार, साहित्यकार, नाटककार, सर्जक, विवेचक, राजनैतिक नेता, व्यापारी, वणिक् तथा सामान्य जन—इन सबको एक रूप में या दूसरे रूप में, जहां जहाँ आपस में समन्वय पूर्वक कार्य साधना चाहिए, वहाँ ये एकांगी बनकर दूसरे को बुरा कहते हैं। दाँई आँख कहती है मैं ही देखती हूं, तुझे देखना

नहीं आता। बाँई आँख जवाब देती है, तू बन्द हो जाय तो भी मैं तो देखती ही रहूंगी। शास्त्रीयता और रसिकता का यह विसंवाद प्रत्येक क्षेत्र में प्रविष्ट होकर मन को कलुषित बनाता है, जनता को अरसिक बनाता है, स्वाध्याय प्रियों को जनता से पराङ्मुख बनाता है, समाज को स्वाध्यायशीलता की मखौल उड़ाना सिखाता है, असरस को रस बताता है, शरारत पूर्ण विनोद को नाटक कहता है, और प्रत्येक प्रकार के जीवन व्यवहार में दृष्टि विहीनता पैदा करके प्रजा को कल्पना हीन, पामर, और निष्क्रिय बनाता है। सिनेमा वाले रसिकता के लिए तथा जनता को आकृष्ट करने के लिए शास्त्रीयता का परित्याग करते हैं। नाटक पर इसीलिए हीऊंची भावना को स्पर्श नहीं करते। पत्रकार लोग भी लोगों को आकृष्ट करने के लिए अतिशृंगार को अपनाते हैं। कहानी साहित्य में भी वास्तववाद (Reality) के सिवाय अन्य कुछ नहीं दिया जाता! उपन्यास भी इसी चिन्ता में रहते हैं कि कहीं रसिकता मर न जाय। इसी विचारणा के कारण वे दो स्त्रियां और एक पुरुष या दो पुरुष तथा एक स्त्री, इस प्रकार के प्रेम त्रिकोण से मुक्त नहीं हो पाते। इसके सिवाय जिन लोगों को आकृष्ट करने के लिए यह सब कुछ किया जाता है, वे लोग तो अन्त में जाकर ऐसा ही कहते हैं कि इसकी अपेक्षा कुछ सरल, हलका और गुदगुदी उपजाने वाला मसाला दीजिए न?

अब तो वह समय आगया है जब कि ये दोनों (शास्त्रीयता तथा रसिकता) तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक द्वन्द्व समन्वय की स्थिति में आने का प्रयत्न करें। अपने अपने वृत्त (दायरे) को अधिकाधिक समीप लायें। तभी युग परिवर्तन का स्वप्न सत्य सिद्ध हो सकेगा।

इस समय की एक खूबी यह है कि यह एक दूसरे के दृष्टि बिन्दु को त्याग करके सिद्ध नहीं किया जा सकता। जिसे यह समन्वय सिद्ध करना हो उसे अपना दायरा इतना बड़ा करना पड़ेगा कि दूसरे का दायरा उसमें समा जाय। इस प्रकार ये दोनों वृत्त (दायरे) एक साथ ही, एक दूसरे को मिलने का प्रयत्न करें तो उनमें सब बिन्दु एक दूसरे में समाविष्ट हो कर, समरस होकर, एक ऐसी प्रसन्नता पैदा करेंगे जिसमें से जनता के सच्चे उत्कर्ष की महान् वस्तुएँ उत्पन्न होंगी!!

जो जो कृतियां दुनियाँ में लोकप्रिय भी हुई हैं और लोकोत्तर भी बनी हैं, वे सभी कृतियाँ किसी महान् आत्मा द्वारा दोनों दृष्टि बिन्दुओं को समझने पर ही बनाई गई थीं। सर्जक किसी महान् स्वप्न से प्रेरित होकर, जिसे उसने स्वयं अनुभव किया है उसे दूसरे को भी अनुभव कराने के लिए ही, वाणी का आश्रय लेता है अथवा अपनी शक्ति के अनुकूल साधनों का आश्रय ढूंढ़ता है, तभी वह सर्जक बनता है। इसके विपरीत अपनी क्षुद्रता को, अपनी लघुता को, अपने मन के छोटे छोटे विषमय डंकों को, अपने अवि-कसित व्यक्तित्व को असमय में प्रकट करने के लिए प्रयत्न करने में, कला नहीं है, कलाभास भी नहीं है, यह तो एक प्रकार से अपने उग्र अभिमान को सन्तुष्ट करने का प्रयास है।

शास्त्रीयता जीवन की शुद्धि तथा क्षण क्षण की जाग्रति चाहती है। रसिकता पवित्र आनन्द अनुभव करने की शक्ति चाहती है और साथ ही विरल क्षणों को अपना बना लेने की तत्परता चाहती है। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है, इतना ही नहीं निर्माल्य और निष्फल है। एकाङ्गी विकास तो जीवन की अपूर्णता का सूचक है। वह तो एक प्रकार का विकार है। इसी लिए वैयाकरणी जैसे शास्त्र विवेचकों के पास कविता सुंदरी नही जाना चाहती। और शास्त्रीयता रहित तरंगी, अविभावुक और स्वच्छन्दी अनभ्यासी लोगों के पास भी वह नहीं जाती है।

शास्त्रीयता के बिना समग्र जीवन का विचार शक्य नहीं है और उसका समग्र विकास रसिकता बिना संभव नहीं है!!

अनुवादक—श्रीज्ञानयात्री

अफ़ग़ानिस्तान की ऐतिहासिक भूमिका

डाक्टर, भूपेन्द्रनाथ दत्त, एम० ए०, पी-एच० डी०

डाक्टर दत्त स्वर्गीय स्वामी विवेकानन्द के छोटे भाई हैं। अपनी जवानी में आप मशहूर क्रान्तिकारी नेता थे। इसी कारण भारत छोड़कर डाक्टर साहब को सत्रह वर्ष तक एशिया, अफ़रीका और यूरोप के देशों में निर्वासन का जीवन बिताना पड़ा। रूसी क्रान्ति के समय आप रूस में ही थे। मार्क्सवाद के आप गम्भीर विद्वान हैं। बर्लिन विश्वविद्यालय से आपने सम्मान के साथ एन्थ्रापालाजी (मानव-विज्ञान-शास्त्र) की डाक्टरेट पाई। आप कलकत्ता विश्वविद्यालय में एन्थ्रापालाजी के प्रोफ़ैसर भी रहे, किन्तु अपने स्वाधीन विचारों के कारण आपने स्तीफ़ा दे दिया। 'विश्ववाणी' पर डाक्टर साहब की विशेष कृपा है। पाठकों को डाक्टर साहब के लेख बराबर पढ़ने को मिलते रहेंगे।

अफ़ग़ानिस्तान या अफ़ग़ानों का मुल्क मध्य एशिया का ही हिस्सा है। यह अफ़ग़ानिस्तान नाम उस समय पड़ा जब अफ़ग़ान नाम के क़बीले के हाथों में मुल्क की बागडोर आई। इसके पहले इस मुल्क के कुछ हिस्सों पर हिन्दुस्तान के मुग़ल बादशाहों की हुकूमत थी। ये हिस्से हिन्दुस्तान के ही सूबे समझे जाते थे और सूबा-हेरात, सूबा-क़न्दहार आदि के नाम से मशहूर थे १।

अफ़ग़ानिस्तान न तो भौगोलिक दृष्टि से ही एक मुल्क है और न क़ौम के लिहाज़ से। विविध जातियों और विविध क़बीलों ने मिलकर उसे एक मुल्क बनाया है और इसलाम उन्हें एकता के धागे से बांधे हुये है। मुल्क पर दुर्रानी-अफ़ग़ान क़बीले की 'बरक़ज़ाई' शाखा हुकूमत करती है। अफ़ग़ानिस्तान की आबादी का बटवारा इस तरह हो सकता है—

(१) पश्तो बोलने वाले अफ़ग़ान या 'पठान',

(२) फ़ारसी बोलने वाले 'ताज़िक' या अन्य क़बीले जो फ़ारसी बोलते हैं। इनमें से एक क़बीला मंगोल जाति का 'हज़ारा' नामक क़बीला है,

(३) तुर्की ज़बान बोलने वाले 'उज़बक़' जो अफ़ग़ान - तुर्किस्तान में रहते हैं,

(४) एक तरह की आर्यभाषा बोलने वाले 'काफ़िर' या हिन्दुकुश के दूसरे क़बीले।

---

१ मुग़ल - उल्लेखों में ईरान के पूर्व का हिस्सा ख़ोरासान के नाम से मशहूर था। उस ज़माने में मध्य एशिया से लेकर उत्तर भारत तक का हिस्सा ख़ोरासान में शामिल था।

आजकल के बहुत से इतिहासज्ञों की यह राय है कि पारसियों के धर्मग्रन्थ 'अवस्ता' के रचेताओं को अफ़ग़ानिस्तान के पच्छिमी हिस्सों का ज्ञान था। वेदों में अफ़ग़ानिस्तान के पूर्वीय हिस्सों का वर्णन है। वेदों में काबुल नदी को 'कुभा'२ के नाम से पुकारा गया है। ऋग्वेद में इसका दो बार ज़िक्र आता है। इतिहास लेखक कीथ और मैकडोनेल्ड के अनुसार वेद की यह 'कुभा' नदी ही वर्त्तमान् काबुल नदी है। यूनानियों ने अपने ग्रन्थों में इसे 'कोफ़ेन' (Kophen) कहकर पुकारा है ३। कुछ विद्वानों के अनुसार काबुल की वादी ही ऋग्वेद का 'सप्त सिन्धु' देश है ४। इसके अतिरिक्त 'पख्ता' नामक एक क़बीले का भी वेदों में वर्णन है ५।

इसके बहुत बाद हेरोदत (Herodotus) ने ईरानी साम्राज्य के विस्तार और वहां के लोगों का वर्णन करते हुये लिखा है—

" सत्तगिदी (Sattagydae) ६ गान्दारी (Gandarian or Gandharies) ७

---

२ ऋग्वेद ५ - ५३, ९, १० - ७।

३Vedic Index of Names and Subjects, Vol. I, p 162.

४'सप्त-सिन्धु' का ऋग्वेद में केवल एक ही बार ज़िक्र आता है और वह भी एक विशेष देश के लिये। ऋग्वेद ८ - २४, २७। See also Vivien Saint - Martin.

५ऋग्वेद में ७ - १८, ७ में पख्तों का वर्णन है। ऋग्वेद के अनुसार पख़्तों ने दस-राज्ञों यानी 'दस राजाओं के युद्ध' में त्रिसु-भरतों का विरोध किया। ज़िमर अपने ग्रन्थ (Altindischess Leben, 430, 431) में इन पख्तों की तुलना पक्त्यू (Paktues) क़बीले से और उनके देश की पक्त्यूके (Paktuike) से करता है। हेरोदत ने पख्तों और उनके देश के लिये यही शब्द इस्तेमाल किये हैं। Herodotus (VII, 65 Paktues III 102 and IV, 44 (Paktiuke) ज़िमर के अनुसार पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान में जो वर्त्तमान 'पख़्तून' है यही पख्तो था। ज़िमर के अनुसार यही पख़्तून वैदिक 'भरत' क़बीले थे। यह सम्भव हो सकता है क्योंकि मध्य देश पर ही 'भरतों' की हुकूमत थी। ऋग्वेद के इन उद्धरणों (८-२२, १०, ४९, १० और १७, ६, ११) में पख्तों को 'आस्विनों' का सहायक कहा गया है। वेद के एक दूसरे उद्धरण में इन्हें 'त्रसदस्यु'का सहायक बताया गया है कि जिनके क़बीले 'पुरुओं' को पख्तों ने 'सुदास' के विरुद्ध लड़ाई में मदद दी थी। एक तीसरे उद्धरण में उन्हें 'तुर्वयन' का साथी और 'स्यावन' का विरोधी बताया गया है। इसलिये यह मालूम होता है कि ऋग्वेद में जहां तहां पख्तों का ज़िक्र आया है उससे अर्थ है उनके राजाओं का जिन्होंने कभी एक वैदिक जाति का साथ दिया और कभी दूसरी का। See Vedic Index, Vol. I, pp. 463-464.

६सत्तगिदियों का देश कन्दहार और सिन्धु नदी के बीच का देश था। See George Rawlinson 'A mannual of Ancient History', pt I, pp. 18-19. बेलेएड का कहना है कि मौजूदा पठान ही सत्तगिदी थे किन्तु वह प्रामाणिक दलीलें नहीं पेशकर सकता और इसीलिये उसका कहना अमान्य है।

७पुराने ज़माने में गान्दारियों का देश मौजूदा काबुल और काफ़िरिस्तान के हिस्से में था। वहां की मुख्य नदी 'कोफ़ेन' (काबुल) थी जो सिन्धु में मिलती थी। वहां का मुख्य शहर 'कस्पत्यरु' (Caspatyrus) काबुल था। संस्कृत ग्रन्थों में भी इन गान्दारियों के देश 'गान्धार' का काफ़ी ज़िक्र आता है। गान्धारी निश्चित रूप से भारतीय क़बीला था।

दादिकी८ (Dadicae) और अपरिती (Aparytae)९ मिलकर एक सौ टेलेण्ट खिराज देते थे। ये मिलकर ईरानी साम्राज्य का सातवां सूबा कहलाते थे।" यानी इन क़बीलों का सम्मिलित देश 'पक्तिका (Pactyika) का देश' कहलाता था और यही दारा हिस्तास्प की सातवीं क्षत्रपी थी १० हेरोदत यह भी कहता है कि पक्तिका की सीमा भारत से मिलती थी ११।

सम्राट दारा के ईरानी उल्लेखों में हमें नीचे लिखी जातियों का ज़िक्र मिलता है१२—

'हिन्दू' या सिन्धु की वादी के निवासी, 'हरख्वातिस' या आरचोसी १३ और,—

गदारा १४ (हेरोदत जिन्हें गान्दारी कहता है)।

इसके बाद सिकन्दर के हमलों का ज़माना आता है। सिकन्दर जब आरचोसिया से बाख्त्री की ओर बढ़ा, तो सिकन्दर को पहले हिन्दुस्तानी मिले, जिन्हें कुछ लोग परम्पामिसाद कहते थे १६।

इसके बाद सिकन्दर असली हिन्दुस्तानियों के मुक़ाबले के लिये बढ़ता है और जिन हिन्दुस्तानी जातियों से सिकन्दर का मुक़ाबला होता है, वे थीं—अस्पासि, हिप्पासि, गुरियान, और अस्साकनि १७। स्ट्रैबो लिखता है कि सिकन्दर की मृत्यु के बाद सेल्युकसने ३१० ई० पू० में साम्राज्य का पूर्वी हिस्सा भारतीय सम्राट चन्द्रगुप्त को दे दिया। इस सारे हिस्से पर शुद्ध भारतीय जातियां ही रहती थीं

---

८ दादिकी जाति के रहने के स्थान का ठीक पता नहीं चलता। कुछ लोगों का अनुमान है कि मौजूदा दर्दिस्तान के रहने वाले दर्द क़बीले के लोग ही प्राचीन दादिकी थे। किन्तु यह महज़ एक अनुमान है। इसके कोई प्रमाण नहीं पेश किये जाते।

९ हमारे अनुमान से प्राचीन अपरिती मौजूदा अफ़रीदी ही हैं, जो भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में अफ़रीदिस्तान में रहते हैं। ग्रीयरसन के अनुसार वे सोलहवीं सदी तक आर्य भाषा की 'खो' बोली बोलते थे। उसके बाद उन्होंने पश्तो का अपभ्रंश रूप बोलना शुरू कर दिया।

१० Herodotus III. 12.

११ इस सम्बन्ध में हेरोदत अपनी पुस्तक के भाग तीसरे, पृष्ठ १०२ में लिखता है—"—'कस्पत्यरु' (काबुल) के नगर की सीमा के पास अनेक भारतवासी रहते थे, जिनका रहन सहन बिलकुल बाख्त्रियों से मिलता जुलता था।" कुछ इतिहास कारों ने लिखा है कि पक्तिका का देश आर्मीनिया के पास था, किन्तु यह उनका भ्रम है। हेरोदत के ग्रन्थ में इसके अनेक प्रमाण हैं कि पक्तिका का देश काबुल नदी के पास का देश था और काबुल नदी सिन्धु नदी में मिलती थी। दारा के 'बेहिस्तून के शिला लेख' में पख़्तों के बारे में लिखा है कि ये लोग ईरानी नहीं थे और बकरी के चमड़े का कोट पहनते थे। यात्रियों का कहना है कि अफ़ग़ान पहाड़ी आज तक बकरी के चमड़े का कोट पहनते हैं।

१२ Lassen—"Indische Altertuwskunde" Bd 2, and Z. F. I K. D. M. Vol. VI, p. 62 and 92.

१३ आरचोसी अफ़ग़ानिस्तान के मौजूदा क़न्दहार सूबे का नाम है।

१४ गदारा संस्कृत ग्रन्थों का गान्धार है।

१५ Arrian—Anabasis III, 28.

१६ परम्पामिसाद (Parampamisad) मौजूदा हिन्दुकुश पर्वत श्रेणी का पुराना नाम था।

१७ Arrian—Anabasis III. 23, Indika 1-1-8, Strabo XV, 1.

विन्सेण्ट स्मिथ १८ के अनुसार मौजूदा अफ़ग़ानिस्तान, जिसमें गेदरोसिया (आजकल का दक्खिनी बलूचिस्तान) भी शामिल था, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का अङ्ग था।

अफ़ग़ानिस्तान के विविध क़बीले किस जाति और वर्ण के हैं और वे कहां से आ आकर वहां बसे, इस पर विद्वानों में ख़ासा मतभेद है। कुछ लोगों का विचार है १९ कि वैदिक 'पख़्त' और हेरोदत की बयान की हुई 'पक्ति' जाति का अवशेष अब भी सरहद में पख़्तूनों के रूप में है। इन्हीं पख़्तूनों को हिन्दुस्तानी पठान कहते हैं। पक्तियों के चार क़बीलों में से दो का ऐतिहासिक विवरण मिलता है।

गान्धारी २० क़बीले के बारे में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित गान्धार लोग हैं। नियामतुल्ला ने जिन अफ़ग़ान क़बीलों का ज़िक्र किया है, उनमें भी यह गान्दारी क़बीला है। बेलो और दूसरे लेखकों के मुताबिक़ 'अप्रिदी' या अप्रिती आजकल का 'अफ़रीदी' नामक अफ़ग़ान क़बीला है। ये अफ़रीदी अपने आप को 'अपरीदी' ही कहते हैं२१।

यूनानी और रोमन इतिहासकारों ने अफ़ग़ानिस्तान की जिन क़ौमों का ज़िक्र किया है, उन्हें खोज निकालने की बहुत सी कोशिश की गई। इस बात की भी कोशिश की गई कि हेरोदत ने अपने बयान में जिस 'अस्साकानिअन' (Assakanians) का ज़िक्र किया है, वह अस्साकानिअन ही मौजूदा 'अफ़ग़ान' हैं। किन्तु इस तरह की कोशिशें हमें अब तक किसी ख़ास नतीजे पर नहीं पहुँचा सकीं। इन्हीं कोशिशों से एक बात हमें यह मालूम हुई कि अफ़ग़ानिस्तान के पूर्वीय हिस्से से लेकर जहां अफ़ग़ानों का राज है, पेशावर की सीमा तक, जहां स्वतन्त्र क़बीले राज करते हैं, के हिस्से को 'याग़िस्तान' कहा जाता है। याग़िस्तान का अर्थ है 'स्वतन्त्र क़बीलों का देश'। इस याग़िस्तान के निवासी शुद्ध भारतीय थे। इसी तरह अफ़ग़ानिस्तान के पच्छिमी हिस्से में ईरानी भाषा बोलने वाले क़बीले रहते थे।

जब हिन्दुस्तान में मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ, तो २४५ ई० पू० में बाख़्त्री में यूनानियों ने अपनी हुकूमत क़ायम करली। १४० - १४२ ई० पू० में बाख़्त्री के ऊपर सकों और मध्य एशिया की यू-ए-ची जाति ने हमला किया। इसी समय के क़रीब आरचोसिया पर पार्थियों ने भी अपने असर को मज़बूत बना लिया २२। उनके एक राजा का नाम ग्रान्दोफ़ार्न (Grandopharns, A. D. 20-60) था।

---

१८ V. Smith—'Early History of India.'

१९ Bellow—"Races of Afghanistan," and "Imperial Gazetteer of India"

२० नियामतुल्ला ने अपने ग्रन्थ "History of the Afghan Tribes" में गोन्दारी नामक एक अफ़ग़ान क़बीले का ज़िक्र किया है। अब इस क़बीले का पता नहीं पाया जाता।

२१ Bellow—"Races of Afghanistan" and "Imperial Gazetteer of India." मैंने ख़ुद कई अफ़रीदियों से बातें कीं, वे भी अपने आपको 'अपरीदी' ही कहते हैं। अफ़रीदी लफ़्ज़ मालूम होता है अङ्गरेज़ों ने बिगाड़ कर बनाया है।

२२ पार्थी आरचोसियों को "गौर-भारतीय" कहते थे। देखिये Isidorcharae—Moans Parth also Rawlinson—"A mannual of Ancient Indian History," Book IV, Part I. p. 553.

लगभग १५ ईसवी में यू-ए-ची क़बीले की हुकूमत इस देश पर क़ायम हो गई और ७८ ईसवी में महा प्रतापी सम्राट कनिष्क ने अपना साम्राज्य स्थापित किया। इस समय इस अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान को रोमन लेखक हिन्द-सक (Indo-Scythia) के नाम से जानते थे। पांचवीं सदी में इस इलाक़े पर गौर-हूणों के हमले हुये और वे यहां के शासक बन गये२३।

इस तरह इस मुल्क पर कभी एक शक्ति ने हमला किया और उसके बाद कभी दूसरी ने। फिर मध्य एशिया की क़ौमों के तो लगातार हमले होते रहे। हमलावर क़ौमें यहां बस जाती थीं और धीरे धीरे भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपना लेती थीं २४। सर विलियम म्यूर लिखता है कि इस हिस्से में मूर्ति पूजा का जबरदस्त प्रचार था। सीजिस्तान में एक मन्दिर था, जिसकी मूर्ति सोने की थी और उस मूर्ति की आंखें लाल की थीं २५। अलबेरूनी लिखता है कि काबुल का "तुरकी-शाही" राजकुल बौद्ध था और काबुल में लल्लिया का "हिन्दू-शाही" राजकुल ब्राह्मण था २६। अनेक यात्रियों के बयान के अनुसार मुसलमानों के हमलों के समय तक अफ़ग़ानिस्तान में ज़रथुस्त्रियों के अनेक आतिशकदा थे।

इसके बाद इसलाम के हमले और फ़तहयाबी का ज़माना आता है। अरब इतिहासज्ञों ने इस मुल्क को "हिन्द और सिन्ध का देश" कहकर ज़िक्र किया है। यहां की आबादी में इस समय ब्राह्मण, बौद्ध और ज़रथुस्त्रियों की प्रधानता थी। अफ़ग़ानिस्तान पर सबसे पहला हमला अरबों का हमला खलीफ़ा मुआविया के समय में हुआ, जब बसरा के गवर्नर अब्द-अल-रहमान ने सिजिस्तान (प्राचीन सकस्तान और वर्तमान सीसतान) पर हमला करके काबुल और आरचोसिया तक के इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लिया २७। किन्तु ज्योंही अरबों की फ़ौज वापस हुई अफ़ग़ानियों ने आज़ादी का झण्डा ऊंचा कर दिया २८। उसके बाद अरबों के अनेक हमले हुए लेकिन मुस्तक़िल तौर पर वे अफ़ग़ानिस्तान को ग़ुलाम न बना सके।

अन्त में अरबों ने सीसतान पर पूरी तरह क़ब्ज़ा कर लिया। २९ और उसे अड्डा बनाकर वे क़ाबुल विजय की तय्यारी करने लगे। सन् ६९८ और सन् ८०० ईसवी में क्रमशः अली बक्र और अल हज्जाज के मातहत काबुल पर हमले हुये। किन्तु काबुल के भारतीय राजा रनबल ने इन अरबी

२३ Lessen—Ic. Bk. I, p 434.

२४ Aurel Stein—Zur Geschichte der sahis Von Cabool, Meyer Geschichte des Altertum.

Dr. Charpentiers' Criticism on Yue-chi as a Centum language.

२५ Sir William Muir—"The Caliphate Rise Decline and Fall".

२६ Al-beruni—"Prolegomena to India".

Aurel stein—"Zur Geschichte der Shahi Dynasty."

२७ G. Le strange—"The Lands of the Eastern Caliphate" chap. XXIV, p. 347.

मुक़द्दसी, इब्न रुस्तम, याक़ूबी और बलाज़ूरी आदि अरब इतिहासज्ञों ने अफ़ग़ानिस्तान को भारत की सीमा में ही माना है।

२८ William Muir, Ibid, p. 201.

२९ Encyclopaedia dis Islam, p. 171.

फ़ौजों को हटाकर भगा दिया। यही नतीजा उस फ़ौज का हुआ, जो हारूं रशीद के समय में काबुल फतह करने के लिये भेजी गई थी ३०।

८०० सदी ईसवी में सफ्फ़ारियों ने याक़ूब बिन लैस के मातहत पच्छिमी अफ़ग़ानिस्तान पर धावा किया। इसी समय लल्लिया नामक ब्राह्मण ने काबुल में हिन्दू-शाही सल्तनत क़ायम की ३१। यह हिन्दू सल्तनत अरबों के भारत आक्रमण के रास्ते में ज़बरदस्त रुकावट साबित हुई। अन्त में तुर्की विजेता महमूद ग़ज़नवी ने ग्यारहवीं सदी में काबुल पर क़ब्ज़ा कर लिया।

सन् ६६१ ईसवी में अल्प-तेगीन नामक तुर्क सरदार ने अफ़ग़ानिस्तान के एक सूबे ताबुतिस्तान पर हमला करके वहां एक मुसलिम सल्तनत क़ायम की। यह अफ़ग़ानिस्तान की पहली मुसलिम सल्तनत थी, जो ग़ैर मुसलिम अफ़ग़ानियों के ऊपर क़ायम हुई। अल्प-तेगीन के उत्तराधिकारी ने काबुल और पञ्जाब के हिन्दू राजाओं से कई बार मोरचा लिया। सन् १००० ईसवी में काबुल के हिन्दू राजा को हराकर तुर्कों ने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया। ३२ सुबुक-तेगीन के उत्तराधिकारी महमूद ने इस फतह को और आगे बढ़ाया।

ग्यारहवीं सदी ईसवी में महमूद के हिन्दुस्तान के हमलों के सिलसिले में पहली मरतबा 'अफ़ग़ानिस्तान' और 'अफ़ग़ानों', शब्दों का प्रयोग होता है। महमूद का सरकारी इतिहासज्ञ अलबेरूनी पहला आदमी था, जिसने पहले पहल अपने ग्रन्थ में इन शब्दों का प्रयोग किया ३३! अलबेरूनी ने लिखा है कि ये अफ़ग़ान भारत की पच्छिमी सीमा से लेकर सिन्धु की वादी तक फैले हुये हैं। ये लोग बड़ी तादाद में महमूद की सेना में भरती हुये और इन्होंने इसलाम मत कुबूल किया ३४।

इस तरह इतिहास में अफ़ग़ान उस समय तक एक नामालूम क़ौम रहे, जब तक कि वे तुर्कों की फौज में भरती होकर भारत पर हमला करने नहीं आये। सबसे पहले उनका चर्चा गज़नवी ज़माने में होता है। इसी समय हमें एक 'खल्द' (खिल्जी) नामक दूसरे क़बीले का नाम भी इतिहासज्ञ सुनाते हैं।

---

३० Noeldeka--Sketches from Eastern History, p. 182.

३१ Aurel Stein--On Shahi Dynastics in J. A. S B.

३२ V. A Smith—Early History of India, 3rd edition.

३३ Sachan—Translation of Alberuni's Prolegomena on India, P. I, p 208.

३४ (अ) इसके बहुत समय बाद इब्न बतूता अपने अफ़ग़ानिस्तान के सफ़रनामे में लिखता है —"अफ़ग़ान काबुल में रहने वाले एक ईरानी क़ौम के लोग हैं।" अफ़ग़ानों के इसलाम क़ुबूल करने के सिलसिले में इब्न बतूता लिखता है—"अफ़ग़ानिस्तान के पच्छिमी हिस्से ज़मीन्दावर में अब तक ज़्यादातर ग़ैर मुसलमान हैं, हालांकि उनके बीच में बहुत से मुसलमान भी रहते हैं।"

(ब) फ़रिश्ता एक दूसरे इतिहासज्ञ को उद्धृत करते हुये लिखता है कि जब शहाबुद्दीन मोहम्मद ग़ोरी और पृथ्वीराज चौहान से सन् ११९२ ईसवी में लड़ाई शुरू हुई, तो पृथ्वीराज की ओर से एक अफ़ग़ान घुड़सवारों की सेना ग़ोरी से लड़ी थी।

अफ़ग़ानिस्तान में इसलामी सल्तनत के आग़ाज़ में हमें दो बड़े क़बीलों का ज़िक्र ख़ास तौर पर सुनाई देता है। एक अफ़ग़ान और दूसदे ख़ल्द (ग़िलज़ाई) ३५। रेवर्टी के अनुसार पुराना ख़िल्जी क़बीला एक तुर्की क़बीला था, और ये ख़िल्जी ही आजकल के 'ग़िलज़ाई' हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि ग़िलज़ाई पश्तो ज़बान बोलते हैं ३६। जेम्स डारमेस्टर के अनुसार ख़िल्जी क़बीला (शुद्ध-खोलाज़) अफ़ग़ान नहीं बल्कि एक तुर्क क़बीला था। डारमेस्टर के अनुसार ये ही खोलाज़ आजकल के ग़िलज़ाई हैं। किन्तु डारमेस्टर इन ग़िलज़ाइयों को विदेशी तातारी जाति का बताता है ३७।

यदि वास्तव में प्राचीन तुर्की ज़ोलाक (Xolac) क़बीला, और मध्य युग का तुर्की ख़िल्जी क़बीला और उभरी हुई नाक वाले पश्तो भाषी ग़िलज़ाई तीनों एक ही क़बीले हैं तब इन ग़िलज़ाइयों में आश्चर्य जनक परिवर्तन हुआ है।

---

३५ Gottnigen--Phil. Hist Klasse.

Eran--Saharnact der Geographic d Ps. Moses Xorenali-Von-Dr. I. Marquart

Ibu-al-Adir VII.

See Otbi in Elliots History of India, Book II. p. 24.

३६ Raverty's "Notes on Afghanistan.

३७ James Darmester--Chants Populairs des Afghans (p cl. XVI, ch. XXII).

सम्पादकीय-विचार

सत्याग्रह की प्रगति

मुख्तलिफ़ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के बयानों, सरकारी ऐलानों और अख़बारों की रिपोर्टों से पता चलता है कि पिछले तीन महीने के अन्दर क़रीब तीन हज़ार सत्याग्रही जेल के भीतर पहुंचा दिये गए। जो कांग्रेस के कार्यकर्ता दूसरे इलज़ामों में पकड़े गए हैं, उनकी तादाद भी दो हज़ार से किसी तरह कम नहीं। बग़ैर गांधीजी की रज़ामन्दी के कोई व्यक्ति युद्ध-विरोधी नारे नहीं लगा सकता। सत्याग्रहियों की दूसरी सूची जिन्हें गांधीजी ने सत्याग्रह की इजाज़त दे दी है, क़रीब छै हजार व्यक्तियों की है। ये छै हजार सत्याग्रही अगली पांच अप्रैल तक युद्ध-विरोधी नारे लगाकर सत्याग्रह करेंगे। उसके बाद का कार्य-क्रम गांधीजी ने अभी तक मुल्क के सामने नहीं रखा।

गांधीजी के लिए यह सत्याग्रह भारतीय आत्मा की आत्म-शुद्धि और धर्म-युद्ध है। जब कि युद्ध और हिंसा दुनिया का एक महा स्मशान बनाए हुए हैं, उस समय सच्चे भारतीय सन्तों की तरह गांधीजी शान्ति और अहिंसा का सन्देश दे रहे हैं। इस अहिंसात्मक युद्ध के अन्दर अनुशासन, नियन्त्रण और क़ायदे-क़ानून का भी वे निर्माण कर रहे हैं। व्यवस्था की अहिंसात्मक सैनिकों को भी उतनी ही ज़रूरत होती है, जितनी हिंसात्मक सैनिकों को। व्यवस्थाहीन सत्याग्रह बग़ैर अपना उद्देश्य पूरा किये हुए असफल हो सकता है। गांधीजी व्यवस्था और अनुशासन को सख़्ती के साथ बरत रहे हैं। लिस्टों को बार बार दोहराते हैं और अख़बार हमें आए दिन रिपोर्ट देते हैं कि सत्याग्रहियों के नामों को आसानी से मंज़ूरी नहीं मिलती।

इस युद्ध में गांधीजी भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही नियम बरत रहे हैं। पिछले क्रिसमस और नये दिन पर उन्होंने सत्याग्रह मुल्तवी कर दिया था। सारे देश में किसी सत्याग्रही ने युद्ध-विरोधी नारे नहीं लगाए। सैनिक दृष्टि से वह क्षणिक-सन्धिकाल था। दोनों ही तरफ़ से युद्ध स्थगित रहना चाहिये था; किन्तु हमारी ईसाई अंग्रेज़ सरकार इस नैतिकता पर विश्वास नहीं रखती। ऐन सन्धिकाल के दिनों में सैकड़ों कांग्रेस कार्यकर्ता गिरफ़्तार किये गए। स्वयं राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद भी इसी सन्धिकाल में पकड़े गए।

युद्ध के इन तरीक़ों पर हमारे अंग्रेज़ दोस्तों को कभी विश्वास नहीं रहा। प्लासी के बाद सैकड़ों ही घटनाएं हमारे इस बयान की पुष्टि करती हैं। मेजर जनरल जिलेस्पी की सेना पहले गोरखा युद्ध में नाला-पानी के दुर्ग के पास प्रसिद्ध गोरखा वीर बलभद्र सिंह की सेना से मोर्चा ले रही थी। लड़ते लड़ते एक महीने से अधिक होगया था, किन्तु दुर्ग के केवल पांच सौ वीर झुक कर न दिये। अचानक एक दिन दुर्ग का फाटक खुला और सफ़ेद झंडा लिये हुए एक गोरखा सैनिक दुर्ग से बाहर निकला। अंग्रेज़ी बन्दूकें आशा और कौतूहल से रुक गईं। गोरखा सैनिक ने आकर अंग्रेज़ कमाण्डर से कहा, "मेरे दांत में बड़ा सख़्त दर्द है। मैंने सुना है आपके यहां दांतों का एक अच्छा डाक्टर है। क्या वह मेरा दांत उखाड़ देगा ?" दांत उखड़-वाने के बाद उसने अंग्रेज़ कमाण्डर को सलाम किया और दुर्ग की ओर रवाना होने लगा। कमाण्डर ने पूछा—"कहां जा रहे हो ?" उसने भोलेपन से जवाब दिया, "मेरे दांतों की पीड़ा दूर हो गई, अब मैं फिर दुर्ग में वापस जाकर तुमसे लड़ूंगा।" कमाण्डर अवाक्

हो गया। उसे क्या पता कि कुरुक्षेत्र के युद्ध-क्षेत्र से लेकर उस समय तक भारत में युद्ध का यही तरीक़ा था। कमाण्डर के हुक्म से वह गोरखा सिपाही गोलियों से उड़ा दिया गया। और यह युद्ध की नैतिकता केवल गोरखों तक ही सीमित न थी। सिन्ध की पहली लड़ाई में नसीर खां की बलूची सेना और जनरल ऊटरम की सेनाओं में युद्ध चल रहा था। कैम्प से चार मील दूर एक अंग्रेज़ ने एक बलूची को ललकारा। दोनों में लड़ाई हुई और अंग्रेज़ घायल होकर गिर पड़ा। बलूची सैनिक का दिल भर आया। वह अपने ज़ख्मी प्रतिद्वन्दी को कन्धे पर लाद कर चार मील दूर मियानी के पड़ाव पर छोड़ने गया। अंग्रेज़ अफ़सर ने बग़ैर कुछ पूछे उसे पांच रुपये इनाम में देने चाहे। उसने इनाम लेने से इन्कार किया और सारी कैफ़ियत बतायी। फ़ौरन उस बलूची को पास के पेड़ से फांसी पर लटका दिया गया।

इसीलिए जब हमने इस सन्धिकाल में राष्ट्रपति और दूसरे सत्याग्रहियों की गिरफ़ारी की ख़बर पढ़ी, तो हमें इतिहास के विद्यार्थी की हैसियत के इस पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

रचनात्मक कार्यक्रम पर ज़ोर

जांच-पड़ताल के बाद सत्याग्रहियों की सूची मंज़ूर की जाती है और जो सत्याग्रह में शरीक नहीं हो सकते, वे पूछते हैं कि उनका फ़र्ज़ क्या है? गांधी जी बार बार इस चीज़ पर ज़ोर दे रहे हैं कि जब तक रचनात्मक कार्यक्रम पर अमल न किया जायगा, तब तक महज़ सत्याग्रह हमें स्वराज्य के निकट न पहुंचा सकेगा। रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दू-मुस्लिम एकता, चर्खा, खादी, ग्रामोद्योग, हरिजन-उद्धार आदि बातें मुख्य हैं। दुनिया का प्रत्येक देश राजनैतिक कार्यक्रम से अधिक आज अपने देश के आर्थिक और सामाजिक संगठन पर ज़ोर दे रहा है। कितने ही देशों की सफल क्रान्ति महज़ इसी कमी से असफल होकर रह गई। पिछले तीन बरस के युद्ध के बाद आज चीन चर्खे और ग्रामोद्योग का महत्व समझ रहा है। स्वराज्य कोई जादू की छड़ी नहीं है कि जो हमारी सारी कमज़ोरियों को दूर कर देगी। यदि हम अपना आर्थिक संगठन ग्रामोद्योग की बुनियाद पर नहीं मज़बूत करते और अपने सामाजिक दोषों को नहीं दूर करते, तो मुमकिन है स्वराज्य हमारे लिए बजाय बरकत साबित होने के एक भयंकर गृह-युद्ध का पैग़ाम लेकर आए और हमारी आर्थिक कमज़ोरी हमें किसी दूसरे साम्राज्यवादी राष्ट्र के चंगुल में फंसा दे। कोरी ज़बानी सहानुभूति से आज़ादी को हम पास नहीं ला सकते। खादी पहनना और गांवों की बनी चीज़ें बरतना, यह कम से कम मदद है, जो हम देश की आज़ादी के संग्राम को दे सकते हैं।

पठान बहिनों से अनुरोध

उसमानज़ई में उस दिन पठान स्त्रियों की एक विराट सभा में बोलते हुए ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां ने कहा—"स्त्री और पुरुष मिलकर ही जीवन की गाड़ी को आगे खींच सकते हैं। जब से स्त्रियां बुरक़ों में बन्द होकर घरों में बैठ गईं और सभ्यता के आगे बढ़ाने की ज़िम्मेवारी केवल पुरुषों के कन्धों पर रह गई, तब से सभ्यता की प्रगति एकाङ्गी रह गई। पैग़म्बर के ज़माने में पर्दे का नाम निशान न था। स्त्रियां खुलेआम मुल्की और मज़हबी मामलों में हिस्सा लेती थीं। ज़माने के दौर ने उन्हें पंगु बनाकर पिंजड़े में बन्द कर दिया।" इसके बाद उन्होंने पठान स्त्रियों से अपील करते हुए कहा—

"जब तक पठान बहिनें अपना बुरका उतार कर मुल्क के राजनैतिक और सांस्कृतिक पुनरुत्थान में हिस्सा न लेंगी, तब तक पठान जाति आगे नहीं बढ़ सकती।"

हम ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां के इन विचारों का दिल से समर्थन करते हैं। पर्दा छोड़ कर जीवन की प्रगति में हिस्सा लेने की जितनी ज़रूरत पठान बहनों को है, उससे किसी तरह कम बिहारी या दूसरी बहनों को नहीं है।

हज़रत मोहम्मद के समय और उसके बाद ख़िलाफ़त के ज़माने में अरब स्त्रियां मुल्की मामलों में आज़ादी से हिस्सा लेती थीं। किन्तु जब से अरब क़ौम ईरानियों के संसर्ग में आई, तभी से उनमें पर्दे का रिवाज शुरू हुआ। ईरानियों की पर्दा-प्रथा हज़रत ईसा से कम से कम ८०० बरस पुरानी है। ईरानियों को पर्दे की प्रथा असुरिया वालों से विरसे में मिली थी। सच पूछा जाय, तो संसार में पर्दे की प्रथा का प्रारम्भ ही असुरिया से हुआ। हमारे देश में बहुत दिनों तक यह भ्रम रहा कि यहां पर्दे की प्रथा मुसलमानों के वक़्त से शुरू हुई; किन्तु ज्यों ज्यों ऐतिहासिक सत्य सामने आते जा रहे हैं, त्यों त्यों यह भ्रान्ति दूर हो रही है। जो भी हो, इस वक़्त ज़रूरत है कि खाली पठान बहनें ही नहीं, देश की सभी बहनें पर्दा छोड़कर ज़िन्दगी की कशमकश में पुरुषों का हाथ बटाएं, वरना अकेले पुरुषों के सहारे यह गाड़ी आगे बढ़ती नहीं दीखती।

मालूम होता है गांधीजी इस चीज़ को पिछले बीस बरस से ख़ूब समझ रहे हैं। भारत की अबला स्त्री में कितना बल है, यह पिछले सत्याग्रह संग्रामों ने ख़ूब बता दिया। खाली ड्राइङ्ग रूम में बैठने वाली अंग्रेज़ीदां महिला ही नहीं वरन् गलियों में रहने वाली भारतीय स्त्री भी कर्तव्य को निबाहना और ज़िम्मेवारी को संभालना ख़ूब जानती है। प्रश्न सिर्फ़ अवसर और सुविधा का है।

भाषा का प्रश्न

हम अलग 'बुनियादी हिन्दुस्तानी कानफ्रेंस' शीर्षक से एक लेख इसी अङ्क में छाप रहे हैं। इसके लेखक सैयद मुत्तलबी आज सत्याग्रह के परिणाम-स्वरूप पंजाब की एक जेल में बन्द हैं। सैयद साहब गांव के गीतों और गांव के साहित्य में बेहद दिलचस्पी रखते हैं। वे गांव की भाषा के सुन्दर कवि हैं। पिछले बीस बरस से वे कांग्रेस के आन्दोलन के सिलसिले में लगातार गांव वालों के संसर्ग में रहे हैं। करोड़ों ग्रामीण जनता राजनैतिक आन्दोलन से आज चैतन्य और जाग्रत हो गई है। वह आज ज्ञान की भूखी है और कुछ जानने की इच्छुक है। विद्वत्ता के नाम पर कुछ थोड़ी सी पूंजी उसके पास है; किन्तु हमारे साहित्यिक इन करोड़ों मनुष्यों की ज़रूरतों को पूरा करने के बजाय आज इस बात में उलझे हुए हैं कि भाषा में संस्कृत के शब्द ज़्यादा हों या अरबी-फ़ारसी के। देश के करोड़ों हिन्दू-मुसलमान दोनों में से कोई भाषा नहीं समझते और वे हैरत के साथ इन अखाड़ियों की कुश्ती देख रहे हैं।

लोगों की यह धारणा है कि देश की भाषा मानो साहित्यकों के प्रयत्न से बनती है! यदि हम ऋग्वेद के काल से अब तक की भाषाओं पर एक नज़र डालें, तो हमें पता चलेगा कि नदी की धारा की तरह भाषा स्थिर नहीं होती। वैदिक संस्कृत और महाकाव्य काल की संस्कृत में ज़मीन आसमान का अन्तर दिखाई देगा। महाकाव्य काल की संस्कृत और प्राकृत में अन्तर है। उस के बाद चन्द बरदाई की भाषा और फिर हम देखते हैं कि मागधी, ब्रजभाषा और खड़ी बोली का ज़माना आता है। पिछले पांच हज़ार बरस में भाषा ने कितनी ही धाराएं बदलीं; कितना आश्चर्यजनक समन्वय उसके अन्दर हुआ। ज़िन्दगी समन्वय के सहारे चलती है, विच्छेद से नहीं। आज हिन्दी और उर्दू के साहित्यिक अपनी अपनी भाषाओं को एक घेरे में बन्द करके रख देना चाहते हैं। कल तक जो भाषा एक साथ बढ़ी और फली फूली, उसको हमने दो टुकड़े करके उन्हें हिन्दी और उर्दू का रूप दिया। और आज कट्टर पन्थियों का दावा है कि हिन्दी और उर्दू दो भिन्न बोली हैं, न दोनों में कोई मेल है न दोनों में समता। कहा जाता है कि हिन्दी संस्कृत से निकली है और उर्दू फ़ारसी से; मानों संस्कृत और फ़ारसी में कोई सम्बन्ध ही नहीं! फ़ारसी ईरान की भाषा है। इस्लाम के प्रचार के पहले ईरान में ज़रथुस्त्री धर्म के मानने वाले अग्निपूजक पारसी रहते थे। ज़रथुस्त्रियों के धर्मग्रन्थ अवस्ता और ऋग्वेद में आश्चर्यजनक समानता है। अवस्ता की भाषा ज़ेन्द है और जिस तरह वैदिक संस्कृत से प्राकृत बनी उसी तरह

ज़ेन्द से फ़ारसी बनी। अवस्ता के यस्न, अवस्ता के अनेक गीत ज्यों के त्यों वैदिक ऋचाओं से मिलते हैं। ज़रथुस्त्री धर्म वास्तव में आर्य धर्म का ही एक रूप है। इतिहासज्ञों का अनुमान है कि लगभग छै हज़ार बरस हुए, ईरानी और वैदिक आर्य दोनों पश्चिमी अफ़गानिस्तान में बाख्त्री के आस पास साथ साथ रहते थे—दोनों का एक धर्म था, एक वर्ण था और एक सभ्यता थी। परिस्थितियों से मजबूर होकर इन आर्यों की एक शाख पूरब की ओर पंजाब की तरफ़ चली आई और दूसरी शाख पश्चिम की ओर गई। और उसने आर्याना नामक एक देश आबाद किया। यही आर्याना बाद में बिगड़ कर ईरान हो गया। ईरान के ही एक प्रान्त का नाम परसु था। चूंकि परसु के राजा चक्रवर्ती सम्राट हुए, इसी से ईरान का देश भी परसु और बाद में फ़ारस कहलाने लगा। इन फ़ारस वालों की ही भाषा का नाम फ़ारसी है। जिस तरह हिन्दी के पीछे हज़ारों वर्ष की पुरानी सभ्यता है, उसी तरह फ़ारसी के पीछे भी हज़ारों वर्ष की पुरानी वही आर्य सभ्यता है। अरबों ने जब ईरान को ग़ुलाम बनाया, तो कुछ दिनों तक उनकी कोशिश रही कि वे ईरान में अपनी अरबी ज़बान का प्रचार करें; किन्तु उनकी कोशिश कामयाब न हो सकी और विजेता अब्बासी अरब ख़लीफ़ाओं के दरबार में ग़ुलाम ईरानियों की भाषा फ़ारसी का प्रचार हो गया। उसके बाद ईरान पर तुर्कों और मंगोलों के हमले हुए, किन्तु इन दोनों ने भी ईरान आकर पराजित ईरानियों की भाषा फ़ारसी ही को अपनी मातृ भाषा बनाया। जब मंगोल यानी मुग़ल हिन्दुस्तान पर हकूमत करने लगे, तो वे फ़ारसी को भी अपने साथ लाए। हिन्दुस्तान में फ़ारसी और संस्कृत की अपभ्रंश भाषाओं का मिलन हुआ। कितनी मुबारक थी वह घड़ी, जब लगभग पांच हज़ार साल बाद बाख्त्री से जुदा होने पर, जहां इन दोनों भाषाओं को एक ही मां ने जन्म दिया था, वे भारत में आकर मिलीं। अकबर के दरबार में जब ये बिछुड़ी हुई बहिनें मिलीं, तो दो शरीर एक प्राण की तरह हो गईं। इनके इस नये रूप का ही नाम उर्दू, हिन्दी या हिन्दवी पड़ा। इस तरह ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी और उर्दू की जननी एक, उम्र एक, धातु एक, वाक्य-विन्यास एक और क्रिया एक है।

पर आज एक दूसरी ही हवा बहती दिखाई दे रही है। अंग्रेज़ कूटनीति हिन्दू-मुसलमानों को न सिर्फ़ राजनैतिक दृष्टि से ही जुदा करने में कामयाब हुई है, बल्कि अब वह हमारी सभ्यता और संस्कृति के भी टुकड़े टुकड़े कर रही है। हम अन्धे होकर उसके हाथों में खेल रहे हैं।

जो भाषा जनता की ज़रूरत को पूरा नहीं करती, उसे न ज़िन्दा रहने का हक़ है और न वह ज़िन्दा रह सकती है। भाषा की कसौटी हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन या अञ्जुमन तरक़्क़ी-उर्दू नहीं हो सकते। हिन्दुस्तान को किस भाषा की ज़रूरत है, इसका फैसला किसानों की चौपालें और मज़दूरों के ठट्ठ करेंगे। जिस भाषा पर उनका वरद हस्त होगा, वही जीयेगी और फले फूलेगी। जब तक इन ग़रीबों को अपनी ज़रूरत का ज्ञान नहीं, तभी तक हम यह निरर्थक वाद-विवाद चला सकते हैं।

रेडियो और हिन्दी

आजकल रेडियो और हिन्दी को लेकर समाचार पत्रों में गहरा आन्दोलन छिड़ा हुआ है। पिछले पांच बरस में रेडियो ने हिन्दुस्तान में काफ़ी तरक्क़ी की है और इधर जब से लड़ाई शुरू हुई, तब से बर्लिन और लन्दन के ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशनों के दांव-पेंच भी लोगों की दिलचस्पी के सामान हो गए हैं। भारत में भी जब से रेडियो का प्रचार हुआ है, जगह जगह ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन बन गए हैं और जिनकी तदाद क़रीब एक दर्जन है; तब से ग़रीब जनता के टैक्स के लाखों रुपये रेडियो के प्रोग्राम में ख़र्च होते हैं।

पाश्चात्य सभ्यता के दौर में रेडियो की एक महत्त्वपूर्ण जगह है। रूस में रेडियो हज़ारों गांवों में स्कूल-शिक्षक का काम करता है, सरकार और जनता के सम्बन्ध को अधिक घनिष्ट बनाता है, उनके सुख-दुख की हमदर्दी से चर्चा करता है, बच्चों को लोरियाँ

सुनाता है और मज़दूरों को प्रभाती गाकर जगाता है। रूस में रेडियो देश के सांस्कृतिक जीवन का एक अङ्ग है।

साम्राज्यवादी राष्ट्रों में रेडियो अपने मालिकों के वफ़ादार गुलाम की तरह उनके तराने गाता है, उनकी ख़ुदग़रजी को परोपकार कहकर बयान करता है, उनकी रहमदिली के फ़साने सुनाता है और उनके शोषण को नियामत कहकर पेश करता है।

ग़ुलाम मुल्क में रेडियो की क्या चर्चा? अभी दो बरस भी नहीं हुए, जब कि युक्त प्रान्त में रूरल डिवलपमेण्ट एसोसियेशन की तरफ़ से कुछ लोगों को ब्राडकास्ट करने का निमन्त्रण दिया गया। इनके भाषण जब डाइरेक्टर के सामने पेश किये गए, तो उसने इनकी प्रतिलिपियों में से कांग्रेस और गांधीजी का नाम काट दिया। यह है उस ज़माने की बात, जब सात सूबों में कांग्रेस की वज़ारतें थीं।

हिन्दुस्तान एक ग़ुलाम मुल्क है। अंग्रेज़ कभी इस बात को गवारा न करेंगे कि हमारी ग़ुलामी के बन्धन जल्दी ढीले हों। यदि हम प्रचार करके जनता में जाग्रति पैदा करना चाहें, तो उसके साधन वही पुराने हैं। प्रचार के लिए रेडियो का 'माडर्न' साधन हमारे लिए नहीं है। यदि आप ब्राडकास्टिंग का पाक्षिक-पत्र लेकर बैठ जाएं और उसके प्रोग्राम पर एक सरसरी निगाह डालें, तो आपको पता चलेगा कि रेडियो के साठ फ़ी सदी प्रोग्राम सरकारी ऐलानों, सरकार की तारीफ़ों, सरकारी अफ़सरों के व्याख्यानों, बड़े लाट और छोटे लाटों की हलचलों आदि इसी तरह की चीज़ों से घिरा रहता है। बाक़ी पच्चीस फ़ी सदी प्रोग्राम पक्के गानों, रिकार्डों और घटिया क़िस्म के संगीतों से भरा रहता है और पन्द्रह फ़ी सदी ख़बरों, लिबरल महानुभावों के व्याख्यान और बाज़ार भाव की रिपोर्टों में ख़त्म हो जाता है। ग़रज़ यह कि हिन्दुस्तान में रेडियो हमारे साम्राज्यवादी शासकों का गुणगान करने के लिए है।

जब हम रेडियो और हिन्दी के आन्दोलन को देखते हैं, तो हमें हैरत होती है और हमारा दिल लज्जा और ग्लानि से भर जाता है। आज कांग्रेसी और ग़ैर कांग्रेसी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में एक भी ऐसा नहीं है, जो इस बात का आन्दोलन लेकर आगे बढ़ता कि रेडियो से साम्राज्यवादी यशगान बन्द होकर राष्ट्रीय विचारों के प्रचार का अधिकार मिले। 'अंगिया के बन्द टूटे' या इसी तरह के भद्दे और कलाहीन गीतों की जगह ऊंचे भारतीय संगीत को स्थान मिले, सांस्कृतिक एकता के प्रचार का अवसर मिले, शिक्षा, सफ़ाई, ग्रामोद्योग और दूसरी बातों के प्रोग्राम रहें। मगर वह सब कुछ नहीं। रेडियो के प्रोग्राम पर कोई बहस नहीं, बहस खाली इस बात पर है कि अंग्रेज़ महाप्रभु की प्रसंशा के गीत हम उर्दू में गाएं या हिन्दी में !!

हम दो शब्द अंग्रेज़ नीतिज्ञों की प्रसंशा में भी कहे बग़ैर नहीं रहेंगे। अब तक हिन्दू-मुस्लिम मतभेद की जड़ असेम्बलियां, अदालतों, सरकारी नौकरियों ही तक सीमित थी, अब हमारी इस आपसी कुश्ती के लिए सरकार ने यह रेडियो का अखाड़ा भी खोल दिया।

भाड़े के सैनिक

गांधीजी के इस बयान पर कि पञ्जाब के अधिकांश सैनिक राजभक्ति से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि पेट के लिए सरकारी फ़ौज में भरती होते हैं,—सर सिकन्दर हयात ख़ां बेहद ख़फ़ा हुए और उन्होंने ऐलान किया कि पञ्जाबी सैनिकों की यदि इस तरह तौहीन की जायगी, तो जब भारत आज़ाद होगा, तो वह हिन्दुस्तान की सरहद की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेवारी से इनकार कर देगा। सर सिकन्दर ने यह भी कहा कि उन्हें ऐसे ऐसे दस हज़ार गांधियों की परवाह नहीं है।

इस सिलसिले में सहयोगी 'ट्रिब्यून' में प्रोफ़ेसर गुलशनराय ने पञ्जाब सरकार द्वारा प्रकाशित "दि पञ्जाब एण्ड दि वार" नामक पुस्तक के नीचे लिखे वाक्य उद्धृत किये हैं—

"पञ्जाब के जिन ज़िलों में नहरों से आबपाशी नहीं होती, वहीं से हमें ज़्यादा रंगरूट मिलते हैं। जिन ज़िलों में नहरों से सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध है, वहां से बहुत कम रंगरूट फ़ौज में भरती होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि जिन ज़िलों के किसान ख़ुशहाल और खाते-पीते हैं, वहां से बहुत थोड़े रंगरूट फ़ौज में भरती होते हैं।

सर सिकन्दर के भारतीय सरहदों की रक्षा करने से इनकार करने के प्रश्न को लेकर प्रोफ़ेसर गुलशनराय लिखते हैं—

"पिछले ज़माने में पञ्जाब विदेशी आक्रमकों से कभी भी भारत की रक्षा नहीं कर सका। वह स्वयं अपनी आज़ादी की हिफ़ाज़त भी नहीं कर सका। पिछले ढाई हज़ार बरस में ईरानी, यूनानी, सक, यू-ए-ची, पार्थिव, हूण, तुर्क, अरब और मुग़ल—सभी उसे पैरों से रौंदते रहे। दक्षिण और पूरब के भारत-निवासियों ने ही समय समय पर इन विदेशी आक्रमकों से पञ्जाब का उद्धार किया। मौर्यों ने यूनानियों को भगाया, भारशैवों ने कुशानों को हटाया और मराठों ने अब्दालियों को रोका। पञ्जाब ने कभी लड़ाई में अपने हाथ नहीं दिखाए।"

मालूम होता है प्रोफ़ेसर गुलशनराय ने सन् सत्तावन के स्वाधीनता-संग्राम का अध्ययन नहीं किया; अन्यथा वे सर सिकन्दर के वीर सैनिकों की ज़रूर दाद देते। जिस युक्त-प्रान्त, दिल्ली और मध्य-भारत ने अपनी ग़ुलामी के बन्धन तोड़ दिये थे, उन्हें ग़ुलामी के बन्धनों में फिर से जकड़ कर अंग्रेज़ प्रभुओं के क़दमों पर डालने का श्रेय सर सिकन्दर और मास्टर तारासिंह के वीर पञ्जाबी सैनिकों को ही है। यहां यह ज़िक्र कर देना अनुचित न होगा कि सर सिकन्दर के प्रपितामह सन् ५७ में अंग्रेज़ कमाण्डर-इन-चीफ़ के 'परसनल अर्दली' थे और लार्ड राबर्टस ने अपने इस 'अर्दली हयात' की सरकारी उल्लेखों में काफ़ी प्रशंसा की है।

सरहदी क़बीलों से रक्षा का प्रश्न

पिछले कई बरस से समाचार पत्र हमें सरहदी क़बीलों के धावों, लूट-खसोट और मर्द-औरतों के उठा ले जाने के क़िस्से सुनाते रहते हैं। जिन लोगों को ये क़बीले वाले उठा ले जाते हैं, उनमें अधिकांश धनी हिन्दू और मुसलमान होते हैं। अंगरेज़ सरकार हमारी रक्षा का दम भरती है; यही नहीं वह पिछले कई बरस से हिफ़ाज़त के नाम में वहां के फ़ौजी इन्तज़ाम पर एक लाख रुपया रोज के हिसाब से ख़र्च करती है। लेकिन ज़ुल्म और ज़्यादती के ये क़िस्से ज्यों के त्यों बने हुए हैं। बीच में गांधी जी, ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खां और डाक्टर ख़ान साहब ने सरकार से इस बात की इजाज़त मांगी कि उन्हें शान्ति का पैग़ाम लेकर इन क़बीले वालों से मिलने का मौक़ा दिया जाय; किन्तु सरकार ने इन लोगों को इजाज़त न दी। पिछले दिनों स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी की पौत्री कुमारी ख़ुर्शीद बेन नौरोजी ने बन्नू के डिप्टी कमिश्नर को लिखा कि वे आज़ाद इलाक़े में जाकर वहां के क़बीले वालों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करेंगी कि वे उड़ाई हुई बहनों को वापस करदें। किन्तु सरकार ने न सिर्फ़ उनकी बात नहीं मानी, बल्कि उन्हें सज़ा देकर जेल में बन्द कर दिया।

सम्राट अकबर से लेकर महाराजा रणजीतसिंह तक हिन्दुस्तान के इतिहास में हमें कभी इन क़बीलों की तरफ़ से लूट-मार और धावे के क़िस्से सुनने को नहीं मिले। मोग़ल शासन के दिनों में भारत का सारा व्यापार ख़ैबर के दर्रे से होता था और यह एक आश्चर्य की बात है कि इन व्यापारी कारवाओं की हिफ़ाज़त की कुल ज़िम्मेवारी अफ़रीदी, मोहमन्द और वज़ूरी क़बीलों पर थी। इसके एवज़ में उन्हें दिल्ली के ख़ज़ाने से पन्द्रह हज़ार रुपया सालाना मिलता था। यदि रास्ते में किसी व्यापारी की चोरी हो जाती थी, तो उसका कुल हर्जाना ये अफ़रीदी अपने पास से भरते थे। इतिहास का विद्यार्थी हैरत से यह पूछता है कि आख़िर इतने शान्ति-प्रिय इन सरहदी क़बीलों में पिछले सौ वर्ष के अन्दर ही यह लूट-मार की, और ख़ूंख़ार प्रवृत्ति क्यों पैदा हो गई? इस सवाल का जवाब हमें राजनैतिक किताबों में ढूंढ़ना होगा।

इस सदी के शुरू से, जब से हिन्दुस्तान पर रूस के हमलों का भय बढ़ा, तब से अंगरेज़ों ने ख़ैबर के दर्रे के आसपास की तमाम मार्के की जगहों पर क़ब्ज़ा करने का इरादा किया। सरहद एक पहाड़ी इलाक़ा है; वहां के पहाड़ बंजर हैं। बीच बीच में जो वादियां थीं, उन्हीं में खेती करके सरहदी क़बीले अपनी गुज़र करते थे। सन् १८९४ में जब से डुराण्ड लाइन बनी और उसके बाद सण्डेमान लाइन बनी, तभी से ये झगड़े शुरू हुए। इन दोनों लाइनों के बीच की अच्छी अच्छी ज़मीनों और पानी के चश्मों पर सरकार का क़ब्ज़ा हो गया। सरहदी क़बीलों को जीविका निर्वाह से वंचित होकर लूटमार और उत्पात के लिए विवश होना पड़ा। ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां के इस वक्तव्य में बहुत ज़ोर है, जो उन्होंने सरहद के गवर्नर को लिखा था—"इन धावों की असली वजह न राजनैतिक है और न धार्मिक, बल्कि आर्थिक है। जो लाखों रुपये आप इन्हें दबाने के लिए गोला बारूद पर ख़र्च करते हैं, उसका एक चौथाई इन क़बीलों के अन्दर उद्योग - धन्धों के प्रचार करने के लिए मुझे दे दीजिये और ये सारे धावे अपने आप बन्द हो जाएंगे।" सरहदी क़बीलों के नेता इपी के फ़क़ीर ने भी सन् १९३७ में पंडित जवाहरलाल जी के नाम यह सन्देश भेजा था कि आप हमें हत्यारा और डाकू न समझें; हम भी अंगरेज़ क़ौम से अपनी आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं। लेकिन अंगरेज़ सरकार के पास सरहद की समस्या को सुलझाने का कोई मानवीय इलाज नहीं है।

तिब्बत में ब्रिटिश कूटनीति

बम्बई की भेजी हुई एक खबर अमेरिकन अख़बारों में छपी है—

"तिब्बत में ब्रिटिश कूटनीति बहुत ज़ोर शोर से काम करती हुई दिखाई दे रही है। अंग्रेज़ों को यह डर है कि कहीं रूस सिंकियाङ्ग पर क़ब्ज़ा न करले। यदि तिब्बत में अंग्रेज़ी असर क़ायम हो जाय, तो रूस फिर हिन्दुस्तान पर भी आसानी से हमला न कर सकेगा। हालांकि रूसी सरकार ने इस बात से इनकार किया है कि उसने कोई फ़ौज सिंकियाङ्ग के पास इकट्ठा की है; फिर भी अंग्रेज़ों की आशंका दूर नहीं हुई है।"

तिब्बत चीनी साम्राज्य का अंग है। चीनियों ने हमेशा इस बात का विरोध किया है कि तिब्बत में अंग्रेज़ों का असर बढ़े। जब १९३३ में अंग्रेज़ों के पक्षपाती दलाईलामा का इन्तक़ाल हुआ, तब से अंग्रेज़ों और चीनियों में तिब्बत को लेकर मतभेद जारी है। उसके बाद से कई अंग्रेज़ दूत ल्हासा पहुँचे, किन्तु वे मामले को सुलझाने में असफल रहे। इस समय तिब्बत का प्रमुख व्यक्ति बहरोङ्ग चापी है। चौदह वर्ष की उम्र में वह एक क़त्ल के इलज़ाम में तिब्बत से भाग गया था, बाद में वह तिब्बत लौट कर फ़ौज में भर्ती हो गया और अब वह वहां का प्रधान सेनापति है। बहरोङ्ग चापी के पास इस समय साढ़े आठ लाख फ़ौज है। यह सारी फ़ौज ब्रिटिश बन्दूक़ों से सुसज्जित है। अभी हाल ही में तिब्बत की सरकार ने और बहुत सा लड़ाई का सामान अंग्रेज़ों से ख़रीदा है।

आगे होने वाली घटनाएं ही बहरोङ्ग चापी की नीति को साफ़ कर सकेंगी।

ब्रिटेन अपना लड़ाई का उद्देश्य बताये

बिल्टन (अमरीका) के 'नोफ़्रंटियर न्यूज़ सरविस' में यह ख़बर छपी है—"लन्दन—इङ्गलिस्तान की बाम पक्षी लेबर पार्टी का अख़बार 'ट्रिब्यून' पूछता है कि 'ब्रिटेन अपना लड़ाई का उद्देश्य क्यों नहीं बताता?' सिर्फ़ बाम पक्षी लेबर पार्टी ही, नहीं बल्कि ग़ैर सरकारी मज़दूर दल और बहुत से लिबरल भी यही सवाल करते हैं। चर्चिल के उद्देश्य बताने से इन्कार करने पर भी वे बराबर इस बात का आन्दोलन कर रहे हैं।

"लड़ाई के शुरू के महीनों में इस चीज़ पर लोगों ने बहुत कुछ सोचा और लिखा; मगर सरकार ने जुम्बिश न खाई। जैसे जैसे लड़ाई बढ़ी, क़रीब क़रीब हर अख़बार में सरकार की इस चुप्पी की चर्चा होती रही। फ़रवरी १९४० तक इंगलिस्तान के

सरकारी बयानों में यह कहा जाता था कि जर्मन जाति से हमारी दुश्मनी नहीं, किन्तु फ़रवरी के बाद से पूरी जर्मन जाति को सरकारी दुश्मन कह कर बयान किया जाने लगा। बाद में इंगलिस्तान की सरकार ने युद्ध के उद्देश्य के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत अपना मुंह खोला, मगर इस सिलसिले में उसके बयान केवल रूज़वेल्ट के ही ऐलानों का समर्थन थे। रूज़वेल्ट ने न्यायोचित समझौते की जो बुनियादी बातें पेश कीं, अंग्रेज़ सरकार के बयान उन्हीं के समर्थन थे। इतिहास इस तरह फिर एक बार दोहराया गया। पिछले जर्मन युद्ध में राष्ट्रपति विलसन ने ही अंग्रेज़ों को पहली बार यह बताया था कि वे जर्मनी से क्यों लड़ रहे हैं !

"सरकारी नीति के बावजूद भी बहुत से स्वाधीन मज़दूर दल इस बात पर ग़ौर कर रहे हैं कि यह लड़ाई क्यों हो रही है ? वे चर्चिल की सरकार की चुप्पी की कड़ी से कड़ी आलोचना कर रहे हैं। इंगलिस्तान की अधिकांश जनता आज इस बात पर गम्भीरता से विचार कर रही है कि लड़ाई के बाद समाज की बुनियादें बदलना लाज़मी है।"

इस पर टिप्पणी करते हुए उपरोक्त अमरीकन पत्र लिखता है—"किन्तु हम अमरीका वालों को इंगलिस्तान की जनता की इस भावना का कोई पता नहीं। इंगलिस्तान से, जो ज़्यादातर ख़बरें अमरीका आती हैं, वे सरकारी ऐलानों से ही भरी रहती हैं।" आगे चलकर यह पत्र इंगलिस्तान के मज़दूर दल के मुख-पत्र 'लेबर्स नारदर्न वायस' से उद्धृत करता है—

"हम चर्चिल और उन लोगों से असहमत हैं, जो कहते हैं कि हम लड़ाई के उद्देश्य पर युद्ध जीत लेने के बाद ग़ौर करेंगे। सन् १९१४–१८ की लड़ाई में भी अंग्रेज़ सरकार ने जनता को यही सब्ज़ बाग़ दिखाए थे। इंगलिस्तान की जनता ने सरकार का यह ऐलान चुपचाप मान लिया था। मगर उसका नतीजा क्या हुआ ? न जनतन्त्र का सिद्धान्त ही फैला और न लड़ाई का ही ख़ात्मा हुआ। पिछली लड़ाई के परिणाम में एक ओर जनता ग़रीब और मोहताज होती गई, बेकारी बढ़ती गई, ग़रीबों में सरकारी भीख यानी 'डोल' का रिवाज पड़ा और दूसरी ओर कुछ लोग लखपती से करोड़पति बने और अरबपति से खरबपति। और नाज़ीवाद का जन्म हुआ।

"आज ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग के रेडियो से बोलने वाले और गृह-मन्त्री डफ़कूपर के प्रचारक और पूंजीवादियों के अख़बार जनता में फिर से यह भ्रम फैला रहे हैं कि यह लड़ाई जनतन्त्र की रक्षा के लिए है। किन्तु अंग्रेज़ जनता का यह कर्तव्य है कि इन हवाई बातों को वह ठोस लफ़्ज़ों में लिखवाय, जिसे साधारण अंग्रेज़ मर्द और औरतें समझ सकें। जनता को यह जानने का हक़ है, क्योंकि वही यह लड़ाई लड़ रही है। इस युद्ध, की जीत जनता की जीत होनी चाहिये।

"यदि जनता ने इस बात पर ज़ोर न दिया कि भविष्य में समाज का निर्माण आर्थिक और राजनैतिक न्याय की बुनियादों पर क़ायम होगा, तो १९१८ की तरह १९४२ की भी यह जीत बेकार साबित होगी। जनतन्त्र और आज़ादी का नाम लेना उस वक़्त तक दग़ा और फ़रेब है, जिस समय तक हम हिन्दुस्तान और दूसरे काले मुल्कों के अधिकार हड़पे हुए हैं।

"हिटलर और नाज़ी पार्टी से सब भले आदमियों को नफ़रत है; किन्तु जिस समय वे हमारी बेकारी की समस्या और जनतन्त्र के ढोंग की ओर इशारा करते है, तब लज्जा से हमारा सिर नीचा हो जाता है। जिस मुल्क में अमीर ऐश में लोटते हों और ग़रीब भूखे मरते हों, वहीं फ़ासीज़्म पैदा होता है। अगर यही कैफ़ियत रही, तो इंगलैण्ड भी एक दिन फ़ासिस्ट देश बन जायगा। इंगलिस्तान की जनता आज़ादी के लिए लड़ रही है, मगर इस आज़ादी का मक़सद हर्गिज़ यह नहीं है कि करोड़ों आदमियों के लिए वही बेकारी और डोल और बुढ़ापे की थोड़ी सी ज़लील पेंशन का इन्तज़ाम हो।"

इंगलिस्तान के सत्याग्रही

पिछले दिनों जब गांधीजी और लार्ड लिन्-लिथ्-गो में सुलह की बातचीत हो रही थी, उस समय सरकारी वक्तव्य में यह कहा गया था कि जितनी स्वाधीनता इङ्गलिस्तान में युद्ध-विरोधी 'कन्शेन्सस ऑब्जेक्टर्स' को है, उतनी स्वाधीनता हिन्दुस्तान में भी अहिंसा के हामियों को दी जा सकती है। हम लार्ड लिन्-लिथ्-गो के मुलाहिजे के लिए अमरीकन अख़बारों में छपी हुई एक ख़बर उद्धृत कर रहे हैं—

'लन्दन—डिंगिलवेल के कन्सट्रेशन कैम्प में ब्रिटिश कन्शेन्सस ऑब्जेक्टर्स के साथ जैसा सलूक किया जा रहा है, उसको देखकर उदार हृदय अंग्रेज़ों के दिल में बहुत क्षोभ पैदा हो गया है। इन सत्याग्रहियों के साथ उतनी ही पाशविक क्रूरता का बर्ताव किया जा रहा है, जितना नाज़ी अपने क़ैदियों के साथ करते हैं।

"पिछली लड़ाई में जो अंग्रेज़ अहिंसा के सिद्धान्त के कारण लड़ाई में शामिल नहीं हुए थे, उनके साथ इन्सानियत का बर्ताव किया जाता था, मगर इस बार वे सारी बातें बदल गई। लिवरपूल के पास डिंगलवेल के कैम्प से यह समाचार आया है—(एक अंग्रेज़ सत्याग्रही लिखते हैं)—

'मुझे केवल सूखी रोटी और पानी पर रक्खा गया। इसके बाद मुझे कालकोठरी में बन्द कर दिया गया। जितने सत्याग्रही यहां आते हैं, उन्हें निर्दयता से पीटा जाता है। रात को उन्हें सोने नहीं दिया जाता। हर घंटे उन्हें जगाकर उन्हें नंगे पैर चलाया जाता है और बेंतें लगाई जाती हैं। मेरी कोठरी बहुत छोटी है। न उसमें सफ़ाई होती है, न रोशनी और न वहां हवा का इन्तज़ाम है। यह बर्ताव फ़ौजी क़ानून के ख़िलाफ़ है। मगर हमारा मुक़दमा नहीं होता। इसी कैम्प में मेरा एक साथी और आया है, जो कहता है कि एक दूसरे कैम्प में इस तरह के चार सौ सत्याग्रही हैं। वहां भी इसी तरह मार-पीट जारी है। उसके सामने एक अंग्रेज़ सत्याग्रही को मार-मार कर अधमरा कर दिया गया और तब तक उसे मारते रहे, जब तक उसने अपनी अहिंसा से तोबा न किया।

"उस समय तक सत्याग्रहियों को मारा जाता है, जब तक कि वे युद्ध का काम करने के लिए हामी न भरें। ज़ख्मी होने पर उन्हें अस्पताल भेज दिया जाता है। ज़ख्म भर जाने के बाद वे फिर कैम्प में भेज दिये जाते हैं और मार पीट का वही सिलसिला फिर से शुरू हो जाता है। मुझे सन्तोष इतना ही है कि मैं युद्ध के हिंसा काण्ड में शरीक नहीं हूं। मुझे यह विश्वास नहीं था कि इङ्गलिस्तान जैसा सभ्य देश अपने ही देश के इन अहिंसात्मक मनुष्यों के साथ इस तरह का ज़ुल्म करेगा।' "

हमें इस पर अधिक कुछ नहीं कहना है।

मौजूदा युद्ध और तुर्की

जब से मौजूदा लड़ाई शुरू हुई है, तब से जर्मनी, इङ्गलैण्ड और रूस की ओर से बराबर इस बात की कोशिश की जा रही है कि इन तीनों में से तुर्की किसी एक का आश्रित होना स्वीकार करले। कई महीने तक जर्मन और अङ्गरेज़ दूत अङ्कारा में राजनैतिक दांव-पेच खेलते रहे; लेकिन तुर्की ने जुंबिश न खाई और उसकी ओर से बराबर निष्पक्षता के ऐलान निकलते रहे। हां तुर्की की ओर से बराबर इस बात पर ज़ोर दिया गया कि तुर्की अपने पड़ोसी मित्र रूस से हमेशा हमेशा दोस्ती बनाये रखेगा और बाक़ी किसी से वह झगड़ा मोल न लेगा। चुनांचे फ़्रान्स के पतन के बाद जब अङ्गरेज़ों ने तुर्की से यह दरख्वास्त की कि वह उन्हें सीरिया पर क़ब्ज़ा जमा लेने दे, तो तुर्की ने इस बात की इजाज़त देने से इनकार कर दिया। दर्रे दानियाल के संरक्षक की हैसियत से तुर्की के पास भूमध्य सागर के पूरबी तट की कुंजी है। इसीलिये तुर्की की आज बेहद ख़ुशामदें हो रही हैं।

जब तक मुस्तफ़ा कमाल पाशा ज़िन्दा रहे, उन्हें तुर्कों के ऊपर अङ्गरेज़ों के ज़ुल्म बराबर याद रहे। वारसाई के अहदनामे के बाद अङ्गरेज़ों ने हर तरह तुर्की को ज़लील करने की कोशिश की। समरना का

शहर यूनानियों और इतालियों के हवाले कर दिया। कमाल पाशा ने स्वाधीनता की लड़ाई का ऐलान किया। रूसियों ने इस आज़ादी की लड़ाई में खुलकर मुस्तफ़ा कमाल की मदद की, जिसकी बदौलत उन्हें यूनानियों के मुक़ाबले में कामयाबी हुई और अन्त में लोज़ान कान्फ्रेंस में तुर्कों ने वारसाई के सुलहनामे को फाड़ कर फेंक दिया। रूस ने कोहकाफ़ के बाज़ इलाक़े तुर्की को लौटा दिये। उस समय से तुर्क रूस के अहसान को कभी नहीं भूले और आज भी तुर्की सरकार बराबर इस बात का ऐलान कर रही है कि वह चाहे जो कुछ करे, रूस के विरुद्ध कोई क़दम न उठायेगी।

अङ्गरेज़ और जर्मन सरकारों का और चाहे जिस बात में मतभेद हो, किन्तु दोनों में से कोई यूरोप के बाहर की क़ौमों के साथ बराबरी का बर्ताव करने के लिये तय्यार नहीं। तुर्की को इसका ज़ाती तजरुबा भी है। फिर तुर्की की आर्थिक स्थिति और फ़ौजी तय्यारी भी ऐसी नहीं है कि वह किसी से लड़ाई मोल ले। तुर्की में कुल १६३ इनफ़ैण्ट्री बटैलियन, ४२ फ़ील्ड बटैलियन, ४४ माउण्टेन बटैलियन, ४८ घुड़सवार स्क्वैड्रन, १३ मशीनगन माउण्टेड कम्पनी, २९ पायोनियर कम्पनी, ८ ट्रान्सपोर्ट कम्पनी और ८ फ़ील्ड अस्पताल हैं। यह सारी फ़ौज कुल २३ डिवीज़नों में बंटी है। तुर्की में फ़ौजी सामान की भी बेहद कमी है। लगभग दो हज़ार आटोमेटिक राइफल हैं, लगभग एक हज़ार मशीनगन हैं और साढ़े छै सौ के क़रीब तोपें हैं। किन्तु गोला-बारूद की तादाद ज़्यादा नहीं है। हवाई जहाज़ के १५ स्क्वैड्रन हैं और कुल हवाई जहाज़ की तादाद तीन सौ से ज़्यादा नहीं है। तुर्की की जहाज़ी ताक़त में दो बैटिल शिप, दस दस हज़ार टन के दो क्रूज़र, ६ डिस्ट्रायर, हज़ार हज़ार टन के २० टारपीडो बोट और १५ माइनलेयर हैं।

किन्तु जिन दुशमनों का मुक़ाबला लड़ाई में तुर्की को करना पड़ेगा, उनके लिये तुर्की की यह फ़ौजी ताक़त कुछ भी नहीं है। तरह तरह के चकमे आज तुर्की को दिये जा रहे हैं और उससे तरह तरह के वादे किये जा रहे हैं। पर जैसा राष्ट्रपति इस्मत इनोनु के पिछले बयान से मालूम होता है, तुर्की यह सारा ख़तरा समझ रहा है और वह ऐसी किसी लड़ाई में शरीक नहीं होना चाहता, जिसमें उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं। उसकी क़िस्मत आज रूस के साथ वाबस्ता है और तुर्की राष्ट्र इसे ख़ूब समझता है। इसीलिये वह बारबार ऐलान कर रहा है कि रूस और तुर्की की दोस्ती में कभी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा।

थाइलैण्ड और हिन्द-चीन

फ्रान्स के पतन के बाद आये दिन अख़बारों में थाइलैण्ड की चर्चा सुनाई देती है। उस दिन कलकत्ते से निकलने वाले एक प्रमुख हिन्दी दैनिक में हमने यह शीर्षक देखा "थाइ मेंढकी को भी ज़ुकाम हुआ"। इस शीर्षक के नीचे थाइलैण्ड और हिन्द-चीन की लड़ाई का ज़िक्र था। आख़िर यह थाइलैण्ड है क्या? थाइलैण्ड का प्राचीन नाम है "मौंग थाइ" और जिसे हिन्दी-साहित्य में 'सियाम' भी कहते हैं। गुप्त-युग में मौंग थाई बृहत्तर भारत का ही एक अंश था। थाई की संस्कृति भारतीय संस्कृति की ही बुनियाद पर क़ायम की गई। वहां का रक़बा दो लाख बीस हज़ार वर्ग मील है और अधिकांश आबादी बौद्ध है। थाइ में कम्बोज का कुछ हिस्सा और मलाया द्वीप प्राय शामिल हैं। यहां की आबादी एक करोड़ दस लाख के लगभग है। इनमें एक बड़ी तादाद मुसलमानों और चीनियों की भी है।

सियामी स्वभावतः नेक, नम्र, शान्त, मेहमाने-बाज़ और दूसरों के दुख को देखकर बहुत जल्द पिघल जाते हैं (J. G. D. Campbell—Siam in the Twentieth century.) स्वभाव से उन्हें लड़ना भिड़ना पसन्द नहीं। बौद्ध होने के कारण जीव हिंसा से उन्हें परहेज़ है। हत्याओं और डाकों की वहां कोई चरचा नहीं सुनाई देती। आख़िर इतनी शान्ति-प्रिय क़ौम ने हिन्द-चीन पर क्यों हमला किया?

थाइ में लगभग एक करोड़ गाय और भैंस हैं। वहां की खानों से हीरा, पन्ना, सोना, चांदी, मैंगनीज़,

लोहा, टिन, कोयला और जस्ता निकलता है। दस हज़ार टन खोपरा वहां से हर साल बाहर जाता है। लड़ाई के लिये इतना ज़रूरी टिन, लगभग दस हज़ार टन वहां से निकलता है।

उसकी इस समृद्धि को देख कर सोलहवीं सदी में पोर्चुगीज़, डच और उसके बाद फ़्रान्सीसी वहां पहुंचे। सियामियों ने भारतीयों की तरह इन विदेशियों का स्वागत किया। अंगरेज़ जब आये तो उनका भी इस्तक़बाल हुआ। ये विदेशी वहां रह कर व्यापार करने लगे और धीरे धीरे बोने लगे आपसी फूट के बीज। जगह जगह थाइ में बग़ावतें शुरू हुईं। थाइ साम्राज्य का बहुत सा हिस्सा अंग्रेज़ों और फ़्रान्सीसियों के क़ब्ज़े में चला गया। फ़्रान्स को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ, उसने थाइ से मेकांग नदी के किनारे किनारे के सभी बन्दरगाहों पर अपने क़ब्ज़े की मांग पेश की। थाइ सरकार ने इनकार कर दिया। सन् १८९३ में फ़्रान्सीसी सरकार ने सियाम पर चढ़ाई कर दी। दस दिन तक वीर सियामियों ने फ़्रान्सीसी फ़ौज का मुक़ाबला किया किन्तु अन्त में फ़्रान्सीसी गोलेबारी से मजबूर होकर उन्हें समर्पण करना पड़ा। न सिर्फ़ मेकांग के बन्दरगाहों पर, बल्कि नदी से पूरब २५ मील तक की ज़मीन पर फ़्रान्सीसियों ने क़ब्ज़ा कर लिया। एक बहुत बड़ी रक़म भी सियामियों से जुरमाने के तौर पर वसूल की गई। सन् १९०७ के सुलहनामे में फ़्रान्सीसियों ने थाइलैण्ड से बत्तमबाङ्ग का प्रान्त भी छीन लिया। अंगरेज़ कैसे चुप रहते, उन्होंने भी सन् १९०९ में सियाम के चार ज़िलों पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा कर लिया। गरज़ यह कि यूरोप के दो साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने मिलकर सियाम के टुकड़े टुकड़े कर दिये।

जब सन् १९२५ में महाराज प्रजादीपक सियाम की गद्दी पर बैठे, तो उन्होंने नये सिरे से सियामी राष्ट्र का संगठन किया। फ़ौजी संगठन में भी परिवर्तन किये गये। सन् १९२४ के सुलहनामे में जापान ने भी सियाम को फ़ौजी अस्त्र शस्त्रों से मदद दी। आज हर सियामी आज़ादी की फ़ौज का सिपाही है।

अब जब कि फ़्रान्स पराजित और भूपतित पड़ा हुआ है, क्या सियाम को इतना भी अधिकार नहीं कि वह अंगड़ाई लेकर अपनी ग़ुलामी की जंजीरों को तोड़े? फ़्रान्स ने जो उसका अङ्ग-भङ्ग किया है, उसको फिर से जोड़े। रायटर की ख़बरें रोज़ इत्तला दे रही हैं कि थाइ फ़ौजें अपने खोये हुये प्रान्तों पर फिर से क़ब्ज़ा करते हुए आगे बढ़ रही हैं। ताज़ा ख़बर है कि जापान को थाइ और फ़्रान्सीसियों दोनों ने पंच मान लिया है।

चीन-जापान परिस्थिति

चीन - जापान युद्ध को शुरू हुए आज क़रीब ४८ महीने हो गये। सन् १९३७ में जब यह युद्ध शुरू हुआ, तो जापान को अनुमान था कि वह कमज़ोर और असहाय चीन को कुछ महीनों में ही ख़त्म कर के एशिया में महान साम्राज्य का शासक बन जायगा। किन्तु जब चीनी फ़ौजें शंघाई के रण - क्षेत्र में जापानी सैनिकों के मुक़ाबले की तय्यारी करने लगीं, तो जापानी प्रीमियर कोनोए ने बयान दिया कि "अब चीन की कमर तोड़ दी जायगी, ताकि वह कभी सर उठाने का साहस न कर सके।"

इसके चार महीने बाद ही जब जापान ने शंघाई और नानकिङ्ग पर क़ब्ज़ा कर लिया, तो उनके घमण्ड की सीमा न रही। चीनी राष्ट्रीय सरकार भाग कर दूर चुङ्ग-किङ्ग चली गई और जापान के परराष्ट्र सचिव हिरोता ने १६ जनवरी १९३८ को इस बात की घोषणा की कि "अब जापानी सरकार चुङ्ग-किङ्ग की सरकार से कोई बात न करेगी और एक नई सरकार की स्थापना करेगी।"

यह सही है कि उसके बाद जापान ने दो तिहाई चीन पर क़ब्ज़ा कर लिया, चीनी देशघातक वांग-चिंग-वे को नानकिङ्ग की नई सरकार बनाने के लिये राज़ी कर लिया; किन्तु वह चीनी जनता की आज़ादी की भावना को कुचलने में समर्थ न हो सका। जैसे जैसे चीन के एक के बाद एक शहर जापान के क़ब्ज़े में पड़ते गये, वैसे वैसे चीनी जनता की मुक़ाबले की

इच्छा शक्ति भी बढ़ती गई। उन्होंने डट कर मुक़ाबला शुरू किया। डिवीज़न के बाद डिवीज़न चीन की ओर दौड़ाई गई; किन्तु लाखों जापानी सैनिकों की राख ही जापान वापस पहुँची।

वाङ्ग-चिङ्ग-वे ने जब चीन के साथ विश्वास घात करके नई सरकार बनाई, तो उसने जापानियों को आश्वासन दिया कि कम से कम चीनी फ़ौज की ४० डिवीज़न उसके साथ हो जायगी। मगर उसका सपना ग़लत निकला और एक भी डिवीज़न उसके साथ नहीं आई। जापानियों ने इसके बाद हवाई जहाज़ से चुङ्गकिङ्ग के चिथड़े उड़ाने शुरू कर दिये। क़रीब ६०० हवाई हमले चुङ्गकिङ्ग पर हुए, किन्तु आज़ाद चीन चुङ्गकिङ्ग के खण्डहरों में ही अपना झण्डा फहराता रहा।

पिछले यूरोपीय युद्धसे जापान को बहुत नफ़ा हुआ था। किन्तु इस युद्ध के प्रारम्भ में जापान के १५ लाख सैनिक चीनी दलदल में फंसे हुए हैं। यदि यह फ़ौज ख़ाली होती, तो आसानी से दूसरी जगह काम आ सकती थी। हिटलर विद्युत गति से यूरोप पर छा गया और फ़्रान्स और हालैण्ड का पतन हो गया। इन दोनों के बड़े बड़े क़ीमती साम्राज्य सुदूर पूर्व में हैं। जापान को इन्हें हड़पने का इससे अच्छा मौक़ा दूसरा न था। काश कि उसके आदमी आज चीन में न फंसे होते!

पिछले महीने में जापान की 'यूनाइटेड न्यूज़ सर-विस' ने ख़बर शाया की थी कि जापान चुङ्गकिङ्ग सरकार के साथ सुलह करने को तय्यार है। तीन बरस के बाद जापान पहिली बार चियांग काइ-शेक की सर-कार के साथ बात करने को राज़ी हुआ। लन्दन और वाशिंगटन की सरकारें इस ख़बर को सुन कर चौकन्नी होगईं। यदि इस वक़्त चीन समझौता कर लेता है, तो हिटलर को मदद देने के लिये जापान ख़ाली हो जाता है। जापान से अमरीका और इङ्गलैण्ड दोनों को ख़तरा दिखाई दिया। आस्ट्रेलिया, हिन्द-चीन, फ़िलिप्पाइन, बर्मा, मलाया, डच-हिन्द सब के लिये जापान की ओर से भय हुआ। झट इंगलिस्तान की सरकार ने बर्मा-चीन सड़क खोल दी। अमरीका की सरकार ने चीन को बेहद सुविधाएं और एक बड़ी रक़म क़र्ज़ के तौर पर देने का ऐलान किया। इन दोनों देशों का इस समय यह हित है कि चीन अपने लड़ाई के मैदानों में जापान को उस समय तक उलझाए रखे, जब तक यूरोप को हिटलर से निजात न मिल जाय।

इस समय दुनिया उत्सुकता से जापान की राज-नीतिज्ञता को देख रही है।

अमेरिका में शान्ति का उद्योग

वाशिङ्गटन की एक ख़बर है—

"सेनेटर जान जी एलेक्ज़ेण्डर और २३ प्रमुख अमरीकनों के प्रयत्न से शिकागो में एक कमेटी बन गई है, जो इस बात का प्रचार करेगी कि 'लड़ाई बन्द हो और दुनिया में अमन क़ायम हो।' इस काम के लिए उन्होंने सरकार से १५ करोड़ रुपये की मांग की है। उनके वक्तव्य में लिखा है कि दुनिया के ऐसे तमाम मुल्कों की जनता को और सरकारों को लड़ाई में दख़ल देकर युद्ध बन्द कराने की कोशिश करनी चाहिए।"

वक्तव्य पर अमरीका के बीसों प्रमुख विद्वानों के दस्तख़त हैं। वक्तव्य में आगे लिखा है—

"अमरीका के लिए लड़ाई में शरीक होने की बिलकुल ज़रूरत नहीं है। यदि अमरीका चाहे तो युद्ध में दख़ल देकर आज लड़ाई बन्द करा सकता है; लड़ने वालों के बीच में सम्माननीय समझौता करा सकता है। मौजूदा कांग्रेस ने लड़ाई की तय्यारी में क़रीब छै अरब रुपया ख़र्च करने का फ़ैसला किया है। हम सुलह के लिए सिर्फ़ १५ करोड़ रुपया ख़र्च करने की दरख़्वास्त करते हैं।"

अमरीका की समझदार जनता इस फ़ैसले का काफ़ी स्वागत कर रही है।

भूखे यूरोप को क्यूबा की मदद

पत्रों में हवाना का एक समाचार छपा है—

"श्री बैटिस्टा की सरकार पिछली सरकार के फ़ैसले पर अमल करेगी और रेडक्रॉस सोसाइटी के ज़रिये

पचास हज़ार टन चीनी; काफ़ी और डब्बे का गोश्त यूरोप के अकाल पीड़ित देशों को भेजेगी।"

इस समाचार पर टिप्पणी करते हुए एक अमरीकन पत्र लिखता है—

"कूबा को यह फ़ैसला उस समय करना पड़ा, जब उसका यूरोप का व्यापार लड़ाई के दौरान में बिलकुल बन्द हो गया। अमरीका भी कूबा की जो चीनी ख़रीदता था, उसकी मिक़दार उसने कम करदी। इन चीज़ों की क़ीमतें भी बेहद घट गई हैं। इस तरह कूबा को इस उदारता से दो फ़ायदे होंगे—अतिरिक्त माल कम हो जाने से इन चीज़ों का बाज़ार भाव भी बढ़ जायगा और दान का पुण्य अलग मिलेगा।"

आगे चलकर यही अमरीकन पत्र लिखता है—

"कूबा के व्यापारियों की यूरोप में अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए एक प्रचार कमेटी है। इस कमेटी में सभी व्यापारी चन्दा देते हैं। यही कमेटी इस दान के माल को ख़रीद कर यूरोप भेज रही है। वैसे तो युद्ध की वजह से इस कमेटी का यूरोपीय प्रचार का काम बन्द पड़ा है। मुमकिन है इस मौक़े पर कूबा की यह मदद यूरोप वालों के दिलों में कूबा के बने हुए माल की स्मृति बनाए रक्खे।"

कूबा दक्षिण अमरीका की एक रियासत है।

नोबल प्राइज़

ओसलो की एक ख़बर है—

"जर्मन सेना ने बैङ्क आफ़ नार्वे से नोबल कमेटी के सारे डिपाज़िट ज़ब्त कर लिए। नोबल कमेटी को लगभग सवा लाख रुपया सूद से मिल जाता था। इसी से प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, साहित्यिकों और विद्वानों को उनकी विशेष रचनाओं पर इनाम मिलता था।"

नोबल प्राइज़ अब उस समय तक किसी को नहीं मिल सकती, जब तक नाज़ी ये रक़म वापस न करें। हमें इस ख़बर से ख़ास तौर पर दुःख है; क्योंकि इस बार गणित के लिए नोबल प्राइज़ का यह इनाम एक सम्माननीय भारतीय प्रोफ़ैसर को मिलने वाला था।

न्यूज़ीलैण्ड में मज़दूरों की वेतन-वृद्धि

न्यूज़ीलैण्ड की सरकार ने तमाम मज़दूरों की तनख़्वाह पांच फ़ीसदी बढ़ा दी है; साथ ही एक क़ानून भी बना दिया है कि राष्ट्र-रक्षा के लिए हर मज़दूर की तनख़्वाह में से पांच फ़ीसदी काट लिया जाए! गणित के विद्वान हिसाब लगाकर बताएं कि इसमें मज़दूरों को कितना लाभ हुआ?

स्वर्गीय मौलाना मोहम्मद अली

जनवरी में जगह जगह स्वर्गीय मौलाना मोहम्मद अली का स्मृति दिवस मनाया गया स्वर्गीय मौलाना का जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था। भारतीय आज़ादी की लड़ाई को आगे बढ़ाने में उनका बहुत बड़ा हिस्सा है। आज़ादी की ही भावना लेकर उन्होंने अपने प्राण त्यागे। आज जब देश में आपसी लड़ाई का कुहरा छाया हुआ है, तब भले ही हमें अपने वीरों का चरित्र धुंधला दिखाई दे; किन्तु हम १९२४ की जबलपुर में तिलक-भूमि की उस सार्वजनिक सभा को नहीं भूल सकते, जिसमें मौलाना मोहम्मद अली और स्वर्गीया बी अम्मा का व्याख्यान हुआ। मौलाना मोहम्मद अली ने फ़रमाया था कि—"यदि कोई हिन्दू मेरी मां पर हाथ उठाये, तब भी मैं शान्त रह कर उससे प्रेम की ही बात करूंगा।" इसके बाद उन्होंने बी अम्मा की तरफ़ देखकर पूछा—"क्यों अम्मा! मैं ठीक कहता हूं न?" और बी अम्मा ने जवाब दिया—"हां बेटा तुम ठीक कहते हो।" उसके बाद बी अम्मा ने अपने व्याख्यान में कहा—"हिन्दू और मुसलमान सगे भाई हैं। वे सन्तरे की तरह एक नहीं हैं, जो ऊपर से एक रहता है, किन्तु भीतर अलग अलग फांक होती हैं; बल्कि वे ख़रबूजे की तरह हैं, जिसकी फांकें दिखाई देती हैं, मगर जो भीतर से एक होता है।"

कहां गये वे दिन? आज हम अन्धे होकर एक दूसरे की जान के गाहक हो रहे हैं। मगर जिस दिन यह कुहरा हटेगा, उस दिन हम देखेंगे कि भारत माता

के कल्याण का मार्ग, जबलपुर की इस सभा में, मौ० मोहम्मद अली और बी अम्मा का बताया हुआ मार्ग ही था।

बिहार का बोर्ड आफ़ रेवन्यू और मादक द्रव्य-निषेध

बिहार सरकार के प्राहीबीशन कमिश्नर रायबहादुर बी० एन० सिंह मादक-द्रव्य-निषेध की सालाना रिपोर्ट में लिखते हैं—

"जिन पांचों ज़िलों में मादक-द्रव्य-निषेध था, वहां के ज़िला अफ़सरों की राय है कि इससे हर तरह से जनता को लाभ पहुंचा। जिन जिन ज़िलों में यह निषेध था, वहां वहां जनता में शारीरिक, आर्थिक, नैतिक और सामाजिक उन्नति के लक्षण साफ़ दिखाई दिये। उन्हों ने अनेक उदाहरण देकर अपने बयान की पुष्टि की है। कुल ३९८२ वर्ग मील में यह निषेध लागू किया गया। इस क्षेत्र में देशी शराब की दूकानें १३६, गांजा १२२, भांग २९, अफ़ीम १४, ताड़ी २८१३ और पचवाई की ७७ दूकानें बन्द की गईं। इस व्यापार के करने वालों में ४८०० आदमियों ने दूसरे रोज़गार धन्धे कर लिये और १२०० आदमियों ने पास के शराबी इलाक़ों में जाकर पुराना पेशा फिर शुरू कर दिया। जनता ने इस निषेध का ख़ूब स्वागत किया और औरतें तो ख़ास तौर पर इससे प्रसन्न हैं।"

इस रिपोर्ट के अनुसार छिपकर शराब बनाने के जुर्म में २१९२ आदमियों पर मुक़दमा चला, जबकि निषेध के पहले साल केवल १२०६ अभियुक्त इस जुर्म में पकड़े गये थे। इन २१९२ अभियुक्तों में ८६० केवल धनबाद ज़िले से हैं। यदि धनबाद में वहां के अधिकारी सतर्क रहते और वहां प्रचार किया जाता, तो जुर्मों की यह तादाद इतनी न बढ़ती। किन्तु बावजूद इसके कि इस निषेध से जितना चौतरफ़ा फ़ायदा हुआ, उसको देखते हुए जुर्मों की यह तादाद कोई अधिक नहीं है।

रायबहादुर बी० एन० सिंह की इस रिपोर्ट पर बिहार के बोर्ड आफ़ रेवन्यू के मेम्बर की यह नीचे लिखी राय है :—

"चूंकि कुछ लोगों को मादक-द्रव्य-निषेध से आर्थिक और नैतिक लाभ हुआ, इससे यह नहीं साबित होता कि जनता को इससे लाभ हुआ। अक्सर जो चीज़ ऊपर से फ़ायदेमन्द दिखाई देती है, उससे वास्तव में कोई फ़ायदा नहीं होता। इस मादक-द्रव्य-निषेध से चोरी से शराब बनाने के जुर्म ज़्यादा बढ़ गए हैं और हमें उस वक्त तक इस निषेध को दूसरे ज़िलों में न लगाना चाहिये, जब तक इसके फ़ायदे हमें आम तौर से न दिखाई दे जायं।" आगे चलकर यह रेवन्यू मेम्बर लिखता है—"यदि कोई निष्पक्ष आदमी (पंचो ज़िले की) इस शराब बन्दी को ग़ौर से देखे, तो वह इसके सिवाय किसी दूसरे नतीजे पर नहीं पहुँच सकता कि यह शराब बन्दी एक ढोंग और एक खर्चीला तमाशा है।"

हम बिहार के इस रेवन्यू मेम्बर से बड़े अदब के साथ यह पूछना चाहते हैं कि क्या वह अपने ही सरकारी अफ़सरों को निष्पक्ष नहीं समझता? क्या दो हज़ार व्यक्तियों के जुर्म करने के कारण वह तैतालिस लाख आबादी के फ़ायदों को कोई महत्व नहीं देता? क्या रेवन्यू मेम्बर यह भी बताएगा कि इन दो हज़ार जुर्मों में से एक एक अपराधी ने कितनी बार जुर्म किया? क्या वह यह भी बताएगा कि इनमें से कितने आदमी छिप कर शराब बनाने के जुर्म में निषेधाज्ञा के पहले भी पकड़े गए थे?

हम इस अंग्रेज़ रेवन्यू मेम्बर की बुद्धि की प्रशंसा करते हैं।

स्टाकहोम की एक प्रचलित कहानी

स्टाकहोम के एक पत्र में नीचे लिखा एक छोटा सा क़िस्सा छपा है—

"सात जर्मन सिपाही लड़ाई में मरने के बाद स्वर्ग के फाटक पर पहुंचे। सेण्टपीटर ने सिर्फ़ दो आदमियों को भीतर आने दिया और फाटक बन्द

कर दिया। ये पांचों व्यक्ति अचरज में भर कर फिर फाटक खट खटाने लगे। सेण्टपीटर ने फिर स्वर्ग का फाटक खोलकर उन्हीं जर्मनों को देखा, तो फिर बन्द करने लगे। जर्मनों ने स्वर्ग के पहरेदार से कारण पूछा। सेण्टपीटर ने जवाब दिया कि मैं आप लोगों को अन्दर नहीं ले सकता; क्योंकि बर्लिन रेडियो ने ख़ाली दो ही जर्मनों के मारे जाने की इत्तला दी है।' इस पर पांचों जर्मन एक साथ बोल उठे कि 'हम तो लन्दन रेडियो में सात आदमियों के मारे जाने की ख़बर सुन कर ही यहां आए थे।,"

इस पर टिप्पणी करना धृष्टता होगी।

युक्त-प्रान्त का दुख

समाचार पत्रों ने हमें पिछले महीने पण्डित कृष्णकान्त मालवीय और पण्डित प्यारेलाल शर्मा की मृत्यु का दुःख पूर्ण समाचार दिया। कृष्णा भाई का निधन तो हमारी व्यक्तिगत हानि है। मृत्यु-शय्या पर पड़े पड़े भी वे 'विश्ववाणी' की प्रगति की ख़बर पूछते रहते थे। कृष्णा भाई में मत-भेदों से ऊपर उठकर आपस का प्रेम सम्बन्ध क़ायम रखने की ज़बर्दस्त क्षमता थी। वे अपनी स्नेह पूर्ण याद हरएक के दिल में छोड़ गए हैं।

पण्डित प्यारेलाल शर्मा के निधन ने हमारे बीच से एक सच्चे आदर्शवादी को उठा लिया। मिनिस्ट्री क़ुबूल करने के बाद से कांग्रेस के मिनिस्टरों में एक अजीब तरह का ग़ुरूर और नैतिक पतन आ गया था। सेवा के बजाय प्रभुता उनके दिल में जगह बनाने लगी थी। पण्डित प्यारेलाल शर्मा भी कुछ महीनों तक युक्त-प्रान्त के शिक्षा-मन्त्री रहे। मिनिस्ट्री के ज़माने में उनके घर पर वही टीन की एक दर्जन कुर्सी पड़ी रहती थीं। सिगार उनकी बीड़ी की जगह न ले सका। दफ़्तर के बाद वही लुङ्गी पहने वे लखनऊ की शाही सड़कों पर घूमते थे। उनके सहयोगियों ने इसमें अपना अपमान समझा, और अन्त में शर्मा जी को न सिर्फ़ मिनिस्ट्री छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा, बल्कि प्रान्तीय असेम्बली को भी छोड़ना पड़ा। शर्मा जी देश के परखे हुए सिपाही थे और आज़ादी के प्रयत्न में ही उनके प्राण गये।

परमात्मा इन दोनों बुज़ुर्गों की आत्मा को शान्ति प्रदान करे!

भूल सुधार और माफ़ी

जनवरी की 'विश्ववाणी' के पृष्ठ ४९ की ग्यारहवीं लाइन में 'साठ बरस तक जङ्ग होती रही' की जगह 'आठ बरस तक जङ्ग होती रही' पढ़िये। उसी पृष्ठ की चौबीसवीं और पच्चीसवीं लाइन में अफ़ज़ल की जगह अफ़ज़ल खां पढ़िये।

इसी फ़रवरी महीने की 'विश्ववाणी' में श्री स० ही० वात्स्यायन के लेख 'संस्कृति और परिस्थिति' में भूमिका का यह वाक्य जोड़ लें -- 'एक अभिभाषण का कुछ अंश'। हमें खेद है कि हमारी ग़लती से इस भाषण के कुछ अंश नहीं छप सके। हम इसके लिये श्री वात्स्यायन जी से क्षमा प्रार्थी हैं।

Registered No. A.—704.

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

मार्च १९४१

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

वार्षिक मूल्य ६)

एक अंक का ।।=)

इस अङ्क के प्रमुख लेखक

१—श्री रिचर्ड ग्रेग
२—पण्डित सुन्दरलाल
३—डाक्टर सैयद महमूद
४—डाक्टर एन० के० मेनन
५—डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी
६—राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद
७—श्रीमती महादेवी वर्मा
८—डाक्टर जेम्स एच० कज़िन्स
९—डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त
१०—डाक्टर के० एम० अशरफ़

विषय-सूची

मार्च १९४१

"दूसरे के लिये अपने प्राणों की बलि चढ़ाने से बड़ा पुण्य दूसरा कोई नहीं... एक ऐसा समय आयगा जब तुम्हें इस नेक काम के लिये ही सज़ा मिलेगी, तुम्हारा बहिष्कार किया जायगा और तुम्हें प्राण दण्ड भी मिलेगा और यह सब वे धर्म और ईश्वर के नाम पर करेंगे।" (जोन १५, १६) "किन्तु नेक कामों के लिये कष्ट सहने से ईश्वर प्रसन्न होता है। क्या ईसु तुम्हारे लिये हो सूली पर नहीं चढ़े? तुम्हें उन्हीं के दिखाये हुये रास्ते पर चलना चाहिये।" (पीटर २, १९-२०)

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ

वर्ष १	मार्च, १९४१	अङ्क ३

सत्याग्रह का विश्वव्यापी महत्व

श्री रिचर्ड ग्रेग

मैं समझता हूं भारतवर्ष का मौजूदा संग्राम दुनिया के इतिहास में एक अपूर्व संग्राम है। भगवान बुद्ध ने अहिंसा का प्रचार किया, अहिंसा का अपने जीवन में पालन किया; किन्तु अहिंसा के कारण उन्हें कष्ट नहीं भोगना पड़ा। हज़रत ईसा ने अहिंसा का प्रचार किया, उसका पालन किया और प्राण देकर अहिंसा की शक्ति को संसार के सामने रखा। बापू ने न केवल अहिंसा का प्रचार और पालन किया बल्कि संसार को उसका पालन करना सिखाया। सामूहिक रूप से अनुशासन के साथ संगठित होकर अहिंसा का प्रचार गान्धी जी ने ही किया। अहिंसा में केवल भारत के ही लिये नहीं, बल्कि सारी दुनिया के लिये एक ऐसी सम्भावना छिपी हुई है, जिसकी कल्पना तक लोग नहीं कर सकते।

जिन लोगों ने पच्छिम के देशों की राजनीति, कूटनीति और सरकारी रवइयों को ग़ौर से देखा है, वे यह समझ सकते हैं कि इनकी बुनियाद दग़ा, फ़रेब, बेईमानी और जनता की भावनाओं और विचारों को एक छोटे से समूह के फ़ायदे के लिये इस्तेमाल करने में है। ये अपनी स्वार्थ पूर्ण प्रेरणा को हत्या और मारकाट से पूरा करते हैं।

इस दृष्टि से यदि भारत का यह आन्दोलन सफल हुआ, तो वह संसार की सारी सरकारों की पाशविक शक्ति को क्षीण कर देगा और उनके तर्ज़ को बदल देगा। यदि सत्याग्रह को भारत की शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार के ख़िलाफ़ सफलता मिली, तो सभी सरकारों की हिंसा का सामना किया जा सकता है। इसकी सफलता एक ओर दुनिया से पाशविक शक्ति

की कदर कम कर देगी और दूसरी ओर पीड़ित मानवता के हृदय को उत्साह से भर देगी। सताई हुई क़ौमें, चाहे वे किसी रंग की क्यों न हों, या उद्योग-वादी सरकारों के शिकंजे में जकड़े हुये ग़रीब मज़दूर, इससे एक नई आशा और नए जीवन का रोमांच अनुभव करेंगे।

रूसी क्रान्ति के समय दुनिया के हर मुल्क के मज़दूरों में आशा और उत्साह की ऐसी बिजली दौड़ी कि बड़े बड़े कारखानों के मालिक और राजनीतिज्ञ भय से थर थराने लगे थे। किन्तु मेरा विश्वास है भारत का देश व्यापी सफल सत्याग्रह दुनिया की आज़ादी को इतना निकट लायेगा, जितना इसके पहले संसार की कोई क्रान्ति नहीं ला सकी।

पिछले महायुद्ध ने यूरोप में सामन्तवाद का नाश कर दिया, पर इङ्गलैण्ड में सामन्तवादी हुकूमत चलती रही। इङ्गलैण्ड का सम्पूर्ण सामाजिक और राजनैतिक तरीक़ा जन साधारण और पदवी धारियों के बनावटी भेदों पर ही क़ायम रहा। 'लार्डों' की उपाधि बांट बांट कर जन-समाज में कुलीन और अकुलीन का फ़र्क़ पैदा किया गया। इङ्गलैण्ड में समाज का यह भेद तब तक चलेगा, जब तक भारत आज़ाद नहीं हो जाता। भारत की आज़ादी के साथ साथ इङ्गलैण्ड का यह झूठा भेद भाव भी नष्ट हो जायगा। इस तरह भारत का सत्याग्रह यूरोप को इस ज़बर्दस्त भेद भाव से मुक्ति दिलायगा, जिसके फेर में यूरोप एक हज़ार बरस से पड़ा हुआ है।

आर्थिक क्षेत्र में भी सत्याग्रह से ज़बर्दस्त हेर फेर हो जायगे। मैं सत्याग्रह को पूंजीवाद और युद्ध की विरोध योजना मानता हूं। एक सफल सत्याग्रह पूंजी-वाद का जितना बड़ा दुशमन साबित होगा, उतना हिंसात्मक समाजवादी या साम्यवादी क्रान्ति न कभी हुई है और न कभी हो सकती है। सत्याग्रह की सफलता से ट्रेडयूनियन आन्दोलन की बुनियाद ही बदल जायगी। सफल सत्याग्रह से उद्योगवाद की महत्ता घट जायगी और खेती किसानी को फिर से महत्व मिलेगा।

सत्याग्रह की सफलता से न सिर्फ़ पच्छिम की नज़रों में भारत की इज्ज़त ही बढ़ेगी, बल्कि सच्चे अर्थों में पच्छिम के लोग भारत के वास्तविक रूप को पहचानेंगे। पच्छिमी लोगों के दिलों में आज भारत के लिये एक उपेक्षा है। वे समझते हैं कि अहिंसा का उपयोग केवल निर्बलता के कारण किया जा रहा है। जिस तरह दूसरे मुल्कों में आज निर्ब-लता है, उसी तरह भारत में भी है। इस निर्ब-लता का कारण अहिंसा नहीं है। जब पच्छिमी संसार यह देख लेगा कि संगठित सत्याग्रह कितना शक्तिशाली अस्त्र है, तो पच्छिम की उपेक्षा आदर में बदल जायगी। जब यह उपेक्षा ख़त्म हो जायगी, तब भारत अपना वास्तविक उद्देश्य पूरा कर सकेगा। बापू इस मामले में ठीक दिशा में चल रहे हैं।

धर्म और विधान

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

यदि मनुष्य मात्र के लिये एक ही धर्म है और सब धर्म प्रवर्त्तकों ने एक ही तत्व और एक ही क़ानून का उपदेश दिया है, तो फिर धर्मों में इतनी भिन्नता कैसे हुई ? सब धर्मों में एक ही तरह की आज्ञाएं, एक ही तरह के कर्म, एक ही प्रकार के रीत रिवाज क्यों नहीं हुए ? किसी धर्म में उपासना की एक विधि मानी गई, किसी में दूसरी। किसी के मानने वाले एक ओर मुंह करके उपासना करते हैं, तो किसी के दूसरी ओर। किसी के यहा व्यवस्था और नियम आदि एक तरह के हैं, किसी के यहां दूसरी तरह के।

क़ुरान कहता है कि धर्मों की भिन्नता दो तरह की है। एक तो वह जिसे इन धर्मों के अनुयाइयों ने धर्म की वास्तविक शिक्षा से हट कर पैदा कर लिया है। यह भिन्नता धर्मों की नहीं है, बल्कि उन धर्मों के मानने वालों की गुमराही का नतीजा है। दूसरी *भिन्नता वह है, जो वास्तव में अलग अलग धर्मों की* आज्ञाओं और उनकी क्रियाओं में पाई जाती है। जैसे, एक धर्म में उपासना की कोई ख़ास विधि स्वीकार की गई है, दूसरे में दूसरी विधि। यह भिन्नता मौलिक अथवा वास्तविक भिन्नता नहीं है, केवल *ऊपरी अर्थात् गौण भिन्नता है और इस तरह की* भिन्नता का होना अनिवार्य भी था।

क़ुरान कहता है सब धर्मों की शिक्षा में दो तरह की बातें होती हैं। एक तो वह जो धर्मों का तत्व और उनका सार है, दूसरी वह जिनसे उन धर्मों का बाहरी रूप सजाया गया है। पहली मुख्य और दूसरी गौण हैं। पहली को क़ुरान 'धर्म-तत्व' (दीन) और दूसरी को 'विधि-विधान' (शरअ और नुसुक) का नाम देता है। क़ुरान कहता है कि धर्मों में जो कुछ भी असली भिन्नता है, वह धर्म तत्व की नहीं, बल्कि नियमों और विधि-विधान की भिन्नता है, यानी मूल की नहीं शाखाओं की है, असलियत की नहीं बाहरी रूप रंग की है, आत्मा की नहीं शरीर की है; और इस भिन्नता का होना अनिवार्य था। धर्म का लक्ष्य मानव-समाज का कल्याण और उसका सुधार है, परन्तु प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में मनुष्य समाज की अवस्था और परिस्थिति न तो कभी एक सी हुई है और न हो सकती है। किसी ज़माने का रहन सहन और उसकी मानसिक शक्तियां एक ख़ास ढङ्ग की थीं और किसी ज़माने की दूसरे ढङ्ग की। किसी देश की परिस्थिति के लिये एक ख़ास तरह का जीवन आवश्यक होता है और किसी देश के लिए दूसरी तरह का। इसलिये जिस धर्म का आविर्भाव जिस युग और जिस परिस्थिति में हुआ और जैसी तबियत के *मनुष्यों में हुआ, उसी तरह के नियम और विधि-*विधान भी उस धर्म में अख़्तियार कर लिये गये। जिस काल और जिस देश में जो ढङ्ग नियत किया गया, वही उस देश और काल के लिये उपयुक्त था। इसलिये हर सूरत अपनी जगह ठीक और सत्य है। *और यह भेद उससे अधिक महत्व नहीं रखता, जितना* महत्व कि समस्त मानव-जातियों के अलग अलग रहन सहन और दूसरी स्वाभाविक विभिन्नताओं को दिया जा सकता है। क़ुरान में एक सूरा है—

"ऐ पैग़म्बर ! हमने हर गिरोह के लिये उपासना की एक ख़ास विधि नियत कर दी है, जिस पर वह अमल करता है। इसलिये लोगों को चाहिये कि इस विषय मे झगड़ा न करें। ऐ पैग़म्बर ! तुम लोगों को

अपने परमात्मा की ओर बुलाओ।"—सू० २२, आ० ६६।

जब इसलाम के पैग़म्बर ने बैतुल मुक़द्दस (यरूसलम) के बदले काबे की तरफ़ मुंह करके नमाज़ पढ़नी शुरू की, तब यह बात यहूदियों और ईसाइयों को अखरी, क्योंकि वे इन बाहरी और ऊपरी बातों पर ही धर्म का सारा दारमदार रखते थे और इन्हीं को सत्य और असत्य की कसौटी समझते थे।

लेकिन क़ुरान ने इस मामले को बिलकुल दूसरी ही नज़र से देखा है। क़ुरान कहता है तुम इस तरह की बातों को इतना महत्व क्यों देते हो? यह न तो सत्य और असत्य की कसौटी ही हैं, और न इनका धर्म के वास्तविक अर्थात् मौलिक रूप से कोई सम्बन्ध ही है। प्रत्येक धर्म ने अपनी परिस्थिति और सुविधा के अनुसार उपासना की एक ख़ास विधि अख़्तियार करली और उसके अनुसार लोग बरतने लगे। परन्तु असल लक्ष्य सबका एक ही है और वह ईश्वरोपासना और सदाचरण है। इसलिये जो व्यक्ति सत्य का जिज्ञासु है, उसे चाहिये कि वास्तविक लक्ष्य पर ध्यान रखे और इसी दृष्टि से सब बातों की परीक्षा करे। बाहरी बातों को सत्य और असत्य की कसौटी न समझ ले। क़ुरान में लिखा है—

"हर गिरोह के लिये कोई न कोई दिशा है, जिसकी ओर, उपासना करते समय, वह अपना मुंह कर लेता है। इसलिये इसे तूल न देकर नेकी की राह में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने का प्रयत्न करो। चाहे तुम किसी जगह भी हो, ईश्वर तुम्हें ढूंढ़ लेगा। अवश्य ही परमात्मा की शक्ति से कोई चीज़ बाहर नहीं है।" सू० २, आ० १४८।

फिर इसी सूरे में आगे चलकर क़ुरान ने साफ़ शब्दों में ख़ुलासा कर दिया है कि असली धर्म क्या है, और किन बातों से मनुष्य धार्मिक कल्याण और समृद्धि प्राप्त कर सकता है? क़ुरान कहता है धर्म सिर्फ़ इस तरह की बातों में नहीं है कि उपासना करते समय किसी व्यक्ति ने मुंह पूरब की तरफ़ किया या पच्छिम की तरफ़। वास्तविक धर्म तो ईश्वर भक्ति और सदाचरण है। क़ुरान में लिखा है—

"नेकी यह नहीं है कि तुमने उपासना के समय अपना मुंह पूरब की ओर कर लिया या पच्छिम की ओर। नेकी की राह तो उसकी यह है जो परमात्मा पर, आख़िरत पर, फ़रिश्तों पर, समस्त ईश्वरीय ग्रन्थों और सब पैग़म्बरों पर ईमान लाता है, अपना प्यारा धन सम्बन्धियों, अनाथों, दरिद्रों, यात्रियों और मांगने वालों की राह में और ग़ुलामों को आज़ाद कराने में ख़र्च करता है, नमाज़ पढ़ता है, ज़कात देता है, बात का पक्का है, भय और घबराहट तथा तंगी और मुसीबत के समय धीर और अविचलित रहता है। ऐसे ही लोग धर्म के सच्चे हैं। और ये ही हैं जो बुराइयों से बचने वाले इनसान हैं।" सू० २, आ० १७२।

जिस ग्रन्थ में १३०० वर्ष से यह आयत मौजूद है, अगर संसार उसके उपदेश का वास्तविक लक्ष्य नहीं समझ सकता, तो फिर कौनसी बात है जिसे संसार समझ सकता है? क़ुरान में आगे लिखा है—

"हमने प्रत्येक धर्म के अनुयाइयों के लिये एक ख़ास विधि विधान नियत कर दिया है। अगर परमात्मा चाहता तो तुम सब को एक ही सम्प्रदाय का बना देता। परन्तु यह विभिन्नता इसलिये हुई कि समय और अवस्था के अनुसार तुम्हें जो आज्ञायें दी गई हैं, उन्हीं में तुम्हारी परीक्षा करे। इसलिये इन विभिन्नताओं के पीछे न पड़ कर नेकी की राहों में एक दूसरे से आगे निकल जाने का प्रयत्न करो।" सू० ५, आ० ४८।

इस आयत पर एक सरसरी निगाह डाल कर आगे न बढ़ जाओ, बल्कि इसके एक एक शब्द पर ग़ौर करो। जिस समय क़ुरान का आविर्भाव हुआ, संसार का यह हाल था कि समस्त धर्मों के अनुयायी धर्म को सिर्फ़ उसकी बाहरी क्रियाओं और रस्मों में ही देखते थे। प्रत्येक धर्म के लोग यही विश्वास करते थे कि दूसरे धर्म वालों को कभी मुक्ति नहीं मिल सकती, क्यों कि वे देखते थे कि दूसरे धर्म वालों की क्रियाएं और रस्में वैसी नहीं हैं, जैसी उनकी अपनी हैं। क़ुरान

कहता है कि यह क्रियाएं और रस्में न तो धर्म का असली तत्व हैं और न उनका भेद सत्य और असत्य का भेद है। यह सब धर्म केवल व्यावहारिक जीवन का ऊपरी ढांचा है, तत्व और सार इससे उच्चतर है, और वही वास्तविक धर्म है। यह वास्तविक धर्म क्या है?—एक परमात्मा की उपासना और सदाचरण का जीवन। यह किसी एक गिरोह की पैतृक सम्पत्ति नहीं है, जो उसके सिवा किसी और को न मिली हो। यह सब धर्मों में समान रूप से मौजूद है, क्यों कि यही धर्म की असली जड़ है। क्रियाएं और रस्में गौण हैं; देश और काल के अनुसार ये सदा बदलती रहती हैं और जो कुछ भी अन्तर हुआ है इन्हीं में हुआ है।

फिर क़ुरान पूछता है कि क्रियाओं और रस्मों की इस भिन्नता को तुम इतना महत्व क्यों दे रहे हो? परमात्मा ने प्रत्येक देश और प्रत्येक युग के लिये एक विशेष प्रकार की रीति नीति स्थिर कर दी, जो उसकी आवश्यकता और अवस्था के उपयुक्त थी। यदि परमात्मा चाहता तो समस्त मानव-जाति को एक ही क़ौम बना देता और विचारों और क्रियाओं की कोई भिन्नता उत्पन्न ही न होने देता। किन्तु ईश्वर ने ऐसा नहीं चाहा। उसकी सर्वज्ञता ने यही उचित समझा कि विचारों और क्रियाओं की भिन्न भिन्न अवस्थाएं उत्पन्न हों। इसलिये इस भिन्नता को सत्य और असत्य की भिन्नता क्यों मान लिया जाय? क्यों इस भिन्नता के कारण एक गिरोह दूसरे गिरोह से लड़ने के लिये तय्यार रहे? असल बात जिस पर सारा ध्यान देना चाहिये नेकी के काम हैं, और समस्त ऊपरी क्रियाएं और रस्में इसलिये हैं कि उनके द्वारा हम नेकी की राह पर क़ायम रह सकें।

क़ुरान कहता है जब परमात्मा ने मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा बनाया है कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जाति, प्रत्येक ज़माना, अपनी अपनी समझ, अपनी अपनी पसन्द और अपना अपना तौर तरीक़ा रखता है, और यह सम्भव नहीं कि किसी एक छोटी सी छोटी बात में भी सब मनुष्यों का स्वभाव एक तरह का होजाय, तो फिर यह कब सम्भव था धार्मिक क्रियाएं और रस्में भिन्न भिन्न न होतीं, और सब एक ही ढङ्ग पर चलने लगते? यहां भी भेद होना था और हुआ। किसी ने एक साधन से और किसी ने दूसरे साधन से असली लक्ष्य तक पहुंचना चाहा। किन्तु असली लक्ष्य में यानी ईश्वरोपासना और सदाचरण की शिक्षा में, सभी एक मत रहे। किसी भी धर्म ने यह शिक्षा नहीं दी कि ईश्वर की उपासना नहीं करनी चाहिये। किसी ने भी यह नहीं सिखलाया कि झूठ बोलना सच बोलने से बेहतर है। इसलिये जब सब का मूल लक्ष्य एक ही है तो केवल बाहरी बातों के भेद से क्यों कोई किसी का विरोधी और दुशमन बन जाय? क्यों हर गिरोह दूसरे गिरोह को झूठा कहे? क्यों धार्मिक सचाई किसी एक ही जाति या सम्प्रदाय की बपौती समझ ली जाय?

एक स्थल पर ख़ुद पैग़म्बर मोहम्मद को मुख़ातिब करते हुए क़ुरान कहता है कि तुम जोश में आकर चाहते हो कि सब लोगों को अपने ही मार्ग पर लेआओ, परन्तु तुम्हें चाहिये कि विचारों और कर्मों की विभिन्नता मनुष्य स्वभाव की नैसर्गिक विशेषता है। तुम ज़बरदस्ती कोई बात किसी के गले से नहीं उतार सकते। क़ुरान के शब्द हैं—

"अगर तुम्हारा पालन कर्ता चाहता तो इस पृथ्वी पर जितने भी मनुष्य हैं सब के सब तुम्हारी बात मान लेते। फिर क्या तुम चाहते हो कि लोगों को मजबूर कर दो कि सब तुम्हारी ही बात मानें।" सू० १०, आ० ९९।

क़ुरान कहता है कि मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा बना है कि हर गिरोह को अपना ही तौर तरीक़ा अच्छा दखाई देता है, वह अपनी बातों को अपने विरोधियों की दृष्टि से नहीं देख सकता। जिस तरह तुम्हारी दृष्टि में तुम्हारा ही मार्ग सर्व श्रेष्ठ है, ठीक उसी तरह दूसरों की दृष्टि में उनका अपना मार्ग सर्व श्रेष्ठ है। इसलिये इस बारे में अपने अन्दर सहिष्णुता और उदार दृष्टि पैदा करो; इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।

भारतीय चित्रकला की वर्तमान उन्नति

——:०:——

डाक्टर, जेम्स एच० कज़िन्स

—:⊙:—

भारतीय चित्रकला का मध्ययुग जहां समाप्त होता है और वर्त्तमान युग शुरू होता है, उसके पीछे एक भयंकर दुःखद घटना है। उत्तर पंजाब की कांगड़ा घाटी में कांगड़ा का प्रसिद्ध शहर है। कांगड़ा के चित्रकारों और कला विशारदों के कारण कांगड़ा का नाम अमर है। भारत के अनेक चित्रकार उनके चरणों में बैठकर शिक्षा पाते थे। सन् १९०५ के भूकम्प ने कांगड़ा के शहर और उसके कलाविद् चित्रकारों को मय उनके कला भण्डार के नष्ट भ्रष्ट कर दिया। कांगड़ा कला राजपूत कला की ही परिशिष्ट थी। कांगड़ा के नष्ट होने के साथ साथ भारतीय कला का भी मध्य युग समाप्त होगया।

सन् १९०७ में कलकत्ते में 'इण्डियन सोसाइटी आफ़ ओरिएण्टल आर्ट' नामक संस्था क़ायम हुई। इस संस्था का उद्देश्य था भारतीय चित्रकार की कला और उस कला के पीछे जो विचार धारा है, उसका अध्ययन करना और उसे प्रोत्साहन देना। इसी संस्था द्वारा भारतीय कला के क्षेत्र में एक नया आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन को उठाने में प्रसिद्ध अंगरेज़ कलाकार स्वर्गीय ई० बी० हावेल का बड़ा हाथ था। हावेल साहब सन् १८९३ में मद्रास के सरकारी कला विद्यालय से तबादला होकर कलकत्ता के सरकारी कला विद्यालय के प्रिन्सपल होकर आए थे। हावेल साहेब ने भारत में पश्चिमीय ढंग की कला की शिक्षा देने के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई। उनका कहना था कि यह पश्चिमीय प्रणाली भारत के कलाकार की आत्मा को प्रोत्साहन नहीं दे सकती। भारतीय वातावरण और भारतीय रंग ढंग ही भारत के भावुक युवक कलाकार को चेतना दे सकते हैं। बहैसियत प्रिन्सिपल के उन्हें कला विद्यालय के विद्यार्थियों के सामने से यूनानी कला के माडेल हटा कर उनकी जगह भारतीय माडेल, भारतीय दृश्य, और अजन्ता के पेनल उनके आदर्श और प्रोत्साहन के लिये रखे।

हावेल साहब का काफी विरोध हुआ। इस विरोध ही के परिणाम में हावेल के पक्ष-समर्थन में एक युवक कलाकार खड़ा होगया। उसी अज्ञात युवक कलाकार को दुनिया के कला विशारदों ने अपने समय का सब में महान चित्रकार समझा। ये युवक कलाकार कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भतीजे श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर थे। संसार में जो बड़े से बड़े कलाकार अब तक हुये हैं, उनमें अवनीन्द्रनाथ का स्थान है। अवनीन्द्रनाथ ने प्रारम्भ में पश्चिमीय कला प्रणाली पर ही शिक्षा पाई थी। वे उसमें सिद्ध हस्त थे। हावेल के प्रभाव से उन्होंने भारतीय कला की ओर ध्यान दिया। शीघ्र ही उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा से भारतीय चित्रकला में एक नई जीवन-शक्ति का संचार किया। थोड़े ही दिनों में श्री अबीन्द्रनाथ के चारों ओर युवक कलाकारों का एक दल इकट्ठा होगया। जिस वक्त हावेल साहेब तन्दुरुस्ती की ख़राबी के कारण रिटायर हुए, भारतीय कला की पुनर्जागृति का ज़ोरदार प्रयत्न सफलता पूर्वक प्रारम्भ हो गया था।

आधुनिक चित्रकला के जन्मदाता

श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

[श्री वी० मागोर्जा के सौजन्य से]

महान कलाकार

आचार्य नन्दलाल बोस

[श्री नवीनचन्द्र गान्धी के सौजन्य से]

बाद में जिस कला को 'बंगाल स्कूल आफ़ आर्ट' कहा जाने लगा, वह भारतीय कला का ही रूप थी। कलाकार की अपनी कल्पना, अपने विचार और अपनी रुचि ने उसे एक विशेष रूप दे दिया। कलाकार ने प्राचीन और अर्वाचीन को जोड़कर कला के एक नए रूप को जन्म दिया। इस आधुनिक चित्रकला में विविध भारतीय युगों के पीछे जो गूढ़ आदर्श और एकता थी; उसके दर्शन मिलते हैं।

कला के इस नए रूप को सब से पहली अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति सन् १९१४ में मिली, जब कि गत महायुद्ध के शुरू होने के कुछ दिन पहले लन्दन और पेरिस में आधुनिक भारतीय चित्रकला की प्रदर्शनी हुई। यूरोप के अनेक आलोचकों ने इस कला की प्रशंसा की। सन् १९१६ में मैंने "न्यू इण्डिया" पत्र के प्रतिनिधि-आलोचक की हैसियत से मद्रास से कलकत्ते जाकर इस चित्र-कला की मूल प्रतियों का ग़ौर से निरीक्षण किया। मुझे विश्वास हो गया कि मध्य-युग की भारतीय कला में प्राणों का सचार हो गया है। मैंने उसके प्रशंसक और प्रचारक की हैसियत से काश्मीर से त्रावणकोर और सिन्ध से मछली पट्टन की यात्रा की। जगह जगह व्याख्यान दिये और प्रदर्शनी की। मुझे यूरोप और अमरीका में भी इस भारतीय कला की प्रशंसा करने का श्रेय प्राप्त हुआ।

यह स्वाभाविक था कि बंगाल के क्षेत्र से बढ़ कर इस कला का देश में चारों ओर विस्तार होता। देश भर के अनेक कलाकार बंगाल जाकर वहां से कला के इस रूप को विविध प्रान्तों में ले गए। भारतीय चित्रकारों की सूची बढ़ने लगी। अनेक भारतीय चित्रकारों के नाम से लोग परिचित होने लगे।

श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री गगनेन्द्रनाथ ठाकुर के बाद श्री नन्दलाल बोस का पद बहुत ऊंचा समझा जाता है। श्री पी० के० चैटरजी में पौराणिक दृश्य चित्रित करने की असाधारण क्षमता है। श्री असित कुमार हलदार कवि-कल्पना को रंगों में उतार देने मे प्रवीण हैं। मैसूर के श्री के० वेंकटप्पा अपने चित्रों में कमाल का माधुर्य और विस्तार भर देते हैं। श्री रहमान चग़ताई ने ईरानी और भारतीय रंगों का सुन्दर सम्मिश्रण किया है। इसी तरह के सैकड़ों योग्य चित्रकार हैं। इन चित्रकारों की कूचा से एक ही भावना विविध रूपों में प्रदर्शित हुई है।

भारत की सरकार ने एक बड़े अरसे के बाद इस कला की प्रतिभा को स्वीकार किया। यानी जब तब उसने योग्य कलाकारों को लखनऊ, कलकत्ता और मद्रास के सरकारी कला विद्यालयों में प्रिन्सिपल नियुक्त किया। आज हम भारतीय चित्रकला का स्पष्ट असर सारी दुनिया में देख रहे हैं। भारतीय प्रभाव के ही कारण दुनिया के चित्रकार हवाई बातों या शक्ति के प्रदर्शन के बजाय आज आध्यात्मिक बातों के चित्रण की ओर अधिक झुक रहे हैं।

भारतीयता का हामी सम्राट शेरशाह

——(:०:)——

श्री अब्दुल बाक़ी खां, सहसरामी

—:◌:—

हुमायूं को हराकर शेरशाह भारत का एक छत्र सम्राट बना। जब तक वह जिया इन्साफ़ के साथ उसने हुकूमत की। सारे उत्तर भारत में उसकी बनवाई हुई इमारतों, पुल, सराय और सड़कों के निशान अब तक मिलते हैं। शेरशाह भारतीय संस्कृति का ज़बरदस्त हामी और उपासक था। शेरशाह का चचा नाज़िम खां ही शेरशाह का मीर मुन्शी था। समय समय पर शेरशाह और नाज़िम खां में जो भी बातें हुईं, उन्हें नाज़िम खां ने एक पुस्तक में दर्ज कर लिया है। इस पुस्तक की केवल तीन प्रतियां हैं। एक इम्पीरियल लाइब्रेरी कलकत्ता, दूसरी नवाब रामपुर के पुस्तकालय में और तीसरी मूल प्रति इस लेख के लेखक के पास है, जो नाज़िम खां के वंशज और बिहार के प्रसिद्ध राष्ट्रीय मुसलमान हैं। दोहरे कामा के शब्द और वाक्य शेरशाह के ही ज्यों के त्यों हैं।

आध्यात्म के सम्बन्ध में अपने चचा नाज़िम से एक बार बात करते हुए शेरशाह ने कहा—

शे० शा०—तो जन्नत क्या सचमुच कोई "इशरत ख़ाना" (ऐश की जगह) है ?

ना०—मुसलमान तो उसे शुभ कर्मों का फल समझते हैं।

शे०—तो मुझ जैसा ख़ुदा का एक तुच्छ बन्दा भी जन्नत बना सकता है और तुम जैसे नेक ग़ुलामों को उसमें बन्द कर सकता है ?

ना०—इसे 'जिन्दीक़ियत' (ख़ुदाई का झूठा दावा) कहेंगे जहांपनाह।

शे०—जिन्दीक़ियत यह है कि वह जो जन्नत को एक खिलौना बनाये।

ना०—तो फिर क्या होना चाहिये ?

शे०—जन्नत हर बन्दे के दायें हाथ में है। बन्दा दुनिया में ही दोज़ख़ और जन्नत बना लेता है। हर अच्छे अमल के अच्छे नतीजे का नाम जन्नत और बुरे अमल के बुरे नतीजे का नाम दोज़ख़ है। पवित्र और महान आत्मा की मस्ती जन्नत की मिसाल ढूढ़ती है।

इसके बाद दोनों में आत्मा के सम्बन्ध में बहस छिड़ जाती है।

शे०—बन्दे को यह जानने की इच्छा तो होनी चाहिये कि रूह क्या है ?

ना०—न जानना ही अच्छा है।

शे०—मैं "मुआफ़ी ख़्वाह" हूं। "हिन्द को पुराने पंडितों सों पूछो।"

ना०—वह भी कुछ ठीक जवाब नहीं देते।

शेरशाह०—"जवाब नाहीं उत्तर कहो" अच्छा हमसे सुनो। रूह वह "शक्ति" है, जो आदमी में कुछ करने की ताक़त देती है। यह रूह ही थी, जिसने हमसे इतना बड़ा काम कराया कि मैं आज बादशाह हूं। लेकिन मेरी रूह साफ़ नहीं है। हुमायूं

की रूह ज़्यादा साफ़ होगी। मज़लूम रूहें साफ़ और पाक होती हैं।

इसके बाद हिन्दुओं के पुराने धर्म-ग्रन्थ पर चरचा छिड़ती है।

शेरशाह—महाभारत की कहानियां तुमने सुनी हैं?

ना०—बहुत कम।

शे०—तो फिर तुमने इस मुल्क में रह कर जाना ही क्या?······मैं चाहता हूं कि महाभारत की कथा तमाम दुनिया में पहुंच जाय। इसमें आध्यात्म और दर्शन की बहुत सी बातें हैं। इसकी बहुत सी कथायें तो पुराने ईरानियों की कहानियों से मिलती जुलती हैं। मुझे यदि कुछ विद्वान मिल जांय, तो मैं यह साबित कर दूँ कि हिन्द, ईरान और अरब में बहुत ज़माने से मेल जोल चला आता है। सम्राट दारा से भी पहले पेशदादी और कियानी खानदान (तीन-चार हज़ार वर्ष पूर्व) के ज़मानों तक से "हमारा ताल्लुक़" रहा है।... हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ रामायण भी खूब है। महाभारत में युधिष्ठिर के तख़्त ताज़ से अलग होने का वाक़या बिलकुल 'शाहनामे' में ख़ुसरो के सल्तनत से अलग होने के वाक़ये से मिलता जुलता है। रामायण में "सीता महारानी" और उनका किस्सा 'हुमाती बा फ़रीत' और 'अरजाम्प' की कहानी से मिलता है।

ना०—यह काम तो बड़ा मुशकिल है।

शे०—आदमी मुशकिल काम करने के लिये ही पैदा हुआ है।

शेरशाह की दिली तमन्ना थी की भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर एक बड़ा इतिहास लिखा जाय। उसे प्राचीन भारतीय संस्कृति से बड़ा प्रेम था। इस सम्बन्ध में वह अपने दरबारियों से अकसर बात करता था। नाज़िम ख़ां लिखता है कि "शेरशाह कम बोलने वाला आदमी न था"; लेकिन एक दिन ख़िलाफ़ मामूल कई पहर की ख़ामोशी के बाद बोला—

"कितना अच्छा हो कि मैं हिन्द की हर उस ईंट को बचा सकूं, जो हिन्दुस्तान के मुसलमान ताजदारों ने तामीर करवाई। आसमान सब कुछ भूल जाये; लेकिन इसे यह न भूलना चाहिये कि मोहम्मद की उम्मत ने भी प्रेम और श्रद्धा से अपने हिन्द को सजाया और संवारा। काश मैं कोई ऐसी चीज़ बना सकता, जिसे रहती दुनिया तक याद रखा जाय।"

सत्रहवीं सदी के सहसराम के एक शायर हुसेनी-शाह ने लिखा है कि उसके ज़माने तक शेरशाह के अपने रचे हुये गीत सहसराम की पहाड़ियों में हर एक को याद थे। इन गीतों की थोड़ी सी पंक्तियां नाज़िम ख़ां की पुस्तक में दर्ज हैं, उनकी तीन लाइन हम यहां पर दे रहे हैं—

बरखा शब के होत हैं
भोर भी होगवीं भींग;
दिल मारा मुज़तर होवे
सब्ज़ा डोलत पींग!
खुशतर होवे सारा आलम
बदबख़्ती भी सोगवी नींद!

शासन के सम्बन्ध में नाज़िम की पुस्तक में शेरशाह के वाक्य हैं—

"हुक्मरानी [बादशाहत] यों तो मेरी है; लेकिन यह कुछ अच्छा नहीं है। ख़ुदा एक है और शान उसी की है। जो इस बारे में उसकी नक़ल करे, वह मुशरिक [ईश्वर विरोधी] है। अल्लाह मुझे माफ़ करे, कुछ कुछ मैं भी मुशरिक हूं। हुकूमत तो इसके बन्दों को करनी चाहिये, ताकि वही अपनी अच्छाइयों के भी 'मटौल' हों और बुराइयों के भी। एक शख़्स में बहुत सी अच्छाइयां भी सिमट आती हैं और बहुत सी बुराइयां भी। हुकूमत एक के बजाय बहुत से लोगों में बांट दी जाय, तो अच्छाइयां बुराइयां भी बंटते बंटते नहीं के बराबर हो जांय। ख़ुदा मुझे इसकी योग्यता दे कि मैं उसके आम बन्दों पर हुक्मरानी में उसका एक अदना ग़ुलाम साबित होऊं।"

उपरोक्त पुस्तक उस समय की भारतीय राजनीति, भाषा, आचार विचार आदि पर बेहद रोशनी डालती है। शेरशाह की हिन्दी भी बड़ी सुन्दर है। काश कि कोई प्रकाशक इस पुरानी हस्तलिपि को हिन्दी उर्दू में छाप सकता।

पच्छिमी सभ्यता हिन्दुस्तान की कर्ज़दार है

डाक्टर, एन० के० मेनन

आप में से जिन्होंने वाल्मीकि रामायण और मशहूर यूनानी कवि होमर के महाकाव्य को पढ़ा है, वे यह समझ सकते हैं कि होमर ने रामायण को ही अपने महाकाव्य का आधार बनाया। नीचे की तुलना से यह बात साफ़ हो जाती है—

१—रामायण में राम और लक्ष्मण का अनुपम प्रेम दिखाया गया है। मेनेलौ की कथा में भी दो यूनानी भाइयों के अनुपम प्रेम का वर्णन है।

२—राम और लक्ष्मण को सौतेली मां ने षड़यन्त्र करके बनवास दिलाया, जब कि यूनानी भाइयों को अपने चचा अर्गु के कारण वनवास मिला।

३—सीता एक झाड़ी के नीचे ब्रह्मा के चिन्ह हंस के अंडे से पैदा हुई। यूनानी राजकुमारी हेलन भी एक झाड़ी के नीचे हंस के अण्डे से पैदा हुई।

४—राम ने समस्त प्रतिद्वन्दियों को स्वयंवर में हराया और सीता ने जयमाल डाल कर राम को अपना पति चुना। मेनेलौ ने भी समस्त प्रतिद्वन्दी राजकुमारों को हरा कर कुमारी हेलन को प्राप्त किया।

५—सीता को रावण हर कर समुद्र पार लंका में ले गया। हेलन को भी शत्रु समुद्र पार ट्राय द्वीप में हर ले गये।

६—विभीषन एक पहाड़ी पर खड़े होकर राम को रावण की सेना और उसके विशेष सेनापतियों का निरीक्षण करा रहे हैं। हेलन प्रधान यूनानी सेनापति प्रिआम को शत्रु सेना का परिचय देती है।

७—रावण के बाण दुशमन को मार कर फिर तूणीर में वापस आ जाते हैं। इसी तरह हेक्टर के तीर भी तरकश में वापस आ जाते हैं।

८—जिस तरह वीर हनूमान किटकिटा कर रावण की सेना का संहार करते हैं, उसी तरह एचिल भी गरज कर ट्रोजन सेना का संहार करता है।

९—रावण की मृत्यु के पूर्व ख़ून की बरसा होती है, उसी तरह जब सर्पदन की मृत्यु होती है, यूनानी रणक्षेत्र में ख़ून बरसता है।

१०—प्रारम्भ में राम-रावण से लड़कर निरुत्साहित होते हैं और सोचते हैं कि अपनी सेना वापस भारत ले जायें। उसी तरह अगमेनन भी संहार देख कर यूनान वापस जाने को सोचता है।

११—रामायण में कुम्भकरन पहाड़ के समान है। मार्स को जब यूनानी योद्धा पल्लु ने मारा तो मार्स की विराट देह सात एकड़ ज़मीन घेर कर पड़ी।

१२—जिस समय राम और रावण का युद्ध होता है देव, गन्धर्व और किन्नर आकाश में इकट्ठा होते हैं। यूनानी ग्रन्थ में भी लड़ाई के समय उभय पक्षों के देवता युद्ध देखने आते हैं।

१३—कुबेर और शिव युद्ध के समय पांसा फेंकते हैं। यूनानी देवता जोव भी यही करता है।

१४—जब सीता निर्जल उपवास से प्राण त्यागने का निश्चय करती हैं, तो इन्द्र आकर उन्हें अमृत देता है। जब एचिल भी यही निश्चय करता है, तो

जीव मिनर्वा को भेज कर एचिल को प्राण दायक पेय देता है।

१५—विभीषण लंका का चतुर पुरुष था। ट्राय में अन्तेनर था। जब रावण हनूमान को मारने लगा, तो विभीषण ने ख़ुशामद करके उसकी जान बचवाई। जब मेनेलौ प्रतिनिधि बन कर ट्राय में आता है और उसके वध का आयोजन होता है, तो अन्तेनर उसकी जान बचवाता है। विभीषण रावण से प्रार्थना करता है कि सीता जी को लौटा दिया जाय। अन्तेनर पारि से प्रार्थना करता है कि वह हेलन को लौटा दे। विभीषण अपने देश से दग़ा कर दुशमन को समुद्र का रास्ता और निकुम्भिल की गुप्त बातें बताता है; अन्तेनर भी अपने मुल्क के ख़िलाफ़ ट्राय जीतने के सारे भेद उलिस को बताता है। रावण की मृत्यु पर विभीषण को लंका की राजगद्दी मिलती है और अन्तेनर ट्राय का राज पाता है।

१६—राम के पास स्वर्ग से रथ और ब्रह्मास्त्र आता है, एचिल के पास भी स्वर्ग से रथ आता है।

इस तरह के और बीसों उद्धरण दिये जा सकते हैं कि होमर ने रामायण की कथा को किस तरह आधार बनाकर अपने ग्रन्थ की रचना की।

मेक्सिको में भारतीय सभ्यता

एक समय था जब कि भारतीय सभ्यता का विस्तार अमरीका तक था। हाल की खोजों से पता चलता है कि मेक्सिको और युकतान का सम्बन्ध तो हज़ारों वर्ष पहले से भारत के साथ था। मेक्सिको की सरकार द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ "मैक्सिको के इतिहास" में लिखा है—"जो लोग सब से पहले इस महाद्वीप में, जिसे अब अमरीका कहते हैं, आए वह पूरब की ओर से भारतवर्ष से यहाँ आए थे।"

मैक्सिको की नैशनल म्यूज़िअम के भारतीय क्यूरेटर प्रोफ़ेसर रामन मेनन लिखते हैं—"मेक्सिको की 'मय' नामक जाति के लोग बिलकुल भारतीय थे। उनकी इमारतें, उनकी निर्माण कला, उनके खोदे हुए चित्र, उनका पहनावा सब इस बात के साक्षी हैं कि वे भारत से आए थे।"

अपनी "प्रिमिटिव ट्रैडीशनल हिस्ट्री" में हीवट लिखता है—"हिन्दू व्यापारी मैक्सिको में पाण्डवों का अठारह महीनों वाला वर्ष, व्यापारी मण्डियों का तरीक़ा और कारीगरों का जन्मगत संगठन का तरीक़ा ले गए।"

महाभारत में मय नामक जाति निर्माण कला में बड़ी चतुर मानी गई है। पाण्डवों का महल मय दानव ने ही बनाया था। मेक्सिको में इन मयों के बनवाए हुए विशाल मन्दिरों और महलों के खंडहर अब तक उनकी सभ्यता की महानता की गवाही देते हैं। मय हिन्दू थे। युकतान के एक मन्दिर में उसी तरह के एक हज़ार खम्भे थे, जिस तरह आजकल दक्षिण भारत में मदुरा के मन्दिर में हैं। वह 'सहस्र स्तम्भ मन्दिर' कहलाता था।

भारतीय सभ्यता का जो प्रभाव स्याम, चीन, हिन्द-चीन, जावा, सुमात्रा और मलाया में पड़ा, उससे हम भली भांति परिचित हैं। ये देश 'बृहत्तर भारत' ही समझे जाते थे। अब पुरातत्व वेत्ता यह सूचना दे रहे हैं कि कोलम्बस के जन्म से हज़ारों वर्ष पूर्व हिन्दुओं ने न सिर्फ़ अमरीका का पता लगाया, बल्कि उसे आबाद किया। मेक्सिको और पेरू की 'मय' संस्कृति हिन्दू संस्कृति थी, वह भारतवर्ष की ही आर्य संस्कृति थी।

भारतीय सभ्यता का आधार स्तम्भ धर्म-भावना है। धर्म के मानने वाले हर देश में हैं, किन्तु प्राणि-मात्र में धर्म की भावना को देखना यह पूर्वीय देशों की ही विशेषता है। भारतीय संस्कृति की बुनियाद वैदिक काल में रखी गई और उपनिषद् जीवन के अनुशासन और अनुभव के श्रेष्ठतम परिणाम हैं।

एशिया में मनुष्य जाति ने अपनी सारी शक्ति आध्यात्मिक प्रयोगों में लगाई; जब कि यूरोप दिमाग़ और बल के प्रदर्शन में लगा रहा। मानव जाति का इष्ट इसी में है कि वह व्यक्ति और समष्टि दोनों के कल्याण का ध्यान रखे।

यूरोप की भलाई इसी में है कि वह मानव जीवन का आधार धार्मिकता को बनाये, अन्यथा वह अपने प्राण-रहित संगठन के बोझ से दबकर चूर चूर हो जायगा। उसका धर्म-रहित ज्ञान किसी काम न आयगा। एशिया की भलाई भी इसी में है कि वह अपने अध्यात्म को मौजूदा दुनिया की परिस्थिति में ढाले; धर्म और अर्थ, स्व और पर में एक सामञ्जस्य पैदा करे; अन्यथा वह दिन ब दिन निराशा और असफलता के दलदल में फंसता जायगा। दुनिया तेज़ी से बदल रही है और उसे भी अपने को उसके अनुरूप बनाना चाहिये।

पच्छिम अपनी संसारी उन्नति, अपने संगठन अपनी मशीनों और अपनी सम्पदा के मद में आज यह स्वीकार करने को तय्यार नहीं कि पूर्वीय सभ्यता ने किस तरह बचपन में उसका लालन पालन किया।

हज़रत ईसा की महान शिक्षा को यूरोप सप्ताह के छै दिन आलमारी में बन्द कर के रखता है और इतवार को काँच के शीशों में सजाकर दुनिया में उसका प्रदर्शन करता है। सत्ता का लालच, धन की पिपासा और शोषण की मनोवृत्ति ने आज यूरोप की यह दर्दनाक हालत बनादी है।

सभ्यता और विज्ञान

सुसभ्य जीवन की तुलना शारीरिक सामर्थ्य, भौतिक वैभव, राजनैतिक अधिकार तथा व्यापारिक सफलता से नहीं की जा सकती। विज्ञान की सहायता से आराम पसन्द और मनोहर बना हुआ जीवन सभ्यता का सार है, ऐसा हम नहीं कह सकते। विज्ञान द्वारा प्रदत्त लाभों का उपभोग करते हुए भौतिक वैभव को अनुभव करते हुए, नियमित रेल गाड़ियों में बैठ कर, नियमित सैर करते हुए तथा अपनी मुलाक़ातों में मिनट मिनट की पाबन्दी का पालन करते हुए हम लोग बर्बर और जंगली हो सकते हैं।

... ...

सभ्यता एक जीवित-जाग्रत भावना का नाम है। वह कोई यान्त्रिक साधन नहीं है। ईसामसीह से सदियों पूर्व पाटलिपुत्र नगरी में तथा इसके पड़ौस में, ऐसे सत्पुरुष रहते थे, जो कन्दमूल और शाक पात खाकर निर्वाह करते थे। उनके कपड़े बहुत सादे थे, उनके आमोद प्रमोद थोड़े तथा अल्प व्यय वाले थे, उनके आवागमन के साधन मन्द गति के और अविकसित थे। तो भी हम यह नहीं कह सकते कि वे सभ्यता में किसी से कम थे; क्यों कि उनका आन्तरिक जीवन ऊंची भूमिका पर विकसित था। उनमें ऐसे सन्त पुरुष थे, जिनका नाम हम आज भी श्रद्धा से लेते हैं। उनमें ऐसे सत्कवि थे, जिनकी रचनाएँ हम आज भी पढ़ते हैं। उनमें ऐसे दार्शनिक थे जिनके विचारों का हम अबतक अनुशीलन करते हैं। वे ऐसे साधु पुरुष थे जिन्होंने हमको नैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण जगह तक उठाया है और जो कि अब उस अमर उत्तराधिकार के भागी बन चुके हैं, जो युग युगान्तर तक पराजित होने वाला नहीं है। सभ्यता का अर्थ यही है कि हम लोग पशु-जीवन से उठ कर दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हों।

—सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

अल्ला मियां के गीत

श्रीमती हाजरह बेगम

अङ्गरेज़ मिशनरियों ने जब अफ़्रिका के हबशियों को इन्सानियत की तालीम देनी चाही, तो उनको ईसाई बनाया। लेकिन न तो उनको हबशियों की ज़बान, न पुराने तमद्दुन (सभ्यता) न रस्म रिवाज से इतनी वाक़फ़ियत थी कि वह उनको मसीही मज़हब का फ़लसफ़ा समझा सकते और न ही उनको इसकी ज़्यादह परवाह थी। मक़सद तो यह था कि जल्द से जल्द ज़्यादा से ज़्यादा हबशी अपने आपको ईसाई समझने लगें। चुनांचे जो अजब नतीजा नये और पुराने फ़लसफ़े की टक्कर का निकला और जो रंग इस नई वारनिश ने पुरानी लकड़ी पर चढ़ाया, उसका अन्दाज़ा हम इन गीतों से कर सकते हैं, जो आज भी अमरिका के हबशी अपनी सोज़ भरी आवाज़ में गाते हैं और जिनको कि 'निग्रो स्प्रीचुएल्स' कहा जाता है।

कुछ ऐसा ही असर हिन्दुस्तान के पुराने बाशिन्दों* के दिमाग़ पर ज़रूर हुआ होगा। जबकि फ़रमारवा के मुसलमान होने की वजह से उन्होंने इसलाम क़बूल किया। उनका मज़हब, उनके वह रस्मोरिवाज थे, जो कि फ़ितरत के क़ानूनों की मुनासबत से अख़्तियार किये गये थे और इस मज़हब का फ़लसफ़ा समझने की उन्हें कभी ज़रूरत न पड़ी थी। क्योंकि वह तो नस्लन बाद नस्लन (पुश्त दर पुश्त) से बनता और बदलता आया था और उनके रगों रेशों में पेवस्त था। लेकिन अब एक ग़ैर मुल्की क़ौम ने अपना फ़लसफ़ा, वहदत और रसालत का उनके सामने रखा, जिसको उन्होंने इस हद तक क़बूल तो ज़रूर किया कि मुसलमान कहलाने लगे। लेकिन हुआ वही कि पुराने पर नई क़लई चढ़ गई, यानी बजाय कृष्ण कन्हय्या के बड़े पीर साहब, राम लछमन की जगह हसन हुसेन, सीता की जगह बीबी फ़ातमा हो गईं। इस दौर की एक झलक हमें अल्ला मियां के गीतों से मिलती है।

पूर्वीय हिन्दोस्तान में जब कोई ख़ुशी की तक़रीब होती है, तो रतजगा होता है यानी औरतें रात भर जागती हैं। ढोलक बजाती और गाती हैं और गुलगुले पकाती हैं। सुबह होते होते गुलगुले लेकर मसजिद जाती हैं और ताक़ भरती हैं। मुसलमानों में दस्तूर है कि ऐसे मौक़ों पर पहले सात गीत अल्ला मियां के गाये जाते हैं; फिर सात सहरे लड़के या भाई के और फिर तक़रीब के मुनासिब जो गीत हो मसलन सुहाग के या स्वयंवर के गीत। नीचे अल्ला मियां के गीतों में से कुछ दिये जाते हैं—

अल्ला मियां ख़ूब बनी तोरी शान।
सब महिनन में एको महीना अल्ला
वह भी महीना रमज़ान।
सब किताबन में एको किताब अल्ला
वह भी किताबे क़ुरान।
सब छतन में एको छत अल्ला
वह भी छते आसमान।
सब बीबिन में एको बीबी अल्ला
वह भी बीबी फातमा।
सब पीरन मे एको पीर अल्ला
वह भी पीर बड़े पीर।

अर्थात्—अल्ला मियां तेरी शान ख़ूब बनी है। सब महीनों में एक ही महीना अच्छा होता है, वह रमज़ान का महीना होता है और सब किताबों में बढ़कर किताब क़ुरान है; इसी तरह सारी छतों से

*आर्येतर

ज़्यादा उम्दा छत आसमान की है। बीबियों में एक ही बीबी क़ाबिले तारीफ़ है, वह बीबी फ़ातमा है। और पीरों में अगर कोई है, तो वो बड़े पीर हैं यानी (ख़्वाजा मुईनुद्दीन अजमेरी)।

ख़ूब बनी रे अल्ला तोरी महजद
ख़ूब बना रे नबी तोरा रोजा—नबी तोरा रोजा।
काहे बनी रे अल्ला तोरी महजद
काहे बना रे नबी तोरा रोजा—नबी तोरा रोजा।
सोने बनी रे अल्ला तोरी महजद
सोने बना रे नबी तोरा रोजा—नबी तोरा रोजा।
काहे बुहारूं अल्ला तोरी महजद
काहे बुहारूं नबी तोरा रोजा—नबी तोरा रोजा।
हाथों बुहारूं अल्ला तोरी महजद
पलकों बुहारूं नबी तोरा रोजा—नबी तोरा रोजा।
काहे चढ़ाऊं अल्ला तोरी महजद
काहे चढ़ाऊं नबी तोरा रोजा—नबी तोरा रोजा।
लड्डू चढ़ाऊं अल्ला तोरी महजद
पेड़ा चढ़ाऊं नबी तोरा रोजा—नबी तोरा रोजा।

अल्ला मियां तेरी मसजिद ख़ूब बनी है और ऐ नबी तेरा रोज़ा भी ख़ूब बना है। अल्ला तेरी मसजिद किस चीज़ की बनी है और ऐ नबी तेरा रोज़ा किस चीज़ का बना है। सोने की तो मसजिद अल्ला तेरी है और सोने का ही रोज़ा नबी का है। अल्ला मैं तेरी मसजिद में काहे से सुथराई दूं और नबी का रोज़ा मैं काहे से झाडूं? हाथों से अल्ला मैं तेरी मसजिद झाडूं और पलकों से नबी तेरा रोज़ा झाडूं और फिर चढ़ाऊं क्या मैं मसजिद और रोज़े में? लड्डू तो मैं अल्ला तेरी मसजिद में चढ़ाऊं और पेड़ा नबी तेरे रोज़े पर चढ़ाऊं।

अल्ला मियां के कलसों पै बरसत नूर।
केहर से उतरी सन्दल कटोरिया
केहर से उतरा फूल—हो……
केहर से उतरा जाजम बिछौना
बैठ गये नबी रसूल।
अल्ला मियां के कलसों पै बरसत नूर।
मक्के से उतरी सन्दल कटोरिया
मदीने से उतरा फूल — हो……
काबे से उतरा जाजम बिछौना
बैठ गये नबी रसूल?
किन ने जुठारा सन्दल कटोरिया
किनने जुठारा फूल — हो……
किनने जुठारा जाजम बिछौना
रूठ गये नबी रसूल!
मक्खी जुठारा सन्दल कटोरिया
भौंरा जुठारा फूल — हो……
चिउंटी जुठारा जाजम बिछौना
रूठ गये नबी रसूल!
अल्ला मियां के कलसों पै बरसत नूर।

अल्ला मियां के कलसों पर नूर बरसता है। किधर से उतरा सन्दल का कटोरा और किधर से उतरे फूल। और किधर से जाज़िम बिछौना उतरा जिस पर कि नबी रसूल बैठे।

मक्के से तो सन्दल का कटोरा उतरा और मदीने से फूल उतरे और काबे से ज़ाजिम बिछौना उतरा, जिस पर नबी रसूल बैठे।

सन्दल का कटोरा किसने जूठा किया और फूल और जाज़िम बिछौना किसने जूठा कर दिया कि नबी रसूल रूठ गये।

मक्खी ने सन्दल के कटोरे को और भौंरे ने फूल को जूठा किया और चींटी जाज़िम बिछौने पर चढ़ गई, इसलिये नबी रसूल रूठ गये।

चले आइयो बड़े पीर—महजद में।
सोने की थाली में भोजन परोसा
खइयो खइयो बड़े पीर—महजद में।
चांदी का गडुआ गङ्गाजल पानी
पियो पियो बड़े पीर—महजद में।
चले अइयो बड़े पीर—महजद में।

बड़े पीर (ख़्वाजा मुईनुद्दीन अजमेरी) तुम मसजिद में चले आना। मैंने सोने की थाली में अच्छा अच्छा खाना सजाया है, तुम मसजिद में खा लेना। चांदी के बर्तन में मैंने गङ्गा जल भरा है, ऐ बड़े पीर तुम आकर पी जाना।

आख़िर हालैण्ड के साम्राज्य का क्या होगा?

डाक्टर एन० एस० वर्धन

सत्रहवीं सदी में पुर्तगालियों और फ़ान्सीसियों के साथ हालैण्ड के रहने वाले डच भी भारतीय व्यापार में अङ्गरेज़ों के प्रतिस्पर्धी थे। आज भी जहां तहां हुगली और गङ्गा के किनारे डचों की पुरानी शानदार कोठियां खड़ी हैं। अङ्गरेज़ इतिहास लेखकों के अनुसार डच व्यापारी शराब बेचकर, नवाबों को लूटकर और भारतीय रिआया को सताकर मालामाल हो गये थे। जब भारतीय साम्राज्य के लिये फ़्रान्सीसियों और अङ्गरेज़ों में लड़ाइयां शुरू हुईं, तो अङ्गरेज़ों ने डचों की कोठियां और जहाज़ लेकर उन्हें जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों में व्यापार का और राज्य करने का अधिकार दे दिया था। तभी से डच, मलाया द्वीप समूह में, 'डच ईस्ट-इण्डीज़' के नाम से एक विशाल साम्राज्य के स्वामी हैं।

संसार की आजकल की परिस्थिति में कोई छोटा राष्ट्र न ख़ुद स्वतन्त्र रह सकता है और न उसके उपनिवेश ही स्वतन्त्र रह सकते हैं। उन्हें किसी न किसी बड़ी शक्ति की छाया के नीचे रहना ही होगा। डच साम्राज्य की हिफ़ाज़त का प्रश्न आज दुनिया के सामने है। डचों के देश हालैण्ड पर जर्मनी का क़ब्ज़ा है। डच सरकार ने पिछली मई में यह ऐलान कर दिया था कि वह किसी भी विदेशी शक्ति का हस्तक्षेप अपने डच-हिन्द के साम्राज्य पर स्वीकार न करेगी। प्रशान्त महासागर की तीनों बड़ी शक्तियां—अमरीका, जापान और अङ्गरेज़—इस बात को पसन्द करेंगी कि डच-हिन्द एक ऐसी कमज़ोर ताक़त की हुकूमत में बना रहे कि न तो जिसमें सैनिक शक्ति हो और न जो डच-हिन्द में उनके व्यापार को नुक़सान पहुंचा सके। किन्तु इन तीनों में से कोई इस बात को गवारा न करेगा कि डच हिन्द किसी मज़बूत राष्ट्र के आधीन हो जाय। अमरीका के परराष्ट्र सचिव हल और जापान के परराष्ट्र सचिव अरीता दोनों ने जो बयान दिये हैं, वे यही हैं कि दोनों में से कोई राष्ट्र डच-हिन्द में एक दूसरे के हस्तक्षेप को बरदाश्त न करेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में डच-हिन्द के साम्राज्य का एक विशेष स्थान है। इस द्वीप समूह से बेहद आमदनी होती है। राजनैतिक दृष्टि से उस पर डचों की हुकूमत है, किन्तु युद्ध की दृष्टि से अमरीका और इङ्गलिस्तान की नज़रों में उसका बेहद महत्व है। यदि उस पर जापान का क़ब्ज़ा हो जाय, तो फ़िलिपाइन, मलाया और आस्ट्रेलिया की स्वाधीनता ख़तरे में पड़ जाती है। अमरीका और इङ्गलिस्तान जिन समुद्री रास्तों से माल लाते ले जाते हैं, उनके बन्द होने की नौबत आ जाती है। फिर अमरीका और इङ्गलिस्तान ने अरबों रुपया डच-हिन्द में लगा रखा है। 'रायल डच शेल' नामक तेल की कम्पनी अङ्गरेज़ों की है। इतनी बड़ी तेल की कम्पनी सिर्फ़ दो अमरीकन कम्पनी और हैं। एक 'स्टैण्डर्ड आयल आफ़ न्यूजरसी' और दूसरी 'सोकोनी वैकुअम कम्पनी'। इस अङ्गरेज़ कम्पनी की मालियत लगभग पच्चीस करोड़ रुपया है। डच-हिन्द में बेशुमार टिन और

रबर होता है। इसके कारबार में भी ज़्यादातर रुपया अमरीका और इङ्गलिस्तान वालों ने लगा रखा है। इसमें इन दोनों मुल्कों को बेहद नफ़ा है। यदि जापान जैसे शक्ति शाली राष्ट्र के हाथों में डच-हिन्द चला जाय, तो अमरीका और इङ्गलिस्तान की आमदनी का बहुत बड़ा ज़रिया ख़तरे में पड़ जाय। जापान ख़ुद इस कच्चे माल को अपने क़ब्ज़े में रखना चाहेगा।

अपने व्यापार को बढ़ाने के लिये जापान हमेशा गिद्ध दृष्टि से डच-हिन्द को देखता रहा है। जापान जिस कच्चे माल की कमी अनुभव करता है, वही डच-हिन्द में बहुतायत से पाया जाता है। जापान यदि चीन पर क़ब्ज़ा भी करले, तब भी यह कच्चा माल उसे वहां न मिलेगा। डच-हिन्द की आबादी छै करोड़ है। जापान को यहां अपने मिलों के कपड़े की खपत के लिये विशाल मण्डी मिल सकती है। हालाकि जापान ने बड़े ज़ोर शोर से इस बात का खण्डन किया है कि प्रशान्त महासागर के देशों पर उसकी साम्राज्य क़ायम करने की आकांक्षा है। किन्तु यह वह कई बार कह चुका है कि एशिया के नव-निर्माण में डच-हिन्द जापान का साथ दे। यह 'नव निर्माण' क्या होगा, यह जापान तय करेगा। जापान के परराष्ट्र सचिव अरीता साहब ने ऐलान किया है कि यदि डच-हिन्द में हुकूमत बदले, तो डचों के बाद वहां जापान की हुकूमत होनी चाहिये। यह इसलिये कि जापान के वहां सब में बड़े हित निहित हैं और फिर जापान पूर्वीय राष्ट्रों का 'हित चिन्तक' (?) है। जापानी समुद्री सेना के सेनापति बार बार डच-हिन्द का ज़िक्र करते हैं। फिर आज यूरोपीय राष्ट्र महायुद्ध में फंसे हैं। चीन को जीत कर भी जापान को वहां से कोई विशेष लाभ न होगा। इसलिये यह कोई नामुमकिन बात नहीं कि जापान किसी दिन डच-हिन्द पर हमला करदे। किन्तु इस मामले से जापान को भी एक खटका है। यदि जापान के मुक़ाबले में डच हिन्द की मदद को अमरीका, आस्ट्रेलिया और अङ्गरेज़ों की फ़ौजें आ गईं, तब वह एक बड़ी लड़ाई हो जायगी और उस सूरत में उत्तर से जापान को रूस का भी भय रहेगा। इसलिये जब तक चीन और रूस के साथ कोई ढङ्ग का समझौता नहीं हो जाता, तब तक जापान डच-हिन्द को लेकर लड़ाई के मैदान में न उतरेगा।

डच-हिन्द का क्षेत्रफल ७,३४,००० वर्ग मील है। वह अमरीका का चौथाई और हालैण्ड से ५५ गुना बड़ा है। इस द्वीप समूह में एक छोटे से द्वीप टिमोर पर पुर्तगालियों की हुकूमत है, पूर्वीय न्यू-गिनी और बोर्नियो के एक तिहाई भाग पर अंगरेज़ों की हुकूमत है। बाक़ी सब का सब द्वीप-समूह डचों के एक छत्र अधिकार में है।

डच-हिन्द की छै करोड़ दस लाख आबादी में से केवल तीन प्रतिशत ही विदेशी हैं। देश वासियों ने अपने द्वीपों की ख़ूब तरक्क़ी की है। जावा की ख़ूब ठोस आबादी है और उसकी एक एक इंच ज़मीन पर खेती-बाड़ी होती है। तरह तरह के उद्योग-धन्धे भी इस द्वीप-समूह में फैले हुए हैं।

यूरोपियन, अमरीकन और यूरेशियनों की कुल आबादी दो लाख चालीस हज़ार है। इनमें ज़्यादातर डच हैं, जो सरकारी अफ़सर, व्यापारी या कारख़ानों के मालिक हैं। दस लाख चीनियों की आबादी है, जो छोटा मोटा रोज़गार करते हैं। जापानियों की तादाद कुल सात हज़ार है और उन्हें भी वही अधिकार प्राप्त हैं जो यूरोपियनों को हैं।

डच-हिन्द की आब हवा बहुत स्वास्थ्य प्रद है। यहां तरह तरह के खनिज पदार्थों के अलावा रबर, टिन, पेट्रोलियम, चीनी, नारियल, बनस्पति घी, तम्बाकू, मसाले और छालें आदि सामान बे शुमार तादाद में पाया जाता है। सारी दुनिया को कुनैन तो एक प्रकार से डच-हिन्द से ही मिलती है। रंगने और चमड़ा पकाने के सामान, रस्से, साबुन के लिये ताड़ का तेल और दवाइयों की जड़ी बूटियां भी डच-हिन्द में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। डच-हिन्द की सामग्री यदि बन्द हो जाय, तो अमरीका और इंग-लिस्तान के सैकड़ों कारख़ानों में ताला पड़ जाय।

विदेश को भेजे जाने वाले माल का पचास प्रतिशत पेट्रोल और रबर होता है। दुनिया में कुल २,०७,६०,००,००० बैरल पेट्रोल होता है। एक बैरल में ४२ गैलन पेट्रोल आता है। डच-हिन्द में ६,१५,८०,००० बैरल पेट्रोल होता है। जो देश पेट्रोल निकालते हैं, उनमें डच-हिन्द का पांचवा स्थान है। डच-हिन्द का सामान, मिस्र, जापान, चीन, अमरीका, न्यूज़ीलैण्ड और इंगलिस्तान आदि देशों में जाता है।

दुनिया में सब में ज्यादा रबर ब्रिटिश मलाया में होता है और उसके बाद डच-हिन्द में। गत वर्ष ब्रिटिश मलाया में ३,७६,००० टन रबर हुआ था और डच-हिन्द में ३,७२,००० टन। कुल दुनिया में सिर्फ़ १०,५५,००० टन रबर होता है।

दुनिया की खानों में से कुल १,८३,७०० टन टिन हर साल निकलता है। इसमें से ३१,२८० टन अकेले डच-हिन्द से निकलता है। यह मिक़दार बढ़ाई भी जा सकती है। गत वर्ष डच-हिन्द से लगभग एक अरब चालीस करोड़ रुपये का माल विदेशों में गया था। लगभग अस्सी करोड़ रुपये का माल बाहर से आया था। बाहर से आने वाली चीज़ों में लोहा, फ़ौलाद, मशीन, सूती कपड़े, सूत, खाने पीने की चीज़ें, मोटरें और दवाइयें आदि मुख्य थीं। गत वर्ष लगभग तीस करोड़ रुपये का माल अमरीका गया और वहां से लगभग दस करोड़ रुपये का माल डच-हिन्द आया।

आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से इस मूल्यवान देश डच-हिन्द पर क़ब्ज़ा करने के लिये आज बड़े बड़े राष्ट्र लालायित हैं। हालैण्ड पर हिटलर का क़ब्ज़ा है; पर डच-हिन्द में हालैण्ड की ही अमलदारी जारी है। दुनिया में आज इसकी ज़रा भी चर्चा नहीं कि डच-हिन्द के निवासी भी स्वाधीन हो सकते हैं, अपनी ग़ुलामी की जंजीरों को तोड़ सकते हैं और दुनिया के नव-निर्माण में स्वतन्त्र हैसियत से भाग ले सकते हैं!

हमारी संस्कृति की मर्यादा

हमारी संस्कृति की एक मर्यादा निश्चित थी। इसीलिए हमने दूसरे राष्ट्रों पर आक्रमण कभी नहीं किया। किसी न किसी कारण से हमारी संस्कृति अहिंसक रही। तभी तो हमारी पैंतीस करोड़ जनता है। यूरोपीय राष्ट्र दो करोड़ या चार करोड़ की ही बात कह सकते हैं; यहाँ पैंतीस करोड़ हैं।

इसका यह कारण है कि हिंसा का सिद्धान्त टूटा-फूटा और अहिंसा का सिद्धान्त साबित है। यूरोप की हालत काँच के प्याले जैसी है। ज़मीन पर पटकते ही टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। आप ज़रा एकाध काँच का प्याला ज़मीन पर पटक कर तमाशा देखिए। यूरोपीय राष्ट्रों के नक़्शों के समान छोटे-बड़े टुकड़े हो जायेंगे। लेकिन हम लोगों ने अपना पानी पीने का साबित प्याला बड़ी हिफ़ाज़त से सम्हाला है। कोई सज्जन बम्बई जाते हैं, वहाँ किराये पर एक कमरा ले लेते हैं। इकलौते एक मियाँ और इकलौती एक बीवी—यह जनाब परिवार कहलाने लगा!! वही हाल यूरोपीय राष्ट्रों का है। यूरोप हमें सिखाता है कि अगर हम अहिंसा का मार्ग अपनायेंगे, तो एक ही राष्ट्र की हैसियत से से जी सकेंगे। यह बात हमारी जनता बड़ी जल्दी समझ जाती है। लेकिन हम शिक्षितों के गले वह नहीं उतरती। क्यों कि हम पढ़े लिखे लोग अंग्रेज़ों के मानस-पुत्र ठहरे। अंग्रेज़ों का हम पर वरद हस्त है। उन्होंने हमारे दिमाग़ों पर जादू कर दिया है। इसीलिए तो पूंजी का कहीं ठिकाना न होते हुए भी हम बड़े पैमाने पर उत्पादन की लम्बी-लम्बी बातें करते हैं। हैसियत चरखा ख़रीदने की भी नहीं है; लेकिन बात पुतलीघर खोलने की करते हैं।

—विनोबा

मानव-संस्कृति का वैज्ञानिक अध्ययन

श्री लक्ष्मीकान्त झा, आई० सी० एस०

पूरबी सभ्यता और पच्छिमी सभ्यता की चर्चा अकसर अखबारों में, किताबों में, सभाओं में और लेकचरों में सुनाई पड़ती है। इसमें शक नहीं कि जिसे हम पूरबी सभ्यता कहते हैं और जिसे हम पच्छिमी सभ्यता कहते हैं—दोनों का अस्तित्व है, और दोनों में काफ़ी फ़र्क़ भी है। लेकिन इन दोनों सभ्यताओं में जो अन्तर है, वह क्या दिशा-भेद पर ही निर्भर करता है ? क्या हमारी दुनिया में कोई ऐसी लकीर है, जिसके पूरब में पैदा होने वालों का दिमाग एक तरह का हो और पच्छिम में पैदा होने वालों का दूसरे तरह का ? चीन पूरबी सभ्यता के अन्दर आता है और अमरीका पच्छिमी सभ्यता के अन्दर। लेकिन भूगोल को देखने से तो यही मालूम होता है कि अमरीका चीन से पूरब है और चीन अमरीका से पच्छिम।

कुछ लोग इस पूरब पच्छिम के सवाल को इस तरह पेश करते हैं, जिससे ऐसा मालूम होता है कि पूरबी और पच्छिमी मानव जाति की दो शाखाएं हैं, जिनमें कुछ ऐसे प्राकृतिक भेद हैं कि विचार-धारा, दृष्टिकोण, कला, दर्शन, सामाजिक प्रथाएं सदा से भिन्न प्रकार की रही हैं और रहेंगी। रडयर्ड किप्लिङ्ग की ये पंक्तियां प्रसिद्ध हैं:—

Oh, East is East, and West is West,
and never the twain shall meet,
Till Earth sky stand presently at
God's great Judgment Seat

मतलब यह कि पूरब और पच्छिम का मिलन प्रलय के पहले असंभव है। अगर पूरब और पच्छिम का मिलन देखना है, तो आधुनिक जापान में जाइये और देखिए कि पूरब से पूरब की जाति ने किस तरह पच्छिमी सभ्यता को अपनाया है। जापान में जिस तरह से कुछ ही वर्षों के अन्दर पच्छिमी सभ्यता का सिक्का जमा, उससे यह साफ़ है कि पच्छिमी सभ्यता किसी भी देश में फैल सकती है, चाहे वह पूरब हो या पच्छिम। और यह भी ज़ाहिर है कि इस सभ्यता का जाति या वर्ण विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं—सफ़ेद यूरोपियन और पीले जापानी दोनों इसे अपना सकते हैं।

असली बात तो यह है कि पूरबी सभ्यता और पच्छिमी सभ्यता बोलने के मुहावरे भर हैं। पच्छिमी सभ्यता से हमारा मतलब प्राचीन यूनानी सभ्यता से नहीं है, न तो एलीज़ाबेथ के समय की ब्रिटिश सभ्यता से है। यह सभ्यता वह है, जिसका जन्म यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति की वजह से हुआ। नये आविष्कारों ने, नई मशीनों ने, यूरोप के जीवन पर गहरी छाप डाली। इनका प्रभाव केवल यूरोप के आर्थिक जीवन पर ही नहीं पड़ा, बल्कि वहां की कला, दर्शन, शिक्षा, पारिवारिक जीवन इत्यादि पर भी। उनकी जिन्दगी का सांचा ही बदल गया। यूरोप वाले जहां जहां बसे थे, वहां वहां भी यह सभ्यता गई—अमरीका में और आस्ट्रेलिया में। कई कारणों से यह सभ्यता जापान में भी फैली।

भारत और चीन अब भी पूरबी सभ्यता वाले देश कहे जाते हैं। इसका कारण यह है कि इन देशों की जो अपनी पुरानी सभ्यता चली आ रही थी, वही अब तक है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि भारत और चीन पच्छिमी सभ्यता से बेदाग बचे हुए हैं। दोनों देशों में जहां तहां पच्छिमी सभ्यता का काफ़ी प्रभाव पड़ा है।

अब एक दूसरे पहलू पर ग़ौर कीजिए। क्या पच्छिमी सभ्यता एक है? या क्या पूरबी सभ्यता ही एक है? चीन और भारत दोनों में "पूरबी सभ्यता" फैली हुई है—पर दोनों देशों की अपनी अपनी सभ्यताएं हैं, जो एक दूसरे से भिन्न हैं। दर्शन, कला, सामाजिक प्रथा, भोजन आदि सब चीज़ों में चीनी संस्कृति और भारतीय संस्कृति में बहुत फ़र्क़ है। इसी तरह पच्छिमी सभ्यता में भी तरह तरह के भेद पाए जाते हैं। अमरीका की संस्कृति यूरोप की संस्कृति से बहुत भिन्न है। इङ्गलैण्ड के उच्च वंश और साधारणवंश (Lords and Commoners) का भेद सामाजिक जीवन में ही नहीं, शासन प्रणाली में भी पाया जाता है। फ्रान्स ने क्रान्ति के बाद यह भेद उठा दिया था। इधर सोवियट रूस में एक नये प्रकार का आर्थिक जीवन शुरू हुआ, जिसमें सम्पत्ति पर व्यक्ति का नहीं समाज का अधिकार माना गया। कुछ लोगों की राय है कि वहां एक नई सभ्यता का सूत्रपात हुआ।* मतलब यह कि पच्छिमी सभ्यता एक नहीं, बल्कि कई सभ्यताओं का समूह है, जिनमें कुछ बातें ऐसी हैं जो कि उन सब में पायी जाती हैं—और ये ही बातें पूरबी सभ्यता समूह में नहीं पायी जाती हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे यह नहीं समझना चाहिए कि पूरबी और पच्छिमी सभ्यताओं को छोड़ कर कोई और सभ्यता नहीं। आधुनिक पच्छिमी सभ्यता के पहले पूरब और पच्छिम दोनों में तरह तरह की सभ्यताएं हो चुकी हैं। यही नहीं अब भी संसार में सैकड़ों ऐसी सभ्यताएं हैं, जिन्हें पूरबी या पच्छिमी कहना अन्याय होगा। अफ्रिका के हब्शियों की तरह तरह की सभ्यताएं, अमरीका के लाल आदिवासियों (Red Indians) की सभ्यताएं, और उत्तरी ध्रुव के पास रहने वाली जातियों की सभ्यताएं भी दुनिया में हैं। ये सभ्यताएं अब भी प्रारम्भिक दशा में ही हैं और ये अधिक अग्रसर नहीं हुईं। ये जातियां असभ्य या जंगली कहलाती हैं। पर इनके सामाजिक जीवन में वे सब चीज़ें पाई जाती हैं, जो 'सभ्य' देशों के जीवन में मिलती हैं—धर्म, कला, क़ानून, इत्यादि। उनकी सभ्यता प्रारम्भिक है, नीचे दर्जे की है—यह हम जानते हैं। पर यह कहना अनुचित होगा कि उनकी सभ्यता का कोई अस्तित्व नहीं। अपनी संस्कृति उन्हें उसी तरह प्यारी है, जैसी हमारी संस्कृति हमें है। यही नहीं उनका विश्वास है कि उनकी सभ्यता को न मानने वाले असभ्य हैं—यानी जिस पूरबी और पच्छिमी सभ्यता को हम बड़ी इज्ज़त से सभ्यता कहते हैं, वह उनकी राय में असभ्यता है!

मानव सभ्यता के ऊपर जब हम इस तरह विचार करते हैं, तो हमें कुछ ख़ास बातें इस तरह नज़र आती हैं:—

(१) सारी दुनिया में एक सभ्यता नहीं है—देश देश की अपनी अपनी संस्कृति है, तरह तरह की प्रथाएं हैं।

(२) एक संस्कृति का प्रभाव दूसरी संस्कृति पर पड़ता है—और कभी कभी एक संस्कृति फैलती हुई दूसरी संस्कृति का स्थान ले लेती है।

(३) दुनियां में अब भी ऐसी संस्कृतियां हैं, जो प्रारम्भिक दशा में हैं—और बाहरी दुनिया का प्रभाव पड़ने पर भी ये बदलती नहीं।

'जङ्गली' और 'असभ्य' कहाने वाली जातियों के अस्तित्व का पता तो 'सभ्य' जातियों को सदियों से है। पर उनके सामाजिक जीवन और संस्कृति के सम्बन्ध में ठीक ठीक ज्ञान नहीं था। सभ्य जातियों का विश्वास था कि जंगली न तो सदाचार मानते हैं और न

*देखिये—Soviet Communism a New Civilization ? by Sidney & Beatrice Webb.

तो क़ानून। उनके समाज में जिसकी लाठी उसी की भैंस होती है और अराजकता का राज्य होता है।* धीरे धीरे इस सम्बन्ध में लोगों की जानकारी बढ़ने लगी। अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए भ्रमण करने वालों ने तरह तरह की 'जंगली' जातियों की प्रथाओं के सम्बन्ध में लिखना शुरू किया। यही नहीं जब सभ्य जातियों को यह मालूम हुआ कि जंगलियों से तिजारत करने में नफ़ा है, तो इन लोगों ने और भी दिलचस्पी लेना शुरू किया। संसार की विचित्र प्रथाओं पर कई किताबें निकलीं। लोगों की दिलचस्पी बढ़ी।

इसी समय मानव विज्ञान (Anthropology) के विद्यार्थी भी, जो मानव शरीरके विकास का अध्ययन करते थे 'जंगलियों' की शारीरिक आकृति के सम्बन्ध में अन्वेषण करने अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमरीका के जंगलों में पहुँचे। इनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक था। ये जो कुछ देखते थे उसका वर्णन करके ही संतुष्ट नहीं होते थे, बल्कि उनका विश्लेषण भी करते थे। अपने भ्रमण के वृत्तान्त में जब कुछ कहते थे तो यह दिखाने की भी कोशिश करते थे कि इन प्रथाओं में और हमारी प्रथाओं में बाह्य भेद रहते हुये भी आन्तरिक साम्य है।

जहाँ जंगलियों के सम्बन्ध में ज्ञान बढ़ने से यह मालूम होने लगा कि सभ्यों और असभ्यों में कितना साम्य है, वहाँ मनोवैज्ञानिक अन्वेषणों से यह प्रमाणित हो गया है कि मनुष्य के आचरण का वैज्ञानिक अध्ययन संभव है—मनुष्य की इच्छाएं स्वछन्द नहीं, नियम बद्ध हैं। और इन नियमों का हम उसी तरह वैज्ञानिक अध्ययन कर सकते हैं, जैसे जड़ जगत् के नियमों का। मनुष्य के व्यक्तिगत आचरण का वैज्ञानिक अध्ययन यदि संभव है, तो फिर सामाजिक जीवन का भी, जो व्यक्ति के जीवन का ही सामूहिक रूप है, संभव होना चाहिये।

अतएव मानव-विज्ञान और मनो-विज्ञान के विद्यार्थियों ने यह पूछना शुरू किया कि क्या कारण है कि संसार के हर देश में एक सी संस्कृति नहीं है? सभ्यता-संस्कृतियों के उत्थान-पतन का क्या रहस्य है? कभी एक देश की संस्कृति दूसरे देश में फैलती है—कभी चेष्टा करने पर भी संस्कृति बदलती नहीं—यह क्यों? मानव विज्ञान-वालों ने सामाजिक सम्बन्ध में भी वैज्ञानिक रीति से लिखना शुरू किया और सामाजिक मानव-विज्ञान (Social anthropology) मानव-विज्ञान की विशेष शाखा मानी गई। और धीरे धीरे इसमें इतनी तरक्क़ी हुई है कि अब इसे मानव-विज्ञान की शाखा न मान एक भिन्न विज्ञान—संस्कृति विज्ञान—मानते हैं।*

वैज्ञानिक हर बात में अपने सामने एक सवाल रखता है—"क्यों?" जो है या होता है, वह क्यों? और इस सवाल के जवाब में वह कोई नियम या सिद्धान्त चाहता है। संस्कृति-विज्ञान में जो तरह तरह के सिद्धान्त शुरू में चले थे, उन सब का यहां ज़िक्र नहीं किया जा सकता। पर यहाँ हम कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख करना चाहते हैं।

पहले कुछ वैज्ञानिकों का मत था कि कुछ मानव जातियां ऐसी हैं, जिनमें मस्तिष्क का पूरा पूरा विकास नहीं हुआ है, और वस्तुतः ये पशु की तरह अपनी प्रकृति या सहज मति—(instinct) के अनुसार काम करते हैं, न कि तर्क या बुद्धि के अनुसार। इस सिद्धान्त का खण्डन भी वैज्ञानिकों ने ही किया और दिखाया कि न तो जंगलियों और सभ्यों के मस्तिष्क में कोई आकृतिक-भेद है, न तो उनके सामाजिक जीवन से ही कोई ऐसा भेद नज़र आता है। सच पूछिए तो सभ्य समाज में भी बहुत सी ऐसी प्रथाएं हैं, जो तर्क की दृष्टि से बिलकुल फ़िज़ूल हैं। और

*Hobbs आदि प्रसिद्ध लेखकों ने राजनीति सम्बन्धी अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए ऐसा ही विचार प्रकट किया था।

* Social anthropology का शब्दशः अनुवाद—सामाजिक मानव-विज्ञान (!)—हमें अच्छा न लगा, और संस्कृति-विज्ञान कोही हमने उपयुक्त समझा। सम्भव है विद्वान पाठक कोई और अच्छा नाम बता सकें।
—लेखक।

जब जंगलियों की सामाजिक प्रथाओं का अध्ययन ठीक से किया जाता है, तो जो पहले निरर्थक बातें मालूम होती थीं, उन्हीं की आवश्यकता मालूम पड़ती है। वैज्ञानिक दृष्टि से तो यह विचार अब बिल्कुल मान्य न रहा कि एक जाति दूसरी जाति से मानसिक शक्तियों में तेज़ या सुस्त है। यह विश्वास अब केवल राजनीति के क्षेत्र में पाया जाता है—उदाहरणार्थ नात्सी जर्मनी का यह विश्वास कि जर्मन "आर्य" जाति संसार में सर्वश्रेष्ठ है।

एक दूसरा सिद्धान्त जो कुछ दिनों तक प्रचलित था, वह यह कि संस्कृति प्राकृतिक वातावरण (Natural environment) पर निर्भर करती है। इसमें सत्य का अंश अवश्य है। खाना, पीना, पोशाक वग़ैरह पर प्रकृति का बहुत प्रभाव पड़ता है। भारत में छुरी कांटे से लोग न खाकर हाथ से खाते हैं, पर ठण्डे मुल्कों में—यूरोप, चीन आदि में—लोग हाथ नहीं लगाते; क्योंकि बार बार हाथ धोने में तकलीफ़ होती है। लेकिन यदि जल-वायु आदि के प्रभाव पर ही संस्कृति का रूप निर्भर रहता, तो एक सी जलवायु में रहने वाले लोगों की एक सी संस्कृति होती। पर वस्तुतः ऐसा नहीं होता। उत्तरी ध्रुव के पास रहने वाली दो जातियों का नाम है एस्कीमो और चुकची। दोनों का वातावरण एक सा है; पर संस्कृति में बहुत कम साम्य है। अतएव विभिन्न जातियों की प्रथाओं का अध्ययन करने से यह सिद्धान्त सच्चा नहीं मालूम पड़ता। सिद्धान्त की दृष्टि से भी इसमें एक दोष है। प्राकृतिक वातावरण सदा एक सा रहता है; पर संस्कृति बदलती रहती है। एक स्थायी है और दूसरी जंगम। अतएव एक पर दूसरा कदापि निर्भर नहीं कर सकता।

इस कठिनाई का सामना करने के लिये एक नया सिद्धान्त खड़ा हुआ, जिसका नाम विकासवाद (Evolutionism) है। इसके समर्थकों का कहना था कि संस्कृति का विकास सब जगह एक सा होता है और इस विकास के नियमों की खोज ही संस्कृति-विज्ञान का उद्देश्य है। पर यह सिद्धान्त भी भ्रमपूर्ण प्रमाणित हुआ। प्राकृतिक और ऐतिहासिक कारणों का इस सिद्धान्त में स्थान नहीं। जिस सभ्यता का प्राकृतिक वातावरण परिमित है, उस सभ्यता का विकास उसी प्राकृतिक सीमा के अन्दर होगा। अतएव यह कहना कि विकास की कोई एक शृङ्खला है, जो सब देशों में लागू होगी, भूल है। यही नहीं, यह देखा गया है कि आकस्मिक आविष्कारों से या किसी ऐतिहासिक कारण से संस्कृति का रूप बदल गया है। ऐसी हालत में यह नहीं कहा जा सकता कि संस्कृति के विकास का कोई प्राकृतिक क्रम है।

विकासवाद के विपरीत कुछ दिनों तक एक सिद्धान्त चला था, जिसके समर्थकों का कहना था कि सभ्यता फैलती है, और एक ही प्रथा अगर दो संस्कृतियों में पायी जाती है, तो यह समझना चाहिये कि वह प्रथा एक संस्कृति से ही दूसरी में पहुँची है। अतएव जब एक सी प्रथा दो या अधिक सभ्यताओं में मिले, तो विकासवादी यह कहते थे कि दोनों सभ्यताओं में विकास के नियमानुसार एक से लक्षण दिखाई पड़े, और विस्तारवादी (Diffusionist) कहते थे कि एक सभ्यता से फैल कर ही वह प्रथा दूसरी सभ्यता में गई है। ग़रज़ यह कि एक के अनुसार जो बात एक सभ्यता में पाई जाती है, उसका जन्म हर सभ्यता में समय पाकर होगा, और दूसरे का कहना था कि अगर कोई चीज़ या कोई आविष्कार एक सभ्यता में पाया जाय, तो वह दूसरी किसी सभ्यता में तभी मिल सकता है, जब वह इस सभ्यता से फैल कर दूसरी सभ्यता में पहुँचे।

पर इन सिद्धान्तों की पुष्टि न तो तर्क की दृष्टि से हुई है और न संस्कृतियों के अध्ययन से। प्रायः संसार की सभी सभ्यताओं में आग से खाना पकाने का रिवाज पाया जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि पहले किसी एक जगह किसी ने आग से खाना पकाना सीखा और फिर अन्य सभी सभ्यताओं में वह प्रथा फैली। कोई कारण नहीं कि जिस तरह एक जाति ने आग जलाने की तरकीब का आविष्कार किया, उसी तरह अन्य जातियों ने भी किया। यही

नहीं, इस विस्तारवादी सिद्धान्त से इस सवाल का कोई जवाब नहीं मिलता कि कौन सी प्रथा फैलती है और कौन सी नहीं। इसमें कोई शक नहीं कि यूरोप का लिबास, यूरोप की प्रथाएं आज भारत जैसे देश में फैल रही हैं। इसी तरह और भी प्रथाएं एक देश से दूसरे देश में फैलती हैं। पर जो वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं, उन्हें तो यह बतलाना चाहिये कि यूरोप की प्रथाएं भारत में क्यों फैलती जाती हैं और भारत की प्रथाएं यूरोप में क्यों नहीं फैलतीं? यही नहीं यूरोप की कुछ प्रथाएं भारत में फैलती हैं कुछ और प्रथाएं नहीं फैलतीं। इसका कारण?

असली बात तो यह है कि आराम कुर्सी पर बैठ कर कोई अपने दिमाग़ से ऐसा सिद्धान्त नहीं निकाल सकता, जिससे यह सवाल हल हो जाय। संस्कृति के सम्बन्ध में वैज्ञानिक नियम निकालने के लिये संस्कृतियों के अध्ययन की आवश्यकता है। तरह तरह की प्रथाओं को देख कर, तरह तरह के समाजों को देख कर जो नियम निकलें, वे ही नियम सच्चे हो सकते हैं। इस तरह के अध्ययन के लिये 'जंगलियों' की संस्कृति सब से सुविधाजनक है; क्यों कि इनकी संस्कृति सरल होती है और अकसर इन पर दूसरी संस्कृतियों का प्रभाव कम होता है।

अतएव संस्कृति-विज्ञान के विद्यार्थी वर्षों अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के जङ्गलों में जाकर वहां की जातियों की प्रथाओं का अध्ययन करते हैं। कोई प्रथा किसी सभ्यता में क्यों है, इस सवाल का जवाब कोरे सिद्धान्त से नहीं दिया जा सकता, बल्कि असली हालत समझने के लिये यह जानना पड़ेगा कि उस सभ्यता में उस प्रथा का क्या उद्देश्य है और असल में उससे होता क्या है? प्रत्येक प्रथा का कर्म (function) समझ कर ही हम यह बतला सकते हैं कि उसका अस्तित्व क्यों है? अतएव संस्कृति-विज्ञान ख़ाली क़यास (deductive) का परिणाम नहीं, बल्कि कारण विशेष से (inductive) परिणाम पर पहुंचना है।

संस्कृति-विज्ञान के अध्ययन से क्या फ़ायदा? तरह तरह की संस्कृतियों को देखकर जो हर बुद्धिमान मनुष्य के मन में प्रश्न उठते हैं, उनका उत्तर तो मिलता ही है; लेकिन इससे और भी व्यावहारिक फ़ायदे हैं। संस्कृति-विज्ञान समाज शास्त्र का प्रमुख अङ्ग है, और अर्थ शास्त्र और राजनीति की तरह समाज की उन्नति के लिये आवश्यक है। बहुत से ऐसे सामाजिक प्रश्न हैं, जिनको हल करने में संस्कृति-विज्ञान सहायक हो सकता है। मान लीजिये कि आपके सामने यह प्रश्न है कि किसी सामाजिक दोष को—जैसे बाल-विवाह, या वेश्या वृत्ति, या मादक द्रव्यों का प्रयोग—क़ानून से बन्द किया जाय या नहीं? संस्कृति-विज्ञान का विद्यार्थी हमें कह सकता है कि इन दोषों के क्या कारण हैं जिनके हटने से ये दोष दूर होंगे, और यह भी बतला सकता है कि यदि हम क़ानून से इन्हें रोकें तो उसके क्या नतीजे होंगे? बहुत सी ऐसी बातें हैं जो क़ानूनी अधिकार के परे हैं और संस्कृति-विज्ञान के अध्ययन से हम यह कह सकते हैं कि इस सवाल को हम क़ानूनन हल करने की कोशिश करें या नहीं।

और भी बड़े सामाजिक प्रश्नों को लीजिये। क्या समाजवाद मानव प्रकृति के विरुद्ध है? यदि सम्पत्ति पर व्यक्ति का अधिकार न होकर समाज का अधिकार हो, तो क्या मनुष्य परिश्रम करना छोड़ देगा? क्या धन का समान बंटवारा संभव है? क्या युद्ध का अन्त हो सकता है? क्या लड़ना मनुष्य के लिये स्वाभाविक है? ये सब बड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं, जिनका जवाब देने में संस्कृति-विज्ञान हमारी मदद कर सकता है। हां यह विज्ञान अभी प्रारम्भिक दशा में है, और अभी तुरन्त हर सवाल का जवाब इसके पास नहीं है।

महंजो-दड़ो के शिला लेख

श्री हेनरी हेरास एस० जे०, एम० ए०

श्री हेरास सेण्ट जेवियर कालेज बम्बई के प्रिन्सपल और इण्डियन हिस्टारिकल रिसर्च इन्स्टिट्यूट के डाइरेक्टर थे। श्री हेरास स्पेनिश मिशनरी हैं। प्रस्तुत लेख में श्री हेरास ने महंजो-दड़ो के शिलालेखों पर अपनी राय दी है। हमें इस सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं। हमारे आदरणीय मित्र श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार का कहना है कि महंजो-दड़ो के सम्बन्ध में श्री हेरास की प्रतिपादित बातें अनिश्चित हैं। वे समझते हैं कि इस सम्बन्ध में बोलने का अधिकार सिर्फ डाइरेक्टर जनरल आफ़ आर्कियालाजी रावबहादुर के० एन० दीक्षित को है। हम प्रयत्न कर रहे हैं कि श्री दीक्षित इस सम्बन्ध में 'विश्ववाणी' में कुछ लिखें। इतिहास के दूसरे भारतीय विद्वानोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे भी इस सम्बन्ध में अपनी जानकारी से जनता को लाभ उठाने का अवसर दें। मैसूर के प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता डाक्टर शाम शास्त्री ने कहा था कि महंजो-दड़ो की विस्तृत जानकारी में कम से कम २५ बरस और लगेंगे।

महंजो-दड़ो के जिन शिलालेखों को अब तक अध्यवसायी विद्वानों ने पढ़ पाया है वे उस पांच हज़ार वर्ष पूर्व की भारतीय सभ्यता के धार्मिक विश्वासों पर काफ़ी रोशनी डालते हैं। इन शिला-लेखों के अध्ययन से पता चलता है कि महंजो-दड़ो की जनता का धर्म बीज रूप में वर्तमान हिन्दू धर्म ही था।

हम ने जिन शिलालेखों का अध्ययन किया है, उनके अनुसार महंजो-दड़ो की जनता एक सर्व शक्तिमान परमात्मा को मानती थी, जिसकी लोग 'अन' नाम से उपासना करते थे। अन ही समस्त देवी देवताओं और चराचर का स्वामी समझा जाता था। वह अकारण और अनित्य था। उसका दूसरा नाम 'इरुवन' था, जिसका अर्थ है कि वह अपने तई सम्पूर्ण था। शिलालेखों के अनुसार वह जीवन देने वाला सम्पूर्ण, अखण्ड और महान था। वह सब जगह और सबके भीतर था। उसमें पैदा करने, रक्षा करने और नष्ट करने तीनों की शक्ति थी। उसके आठ रूप थे। उसका सब में प्रमुख रूप सूर्य का था। इस रूप में वह आकाश मार्ग से नित्यप्रति राशिमाला का (Zodiac) का निरीक्षण करता रहता था। उस ज़माने में ग्रह केवल आठ थे। यह शिलालेखों में लिखा है। अन वर्ष के हर महीने में विविध रूप धारण करता था। अन के ही रूप आठ ग्रहों के रूप हैं। शिलालेखों में दो रूपो का ख़ास तौर पर ज़िक्र है। एक भेड़ा और दूसरा मछली। एक जगह भेड़ा और मीन की सम्मिलित मूर्ति का ज़िक्र है, जो 'नान्दूर' के देवता की मूर्ति समझी जाती है। यही नान्दूर महंजो-दड़ो का अति प्राचीन नाम है।

महंजो-दड़ो में जिस परमात्मा की उपासना होती थी, शिलालेखों के अनुसार उसके तीन नेत्र थे। एक शिलालेख में उसके इन तीन नेत्रों की तुलना तीन तारों से की गई है। अन की आंखें मीनाक्षी जैसी थीं।

महंजो-दड़ो में अन के जो नाम शिलालेखों में पाए जाते हैं, उनमें से कई अब भी दक्खिन भारत में शिव के नाम हैं, जैसे 'एनमाइ' 'बिदुकम', 'पेरान' और 'तन्दवन' आदि।

लिंग पूजा का उस समय आम रिवाज न था। महंजो-दड़ो की मुख्य आबादी 'मीनों' की थी। संस्कृत ग्रन्थों में शायद इन्हें ही 'मत्स्यों' के नाम से पुकारा गया है। ये मीन लोग लिंग पूजा से नफ़रत करते थे। महंजो-दड़ो के एक राजा ने लिंग पूजा को स्वीकार करके अपना नाम 'चुन्नि मीन' रखा। उसी के आदेश से 'बिल्लव' और 'कवल' नामक बाहरी जातियों के प्रचारकों ने महंजो-दड़ो के मीनों में लिंग पूजा का प्रचार किया। किन्तु चुन्नि मीन के इन प्रयत्नों को जनता ने बड़े असन्तोष और रोष के साथ देखा। चुन्नि मीन के ख़िलाफ़ बग़ावत हुई। चुन्नि मीन को तख़्त से उतार कर क़ैद में डाल दिया गया और बाद में उसे देवता के मन्दिर में बलिदान चढ़ा दिया गया।

अन के बाद अन्य देवताओं की श्रेणी में दो देवता प्रमुख थे। एक शिलालेख में अन और इन दोनों देवताओं का एक त्रिमूर्ति के रूप में वर्णन आता है। इन तीनों में अन के बाद 'अम्म' (मां) नामक देवी का महत्व था। अम्म को 'मिन कन्नि' भी कहते थे। तीसरे देवता के नाम का पता अब तक जो शिलालेख पढ़े गए हैं, उनमें नहीं मिला। शिव के उपासक उस ज़माने में पिता और माता, अन और अम्म के सम्मिलित रूप की 'अर्धनारीश्वर' के नाम से शायद पूजा करते थे। इनके अतिरिक्त 'नीलवन' यानी पृथ्वी के देवता, मेघ के देवता, नदियों के देवता, मृत्यु के देवता और पाताल के देवता का भी वर्णन मिलता है।

महंजो-दड़ो में वृक्षों की पूजा का भी आम रिवाज था। हर शहर और गांव का एक पवित्र वृक्ष था और उसकी पूजा की जाती थी। 'अयनार' या इष्ट देव और कुलदेव की पूजा का भी रिवाज था। देवताओं के चिन्हों में सब में प्रमुख 'त्रिशूल' था। कभी कभी अन की जगह त्रिशूल की पूजा होती थी। 'फरसा' और 'फन' भी पवित्र चिन्ह समझे जाते थे। ये सारे चिन्ह आजकल के हिन्दू धर्म में शिव के चिन्ह हैं। पूजा की अनेक विधियां आजकल की तरह ही थीं। किन्तु उस ज़माने की पूजा का विशेष अनुष्ठान मनुष्य बलि से किया जाता था। एक बार में सदा २१ मनुष्यों की बलि चढ़ाई जाती थी। सात सात मनुष्यों की श्रेणी एक वृक्ष के नीचे, जो 'मौत का वृक्ष' कहलाता था, लाई जाती थी और उन्हें क़ुरबान किया जाता था। लाशों को 'वन्दियों' (गाड़ियों) में लाद कर श्मशान ले जाकर जलाते थे। मन्दिरों के पास अपनी जायदादें, धर्मादा और रियासतें थीं। एक बार तो मछली मारने के टैक्स की समस्त आमदनी लिङ्ग पूजा के लिये दे दी गई थी।

राज्य की शासन प्रणाली धार्मिक थी। राजा देश का प्रधान पुरोहित था। देवादि देव ही देश का सच्चा शासक समझा जाता था। राजा केवल उसका प्रतिनिधि मात्र था। महंजो-दड़ो के राजा अपने देश के नाम 'नान्दूर' पर 'नान्दुल वन' यानी 'नान्दूर के किसान' कहलाते थे।

मोहेंजो दड़ो की समूची बस्ती में सभी मकान प्रायः एक ही हैसियत के पाये गये हैं। राजाओं जैसा महल नहीं निकला। जान पड़ता है वह एक प्रजा तन्त्र बस्ती थी। उसकी पक्की इमारतें, साफ़ नालियां, खुली सड़कें और बीच में यह सुन्दर स्नानागार एक ऊंची सभ्यता को सूचित करते हैं।

यह चित्रित मटका शव दफ़नाने के काम आता था।
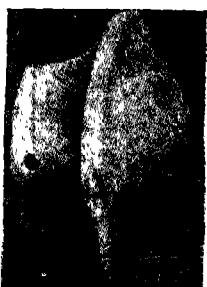
विचित्र जानवरों के चित्रों वाली लिपि से अङ्कित मुहरें वहां बहुत पाई गई हैं। ये किस काम आती थीं यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये लेख अभी पढ़े नहीं गये। अन्य कुछ चीज़ें भी इस चित्र में हैं जो शायद पूजा की सामग्री हों। बीच में एक आधुनिक शिवलिंग तुलना के लिये रखा गया है। वेद में लिङ्ग के पुजारियों से घृणा प्रकट की गई है।
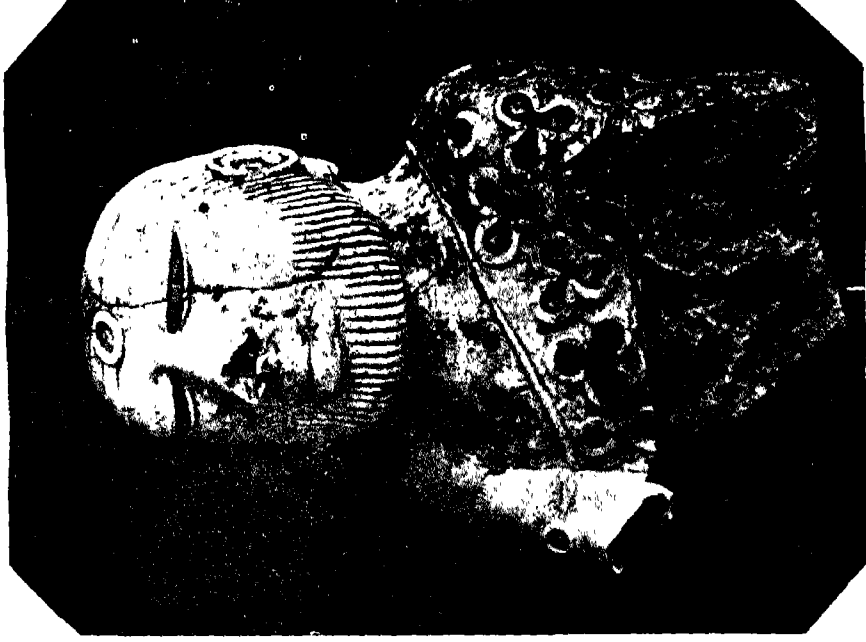
वे लोग मूर्तियां भी अच्छी बनाते थे। मूर्ति के दुपट्टे पर सुन्दर छपाई है। मुहञ्जो दड़ो में कपास भी पाई गई है, यद्यपि सूत ग्रन्थों से पहले आर्यों के साहित्य में कहीं कपास का पता नहीं है। यह व्यक्ति चेहरे से भी आर्य नहीं जान पड़ता।

महात्मा ज़रथुस्त्र

—o:o—

पण्डित सुन्दरलाल जी

—:o:—

ईरानी अपने पुराने इतिहास को सात कालों में बांटते हैं—

१—पिशदादि काल ४००० ई० पू० से २००० ई० पू० तक

२—कियानी काल २००० ई० पू० से १००० ई० पू० तक

३—मीडिया काल ८५० ई० पू० से ६०० ई० पू० तक

४—हखामनीषी काल ६०० ई० पू० से ३२५ ई० पू० तक

५—यूनानी काल } ३२५ ई० पू० से १९९
६—पार्थी काल } ईसवी तक

७—सासानी काल १९९ ईसवी से ६५१ ईसवी तक

ईरानियों से पहले के ईरान निवासी

इनमें पहले दोनों कालों का कोई ठीक ठीक इतिहास नहीं है। इसलिए ईरान का ऐतिहासिक काल १००० ई० पू० ही से माना जाता है। ज़ाहिर है कि आजकल के ईरानियों यानी आर्यों के ईरान में बसने से पहले वहां सक वग़ैरह जाति के जो लोग रहते थे, वह काफ़ी सभ्य थे। मुमकिन है वह और हिन्दुस्तान के द्रविड़ एक ही क़ौम रहे हों। ईरानियों ने इन से बहुत कुछ सीखा। ये लोग पृथ्वी, जल, हवा, आग वग़ैरह की पूजा करते थे। इनकी पूजा में कई तरह के कर्मकाण्ड शामिल थे। उनके पुरोहित थे जो 'मागी' कहलाते थे। उनके देवताओं के मन्दिर होते थे। नए ईरानियों में पुरोहितों और मन्दिरों का कोई रिवाज न था। आहिस्ता आहिस्ता दोनों एक दूसरे में रिल मिल गए। और जिस तरह नए ईरानियों ने पुराने ईरानियों से लिखना पढ़ना सीखा, उसी तरह उनसे और तरह तरह के पूजा पाठ और रस्म रिवाज भी सीखे, यहां तक कि 'मागी' दोनों के पुरोहित हो गए। कहा जाता है 'आग' की पूजा को इतना महत्व देना भी नए ईरानियों ने पुराने अनार्यों ही से लिया। उनकी वेदी पर अब आग सदा जलती रहने लगी। अग्नि पवित्र थी, इसलिये उसे फूंक कर जलाना, उसे अपवित्र करना पाप था। आग के बाद पानी का महत्व था। नदी में कोई गन्दी वस्तु साफ़ करना भी जुर्म समझा जाने लगा। पानी के बाद धरती समझी जाती थी। अपने मुरदों को वे न आग में जलाते थे, न पानी में बहाते थे और न धरती में गाड़ते थे; क्योंकि मुरदा सब में अपवित्र चीज़ थी। मागी अपने मुरदों को गिद्ध और कुत्तों के लिये छोड़ देते थे। पुजारी सर पर ऊंची टोपी और सफ़ेद कपड़े पहनते थे। जनता उनसे भविष्य की घटनाओं पर सलाह लेती थी। ये सब चीज़ें आर्यों ने अपने से पहले के ईरानियों से लीं।

सुधार की आवश्यकता

सारांश यह कि ईसा से एक हज़ार साल पहले की मिली जुली ईरानी क़ौम में तरह तरह के सैकड़ों

देवी देवता पूजे जाते थे, रूढ़ियां और कर्मकाण्ड बढ़ गए थे। तरह तरह के बेजा और बुरे रिवाज फैलते जा रहे थे, ईरानी समाज को, उसके विचारों, विश्वासों और व्यवस्था को बदलने की आवश्यकता थी। समाज के संगठन और उसकी हालत के बदलने के साथ-साथ सनातन मानव-धर्म के अखण्ड तत्व को, उस नित्य सत्य को, जो स्वयं कभी नहीं बदल सकता, नए नाम और रूप देने और नए ढंग से प्रकट करने की आवश्यकता थी। ज़रूरत थी कि पुराने कालातीत देवताओं को ख़त्म कर एक अनन्य परमेश्वर की उच्चतर कल्पना ईरानियों के सामने रखी जावे और उनके धर्म को एक ऐसे उदार और व्यापक सदाचार की नींव पर क़ायम किया जावे, जो समाज की बदली हुई हालत में उसे विनाश से बचा कर सुख संहृति की ओर लेजा सके। ऐसे ही अवसरों पर मनुष्य जाति को अवतारों, पैग़म्बरों, नबियों, द्रष्टाओं और सुधारकों की ज़रूरत होती है।

महात्मा ज़रथुस्त्र

ईरानी क़ौम के उस संकट के समय में हज़रत ईसा से एक हज़ार साल पहले स्पिताम कुल में महात्मा ज़रथुस्त्र का जन्म हुआ। ज़रथुस्त्र के बाप का नाम पौरुशास्व, मां का दुग्धोवा और दादा का नाम हौस्ताश्व बताया जाता है। ज़रथुस्त्र की पूरी जीवनी कहीं नहीं मिलती। गाथाओं से पता चलता है कि शुरू से ही ज़रथुस्त्र को अपने देश और अपनी क़ौम की हालत पर दुःख था और वह सोचा करता था।

"गांव के चरण धोती हुई एक छोटी-सी नदी बहती थी। [लड़कपन में] वह घण्टों उसके किनारे बैठ कर उसका कलकल निनाद सुनता रहता। रात्रि को तारों की अनन्त राशि देखता रहता। इसके बाद [अपना घर छोड़कर] तीस साल तक उसीदारण्य पर्वत पर उसने एकान्त में प्रभु का चिन्तन किया। उसने रो रो कर अपने प्रभु से प्रार्थना की कि उसे सन्मार्ग दिखाई दे। इस तरह से ध्यान, जागरण, मनन और चिन्तन की कठोर तपस्या के बाद ज़रथुस्त्र अहुर मज़्द के व्यापक रूप को अपने अन्दर अनुभव करने लगा। सत्य का प्रकाश उसके अन्तर में उदय हुआ। सत्य की जिस खोज में वह निकला था, उसे पाकर वह वापस घर लौटा।"

ज़रथुस्त्र की चिन्ता

ज़रथुस्त्र ने अपनी क़ौम की शोचनीय हालत को बड़े दुःख के साथ अनुभव किया। उसने देखा कि अनेक देवताओं की अलग अलग पूजा असत्य है और समाज की संहृति की नाशक है। बुरे और ज़ालिम देवताओं को भेंटों और बलियों के ज़रिये प्रसन्न रखने की कोशिश सारी क़ौम को अन्याय और अमानुषिकता की ओर ले जा रही थी। आपस के प्रेम, सुचरित्रता और पवित्रता की जगह कर्मकाण्डों और रूढ़ियों ने ले रखी थी। ज़रथुस्त्र ने नगर नगर और गांव गांव घूमकर अपने अन्दर की सच्चाई का प्रचार करना शुरू कर दिया।

अहुर मज़्दा और अंग्रमैन्यु

अच्छे और बुरे दो तरह के देवताओं की पूजा को बदलकर उसने उपदेश दिया कि संसार में केवल दो शक्तियां काम कर रही हैं। एक सारी सृष्टि के बनाने वाले अहुर मज़्दा की शक्ति और दूसरी उसके विरोधी अहिरमान की शक्ति। परमात्मा का ख़ास नाम उसने अहुरमज़्द बताया और मित्र और वरुण को—जो ईरानी आर्यों के सब से बड़े देवता थे—अहुर मज़्द ही के नाम बताया। अहिरमान का शुरू का रूप 'अंग्रमैन्यु' है। ज़रथुस्त्र ने अहुरमज़्दा को प्राणी मात्र का जन्म देने वाला, सब का ईश्वर और प्रकाश, सत्य और भलाई का भण्डार बताया और अहिरमान को उसके विरुद्ध अन्धकार, असत्य और बुराई की शक्ति बताया।

सारी सृष्टि को जिसमें आदमी, जानवर, दरख़्त और तमाम पुराने देवता शामिल थे, उसने दो हिस्सों में बांटा। एक अहुरमज़्दा के साथी और दूसरे अहिरमान के। एक पवित्रता, सदाचार, सत्य और प्रकाश की ओर जाने वाले प्राणिमात्र का भला करने वाले, और दूसरे अपवित्रता, अनाचार, असत्य और अन्धकार की ओर जाने वाले दूसरों का बुरा करने

वाले। इन दोनों शक्तियों में निरन्तर संग्राम जारी है, जिसमें आख़री विजय अहुरमज़्दा और उसके पक्ष ही की होगी। मनुष्य का काम केवल अहुरमज़्दा की उपासना करना और उसकी आज्ञाओं को मानना है। उसका धर्म पवित्रता, सदाचार और सचाई की ओर चलकर अहुरमज़्दा की शक्ति को सहायता पहुंचाना है।

एक परमात्मा की पूजा

इस तरह ज़रथुस्त्र ने बहुत से देवताओं की पूजा की जगह केवल एक परमात्मा की पूजा का उपदेश दिया और सारे मानव-समाज को उसी एक परमात्मा की औलाद और आपस में भाई बतलाया। ज़रथुस्त्र ने अपने उपदेशों को अहुरमज़्द का सन्देश (पैग़ाम) और अपने को पृथ्वी पर सच्चे धर्म की स्थापना के लिये अहुरमज़्द का सन्देशवाहक (पैग़ाम्बर) बतलाया।

ज़रथुस्त्र से पहले ईरान में 'देव' शब्द वैसे ही आदर का शब्द था जैसे हिन्दुस्तान में। ज़रथुस्त्र ने—शायद पुरानी देव पूजा का अन्त करने के लिये ही—'देव' शब्द के अर्थ को उलट दिया। केवल अहुरमज़्द, वरुण और मित्र को उसने परमात्मा के नाम बताया। कुछ और पुराने देवताओं के नामों को अहुरमज़्द के अलग अलग गुणों के नाम बताया। बाक़ी सब पुराने देवताओं को जिनमें ख़ास इन्द्र था उसने अह्रिमान के साथी बताया। उन्हें ख़ुश करने के बजाय उनका मुक़ाबला करना मनुष्य का फ़र्ज़ बताया। उसी समय से 'देव' शब्द ईरान में बुरे अर्थों में आने लगा और फ़ारसी ज़बान में आज तक आता है।

अपने से पहले के छै देवताओं (१) अमेरेतात (अमरत्व), (२) हौर्वतात् (सुवार्त, (३) वोहुमन (सुमति), (४) अशेम (सत्यम्), (५) आरमैति (अरमति), और (६) क्षथ्वाइर्य (क्षत्रवीर्य) को ज़रथुस्त्र ने अहुरमज़्द के छै ख़ास गुणों—अजर अमर, सर्व-व्यापक, मंगलमय, सत्यस्वरूप, प्रेमरूप और ऐश्वर्यवान का वाचक बताया और इन गुणों पर मनन करना आदमी के लिये हितकर बताया। सूरज, आग, पानी और पृथ्वी को उसने केवल जड़ पदार्थ बताया; किन्तु इन पर विचार करने की भी इसलिये इजाज़त दी क्यों कि ये सब परमात्मा की प्रकृति के दृष्टिगोचर अंश हैं। किन्तु इनमें से किसी की पूजा या उपासना की उसने कड़ी मनाही की। अहुरमज़्द का किसी तरह का भी बुत या उसकी प्रतिमा बनाने का उसने निषेध किया। पशुबलि, नरबलि और मदिरा-सेवन का उसने ज़ोरों के साथ खण्डन किया।

ज़रथुस्त्र के दूसरे उपदेश

ज़रथुस्त्र ने सबसे ज़्यादह ज़ोर सचाई और पवित्र जीवन बिताने पर दिया। उसके शब्दों में (१) दुष्मत (दुर्मत यानी बुरे विचारों), (२) दुज़ुक्त (दुरुक्त यानी बुरे वचनों) और (३) दुज़्वर्ष्त (दुष्कर्म यानी बुरे कर्मों) से बचते हुए (१) हुमत (सुमत यानी अच्छे विचारों), हुक्त (सूक्त यानी अच्छे वचनों) और (३) हुवर्ष्त (सुवर्त या सुकर्म यानी अच्छे कर्मों) की ओर जाना ही मनुष्य के लिये मुक्ति का एक मात्र रास्ता है।

अलग अलग मनुष्य समूह जब एक जगह रह कर एक व्यवस्थित जीवन बसर करने लगते हैं, तो उन्हें सबसे ज़्यादह ज़रूरत खेती करने और पशुओं को पालने की होती है। इसीलिये ज़रथुस्त्र ने खेती करने और जानवर पालने को हर आदमी के लिये ज़रूरी बताया और कहा कि बिना इनके मनुष्य नैतिक यानी इख़लाक़ी तरक्क़ी नहीं कर सकता। गाथा में एक जगह लिखा है—

"दुखी है वह भूमि जो ऊसर है, जिस पर किसी हलवाहे ने अपना हल नहीं चलाया; जिसे एक अच्छे हलवाहा की ज़रूरत है। उसी तरह जिस तरह कि एक सुन्दर स्त्री, अरसे तक निस्सन्तान रहे, और जिसे एक अच्छे पति की चाहना हो।"

वेन्दिदाद (३-३१) में लिखा है—

"जो ज़मीन में बीज बोता है वह पवित्रता बोता है।"

सचाई की महिमा को बयान करते हुए उसने कहा कि, "सत्य के ऊपर विश्वास करके, अच्छे काम करके, अच्छी बातें कह कर, अच्छे विचार रखकर, अपनी आत्मा और शरीर को सदा पाक रख कर मनुष्य शैतान (अहिरमान) की ताक़त को कम करता है, धर्म के बल को बढ़ाता है और अहुरमज़्द से अच्छे फल पाने का हक़दार बनता है; इसके ख़िलाफ़ झूठ के ऊपर विश्वास रखकर, बुरे काम करके, बुरी बात कह कर, बुरे शब्द मुंह से निकाल कर, बुरे विचार रख कर और नापाक रह कर मनुष्य अधर्म को बढ़ाता और शैतान की मदद करता है।" ज़रथुस्त्र के उपदेशों में 'सत्यनिष्ठा' को धार्मिक जीवन की सबसे बड़ी पहचान बताया गया है।

उसने बताया कि बुरे कामों का प्रायश्चित्त या कुफ़ारा ज़्यादह अच्छे कामों से ही हो सकता है। भेंटो से या बलि देने से या दूसरों की हिंसा से किसी के बुरे काम नहीं कट सकते। परमपिता अहुरमज़्द के यहां हर आदमी के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े सब कामों का पूरा हिसाब रहता है। मरने के दिन हर आदमी की आत्मा को 'चिनवत' नाम के पुल पर से गुज़रना पड़ता है, जो तलवार की धार से भी ज़्यादह बारीक और तेज़ है। जिनके अच्छे कामों का पलड़ा उनके बुरे कामों के पलड़े से भारी होगा, वह उस पुल को पारकर अनन्त प्रकाश या नूर के देशों में सदा के लिये परमानन्द भोगेंगे। लेकिन जिनके बुरे कामों का पलड़ा ज़्यादह भारी होगा, वे उस पुल से नीचे गिर कर अनन्त अन्धकार के लोक में धधकती हुई आग में जा पड़ेंगे।

ज़रथुस्त्र की महानता

शायद मिस्र के सम्राट पैग़म्बर इखनातन को छोड़कर ज़रथुस्त्र पहला महापुरुष था, जिसने एक निराकार परमपिता परमात्मा में विश्वास रखने और सब आदमियों को भाई भाई मानने का उपदेश दिया; जिसने अलग अलग क़बीलों, ख़ानदानों और जातियों की दीवारों को झूठा बता कर सारे मनुष्य समाज को केवल दो भागों, भलों और बुरों में तक़सीम किया और भलाई और बुराई का साफ़ साफ़ फ़रक़ हमारे सामने रखा; जिसने बुराई के साथ लगातार संग्राम करते रहना हर आदमी का धर्म बताया, जिसने मरने के बाद के जीवन, आत्मा के अमर होने और कर्मों के फल में विश्वास दिलाया, जिसने भले विचारों, भले वचनों और कर्मों को सारी रूढ़ियों, पूजा पाठ और कर्मकाण्ड पर तरजीह दी और जिसने सचाई को धर्म का सब से बड़ा अंग क़रार दिया।

अत्याचार और कष्ट सहन

लेकिन पुराने विश्वासों का टूटना इतना आसान नहीं होता। लोगों ने ज़रथुस्त्र को बाग़ी और धर्म द्रोही कहना शुरू किया। घर वालों ने उसे निकाल दिया। मित्रों ने उसका साथ छोड़ दिया। वह जनता को धर्म भ्रष्ट और गुमराह करने वाला समझा जाने लगा। कई कई दिन तक उसे रोटी का एक कौर नसीब न होता। इस पर भी गृहविहीन और अकेला वह अपने अहुरमज़्द के सन्देश को दर-दर फिर कर सुनाता रहा।

कई साल की कोशिशों के बाद भी जब वह अपने आस पास के इलाक़े पर कोई असर न डाल सका, तो उसका दिल दुख और निराशा से भर गया। उसने दूर दूर के गांवों में जाकर प्रभु का सन्देश सुनाने का फ़ैसला किया। वहां भी अपमान, व्यंग, तानों और लांछना ने उसका साथ न छोड़ा। पैरों में छाले पड़े हुए वह दर दर भटकता रहा। एक दिन वह थका मांदा सन्ध्या के समय एक गांव में दाख़िल हुआ। लोगों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। जब उसने उन्हें अपना सन्देश सुनाना शुरू किया, तो गांव के पुरुषों ने उसे धर्म-द्रोही कहकर धिक्कारा, स्त्रियों ने उसे स्राप दिया और गांव के बच्चों ने ढेले मार मार कर उसे गांव के बाहर खदेड़ दिया। भूखा, प्यासा

ज़ख़्मी और निराशा से भरा हुआ वह एक पेड़ के नीचे बैठकर अपने प्रभु से प्रार्थना करने लगा :—

"ऐ मेरे प्रभु, तेरा सन्देश लेकर अब मैं किस ओर जाऊं ? तू ही बता मैं तेरा सन्देश किसे सुनाऊं ? न लोग मेरे कहने पर कान देते हैं और न निडर स्वेच्छाचारी शासकों पर ही तेरे इस भक्त के कहने का कोई असर पड़ता है ! ऐ अहुरमज़्द ! अब मैं तेरी सच्ची उपासना को किस तरह आगे बढ़ाऊं ? न मेरा कोई मददगार दिखाई देता है और न कोई साथी। ऐ अहुरमज़्द ! मैं रोकर तेरी दया की याचना करता हूं। तू ही मेरा हित-चिन्तक है। मैं तुझसे ही शान्ति और सन्तोष की प्रर्थना करता हूं।"

कौन कह सकता है कि अहुरमज़्द ने ज़रथुस्त्र की प्रार्थना नहीं सुनी !

ज़रथुस्त्र की ज़्यादातर ज़िन्दगी अपने देशवासियों की तरफ़ से बेइज़्ज़ती और तिरस्कार का स्वागत करने ही में बीती। बरसों उसने कन्दमूल फल खाकर पेड़ों के नीचे गुज़ारे। पर वह अपने उद्देश्य से न डिगा। एक परमेश्वर में और सचाई की आख़री विजय में उसे अमिट विश्वास था। उसका सब से पहला अनुयाई उसका एक नज़दीकी भाई या रिश्तेदार मैध्योइमा-ओंघ था। होते होते जब ईरान के किसी राजा वसिष्ठ (या विश्ताश्व) ने ज़रथुस्त्र के उपदेशों को सुनकर नए धर्म को ग्रहण किया, तब से ज़रथुस्त्र को कुछ सफलता मिलनी शुरू हुई।

ज़रथुस्त्र की हत्या

ज़रथुस्त्र अपना काम करता रहा। ७७ वर्ष की उमर में अहुरमज़्द की प्रार्थना करते हुए किसी ने उसे छुरा भोंक कर मार डाला। शाहनामे में लिखा है कि बलख़ की लड़ाई में तूरानियों ने उसकी हत्या की।

ज़रथुस्त्र के मरने के बाद उसके विचारों की और ज़्यादह क़द्र होनी शुरू हुई। दो सदी के अन्दर सारे ईरान ने उसके मत को स्वीकार कर लिया और सब अपने को ज़रथुस्त्री धर्म के मानने वाले कहने लगे। बहुत से अलग अलग देवताओं की जगह अब सब ईरानी एक अहुरमज़्द की उपासना करने लगे। उस एक अहुरमज़्द की सृष्टि और संतति की हैसियत से उनमें प्रेम, एकता और एक दूसरे की सेवा के भावों का संचार होने लगा। जगह जगह की निरर्थक पुरानी रूढ़ियों और कर्मकाण्डों के बन्धनों से आज़ाद होकर वे अब पवित्र जीवन और सदाचार की ओर बढ़ने लगे। इसी के साथ और इसी की बदौलत उनका राजनैतिक जीवन भी तरक़्क़ी करने लगा और पूरी ईरानी क़ौम सार्वाङ्गीण उन्नति के मार्ग पर क़दम बढ़ाने लगी।

ज़रथुस्त्र के फ़ुटकर उपदेश, ज़न्द-अवस्ता, वेन्दीदाद, यस्न, यष्टि वग़ैरह ज़रथुस्त्री ग्रन्थों में दिये हुये हैं। इनमें से कुछ ग्रन्थ गद्य में हैं और कुछ सुन्दर पद्य में। नीचे लिखे यस्न के सूत्रों से मालूम होता है कि जो लोग शुरू में इस धर्म के ख़िलाफ़ थे, वे ज़रथुस्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार करते थे और फिर ज़रथुस्त्री धर्म स्वीकार करने पर किस तरह प्रतिज्ञा करते थे —

फ़ुटकर उपदेश

१—"मैं अपने को मज़्दा का भक्त और ज़रथुस्त्र का अनुयाई मानता हूं। मैं देवों का दुश्मन हूं और अहुर में विश्वास रखता हूं। मैं अमेश स्पेन्त का गुण-गान करता हूं ········

२—"मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अब से मैं मज़्दा के पुजारियों के न पशु चुराऊंगा और न उनके गांवों को लूटूं और नष्ट करूंगा।

३—"मैं गृहस्थों से वादा करता हूं कि अब से वे जहां चाहे आवें जांय, उनपर कोई हमला न करेगा। वे अपने पशुओं को जहां चाहे चराएं, उन्हें कोई न छुवेगा। मैं दोनों हाथ जोड़कर यह प्रतिज्ञा करता हूं। अब मैं न लूट-खसोट करूंगा और न मज़्दा यस्त्रियों के गांव नष्ट करूंगा। मैं न हत्या करूंगा और न किसी को चोट पहुंचाऊंगा।"

× × ×

८—"मैं मज़्दा का उपासक और ज़रथुस्त्र का भक्त हूं। मेरा इन दोनों पर विश्वास है। मैं अच्छी

बातें सोचता हूं, अच्छे शब्द बोलता हूं और अच्छे काम करता हूं।

९—"मैं मज़्दा यस्नि धर्म पर विश्वास करता हूं। मैं अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हूं, लेकिन उनका इस्तेमाल नहीं करता।" *

तीन धार्मिक उसूल

तीन उसूलों या तीन धार्मिक आधारों पर ज़रथुस्त्री पुरोहित ज़ोर देते थे :—

१—गोपालन और खेती, पाक और उत्तम काम हैं।

२—सारी सृष्टि भलाई और बुराई के दो हिस्सों में बंटी हुई है।

३—हवा, पानी, पृथ्वी और आग शुद्ध और पाक चीज़ें हैं।

पुरोहित जिस समय आग के सामने बैठकर पूजा करते थे, तो अपने मुंह पर कपड़ा लपेट लेते थे, ताकि उनकी सांस से आग नापाक न हो।

उपवास के विरुद्ध

संसार में शायद अकेला ज़रथुस्त्री धर्म ही ऐसा है, जो उपवास को कोई महत्व नहीं देता। बल्कि ज़रथुस्त्र की उपवास के ख़िलाफ़ आज्ञाएं हैं। वेन्दिदाद में लिखा है—

"तब पुरोहितों से कहो कि वे जनता को उपदेश दें—'कि जो भोजन नहीं करता, उसमें अच्छे काम करने की शक्ति नहीं रहती। उसमें खेती करने की शक्ति नहीं रहती······खाकर ही हर प्राणी ज़िन्दा रहता है। न खाने से उसकी मृत्यु हो जाती है।"

विश्व बन्धुत्व

वेन्दिदाद में 'मनुष्य मात्र भाई भाई हैं' इसका जगह जगह बड़ा सुन्दर ऐलान है—

"हम आर्य देशों के पवित्र पुरुषों के फ़्रवशी [वैदिक पितृ यानी आत्माओं] की उपासना करते हैं······हम आर्य देशों की पवित्र स्त्रियों की आत्माओं की उपासना करते हैं।······हम तूरानी मुल्कों के पवित्र पुरुष और पवित्र स्त्रियों की आत्माओं की उपासना करते हैं।······हम सारी दुनिया के पवित्र पुरुषों और पवित्र स्त्रियों की आत्माओं की उपासना करते हैं।"

यष्ट—१३ में लिखा है—

"हम पवित्र पुरुषों और स्त्रियों की आत्माओं की उपासना करते हैं, चाहे वे किसी समय में और कहीं भी पैदा हुई हों। उन आत्माओं की हम उपासना करते हैं, जो नेक कामों के लिये कोशिश [जेहेद] कर रही हैं या जिन्होंने कोशिश की है या जो कोशिश करेंगी।"

यष्ट की इस प्रार्थना में उपनिषदों के कुछ विचारों की झलक है—

"हमें बुद्धि दो, गम्भीर चिन्तन दो, वाक पटुता दो, आत्मा की पवित्रता दो, अच्छी स्मृति दो और वह समझ दो, जो विद्या से नहीं आती!"

हर मज़दा यस्नी अहुरमज़्दा से प्रार्थना करता था—

"मुझे भली और नेक सन्तान दो, जो शासन के काम में चतुर हो, योग्य हो तन्दुरुस्त और बलवान हो, संकट से डरने वाली न हो, अच्छे काम करने वाली हो, बुद्धिमान हो। ऐसी सन्तान दो जिससे मेरे कुल का, मेरे गांव का मेरे शहर का, प्रान्त का और मेरे देश का मान बढ़े।"

आत्म संयम

गाथा के कुछ वाक्य हैं—

"सचाई का रास्ता ही ठीक रास्ता है। बाक़ी सब रास्ते बेकार हैं। जो सच्ची बातों में साहसी नहीं है, उसका साहस निकम्मा है। बुरा वह है जो बुरों से सम्बन्ध रखता है। नेक वह है जो नेकों के साथ रहता है। प्राणों से उतर कर मनुष्य के लिए सब से ज्यादह महत्त्व पवित्रता का है। वह अपने कर्तव्य के प्रति चोर है जो दूसरों के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं निबाहता। जो दूसरों को सुख पहुँचाता है, वही वास्तविक सुख का हक़दार है। जो अपनी आत्मा को नहीं जीत सकता, वह दुनिया को जीत कर क्या करेगा।" *

एक ईश्वर में विश्वास

ज़रथुस्त्री धर्म मानने वालों के बारे में एक इतिहास लेख लिखता है—

*Translation by A. V. W. Jackson of Columbia, New York.

* Zoroastran Civilization by M. N. Dhalla.

"वे सच्चाई से और दृढ़ता से केवल एक परमात्मा की उपासना करते हैं। वे परमात्मा की उपासना के साथ किसी दूसरे देवता को नहीं जोड़ते। उनके धार्मिक सिद्धान्तों और रिवाजों को देखते हुए उन्हें एकेश्वरवादी धर्मों में जगह मिलनी चाहिये।

...वह संसार के उन्नत, सब से ज़्यादह पाक और विवेक पूर्ण धर्मों में से एक था।" *

पुरोहितों का आदर्श

पुरोहितों को उपदेश दिया जाता था कि—"वे बुद्धि को अपना कवच बनाएं, सन्तोषके अस्त्र शस्त्र से अपनी देह को सजाएं, सत्य की ढाल रखें, कृतज्ञता की गदा रखें, भक्ति का धनुष और उदारता का तीर रखें, नम्रता का भाला, सहन शीलता की बरछी और ईश्वरेच्छा के दुर्ग में बैठकर बुराई रूपी शत्रु से युद्ध करें।" †

शिक्षक या दीक्षक को आदेश था कि "वह अपने चरित्र को इतना शुद्ध और उज्वल रखे कि दूसरों के लिये दर्पण का काम दे। ऐसा दर्पण जिसमें उसकी अच्छाइयों का प्रतिबिम्ब दिखाई दे, ताकि विद्यार्थी या जिज्ञासु उसके आत्मा रूपी दर्पण को देखकर उसका अनुसरण कर सके।"*

इन ही उसूलों पर चलकर ईसा से पहले के ईरानी एक उन्नत और सुसभ्य क़ौम बने।

* Babylon and Persia by Zenaide A. Ragozin

† Zoroastrian Civilization by M. N. Dhalla.

*Ibid.

पण्डित सुन्दरलाल जी की पुस्तक "विश्व के सांस्कृतिक इतिहास" के "ईरान की संस्कृति" नामक अध्याय का एक छोटा सा अंश।

मुसलमानों की आर्थिक स्थिति

——(:०:)——

मौलवी तुफ़ैल अहमद साहब

—:○:—

इन्सान जब पहले पहल दुनिया में आया, तो उसकी हालत दूसरे जानवरों से अधिक भिन्न न थी। दरख़्तों के फलों, पत्तों और जड़ों से लेकर जानवरों के गोश्त और ख़ून तक जो कुछ उसे मिलता, उसे वह खाता था। खाना प्राप्त करने के लिये उसे जङ्गल में जाने और शिकार के लिये जानवरों का पीछा करने तथा इन कामों में मेहनत करने की ज़रूरत होती थी। इसलिये उस वक्त तक आदमी सिर्फ़ परिश्रम से परिचित था।

धीरे धीरे उसकी बुद्धि ने उसे बताया कि दानों और गुठलियों को ज़मीन में दबा कर उससे ज़्यादा बीज, ग़ल्ला और फल तय्यार करे। अनुभव से उसे मालूम हुआ कि जो मेहनत वह शिकार के पीछे भागने और पौधों से भोजन प्राप्त करने में ख़र्च करता था, उससे कम परिश्रम में वह ज़मीन से बहुत ज़्यादा ग़ल्ला और फल तय्यार कर सकता था। इसलिए उसके दिल में ज़मीन की क़दर हुई। इस तरह उसकी जीविका के लिये दो चीज़ें सामने आईं यानी मेहनत और ज़मीन।

आरम्भ में वह जितना भोजन प्राप्त करता था, उसे खाकर ख़तम कर देता था। मगर बाद में उसने शहद की मक्खियों की तरह बचा हुआ भोजन इकट्ठा करना शुरू किया, जो पतझड़ और अकाल के ज़माने में उसे काम देने लगा। यह भंडार दौलत कहलाया। यह दौलत अगर किसी आदमी के पास ज़्यादा होती और उसके भाई या पड़ोसी के पास न होती, तो ज़रूरत के वक्त उसे उधार के तौर पर दे दी जाती थी। मगर उस पर बढ़ोतरी लेना अनुचित समझा जाता था। क्योंकि उस ज़माने में दौलत और अधिक दौलत पैदा करने के काम में न आती थी, बल्कि ज़िन्दगी की आवश्यकताओं को पूरा करने की चीज़ थी। इसी आधार पर यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू का कहना था कि "रुपये अंडे और बच्चे नहीं देते।" पर इस विरोध के होते हुये भी कुछ मालदार लोग अपना ग़ल्ला या सिक्का ग़रीबों या ज़रूरत मन्दों को देकर उस पर इज़ाफ़ा या ब्याज लेते थे, जिससे उनकी दौलत और अधिक बढ़ती थी। इसी के साथ क़र्ज़दार ग़रीबों की कंगाली इसी से बढ़ जाती थी। और जब ये ग़रीब लोग क़र्ज़े का रुपया ब्याज सहित अदा न कर सकते थे, तब उसके बदले में देने वालों के ग़ुलाम बनकर उसकी सेवा करने के लिए बाध्य होते थे, जब तक कि उसका क़र्ज़ा पूरा न हो। इन कारणों से क़र्ज़दारों के साथ आम तौर पर लोगों को सहानुभूति थी और क़र्ज़ देने वालों से नफ़रत करते थे। मुल्की और मज़हबी दोनों क़िस्म के क़ानूनों में सूद के लेन देन की बिलकुल मनाही थी और उसके लिए सख़्त सज़ाएं नियत थीं; जैसा कि नीचे लिखे धार्मिक नियमों से मालूम होगा।

धर्म में सूद की मनाही—

१—यहूदियों का धर्म, दुनियां का बहुत पुराना धर्म है। उनकी आसमानी किताब "ख़रूज" में लिखा

है—"और अगर तुम्हारा भाई बीच में मोहताज या ख़ाली हाथ हो जाय, तो तुम उसकी सहायता करो, चाहे वह अजनबी हो या मुसाफ़िर; जिससे वह तुम्हारे साथ जिन्दगी बसर करे। तू उससे सूद और नफ़ा मत ले और अपने ख़ुदा से डर।" (अख़बार बाब २५ आयत ३५ व ३६)

२—ईसाइयों की आसमानी किताब "लूका" की इञ्जील में आयत ३५ में लिखा है—"अपने शत्रुओं से मुहब्बत करो और अहसान करो और क़र्ज़ दो। और किसी प्रकार की अधिक आशा न रखो। बस तुम्हारा अन्त बड़ा होगा और तुम ख़ुदा के बेटे होगे।"

३—हिन्दुओं की मनुस्मृति में लिखा है—"ब्याज खाने वाले का अनाज खाना मना है।" मनु० ४। २१०। और लिखा है कि—"सूद खाने वाले का अनाज पाख़ाना है।" ४। २२०।

४—क़ुरान पाक में कई आयतों में सूद की मनाही है, *मगर नीचे की आयतें ख़ास तौर पर उस* काल के सूद के तरीक़े पर प्रकाश डालती हैं।

अ—"और जो तुम सूद देते हो कि लोगों के *माल बढ़ें, वह अल्ला के नज़दीक नहीं बढ़ते।* और जो देते हो *सदक़ा, जिससे तुम्हारी मुराद ख़ास अल्लाह* की रज़ा होती है। पस यह सदक़ा देने वाले लोग *माल कई गुना कर लेते हैं।" (रकूम ६ सूरा रूम* पाराह २१)

दूसरी जगह आज्ञा है —"घटाता है अल्लाह तू रबूआ को और बढ़ाता है सदाक़त को और अल्लाह ना पसन्द करता है हर ना शुक्र मुजरिम को।" (सूरह बक़र) ब—और "ऐ मुसलमानो ख़ुदाई (माख़ज़ा) से अन्देशा करो और जो कुछ तुम्हारा सूद किसी के *ज़िम्मे रह गया है,* उसे छोड़ दो। अगर तुम हुक्म मानने वाले हो। पस अगर तुमने न किया, तो हुशियार रहो वास्ते लड़ने ख़ुदा और रसूल से। अगर तुमने मामलात सूदी से तोबा करली, तो तुम्हारा हक़ सिर्फ़ असली मांग है। न तुम ज़ालिम बनो और *न मज़लूम।"* (सूरा बक़र)

इन चारों मज़हबों की किताबों से पता चलता है कि उन ज़मानों में रुपया केवल ज़रूरतें पूरी करने के लिए लिया जाता था, ख़्वाह वह सूद पर मिले या बिला सूद मिले या बतौर सदक़ा ज़क़ात के प्राप्त हो।

पूंजी

मगर मज़हबी मनाहियों के रहते हुये भी सूद का लेन देन बन्द न होता था। यहां तक कि कुछ लोगों ने सूद पर रुपया लेकर उसे खेती बारी और व्यापार के कामों में लगाना शुरू किया, जिससे और ज़्यादा माल व दौलत पैदा हुई। फ़रीक़ैन के इस लाभ को देखकर हिन्दुस्तान में सूद के रिवाज की यह सूरत निकाली गई कि "दाम दोपट" का क़ानून जारी किया गया, जिससे सूद की मिक़दार असिल रक़म से न बढ़ सकती थी। मसलन कोई व्यक्ति एक सौ रुपया कर्ज लेता, तो उसका सूद जमा होकर उससे एक सौ रुपये से अधिक न वसूल किया जा सकता था। अब जबकि दौलत क़ानून की रू से लाभदायक कामों में लगाई जाने लगी, तो उसका नाम पूंजी हो गया। इस तरह इन्सानी जीविका के लिये तीन चीज़ें पैदा हो गईं, यानी १—मेहनत, २—ज़मीन और ३—पूंजी। *इन तीनों साधनों से हिन्दुस्तान में ख़ूब दौलत पैदा* हुई और वह तमाम तबक़ों में क़रीब क़रीब एकसां बंटी थी और कोई एक वर्ग हद से ज़्यादा धनी न *था। रुपये वालों का एक दल ज़रूर था,* जो काश्त-कारों, कारीगरों और दुकानदारों को सूदी कर्ज़ा देता था। मगर चूंकि सूद की मिक़दार नियमित थी, इसलिये महाजनों की दौलत भी सीमित होती थी।

इंगलिस्तान में पूंजी

हिन्दुस्तान की ऐसी ख़ुशहाली के ज़माने में यहां इंगलिस्तान की हुकूमत हो गई। इंगलिस्तान की *जगह अगर यहां अंग्रेज़ी क़ौम की हुकूमत हिन्दुस्तान* में रह कर होती, तो उसमें नुक़सान न था, क्योंकि इससे पहले आर्यों, हूंणों, गोरियों, और मुग़लों की हुकू-मतें हो चुकी थीं। इनमें हिन्दुस्तान का रुपया ईरान या मध्य एशिया को न जाता था। मगर १८ वीं सदी में जो हुकूमत हिन्दुस्तान में क़ायम हुई, वह इंगलिस्तान

की थी। उस वक्त हिन्दुस्तान की माली हालत का अन्दाज़ा लेखक डू की निम्न लिखित बातों से चलता है—"सिराजउद्दौला की मृत्यु के बाद जिन लोगों ने बंगाल में से होकर सफ़र किया, हम उनसे इस का समर्थन पाते हैं कि उस वक्त यह सल्तनत दुनियाँ में सबसे ज्यादा दौलत मन्द, आबाद और काश्त के हिसाब से बढ़ी चढ़ी थी। यहां के रईस और सौदागर दौलत और ऐशो इशरत में लोट लगाते थे। और निम्न दर्जे के कारीगरों और किसानो को भी ख़ुशहाली और आसाइश की बरकतें प्राप्त होती थीं।"

इसके मुक़ाबले में इंगलिस्तान की जो माली हालत थी और हिन्दुस्तान के रुपये से इंगलिस्तान को जो फ़ायदा पहुँचा, उसकी कैफ़ियत नीचे के उद्धरणों से स्पष्ट हो जावेगी।

"प्लासी की लड़ाई जीतने से पहले और हिन्दोस्तान के ख़ज़ाने बह बह कर इंगलिस्तान में आने से पहले, हमारे मुल्क (इंगलिस्तान) का ज्वार-भाटा बहुत नीचा था। स्वयं इंगलिस्तान के हस्तकौशल की उन्नति बंगाल के बहुत से दौलत के ढेरों और कर्नाटक के ख़ज़ानों की बदौलत हुई" (सर विलियम डिग्बी)

"हिन्दुस्तान के साथ इंगलिस्तान ने, जिसके अधीन अब वह है, बड़ी बेइंसाफ़ी की है। और उसकी एक अफ़सोस नाक मिसाल यह है कि सन् १८१३ ईस्वी में एक गवाह ने (तहक़ीकाती कमेटी के सामने) बयान किया था कि उस वक्त तक हिन्दुस्तान के सूती और रेशमी कपड़े बर्तानियाँ के बाज़ारों में, बर्तानियाँ के बने हुए माल से पचास या साठ प्रतिशत सस्ते बिकते थे, और फिर भी लाभ के साथ। अतः यह आवश्यक हो गया है कि सत्तर अस्सी फ़ीसदी तक के महसूल लगा कर इंगलिस्तान की बनी हुई चीज़ों की रक्षा की जाय। अगर ऐसा न किया गया होता और यह संरक्षण कर और अहकाम न होते, तो मैनचेस्टर और पेज़ली के पुतली घर खुलते ही बन्द हो गये होते। फिर भाप की ताक़त भी उनको चालू न कर सकती।" (रमेश चन्द्र दत्त पृष्ट २६३)

अर्थात् हिन्दुस्तान के रुपयों से इंगलिस्तान में पूंजी की रेल पेल हुई, जिससे वहां की सूद की दर घटी और इसके अनुसार वहां सूद के दर के क़ानून बनते गये। चुनांचे बिशप जान मर्टन की कोशिश से इंगलिस्तान में यह क़ानून पास हुआ कि महाजन को १० प्रति सैकड़ा सूद न दिलाया जाय। सन् १६२४ ईस्वी में यह दर घटा कर आठ प्रति सैकड़ा कर दी गई। सन् १६५० ईस्वी में ६ प्रति सैकड़ा की गई और अन्त में सन् १८५४ ईस्वी में सूद की दर का क़ानून बिलकुल रद कर दिया गया। वहां की पूंजी इतनी बढ़ गई थी कि सूद की दर स्वयं बहुत कम होती चली जाती थी।

मुंह मांगे सूद की दर से बर्बादी

अच्छा होता सूद के दर की यह आज़ादी सिर्फ़ इंगलिस्तान तक ही सीमित रहती, जहां धन की ऐसी अधिकता हो रही थी। मगर ग़ज़ब तो यह हुआ कि वह क़ानून सन् १८५५ ईस्वी में हिन्दुस्तान में भी जारी कर दिया गया, जहां से दौलत लगातार एक सौ साल से विभिन्न शकलों में इंगलिस्तान चली जा रही थी और जिसकी निसबत लार्ड मेकाले तक ने लिखा है कि हिन्दुस्तान से दौलत की नदियां बह कर इंगलिस्तान आती थीं।

इस नये क़ानून से हिन्दुस्तान का..."दामट" का पुराना क़ानून रद हो गया, जिससे मूल धन से अधिक सूद को रक़म न बढ़ सकती थी। उस वक्त तक यहां एक रुपया सैकड़ा से अधिक सूद लेना महाजनों में पाप समझा जाता था। मगर सूद की आज़ादी ने मुल्क में बहुत से सूदख़ोर महाजन पैदा कर दिये, जो ग़रीबों को कुछ रुपये देकर उनके घर बार और ज़मीन तक नीलाम करा लेते थे। इससे हर क़ौम के काश्तकारों और दूकानदारों को हानि पहुँची। मगर मुख्यतः मुसलमान बेतरह बर्बाद हुए। जो आमतौर पर मज़हब के ज़्यादा पाबन्द होने से सूद का लेना निहायत गुनाह का काम समझते हैं, उनकी इस बर्बादी को देखकर, उनके बहुत से

उल्माओं में सूद के लेन देन के लिए फ़तवे दिये। सब से पहले देहली के सब से बड़े आलम शाह अब्दुल अज़ीज साहब ने, जो १९ वीं सदी में थे, हिन्दुस्तान को दारुल हरब क़रार देकर मुसलमानों के लिए जायज़ करार दिया कि वह ग़ैर मुसलिमों से सूद लें। फिर सत्तर उल्माओं के दस्तख़त के फ़तवों से इसी क़िस्म के इश्तहार निकले और कुछ उल्माओं ने "हिक़ारते बरक़म मुअइयन" के आधार पर तय किया कि तिज़ारत करने की ग़रज़ से एक मुसलमान दूसरे मुसलमान को एक निश्चित रक़म के बदले रुपया दे सकता है। इसी तरह बहुत से उल्माओं ने बैंक के सूद के रिवाज के फ़तवे दिये। मगर इसके साथ साथ अब तक मुसलमानों में आमतौर पर सूद लेने का रिवाज नहीं हुआ। और गोकि सूद देना भी ऐसा ही गुनाह है, जैसा कि सूद लेना, तो भी मुसलमानों से ज़्यादा कोई क़ौम सूद नहीं देती। इसका फल यह है कि जीविका के हर साधनों में मुसलमान पूंजीपतियों के चंगुल में फंसे हैं। ख़्वाजा ग़ुलाम सकलीन साहब मरहूम ने अदालत जजी अलीगढ़ की उन डिग्रियों का, जो मुसलमानों पर हुई एक नक़शा दिया था। इसमें दिखाया गया था कि एक मुद्दई को ९९, के ६०००) देने पड़े। इसी तरह बन्दोबस्त की रिपोर्टों से अन्दाज़ा होता है कि हर तीस साल में मुसलमानों की कितनी जायदादें निकल जाती हैं। चुनांचे ज़िला मुजफ़्फ़र नगर की एक रिपोर्ट में लिखा है कि ३० साल में सय्यदों की जायदाद १,८७,००० एकड़ से घट कर १४९,००० एकड़ रह गई (और असलियत यह है कि उस बची हुई जायदाद में से आधी के क़रीब बन्धक और रेहन होगी) सादात की निस्बत इसी रिपोर्ट में लिखा है कि "वह सब से ज़्यादा जानसठ की तहसील में हैं, वह बहुत ख़र्चीले हैं और उन्हें कोई अन्दाज़ा अपने खरचों को अपनी हालत के अनुसार रखने का नहीं है। उनकी अवनति इतनी शीघ्रता से हो रही है कि जैसे कोई आदमी पहाड़ से उतर रहा हो। यदि यही चाल जारी रही, तो बहुत जल्द ज़मीन के मालिक अपनी ज़मीन खो बैठेंगे।" यही हाल मुसलमान दुकानदारों और कारख़ाने दारों का है। वे आमतौर पर ब्याज पर रुपया लेकर अपना काम चलाते हैं और चूंकि मुल्क में रुपया बहुत कम है इसलिए सूद की दर ज़्यादे दी जाती है, जिसकी वजह से उनकी ज़िन्दगी मुश्किल से कटती है।

वास्तविक इलाज

कुछ दिनों से, कुछ प्रान्तों की हुकूमतों का ध्यान इस तरफ़ हो रहा है कि वह क़ानून के द्वारा सूद कम करें। मगर अब तक जितने क़ानून पास हुए हैं, वह अधिकतर काश्तकारों और छोटे ज़मीन्दारों के लाभ के हैं। कारीगरों और दुकानदारों की रक्षा के लिए क़ानून अब तक नहीं बना। पर असलियत यह है कि पूंजीवादी हुकूमत के होते हुए इस क़िस्म के कानूनों से ग़रीबों को कोई भी फ़ायदा नहीं पहुंच सकता। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि इंगलिस्तान में इस समय बेइन्तहा दौलत मौजूद है। पर पूंजीवादी शासन होने के कारण अगर एक तरफ़ कुछ अरब पति और करोड़ पति हैं, तो दूसरी ओर लाखों करोड़ों आदमी सख़्त ग़रीबी में दिन काट रहे हैं। एक तरफ़ धन की अधिकता से कुछ लोग विलासी और काहिल हो जाते हैं, और ज़रूरत से ज्यादा खा पी कर बीमार होकर जल्द मर जाते हैं, तो दूसरी ओर लाखों आदमी भूखों रह कर, हद से ज़्यादा मेहनत करने पर मजबूर होते हैं; जिससे वे भी जल्द ख़तम हो जाते हैं। बस सच्चा इलाज जो इन सब ख़राबियों को दूर करने का हो सकता है, वह तो यही है कि पूंजीवाद को मिटाकर सरकार, मेहनत, पैदावार के साधन और माल के बटवारे के साधन अपने हाथ में ले। वह जनता के हर आदमी को काम देने, उनका इलाज करने और उनके बच्चों की शिक्षा की ज़िम्मेदार हो। ऐसी सरकार होने पर ही न सिर्फ़ मुसलमान बल्कि तमाम क़ौमों के ग़रीब लोग पूंजीपतियों की ग़ुलामी से निकल सकेंगे।

बड़ा कौन है ?

श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन

प्रश्न पुराना है, लेकिन अभी भी शायद उसका कोई सर्वमान्य निर्णय नहीं हो सका। जो आयु में बड़ा है, क्या उसे बड़ा कहें ? यह तो कुछ ठीक नहीं लगता। जिसके पास अधिक धन है, क्या उसे बड़ा कहें ? यह तो और भी ठीक नहीं लगता। जो बहुत प्रसिद्ध है, क्या उसे बड़ा कहें ? निश्चयात्मक रूप से यह भी नहीं कहा जा सकता। फिर आखिर बड़ा किसे कहें ? 'राजेवाद' जातक में इस प्रश्न पर विचार किया गया है।

"पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी के गर्भ से पैदा हुए। नामकरण के दिन उनका नाम ब्रह्मदत्त कुमार ही रखा गया।

क्रम से बढ़ते हुए १६ वर्ष की आयु होने पर वह तक्षशिला जाकर सब विद्याएं सीख आये। पिता के मरने पर वह राजा बने। धर्म तथा न्याय से राज्य करने लगे। मुक़दमों का फ़ैसला करते, तो कभी पक्ष विशेष का ख्याल मन में न लाते।

उनके धर्म से ही राज्य करने से अमात्य भी धर्म से ही मुक़दमों का फ़ैसला करते। मुक़दमों का धर्म से फ़ैसला होने के कारण झूठे मुकदमे करने वाले भी नहीं रहे। उनके न होने से राजागण में मुक़दमे कराने वालों का शोर न होता। अमात्य सारा दिन न्यायालय में बैठे रहने पर भी, जब किसी का मुक़दमा न आता, तो उठ कर चले जाते। न्यायालय खाली कर देने योग्य हो गए।

बोधिसत्व सोचने लगे कि मेरे धर्मानुसार राज्य करने के कारण मुक़दमा कराने वाले नहीं आते; शोर नहीं होता। न्यायालय ख़ाली कर देने योग्य हो गये हैं। अब मैं क्या करूं ? कोई और काम न देख, उन्होंने निश्चय किया कि अब मुझे अपने दुर्गुणों की खोज करनी चाहिए। जब मुझे पता लग जायगा कि यह मेरे दुर्गुण हैं, तो उन्हें छोड़ गुणवान ही बन कर रहूंगा।

उसके बाद से वह खोजने लगे कि कोई दोष कहने वाला मिले। उन्हें महल के अन्दर कोई ऐसा नहीं मिला। जो मिला प्रशंसा करने वाला ही मिला। 'यह मेरे भय से भी केवल मेरी प्रशंसा ही करते होंगे' सोच, महल के बाहर रहने वालों की परीक्षा की। वहां भी कोई न मिला, तो सारे नगर में खोज की। नगर के बाहर चारों दर्वाज़ों पर खोजा। वहां भी कोई दोष कहने वाला न मिला; प्रशंसा ही सुनने को मिली।

तब बोधिसत्व ने जनपद में खोजने का निर्णय किया। अमात्यों को राज्य सौंप कर, रथ पर चढ़, केवल सारथी को साथ ले, भेष बदल, नगर से निकले। जनपद में खोजते हुए वह अपने राष्ट्र की सीमा तक चले गए। जब वहां भी उन्हें कोई दोष दिखाने वाला नहीं मिला, प्रशंसा ही सुनाने वाले मिले, तो सीमा पर से नगर की ओर लौटे।

उन्हीं दिनों मल्लिक नाम का कोशल नरेश भी अपने दोष कहने वाले को ढूंढ़ने के लिए निकले थे। जब उसे महल के अन्दर रहने वालों आदि में कोई

दोष कहने वाला नहीं मिला, प्रशंसा करने वाले ही मिले, तो वह भी जनपद में खोजता हुआ वहीं जा निकला। गाड़ियों के एक नीचे रास्ते पर वे दोनों आमने-सामने हुए। एक दूसरे के रथ को गुजरने देने के लिए जगह नहीं थी।

मल्लिक राजा के सारथी ने बाराणसी राजा के सारथी से कहा—'अपने रथ को लौटा ले।'

बाराणसी राजा का सारथी बोला—'तू अपने रथ को लौटा ले।'

"मेरे रथ में बाराणसी राज्य के स्वामी महाराज ब्रह्मदत्त बैठे हैं।"

'इस रथ में कोशल राज्य के स्वामी मल्लिक महाराज बैठे हैं। तू अपने रथ को मोड़, हमारे राजा के रथ को जगह दे।'

बाराणसी राजा के सारथी ने सोचा—'यह भी राजा है, अब क्या किया जाय?'

उसे एक उपाय सूझा कि राजा की आयु पूछी जाय। जो आयु में छोटा हो, उसका रथ लौटवा कर, जो बड़ा हो, उसके रथ के लिए जगह कराई जाय। ऐसा निश्चय कर उसने दूसरे सारथी से कोशल राज की आयु पूछी। मिलान करने पर दोनों राजा समान आयु वाले निकले।

फिर राज्य विस्तार पूछा।

वह भी बराबर।

सेना की बात पूछी।

वह भी बराबर।

धन, यश, जाति, गोत्र, कुल, भेद आदि के बारे में पूछा सब बराबर निकले।

दोनों तीन तीन सौ योजन राज्य के स्वामी थे। दोनों की सेना, धन, यश, जाति, गोत्र तथा कुल भेद सब एक समान थे। तब सोचा जो अधिक शीलवान होगा, उसे रास्ता दिया जायगा। उसने पूछा—

"सारथी तुम्हारे राजा में कौन-कौन से गुण हैं?"

कोशल नरेश का साथी बोला—

"हमारे राजा में ये गुण हैं। उसने यह गाथा कही—

दलहं दलहस्स खिपति मल्लिको मुदुना मुदुं
साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथी ॥ १

बाराणसी राजा के सारथी ने पूछा—

"भो, क्या तुमने अपने राजा के गुण कह लिये?"

"हां!"

"यदि यही गुण हैं, तो दुर्गुण कैसे होते हैं?"

"अच्छा, यह दुर्गुण ही सही, तुम्हारे राजा में कौन-कौन से गुण हैं?"

"लो सुनो।"

अक्कोधेन जिणे कोधं, असाधु साधुना जिणे
जिणे कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथी ॥ २

ऐसा कहने पर मल्लिक राजा तथा उसका सारथी दोनों रथ से उतर गए। घोड़ों को खोल दिया और रथ को हटाकर बाराणसी के राजा को मार्ग दिया।

---

१ मल्लिक राजा कठोर के साथ कठोरता का व्यवहार करता है, कोमल के साथ कोमलता का। भले आदमी को भलाई से जीतता है, बुरे को बुराई से। सारथी यह राजा ऐसा है, तू मार्ग छोड़ दे।

२ क्रोधी को अक्रोध से जीतता है। बुरे को भलाई से। कंजूस को दान से। झूठे को सत्य से। यह राजा ऐसा है। इसलिए सारथी तू मार्ग छोड़ दे।

इसलाम पर भारत का क्या असर पड़ा ?

डाक्टर, सैयद महमूद साहब

इसलाम के दुशमनों ने, जिनमें ख़ास तौर पर ईसाई लेखक हैं, इसलाम को बदनाम करने की भरसक कोशिश की है। इसलाम के ख़िलाफ़ तरह तरह का झूठा प्रचार इन्होंने किया है। इन लोगों के प्रचार का नतीजा यह है कि ग़ैर मुसलिम दुनिया इस बात पर क़रीब क़रीब विश्वास करने लगी है कि इसलाम कठमुल्लापन, तास्सुब, मार-काट और हत्या का प्रचार करने वाला मज़हब है। हालांकि सच्चाई बिलकुल इसके विपरीत है। इसमें कोई शक नहीं कि मौलवियों का एक तबक़ा ऐसा था कि जो इसलाम को सब मज़हबों से बहुत ऊंचा समझता था। लेकिन ऐसे मुसलमानों की भी कमी न थी, जो दूसरे मज़हबों की अच्छाई ढूंढ़ने की बराबर कोशिश करते थे और धर्मों के समन्वयात्मक अध्ययन का प्रयत्न करते थे। इनके अलावा ऐसे भी मुसलमान थे, जो अल्लाह के रास्ते पर सिर्फ़ सच्चाई को ही अपना आधार बना कर चलते थे। इन सन्तों के लिये विविध धर्म केवल उसी एक अल्लाह तक पहुँचने के साधन थे। सूफ़ी, दरवेश और शायर बिना किसी भेद भाव के हिन्दू मुसलमान, अमीर ग़रीब सब को परमात्मा के एक ही रास्ते यानी नेकी और सचाई के रास्ते पर चलने का उपदेश देते थे।

यूरोप वालों ने तो बहुत बाद में धर्म का वैज्ञानिक और निष्पक्ष अध्ययन करना सीखा; और वह भी केवल इने गिने लोगों ने। किन्तु मुसलमानों में ऐसे अनेक विद्वान हुए हैं, जिन्होंने तुलनात्मक धर्म पर पुस्तकें लिखते हुए आश्चर्यजनक निष्पक्षता और शुद्ध बुद्धि को अपना आधार बनाया। इन में सब से प्रसिद्ध विद्वान् आबू रेहान अलबेरूनी थे। उन्होंने ग्यारहवीं सदी में विस्तार के साथ हिन्दू धर्म और हिन्दू दर्शन शास्त्रों पर लिखा है।

सम्पूर्ण मध्य युग में मुसल्मानों ने हिन्दुओं के धार्मिक साहित्य से परिचित होने के लिए बहुत परिश्रम किया। उन्होंने प्रायः सभी महत्व पूर्ण ग्रन्थों का फ़ारसी में अनुवाद करडाला, उपनिषद, महाभारत, रामायण, भगवद्गीता, धर्म-शास्त्र, पुराण, योग वाशिष्ठ, योग-शास्त्र, वेदान्त-शास्त्र आदि सभी ग्रन्थों के अनुवाद फ़ारसी में किये गये।

इनके बाद के लेखकों में शेख़ अहमद फारूखी (१५६३-१६२४) जो कि दूसरी सहस्राब्दी के प्रसिद्ध व्यवस्था देने वाले मुजद्दिद-अलीफ़-ए-सानी के समान ही प्रसिद्ध हैं और मिरज़ा जान जानान मज़हर (१६९९) के नाम लिये जा सकते हैं। मज़हर साहब ने हिन्दुओं की पूर्तिपूजा के बारे में लिखा है—

"मूर्ति पूजा—मुसलमान सूफ़ियों की ध्यान-साधना 'ज़िक्र' के समान ही है। इसलाम के पहले अरब के बाशिन्दों के विश्वास मे इस मूर्तिपूजा की कोई समानता नहीं है। अरब के बाशिन्दे समझते थे कि मूर्तियों ही में शक्ति और प्रभाव भरा हुआ है और वे महज़ ईश्वरीय शक्ति का साधन नहीं हैं।"

इतना ही न था। एक ओर विद्वान् मुसल्मान अध्ययन और तर्क द्वारा हिन्दू अध्यात्मको समझने का प्रयत्न करते थे; तो दूसरी ओर भाव प्रवण और संवेदन शील मुसल्मान प्रत्यक्ष और आत्मिक स्फूर्ति द्वारा उसे ग्रहण करके अपने जीवन में मिलाते और उसका अभ्यास करते थे। गुलशन राज़ के प्रसिद्ध लेखक महमूद शबिस्तारी (१३१७) ने मूर्तिपूजा के विषय में लिखते हुए इसलाम से उसकी मित्रता और समानता इस प्रकार समझाई है।

"मूर्ति इस संसार में प्रेम और एकता का प्रकटीकरण है। जनेऊ पहनना सेवा की प्रतिज्ञा लेना है। 'कुफ्र' और 'दीन' दोनो का आधार 'जीवन' है। ईश्वर की एकता ही मूर्तिपूजा का सार है। क्योंकि सभी वस्तुएं जीवन काही प्रकटीकरण हैं और उन्हीं में से एक मूर्ति भी है। यदि मुसल्मान जान लें कि मूर्ति क्या है, तो वह यह भी समझ जावेंगे कि मूर्ति पूजा में भी धर्म है। और यदि मूर्ति पूजक जान ले कि मूर्ति क्या है, तो वह अपने विश्वास से च्युत न होगा। मूर्ति पूजक ने मूर्ति की केवल बाहरी रचना ही देखी; इसीलिए क़ानून की दृष्टि में काफ़िर हो गया। और यदि मुसलमान यह न देखे कि मूर्ति के पीछे वास्तविक शक्ति क्या है, तो वह भी न्याय की दृष्टि से मुसल्मान नहीं कहा जा सकता।"

ऐसे अनेक उद्धरण आसानी से दिये जा सकते हैं। हिन्दू पूजा की बहुत सी विधियों में से माला, प्राणायाम, योगाभ्यास, वेदान्त आदि के सिद्धान्तों में से जिन जिन तत्वों को मुसलमानों ने अपना लिया, उन सब के बारे में विस्तृत वर्णन करने के लिये यहां जगह नहीं है। हिन्दुओं और मुसलमानों के विश्वासों के समन्वय से हिन्दुस्तानी जनता में जिन आध्यात्मिक नियमों का चलन हो गया; उनके बारे में भी यहां विवाद की आवश्यकता नहीं है। इतना ही कह देना काफ़ी है कि ये दोनों धर्म बिना ख़ास प्रयत्न के एक दूसरे से मिल जुल गये। अकबर का 'दीन-इलाही' सब धर्म वालों के लिये धर्म का एक ही मार्ग बनाने का शुभ प्रयत्न था। वह सफल नहीं हुआ; मगर इससे उसकी महानता और महत्ता कम नहीं होती। कबीर, नानक, दादू, चैतन्य, तुकाराम और अन्य अनेक सन्तों ने सफलता के साथ हिन्दुस्तानी जनता में एक ऐसा धर्म फैला देने की कोशिश की, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की सर्वोत्तम धार्मिक विशेषताएं मौजूद थीं।

मध्य युग के धार्मिक साहित्य से, चाहे वह मुसलमानों का हो या हिन्दुओं का, पढ़ने वाला उसकी उदार दृष्टि से अवश्य प्रभावित हो जावेगा। दोनों ने यह अनुभव कर लिया था कि ऊपरी रीति-रिवाजों, रूढ़ियों और पूजा के बाहरी ढंगों में चाहे जो अन्तर हो, धार्मिक जीवन के भीतरी और वास्तविक सत्य दोनों के लिए एक से थे। वे सार्वजनिक थे। इसीलिये वे दोनों बाहरी ढंगों को महत्व न देकर भीतरी सौन्दर्य पर ही ज़ोर देते थे। धर्म के प्रति ऐसा भाव होने से इन दोनों के लिए औरों की अपेक्षा दृढ़ मित्रता और शान्ति से रहना संभव हो गया और दोनों धार्मिक अनुदारता को कम से कम करने में सफल हुये। एक हज़ार वर्ष के इतिहास में केवल कुछ शासकों के शासन काल में ही हमें थोड़ी बहुत कट्टरता के उदाहरण मिलते हैं। और इन शासकों के बारे में भी यह प्रमाणित किया जा सकता है कि उनकी ज्यादतियों के असली कारण कुछ और ही थे और उन का वार भी थोड़े से लोगों के ही विरुद्ध था।

अनेक घटनाओं से यह साबित होता है कि धार्मिक मत भेद का ज्यादा असर न था। उदाहरण के लिए यदि पदों की नियुक्ति के प्रश्न को लिया जाय, तो हमें मालूम होता है कि हिन्दू ऊंचे से ऊंचे पदों पर पहुंच सकता था। बहुत से हिन्दू मन्सबदार थे। हम देखते हैं उस समय की आपसी लड़ाइयों में हिन्दुओं और मुसलमानों की हिन्दू और मुसलमानों की हैसियत से कभी लड़ाई नहीं हुई। मुसलमान शासकों के मातहत हिन्दू सेनापति हिन्दू दुश्मनों से लड़ते हुए पाये गये हैं और हिन्दू शासकों के मातहत मुसलमान सेनापति मुसलमान दुश्मनों से लड़ते

नज़र आते थे। इतिहास में ऐसे हिन्दू और मुसलमानों के सैकड़ों क़िस्से भरे पड़े हैं, जहां दोनों ने अपने मालिकों के प्रति वफ़ादार रहकर अपने ही धर्मावलम्बियों के विरुद्ध भयंकर लड़ाई लड़ी हैं। ऐसे उदाहरण भी हैं, जहां हिन्दुओं ने हिन्दुओं के साथ विश्वासघात किया है और मुसलमानों ने मुसलमानों के साथ। असली बात तो यह है कि उस समय व्यक्तिगत अहसानों का ही सब से अधिक प्रभाव पड़ता था, न कि क़ौम, धर्म या देश प्रेम का। उस ज़माने में वफ़ादारी की भावना दो शब्दों में प्रकट होती थी 'नमक हलाल' और नमक हराम'।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दोस्तान के मुसलमान शासकों के आदि स्थान चाहे जहां रहे हों, उन्होंने वास्तव में हिन्दोस्तान को ही अपना घर बना लिया था। बाबर फ़रगना से आया और कभी कभी वह समरक़न्द लौटने के भाव पूर्ण स्वप्न भी देखता था; किन्तु बाबर और उनकी सन्तानें इसी देश में रहीं। भाग्य उन्हें यहां लाया और उन्हें भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं के बाहर के अपने सारे नाते और हित तोड़ने पड़े। उनकी अपनी मातृभूमि में उनके ख़ानदान के अनेकों शत्रु थे, जो अवसर पाते ही उनका सर्वस्व छीन लेने पर तत्पर थे। ऐसी दशा में भी यदि उन्होंने अपने आपको यहां की जनता के जीवन में पूरी तरह हिला मिला दिया, उनके तरीक़ों और ढङ्गों में सहानुभूति पूर्ण रुचि दिखलाई और उनके सुख-दुःख में दिल से साथी बने, तो यह कितनी बड़ी बात है? मुग़ल सम्राट हिन्दुस्तान की सामाजिक और राजनैतिक पद्धति के ऐसे अनिवार्य और आवश्यक अङ्ग बन गये थे कि ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध सन् १८५७ का जो पहला स्वतन्त्रता-संग्राम हुआ, उसमें क्रान्तिकारियों ने मुग़ल सम्राट बहादुरशाह को ही अपना राष्ट्रीय केन्द्र बनाया। हालाकि मुग़ल सम्राट के पास न तो शक्ति थी और न साधन।

भाषा, साहित्य, विज्ञान, दर्शन, कला और धर्म सम्बन्धी बातों के आधार पर हमें यह मानना पड़ेगा कि मुसलमानों और हिन्दुओं ने सदियों एक साथ रहकर एक भावना, एक रहन-सहन और एक मिली-जुली सभ्यता का विकास कर लिया था। एक सी आर्थिक पद्धति के आधार पर उन्होंने मिली-जुली विशाल मानसिक और आध्यात्मिक संस्कृति का निर्माण किया। चाहे मुग़ल सम्राट के अधीन लोगों को देखा जावे या किसी सूबे के नीम आज़ाद सूबेदार के अधीन रहने वालों को; पर मराठा, राजपूत, सिख और जाट लोग रीति-नीति में, सदाचार में, धार्मिक आदर्शों में, राजनैतिक और शासन सम्बन्धी बातों में, शिल्प और कलाओं में तथा सम्पूर्ण जीवन की दृष्टि में दूसरे हिन्दुस्तानियों से ज़रा भी अलग न थे।

पुराने ज़माने का निष्पक्ष अध्ययन करके हम इसी नतीजे पर पहुंचते हैं कि मध्य युग में हिन्दू मुसलमानों के आपसी सम्बन्ध के इतिहास में ऐसी कोई नई बात नहीं मिलती, जिससे हम आजकल की साम्प्रदायिक ईर्षा और आपसी सन्देह को उचित और पुरानी चीज़ कह सकें। इसके विपरीत उस ज़माने के इतिहास से यह ज़ाहिर होता है कि मुसलमान शासकों की निष्पक्षता और बुद्धिमत्ता पूर्ण नीति के कारण, और मुसलमान अमीर उमराओं के कला और विद्या के बारे में उदार और संरक्षक भाव के फल स्वरूप तथा हिन्दुओं के रीति-रिवाजों और उनके ढङ्गों को समझने और उनके जीवन में साथ देने की हर इच्छा को देखकर, आम मुसलमान भारतीयता के हामी और प्रशंसक बन गये; और मुसलिम जनता ने भी इन्हीं हिन्दू रीति-रिवाजों को अपना लिया। दूसरी ओर हिन्दुओं की प्राचीन और सच्ची सहनशीलता और विभिन्नता में से भी एकता खोज निकालने की दृढ़ आकांक्षा ने मुसलमानों के इस बढ़े हुए प्रेम के हाथ को और अधिक प्रेम से स्वीकार किया। इसका असर यह हुआ कि मुसलमानों ने अपनी संस्कृति का ऐसा बहुत सा हिस्सा त्याग दिया, जो हिन्दुस्तान को विदेशी जान पड़ता था। अपने इस त्याग से उन्होंने भारत की संस्कृति पर अपनी एक अमर छाप छोड़ी है और इस तरह भारत की मिली-जुली राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में उनका बहुत बड़ा हिस्सा है।

बीस हज़ार साल पुरानी चित्रकला

श्री डगलस सी० फाक्स

सन् १९३७ में अमरीका के न्यूयार्क शहर में पूर्व ऐतिहासिक काल के चित्रों की एक प्रदर्शनी हुई थी। दूरवर्ती प्रस्तरयुग और समीपवर्ती प्रस्तरयुग की लगभग तीन हज़ार तसवीरें उस प्रदर्शनी में दिखाई गई थीं। प्रसिद्ध जर्मन खोजी लियो फारबिनस ने अनेक वर्षों तक अफ़रीका में सहारा, लीबिया और दूसरे जंगली स्थानों में घूम-घूम कर पहाड़ों, गुफ़ाओं और कन्दराओं से इन तसवीरों की प्रतिलिपि तय्यार की थी। लियो के साथियों ने फ्रांस, स्पेन और अरब से भी इसी तरह के चित्र इकट्ठा किये हैं और दसियों वर्षों की मेहनत के परिणाम स्वरूप लियो फ़ारबिनस के पास आदिम निवासियों की विविध संस्कृतियों और सभ्यताओं को चित्रित करने वाले इन चित्रों का बड़ा आश्चर्यजनक संग्रह होगया है। इन चित्रों को देखकर अति पुराने ज़माने की सभ्यताओं का समन्वयात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

समझा यह जाता है कि फ्रांस और स्पेन की गुफ़ाओं के शिला-चित्र सब से पुराने हैं। इन्हें दो मुख़्तलिफ़ संस्कृतियों के मानने वालों ने बनाया है। फ्रांस वालों को 'फ्रांकोकेन्ताब्रियन' और स्पेन वालों को 'लेवन्त' नाम से पुकारा जाता है। दूरवर्ती पाषाण युग के अन्तिम काल की ये तसवीरें हैं। भूगोल के अनुसार ये उस ज़माने की तसवीरें हैं जब फ्रांस और स्पेन मोटी बरफ़ की तहों से ढके हुये थे। भौगोलिकों का अन्दाज़ है कि बरफ़ का युग लगभग तीस हज़ार साल तक रहा और क़रीब १५ या बीस हज़ार वर्ष पहले वह समाप्त हुआ। फ्रांकोकेन्ताब्रियन सभ्यता के लोग दक्खिनी फ्रांस में ज़मीन के अन्दर गुफ़ाओं में रहते थे। वे भालों से हिरन का शिकार करते थे और गुफ़ाओं के अन्दर अपनी पूजा की जगहों में तरह-तरह के चित्र बनाते थे। जानवरों के चित्र बनाने का भी उन्हें शौक़ था। उनके चित्रों से उस ज़माने के जानवरों का ठीक ठीक पता चलता है। गुफ़ाओं के आगे वाले हिस्सों में उनके रहने की जगह होती थी और सब से पीछे के हिस्सों में उनकी पूजा और तंत्र मंत्र साधना के स्थान थे। गुफ़ा के अन्दर सेलखड़ी की चट्टानों पर वे साड़, भालू, रीछ, बारहसिंघा, गेंडा, जंगली घोड़ों आदि के चित्र ख़ूब बनाते थे। उनके शुरू के चित्रों में तो ख़ाली लकीरें होती थीं। फिर वे उन्हें काले रंग से रंगने लगे, बाद में लाल से और उसके बाद उनके बहुरंगे चित्र भी मिलते हैं। ख़ास तौर से वे बिसन के चित्र में कई रंग भरते थे।

लेवन्त सभ्यता के लोग पूर्वीय स्पेन में रहते थे। किन्तु ये लोग गुफ़ाओं में रहने के आदी न थे, बल्कि पहाड़ी चोटियों में चट्टानों की स्वाभाविक गुफ़ाओं में रहते थे। कहीं कहीं तो ये लोग ऐसी जगह रहते थे, जहां पहुंच सकना मुशकिल होता था और वहीं से शिकार और दोस्त दुशमनों की खोज ख़बर रखते थे। ये लोग भालों से नहीं बल्कि धनुष बाण से शिकार करते थे। इनके धनुष आमतौर पर एक ही रंग में रंगे होते थे। बाज़ बाज़ दफ़ा सुफ़ेद और लाल रंग भी इस्तेमाल करते थे। अपने दैनिक जीवन के मुख़्तलिफ़ दृश्यों को ये पहाड़ों पर चित्रित करते थे। फ्रांकोकेन्ताब्रियन के मुक़ाबले में इनकी तसवीरों की आकृति छोटी छोटी होती थी। जानवरों की आकृति शिकारी दृश्यों को दिखाते हुए ही उतारी जाती थी। लेवन्त लोग ख़ाली एक रंग की इन्सानी आकृति उतारते थे और फ्रांकोकेन्ताब्रियन जानवरों के कई रंगों के चित्र बनाते थे। इन दोनों सभ्यताओं के

लोग हज़ारों बरस तक एक दूसरे के क़रीब रहते रहे; किन्तु एक ने दूसरे के ऊपर कोई असर नहीं डाला। जब सब से पहले अल्तामिरा के चित्रों को फ्रान्सीसी विद्वान Cartaihac और Riviere ने बरफ़ युग का बताया, तो सारे यूरोप में तहलका मच गया। डारविन की पूरी नीति पर ही इससे कुठाराघात हुआ। वैज्ञानिकों ने इसके ख़िलाफ़ काफ़ी जेहाद किया; किन्तु अन्त में मैदान खोजियों के हाथों ही रहा।

यदि आज कल की कला के पैमाने की दृष्टि से भी देखा जाय, तब भी ये तसवीरें कलापूर्ण और सुन्दर हैं और इस बात की साक्षी हैं कि बीस हज़ार वर्ष पहले के कलाकार चतुर और कल्पना से भरे हुए थे और उन्हें अपनी कल्पना को चित्रित करना आता था।

भूतत्व विशारदों ने तमाम छानबीनों के बाद यह नतीजा निकाला कि दूरवर्ती प्रस्तर-युग में यह चित्रकारी थी अवश्य; किन्तु समीपवर्ती प्रस्तर-युग में या उस वक्त, जब स्पेन और फ्रांस की ज़मीन से बर्फ़ गला तब तक यह चित्रकला और यह सभ्यता बिलकुल समाप्त हो चुकी थी। उसके बाद से यूरोप में उस कला के कहीं कोई निशान तक नहीं मिलते।

सारे यूरोप के विद्वानों में अकेला फ्राबेनियस ही ऐसा व्यक्ति था, जिसने इस बात पर शंका ज़ाहिर की कि एक ऐसी सभ्यता, जिसने कला के इतने सुन्दर नमूने विरसे में छोड़े, इस तरह एकदमसे ग़ायब नहीं हो सकती। बग़ैर ज़बरदस्त जीवन-दायिनी शक्ति के कोई सभ्यता ऐसी मूल्यवान कृतियां नहीं निर्माण कर सकती। उस सभ्यता के मानने वाले ज़रूर स्पेन और फ्रांस से कहीं न कहीं चले गए। फ्राबेनियस के अनुसार वे लोग स्पेन और फ्रांस से उत्तर अफ़रीका की ओर आए। दक्खिनी यूरोप में बरफ़-युग की समाप्ति पर अफ़रीका की बारिश बिलकुल समाप्त हो गई और हरे भरे मैदान की जगह रेगिस्तान की एक पट्टी खड़ी हो गई। इस परिस्थिति में आदिम निवासी सहारा और लीबिया के रेगिस्तान से मिस्र और सूडान की ओर बढ़े। फिर अब तक दक्खिनी अफ़रीका के आदिम निवासी, जो जंगल में रहते हैं, ठीक उसी तरह की तसवीरें बनाते हैं जिस, तरह कि स्पेन और फ्रांस की पहाड़ियों और गुफ़ाओं में बनी हैं। फ्राबेनियस के अनुसार ये अफ़रीकन उसी पुरानी सभ्यता के अवशेष हैं। फ्राबेनियस को महज़ इस समता से ही तसल्ली न हुई, उसने पूरे पांच बरस पैदल, घोड़े पर और पालकी पर सूडान का कोना कोना छान कर वहां के निवासियों के तर्ज़ तरीक़े और रस्मो-रिवाज का ख़ूब अध्ययन किया। इन सूडान वासियों के रस्मो-रिवाज और स्पेन, फ्रान्स के आदिम निवासियों के रस्मोरिवाज में उसे आश्चर्यजनक समानता मिली।

इसके बाद फ्राबेनिअस ने सूडान से हट कर सहारा के रेगिस्तान में एटलस पहाड़पर बनी हुई अतीत काल की उसी तरह की चित्रकारी पाई। निश्चय ही स्पेन से चल कर प्रस्तर-युग के निवासी सहारा में आकर बसे। सहारा के चित्र हाल के नहीं हो सकते, क्योंकि हज़ारों बरस से वहां दुर्गम रेगिस्तान है। इस खोज ने फ्राबेनिअस को बहुत प्रोत्साहित किया। उसने लीबिया और नूबिया के रेगिस्तानों और दक्खिन अफ़रीका के जंगलों में अपनी खोज जारी रखी। अपनी इन खोजों में फ्राबेनिअस ने पूर्व ऐतिहासिक काल के लगभग तीन हज़ार चित्र कैनवस पर उतारे। इस सग्रह को देखकर यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि किस तरह यूरोप की प्रस्तर-युग की सभ्यता सहारा और दक्खिन अफ़रीका में आई। सहारा के एटलास पहाड़ पर उत्तरी स्पेन की फ्रैंको कैन्ताब्रियन तर्ज़ की तसवीरें हैं। लीबिया की तसवीरें फ्रान्स के लेवन्त तर्ज़ की हैं। इससे यह स्पष्ट है कि दोनों सभ्यताएं स्पेन और फ्रान्स से चल कर सहारा और लीबिया में आईं। अफ़रीका के दक्खिन पच्छिम हिस्सों में इस तरह की तसवीरें मिली हैं, जिनमें फ्रैंको कैन्ताब्रियन और लेवन्त दोनों सभ्यताओं की छाप है। इस तरह हज़ारों बरस के बाद दोनों सभ्यताओं का स्पेन, फ्रान्स, सहारा, लीबिया आदि में स्वतन्त्र रह कर दक्खिन पच्छिम अफ़रीका में सम्मिलन और समन्वय हुआ।

लीबिया में पाया गया एक नृत्य चित्र

फ़ेज़ान में एक जिराफ़ का चित्र

अल्तामिरा (उत्तर स्पेन) की गुफा में अंकित एक अति प्राचीन चित्र
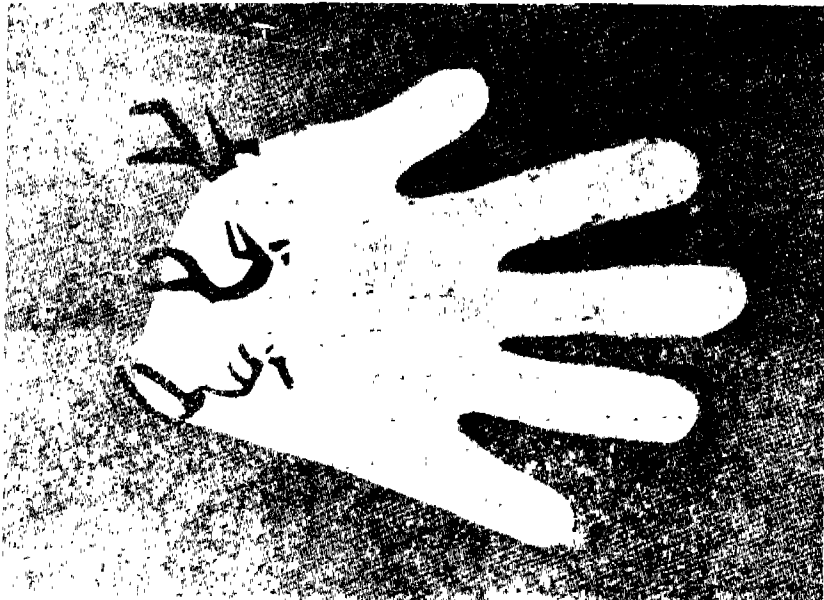
ऑरेंज फ्री स्टेट का
एक अति प्राचीन चित्र

लीबिया के मरुस्थल में
पाया गया एक चित्र

शिकार का एक दृश्य

सहारा का एक चित्र।
बाघ हाथी पर हमला
कर रहा है

आनन्द

डाक्टर, कुंवर मोहम्मद अशरफ़

(१)

सन् १९२२ में मैं राष्ट्रीय विद्यालय जामिया मिल्लिया इस्लामिया, अलीगढ़ में पढ़ता था। जामिया में क़रीब तीन चार सौ विद्यार्थी होंगे, जिन्हें असहयोग आन्दोलन ने मुख़्तलिफ़ सरकारी स्कूलों और कालेजों से इस राष्ट्रीय विद्यालय में लाकर इकट्ठा कर दिया था। इनमें हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सभी थे। मुसलमानों की संख्या ज़्यादा थी, मगर हिन्दू भी कुछ कम न थे; एक दो ईसाई भी थे। शिक्षकों में भी हर मज़हब और सूबे के लोग थे। जामिया मिल्लिया की बुनियाद गान्धी जी और मौलाना मुहम्मद अली की निगरानी में शैख़ुल हिन्द मौलाना महमूदुल हसन ने रखी थी। उस ज़माने में हम सब को विश्वास था कि साल भर में स्वराज्य मिल जायगा, चुनांचे पढ़ाई की किताबों से ज़्यादा हमारा समय इन बहसों में बीतता था कि हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय स्वाधीनता की सूरत क्या होगी और हमारी अपनी ज़िन्दगी का उद्देश्य और लक्ष्य क्या है? हम लोग पास ही बोर्डिङ्ग में रहते थे और जो बहस क्लास में अधूरी रह जाती, उसका सिलसिला बोर्डिङ्ग में जारी रहता था। मेरे उस ज़माने के दोस्त बल्कि साथी आज भी जब कहीं मिल जाते हैं। तो मुझे वह ज़माना याद आ जाता है, जब राजनीति की असलियत से कोसों दूर हमने अपने ख़्वाबो ख़्याल की एक दुनिया अलहदा बना रखी थी। ज़िन्दगी के उन दिनों की याद कोई कैसे भुला सकता है?

अलीगढ़ डिस्ट्रिक्ट जेल के क़रीब मैं एक बंगले में रहता था, यानी वह मेरा बोर्डिङ्ग था। पास ही दूसरा बंगला था, जिसमें निरामिश भोजी विद्यार्थी रहते थे। इस बोर्डिङ्ग में कैलाश नाथ कौल, ईश्वर नाथ टोपा, मुक़र्रब, चन्द्र भाल और जंग बहादुर से मेरी जान पहचान ही नहीं बल्कि दोस्ती थी। कालेज के अलावा जामिया में मैट्रिक तक स्कूल की तालीम भी होती थी। दूसरे मज़मूनों की तरह हिन्दू धर्म और इसलाम की बाक़ायदा शिक्षा दी जाती थी। बल्कि धर्म शिक्षा में सब शामिल होते थे, यानी हिन्दू-मुसलमान, कालेज और स्कूल के विद्यार्थियों को आम इजाज़त थी कि जो चाहे शरीक हो। इसलाम धर्म के शिक्षक ख़्वाजा अब्दुल हई और हिन्दू धर्म की तालीम सिंगल जी के सपुर्द थी। और दोनों उस्ताद तपस्वी, विद्वान और प्रभावशाली वक्ता थे।

हां, तो हम लोग हरवक़्त देश की आज़ादी और अपने जीवन में नैतिक सुधार के उपाय सोचा करते थे। हमारी बात चीत स्वराज्य की भिन्न भिन्न सूरतों से शुरू हो कर मोक्ष प्राप्ति पर ख़तम होती थी। हमारा सारा तर्ज़ धार्मिक बल्कि आध्यात्मिक था। जामिया के वायुमण्डल में धर्म की तलाश का मतलब ही यह था कि हम एक दूसरे के धर्म से क़रीब आजांय, बल्कि एक संसार-व्यापी धर्म खोज निकालें। चुनांचे मुझे ख़ूब याद है कि मैंने पुस्तकालय से ढूंढ़ ढूंढ़ कर हिन्दू धर्म पर ही नहीं, बल्कि ज़रथुस्त्री तथा कानफ़्यूशश धर्म पर भी किताबें पढ़ीं और नमाज़-

रोज़े के साथ साथ यह भी फ़ैसला किया कि प्राणायाम की साधना भी की जाय। मुझे विश्वास है कि यदि उस ज़माने में मुझे कोई साधू या योगी मिल जाता, तो मैं उसके साथ सन्यास के लिए भी निकल पड़ता। दूसरी ओर राजनीति में हम लोग बमबाज़ी से लेकर कोआपरेटिव आन्दोलन तक के लिये तय्यार बैठे थे। और देशी रियासतों को स्वराज्य का चिन्ह समझा करते थे। यह दूसरी बात है कि हमें कोई इन मैदानों का खिलाड़ी नज़र नहीं पड़ा। अजब नहीं इन लोगों को हम निर्दोषों की दुनिया और हमारी सादा मिजाज़ी का पता ही न हो। यों भी ज़माना ऐसा था कि सिर्फ़ यही नहीं कि अली-बन्धु और गान्धी जी साथ साथ दौरे पर निकलते थे, बल्कि अगर एक तरफ़ श्रद्धानन्द जी जामा मसजिद दिल्ली के मेमबर से लेक्चर देते थे, तो दूसरी तरफ़ डाक्टर किचलू के पास अमृतसर के सिख गुरुद्वारे की चाबियां रहती थीं और ऐण्ड्रूज़ और स्टोक भी सब धर्म वालों के समान नेता थे। जामिया में रहते हुए हमें इन मिसालों की भी क्या ज़रूरत थी? हमारे दिल तो आपस में वैसे ही मिले थे। स्कूल के बच्चों को छोड़ कर हमारी उमरें उस ज़माने में १६ और २४ साल के बीच में होंगी।

हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में बेहद सादगी आ गई थी। मैं अलीगढ़ कालेज छोड़ कर जामिया में आया था। मुझे नहीं मालूम यह क्योंकर हुआ। मगर यह सच है कि मैं उस ज़माने में निरी ज़मीन पर सोता और कच्ची खाल के जूते पहनता था, जिनसे शुरू में पांव में छाले पड़ कर अब घट्टे पड़ गए थे और तकलीफ़ बिलकुल न थी। मेरी सुल्तान मोहम्मद टोंकी से दोस्ती बल्कि यारी थी। हम एक ही कमरे में रहते और हमारी सम्मिलित पूंजी एक छोटा सा टीन का बक्स था, जिसमें कुछ राष्ट्रीय कविताओं की किताबें, दो क़ुरान शरीफ़, सावरकर की ज़ब्त शुदा किताब यानी १८५७ की जंगे आज़ादी, गीता का अंग्रेज़ी तर्जुमा और कुछ कपड़े थे। हम मिलकर इन किताबों को पढ़ते और कपड़ों को पहनते थे। हां; मैं यह कहना भूल गया कि हममें से हर एक के पास जामिया का दिया हुआ एक चोग़ा भी था, यूं समझिये यह हमारा यूनिफ़ार्म था। बस यह थी हमारा जमा पूंजी। बाक़ी अल्लाह के नाम के सिवा कुछ न था। मुझे याद है कि जितनी मुमकिन क़िस्म की नमाज़ें और जप हो सकते थे, मैं उस ज़माने में पाबन्दी से पढ़ता था। मेरी रोज़ की दिनचर्या थी कि अंधेरे उठ कर पहले तहज्जुत की नमाज़ पढ़ी, फिर क़ुरान की तिलावत की और ख़्वाजा साहब से टीका पढ़ी, इसके बाद कई मील टहलने निकल गया और वापसी पर फ़ज़र की नमाज़ अदा की। थोड़ी देर बाद नाश्ता करके क्लास चले गये। ख़ाली घंटों में अख़बार पढ़ा या आपस में बहस का सिलसिला रहा। असर के नमाज़ के बाद बोर्डिङ्ग वापस हुए और मग़रिब बाद कोई किताब और इशा की नमाज़ पढ़कर सो गए।

यह कैफ़ियत अकेली मेरी ही नहीं, बल्कि मेरे साथियों की भी थी। हिन्दू होने से नमाज़ से तो छुटकारा मिल सकता था; मगर उनके लिए पूजा, पाठ और ध्यान क्या कम थे? और अगर कोई मनचला योग की तरफ़ झुक गया, तो फिर क्या था? यह क़िस्सा इस ज़िन्दगी के बाद भी जारी रह सकता था। इसके अलावा राजनीति का चस्का, मज़हब और आत्मा की खोज से कब कम लुभावना था? हमारी कैफ़ियत यह थी कि चन्द्रभाल और जंगबहादुर राजनैतिक वाद विवाद में बराबर इस बात पर ज़ोर दिया करते थे कि हिन्दुस्तान को आज़ाद कराने के बाद भी हमें उस वक़्त तक चैन से न बैठना चाहिये, जब तक ख़ुद इंगलिस्तान हमारा उपनिवेश न बन जाय। मैं और टोंकी एशियाटिक फ़ेडरेशन के ख़्वाब देखते और गो सुलतान को इन बहसों से दिलचस्पी न थी, मगर विदेश में ज़िन्दगी गुज़ारने और हिजरत करने के लिए वह भी तुले बैठे थे। यह किसी की समझ में न आता था कि क्या करें और कैसे करें। मगर दिल की टीस और चुभन इस बला की थी कि शान्ति और चैन से बैठने ही न देती थी। सच बात यह है कि मैं इस भावना की कैफ़ियत बयान ही नहीं कर सकता,

जो हर घड़ी हमें किसी नामालूम मगर बेइन्तहा ख़ुशनुमा और लुभावने मंज़िल की ओर खींच ले जा रही थी। बस दिल में बराबर एक हूक और कसक मालूम होती थी, जो मूर्त रूप चाहती थी, मगर हम उस मंज़िल का जिस्मानी सूरत में क्या ख़ुद शब्दों में उसका पता देने से भी लाचार थे। शायद सच्चा रोमांस यही हो—मुमकिन है, जैसा एक बुज़ुर्ग ने फ़र्माया है कि ख़ून की ज़्यादती का असर हो—अजब नहीं उम्र का तक़ाजा हो। मैं अब तक इसका फ़ैसला कर नहीं पाया।

(२)

मेरे पास वाले बंगले में कैलाश, मुक़र्रब इत्यादि के साथ आनन्द नाम के एक ख़ुशहाल कशमीरी नवयुवक भी थे, जो स्कूल में पढ़ते थे। मिजाज़ में सजीदगी और तबीयत में भोलापन था। आनन्द की उम्र लगभग चौदह साल की होगी। उन्होंने मैट्रिक का इम्तिहान दिया था और जामिया स्कूल के सबसे होशियार और प्रतिभाशाली विद्यार्थी समझे जाते थे। उनके विचार अग्रगामी थे, मगर यह कोई कहने की बात नहीं है, इसलिए कि जामिया के वायुमण्डल में पिछड़े विचारों का कोई था ही नहीं। यह दूसरी बात है कि आगे बढ़ने या पीछे हटने की कोई परख नहीं थी। आनन्द में लड़कपन की अगर कोई निशानी थी, तो वह यह कि कैलाश और मुक़र्रब के छेड़ने पर बिगड़ते और दो दो दिन उनसे न बोलते थे। इससे मुक़र्रब और भी ख़ुश होते और आनन्द को चिढ़ाने की नई नई तरकीबें सोचा करते। आनन्द हंसते कम थे, मगर जामिया में हंसने खेलने का व्यवहार ही ज़्यादे न था। सिर्फ़ एक टोली हमारी ऐसी थी, जिन्हें गुल्ली-डंडा, कबड्डी, पालिटिक्स, ठठोल आदि सभी बातों का ध्यान था। आनन्द के पिता डाकसर जी बड़े कट्टर कांग्रेसी थे और देहली के रहने वाले थे। सत्याग्रह में ज़ब्ती के ख़्याल से उन्होंने पहिले से ही अपनी सारी जायदाद बेचकर आनन्द की उच्च शिक्षा के लिये रुपया बैंक में जमा कर दिया था। आनन्द की सिर्फ़ एक बहिन थी, जो देहली मेडिकल कालेज में पढ़ती थी। और सरकारी कालेज में पढ़ते हुए भी उसकी विचार-धारा राष्ट्रीय थी। आनन्द अपने मां बाप के एकलौते बेटे थे।

मैं रोज़ देखा करता कि आनन्द बावजूद कमसिनी के गीता क्लास में पाबन्दी से आते और ख़ामोश एक कोने में बैठ कर लेकचर सुना करते। थोड़े दिनों में मैंने महसूस किया कि आनन्द की कैलाश और मुक़र्रब से अन बन ज़रा कम होने लगी, और वह चुप रहने और किसी ख़्याल में तल्लीन रहने लगे। एक दिन का ज़िक्र है कि सिंगल जी ने सन्यास पर लेक्चर दिया और संसार से विरक्ति पर बात चीत शुरू हुई। आनन्द ने फ़ौरन सिंगल जी से सवाल किया कि संसार त्याग से आपका क्या अर्थ है? सिंगल जी बोले— "बनवास लेकर ख़ामोशी से तपस्या करना और ईश्वर के ज्ञान में मगन रहना।" इस पर आनन्द बोले— "सिंगल जी यह तो सोचिए कि बनवास से दुनिया कहा छूटती है? जंगल की भी एक दुनिया है, फ़र्क़ इतना है कि जंगल में आदमी नहीं पशु, परिन्दे और हैवान बसते हैं। फिर संसार-त्याग कैसे हुआ? सिंगल जी से आनन्द के सवाल का कोई जवाब न बन पड़ा और वह ख़ामोश हो गए। यह उन्हें या और किसी को क्या मालूम कि आनन्द ने इस सवाल पर इतना सोच विचार क्यों किया?

(३)

इन दिनों जामिया में बड़ा हंगामा था। कान्वोकेशन का हमारा पहला जलसा होने वाला था, जिसमें और बड़े बड़े लोगों के अलावा आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय का दीक्षान्त भाषण था। हकीम अजमल ख़ां बतौर चांसलर, डा० अंसारी, टी० के० शेरवानी, श्री जमनालाल बजाज आदि शरीक होने आ रहे थे। मेहमानों का कुछ ठीक न था। हर गाड़ी से उतरते और रात दिन तांता लगा रहता। जलसे के इन्तज़ाम और मेहमानों की देख भाल से हम विद्यार्थियों को एक क्षण की फ़ुरसत न थी।

मुझे और आनन्द दोनों को रेलवे स्टेशन पर रोज़ कई घंटे ड्यूटी देनी पड़ती थी। मैं वालण्टियरों का

कप्तान था और इस हैसियत से काम बांट कर और अपने साथियों को ज़रूरी हिदायतें देकर स्टेशन से डिग्गी कोठी, जहां जामिया की केन्द्रीय इमारत थी, चला जाता और वहां जाकर वालण्टियरों का काम देखता और आनन्द मेरे पीछे रेल पर कुलियों और मेहमानों की देख भाल रखते। फ़ुर्सत के वक्त हम दोनों साथ चाय पीते और इधर उधर की गप लड़ाते, जो अलीगढ़ के जीवन की विशेषता थी और अब भी है। कानवोकेशन से तीन दिन पहले हमारी ड्यूटी ज़रा सख्त रही। मगर हम दोनों ख़ुश थे, क्योंकि आनन्द को मैट्रिक में फ़र्स्ट आने का इनाम और मुझे आचार्य राय के हाथों से बी० ए० की सनद मिलने वाली थी।

मेहमानों की आमद का आखिरी दिन था। मैं सुबह होते ही स्टेशन पहुंचा; मगर जाने क्यों आनन्द उस दिन उम्मीद के विरुद्ध स्टेशन नहीं आये, जिससे मेरा काम बहुत बढ़ गया और मैं डिग्गी कोठी न जा सका। मुझे इस पर बड़ा गुस्सा था कि इतने पास रहते हुए भी आनन्द ने इत्तला तक न दी। दोपहर को मैं आनन्द का कमरा देखता हुआ अपनी कोठी पर पहुंचा। वह कमरे में न थे, इसलिए मैं पर्चा लिखकर छोड़ आया कि चार बजे मैं फिर आऊंगा ज़रूर मिलना। मैं निश्चित समय पर आनन्द के पास पहुंचा। वह मिले।

मैंने कहा—"आप भी अजीब हज़रत हैं। सुबह स्टेशन न आये कोई बात न थी, मगर आपको इतना ख्याल होना चाहिए कि इत्तला दे देते।"

आनन्द बोले—"माफ़ कीजिए मुझसे भूल हो गई, असल बात यह है कि मैं शेख़ुल जामिया यानी प्रिंसपल साहब के पास अपना चोग़ा वापस देने गया था। आप समझिये चोग़ा जामिया की दी हुई अमानत है और किसी की अमानत का रह जाना या खो जाना बहुत ही बुरी बात है।"

मैं उसकी बातों का मतलब कुछ न समझ सका, अलबत्ता मेरा ख्याल हुआ कि आनन्द की बात माकूल है। इसलिए मैंने कहा कि—"हज़रत अब मुझे चाय पिलाइए और स्टेशन चलने की तय्यारी कीजिए।"

आनन्द ने चाय बनाई, चाय के साथ मेज़ पर फल लाकर रख दिये, मगर ख़ुद शरीक न हुआ। मुझे दीख पड़ा कि शायद कैलाश, मुक़र्रब की तरह ये बन्दे ख़ुदा मुझसे तो ख़फ़ा नहीं हैं। चुनांचे मैंने पूछा कि चाय क्यों नहीं पीते?

आनन्द ने जवाब दिया—"मैं अभी थोड़ी देर पहले पी चुका हूं।" कुछ सोच कर, और ज़रा देर रुक कर कहने लगे कि—"अब आयन्दा जब तक आप गोश्त खाना न छोड़ें, मेरा आप का साथ खाना पीना बन्द रहेगा।" 'मुझे ख्याल हुआ कि ये नासमझ साहबज़ादे मुफ़्त में बहस करके मेरा समय ख़राब करना चाहते हैं, इसलिए मैंने बात काट कर कहा—"भाई ड्यूटी का वक्त आरहा है; इस मसले पर फ़ुरसत के वक्त बात चीत होगी। अब स्टेशन चलने की सुध करो।"

आनन्द ने ख़ामोशी से जवाब दिया—"मैं इस वक्त भी स्टेशन न जा सकूंगा। अलबत्ता कुछ लाइब्रेरी की किताबें, आपके दिये हुए कुलियों के पैसे और रसीदें मेरे पास जमा हैं; इन्हें लेते जाइए।"

"मैं सोचता रहा कि शायद मुक़र्रब की छेड़ छाड़ से या कैलाश के मज़ाक से आनन्द का पारा बढ़ा हुआ है; इसलिए मै उन्हें छोड़, पैसे और रसीदें जेब में डाल स्टेशन चल दिया। वहां रात के बारह बजे तक काम की वह भरमार थी कि मुझे दम मारने की फ़ुरसत न मिली। ख़ुदा जाने कहां-कहां से मेहमान आये और ख़ुद मेरे जामिया के पुराने साथी इतने आगए कि उनका ठहराना, खाने का टिकट काटना और सामान लदवाना दूभर होगया।

(४)

ख़ुदा-ख़ुदा करके रात को बारह बजे फ़ुरसत हुई और मैं बोर्डिङ्ग हाउस में वापिस आया। आए हुए मेहमान और साथी गहरी नींद सो रहे थे। मैं भूखा था; इसलिए मैंने उनके सामान, बल्कि यह कहिए कि नाश्तेदानों की तलाशी शुरू की और ख़ामोशी से

एक कोने में हलवा और मिठाई खाने में लगा हुआ था कि एका-एक बराबर के बंगले का मुलाज़िम घबराया हुआ आया और कहने लगा "महाराज आज आनन्द जी का अभी तक पता नहीं ! मैंने शाम को खाना परोसा, तो यह कह कर चल दिये कि मेरी आत्मा को अब अन्न की ज़रूरत नहीं रही।" कहां कैलाश और मुक़र्रब बाबू से खफ़ा रहते थे, अब रसोई से उठ कर सीधे उनके पास गए और गले में बाहें डाल कर बोले—"मुझे माफ़ करना, मैं छोटा हूं, मुझसे ग़लती हो जाया करती है; आयन्दा न होगी।" कोई दस बजे रात का वक्त होगा टहलने के ख़्याल से निकल गए और अभी तक लापता हैं।

इतने में कैलाश और मुक़र्रब निकले, बल्कि यह कहिये कि सारा बोर्डिङ्ग ख़ाली हो गया और आनन्द की तलाश शुरू हुई। कोई रेल की पटरी की तरफ़ चला, कोई डिग्गी कोठी, किसी ने आनन्द के मेज़ की तलाशी लेनी शुरू की, कुछ लोग महज़ बौखलाहट में बेमक़सद इधर-उधर फिरने लगे। बाज़ समझे कि आनन्द ने अच्छा मज़ाक किया है। मगर मैं सोच में पड़ गया। मैंने उसका एक-एक लब्ज़ दोहराया। उसके एक-एक अन्दाज़ गुफ़्तगू पर विचार किया, उसका हलके ख़ामोश रहना······सिंगल जी का लेक्चर··· ···"तर्क दुनिया जंगल में जाकर नहीं हो सकती ······चोग़ा जामिया की अमानत था······ये कुलियों के पैसे रखलो······जब तक गोश्त खाना तर्क न करो मैं तुम्हारे साथ नहीं खा सकता······मेरे जीवन को इनकी ज़रूरत नहीं······कैलाश मुक़र्रब से माफ़ी··· ···" मैं इस चीज़ को साफ़ देखने लगा; मगर किसी से कहने की मेरी हिम्मत न होती थी।

मेरा कलेजा दहल गया। मैं अभी तक, इस घड़ी तक, आनन्द को चौदह बरस का नासमझ बच्चा समझता था। हमारे बोर्डिङ्ग के ऐन बीच में एक पक्का कुंआ था, उसके एक तरफ़ सामने को मेहतर की कोठरी और दूसरी तरफ़ मेरा बोर्डिङ्ग था। तेरहवीं रात का चांद आसमान में चमक रहा था।

मैंने इस बंगले के आसपास की कोठियों में रहने वालों को जगाकर उनसे और चौकीदार से दरियाफ़्त किया—"तुमने दस बजे के क़रीब कोई कुंए में धमाका तो नहीं सुना ?" मगर सब ने कहा—कि हम ग्यारह बजे के बाद बिस्तर पर सोने गए हैं; उस वक्त तक कोई आवाज़ नहीं आई। मुहल्ले के मेहतर ने अलबत्ता ज़ेहन पर ज़ोर डालकर कहा—"बाबू जी बहुत देर हुई मेरी घर वाली ने हल्की सी आवाज़ सुनी, जैसे किसी का डोल गिरा हो। मगर आप तो ख़ुद सामने ही रहते हैं।"

मैं कुंए पर गया। कोई ख़ास बात नज़र न आई। अलबत्ता कुंए की बल्ली अपनी जगह पर न थी। ऐसा दिखाई पड़ता था, जैसे किसी ने ज़रा सा बीच से सरका कर एक तरफ़ को रख दी है। वहम कुछ बढ़ा, मगर मुझे अपने वहम पर शर्मिन्दगी हुई और मैं बंगले की तरफ़ सोने के लिए वापस लौटा। चन्द क़दम चला हूंगा कि आनन्द की चपल्लियां पड़ी हुई मिलीं। अब फिर से वहम क्या यक़ीन होने लगा। दिल कहता था ग़लत है, हो नहीं सकता। दिमाग़ कहता था लक्षण साफ़ बता रहे हैं !!

जाने कहां से और कैसे मैं एक लोहे की ज़ंजीर मय आंकड़े के ले आया। और कुंए में वह ज़ंजीर डाल दी। एक दो बार इधर-उधर घुमाया, कोई चीज़ अटकी, मगर इतनी हलकी कि मैं ख़ुश हुआ कि शायद कोई घड़ा या बाल्टी है। मैंने हल्के हल्के ज़ंजीर खींची। पानी की सतह पर आनन्द की लाश दिखाई दी। पानी की गहराई आनन्द के क़द से शायद चन्द इञ्च ही ज़्यादह थी। जिस्म पर ज़ख़्म का पता नहीं। और कैसे होता ? आनन्द ने बल्ली हटा कर कूदने में इन्तहाई होशियारी से काम लिया था। धोती लंगोट के तर्ज़ पर कछी हुई थी, हाथ प्रार्थना के अन्दाज़ में जुड़े हुये थे। आंखें बन्द थीं। ऐसा मालूम होता था, जैसे कोई वैष्णव ईश्वर के ध्यान में मग्न हो। मालूम होता था कि ये कूदे नहीं, बल्कि हाथ बांध कर ख़ामोशी से गिरे हैं।

इस वक्त सुबह के चार बजे थे। दिन निकलते निकलते आनन्द की मौत का शोर हो गया। उनके पिता को देहली तार दिया गया। जवाब आया कि लाश को रक्खो, वे और आनन्द की मां मोटर से रवाना हो रहे हैं।

(५)

जामिया के कान्वोकेशन के दिन एक नहीं, दो जलसे हुए। डिग्गी की कोठी पर हकीम अजमल ख़ां और आचार्य राय अपना वाजिबी फ़र्ज़ अदा कर रहे थे और हम कुछ स्कूल कालेज के साथी आनन्द की लाश को यहां घेरे खड़े थे। कुछ लोग आनन्द का सामान इस ख़्याल से उलट पुलट रहे थे कि शायद आनन्द के किसी ख़त-पत्र से इस ख़ुदकुशी का राज़ खुले। ले दे कर सिर्फ़ बहिन का एक ताज़ा ख़त मिला, जिसमें लिखा था—"पिता जी कल सत्याग्रह में गिरफ़्तार हो गये हैं और एक हफ़्ते बाद मुक़दमा पेश होगा। ज़मानत हो गई है; ज़ाहिर है तुम इस ख़बर से घबराओगे नहीं, इसलिये कि वह अपने धर्म का पालन कर रहे हैं, हम तुम भी पढ़ाई से निपट कर देश की आज़ादी की लड़ाई में शरीक होंगे। मेरा इम्तिहान एक हफ़्ते में ख़तम हो जावेगा। मैं सोचती हूं कि तुम से मिलकर सत्याग्रह करने के बारे में मशविरा करूं।" कैलाश ख़त पढ़कर मुझे सुना ही रहे थे कि इतने में मोटर की आवाज़ आई और आनन्द के माता-पिता दोनों बोर्डिङ्ग में मौजूद थे।

आनन्द की माता, दरवाज़े में दाख़िल होते ही ऐसी बिलख बिलख कर रोई कि किसी से देखा न जाता था। उनकी ममता का अन्दाज़ा शायद मर्द नहीं सिर्फ़ वह मां ही कर सकती है, जिसका एकलौता बेटा आनन फ़ानन में खो जाय। मगर पिता हाकर हाकसर जी के चेहरे पर बल तक न था। सीधे लाश के पास आये और कुछ मुस्करा कर कहने लगे—"ना समझ कहीं का। इससे तो मुल्क के लिये फांसी पर चढ़ता, तो बेहतर था।" फिर आनन्द की मां से बोले—"रोती क्यों है? क्या ये सब बच्चे तेरे नहीं हैं? ये सभी तेरे आनन्द हैं।"

थोड़ी देर में एक सब-इन्सपेक्टर मुआयने के लिये आये। हाकसर साहब ने उनसे कहा—मैं अपने बेटे के मामले में अंग्रेज़ी पुलीस को दख़ल-अन्दाज़ी की इजाज़त नहीं दे सकता।" इन्सपेक्टर चुप वापस चले गये।

शव के अन्तिम कर्म की तय्यारी होने लगी। आनन्द को कशमीरी ब्राह्मण समझ कर पुरोहितों की टोली बिन बुलाये आ पहुंची। इस पर हाकसर साहब बिगड़ कर पुरोहितों से कहने लगे कि आप हज़रात कृपा करके मेरे बच्चे को न छुएं। इसे हिन्दू, मुसलमान, चमार, भंगी—गरज़ कि जो भी इस देश की आज़ादी और कांग्रेस में विश्वास रखते हों—नहला-धुला सकते हैं। चुनांचे हम सब जवानों ने अपनी समझ के मुताबिक़ बड़े प्यार दुलार से आनन्द की अर्थी सजाई और खादी की चादरों में लपेट कर ले चलने के लिए तय्यार हो गये।

अलीगढ़ में आनन्द का जनाज़ा अजीब शान से चला। कुछ मुसलमान-हिन्दू विद्यार्थी अर्थी को कंधा देते हुए आगे चल रहे थे, बाक़ी जुलूस की सूरत में पीछे 'अल्लाहो अकबर' और 'बन्दे मातरम्' पुकारते जाते थे। आनन्द के माता-पिता हम सब के पीछे साथ साथ थे। मां विकल, बाप उसी शान से ख़ामोश और गम्भीर दिखाई पड़ते थे। हम सब को ऐसा लग रहा था गोया हमारा एक सगा भाई मर गया है।

शाम के झुटपुटे वक़्त हम सब चन्दनियां कोठी के पास के श्मशान में पहुंचे। हाकसर और ख़्वाजा मजीद ने आनन्द के लिए चिता रचनी शुरू की। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी।

आग देने से पहले हम सब को मुंह देखने और 'अलिवदा' कहने का मौक़ा दिया गया। चौदहवीं रात का चांद, श्मशान की ख़ामोशी, एक चिता पर आनन्द की शुद्ध खादी में लिपटी हुई लाश और उसमें चांद जैसा एक ख़ूबसूरत मासूम मुखड़ा। हम सब की आंखों से ढार-ढार आंसू बह रहे थे; मगर

आनन्द के बूढ़े बाप, जिनका रोना क्या, यानी ज़बान पर शिकन तक नहीं आई है। उस वक्त सब से अन्त में बूढ़े हाकसर जी भी अपने सुपुत्र को देखने बढ़े।

* *

चन्द मिनट सन्नाटा रहा। फिर एक भर्राई हुई आवाज़ चारों ओर गूंज गई—"आनन्द! आनन्द! तुम मासूस बच्चे हो। तुम्हारी रूह पाक है और गो मैं तुम्हें नहीं देखता, पर मुझे यक़ीन है कि तुम ग़ैब से मुझे देख रहे हो और मेरी आवाज़ सुन रहे हो। मैं इसकी गवाही देता हूं कि तुमने मेरा कहना कभी नहीं टाला और नेक बेटे की तरह मेरी हर बात मानी है। मैं यह भी जानता हूं कि परमात्मा तुम्हारी पाक रूह को जन्नत में जगह देगा। बेटा आनन्द! तुम्हारे बाप की अब तुम से एक आख़िरी दरख़्वास्त है। मुझे उम्मेद है तुम उसे हरग़िज़ हरग़िज़ न टालोगे—वह यह कि जब परमात्मा तुम्हें जन्नत में जाने के लिए हुक्म दे, तो तुम अदब से मगर साफ़ साफ़ कहना कि मैं इस जन्नत में उस वक्त तक नहीं जाऊंगा, जब तक मेरा देश आज़ाद न हो जाय!"

* *

हाकसर जी और उनकी धर्मपत्नी उसी रात देहली रवाना हो गये। दूसरे दिन हाकसर साहब का सत्याग्रह के सिलसिले में मुक़दमा पेश हुआ और अदालत ने उन्हें चार साल सख़्त सज़ा दी।*

मैं सांच कहता

पूरब में राम है औ पच्छिम ख़ुदाय है,
तो उत्तर औ दक्खिन कहो कौन रहता?
साहब वो कहां है, कहां फिर नहीं है,
हिन्दू औ मुसलिम तोफ़ान करता!
हिन्दू औ मुसलिम परे हैं खैंचि में,
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता।
दास पलटू कहे साहब सब में रहे,
जुदा ना तनिक मैं सांच कहता।

—पलटू

* एक सच्ची घटना।

अफ़ग़ान हैं कौन ?

——(:०:)——

डाक्टर, भूपेन्द्रनाथ दत्त

—:○:—

ऐतिहासिक उल्लेखों को देखकर पता चलता है कि अफ़ग़ानिस्तान तीन महान जातियों और सभ्यताओं का मिलन-केन्द्र था। भारत, ईरान और मध्य एशिया, तीनों ओर से, विविध जातियां अपना अपना धर्म और संस्कृति लेकर यहां इकट्ठा होती थीं। इनमें से कभी एक जाति का प्रभुत्व यहां रहता था और कभी दूसरी का। इसका नतीजा यह है कि अफ़ग़ानिस्तान में विविध धर्मों, विविध संस्कृतियों, विविध रीति रिवाजों, और विविध क़ौमों के शारीरिक गठन की छाप दिखाई देती है। तरह तरह की भाषाओं का अफ़ग़ानिस्तान में आकर समन्वय हुआ है। इसलिए कुदरती तौर पर यह सवाल उठता है कि अफ़ग़ानिस्तान की मौजूदा क़ौम क्या इसी समन्वय का परिणाम है ? या मौजूदा अफ़ग़ान शुद्ध रक्त वाले कोई प्राचीन क़ौम हैं ! अफ़ग़ान क़ौम के ही कारण इस मुल्क का नाम अफ़ग़ानिस्तान पड़ा। अफ़ग़ानों की तादाद अपने मुल्क में सबसे ज़्यादा है, राजनैतिक दृष्टि से भी वे सब क़बीलो से ज़्यादा शक्तिशाली हैं। बाहर की दुनिया भी सिर्फ़ अफ़ग़ानों को ही जानती है। अफ़ग़ान क़बीले के कुछ अफ़ग़ान लेखक अपनी रचनाओं से इस बात का असर डालना चाहते हैं कि अफ़ग़ान राष्ट्र में केवल एक ही क़बीला रहता है। बहुत से ग़ैर अफ़ग़ान क़बीले वाले भी अपने को बड़े शौक़ से अफ़ग़ान क़बीले वाला कहते हैं। मैंने ख़ुद काबुल के एक ताज़िक को अपने को अफ़ग़ान कहते हुए सुना है। सवाल उठता है कि आख़िर ये अफ़ग़ान हैं कौन ?

अफ़ग़ानों की ज़बान 'पश्तु' है १। इतिहास लेखक ट्रम्प और बेलो२ के अनुसार 'पश्तु' संस्कृत भाषा से निकली है; और इतिहास लेखक गीगर३ और दूसरों के अनुसार पश्तु पूर्वीय ईरानी भाषाओं के समूह यानी ज़ेन्द का एक रूप है। अफ़ग़ानों की न सिर्फ़ अपनी ज़बान है, बल्कि उनके अपने क़बीलों के क़ानून भी हैं। इन्हीं क़ानूनों के मुताबिक उनके व्यवहार और उनके रिवाजों का परिचालन होता है। इस क़ानून को वे **'पश्तु वाली"** (Pushtun wali) कहते हैं।

इस तरह वे अपने पड़ोसियों से भिन्न एक बिल्कुल दूसरी ही क़ौम के लोग हैं।

१—पश्तु बोलने वालों की कुल तादाद पैंतीस लाख हैं ! इनमें से बीस लाख अफ़ग़ानिस्तान में रहते हैं और पन्द्रह लाख हिन्दुस्तान और याग़िस्तान में रहते हैं—

Encyclopaedia des Islam p. 164.

२—Trumpp Verwandschafts Verhaltnisse der Pashto i. d. z. d. D. ug. Ges XXX; 10—155 XXXIII. H. Bellew. A Grammar of the Pashto Language, London, M D C C C L XVII.

३—W. Geiger Die sprache der Afghanen-Grundriss d. Iran Phil., Part I.

अफ़ग़ान किंवदन्तियों के अनुसार वे अपने को यहूदियों का वंशज कहते हैं। वे अपने को साल४ (Saul) नामक एक यहूदी राजा की औलाद बताते हैं। और अपने को 'बनी इसराइल' बताते हैं। समझा जाता है कि वे उन यहूदियों के वंशज हैं, जिन्हें काल्डी सम्राट नेबुकेनज़र (Nebuchad nezar) फ़िलिस्तीन से क़ैद करके मादिया लाया था। बाद में ये यहूदी ग़ोर (Ghor) यानी पूर्वीय अफ़ग़ानिस्तान में बस गए। फ़रीदुद्दीन अहमद ने अपने ग्रन्थ रिसाला अन्साब अफ़ग़ानिया में इन यहूदियों के कोहिस्तान में ग़ोर के पास देश निकाले की बात लिखी है ५। फ़रीदुद्दीन के अनुसार ये यहूदी जब ग़ोर आये, तो वहां इन्हें अपने घर की याद ने बहुत सताया। ये व्याकुल होकर करुण स्वर में चिल्लाने लगे। ये ज़ोर ज़ोर से 'अफ़ग़ान' कहकर पुकारते थे। कुछ लोगों के अनुसार ये 'औगान' कहते थे। बस उसी समय से इनका नाम अफ़ग़ान पड़ गया। अफ़ग़ान अपने को एक ही दादा की औलाद समझते हैं। इनके पूर्वज का नाम कैस या किश था। इसके तीन बेटे थे—१ बतन, २ ग़ुरग़ुस्त, ३ सरबन्द या सरबंस। लोक-कथा के अनुसार यह कैस पहला अफ़ग़ान था, जिसने मक्का जाकर इसलाम धर्म स्वीकार किया और वहां से लौटकर अपने क़बीले वालों को नये धर्म में दीक्षित किया। हज़रत मोहम्मद ने कैस का नाम बदल कर अब्दुल रशीद रख दिया और उसको पहतान (Pahtan) कह कर पुकारा। सीरिया की ज़बान में पहतान का मतलब है—मार्ग-प्रदर्शक६। कुछ लोग इसी पहतान शब्द को पठान कह कर इसलाम के साथ नाता जोड़ते हैं।

अफ़ग़ान यहूदी हैं या नहीं, इस पर अंग्रेज़ यात्रियों और लेखकों में ख़ासी गरमा गरम बहस हुई। यह कहा जाता है कि अफ़ग़ानों के शरीर का गठन इस बात को साबित करता है कि वे यहूदी हैं। उनकी यहूदियों जैसी नाक है७ और उनके मुंह का सांचा भी यहूदियों जैसा है। बेलो ने, जो अफ़ग़ानिस्तान में काफ़ी रहा है इस बात को साबित करने की कोशिश की है कि अफ़ग़ान यहूदी हैं और वे पुराने ज़माने में अफ़ग़ानिस्तान के हिन्दुओं के बीच में आकर बस गए, और उन्होंने हिन्दुओं की ही रीति रिवाज अपना लिए। बेलो के अनुसार अफ़ग़ानों का पूर्व पिता बतन ब्राह्मण था और उसका नाम भट्ट था। अफ़ग़ानों का दूसरा पूर्वज सर्बन असल में कृष्णवान था। ये दोनों प्रसिद्ध राजपूत जाति सूर्यवंशी और कृष्णवंशी में से थे।

नियामतुल्ला की प्रसिद्ध पुस्तक "अफ़ग़ानों के इतिहास" ८ में जो एक अफ़ग़ान अमीर ख़ान जहान लोधी के प्रोत्साहन से लिखी गई है, लिखा है कि अफ़ग़ान साल नरेश के वंशज हैं। किन्तु नियामतुल्ला ने शेख़बतन के जिन औलादों की वंशावली दी है, उनमें बहुत से हिन्दू नाम हैं। मसलन ख़ोर की औलाद शिवरानी के लड़के (बेलो का ख़्याल है कि शिवरानी की जगह शिवराम होगा) और हरिपाल। हमीन के सात बेटे मूर्तिपूजक९ थे। तूर१० के चार बेटों में से एक गान्दारी११ कहलाता था। क्या गान्दारी और हेरोदत का

४—Neamatulla—History of the Afghans.

५ फ़रीदुद्दीन अहमद-रिसाला अन्साब अफ़ग़ानिया पृष्ठ ६४

६—Neamatulla—Ditto.

७—Bellew—Races of Afghanistan.

८—Neamatulla—P. 41.

९—Dorn—Translator of Neamatulla's History of the Afghans pp. 3-133.

१०—Ibid—P- 43

११—संस्कृत में गान्धारी गान्धार के रहने वाले को कहते हैं।

गन्दारितिस और संस्कृत गान्धारी एक ही हैं? दामर के सात बेटे थे। एक का नाम रामदेव था १२। रामदेव के हिन्दू नाम होने में ज़रा भी शक नहीं। सरवन के तीन बेटे थे—शनी, सरपाल और बालि। यह तीनों भी निश्चयपूर्वक भारतीय नाम हैं। नागर के छै बेटे थे, जिनमें से मरु और चन्द भारतीय नाम हैं। दानी के एक बेटे का नाम दारपाल था। दारपाल भी ज़ाहिरा तौर पर भारतीय नाम मालूम होता है।

एक अफ़ग़ान क़बीले का नाम गोन्दफ़र है। यह लोग सिन्धु की वादी में बसे हुए हैं और कुछ बलूचिस्तान में। क्या इस क़बीले का गान्धार के पार्थी राजा गोन्दोफ़ार से कुछ सम्बन्ध है? क्या यह राजा उस पार्थी क़बीले का वीर पुरुष था, जो बाद में अफ़ग़ान बन गया?

ग़िल्ज़ाइयों को भी अफ़ग़ान क़बीले का कहा गया है। अफ़ग़ान कथाओं के अनुसार ग़िल्ज़ाई ग़ोर के सुल्तान के क़बीले के हैं। ग़ोर के सुल्तान ईरानी थे। एक कथा है कि ईरानी राजकुल के एक कुमार ज़ोहक को सम्राट फ़रूदीन ने फांसी की सज़ा दी। हुक्म हुआ कि जोहक को देमाबन्द की पहाड़ी के नीचे फांसी पर लटका दिया जाय। ज़ोहक किसी तरह भाग निकला और आकर कोहिस्तान (ग़ोर) में बस गया। ज़ोहक के ख़ानदान में शाह हुसेन नामक एक व्यक्ति हुआ, इस शाह हुसेन का शेख़ बातन की लड़की बीबी मातु से अनुचित सम्बन्ध हो गया। लड़की के पिता को जब शेख़ हुसेन के शाही ख़ानदान का पता चला, तो उसने अपनी बेटी की शादी उससे कर दी। मातु को पहले ही गर्भ रह चुका था और समय पाकर उसने एक बहुत ही सुन्दर बेटे को जन्म दिया। इसी बेटे का नाम ग़िल्ज़ाई पड़ा। पश्तु ज़बान में ग़िल का मतलब है चोर और ज़ाई का मतलब है औलाद। इस तरह ग़िल्ज़ाई का मतलब हुआ 'चोर की औलाद' १३।

बहुत से यूरोपियन लेखक जैसे मेजर रेवर्टी और मार्क्वार्ट १४ का ख़्याल है कि ग़िल्ज़ाई असल में एक तुर्क क़बीला है। और इसका "ईरान शहर" और दूसरी पुस्तकों में ख़िल्द या ख़िल्जी नामों से ज़िक्र किया गया है। इसके अलावा और बहुत से क़बीले हैं, जिनकी शुमार अफ़ग़ानों में होती है; मगर जो वास्तव में अफ़ग़ान नहीं हैं। नियामतुल्ला लिखता है—"सैय्यद मुहम्मद गेसू दराज़ अफ़ग़ानों के बीच में आकर बस गए। इनकी औलाद सैय्यद ज़ादा १५ कहलाई। किन्तु इनकी शुमार भी अफ़ग़ानों में हो गई। फ़रमूली और खोतानी भी अफ़ग़ान नहीं हैं। वह फ़रमूल के रहने वाले हैं और इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके पूर्वज खेता या खोतान से आये हैं १६।

सरवातिस के रहने वाले भी अपने को अफ़ग़ान कहते हैं। इनके सम्बन्ध में ख़ुलासतुल अन्साब में लिखा है—हालाकि सरवातिस अफ़ग़ान नहीं हैं। किन्तु, चूंकि उन्होंने अफ़ग़ानी ज़बान और अफ़ग़ानी रीति-रिवाज को स्वीकार कर लिया है और अफ़ग़ानों में मिल-जुल गए हैं; इसलिये उनकी शुमार भी अफ़ग़ानों में होने लगी है।"

१२—नियामतुल्ला
१३—नियामतुल्ला पृष्ठ ४४
१४—Marquart—Eran shahr
१५—नियामतुल्ला पृष्ठ ५६
१६—Ibid—पृष्ठ ५१

दूसरी शताब्दी (ईस्वी) का भारतवर्ष
मील
0 १०० २०० ३०० ४०० ५००
बुखारा
सोगदियाना
काशगर
यारकन्द
खोतान
पाटलिपुत्र
उज्जैन
बर्बरीकी
जूनागढ़
पैठान
आन्ध्र
चोल
पाण्ड्य
कनिष्क के समय में कुशन साम्राज्य की सीमा
पश्चिमी क्षत्रप
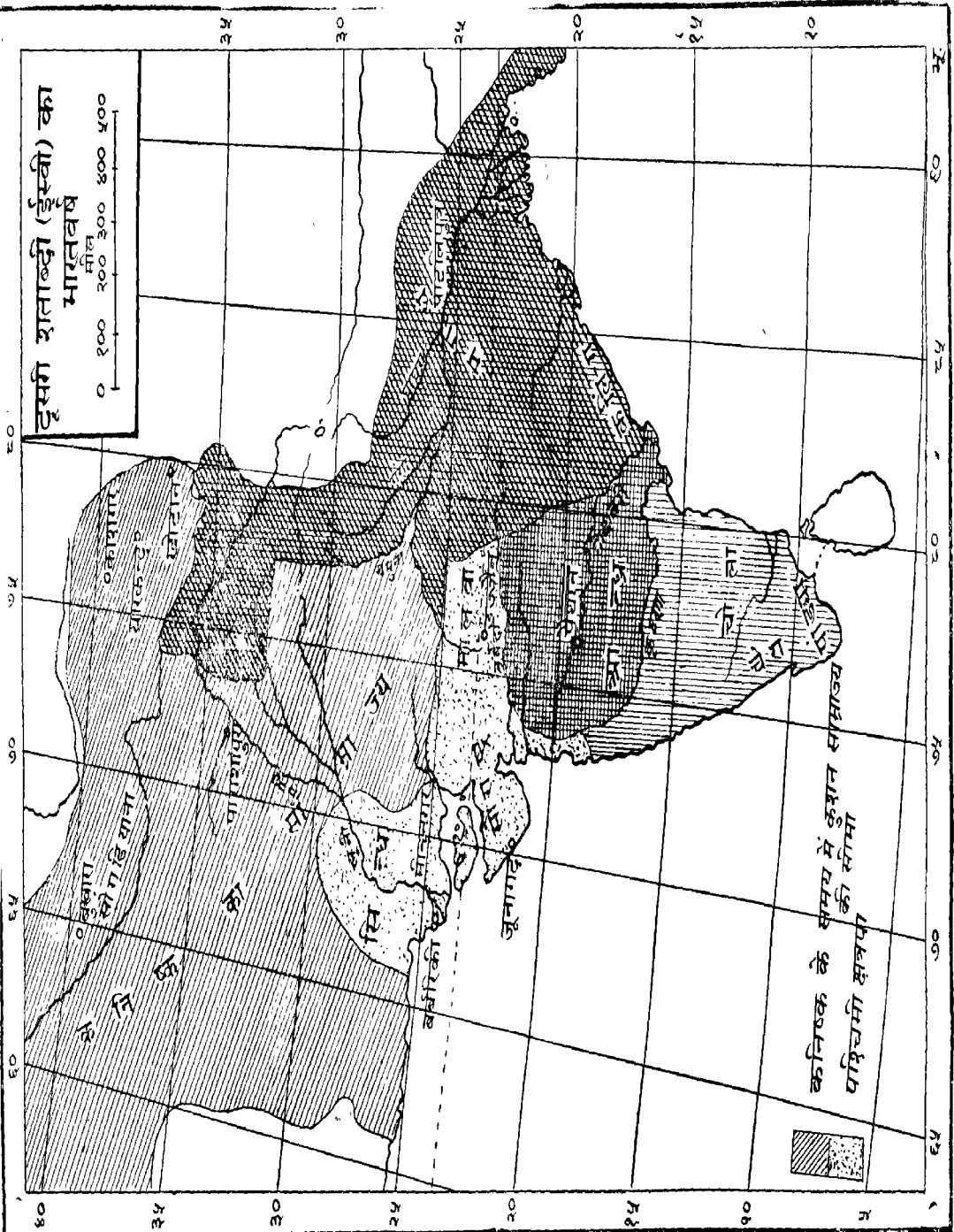
वैदिक कालीन आर्यावर्त
आर्यों के आगमन के प्रधान मार्ग
सिन्धु नदी
सरस्वती नदी
शतुद्री नदी
इरावती नदी
विपाशा नदी
हस्तिनापुर
इन्द्रप्रस्थ
कम्पिल
अहिच्छत्र
अयोध्या
कौशाम्बी
गण्डकी
घर्घर
गोमती
गंगा नदी
यमुना नदी
सोन नदी
नर्मदा नदी
पयस्वनी नदी
महानदी
गोदावरी नदी
कृष्णानदी
ब्रह्मपुत्र नदी
माही
द्वारका
कुरम
गोमल
ब्रह्मावर्त
खाण्डव
मगध
चेदि
कोशल
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
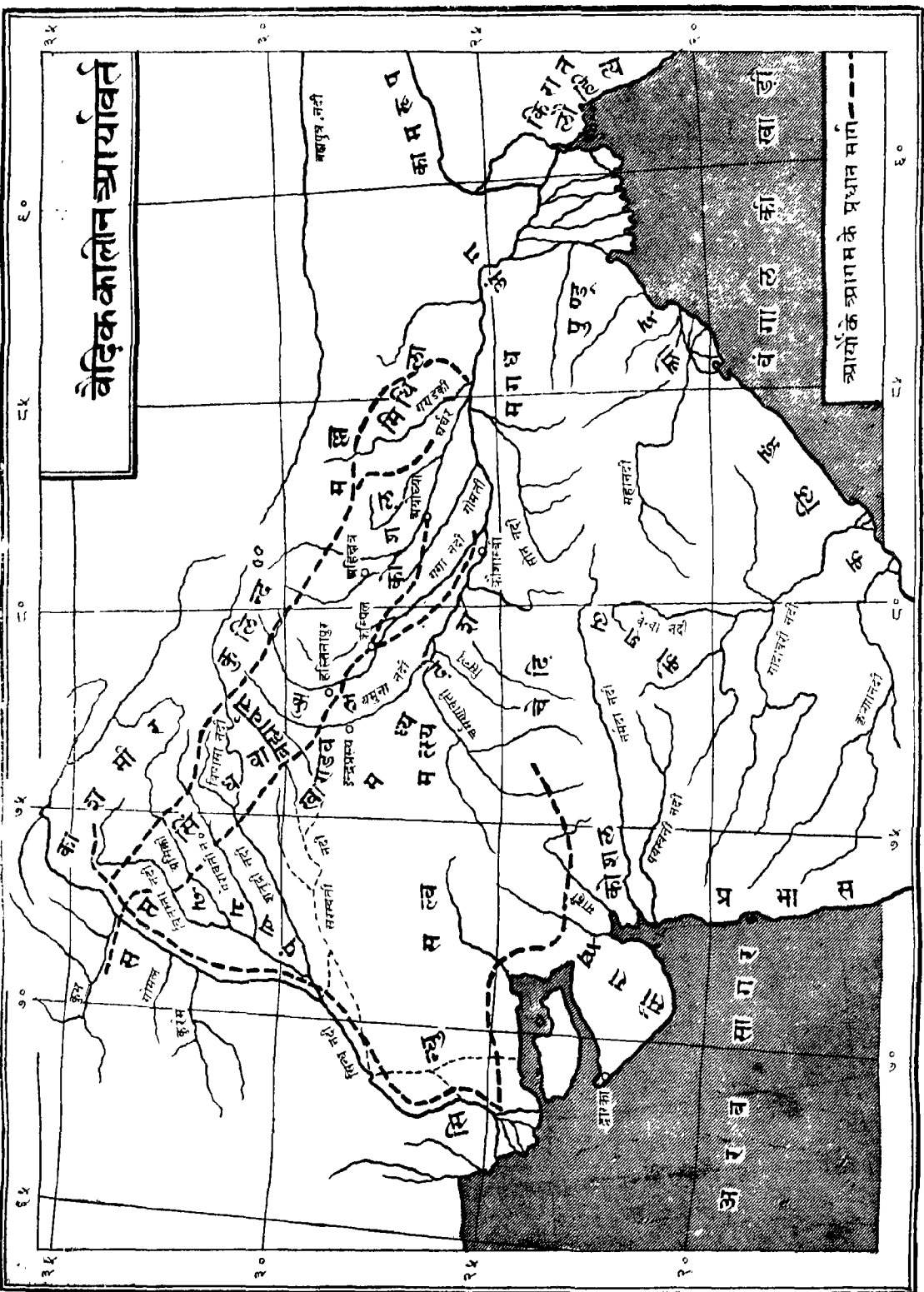
सरवातियों में तीन फ़िरक़े हैं। उनकी एक बड़ी तादाद ताज़िक कहलाती है १७। सरवातियों के कुछ क़बीले ताज़िक नहीं हैं। इसका अर्थ यह है कि मूलतः यह क़बीला ताज़िक था; मगर कुछ लोग बाद में आकर इनमें मिल गये।

इनके अलावा लग़मान (संस्कृत—लम्पक) और स्वात (संस्कृत—स्वावस्तु) के रहने वालों की शुमार भी अफ़ग़ानियों में है; हालांकि ये दोनों क़ौमें पार्थी हैं। लग़मान अपनी पुरानी बोली बोलते हैं १८। स्वातियों पर जब से यूसुफ़ज़ाई अफ़ग़ानों ने फ़तह हासिल की है तब से उन्होंने अपनी पुरानी ज़बान छोड़कर पश्तु को अपना लिया है और पठान कहलाने लगे हैं।

यूसुफ़ज़ाई क़बीले के प्रधान मुल्ला और इतिहासज्ञ ने अपने तज़किरे में लिखा है कि स्वात की वादी में यूसुफ़ज़ाई अफ़ग़ानों के हमले के बाद वहां के मूल निवासी मुसलमान हो गये, वे अपनी क़ौम की शुद्धता खो बैठे और स्वाती कहलाने लगे १९।

जहां तक प्रचलित कथाओं और पुराने उल्लेखों का ज़िक्र, है इतिहास की दृष्टि से यह नहीं साबित होता कि पश्तु बोलने वाले पठान का उद्गम यहूदियों से है। अफ़ग़ान लेखकों ने ख़ुद इसबात का ज़िक्र किया है कि वे प्रसिद्ध अरब सेनापति ख़ालिद इब्ने वलीद के क़बीले में से हैं। किन्तु अरब इतिहासज्ञ बलाज़ुरी २० और दूसरे लोग इस बात का कहीं ज़िक्र नहीं करते कि ख़लिद ने कभी भी दजला नदी पार कर ईरान और अफ़ग़ानिस्तान पर हमला किया।

अफ़ग़ान लेखकों का यह कहना है कि ख़ालिद अफ़ग़ानिस्तान पर हमला करके लौटती बार कैस और उसके क़बीले के लोगों को मदीने ले गया—यह बात इतिहास से किसी तरह साबित नहीं होती। अफ़ग़ानी उल्लेखों से उनका यहूदी होना भी साबित नहीं होता। मेरी ख़ुद कई अफ़ग़ानियों से बात हुई है। उनमें कई क़बीलों के लोग थे और उनमें एक को छोड़ कर सबों ने अपने यहूदी निकास का खण्डन किया। सब ने यह कहा कि हमने तो यह बात पहले कभी सुनी ही नहीं। एक अफ़रीदी मलिक को तो यह सुन कर बड़ा ताज्जुब हुआ। जिस आदमी ने अपने यहूदी होने की बात कही, उसने जिरह में यह क़बूल किया कि उसने किताबों में यह बात पढ़ी थी। इसका अर्थ यह हुआ कि यहूदी निकास की बात का आम अफ़ग़ानियों को कोई पता नहीं है। यह महज़ मुल्लाओं की गढ़ी कल्पना है, जिसमें अफ़ग़ानी क़ौम भी अल् किताबी समझी जाय।

एक अफ़ग़ान ने मुझसे यह कहा कि उसने अपने बाप से यह सुना है कि अफ़ग़ानों का निकास हिन्दुओं से है। वह उसी जाति से हैं कि जिससे पंजाबी हैं। एक पढ़े लिखे अफ़ग़ान युवक से मेरी बातें हुईं, तो उसने मुझे बताया कि तमाम सरहदी क़बीले इस बात को मानते हैं कि उनके पूर्वज हिन्दू थे। जिसने पूर्वीय अफ़ग़ानिस्तान के लोगों को देखा है, वह हिन्दुओं के साथ उनकी समानता से आश्चर्य चकित हो जायगा। क़बीलों का उलट फेर महमूद ग़ज़नवी के हमले के बाद से शुरू हुआ है २१। मेरे एक पठान मित्र का कहना है कि अफ़ग़ानों का अपना यहूदी निकास बतलाना किसी न किसी ऐतिहासिक सत्य पर ही निर्भर है। आम तौर पर मुसलमान कभी भी अपने को यहूदी निकास का न कहेंगे। किन्तु राजा महेन्द्र प्रताप, जिनका

१८—Imperial Gazetteer, Bk. V, P. 48

१९—Quoted by Bellow, P. 69.

२०—अल बलाज़ूरी—"फ़िताबुल फ़ुतूह"

२१—E. E. Oliver's—"Across the Border".

अफ़ग़ानिस्तान से गहरा सम्बन्ध रहा है, लिखते हैं—"जितना ही मैं अफ़ग़ानों को देखता हूं, उतना ही मेरा विश्वास दृढ़ होता जाता है कि अफ़ग़ान उसी हिन्दू क़ौम के अंग हैं जो भारत में रहती है।"

हम जब अफ़ग़ानिस्तान के लोगों के ऐतिहासिक निकास पर ग़ौर करते हैं, तो देखते हैं कि अफ़ग़ानिस्तान में संस्कृत बोलने वाले हिन्दू, ईरानी, बाख़्त्री, यूनानी, शक, यू-एची, हूंण, पार्थी, तुर्क, अरब और मंगोलों ने समय समय पर आकर इस देश को आबाद किया और वहां की संस्कृति में अपनी संस्कृति का दान दिया। इन सब संस्कृतियों की अफ़ग़ानिस्तान पर, और उसके इतिहास पर अमर छाप है। मौजूदा अफ़ग़ान क़ौम के ख़ून में इन सारी क़ौमों का सम्मिश्रण साफ़ दिखाई देता है। इतिहास लेखक फ़रिश्ता के अनुसार अफ़ग़ान मिस्री मर्द और भारतीय स्त्री के संसर्ग से पैदा हुए हैं। हज़रत मूसा जब अपने यहूदी भक्तों के साथ लाल सागर को चीर कर भागे थे, तब फेरोये की सेना ने उनका पीछा किया। मगर फेरोये की सेना के सब आदमी डूब कर मर गए। केवल एक मिस्री जीता बचा। इस मिस्री ने यहूदी धर्म स्वीकार कर लिया और सुलेमान के पहाड़ों पर बस गया। वहीं इसने एक भारतीय स्त्री से शादी की और इन्हीं दोनों की औलाद यह अफ़ग़ान क़ौम है। ज़ाहिर है यह कथा मनगढ़न्त है। पढ़े लिखे समझदार अफ़ग़ानी अपने को शुद्ध भारतीय निकास का ही मानते हैं।

मौजूदा इतिहासज्ञ इस बात पर सहमत हैं कि गज़नवी काल के पहले ब्राह्मण, बौद्ध, जरथुस्त्री आदि सभी लोग प्रेम से हिल मिल कर अफ़ग़ानिस्तान में रहते थे। इतिहास लेखक ले स्ट्रेंज के अनुसार १४ वीं सदी तक काबुल में मुसलमान, यहूदी, और मूर्ति पूजकों के अलग अलग मुहल्ले थे। मुसलमानों की तादाद भी उन्हीं के बीच में रहती थी २२।

फ़रिश्ता के अनुसार अफ़ग़ान क़ौम १५ वीं सदी में पूरी तरह इसलाम धर्म में दीक्षित हुई। किन्तु हिन्दुओं की छोटी मोटी तादात बराबर १९ वीं सदी तक बनी रही। एक इतिहास लेखक लिखता है कि इसी सदी में हिन्दूकुश के एक पहाड़ी गाँव में जब एक हिन्दू पठान की मृत्यु हुई, तो उसने अपने मुसलमान बेटे को बुला कर यह आदेश दिया कि उसके शव को चिता पर रख कर जलाया जाय २३।

२२—"The Land of the Eastern Caliphate" p. 349.

२३—Biddulpt—"Hindukush Tribes".

नई व्यवस्था की ज़रूरत

श्री जयनारायण व्यास

श्री जयनारायण व्यास अखिल भारतीय देशी-राज्य प्रजा-परिषद् के मन्त्री और मारवाड़ के तपस्वी जन-सेवक हैं। जितनी भी परीक्षा आपकी ली गई आप फ़ौलाद की तरह ठोस साबित हुये।

प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि वह सुखी रहे। अपने को सुखी करने के लिए वह दूसरे को दुखी करने में भी संकोच नहीं करता। वह सुखी होता है; परन्तु उसका सुख स्थायी नहीं रहता। जिस व्यक्ति को दुखी करके उसने सुख पाया है, वह व्यक्ति कब चाहेगा कि उसे दुखी करने वाले से बदला न लिया जाय। बदला लेने वाला निर्बल होता है, तो अपने सबल विरोधी को कम सता पाता है, सबल होता है तो ईंट का जवाब पत्थर से देता है। सारांश यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक कार्य की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। सुखी वही व्यक्ति हो सकता और रह सकता है, जिसके कार्यों की प्रतिक्रिया कम या ज़्यादा दुख उत्पन्न करने वाली न हो। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति का सुख उसी की स्वार्थ-पूर्ति में नहीं है, बल्कि समाज के सुखी होने में है। हो सकता है कोई व्यक्ति कुछ समय के लिये औरों को दुखी करके सुखी हो सके, परन्तु यह स्थिति स्थायी नहीं रह सकती। व्यक्ति और समाज इस तरह घुले मिले हैं कि व्यक्तियों का सुख समाज के सुखी होने से ही क़ायम रह सकता है।

आज समाज सुखी नहीं है। कुछ लोग देखने को सुखी दीखते हैं; पर उन्हें सब कुछ प्राप्त होते हुए भी सुख प्राप्त नहीं है। उन्हें और लोगों से कई तरह के खटके बने रहते हैं। धनी निर्धनों से अधिक सुखी हैं; पर उन्हें भी दुख तो है ही। आत्म-हत्या, ख़ून, बीमारी आदि का व्यापक प्रचार धनिक समाज में अधिक होने के कारण यह कहना भी कठिन हो जाता है कि अधिक सुखी धनी हैं या निर्धन। बेशक निर्धनों को भूखे, प्यासे और बे मौत मरने का अधिक अभ्यास हो गया है और इस अभ्यास के कारण उनमें अधिक सहनशक्ति पैदा हो गई है। और धनिकों में प्रतिकूल परिस्थितियों में रहने की क्षमता और सहनशीलता नहीं है, इसलिये ज्यों ही वे संतोष जनक स्थिति से दायें बायें होते हैं, त्यों ही असहिष्णु बनकर विवेक-शून्य हो जाते हैं। और अपने को दुखी या नष्ट करने तक पर उतारू हो जाते हैं। कुछ भी हो जब तक इस प्रकार की अशान्ति, असहनशीलता और विह्वलता धनिक समाज में है, तब तक उसे भी पूर्णतया सुखी नहीं कहा जा सकता।

समाज में अजीब तरह के भेद भाव-नज़र आते हैं। एक राजा है, हजारों नौकर हैं—उसकी सेवा के नाम पर ठाले बैठ कर बड़े बड़े वेतन कमाने वाले। एक मज़दूर है; उसे कोशिश करने पर भी काम नहीं मिलता और कसकर काम करने पर भी पेट भर अन्न मयस्सर नहीं होता। दूसरे सेठजी हैं, जो कमरे में सोते-सोते हर घड़ी हज़ारों रुपये कमा लेते हैं और जिनके परिश्रम से वे रुपये इकट्ठे होते हैं, उन्हें मेहनत करते रहते भी यही मालूम होता है कि कुछ बड़े आदमियों के आश्रय

में पड़े हैं, इसीलिये उन्हें दो रोटी खाने को मिल सकती है। अन्न पैदा करने वाला भूखा रहता है, कपड़े बनाने वाला नंगा। मकान बनाने वाले को खुले आसमान के नीचे सोना पड़ता है। पशु पालन करने वाले को घी, दूध, दही या छाछ कुछ नहीं मिलता। उधर एक व्यक्ति अपने कमरे में बैठा हुआ हज़ारों मज़दूरों से काम लेता है और प्रत्येक काम करने वाले के द्वारा धन धान्य पैदा करके उसका संग्रह करता है। संग्रह किये धान्य को भाव ठीक करने के लिये नष्ट कर दिया जाता है जलाया जाता है और समुद्र में फेंका जाता है। और धनके ज़रिए हवाई जहाज़, तोपें, बन्दूकें, गैस आदि कई घातक वस्तुओं की उत्पत्ति की जाती है। जब इस तरह की शक्ति प्राप्त दो राष्ट्र यह ख्याल करते हैं कि दूसरा व्यक्ति या राष्ट्र उससे अधिक बलवान या शक्तिमान होने जा रहा है, तब एक दूसरे की प्रगति को रोकने का प्रयास करता है। दोनों में टक्कर होती है। दोनों नाश की ओर बढ़ते हुए स्वयं दुखी होते हैं और दूसरे को दुखी करते हैं।

जिस तरह एक धनिक दूसरे धनिक के साथ मित्रता के भाव रखते हुए भी चाहता यही है कि उसी का सिक्का तेज़ रहे, उसी तरह राष्ट्रों में भी कतर ब्योंत चलती रहती है। शक्ति का उपयोग अन्य तरह से भी होता है। ब्राह्मण शूद्र को नीचा समझता है। वह उसे अमुक प्रकार का ज्ञान, रहन-सहन, पूजा-पाठ और रास्तों का भी अधिकारी नहीं समझता। हिन्दू मुसलमान को म्लेच्छ समझता है और मुसलमान हिन्दू को काफ़िर। ईसाई तो अपने को धर्म का अवतार ही मानता है और धर्म के नाम पर राजनैतिकता का पांसा फेंकते हुए ईसा के उपदेशों को एकदम से भुला सकता है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपने को हत-भाग्य समझते हैं और जिस परिस्थिति में हों, उसी को परमात्मा की देन समझ कर सन्तोष कर लेते हैं। इन लोगों में भी जब असंतोष पैदा होता है तो टक्करें होती हैं और लोग एक दूसरे को सताते हैं, दुखी होते हैं।

सत्ता, धन, धर्म आदि जिनसे समाज की व्यवस्था सुव्यवस्थित होनी चाहिये, उन्हीं से समाज में अस्त-व्यस्तता पैदा होती है। फिर अज्ञान भी एक भयंकर बीमारी है, जो समाज को अस्तव्यस्त कर देता है। बच्चा न पढ़े, पिता जीते जी भूखों मरे; पर ब्याह और मरने के अवसर पर तो कर्ज़ लेकर भी ख़र्च करना पड़ेगा। 'धर्म नष्ट हो जावेगा', 'समाज में बदनामी होगी', और न जाने कितने कितने ग़लत ख़्याल लोगों के दिमाग़ों में अपना घर कर गये हैं कि वे कई ग़लतियों को ग़लतियां जानते हुए भी करते जाते हैं। अज्ञान ने धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार किया है और अधर्म को धर्म का रूप दिया है। शारीरिक, मानसिक और नैतिक पतन के लिये अज्ञान ही ज़िम्मेवार है और मज़े की बात तो यह है कि अज्ञान का शिकार भी सदा दुखी रहता हुआ भी अपने अज्ञान को कृपण के धन की तरह सुरक्षित रखना चाहता है। फिर ऐसे लोगों का भी अभाव नहीं है, जिनका निर्वाह ही दूसरों के अज्ञान के आधार पर होता है। वे कसकर लड़ते हैं, उन लोगों से जो अज्ञानियों में ज्ञान का प्रचार करें। सत्ताधीशों की दृष्टि में ऐसे लोग बाग़ी हैं। धर्म के नाम पर मौज करने वाले सही परिस्थिति को समझाने वाले को नास्तिक बताते हैं। दूसरों को ठग कर धनी होने वाले, ऐसे व्यक्तियों को वर्ग-विग्रह कराने वाला और समाज का शत्रु प्रसिद्ध करते हैं और स्वयं वे लोग जिनमें ज्ञान का प्रचार किया जाता है, ज्ञान-प्रचारकों को ऊधम करने वाले, समाज की व्यवस्था को भंग करने वाले और शान्ति-भंग करने वाले समझते हैं। दर असल समाज की हालत ही ऐसी हो गई है, जहां साफ़ साफ़ बातें नहीं कही जा सकतीं। हर बात में विरोध, हर बात में बाधा; परन्तु अशान्ति भी तो नष्ट नहीं होती। वह भी रुई के गोदाम की आग की भांति धीरे-धीरे सुलगती रहती है। कभी वह प्रज्वलित भी होती है। कई प्रकार के विस्फोट भी होते हैं। अशान्ति, अशान्ति, अशान्ति, समाज में बस अशान्ति ही अशान्ति नज़र आती है। क्या यह अवस्था वाञ्छनीय है या समाज को सुखी करने के लिये कुछ नई व्यवस्था होनी चाहिये?

कसौटी पर

श्रीमती महादेवी वर्मा, एम० ए०

किसी भी विकासोन्मुखी जाति के सिद्धान्त और जीवन, आदर्श और आचरण तथा स्वप्न और निर्माण में मात्राओं का चाहे जितना न्यूनाधिक्य रहे; परन्तु एक दूसरे को निष्क्रिय कर देने वाले विरोधी तत्वों की उपस्थिति सम्भव नहीं। कारण स्पष्ट है। सृजनात्मक गतिशीलता में यह द्वन्द, बिम्ब-प्रतिबिम्ब बनकर ही पूर्ण हो सकते हैं, परस्पर पूरक होकर ही जीवन का विकास कर सकते हैं। जैसे-जैसे जीवन का परिष्कार होता चलता है, वैसे-वैसे इनकी सापेक्ष स्थिति उत्तरोत्तर परिष्कृत और दृढ़ होती जाती है।

इस सामान्य नियम का व्यतिक्रम वहां मिलेगा, जहां किसी जाति का विकास क्रम रुक गया है। क्योंकि उस स्थिति में उसके अन्तर्जगत और बाह्य जीवन के बीच में एक ऐसी खाई आ पड़ती है, जो समय के साथ-साथ चौड़ी होती हुई एक को दूसरे से दूर करती रहती है और अन्त में मनुष्य अपने मानसिक ऐश्वर्य्य को शून्य आकाश में तथा बाह्य जीवन के दारिद्रय को अंधेरे पाताल में बन्दी रखने के लिए बाध्य हो जाता है।

एक असभ्य जाति अपने अन्तर्जगत और व्यवहार-जगत में समान रूप से असंस्कृत होगी; परन्तु जिस अनुपात में उसका मानसिक विकास होता रहेगा, उसी अनुपात से उसका बाह्य जीवन भी परिष्कृत होता चलेगा। इसके विपरीत ह्रासोन्मुख सभ्यता में मनुष्य का बाह्य जीवन उसके अन्तर्जगत से दूर जा पड़ता है। उसके सिद्धान्त, संस्कारमात्र बनकर रह जाते हैं, आदर्श अलंकारों के समान बोझिल निष्क्रियता प्राप्त कर लेते हैं, कल्पना और विचार रूढ़ियों में बंध जाते हैं और उसका सम्पूर्ण बाह्य जीवन या तो लीक पीटने में सीमित हो जाता है, या सस्ते अवसरवाद में बिखर जाता है। ऐसी स्थिति में किसी प्रकार की भी चेतना पानी के ऊपर तैरती हुई तेल की बूंदों के समान जीवन से भिन्न दिखाई देती रह सकती है; परन्तु उसमें घुल कर प्रेरणा बनने की शक्ति नहीं रखती।

हमारा आज का जीवन भी इस नियम का अपवाद नहीं। एक ही परिधि में हमारे सिद्धान्त और धर्म स्वर्ग बसाते रहते हैं और हमारा जीवन नए-नए नर्कों की सृष्टि करता रहता है। एक ही क्षितिज-रेखा पर हमारे आदर्श और स्वप्न, किरणों में रंग भरते रहते हैं; और हमारा यथार्थ अन्धकार के बादल पुञ्जीभूत करता रहता है, तथा एक ही मन्दिर में हमारी भावना और कल्पना अतिमानव में दिव्यता की प्राणप्रतिष्ठा करने में तन्मय रहती हैं और हमारा आचरण पशुता की मूर्त्ति गढ़ने में लगा रहता है।

इस प्रकार हमारी शक्तियां, न अन्तर्जगत को इतना मूर्त्त रूप दे सकीं कि हमारे आदर्श जी उठते और न हमारे बाह्य जीवन में इतनी चेतना भर सकीं कि वह अपने नरक से ऊब उठता। हम एक ही जीवन में अनेक परस्पर विरोधी जीवनों का बोझ लादे, अपने ही बनाये को मिटाते और उजाड़े को बसाते न जाने कब से दिग्भ्रान्त के समान कहीं न पहुंचने के लिए चल रहे हैं।

शताब्दियों की दासता ने हमारी नैतिकता नष्ट कर दी—यह भी सत्य है। और हमारी सक्रिय नैतिकता का अन्त हो जाने पर ही, दूसरों की सृजनात्मक शक्ति के सामने हमें नतमस्तक होना पड़ा—यह भी मिथ्या नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह प्रश्न पृथ्वी के समान छोर-हीन वृत्त है। चाहे जहां से चला जावे, सारी सीमा पार कर फिर वहीं पहुंचना निश्चित है। जब तक हम स्वप्नों को सत्य करने के लिए गतिशील रहे, आदर्शों को मूर्त्त रूप देने के लिए कर्मठ रहे और सिद्धान्तों का खरापन कसने के लिए उतावले रहे, तब तक व्यावहारिक जीवन का हम बड़े से बड़ा मूल्य देने को प्रस्तुत रहे। क्योंकि हमारे अन्तर्जगत की साकारता वहीं सम्भव है। जब हमारे लिए स्वप्न, आदर्श और सिद्धान्तों को, एक सुखमय भार के समान ढोना भर शेष रह गया तब बाह्य जीवन के लिए तुच्छ से तुच्छ मूल्य देना भी हमारे निकट जीवन का असह्य अपव्यय हो उठा। हमारे ज्ञानयुग के ऐश्वर्य्य के चरणों से, व्यक्त जीवन का जो दैन्य बंधा है, वह किसी सर्वाङ्ग सुन्दरी माता की कुरूप और विकलांग सन्तान के समान भिन्न और विस्मय की वस्तु होकर भी उसी के अस्तित्व से निर्म्मित है। जब हमने भौतिक जगत को माया और भ्रान्ति की संज्ञा देकर अपने अन्तर्जगत से निर्वासित कर दिया, तब उसने हमारे मानसिक वैभव को प्रेत का अशरीरी अस्तित्व देकर मानो अपने प्रतिशोध का ऋण पाई पाई चुकता कर लिया।

जब किसी जाति की मानसिक स्थिति ऐसी हो जाती है, तब उसे उनके लिए मार्ग छोड़ देना पड़ता है, जो जीवन का अधिक से अधिक मूल्य दे सकते हैं। व्यावहारिक जगत में हमारा दान जिस परिणाम तक गुरु होता है, आदान उसी परिणाम तक मूल्यवान बन जाता है। दूसरे शब्दों में जो देने की चरम सीमा छू लेता है, वही आदान की असीमता का मापदण्ड निश्चित करता है। जब हम अपने सिद्धान्त, आदर्श और स्वप्नों के अभिषेक के लिए हृदय का अन्तिम रक्त-बिन्दु तक दे सकते थे और भौतिक जीवन के धूल भरे पैरों को दिव्यता के शिखर तक पहुंचाने के लिए अपने मनोजगत की अमूल्य निधियों को सीढ़ियों में चुन सकते थे, तब अन्य संस्कृतियां पर्वत से टकराई लहरों के समान या तो हमसे टकरा-टकरा कर लौट गई या हमारे चरणों के मूल में टिकी रहीं। पर जिस दिन उसी दधीचि की धरती पर बैठ कर, जिसने दानवी शक्तियों के चुनौती देने पर अपने तपोधन को सुरक्षित रखने वाले शरीर की अस्थियां तक दे डालीं; हम अपने बुद्धि-कोष के हीरे-मोतियों को गिनने लगे और बाहर फैलते हुए क्रन्दन को भ्रान्ति-भ्रान्ति कह कर जीवन की करुण पुकार को अनसुनी कहने लगे, उसी दिन क्षमाहीन काल ने हमारे विकास के इति-हास को उलटी ओर से लिखना आरम्भ किया। और आज तो हम वहां आ पहुंचे हैं, जहां से कभी चले थे। अन्तर केवल इतना ही है कि तब हमारे पास आत्मविश्वास का सम्बल था और आज कन्धों पर असंख्य भूलों का भार है।

जिस युग में हम एक दूसरे से स्वतन्त्र समूहों में सीमित थे, उस युग में जीवन की कसौटी सहज थी और जीवन का मूल्य अल्प था। ज्यों-ज्यों हमारे सम्पर्क का विस्तार बढ़ता गया, जीवन का मूल्य भी चढ़ता गया और उसकी कसौटी भी कठिन होती गई। आज जब हम पृथ्वी के एक छोर पर रह कर भी दूसरे छोर से इस प्रकार बंधे हैं कि एक ओर से उठा स्वर दूसरी ओर के स्वर का राग भी सुना सकता है और चीत्कार भी, तब न जीवन का मूल्यांकन सहज है और न कसौटी का एक रूप रह गया है। ऐसी दशा में यदि हम अपनी भूलें न सुधार लेंगे, तो जीवन ही सम्भव न हो सकेगा। यदि हम शुतुर्मुर्ग के समान मिट्टी में सिर छिपा कर पड़े भी रहें, तो उससे इतना ही लाभ हो सकता है कि हम बाणों के आने की दिशा न जानें पर उनके स्थायी लक्ष्य बनते रहें।

हमारी वर्तमान विकृति में अन्धकार जैसी व्याप-कता और मृत्यु जैसी एक रसता तो है ही, साथ ही उसकी व्यावहारिक विभिन्नता में एक विचित्र एक रूपता भी मिलेगी। जो ग्वाला अठगुना दाम लेकर

भी दूध में पानी मिलाये बिना नहीं मानता और अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए प्रचलित तालिका में से एक भी शपथ नहीं छोड़ता, उसका मिथ्या, मन्दिर में देवता के चरणों के पास बैठ कर धर्म्म का व्यापार करने वाले पुजारी के मिथ्यावाद का सहोदर है। दूसरे के अर्थ पर सम्पाती जैसी तीक्ष्णदृष्टि रखने वाले पूँजीपति की क्रूरता, उदार साम्यवादी की उस हृदयहीनता की सहचरी है, जो उसे थके घोड़े और टूटे शरीर वाले इक्केवान और आधी रात के समय बरसते पानी में सामान उतारने वाले कुली की मज़दूरी में से दो पैसे काट लेने पर बाध्य कर देती है। दुर्बल भिखारी की उपेक्षा कर चींटियों को चीनी आटे पर पालने वाले तिलकधारी जपी में सहानुभूति का जो अभाव है, वही खद्दरधारी अहिंसावादी को दूसरों की भूख पर अपने स्वार्थ का प्रासाद खड़ा करने की दुर्बलता देता रहता है।

जो विकृत वासना विलास के कीटों को जीवन का घुन बना देती है, वही शिक्षित और संभ्रान्त वर्ग की दृष्टि में एक अस्वस्थ प्यास बन कर झाँकती रहती है। अनेकों आँखों के सामने तुला से खेल करने वाली वणिक की उंगलियों में जो बाजीगरी है, उससे वे हाथ भी अपरिचित नहीं, जो मँहगे सस्ते कागज़ पर आश्रित होकर बहुमूल्य और मूल्यहीन लेखनियों को आश्रय देते हैं। कथन कटु हो सकता है, पर असत्य नहीं। चाहे हम समाज, राजनीतिक, धर्म्म, साहित्य आदि किसी भी क्षेत्र का तत्वतः अध्ययन करें और चाहे अपने अनन्य अध्यात्मवादी से लेकर घोर भौतिकवादी नेताओं के अनुभवों को एकत्र कर लावें, इस सत्य को मिथ्या प्रमाणित करना कठिन ही नहीं असम्भव होगा।

हमारी इस मूलगत एकता का कारण है। विकृति विषैली गैस के समान वातावरण में व्याप्त होकर प्रत्येक साँस में समाती रही और इतनी शताब्दियों के उपरान्त आज तो वह हमारे जीवन का ऐसा जीर्ण ज्वर बन चुकी है, जिसकी उपस्थिति का बोध हमें अपने अंगों की शिथिलता में ही होता है। जब गन्तव्य पथ पर हमारे पैर कहीं के कहीं पड़ते हैं, जब प्राप्य की ओर हमारे हाथ नहीं बढ़ते और जब लक्ष्य पर हमारी दृष्टि नहीं ठहरती, तब हम अपनी व्याधि जनित असमर्थता न मान कर कहते हैं—मार्ग दुर्गम है, प्राप्य दुर्लभ है और क्षितिज भ्रान्त है।

सब जगह हमारा दम्भ गहरा है और विवेक उथला है। सर्वत्र हमारी हृदयहीनता स्वभावगत हो गई है और स्वार्थपरता चरित्र में रम रही है। सब स्थितियों में मिथ्या हमारे प्राणों में बस गया है और कपट सजागत बन रहा है। सर्वदा हमारे सिद्धान्त धरोहर बन कर ही ठहर सकते हैं और परिवर्तन बहुरूपियापन में ही अस्तित्व पाता है। हमारा नैतिक पतन आज उस अजगर के समान हो उठा है, जो सौन्दर्य और सत्य की सजीव प्रतिमाओं को भी साँस के साथ खींच कर उदरस्थ कर लेता है और फिर अपने शरीर को तोड़ मोड़ कर उन्हें चूर-चूर बना ऐसी स्थिति में पहुँचा देता है, जिसमें वे उस अजगर के शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहतीं।

विकास की पहली आवश्यकता है कि हमारे बौद्धिक ऐश्वर्य, हृदय की प्रेरणा और क्रिया में ऐसा सामञ्जस्य पूर्ण तारतम्य हो, जो हमारे जीवन के राग को विरोधी स्वरों से बेसुरा न कर सके। वह सक्रियता जो दूसरों के अमूल्य अलंकारों को धरोहर बनाकर व्यवसाय करने वाले महाजन में मिलती है, हमें किसी दिशा में भी निर्माण न करने देगी, यह कटु सत्य अनेक बार परीक्षित हो चुका है। हमारे जीवन को पारस होने का वरदान तो अब तक प्राप्त न हो सका, जिससे उसके स्पर्श मात्र से सब कुछ सोना हो जाता। पर भस्मासुर का अभिशाप हर समय उसके साथ है, जिससे वह जब चाहे स्वयं सोने से राख का ढेर बन सकता है।

कोई भी सत्य सिद्धान्त भव्य स्वप्न और पूर्ण आदर्श जीवन से शून्य होकर न कुछ मूल्य रखता है, न किसी रूप में ढलता है और न किसी प्रकार का स्पन्दन पाता है। वह तो उसी अंश तक

सारवान है, जिस अंश तक जीवन की कसौटी पर परखा जा चुका है।

स्वयं ईसा के अनुयायी ही उनके सिद्धान्त की अवहेलना कर रहे हैं। परन्तु ऐसी स्थिति में भी कोई उस सिद्धान्त को खोटा सिक्का मानने को क्यों प्रस्तुत नहीं है? केवल इसलिए कि वह ईसा के जीवन पर कसा जाकर खरा उतरा है। स्वयं बुद्ध के उपासक ही उनके आदर्श के विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। फिर भी संसार उस आदमी को भ्रान्ति की संज्ञा क्यों नहीं देना चाहता? केवल इसलिये कि वह आदर्श बुद्ध के जीवन में स्पन्दित होकर अपने युग की कठिन से कठिन अग्नि-परीक्षा पार कर आया है।

आज के रक्तपिपासु युग में भी अहिंसा को मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जा सकता; क्योंकि वह एक साधक की वज्र-अस्थियों में पल रही है।

जब हम किसी सत्य को भीतर आनेवाली सांस में स्वीकार करते हैं और बाहर जानेवाले निश्वास में अस्वीकार कर देते हैं, तब न उसकी कोई कसौटी सम्भव है और न उसका कोई मूल्य निश्चित हो सकता है। ऐसी दशा में वह केवल हमारा बोझ बढ़ाता रहता है।

अपनी दुर्बलता को बैसाखी बनाने के लिए हमने जो दो आधार ढूंढ़ लिए हैं, वे हमारी असमर्थता के दयनीय विज्ञापन मात्र हैं। एक ओर हम बहुत अलंकृत भाषा और ओज भरे स्वर में संसार को सुनाते रहते हैं कि व्यावहारिक जीवन में काम न आने पर भी हमारे भव्य आदर्श, सुन्दर सिद्धान्त और सुनहले स्वप्न जीवन की समृद्धि बढ़ाते हैं। और दूसरी ओर दबे कण्ठ और अस्फुट शब्दों में स्वीकार करते रहते हैं कि परिस्थितियों की विषमता ने ही हमें दो भिन्न प्रकार के जीवन वहन करने पर बाध्य कर दिया है।

हमारा बौद्धिक ऐश्वर्य्य और मानसिक वैभव जीवन का अक्षय वरदान है। परन्तु जब हम इसे व्यक्त जगत की विषमताओं के समर्थन के लिए खड़ा करने लगते हैं, तब यह हमारी असंख्य त्रुटियों और दुर्बलताओं का सफल वकील बनकर ही रह जाता है। फिर उसका समर्थन पाकर हमारे बाह्य जीवन की विषमतायें अमर बेल के समान फैलने लगती हैं और व्यक्त जगत की सीमाओं से युक्त होकर हमारे स्वप्न, आदर्श और सिद्धान्त अशरीरी बनते रहते हैं।

वह सत्य जो हमारे असत्य के समर्थन में काम आता है, मिथ्या से सहस्रगुणा अधिक कुत्सित है। उस डाकू की अनैतिकता से, जो केवल पशुता का सम्बल लिए है, उस सूदखोर महाजन की नैतिकता अधिक भयानक है, जो धर्म्म के ऊंचे न्यायासन पर बैठकर लुटेरेपन का समर्थन करने का साहस रखती है। नग्न पशुता को मनुष्य के चरम विकास तक पहुंचा देना सहज है, परन्तु उस दिव्यता को जो पशु के लिये आवरण बन चुकी है, बदलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगा। इस व्यापक नियम को जाने बिना, हम अपने जीवन को ऐसे दो भिन्न पक्षों में विभाजित कर बैठते हैं, जिनकी सन्धि यदा कदा अवसरवाद में ही सम्भव हो सकती है। जब तक हम इन पक्षों को एक नहीं कर लेते, तब तक हमारी गति कुण्ठित रहेगी और जब तक हम अपने बाह्य जीवन को अन्तर्जगत का महाभाष्य नहीं बना सकते तब तक उनकी एकता की कामना दुराशा ही रहेगी।

परिस्थितियों का प्रश्न, उनकी विषमता से अधिक हमारी दुर्बलता से सम्बन्ध रखता है। युग विशेष में जीवन के पास कितना खरा सोना है, इसकी एकमात्र परीक्षक उस युग की परिस्थितियां ही रहेंगी। जो अपने युग का हलाहल पी कर उसे अमृत नहीं बना सकती, उस जाति की मृत्यु तो निश्चित ही है।

फिर परिस्थितियों का परिवर्तन मात्र, जीवन में आमूल परिवर्तन लाने में समर्थ नहीं होता; क्योंकि उसके लिए परिस्थितियों की अनुकूलता के साथ ही जीवन का विकासोन्मुख आवेग भी अपेक्षित रहता है। राज्यच्युत होने मात्र से ही कोई सम्राट त्यागी साधक नहीं बन जाता; क्योंकि उस स्वभाव की प्राप्ति के लिए बाह्य ही नहीं मानसिक परिवर्तन भी आवश्यक है। कठोर विधानों से घिरे रहने के कारण चोरी करने में

असमर्थ व्यक्ति धर्मप्राण संयमी नहीं हो जाता; क्योंकि वह गुण बाह्य बन्धनों से अधिक हृदय के परिष्कार पर निर्भर रहेगा।

व्यष्टि से लेकर समष्टि तक ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं, जब जीवन के प्रवाह ने कण-कण जोड़ कर परिस्थितियों के शिलाखण्ड बनाये और फिर तिल तिल कर कर उन्हें बहा दिया।

सभ्यता में हमसे भी वृद्ध चीन की परिस्थितियां नहीं बदलीं, पर जब उसके जीवन की गति प्रखरतम हो उठी, तब युगयुगान्तर से पुञ्जीभूत रूढ़ियों और अन्ध-विश्वासों के बादल फटने लगे और कठोर परिस्थितियों का रोकने वाला क्षितिज मार्ग बनाने लगा। दूसरी ओर जीवन-शक्ति के नितान्त अभाव के कारण ही फरांसीसी जाति अनुकूल परिस्थितियों में भी विकास-पथ पर पग भर भी न बढ़ सकी और अन्त में जीवन के सामान्य नियम के अनुसार उसे अतीत युग का सञ्चित गौरव भी हार जाना पड़ा, जो नव-निर्माण की सुदृढ़ नींव बन सकता था।

पर्वत हट हट कर नदी के लिए राह नहीं बनाते और पृथ्वी विषम भागों को भर-भर कर जल को समतल नहीं देती। उसका प्रवाह ही पर्वतों को चीरता विषम भूभागों में अपनी समता की रक्षा करता और कूलों का अटूट क्रम रचता हुआ अपना पथ और अपनी दिशा को बना लेता है। तट पर गूंजते हुए स्तुति के स्वरों से समुद्र पर सेतु नहीं बन सका; किन्तु उसकी रचना उस शक्ति से सम्भव हो सकी, जिसके इंगित की उपेक्षा न जल की अतल गहराई कर सकती थी और न चट्टानों की गुरुता।

बाह्य जीवन की विषम परिस्थितियों को अपनी बेड़ियां बना कर हम विकास-पथ पर चल ही नहीं सकते; क्योंकि उस दशा में वे हमारी गति को रुद्ध कर सकती हैं। निर्माण-युग में उनका इतना ही उपयोग है कि वे जीवन के कोमल और उजले स्वर्ग को परखने के लिए काली और कठोर कसौटी बन सकें। यदि हमारे रंगबिरंगे स्वप्न, सुनहले-रुपहले आदर्श और स्वरूप-अरूप सिद्धान्त इस कसौटी पर नहीं ठहर सकते, तब उनमें खरेपन का अभाव निश्चित है।

पिछले युगों में मनुष्य का मूल्य उसके सिद्धान्त की व्यापकता से आंका जाता था; परन्तु आज के व्यक्ति-प्रधान युग में सिद्धान्त की गुरुता मनुष्य के जीवन की गहराई में ही नापी जा सकती है। आज तो प्रत्येक व्यक्ति एक संस्था है। उसकी प्रत्येक स्वांस जीवित स्वप्न है, उसका प्रत्येक शब्द बोलता आदर्श है और उसका प्रत्येक कार्य साकार सिद्धान्त है। ऐसी स्थिति में स्वच्छ आकाश जैसे व्यापक सत्य को चाहे कोई न देखे। पर असत्य के रंगीन बादल सबकी दृष्टि को आकर्षित कर सकते हैं। इस युग में जीवन के साथ हमारा मिथ्याचार कितनी व्यापकता के साथ भयानक हो सकता है; इसकी यदि एक बार हम कल्पना कर सकें, तो हमारे निर्माण के अनेक प्रश्न सुलझ जावें।

सेवा-व्रत से भ्रष्ट साथी का पत्र

श्री अम्बालाल पुराणी

प्रिय बन्धु !

आज तुम्हें पहला पत्र लिखने बैठा हूं और शायद यही आखिरी भी हो। एक समय था, जब हम दोनों साथ काम किया करते थे, उन दिनों के सुखद संस्मरण ही मुझ से यह पत्र लिखवा रहे हैं। मैं तुम्हें काम करते देख फूला न समाता था और तुम मेरे मन की हिलोरों को निहारा करते थे। अभी तक हम में सेवा-कार्य के बारे में ही चिट्ठी पत्री हुई है, अत: निजी चिट्ठी तो यह पहली ही है। अपना मन हल्का करने का और कोई उपाय न सूझा, तो तुम्हें कष्ट देने बैठ गया; आशा है क्षमा करोगे।

बचपन में मुझे साहित्य की धुन थी, देशभक्ति का भूत तो कालिज छोड़ने के बाद सवार हुआ था। तुम जानते ही हो कि मैं अपने माता पिता का इकलौता बेटा हूं। तुम यह भी जानते ही होगे कि वकालत पास करने पर घर वालों को मुझ से कैसी कैसी आशाएं थीं। बी० ए० करते ही मेरा विवाह हो गया और वकालत पास करके कमाने का मौक़ा आते आते मैं देश-सेवा के यज्ञ में अपने सर्वस्व की बलि चढ़ा कर मैदान में आ कूदा। मैंने सारे देश को मुक्त कराने की ठानी।

ओह कैसी थी वह लगन और कैसी थीं वे उमङ्गें ! सच्चे हृदय से किया गया सर्वस्व समर्पण--जब वे सब चीज़ें याद आती हैं, तो कभी हंस पड़ता हूं और कभी मेरा हृदय खून के आंसू बहाने लगता है। हां, याद हैं मुझे अपने भाषण और अपने लेख और याद है मुझे उनकी ज्वालाओं से श्रोताओं और पाठकों का भड़क उठना। मैं एक के बाद एक नई नई प्रवृत्तियों में भाग लेता रहा। जहां जहां राज्य शक्ति के प्रकोप की ज्वालाएं सब से ज़्यादा भीषण होतीं, मैं अपनी हवि ले वहीं जा पहुंचता। इतना ही नहीं जीवन के जिस क्षेत्र में अग्नि-शिखा ज़्यादा ऊंची उठती दिखाई देती, मैं पतंग की नांई वहीं अपने आप को भस्मसात करने के लिये उद्यत हो कर कूद पड़ता--जीवन की सार्थकता इसी में तो थी।

यहां एक और निजी बात कहे बिना मुझे सन्तोष न होगा। मेरी पत्नी—निर्दोष और सामान्य गुणों वाली लड़की--इन्हीं दिनों मेरे साथ रहने लगी। हमारे जीवन में मेल न बैठा। मैं ठहरा उग्र स्वभाव का उतावला युवक और वह नम्र, लज्जाशील और शान्त। मैं उससे बेज़ार रहने लगा और वह मुझ से भय भीत। मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानों सेवा-यज्ञ में विवाह सम्बन्धी ज़िम्मेदारियों ने मेरे रास्ते में बहुत रोड़े अटका दिये हैं। मुझे वह निर्बल और व्यर्थ की भावुक लगी और उसे मैं हृदयहीन और लापरवाह। कुछ समय के बाद हम अलग हो गये और अब भी अलग ही हैं।

बस सब लिख कर मैं तुम्हें परेशान करना नहीं चाहता और नहीं मैं अपना जीवन चरित्र लिखने बैठा हूं। मैंने ये बातें केवल इसीलिये लिखी हैं कि

तुम्हें मेरे बीते जीवन का तथा कुछ निजी बातों का परिचय मिल जाए।

अब मुझे यह लग रहा है कि जिस व्रत को ले कर मैंने सेवा का मार्ग स्वीकार किया था, जिसके लिये मैंने वकालत छोड़ी थी—आज उससे मैं भ्रष्ट हो चुका हूं। इस बात से मुझे टीस पहुंचती है। तुम मानो या न मानो मुझे तो यही लगता है कि मेरा पतन काफ़ी पहले शुरू हो चुका था। तुम भली भांति जानते हो कि मैं किसी की राय की परवाह नहीं करता, मैं बलवान हूं और अपने स्वतन्त्र विचार रखता हूं। फिर भी अपना सूक्ष्म अवलोकन करने पर यही मालूम होता है कि मेरा पतन तब से शुरू हुआ। जब मेरे साथियों ने मेरी निन्दा शुरू को और मुझे सहयोग के अयोग्य समझने लगे।

जब समाज ने मेरे विचारों को अग्राह्य ठहराया तो मुझे अपने रास्ते में निकट भविष्य में असफलता ही असफलता दिखाई देने लगी। अवलोकन करने पर मैंने यह जाना कि हमारा समाज एक भेड़ों का गल्ला ही है। एक समय था, जब मैं स्वराज्य प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने में ही जीवन की सार्थकता मानता था; पर आज मैं सोचता हूं कि क्या भेड़-चाल चलने वाला हमारा देश भी अंगरेज़ जैसी जीवित जाग्रत और बलिदान की भावना रखने वाली जाति से स्वराज्य प्राप्त कर सकता है ?

जब कभी बात चीत में मैं गरम हो उठता और लोगों के दोष गिनाने लगता, तो मुझे अच्छी तरह याद है कि तुम बड़े ठण्डे दिल और दिमाग़ से कहते थे कि भाई ये जैसे भी हों आख़िर अपने ही तो हैं। तुम्हारे ये शुष्क वचन मुझे याद हैं। पर अब मैं इन मूर्खों की सेवा का दम नहीं भर सकता। मैं जानता हूं लोग मेरे काम का मूल्य नहीं समझते, आज वर्षों के बाद मुझे सूझ रहा है कि दुनिया मेरे साथ केवल लापरवाही का ही व्यवहार नहीं करती; अपितु वह मेरी निन्दा करती है और मुझे धिक्कारती है। मुझे समाज अत्याचारी दीख पड़ता है और लोगों के प्रति तिरस्कार उत्पन्न होता है। एक समय था जब मुझे आस्कर वाइल्ड बहुत अच्छा लगता था। अस्वाभाविक आवेशों का अतिशयोक्ति पूर्ण आविर्भाव कला के रूप में प्रकट करने की उसकी सामर्थ्य पर मैं मुग्ध हो जाता था। अब फिर से मुझे वह पसन्द आने लगा है। मेरी वृत्तियों में इस प्रकार के परिवर्तन होते देख कर तुम्हें आश्चर्य नहीं होता क्या ?

जिन दिनों मैं सेवा-व्रत का व्रती था, उन दिनों भोग विलास की वृत्तियों का निग्रह करता और उन्हें दबाता था—उनका रूपान्तर न कर पाया। आज इच्छा होती है कि उन्हें बे लगाम खुला छोड़ दूँ। तुम्हें याद होगा कि मैं पैसा कमाने की वृत्ति को बहुत अधम मानता था और जब जवान ग्रेजुएटों को साठ वर्ष के बुड्ढों की नाईं पैसे की चिन्ता करते और पैसे के अभाव को देखकर सेवा-मार्ग को अपनाते हुये हिचकते देखता, तो मुझे बहुत हंसी आया करती थी। आज मैं प्रत्येक को कमाई करने की स्वतन्त्रता दिया चाहता हूं और यह काम मुझे इतना स्वभाविक लगता है कि मुझे यह भी समझ में नहीं आता कि आख़िर मैं इसे अधम क्यों माना करता था। और इस परभी तुर्रा यह कि सेवा-मार्ग पर चल पड़ने वाले नवयुवक आज मुझे मूर्ख और भोले भाले मालूम होते हैं !

तुम अच्छी तरह जानते हो कि असहयोग और स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में मैंने किस प्रकार सैकड़ों को खादी पहनाई थी। पर आज मैं स्वयं विदेशी कपड़ों में आनन्द पाता हूं। इतना ही नहीं विचारों के क्षेत्र में भी मुझे विदेशी विचार धारा ही भाने लगी है; और वही ज़्यादा सच्ची लगती है। पहले मेरा जीवन सिद्धान्तों के पालन करने का एक व्रत था। आज सिद्धान्तों को स्वीकार करना मुझे अपने आपको परिमित और संकुचित बनाना लगता है। मेरा ख़्याल है कि सिद्धान्तों को स्वीकार किया ही तब जाता है, जब व्यक्ति में विरोधी विचारों को स्वीकार करने की शक्ति न हो।

सेवा करते हुए मैंने जीवन की क्रूरताओं और कर्कशताओं का अनुभव करने का प्रयत्न किया है

और इसी में मुझे आनन्द आता था। पर अब तो मुझे ऐसा लगने लगा है कि संयम भोग-सामर्थ्य न होने की दशा है!

भाई, तुम्हें मेरा यह चित्र देखकर हंसी नहीं आती? कभी कभी मैं सोचता हूं कि मैं जब जब अपनी संस्कृति के बारे में भाषण दिया करता, अथवा बात चीत में उसका उल्लेख किया करता था, तब मेरा मन हमेशा संशयात्मक रहा करता होगा। क्योंकि उस संस्कृति के किसी भी तत्व को मैंने अपने जीवन में नहीं उतारा था। कभी सोचता हूं कि कहीं यह अज्ञान ही तो मेरे पतन का कारण नहीं हुआ?

इस दशा में भी मेरी बुद्धि कई बार मुझ से पूछा करती है—"जो कुछ तू कर रहा है, क्या यह ठीक और उचित है?" क्षण भर में मेरे अन्दर से ही कोई उसका उत्तर भी देता है 'क्यों नहीं?' क्या मुझे ऐश का अधिकार नहीं? फिर स्वाधीनता ही कहां रही और स्वतन्त्रता का क्या अर्थ हुआ? मुझे यह युक्ति ठीक लगती है और मैं अपने आपको भोग विलास के प्रवाह में बहने के लिये छोड़ देता हूं।

पर कभी कभी मुझे अन्दर से ही डर लगने लगता है और जब रात की अगम्य शान्ति और नीरवता में मैं अपने होटल की छत पर घूमता हूं, तो अन्दर में से एक बहुत धीमी आवाज़ सुनाई देती है—"तू पथ-भ्रष्ट होगया है। अब तू जिसका अनुसरण कर रहा है, वह तेरा बैरी है। तू ने मुझे क्यों भुला दिया?" ये शब्द इतने स्पष्ट सुनाई देते हैं कि बहुत बार मुझे यह भ्रान्ति हो उठती है कि शायद कोई व्यक्ति मेरे अत्यन्त निकट आ कर ये शब्द कह गया है। मैं आंखें फाड़ फाड़ कर इधर उधर देखता हूं। पर वहां कोई नहीं होता; सिर्फ़ मेरा हृदय कुछ ज़ोर से धड़क रहा होता है और मेरी आंखों में आंसू आ जाते हैं। मुझे खबर नहीं, मैं क्या कर रहा हूं, कहां जा रहा हूं और आगे क्या होगा। अपनी परित्यक्त पत्नी पर मुझे दया आती है और अपने लिये तिरस्कार पैदा होता है।

अब मैं जान गया हूं कि अभी तक किये गए मेरे कर्मों का उद्देश्य सेवा करना न था। मैं सेवा के द्वारा प्रभु-सेवा नहीं कर रहा था। मैं अपने आपको धोखे में डालकर यह समझे बैठा था कि कार्य और कर्मयोग में कोई भेद ही नहीं। यदि कहीं यह बात ठीक होती, तो यह मानना पड़ता कि दुनिया में सभी कर्मयोगी हैं। मुझे स्पष्ट दिखाई दे गया है कि परोपकार और कर्मयोग भी एक नहीं हैं। परोपकार के कार्यों से सीमा बहुत विशाल बन जाती है; पर बन्धनों से छुटकारा फिर भी नहीं मिलता। मैं यह समझा करता था कि मैं जो कुछ कर रहा हूं यह सब सेवा के उद्देश्य से ही है। पर ज़रा गहराई में जाने से अब अन्दर में चक्कर लगाती हुई स्वार्थ वृत्तियों, कामनाओं और सेवा के अतिरिक्त अन्य हेतुओं को देख रहा हूं। संक्षेप में कहूं, तो मैं भगवान के लिये कर्म नहीं करता था। यदि भगवान मिल जाएं, तो उन्हें भी अपना साधन बना लेने की चेष्टा में था?

यदि मैं भगवत्-प्रीति के लिये कार्य करता होता, तो मुझे अपने साथी निकम्मे न मालूम होते और न जन-समाज के दोष ही मेरे रास्ते में आते। उनकी निर्बलता को देख कर ही, तो मैंने उनकी सेवा करने की ठानी थी। पर मैं अपना लक्ष्य भूल गया और उनसे बदले की आशा करने लगा; मैंने कर्मयोग की पहली शर्त को भी न पूरा किया। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" कर्मयोगी के लिये आदर्श वाक्य नहीं है, यह तो उसकी पहली ही शर्त है। पर मैं उसे भी पूरा न कर पाया।

मैं अपनी कामनाओं के ही सूक्ष्म, विशाल और सात्विक स्वरूप को सन्तुष्ट करने में लगा रहा। मेरा आधार भगवान और ईश्वरेच्छा न हो कर अपनी रजोगुणी राक्षसी अहंता थी। मैं उसी के बल पर नाचा किया। भगवान की अनन्त शक्ति को तुच्छ मान कर क्षुद्र मानव-शक्ति को ही मैंने अनन्त मान लिया। समग्र विश्व में काम करते हुए भगवान के हेतु को जानने के लिये न तो मेरे अन्दर धैर्य ही था, न शक्ति और बुद्धि। सेवा-व्रत का आचरण कर

के मैंने ये चीज़ें प्राप्त करने की कोशिश भी तो नहीं की मुझे यह न सूझा कि मैं जो लोक सेवा कर रहा हूं; इसका पुरस्कार मांगने का मुझे कोई अधिकार नहीं; मुझे अपनी शक्ति की परिमितता भी न दिखाई दी।

गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने सब कर्मों का सन्यास करने के लिये जो उपदेश दिया है, वह कितना सकारण है! नहीं तो मनुष्य अपनी अहंता, कामना आदि में ही फंस कर रह जाता। गीता में केवल फल की इच्छा को ही नहीं अपने 'कर्तव्य' के अभिमान को-मैं कर्ता हूं—इस प्रकार की बुद्धि को, भी त्यागने के लिये कहा है।

आचरण में तो मैं सेवा-मार्ग से भ्रष्ट हो चुका हूं, पर फिर भी मैं इस बात की कल्पना कर सकता हूं कि यदि यथार्थ रूप से सेवा-व्रत का पालन किया जाए, तो सर्वत्र भगवान का दर्शन हो सकता है। भगवान सब जगह रमे हुए हैं, उन्हीं की सेवा का व्रत लेने से यह सब कुछ सध सकता है, पर सवाल यह है कि सतत आत्मजागृति कहां से लाई जाए? सेवा-कार्य में लगे हुए हमारे युवकों के अन्दर इतनी आत्मनिरीक्षण की वृत्ति ही कहां होती है? उनके अन्दर प्रतिक्षण सेवा का मानव जाग्रत रहा करता है क्या? मुझे तो निश्चय हो गया है, जब तक अन्तर दशा इस प्रकार सतत सचेतन न रहे, तब तक सेवा-व्रत का पालन लग भग असम्भव है। सारांश में कभी कभी मुझे यह भी प्रतीत होता है कि स्थूल और सूक्ष्म सभी भांति के कर्मों को भगवान को समर्पित करने में ही सेवा-व्रत की परिसीमा है। पर बाह्य जीवन के स्थूल कार्यों में भी हर समय इस उत्सर्ग की भावना, आत्म समर्पण की साधना को जारी रखने के लिये कितनी सहृदयता, कितने प्रबल निष्पक्ष और निर्दोष आत्म नीरीक्षण और कितनी निःस्वार्थता तथा आध्यात्मिक प्रमाणिकता की ज़रूरत है?

यह सब कैसे बने? कभी कभी मन में ख़्याल आता है कि यदि सच्चे दिल से प्रभु को समर्पण किया जाए, तो वे सब आवश्यकताएं अपने आप पूरी कर देंगे। सच मुच किसी ने जगत को बहुत ही महान सत्य का दर्शन करवाते हुए कहा है—सेवा धर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।

पत्र बहुत ही लम्बा होगया। तुम सोचते होगे कि जब मैं बुद्धि से इतनी बातें समझ लेता हूं, तो फिर उन्हें आचरण में क्यों नहीं लाता। मेरा भी यही रोना है। मुझे किन्हीं क्षणों में यह ज्ञान प्राप्त होता है। पर शीघ्र ही फिर से आंखों तले अंधेरा छा जाता है; और मैं सब कुछ भूल जाता हूं। आज पत्र लिखते समय ये सब बातें मन में उठी हैं, पर मुझे भय है कल फिर वही जैसा था वैसा हो जाऊंगा। अभी अन्तर में यह भाव बाक़ी है कि मैं गिर गया हूं, जब तक यह है, तब तक बचने की आशा भी बाक़ी है। पर जब यह भी न रहेगा तो—उफ़, उससे तो सात नर्कों की यातना भली।

मुझे आशा दिलाने वाली, मुझे उबारने वाली इस दिव्य ध्वनि का हृदय से लुप्त होना, जीते हुए मौत के अनुभव के बराबर है। इसकी अपेक्षा तो मौत हज़ार दर्जा बेहतर है। आशा है जब तक जीता हूं तब तक हृदय के दुःख का सहारा बना ही रहेगा।

तुम्हारा
स्नेही बन्धु

भाभी

—:०:—

श्रीमती शिवरानी प्रेमचन्द

—०—

चन्दा को अपनी मुसलमान भाभी के मरने की ख़बर मिली तो वह सुन्न हो गई। दुःख हल्का हुआ तो अपनी ननद सरूपा से बोली—मैं तुमसे क्या बताऊं बीबी, जब उस बार अपने घर से यहां आ रही थी तो भादों का महीना था। मेरी सवारी स्टेशन से ज्यों ही चली, मेह ख़ूब ज़ोरों से बरसने लगा। मैं पानी से लथपथ आ रही थी कि मेरी भाभी का मकान पड़ा। वे वहीं आकर मुझसे बोलीं कि बीबी, उतर आओ। घर तुम्हारा अभी एक मील है। पानी में कहां भींगती भागोगी!

मैं प्रार्थना करती हुई बोली—इस वक़्त माफ़ करो भाभी। सारे कपड़े भीग गये हैं।

वे बोलीं—तो क्या आपको यहां कपड़े नहीं मिलेंगे?

मैं—कपड़े क्यों नहीं मिलेंगे। व्यर्थ की परेशानी होगी। कल मैं आकर तुमसे मिल जाऊंगी।

भाभी—इसमें क्या परेशानी होगी?

मैं—नहीं, कल पर रखो।

उस समय मैं घर तो चली आई, मगर उसके दो तीन दिन बाद ही तुम्हारे भाई मुझे बिदा करा लाये। सच कहती हूं इस समय मैं सोच कर मरी जा रही हूं। उन्हें भाभी कहते मुझे कुछ झेंपसी होती है। मैंने उनसे कई बार कहा था कि तुम्हें मां कहने को जी होता है। छोटी उमर में ही मेरी मां मर गई थीं। उतनी दूर से भाई साहब आते, मुझे अपने घर ले जाते और भाभी मेरी सेवा करतीं। मेरी देखभाल का सारा भार भाभी ही के ऊपर रहता। दिन भर वे मेरी ही फ़िक्र में रहतीं। मुझे भाभी से ही सारे सुखों का अनुभव हुआ। एक बार की बात है होली का दिन था। मैंने रंग लाकर भाई साहब के ऊपर डाल दिया। पिता ने मुझे डांटा। मैं रोने लगी। भैया मुझे गोद में उठा कर बोले—रंग ही तो है। क्या हर्ज़ हुआ? मत रो, मेरी बहन, मत रो।

आज वही मेरी भाभी इस संसार में नहीं हैं। उन बातों को सोच-सोचकर बीबी मेरा सिर फटा जा रहा है। उस बार की अपनी भूल पर मेरा चित्त लज्जित हो जाता है। मेरे भाई और उनके लड़के में कुछ आपस में झगड़ा भी हो गया था। इसी ख़्याल से मैं शायद उतर न सकी थी। ज़िन्दा रहते मैं इस दर्द को नहीं भुला सकूंगी।

चन्दा की ननद सरूपा बोली—भाभी, समय की गति बड़ी विचित्र है। वह सब कुछ भुलवा देता है।

चन्दा—ना बीबी, हर्गिज़ नहीं। दर्द कहीं मिटते हैं। वे अन्तराल में छिपे रहते हैं। दुःख-दर्द बड़ी अनोखी चीज़ है। उसे कैसे भुलाया जाय? मैं चाहती भी नहीं। मेरी यह सबसे बढ़कर प्यारी चीज़ है। अब भी भाभी मुझे गोद में ले लेतीं। उनकी नज़र में मैं अब तक वही मुन्नी थी। मां जिस वक़्त मरी, उसका मुझे स्मरण नहीं। मुझे तो अपनी भाभी का ही स्मरण-विस्मरण सब कुछ है।

सरूपा—अब आजकल ऐसा प्राणी मुश्किल से मिलेगा। देखती नहीं हो दिन-रात हिन्दू मुसलिम झगड़े चल रहे हैं।

चन्दा—बीबी, ईद के त्यौहार पर वे ख़ुद मेरे लिए कपड़ा लाते। एक बार मेरे पिता ने ईद के त्यौहार पर मेरे लिए कुछ कपड़े ला दिये। भैया को यह बड़ा बुरा लगा। उन्होंने कहा ईद पर के कपड़े मुझे लाने चाहिएं।

"पिता बोले—तुझ पर कितना बोझा डालूं।

"भैया बोले—बहन-भाइयों का बोझ बोझ नहीं होता। वह सुख का बोझ है, दुख का नहीं। प्रेम के बोझ को बोझ नहीं कहना चाहिए। मैं आप लोगों को अपना ही समझता हूं।

"पिता बोले—ख़ैर; इस बार माफ़ करो। तुम उस बार भी रंग डालते समय ऐसे ही बिगड़े थे।"

चन्दा—सच कहती हूं बीबी उनकी याद भुलाये नहीं भूल रही है।

सरूपा—उनके यहां हो आओ एक बार भाभी!

चन्दा—पर भाभी कहां मिलने की।

सरूपा—हां भाभी तो अब नहीं मिलने की। भाभी के बच्चों को जाकर प्यार कर आओ। शायद इससे तुम्हारा दिल कुछ हल्का हो जाय।

चन्दा—ठीक कहती हो बीबी।

× ×

चन्दा दूसरे रोज़ मैके गई। उनका मकान सामने पड़ा। चन्दा देखकर रो पड़ी। वह अपने दुःख को संभाल न सकी। रोते-रोते बेदम होगई।

भीतर से एक लड़का निकला। चन्दा को ज़मीन पर से उठा कर बोला—अम्मां को तुम्हारी याद मरते दम तक थी। जब तुम उस बार चली गईं, तो अम्मां को बड़ा दुःख हुआ, मुझसे बहुत दिन तक वे नाराज़ रहीं। कहती थीं तुम लोग मज़हबी झगड़े के पीछे अपनी चीज़ खो बैठे। आपके बचपन की सारी बातें वे सुनातीं। कहतीं—वह मेरी ननद नहीं, मेरी लड़की है। उन दिनों की याद दिलातीं, जब मेरे पिता तालाब तैर कर आपके घर पहुंचते। बातों का स्मरण कर वे घण्टों रोतीं। उन दिनों की याद दिलातीं जब बाबा जी को आपके पिता ने सौंप दिया था। उनको दिन-रात इसी की चिन्ता रहती थी कि इतना पुराना सम्बन्ध ज़रा सी मज़हबी घटना के पीछे नष्ट हो गया। उनकी आत्मा अब भी मुझे कोस रही होगी। आज अम्मां होतीं तो सारा गिला ख़तम हो गया होता। आज सब कुछ वही है, पर अम्मां नहीं हैं।

चन्दा—बेटा, इन बातों को मत दुहरा।

मेरी अक़्ल पर उस समय जैसे पत्थर पड़ गया था। मैं भाभी की गोद में पली तो ज़रूर पर उन्हें पहचान न पाई। भाभी देवता थीं। वे न हिन्दू थीं, न मुसलमान। मैं बड़ी होने पर भी उनसे बराबर होली खेलती थी। मैं शर्म के मारे तैयार भी न होती तो वे ज़िद करतीं—आओ होली खेलो। मैं कहती मैं आपकी लड़की हूं ननद नहीं। भाभी हंसकर जवाब देतीं—ख़ूब रही। सब लड़कियां ही हो जायेंगी, तो ननद कहां से आयेगी। मुसलमान लोग उन्हें हिन्दू कहकर मज़ाक उड़ाते। सब को वे एक ही जवाब देतीं—रंगे कपड़े जब पहनते हो तब रंग पड़ने से क्यों नफ़रत? एक बार होली पर भाभी भैया के सामने मज़ाक करने लगीं—क्यों अब भैया से होली नहीं खेलोगी? उस पर भैया ने बड़े ज़ोर से उन्हें डांटा था। आज वह दिन सपना हो गया।

चन्दा और वह दोनों फूट-फूट कर रोने लगे।

चन्दा अपना रोना दबा कर बच्चे को गोद में लेकर अपने आँसू पोंछती हुई बोली—हुसेन, तेरी मां नहीं मरी। मेरी मां अलबत्ता मर गई। आज तुझे सीने से लगाये मुझे रोती देखकर वह कभी ख़ामोश बैठ सकतीं। तुम मेरे भतीजे नहीं बेटे हो। चाहे सारा ज़माना एक ओर रहे। हम-तुम एक ही ओर रहेंगे तुम्हारे चाचा तुम्हारी मां से मिले कि नहीं?

हुसेन—वे ख़ुद चाचा के पास गई थीं। उन्होंने उस समय कहा था क्या वह दिन तुम्हें भूल गया, जब भैया ने तुम्हें सौंपा था? इन नादान लड़कों से नाराज़ होकर बैठने का समय था? कभी नहीं। इनको

तो आप पीटने तब मैं खुश होती। यह नाराज़गी तो कुछ भी अर्थ नहीं रखती। अपने लड़के से ज़्यादा हक़ मुझ पर आपका है। मैं आपसे कह देना चाहती हूं कि जब आप इन्हें नहीं देखेंगे, तो कौन देखेगा? फिर बदनामी आपको ही होगी, मेरी नहीं। आपकी और आपके भाई की बदनामी बराबर ही है।

हुसेन इतना कहने के बाद बोला—वे तबियत की बहुत साफ़ थीं। उन्होंने कुरान की कसम खिलाकर कहलवाया था कि भविष्य में मज़हबी झगड़े न करना। रामायण और कुरान का उन्हें पूरा ज्ञान था! मुझे बार-बार यही कहती थीं कि तुम क्यों उन से झगड़ा मोल लेते हो? उस बार न जाने मुझ पर कौन भूत सवार हो गया कि मैं पागल हो उठा था। वे मज़हबी झगड़ों से बेहद कांपती थीं। यह सब उन्हें बेहद नापसंद था। बार-बार यही कहतीं कि वोलो कहां लिखा है?

चन्दा—तुम उनकी बातें क्यों कहते हो। मुझ में सुनने की ज़रा भी ताक़त नहीं है। मैं तुमसे यही कहना चाहती हूं तुम मुझे मां न समझना, बुआ समझना। भाभी का बहुत बड़ा ऋण मुझ पर है। उसे मैं इस जन्म में नहीं अदा कर सकती। हां तुमको छाती से लगा कर कुछ दुःख भुला सकती हूं, क्या तुम वादा करते हो?

हुसेन ने रोते हुये गोद में सिर रख दिया और बोला—बुआ मेरी ग़लतियां माफ़ करना। अम्मां को कैसे मालूम हो कि मैं उन्हीं के आदेशों पर चल रहा हूं। मेरे कामों से जो उन्हें तकलीफ़ हुई, उसे मैं कैसे घटा सकता हूं?

इन दोनों की ये भावनाएं हैं कि आपस में ये मिल-जुल कर रहें। अपने अपने ऋण चुकता करें। वह ऋण नहीं स्नेही की ग्रन्थि है। जब उनमें किसी तरह की कटुता आ जाती है, तो फिर दुबारा वह और भी बढ़ती है। रोने से कुछ नहीं होता यह बात नहीं, दिल के मैल बेशक कट जाते हैं।

× × ×

चन्दा शाम को अपने घर गई। वहां दो-चार दिन बाद ही उसे कालरा हो गया। चन्दा की हालत जब ज़्यादा ख़राब हो गई, तो उसने पहले यही कहा—मेरे बेटा हुसेन को बुला दो।

हुसेन—इत्तिफ़ाक़ से उस दिन वहीं जा रहा था। जैसे ही हुसेन को सरूपा ने देखा, बोली—भाभी हुसेन आ गया।

सुनकर चन्दा की निर्जीव आंखों में चमक आ गई। बोली—कहां है बीबी बुला दो। ज़रूर भाभी ने ही भेजा है।

"देख हुसेन, भाभी भी खड़ी हैं। सभी लोग हैं—मां, भाभी सभी हैं कहीं मेरा सपना न हो।

हुसेन रोता हुआ बोला—कोई नहीं है। तुम्हीं को देखकर मेरा धैर्य था क्या तुम भी चलीं?

चन्दा—देखो, देखो सब लोग खड़े हैं। पानी पिला दो।

हुसेन पानी मुंह में लगाता है। पानी से मुंह फेरकर बोली—आ मेरे बेटे! मैं तो भाभी के साथ जा रही हूं। तुम सब सुखी हो, भाभी तुम भी हुसेन को प्यार कर लो। अभी तक क्या हुसेन से नाराज़ ही हो। आख़िर कब तक उससे नाराज़ रहोगी? तुम नाराज़ हो ओ, मैं तो उसे भैया ही समझती हूं। उसे मैं जब अांक में भर लेती हूं, तो वह मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

हुसेन—क्या बक रही हैं आप? आप भी क्या साथ छोड़ रही हैं?

चन्दा यकायक बेहोश हो गई। अन्तिमबार देखती हुई बोली—राह चलो, राह चलो।

चन्दा इस लोक में नहीं रही।

हुसेन—हाय! कहां अम्मां को बुलाती थीं, कहां बुआ भी चली गईं। मैं किसी को भी सुखी नहीं कर पाया।*

[*यह कहानी सच्ची घटना के आधार पर लिखी गई है।]

अहिन्सा की समस्या

पण्डित मोहनलाल नेहरू

प्रस्तुत लेख पण्डित नेहरू ने श्री मञ्जरअली सोख्ता साहब का लेख पढ़कर लिखा है। पण्डित जी सोख्ता साहब से इस मत पर सहमत नहीं हैं कि परिस्थितियां संसार को अहिंसा की ओर ले जा रही हैं। पण्डित जी ने सोख्ता साहब की लेख-माला का पहला लेख पढ़कर ही यह उत्तर लिखा है।

'अहिंसा का सिद्धान्त एक महान सिद्धान्त है' इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं, मगर कहीं पर तो इसकी भी सीमा है। अथवा अगर यों कहा जावे कि कहीं पर पहुंच कर वही अहिंसा हिंसा की हद तक पहुंच जाती है, तो शायद ज़्यादा ठीक हो। अगर कोई पागल कुत्ता दूसरे जानवरों या आदमियों के बीच पहुंच कर सभी को काटने लगे, तो क्या उसको पकड़ना या मारना हिंसा में गिना जा सकता है? उसी तरह अगर कोई शक्तिशाली मनुष्य दुर्बलों पर ज़बरदस्ती अत्याचार करने लगे, तो क्या उसकी रोक थाम के वास्ते शक्ति का प्रयोग करना हिंसा में गिना जावेगा? मुझे याद है कि कुछ वर्ष हुये एक बछड़े की पीड़ा देखकर महात्मा जी की आज्ञा से उसे ज़हर का एक इंजेक्शन देकर उसकी पीड़ा का अंत कर दिया गया था। उस पर हमारे कट्टर पंथियों ने ऊधम मचा डाला था। वह इंजेक्शन वास्तव में अहिंसा-कर्म था।

परमेश्वर ने जो सृष्टि रची, उसमें सारे ही हिंसक जानवर पैदा किये। यों देखने में कुछ मांस-भक्षी, कुछ घास-भक्षी हैं (घास में सभी तरह की तरकारी और अनाज सम्मिलित हैं) मगर वास्तव में वे एक दूसरे को खाकर ही ज़िन्दा रह सकते हैं। घास में भी तो एक तरह की जान है, वह भी तो पैदा होती और मरती है। इस तरह एक दूसरे को मारना और खाना तो हिंसा में नहीं गिना जा सकता; क्योंकि यह तो प्राकृतिक है। क़ुदरत यही सिखाती है कि अपना पेट भरने के लिये दूसरे की हत्या कर सकते हो, या फिर ख़ुद भूखों मरो। दूसरे शब्दों में क़ुदरत स्वार्थ सिखाती है। इतना ही नहीं, वह कुछ जानवरों को हिंसा की वृत्ति भी देती है। पेट भरने से उससे कोई मतलब नहीं।

शेर को लीजिये भूखा होगा तो बकरी, गाय या आदमी तक को मार कर खा जावेगा। भूखा न होगा तो देख कर भी चला जायगा। मगर चीते या हाथी को देख कर उससे लड़ मरेगा। उसी तरह कुत्ते और बिल्ली का उदाहरण है। और भी कितने ही पशुओं की इसी तरह की मिसालें दी जा सकती हैं। इनसे मालूम होता है कि परमात्मा ने हिंसा की वृत्ति भी कम से कम कुछ पशुओं को दी है।

आदमी राम सबसे होशियार परन्तु सब से ज़्यादा पाजी अथवा स्वार्थी जानवर हैं। पशु और पक्षी तो अधिकतर पेट भरने को ही दूसरे पशु या पक्षी को मारते हैं; परन्तु यह हज़रत अपने मनोरंजन के वास्ते पशु पक्षी या आदमी तक को कभी कभी मारते या सताते हैं और जहां अपनी बारी आई कि अहिंसा की दोहाई देने लगते हैं। मचानों पर बैठ कर जंगली जानवरों का शिकार खेलना, उड़ती चिड़ियों को मार गिराना इनका मनोरंजन गिना जाता है। हज़ारों बरस का इतिहास लीजिये तो अपने फैलाव के वास्ते इन्होंने

कितना ख़ून बहाया ! अपना माल बेचने के वास्ते इन्होंने कितने देशों को दास बनाया ! अपने धर्म के नाम पर रुधिर की कितनी नदियां बहा दी ! और कौन सा धर्म कि जो एक थप्पड़ खाने पर दूसरा गाल भी सामने कर देने का आदेश करता है। Book Facts—"नामक एक पुस्तक में लिखा है कि पिछले ३५०० बरस में कोई ३५ वर्ष भी ऐसे नहीं हुए जब कहीं न कहीं युद्ध न छिड़ा हो।

हिन्दू मत सब से ज़्यादा सहनशील मत है। हिन्दू सब मतों के अनुयाइयों से ज़्यादा सहनशील हैं; परन्तु वह हिंसा की वृत्ति उनमें भी कूट कूट कर भरी है। इसका सुबूत ढूंढ़ने दूर नहीं जाना है। हर ईदुज़्ज़ुहा पर एक दुबली सूखी भूखों मरती गाय के बचाने को कितने ही सर तोड़ देते हैं और अपने तुड़वा लेते हैं। मगर वे ही उसको बचा कर न खिलाने पिलाने की शक्ति रखते हैं न चाहना। गाय की हिंसा न होने पावे, इस वास्ते मनुष्यों की हिंसा करना अहिंसा को परम धर्म समझने वाले धर्म समझते हैं।

वास्तव में आदमी सबसे बड़ा हिंसक जानवर है। मगर होशियार ऐसा है कि उस हिंसा को अहिंसा के कपड़े पहना देता है। वर्तमान युद्ध को ही लीजिये। कहने को तो ये दोनों जातियां बड़ी सभ्य जातियों में गिनी जाती हैं, मगर रोज़ ही रेडियों पर या अख़बारों में सुनने और पढ़ने में आता है कि वे ऐसे ऐसे अनर्थ कर रहीं हैं कि जिस पर शायद बनमानसों को भी शर्म आजावे, पर ये हैं कि बड़े अभिमान से कहते हैं कि हमने इतने जहाज़ तोड़े, इतने सुन्दर नगरों को खंडहर बनाया, इतने आदमी यमलोक को भेज दिये। लेकिन उसी के साथ परमात्मा को अपना साथी और अपना सहायक मानते हैं। प्राचीन काल की लड़ाइयों में योधा लोगों के देवता अलग अलग माने जाते थे। मगर इनके तो देवता एक ही हैं। फिर वह दोनों पक्षों की तरफ कैसे हो सकते हैं ? दुनिया इतनी जाहिल नहीं कि यह जान न सके कि यह ख़ाली धोखा देने के तरीक़े हैं। हिंसा की वृत्ति जो शायद कुछ काल तक दबी थी, उत्तेजित हो आई है और वही इस समय इनका धर्म हो रही है। कहने को एक साहब प्रजातंत्र की रक्षा कर रहे हैं और दूसरे साहब पराजित जातियों के उद्धार की चेष्टा।

आख़िर देखना चाहिये कि अहिंसा है क्या चीज़ ? हिन्दी शब्द सागर में हमें बताया गया है कि मन, वाणी और कर्म से किसी प्रकार और किसी काल में किसी प्राणी को दुःख व पीड़ा न पहुंचाना अहिंसा है। जीवों का वध करना या मारना या सताना या हानि पहुंचाना हिंसा कहा गया है। मगर जो भी इसका मतलब हो, हिन्दू समाज हिंसा का मतलब ख़ाली जीव-हत्या समझता है। अहिंसा को वह परम धर्म मानता है—कम से कम कहने भर को।

फिर धर्म क्या है ? शब्द सागर हमें बताता है कि ऋग्वेद के अनुसार किसी मान्य ग्रन्थ, आचार्य व ऋषि द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ वह कर्म, जो पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिये किया जाता है।' अहिंसा का धर्म भी किसी न किसी ऋषि द्वारा ही निर्दिष्ट किया गया होगा। परमात्मा ने तो बनाया नहीं। मगर हमारे ऋषि-मुनियों में जितनी हिंसा की वृत्ति रही, शायद साधारण आदमियों में कभी न थी। ज़रा ज़रा सी बातों पर वे क्रुद्ध हो जाते थे और ख़राब से ख़राब शाप देकर लोगों को पीड़ा पहुंचाते थे। परशुराम जी ने तो क्षत्रियों के सर्वनाश का ही बीड़ा उठा रखा था। एक ऋषि के बनाये धर्म को दूसरे ऋषि खंडन करते थे। शायद वे सोचते होंगे कि

अब तो आराम से गुज़रती है
आक़बत की ख़बर ख़ुदा जाने !

यही आजकल के युद्ध संचालक भी सोच रहे होंगे। क्या एक भी व्यक्ति ऐसा है, जो यह यक़ीन करता है कि जिस पक्ष की भी जीत होगी, वह हारे पक्ष को बिल्कुल कुचल न देगा ? आज जो आपस में गाली गुफ़्ता हो रही है, वह भविष्य की झलक काफ़ी तौर पर दिखा रहा है। लुत्फ़ यह कि एक अमरीकन विशप साहब नाज़ियों को 'बुतपरस्त' कहकर अपनी राय में सब में बड़ी गाली देते हैं, मानों मूर्ति पूजने

वाले दूसरों के खून के प्यासे होते हैं! क्या उलटी गङ्गा बहाई है। उन्हें यह नहीं सूझता कि ईसाई कहे जाने वाले ही एक दूसरे का सर्वनाश आज कर रहे हैं और सैकड़ों वर्ष से वे ही 'शक्ति' की पूजा करते आये हैं।

और धर्म तो आवश्यकतानुसार बदला भी जाता है। जो आज धर्म है कल नहीं होगा, जो कल था आज नहीं है। हमारे कुछ आचार्यों ने कुछ जातियों को अछूत बना दिया, दूसरों ने उस पर कटाक्ष किये और आज उसी धर्म को अहिंसा के सबसे बड़े महान प्रचारक महात्मा गांधी पाप बता रहे हैं और उनके अनुयाई उनके आदेश को ठीक मान कर उस पुराने धर्म को छोड़ रहे हैं। इसलिये आदमी का बताया धर्म 'किसी व्यक्ति की वह वृत्ति' नहीं है, जो उसमें सदा बनी रहे। अहिंसा का धर्म भी इसी तरह आवश्यकतानुसार बदलता रहता है। अगर एक आदमी के हाथ में ज़हरबाद हो और हाथ इस वास्ते काटा न जावे कि उसे पीड़ा होगी, तो सारा बदन सड़ जावेगा और उस पीड़ा का न पहुँचाना हिंसा में गिना जावेगा। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। मगर उससे भी कौशिक सत्यवादी को नरक भोगना पड़ा। जङ्गल में कुछ मनुष्यों को डाकुओं के डर से भागे जाते सत्यवादी कौशिक ने देखा, कुछ देर बाद डाकुओं ने उनसे पूछा कि किधर गये और उन्होंने सच बता दिया, जिस की वजह से डाकुओं ने उन मनुष्यों को मार डाला। इस सत्य के कारण कौशिक को नरक भोगना पड़ा।

कहा जाता है एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है और उसे निकाल फेकने से उसका पानी बहुतेरे प्राणियों को सुख पहुंचाता है, तो क्या उसका निकाल फेंकना अहिंसा नहीं। ज़रा आगे बढ़िये, समाज में जो व्यक्ति दूसरों को पीड़ा पहुंचा रहा हो, तो क्या मछली वाली मिसाल उस पर लागू न होगी? अगर कोई जाति या कोई देश अपने अभिमान में दूसरों को दबाने या हड़पने पर ही उतारू हो, तो क्या दूसरों का उसके दमन के वास्ते संगठन अहिंसा न होगा। मैं तो कहूंगा कि मछली को तालाब में रहने देना या समाज और देश के पीड़ा पहुँचाने वालों को गुलछर्रे उड़ाने देना घोर हिंसा होगी; बिलकुल उसी तरह जैसे सड़े अङ्ग का न काटना। यह तो समाज के सड़े अङ्ग हैं।

दुनिया का ढंग अजब है। अहिंसा की दोहाई देते हुये एक दूसरे का गला काटना और निहत्थों पर बम गिराना आज मामूली बात होरही है। ऐसा उस वक्त भी हो रहा था, जब डिसार्मामेण्ट कान्फ्रेंस हो रही थी। उस वक्त एक तरफ़ तो बम तोपें इत्यादि तैयार हो रहे थे कि आपस में एक दूसरे को मार काट सकें और दूसरी तरफ़ भविष्य में लड़ाइयों के अंत की दोहाई दी जा रही थी। यही गत युद्ध के समय कहा जाता था और यही आज। सिर्फ़ कहने के ढंग दूसरे हैं। वास्तव में अहिंसा की बात हज़ारोंवर्षों से की जा रही है। धर्म-व्याध ने कौशिक से कितना ठीक यह प्रश्न किया था "हिंसा से ऊब कर प्राचीन लोग अहिंसा की बड़ाई कर गये हैं किन्तु आप ही बताइये इस संसार में हिंसा से कौन बचा हुआ है?" और अगर यही दस्तूर एक जाति का दूसरी जाति पर शाशन करना, या एक का दूसरी को नीच समझना, क़ायम रहा, तो ऐसी ही दोहाई सदा ही दी जाती रहेगी। और प्रत्येक शक्तिशाली जाति या मनुष्य अपने लाभ के वास्ते इसकी दोहाई देगा और दुर्बलों का दमन करेगा।

मुझे तो "इस बात के साफ़ लक्षण" नहीं दिखाई देते कि "मौजूदा तूफ़ान के शान्त होते ही, ज्यों ही लोगों की भावनाओं और उनके विचारों को स्थिर होने का मौक़ा मिला, पाशविक लड़ाइयों और विनाश का वर्तमान युग समाप्त हो जावेगा।" साफ साफ तो क्या कहीं उन लक्षणों की झलक तक नहीं है। आज यूरोपियन देश सारी दुनिया को दबाए हैं, क्या कोई कह सकता है कि ज्योंही वर्तमान तूफ़ान शान्त हुआ, त्यों ही सारी काली भूरी जातियां ग़ुलामी से छोड़ दी जावेंगी और उन्हें स्वयं अपने विकास का मौक़ा दिया जावेगा। लीग ऑफ नेशंस भी मेरी समझ में इस वास्ते नहीं बनी थी कि उस वक्त अहिंसा का राज कायम करने की चाहना थी। लीग वास्तव में विजेता जातियों की

प्रतिनिधि थी और उसको किसी दबेल जाति या देश के साथ इन्साफ़ करने का न तो अधिकार था न चाहना। यही उसके टूटने का भी कारण था। जब उसके पास शान्ति क़ायम रखने के कोई साधन न थे, तो वह चाहना होने पर भी क्या कर सकती थी। हम आज भी देख रहे हैं कि फ्रांस, बेलजियम, हालैंड के हार जाने और जर्मनों की गुलामी में आने पर भी उनके साम्राज्य क़ायम हैं और बिजेता तक उन्हें उसी तरह क़ायम रखने पर तुले हैं। शायद इस वास्ते कि तूफ़ान की शान्ति पर उन्हें, हो सके तो, स्वयं हड़प लें। अभी तक इस युद्ध से अमरीका से कोई वास्ता नहीं। मगर वह भी पराजित जातियों की एशियाई सम्पत्ति पर हस्तक्षेप करने वालों को धमकी दे चुका है। क्या यह वास्तव में उस आने वाले सतयुग की झलक है, जिसकी हम सब आशा लगाए हैं?

महाभारत के वक्त से या शायद उसके भी पहले से सज्जन पुरुष हिंसा की बड़ाई गाते आये हैं। और जितना ही बड़ा हिंसक रहा हो, उतनी ही ज़्यादा बड़ाई उसने पाई है। यदि ऐसा न होता, तो आज शायद इंगलैण्ड, फ्रांस आदि देश रोमन सामराज्य में ही सम्मिलित होते और मुसोलिनी ही सीज़र के प्रतिनिधि की हैसियत से उनपर शासन करता होता।

मैं यह मानता हूं कि "मनुष्य समाज की अपनी सलामती, तरक़्क़ी और रक्षा के लिये अहिंसा के उपाय ही ज़्यादा ज़रूरी है।" मगर जब मनुष्य समाज अपने को एक समझे तब न। मनुष्य समाज ने तो अपने तई टुकड़ियों में बांट रखा है, जो एक दूसरे के लूट खसोट में ज़रा भी संकोच नहीं करतीं! योरप के देश मिल कर एशिया अफ़रीका को भले ही लूटने में आपत्ति न समझें; परन्तु आपस में एक दूसरे से द्वेष केवल लूट के बंटवारे में करने लगते हैं। जातिभेद ही इस बात का काफ़ी प्रमाण है कि मनुष्य समाज अपने को एक नहीं समझता और उसमें की ज़्यादा ताक़तवर टुकड़ी कम ताक़तवर को चूसने तथा नीचा दिखाने में लगी रहती है।

समाज ही क्यों प्रत्येक व्यक्ति इसी फ़िक्र में रहता है कि अपने से कमज़ोर व्यक्ति को किसी तरह उभरने न दे। इसकी मिसालें प्रत्येक देश में प्रत्येक घर में दिखाई देती हैं। पूंजीवादियों का बर्ताव मज़दूरों से, गृहस्थों का बर्ताव नौकरों से, अफ़सरों का बर्ताव मातहतों से, पुरुषों का बर्ताव स्त्रियों से, द्विजों का बर्ताव नीच जातियों से, महाजनों का बर्ताव कर्ज़-दारों से हमें यही बताता है कि आदमी स्वार्थी जान-वर है। यही स्वार्थ तो उस कलह का बायस है, जो दुनिया में फैली है। यह महायुद्ध जारी है, उसका भी तो कारण वही स्वार्थ है। पूंजीपतियों ने अपनी पूंजी बढ़ाने के वास्ते ही तो ख़ून की नदियां बहा रखी हैं। मानव-समाज की ऐसी हालत देखते हुये मैं नहीं समझ सकता कि मेरे भाई मंज़रअली को किस बात से ऐसा मालूम होता है कि अहिंसा व शान्ति की तरफ़ मनुष्य का रुझान दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है।

हां, जिन लोगों के हाथ में शासनों की बागडोर है, वह कहते ज़रूर रहते हैं कि विश्व-शान्ति के प्रयत्न कर रहे हैं। मगर करते उससे उलटा हैं। वास्तव में वे अपने शासितों को धोखा देने के लिए ऐसा कहते हैं। मगर जब शासित शासक की हैसियत ग्रहण करता है, तो वह भी वैसा ही राग अलापने लगता है। रूस की मिसाल लीजिये। अपनी स्वतन्त्रता के वास्ते जनता लड़ी और उसे प्राप्त किया, मगर उसे भी फैलाव के वास्ते दूसरे देश ढूंढ़ने की चाट लग गई। रूसी जनता भूल गई कि पराधीनता बुरी वस्तु है। बेईमानी कहो या राजनीति, उसी का आज बोल बाला है। अबीसीनिया की लड़ाई में कहने को तो फ्रान्स और इंगलैण्ड दोनों इटली के ख़िलाफ़ कुछ रोक थाम कर रहे थे। मगर होर और लावेल की जो क़लई खुली, उससे क्या हमें मालूम नहीं हुआ? स्पेन को शान्ति के नाम पर ही तो इंगलैण्ड और फ्रांस ने मदद जाने से रोक थाम की और स्पेनिश जनतन्त्र को फाँसी पर लटकाने में मदद दी; और जब इटली उनके अहसान को भूलकर उन्हीं से युद्ध ठान बैठा, तो उसी अबीसीनियां में इटली के ख़िलाफ़ उपद्रव मचवा रहे हैं!

मैं हिंसा की तारीफ़ नहीं करता। मगर मुझे साफ़ यह दिखाई देता है कि जब तक वह दिन न आ जावे कि प्रत्येक देश स्वतन्त्र हो और उसे अपने विकास का पूरा अवसर मिले, हर देश में प्रजातन्त्र हो, जिसमें केवल पूंजीवादियों ही का बोल बाला न हो, प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान दूसरे को दबाने तथा लूट खसोट करने की ही तरफ़ न जावे, तब तक अहिंसा एक स्वप्न रहेगी। वर्तमान तूफ़ान में तो कोई चिह्न उस सतयुग के नहीं दिखाई देते। कोई अपने साम्राज्य को छोड़ने को तैयार नहीं, साम्राज्य बढ़ाने की चेष्टा करने वाले चारों तरफ़ से मुंह फैलाये एक दूसरे से टक्कर ले रहे हैं। सम्भव है कि उनकी टक्कर इस ज़ोर की हो कि साम्राज्य आप से आप टूट जावें और शायद उस हालत में यह घोर युद्ध, यह निष्पाप व्यक्तियों का ख़ून ख़राबा भी बेकार न जावे। शायद आजकल पाप बहुत फैला है और धर्म (या अहिंसा) का उत्थान इसी युद्ध (हिंसा) के बाद होना है, श्री कृष्ण ने कहा भी है—

हे पार्थ! घटता धर्म बढ़ता पाप ही जग में यदा,
तब धर्म के रक्षार्थ मैं अवतार लेता हूं सदा।
कर साधुओं की प्राण रक्षा पापियों को मार कर,
उत्थान करता धर्म का युग युग सदा अवतार धर।

वर्तमान यूरोप—अहिंसा का पदार्थ-पाठ

कोई-कोई पूछते हैं कि अहिंसा से स्वराज्य कैसे मिलेगा? इसकी चर्चा अगर हम आज शुरू करें तो वह स्वराज्य-प्राप्ति तक ख़त्म नहीं होगी। इसलिए मैं उस फेर में नहीं पड़ता। वर्तमान यूरोप का चित्र अहिंसा का पदार्थ-पाठ है। अहिंसा के अभाव से क्या होता है—इसका पता मौजूदा यूरोप को देखने से चलता है। छोटे-छोटे राष्ट्र आज कच्चे खाये जा रहे हैं। आजकल तो सभी काम बिजली के बटन की तेज़ी से होते हैं। पहले आदमी सौ सौ वर्ष जीते थे; अब तड़ाक-फड़ाक मर जाते हैं। पन्द्रह दिन के बाद समूचे राष्ट्र ग़ायब हो जाते हैं। पहले ऐसी बातें न किसी ने देखी थीं, न सुनी थीं। आज तो मानों बटन दबाते ही राष्ट्र तक नदारत हो जाता है। चीन का कितना बड़ा हिस्सा जापान निगल गया है, इसका आज हमें पता ही नहीं। भविष्य में जब नया नक़शा तैयार होगा, तब हमें पता चलेगा। शस्त्रास्त्रों की इतनी तैयारी करने पर भी आख़िर चीन की क्या हालत हुई? हिन्दुस्तान जैसा गलित-कलेवर राष्ट्र शस्त्रास्त्रों से स्वराज्य कब पायेगा? 'यतेमहि' (कोशिश करना) तो अत्रि के ज़माने से शुरु ही है। क्या उसी तरह अनन्त काल तक कोशिश ही करते रहें? आज तो सब कोई छड़ी में ही विश्वास करते हैं।—

विनोबा]

—:⊙:—

धर्मों पर संकट

श्री भंवरमल सिंघी

चारों तरफ़ से आज शोर सुनाई देता है—'हमारे' धर्म पर संकट आ गया है, हमें सबसे पहले जिस तरह हो अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिये। धर्म डूब गया, तो फिर बाक़ी क्या रहेगा ?

हिन्दू धर्म वाले पुकार पुकार कर बता रहे हैं कि उनके धर्म पर विनाश के बादल छा रहे हैं, उनकी मूर्तियां और धर्म-पुस्तकें ख़तरे में हैं, उनके धार्मिक तत्त्वज्ञान और वर्णव्यवस्था पर कुठाराघात किया जा रहा है, उनकी संस्कृति डूबती जा रही है।

मुसलमानों के निकट जाकर देखिये—'उनके' इसलाम धर्म पर घोर विपत्ति आई हुई है, उनकी मसजिद और क़ुरान को नेस्तनाबूद कर देने का षड़यन्त्र रचा जा रहा है, जिस इसलाम धर्म की रोशनी से दुनिया एक बार प्रकाशमान हुई, उसको मिटाने के लिये आक्रमणों की आंधी आई हुई है।

जैन धर्मावलम्बी ख़तरे का सबसे ज्यादा असर अपने ऊपर समझ रहे हैं। उनकी संख्या घट रही है, उनके फ़लसफ़े पर हर कोई नुक्ताचीनी करने को तय्यार है। उनके साम्राज्य नहीं रहे, उनका वह रोब और रुतबा नहीं रहा, उनके अधिकार छीन लिये गये।

बौद्ध धर्म वर्षों से ख़तरे में पड़े हुए अपने अस्तित्व को फिर से सम्हाल रहा है। उसकी शिकायतों का बंडल शायद सबसे भारी है कि उस पर दूसरे धर्म वालों ने लगातार आक्रमण करके उसके अस्तित्व को ही मिटा देने का संकल्प कर लिया। जिस बुद्ध भगवान की मैत्री और दया के सिद्धान्त ने भारत का गौरव बढ़ाया, भारत के भाग्याकाश को चमकाया, उन्हीं के सिद्धान्तों को दूसरे धर्म वालों ने यहां से निकाल देने का प्रयत्न किया। इसी का तो फल आज यह देश भोग रहा है। उनके 'बौद्ध' धर्म के रहते हुए क्या देश की ऐसी हालत हुई होती ?

और पारसी, ईसाई तथा अन्य छोटे बड़े सभी 'धर्मों' का यही तो शोरग़ल है—'हमारे धर्म पर, हमारी संस्कृति पर ख़तरा। हमारे अधिकारों पर कुठाराघात; हमारे गौरव की अवहेलना,। इन्हीं सब की तो आवाज़ें हमारे कानों में दिन रात पड़ रही हैं। इसलाम की रक्षा और गौरव की वृद्धि के लिये, मुसलमान हिन्दुओं पर झपट रहे हैं, दिल खोलकर उन पर तरह तरह के अभियोग लगा रहे हैं, और पाकिस्तान बना रहे हैं; हिन्दुत्व की अक्षुण रक्षा के लिये और हिन्दू-संस्कृति के उत्थान के लिये हिन्दू मुसलमानों पर अभियोग लगाते हुए कभी थकते ही नहीं। हिन्दू, मुसलमान, जैन, सिख पारसी, ईसाई सब के धर्म डूब रहे हैं, सबको अपने धर्मों की रक्षा की पड़ी है, सब अपने अधिकारों और हितों की रक्षा के लिये बेचैन हैं; तब बेचारी राष्ट्रीयता और मानवता किस जगह खड़ी हो !

पर, मैं पूछता हूं, क्या सचमुच वास्तविक धर्म डूब गया है, या डूब रहा है, या कभी डूबने वाली चीज़ है भी वह ? ऐ हिन्दुओ, मुसलमानो और दूसरे धर्म के मानने वालो, अगर तुम्हें धर्म ही प्यारा है, उसी के लिए तुम बेचैन हो, तो तुम अपने इन हितों को छोड़ दो, अधिकारों को नष्ट हो जाने दो इस गौरव को मिट जाने दो, मूर्तियों, धर्म पुस्तकों और सारे मान सम्मान को नेस्त नाबूद हो जाने दो। धर्म की रक्षा का सच्चा रास्ता यही है।

———:०:———

नाज़ी शासन में यूरोप की भीतरी हालत

श्री जेम्ला पाज़नान्स्की

इस लेख के लेखक पोलैंण्ड के रहने वाले हैं। कई वर्ष तक आपने जिनेवा से निकलने वाले 'जर्नल दे नेशन्स' का सम्पादन किया है। यूरोप की हालत पर आज कल वैसे ही अन्धकार छाया हुआ है। लेखक ने जहां तहां से जुगाड़ कर यूरोप की स्थिति पर यह प्रकाश डाला है।

लड़ाई से पहले की बात है। इंगलिश चैनल पर गहरा कुहरा छाया हुआ था। स्टीमरों का आना-जाना बिलकुल बन्द होगया था। मुझे याद है उस दिन लन्दन के अख़बारों में मोटे शीर्षकों में छपा था—"यूरोप से सम्बन्ध टूट गया।" किसे पता था कि एक दिन आएगा, जब सच मुच वर्षों के लिए इंगलिस्तान से यूरोप का सम्बन्ध टूट जायगा।

इस वैज्ञानिक युग में जब कि चारों ओर रेल, तार, हवाई जहाज़ और रेडियो का दौर है; हमारे लिए यूरोप की सारी परिस्थिति रहस्य से ढंकी हुई है। वह उतनी ही रहस्य मय है, जितनी पिछली सदी में अफ्रीका की ज़िन्दगी थी।

कभी कभी प्रकाश की कुछ किरणें यूरोप के क्षितिज पर दिखाई देती हैं। इका दुका पत्रकार जर्मनी की सीमाओं को लांघ कर हमें वहां की थोड़ी बहुत कैफ़ियत देता है। एक और ज़रिया है, जिससे यूरोप की ख़बरें लन्दन पहुंचती हैं। मगर इसका भेद हमें ब्रिटिश सरकार नहीं बताती। मैं यहां जो चरचा करूंगा, वह ब्रिटिश सरकार की पाई हुई ख़बरों के आधार पर है। हिटलर का यूरोप आज किस तरह का जीवन बिता रहा है; इस लेख से शायद उस पर कुछ रोशनी पड़ जाय। जान गुन्थर ने कुछ पुस्तकें लिखी हैं, जिनका शीर्षक रखा है—"एशिया के भीतर और यूरोप के भीतर।" और मैं जान गुन्थर का सौजन्य प्रकट करते हुए अपने इस लेख का शीर्षक देना चाहता हूं—"भेद के भीतर।" फ्रांस की हालत इतनी अजीबो-ग़रीब है कि उस पर कुछ विस्तार से कह सकना नामुमकिन है। इसलिए यहां पर हम बाक़ी मुल्कों की ही चरचा करेंगे। हिटलर जिन सिद्धान्तों के अनुसार यूरोप पर हुकूमत करता है, उनमें प्रमुख दो हैं। पहला—पराजित देश के कच्चे माल पर पूरा क़ब्ज़ा जमाना। जिन जिन मुल्कों पर जर्मनी ने क़ब्ज़ा किया है, वहां का सारा कच्चा माल हटा कर जर्मनी भेज दिया।

दूसरा सिद्धान्त जिस पर जर्मनी ने हर मुल्क में अमल किया है, वह है पांचवें कालम का प्रचार। इन में मामूली हैसियत के ग़द्दारों से लेकर ऐसे प्रमुख देश भक्त भी हैं, जो अपने मुल्क को और अधिक ज़िल्लत और हानि से बचाना चाहते हैं। इसी क़ीमत पर वे जर्मन अधिकारियों को सहयोग दे रहे हैं। जर्मनी की चेष्टा यही है कि वह शासन का भार स्थानीय देश-वासियों के ऊपर ही डाले। इससे एक फ़ायदा यह होता है कि परदे की ओट में जर्मनी का सारा काम चलता रहता है और लोग यह समझते हैं कि उनके काम में बाधा नहीं पहुंचती। मध्यश्रेणी के व्यक्ति अपने व्यापार में मशग़ूल रहते हैं और उन्हें नाज़ियों

की रीति-नीति से कोई सरोकार नहीं रहता। अगर जर्मनी यह न करे, तो उसके लाखों सैनिक पराजित मुल्कों में व्यवस्था क़ायम रखने में ही फंस जांय। जर्मनी के रवय्ये में एक ख़ास बात यह है कि उसने पराजित मुल्कों में अपने शासन के कोई कट्टर सिद्धान्त नहीं बनाए। उसके शासन में एक अजीब लचीलापन है। कभी सख़्त कभी नरम। और उसकी यह सख़्ती और नरमी एक देश और दूसरे देश पर निर्भर नहीं करती; बल्कि पराजितों के रवय्ये पर निर्भर करती है। एक दिन उसकी बन्दूक की किरचें तनी हुई होती हैं और दूसरे दिन झुकी हुई दिखाई देती हैं।

डेनमार्क

हां, तो अब मैं आप को डेनमार्क की बात सुनाऊं। डेनमार्क के देश पर नाज़ियों ने बग़ैर युद्ध ही के कब्ज़ा जमा लिया। डेनमार्क में राजा और उसका मन्त्रिमण्डल दोनों ही को जर्मनी ने क़ायम रखा और बिला शुबहा यहां नाज़ी शासन सब से ज़्यादा उदार दिखाई देता है। आर्थिक दृष्टि से डेनमार्क का जितना शोषण किया जा सकता था, उतना नाज़ी कर रहे हैं। मगर शासन के मामले में वे मुश्किल से कोई दख़ल देते हैं। वहां के पुराने समाजवादी प्रधान मन्त्री श्री स्टानिंग अब भी प्रधान मन्त्री हैं। हां, परराष्ट्र सचिव का पद बेशक स्कावेनियस को दे दिया गया। स्कावेनियस अपनी जर्मन सहानुभूति के लिए प्रसिद्ध था। वहां के राजनैतिक दल अब भी ज्यों के त्यों क़ायम हैं। न तो वहां कोई जर्मन सिविल गवर्नर मुक़र्रर हुआ है और न सरकारी गेस्टापो। डेनमार्क की पुलिस अपने यहां के नाज़ी आन्दोलन कारियों को जब चाहे गिरफ़्तार कर सकती है और जर्मन अधिकारी कोई दख़ल नहीं देते। लन्दन में डेनमार्क वालों का जो दूतावास है, नाज़ियों ने उसे भी तोड़ने पर ज़ोर नहीं दिया। और वे लोग निजी मामलों में डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगेन की सरकार से बात चीत भी करते रहते हैं। डेनमार्क में आइसलैण्ड वालों का भी दूतावास है और आइसलैण्ड पर अंग्रेज़ों ने कब्ज़ा कर लिया है। मगर आइसलैण्ड की सरकार डेनमार्क में अपने दूतावास से बात चीत कर सकती है। ग़रज़ यह कि नाज़ी ज़ाहिरा तौर पर डेनमार्क की स्वतन्त्रता की इज्ज़त करते हैं।

मगर यह एक तमाशा है। क्योंकि डेनमार्क के अख़बारों और रेडियो स्टेशनों को जर्मनी के ख़िलाफ़ प्रचार करने की इजाज़त नहीं है। यदि जर्मनी अन्तिम तौर से लड़ाई जीत गया, तो डेनमार्क की यह स्वाधीनता क़ायम न रह सकेगी। क्योंकि नाज़ी सिद्धान्तों के प्रमुख प्रचारक अलफ्रेड रोज़ेनबर्ग ने साफ़ शब्दों में यह कहा है कि जर्मनी और स्केण्डेनेविया के देशों की संस्कृतियों में एक समन्वय हो जाना चाहिए। इस सांस्कृतिक समन्वय में डेनमार्क की स्वाधीनता का अन्त ही समझना चाहिये।

नार्वे

नार्वे की विजय के बाद नाज़ियों ने क्विसलिंग नामक एक नार्वेजियन नाज़ी को देश की बागडोर सौंपनी चाही। मगर जब उन्होंने देखा कि क्विसलिंग के साथ नार्वे की जनता की सहानुभूति नहीं है, तो उन्होंने वह इरादा छोड़ दिया। नाज़ियों ने नार्वे के प्रधान न्यायाधीश पालबर्ग की योजना को स्वीकार कर लिया। इस योजना के अनुसार नार्वे के नागरिकों के द्वारा चुनी हुई और सुप्रीम कोर्ट के द्वारा अनुमोदित प्रमुख नार्वेजियनों की एक शासन-समिति नार्वे पर शासन करेगी। इस तरह नार्वे के नरेश हाकन और नार्वे की सरकार के बीच के मतभेद को टाल दिया गया। नार्वे में इस विशुद्ध नार्वेजियन शासन के अतिरिक्त एक जर्मन सिविल अधिकारी भी है। इसका नाम हेर टरबोवेन है। यह हिटलर के ख़ास लेफ़्टिनेण्टों में एक गेस्टापो भी है। कुछ राजनैतिक गिरफ़्तारी भी हुई हैं। और एक लिबरल दैनिक पत्र को भी बन्द कर दिया गया है।

मगर अब शासन-समिति को तोड़कर एक स्टेट कौंसिल मुक़र्रर कर दी गई है। और गिरफ़्तारियां

हुई। ओसलो के एक शानदार होटल में बैठकर क्विसलिंग नार्वे में नाज़ी शासन क़ायम होने के सपने देख रहा है।

हालैण्ड

जर्मन अधिकारी सेस इनकार्ट ने जब हालैण्ड की बागडोर सम्हाली, तो डचों के प्रति उसने दोस्ताना मुहब्बत की क़सम खाई। दमन के नाम पर इक्का-दुक्का ही कोई काम किया गया। यहूदियों और शोसलिस्टों को भी अपने काम-काज करने की स्वाधीनता थी। बाद में इस बात की कोशिश की गई कि सब पार्टिएं तोड़ कर हालैण्ड में एक ही राजनैतिक दल हो जाय। लेकिन यह न हो सका। हालैण्ड में अख़बारों के ऊपर बहुत सख्त जर्मन नियन्त्रण है। हर अख़बार के दफ़्तर में सम्पादक के ऊपर एक प्रधान जर्मन सम्पादक नियुक्त कर दिया गया है। यहूदियों को सम्पादकों के दफ़्तरों से निकाल दिया गया है।

कहने को तो हालैण्ड में सारे सिविल अधिकारी डच हैं। शासन प्रबन्ध डच मिनिस्टर चलाते हैं; मगर नाज़ी बीच में काफ़ी दखल देते हैं। मसलन हेग के बर्गोमास्टर को उन्होंने बरखास्त कर दिया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे शासन प्रबन्ध में धीरे-धीरे डच नाज़ियों को भरते चले जा रहे हैं। प्रसिद्ध नाज़ी रोस्टवान टानिंगज़न को उन्होंने डच सोशलिस्ट पार्टी का सदर बना लिया है और एक दूसरे नाज़ी बुल्डन बर्ग को उन्होंने ट्रेड यूनियन का सभापति नियुक्त कर दिया। डच बिचारे ख़ामोशी के साथ अपने ही नाज़ी भाइयों का यह अधिकार सहते चले जा रहे हैं।

बेल्जियम

बेल्जियम का शासन हालैण्ड की ही तरह चल रहा है। चूंकि बहुत से बेल्जियम सिविल अधिकारी देश छोड़कर भाग गए हैं, इसलिए उन लोगों की जगह और लोगों के भी नियुक्ति की सम्भावना है। जर्मन अधिकारियों ने बेल्जियन फ़ासिस्टों को अपनी ओर कर लिया है। बेल्जियम में दो भाषाएं बोली जाती हैं, फ्रेंच और फ्लेमिश। नाज़ी फ्लेमिश ज़बान के हिमायती हैं। बेल्जियम के रेडियो स्टेशन से अब फ्रेंच ब्राडकास्ट बन्द कर दिये गए हैं और ख़ालिस फ्लेमिश प्रोग्राम रहते हैं। बेल्जियम में भी नाज़ियों की यह आकांक्षा है कि एक ही राजनैतिक दल संगठित हो जाय। बेल्जियम सोशलिस्ट पार्टी के पुराने सदर देमान बेल्जियम निवासियों को नाज़ी बनाने की फ़िक्र में हैं; मगर अभी तक उसे कामयाबी हासिल नहीं हुई।

चेकोस्लोवेकिया

इस मुल्क की कैफ़ियत बिलकुल दूसरी है। कहने को एक चेक सरकार है, जिसके सभापति श्री हाचा नामक एक चेक हैं। मगर वह सब दिखावा है। सारे यहूदी व्यापार पर जर्मन का क़ब्ज़ा हो गया। सुडेटन बैंकों का रुपया जर्मनी ने हड़प लिया। चेक देशभक्तों को जायदाद की ज़ब्ती से भी जर्मनों को ख़ासा लाभ हुआ है। डेढ़ लाख चेक मजदूरों को मजदूरी करने के लिए जर्मनी भेज दिया गया है। बोहेमिया में जर्मन क़ानून ही अमल में आता है। सारी बातों से यह मालूम हो रहा है कि जर्मनी इस कोशिश में है कि चेकोस्लोवेकिया में ख़ाली एक राजनैतिक दल यानी नाज़ी शासक-दल क़ायम हो जाय। चेक विश्वविद्यालय तोड़ दिये गए हैं। बहुत से माध्यामिक स्कूल भी बन्द कर दिये गए हैं। सैकड़ों विद्यार्थियों को गोली से उड़ा दिया गया है। जिस वक्त जर्मनी ने फ्रांस पर हमला किया, उस समय चेकोस्लोवेकिया में जर्मन एका-एक ख़ासे उदार हो गए। गेस्टापो ग़ायब हो गया और जर्मन अधिकारी बान न्यूरात हाचा की ख़ुशामदें करने लगा। चेक पुलिस को फ़ासिस्टों को दबाने की अनुमति मिल गई। मगर यह उदारता क्षणिक थी। फ्रांस की रीढ़ तोड़ने के बाद गेस्टापो फिर प्राग में दिखाई देने लगा।

चेकोस्लोवेकिया के तीन टुकड़े कर दिये गए हैं। बोहेमिया और मोराविया सीधा जर्मन अधिकार में

है। स्लोवेकिया नाम मात्र को स्वाधीन है। लेकिन स्लोवेकिया के मन्त्री तिसो और तुका जर्मनों के हाथों के हथियार हैं। सच पूछा जाय, तो जर्मनी के हाथों में स्लोवेकिया ताश का एक पत्ता है। ज़रूरत हुई तो हंगरी या सोवियत रूस को ख़ुश करने के लिए स्लोवेकिया की क़ुर्बानी की जा सकती है।

पोलैण्ड

सब में अधिक दुर्दशा पोलैण्ड की हुई है। नवम्बर १९३९ में हिटलर ने क़रीब आधे पोलैण्ड पर जर्मन हुकूमत का ऐलान कर दिया। न सिर्फ़ डांज़िग का कारीडार और अपर साइलेसिया पर ही क़ब्ज़ा कर लिया, बल्कि ऐसे हिस्सों पर भी अपनी हुकूमत जमाली, जिन पर कभी जर्मनी का अधिकार न था। लाज़ के इलाक़े में नब्बे लाख पोल और चार-पांच लाख जर्मन रहते हैं। मगर उसे भी शुद्ध जर्मन इलाक़ा घोषित कर दिया गया। शुद्ध जर्मन इलाक़े का मतलब है नब्बे लाख पोलों का देश निकाला। बड़े बड़े शहरों के पोल निवासियों को कुछ घंटों के नोटिस पर अपना शहर छोड़ देना पड़ा। उन्हें अपनी जायदाद भी पीछे छोड़नी पड़ी। इस जायदाद का उन्हें कोई मुआविज़ा नहीं मिला। सोवियत रूस ने ऐस्तोनिया, लेटविया और लिथुनिया से जिन जर्मनों को निकाला था, उन्हीं को लाज़ के इलाक़े में लाकर बसा दिया गया। मगर यह चन्द लाख जर्मन नब्बे लाख पोलों की जगह कैसे भरते। ग़रज़ यह कि गांव में पोल किसानों को ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया। यही तो लाखों मन गेहूं हिटलर को देंगे। पर धीरे धीरे हिटलर दक्षिण जर्मनी के किसानों को यहां बसने के लिए भेज रहा है। अब बाक़ी पोलैण्ड का हाल सुनिये। इसको 'गवर्न-जनरल' कहा जाता है। यहां हिटलर ने एक पोलिश सरकार क़ायम करने की कई बार चेष्टा की; पर एक भी स्वाभिमानी पोल उसे इस काम के लए न मिल सका। इस तरह पोलैण्ड पर सौ फ़ी सदी जर्मन हुकूमत है। जो पोल सरकारी नौकरियों में हैं, उनको जर्मनों के मुक़ाबले में बहुत कम तनख़्वाहें मिलती हैं। पोलों की पढ़ाई-लिखाई का कोई प्रबन्ध नहीं है। जब पोलैण्ड में पोलिश सरकार क़ायम न हो सकी, तो हिटलर ने उसे जर्मन 'रायस' में मिला लिया। इस तरह बहैसियत राष्ट्र के पोलैण्ड का अन्त हो गया।

पराजित मुल्क वाले अपने भाग्य की प्रतीक्षा उत्सुकता से कर रहे हैं, और आशा की जो सब से बड़ी किरण है, वह यह है कि पराजित देशों का आत्म-सम्मान अभी ज्यों का त्यों बना है।

दुनिया की राजनीति में ईरान की जगह

डाक्टर, लतीफ़ दफ्तरी

ईरान एक महान संस्कृति और सभ्यता का उत्तराधिकारी है। पिछली सदी में यूरोपीय राष्ट्रों के षड़यन्त्र ने ईरान के राजनैतिक महत्व को क़रीब क़रीब ख़त्म सा कर दिया था। मालूम होता था कि ईरान दुनिया की गई गुज़री हुई क़ौमों में से एक बन कर रह जायगी। लेकिन एकाएक पासा पलटा और आज ईरान का नाम दुनिया के आज़ाद मुल्कों में आदर से लिया जाता है। हालाकि ईरान सभ्यता के मौजूदा तरीक़े को अपनाने में तुर्की से बहुत पिछड़ा हुआ है। फिर भी भौगोलिक दृष्टि से उसका रुतबा बहुत महत्वपूर्ण है। पिछले तीन हज़ार वर्ष के इतिहास में ईरान ने कई बार मौत देखी है। मगर उसने मिटना नहीं जाना। हर शिकस्त के बाद वह अपनी ही ख़ाक से उभरा और उसके उभरने में भी एक ख़ास शान रही है। हमेशा उसने आश्चर्य जनक गति से तरक़्क़ी की है। एक शताब्दी पहले ईरान आज़ाद और ख़ुदमुख़्तार देश था। खाने पीने के लिये वहां यथेष्ट नाज पैदा हो जाता था और उसके कारीगर कला की सुन्दर से सुन्दर वस्तुएं तय्यार करते थे। बैठे बैठाए उसने रूस के ज़ार से अपना पुराना प्रान्त जार्जिया फिर से लेने के लिये युद्ध का ऐलान कर दिया। इस युद्ध में ईरान की हार हुई और उसके सर पर तुर्की मानज़ाई की अपमान जनक सन्धि लाद दी गई। उसे न सिर्फ़ हरजाना देना पड़ा, बल्कि अपनी आयात और निर्यात कर का पांच फ़ी सदी भी ज़ार को देने का वादा करना पड़ा। यूरोप के दूसरे मुल्कों ने भी ईरान के साथ अपने व्यापार में पांच फ़ी सदी आयात कर की कमी की मांग पेश की। १९ वीं सदी में लगातार मशीन का बना हुआ माल यूरोप से ईरान पहुंचता रहा। ईरानी कारीगर इसका मुक़ाबला न कर सके। वे अपने उद्योग-धन्धे छोड़कर खेती भी न कर सकते थे। आमदरफ़्त का ज़रिया न होने से खेती की बहुत सी पैदावार इकट्ठी पड़ी हुई थी। नतीजा यह हुआ कि निर्बल 'कज़ार' राजकुल के दिनों में ईरान धीरे धीरे अकाल और दरिद्रता का शिकार बनता गया। समाज की मध्यम श्रेणी का नाम निशान तक मिट गया। सारा व्यापार क़रीब क़रीब विदेशियों के हाथों में चला गया। मुल्क की आबादी बेहद घट गई। सन् १९०६ में ईरान में बग़ावत हुई। ईरान के शाह को संगठन-विधान और एसेम्बली की मांग क़बूल करनी पड़ी। किन्तु ग़रीबी से लोगों में पतन आ गया और रिश्वत का बाज़ार गर्म हो गया। राजनैतिक नेता किसी दिन अङ्गरेज़ों का पाउण्ड जेब में रखते थे, तो दूसरे दिन रूसियों का रूबल। १९०७ में ईरानियों के शोषण के सम्बन्ध में रूसियों और अङ्गरेज़ों में समझौता हो गया और ईरान के राजनैतिक सुधार ज्यों के त्यों पड़े रह गये।

पिछले महायुद्ध के दिनों में जब विल्सन ने राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का ऐलान किया था, तब ईरान को अपनी स्वाधीनता की थोड़ी बहुत उम्मीद हुई थी। किन्तु अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण और मालियत को संस्था न बना सकने के कारण वे युद्ध

की परिस्थिति से लाभ न उठा सके। युद्ध के अन्त में यह प्रश्न तो था ही नहीं कि ईरान को दुनिया के स्वतन्त्र राष्ट्र की श्रेणी में जगह मिले, बल्कि प्रश्न यह था कि ईरान को उपनिवेश बनाने के बाद उस पर किस यूरोपियन राष्ट्र की सत्ता प्रधान होगी—सब को मिलाकर, या चक्की के ऊपर के पाट यानी रूस अथवा स्थल-शक्ति की और या नीचे के पाट यानी अङ्गरेज़ या जल-शक्ति की।

लेकिन इन प्रश्नों का उत्तर देने का मौक़ा ही नहीं आया। अङ्गरेज़ों और रूस की प्रतिस्पर्धा ने ईरान की आज़ादी का द्वार खोल दिया। २७ जुलाई सन् १९१८ को ईरानी सरकार ने तमाम पुरानी सन्धियों के ख़ात्मे का ऐलान कर दिया। बोलशेविक रूस ने न सिर्फ़ ईरान के सर से अपमान जनक सन्धियों का बोझ ही हटा दिया, बल्कि ज़ार की सरकार के जितने क़र्ज़े ईरान पर थे, उन सब को छोड़ दिया। यही नहीं, उसने ईरान में जो व्यापारिक सुविधाएं उसे हासिल थीं, उन्हें भी छोड़ दिया। किन्तु इंगलिस्तान में स्वार्थ-त्याग का इतना माद्दा न था। अङ्गरेज़ों की बहुत सी पूंजी ईरान में लगी हुई थी; फिर उन्हें ईरान के रास्ते हिन्दुस्तान पर बोलशेविकों के हमले का डर था। कौशल और बल से उन्होंने १९१९ में ईरान से एक समझौते पर दस्तख़त करा लिये, जिसके अनुसार ईरान क़रीब क़रीब लन्दन का एक मातहत मुल्क बन गया। देशभक्त ईरानी अन्दर ही अन्दर इस सुलह के अपमान को महसूस करते रहे। २१ फ़रवरी सन् १९२१ की क्रान्ति ने एक राष्ट्रीय दल को ईरान की राजनीतिक शक्ति बना दिया। इस राष्ट्रीय दल ने अङ्गरेज़ों के सुलहनामे को फाड़कर फेंक दिया। ईरानी स्वतन्त्रता का यह पहला बिगुल था। ईरान का नेतृत्व इस समय एक शक्तिशाली नेता रज़ाख़ां के हाथों में था। रज़ाख़ां एक साधारण सैनिक था। सैनिक से बढ़ते बढ़ते वह युद्धमन्त्री हुआ, और बाद में प्रधान मन्त्री। १९२५ में उसे शहंशाह बनाकर ईरान के तख़्त पर बैठाया गया। रज़ाशाह ने पहलवी राजकुल की बुनियाद डाली।

रज़ाशाह के सामने तुर्की की मिसाल थी। उसके सामने देश की आन्तरिक स्वतन्त्रता और बाहरी स्वतन्त्रता का कार्यक्रम था। वह समझता था कि पच्छिमी कूट नीतिज्ञों का मुक़ाबला, वह पच्छिमी तरीक़ों से ही कर सकता है। उसने पहले अपने घर को दुरुस्त करने के प्रयत्न किये। उसने देश में संगठन और अनुशासन का प्रचार किया।

ईरान के नये सुधार

विदेशी रुकावटें दूर करके रज़ाशाह ने सबसे पहले देश में केन्द्रीय सत्ता को मज़बूत किया। सन् १८५० से बहुत से ज़िले ख़ुदमुख़्तार हो गये थे। इनको नियन्त्रण में लाने के लिये एक देशभक्त ईरानी फ़ौज की ज़रूरत थी। अब तक जो ईरानी फ़ौज थी, वह विदेशी अफ़सरों के मातहत थी, जिन पर किसी तरह का एतबार नहीं किया जा सकता था। नई सेना की मदद से रज़ाशाह ने सारे ईरान को अपने मातहत किया। विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले लोगों को छोड़कर, उसने हर एक के लिये दो साला फ़ौजी तालीम लाज़मी कर दी। उस समय से अब तक क़रीब १६०००० फ़ौज हो गई है, जिसके अफ़सर ईरानी हैं। इन अफ़सरों में क़रीब एक तिहाई लोगों ने जर्मनी और फ़्रांस में फ़ौजी तालीम पाई है। सन् १९२५ में ईरान की मजलिस ने एक क़ानून बनाया, जिसके मुताबिक़ पैदाइश, शादी और मौत की रजिस्ट्री लाज़मी कर दी। ज़ाब्ते की फ़ौज के अलावा क़रीब २५००० इन्तज़ामिया फ़ौज है। इन लोगों को अमनी कहते हैं। ये दो दो की क़तार में हल्का नीला यूनिफ़ार्म पहने ईरान के शहरों में नज़र आते हैं। ईरान की खाड़ी में उसकी एक छोटी सी जल सेना भी है। इसके अफ़सरों ने इटली में तालीम पाई है। ईरान के पास थोड़ी सी हवाई ताक़त भी है। सारी फ़ौज ख़ुद शाह के मातहत है। उस पर ईरानी पार्लिमेंट को कोई दख़ल नहीं। फ़ौज के पेशे को लोग बेहद पसन्द करते हैं। हर फ़ौजी सिपाही शाह का दाहिना हाथ समझा जाता है।

फ़ौजी सुधार के अलावा न्याय के मोहकमे में भी सुधार किये गये। १३ सौ वर्ष से इसलामी शरीअत के अनुसार क़ानूनी फ़ैसले होते थे। क़ानून की सारी किताबें अरबी ज़बान में थीं। १९२७ के शुरू में न्याय-मन्त्री ने तमाम पुराने न्यायालयों को भङ्ग कर दिया। क़ानून की नई किताबें अरबी की जगह फ़ारसी में लिखी गईं। माल की अदालतें, निजी जायदादों, समझौतों और अहदनामों की रक्षा करती हैं। नई परिस्थिति और क़ुरान की शिक्षा दोनों के समन्वय से नये क़ानून बने हैं। ताजीरात फ़ौजदारी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हामी है। ज़ाब्ता फ़ौजदारी से क़ुरान के दख़ल को बहुत कुछ हटा दिया गया है। व्यापारिक क़ानून देश की आर्थिक उन्नति को बढ़ाने वाले हैं। इनके मुताबिक़ हर कम्पनी को एकसा हिसाब रखना लाज़मी है।

शासन और शिक्षा सम्बन्धी सुधारों में ईरान ने फ्रान्स को अपना आदर्श बनाया। ईरानियों को फ्रान्स की संस्कृति से एक ख़ास प्रेम है। अनेक ईरानी नव युवक हर साल फ्रांस से तालीम लेकर वापस लौटते हैं। १९२२ के बाद से ईरान में स्कूलों की तादाद क़रीब क़रीब तिगुनी हो गई है। उद्योग-धंधों की तालीम को भी काफ़ी महत्व दिया जा रहा है। फ़ौजी तालीम के साथ साथ नागरिकता की शिक्षा भी दी जाती है। सोवियत रूस की तरह ईरान में बेशुमार रात्रि पाठशालाएं लगती हैं। इन रात्रि-पाठशालाओं का मक़सद न सिर्फ़ अशिक्षा दूर करना है, बल्कि जूनियर सरकारी अफ़सरों को तरक़्क़ी करने के लिए भी तालीम देना है। ऊंची शिक्षा के लिए इस्फ़हान और तेहरान में कालेज खुले हुए हैं, जिनमें पढ़ पढ़ कर लड़के ईरानी सिविल सर्विस में भर्ती होते हैं।

देश के आर्थिक सुधार

ईरान के पुराने उद्योग-धन्धे अनुन्नत दशा में पड़े हुए थे। विलायती माल ने देशी कारीगरी का क़रीब क़रीब गला घोंट दिया था। ईरान में सब में बड़ा कारख़ाना इस्फ़हान का एक पुतली घर है, जहां ५०० मज़दूर काम करते हैं। ईरान की सब में प्रमुख कारीगरी कम्बल है। ९५ फ़ीसदी इनमें बाहर चले जाते हैं। अमरीका में इन कम्बलों की काफ़ी खपत है। किन्तु जब से अमरीका ने इनकी बिक्री पर आयात कर बढ़ा दिया है, तब से ईरान को बहुत घाटा हुआ है। ईरान की ८० फ़ीसदी आबादी किसानों की है। मगर किसानों की हालत अभी तक वही जागीरदारी ज़माने की बनी हुई है। किसानों का ज़मीन पर कोई अधिकार नहीं है। उन्हें अपनी फ़सल का दो तिहाई हिस्सा ज़मीन्दारों को दे देना पड़ता है।

यूरोप के देशों की ज़बरदस्ती से ईरान को क़रीब ४५ वर्ष पहले अफ़ीम की खेती शुरू करनी पड़ी। १९२६ में अफ़ीम से कुल आमदनी का ७.५ फ़ी सदी नफ़ा होता था। १९२७ में ईरान की सरकार ने एक क़ानून बना दिया, जिसके मुताबिक बग़ैर परवाना लिए कोई अफ़ीम की खेती नहीं कर सकता था। नई ज़मीनों में अफ़ीम के पौधे लगाने की मनाही हो गई। बाज़-बाज़ ज़िलों में तो अफ़ीम की खेती की बिलकुल मुमानियत कर दी गई। तब से दिन ब दिन अफ़ीम की पैदावार घट रही है।

सन् १९३४ के बजट में ईरानी सरकार को २०.४ आमदनी निर्यात कर से, २२.४ चीनी, चाय और तम्बाकू आदि की खेती से और १७.६ विशेष व्यापार से। ख़र्च में ३१.४ फ़ौज और रक्षा के साधनों में और ५७.२ शासन प्रबन्ध में। ६० वर्ष तक लगातार चांदी के सिक्के के चलने के बाद १९३० में ईरान सरकार ने सोने के सिक्के का चलन अपनाया।

सन् १९२५ से ईरान की सरकार लगातार क़रीब एक करोड़ रुपया सड़कें बनाने में ख़र्च करती है। सड़कों के ऊपर महसूल लगा दिया है, जिसकी आमदनी से सड़क बनाने का ख़र्च चलता है। आमतौर पर लोग मोटर लारियों में सफ़र करते हैं; मगर ऊंट और गदहों के कारवां भी आते जाते दिखाई देते हैं। ईरान में रेलें बिछाने की कोशिश की गई। पर यूरोपीय राष्ट्रों की आपस की प्रतिस्पर्धा से यह काम आगे न बढ़ सका। रूसियों ने पिछले महायुद्ध के ज़माने

में अपनी सरहद से तबरेज़ तक रेलवे लाइन बनाई थी। और भारतीय रेलवे भी क़रीब ५२ मील ईरान की सरहद में गई। ईरान में सब से लम्बी रेलवे लाइन कास्पियन से ईरान की खाड़ी तक क़रीब १५०० किलो मीटर है। यह बन्दर गाज़ से बन्दर शापुर तक चली गई है। यह रेलवे पूरी तरह ईरानी इन्तज़ाम के मातहत है।

१० मई सन् १९२८ के दिन ईरान ने उन तमाम क़ानूनों को मिटा दिया, जिन के अनुसार ईरान के अन्दर विदेशियों को ईरानी नागरिकों की अपेक्षा-विशेष अधिकार मिले हुये थे। २५ फ़रवरी सन् १९३१ को ईरानी सरकार ने एक नया क़ानून बनाया, जिसके अनुसार दूसरे देशों के लिए यह लाज़मी हो गया कि वह उतनाही माल ईरान में अपने देशों से भेज सकते थे, जितना वे ईरान से ख़रीदते थे। आने जाने वाले माल के इस सन्तुलन से ईरान का जितना सोना बाहर जाता था, उतना ही उसे मिल जाता था। लेखा जोखा बराबर हो जाता था।

देश की सामाजिक उन्नति

ईरान की इस पुनर्जाग्रति का असर सब से अधिक लोगों पर पड़ा है। इसलाम का पुराना प्रभाव ख़त्म हो चुका था। इसलाम में अब वह गुण न रह गया था, जिससे ईरानी जनता एकता के सूत्र में बंधी रहती। राजनैतिक जाग्रति के साथ साथ यह ज़रूरी मालूम हुआ कि इसलाम के जर्जर बन्धनों को हटाकर देश-भक्ति को सामाजिक एकता का आधार बनाया जाय। रज़ाशाह ने एक सिरे से दूसरे सिरे तक मुल्क में दौरा किया। जनता में देशभक्ति और राष्ट्र-प्रेम का प्रचार किया। सन् १९२८ में विद्यार्थियों का जो पहला जत्था फ्रांस गया, उन्हें उपदेश देते हुए रज़ाशाह ने कहा—"फ्रांस एक ऐसा मुल्क है, जहां देश-भक्ति की बड़ी क़दर है। तुम फ्रांसीसियों से शिक्षा लेकर अपने मुल्क को उतनाही प्यार करना, जितना फ्रांस वाले अपने मुल्क को करते हैं।" सारे देश में एक सी ईरानी पोशाक का रिवाज भी डाला गया। सभी ईरानी पहलवी हैट लगाते हैं। जनता की तन्दु-रुस्ती की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। हालांकि औरतें अब भी बुर्क़ा पहनती हैं, फिर भी उनकी भीड़ 'काफ़े' और सिनेमा में काफ़ी दिखाई देती है। शाह ने इस बात का फ़रमान जारी कर दिया है कि कोई ईरानी विदेशियों से राहेरफ़ न रखे। शाह का कहना है कि इन विदेशियों के ही कारण ईरान की दुर्गति हुई। तेहरान में हर विदेशी शक और शुबहे की नज़र से देखा जाता है। धीरे धीरे तमाम विदेशी विशेषज्ञों को मुल्क से बाहर निकाल दिया गया। जून १९३४ में जिन अन्तिम विदेशी कस्टम अफ़सरों को विदा किया गया, वे बेल्जियन थे। इस समय कुछ थोड़े से फ्रांसीसी शिक्षा-विशेषज्ञ रह गए हैं। और कुछ थोड़े से जर्मन खेती-विशेषज्ञ।

ईरान की वैदेशिक नीति

इस तरह रज़ाशाह ने विदेशी असर से ईरान को मुक्त करके केन्द्रिय सत्ता को मज़बूत किया। ईरान को लेकर सोवियत रूस और अंग्रेज़ों में अपने प्रभाव को प्रमुख करने की काफ़ी कोशिश रही। सच पूछा जाय, तो ईरान एशिया का स्वीज़र लैण्ड है।

सोवियत रूस को ईरान और इसी तरह के पिछड़े हुए मुल्कों से काफ़ी मोहब्बत है। इन पिछड़े हुए मुल्कों की उन्नति से ही सोवियत के शत्रु साम्राज्यवाद का नाश होगा। सन् १९२१ में मास्को में सोवियत रूस, ईरान, तुर्की और अफ़ग़ानिस्तान में एक मैत्री की सन्धि हुई। सन् १९२५, १९२८ और १९३६ में इस सन्धि को फिर से दोहराया गया। रूस के आश्वा-सन की छाया में ही इन देशों ने अपने को पूरी तरह स्वतन्त्र समझना शुरू किया। दूसरी पंच वर्षीय योजना में यूराल के प्रान्त की औद्योगिक दृष्टि से काफ़ी तरक्क़ी की गई है। यूराल ईरान से लगा हुआ है। और ज़रूरत के दिनों में ईरान यूराल से अपनी आवश्य-कताओं की पूर्ति कर सकता है। मास्को में ईरानी संस्कृति और ईरानी सभ्यता की शिक्षा लेकर बहुत से प्रचारक रूस-ईरान की सरहद पर अपना प्रचार

करते हैं। निश्चित तौर पर सोवियत ईरान की आज़ादी का समर्थन करता है।

सन् १९२३ में लार्ड कर्ज़न इङ्गलैण्ड के वैदेशिक मन्त्री थे। उन्होंने कूटनीति में बोलशेविकों को पछाड़ने की काफ़ी कोशिश की। इस बात की काफ़ी होड़ रही कि ईरान बोलशेविकों के साथ रहता है या अंग्रेज़ों के। सन् १९२७ में सोवियत और ब्रिटेन के आपसी सम्बन्ध टूट गए। किन्तु वह सब एक इतिहास की बात है। हां, इस आपसी स्पर्धा में ईरान को लाभ ही रहा। ऐंग्लो-पर्शियन आयल कम्पनी के मामले का ईरान के हक़ में फ़ैसला होगया। अप्रैल सन् १९३३ में एक नया सुलहनामा हुआ, जिसके अनुसार ईरान को ७५,०००० पाउण्ड सालाना मिलना तै हुआ। इसके अतिरिक्त १० हज़ार पाउण्ड सालाना उन ईरानी विद्यार्थियों को देना तै हुआ, जो तेल निकालने की शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक थे। यह भी तै हुआ कि अंग्रेज़ों के पास १९९३ तक ईरानी तेल की खानों का ठेका रहेगा। अंग्रेज़ों ने करमान शाह में तेल की रिफ़ाइनरी खोल दी, जहां तेल की खानों से पाइपों के द्वारा तेल पहुंचाया जाता है। इसका नतीजा यह हुआ कि अब तक उत्तरी ईरान में, जो बाकू का रूसी तेल बिकता था, वह क़रीब क़रीब बन्द हो गया।

राजनीतिज्ञता में ईरान को जो सब में बड़ी सफलता मिली, वह अपने हमेशा के ज़बर्दस्त दुश्मन तुर्की को पक्के दोस्त के रूप में बदल देना। पिछले महायुद्ध के बाद दोनों देशों में काफ़ी झगड़े होते रहते थे। अन्त में सन् १९२९ में दोनों मुल्कों में एक सुलहनामा हो गया, जिसके अनुसार दोनो मुल्कों की सरहद बन्दी क़ायम हो गई। इसके बाद दोनो देशों में प्रेम का सम्बन्ध क़ायम हो गया। रज़ाशाह ने सन् १९३४ में कमाल अतातुर्क के निमन्त्रण पर तुर्की की यात्रा की। और उसके बाद मुस्तफ़ा कमाल ने अपनी ईरान यात्रा से इस प्रेम-सम्बन्ध को दोहराया।

अफ़ग़ानिस्तान से ईरान को ख़दशा नहीं। अफ़ग़ानिस्तान पहले एक मुद्दत तक ईरानी साम्राज्य का ही अंग था। वहां की सरकारी लिपि और भाषा फ़ारसी ही है। सरहद को लेकर दोनो देशों में १९२१ तक कुछ मनमुटाव रहा। किन्तु मुस्तफ़ा कमाल के दख़ल देने पर दोनो देशों में समझौता हो गया। तेहरान से काबुल का रास्ता मोटर लारी से कुल एक हफ़्ते का है। और दोनों शहरों के यात्रियों की काफ़ी आमदरफ़्त होती है।

सब में अधिक परेशानी ईरान को, जिस मुल्क से हो रही है, वह है इराक़। दोनों की सरहद का बहुत दिनों तक कोई फ़ैसला नही हुआ था। अरसे तक झगड़े चलते रहे। पर अन्त में तुर्की की पंचायत पर आपसी फ़ैसला हुआ।

दुनिया की राजनीति में ईरान का महत्व

तुर्की, ईरान अफ़ग़ानिस्तान इस समय एक अभेद्य दीवार की तरह मिलकर खड़े हुए हैं। यदि मौजूदा महायुद्ध ने मध्य-पूर्व की राजनीति में दख़ल दिया, तो यह तीनों मिलकर उसका मुक़ाबला करेंगे। रूस में चाहे सोवियत प्रणाली ही क्यों न हो; किन्तु उसकी नज़रों में ईरान का एक भौगोलिक महत्व है। कास्पियन रूस की ही झील है। हालाकि पहलवी का बन्दरगाह रूस ने ईरान को लौटा दिया है। अंग्रेज़ों के साथ युद्ध की सूरत में रूस के लिए ईरान खुश्क स्वेज़ नहर का काम देगा। ईरान की रज़ामन्दी होना न होना यह मौक़े की बात है।

इंगलिस्तान भी ईरान के भौगोलिक महत्व को नज़रअन्दाज़ नहीं कर सकता। ईरान पर यदि उसका असर रहेगा, तो अफ़ग़ानिस्तान को भी दबा सकता है, इराक़ के हवाई जहाज़ के अड्डे की भी हिफ़ाज़त कर सकता है, बाकू में सोवियत की तेल की खानों पर भी गोलाबारी कर सकता है और रूसी तुर्किस्तान की तरफ़ से हमलों की भी चौकसी कर सकता है। लड़ाई शुरू होने के पहले ही अंग्रेज़ यह समझ रहे थे कि स्वेज़ नहर का रास्ता उनके लिए क़रीब-क़रीब

बन्द हो जायगा। और उन्होंने ख़ुश्की के रास्ते की तय्यारी कर ली थी। चुनांचे माल्टा के जहाज़ी अड्डे की ताक़त को हटा कर हैफ़ा के बन्दरगाह में इकट्ठा कर दिया था। इसके साथ ही साथ उन्होंने अकबा की फ़ौजी छावनी को बढ़ा दिया था और लाल सागर को बग़दाद से जोड़ने वाली रेलवे लाईन बिछा दी थी। इंगलैण्ड ने सारी तय्यारियां कर ली थीं, जिनसे फ़िलिस्तीन और ट्रांसजोर्डन में क़िले बन्दी करके वह अपने मध्यपूर्व और हिंदुस्तान की ओर जर्मनी और इटली के बढ़ने को रोक सके।

इस युद्ध की चाहे जो कैफ़ियत हो, बहरहाल ईरान को अपनी सरहदों की काफ़ी चौकसी रखनी पड़ेगी। इसमें भी कोई शक नहीं कि ईरान का बच्चा-बच्चा अपने वतन के लिए मर मिटने को तय्यार रहेगा। रज़ाशाह ख़ामोशी और सतर्कता के साथ यूरोप के शतरंज के मुहरों की चालों को देख रहे हैं।

ऐक्य-गीत

श्री बाबूलाल भार्गव, बी० ए०, बी० टी०, एम० आर० ए० एस०

है नादानों का यह विचार, हम हिन्दू हैं—वे मुसलमान;
हम एक नाव के साथी हैं, है एक हमारा आसमान।

हम इसी देश में जन्मे हैं, हम इसी देश में साथ रहे;
हम एक साथ खेले कूदे, हमने सुख दुःख भी साथ सहे।

जैसा हमको वैसा उनको, है वही सूर्य देता प्रकाश;
बिजली बादल यकसां हमको, करते प्रमुदित अथवा निराश।

दीपक देते यकसां प्रकाश, झिल मिल होते नभ तारे हैं;
है रूप रङ्ग औ गठन, भाव भाषा सब एक हमारे हैं।

वे जिसको कहते हैं रहीम, वह ही तो राम हमारा है;
है दोनों पर प्रभुता उसकी, वह सारे जग से न्यारा है।

है शुभ्र ज्योत्स्ना छिटक हमें, शीतलता देनी उन जैसी;
दोनों हिल मिल कर एक रहें, हम रखें भावना ही ऐसी।

बापू के प्रति

श्री सोहनलाल द्विवेदी

तुम युग युग की रूढ़ियाँ तोड़, रचते रहते नित नई सृष्टि,
उठती नव - जीवन की नीवें, ले नव-चेतन की दिव्य दृष्टि,
धर्माडंबर के खँडहर पर, कर पद प्रहार, कर धराध्वस्त,
मानवता का पावन मंदिर, निर्माण कर रहे, सृजन - व्यस्त,

बढ़ते ही जाते दिग्विजयी !
गढ़ते तुम अपना राम राज,
आत्माहुति के माणिक - मणि से
मढ़ते जननी का स्वर्ण - ताज।

तुम काल चक्र के रक्त सने, दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़
मानव को दानव के मुंह से, ला रहे खींच बाहर, बढ़ बढ़,
पिसती कराहती जगती के प्राणों में भरते अभयदान,
अधमरे देखते हैं तुमको, किसने आकर यह किया त्राण ?

पद सुदृढ़, सुदृढ़ कर संपुट से,
तुम काल चक्र की चाल रोक,
नित महाकाल की छाती पर,
लिखते करुणा के पुण्यश्लोक !

कँपती मिथ्या, कँपता असत्य, बर्बरता कँपती है थर - थर,
कँपते सिंहासन - राजमुकुट, कँपते खिसते आते भूपर,
हैं अस्त्र - शस्त्र कुंठित - लुंठित, सेनायें करती गृह-प्रयाण,
रणभेरी बजती है तेरी, उड़ता है तेरा ध्वज - निशान !

हे युग स्रष्टा, हे युग द्रष्टा,
पढ़ते कैसा यह मोक्ष - मंत्र !
इस जीर्ण राष्ट्र के खँडहर में
उगता अभिनव भारत स्वतंत्र !

इस दिल को ज़रा तो नर्म करो

श्री 'सईद'

(१)

तुम राम कहो, वे रहीम कहें, दोनों की ग़रज़ अल्लाह से है ;
तुम दीन कहो, वे धर्म कहें, मन्शा तो उसी की राह से है ;
तुम इश्क़ कहो, वे प्रेम कहें, मतलब तो उसी की चाह से है ;
वे योगी हों, तुम सालिक हो, मक़सूद दिले आगाह से है ;
क्यों लड़ता है, मूरख बन्दे ! यह तेरी ख़ामख़याली है !
है पेड़ की जड़ तो एक वही, हर मज़हब डाली डाली है !

(२)

बनवाओ शिवाला या मसजिद, है ईंट वही, चूना भी वही ;
मेमार वही, मज़दूर वही, मिट्टी है वही, गारा है वही ;
तकबीर का जो कुछ मतलब है, नाक़ूस का भी मन्शा है वही ;
तुम जिनको नमाज़ें कहते हो, हिन्दू के लिये पूजा है वही ;
फिर लड़ने से क्या हासिल है ज़ीफ़ह्म हो तुम, नादान नहीं !
जो भाई पे दौड़ें गुर्रा कर, वह हो सकते इनसान नहीं ! !

(३)

क्या क़त्ल व ग़ारत ख़ूँरेज़ी, तारीफ़ यही ईमान की है ?
क्या आपस में लड़कर मरना, तालीम यही क़ुरआन की है ?
इन्साफ़ करो तफ़सीर यही क्या वेदों के फ़रमान की है ?
क्या सचमुच ये ख़ूंख़ारी ही आला ख़सलत इन्सान की है ?
तुम ऐसे बुरे आमाल पर अपने, कुछ तो ख़ुदा से शर्म करो !
पत्थर जो बना रक्खा है 'सईद', इस दिलको ज़रा तो नर्म करो !

अमर शहीद गनेशशङ्कर विद्यार्थी

[बलिदान २५ मार्च सन् १९३१, चार बजे शाम]

श्री इन्दुमती गोयनका के नाम गनेशजी का अन्तिम पत्र

······पुलिस का ढङ्ग बहुत निन्दनीय है। अधिकारी चाहते हैं कि लोग अच्छी तरह से निपट लें। पुलिस खड़ी खड़ी देखा करती है। मसजिद और मन्दिर में आग लगाई जाती है। लोग पीटे जाते हैं और दूकानें लूटी जाती हैं। मैंने अपनी आंखों से अधिकारियों की उपेक्षा को देखा है। अधिकारियों को तो यह ईश्वरदत्त अवसर प्राप्त हुआ है। वे इस पर सन्तुष्ट हैं। ईश्वर उनके इस सन्तोष को भङ्ग करे, इस बात को सभी भले आदमी चाहेंगे।

'प्रताप' कार्यालय
कानपुर २५-३-३१

विनीत
गनेशशङ्कर विद्यार्थी

तुलना

वाल्ट ह्विटमैन

निहित तुझ में जग का अपमान
बना तू आज सज़ा का पात्र;
सभी तोड़े निर्मित बन्धन
हँसी जग की तेरा क्रन्दन!
बना तू पतन पाप की खान
आज तेरा है न्याय-विचार;
चोर डाकू है तू प्रच्छन्न
हमारी तेरी श्रेणी भिन्न!
करों में लौह-शृङ्खला पड़ी
गले में पड़ा हुआ है तौक;
जेल में तनहाई में बन्द
पड़ा रोता है तू मति मन्द!
किन्तु यह कैसा न्याय-विचार
न मुझ पर जुर्म न मुझको सज़ा;
न मेरे हाथों में हथकड़ी
न मेरे तौक गले में पड़ी?
वासना की ओ जलती आग
हाट में लेकर यह शृङ्गार,
रजत के मोल बेचती देह
न मर्यादा का कुछ अवलेह?
अरी ओ रूप नगर की भ्रान्ति
पाशविकता का नङ्गा नाच;
अरी वेश्या दुनिया से भिन्न
पतन में तेरा चित्त न खिन्न?
किन्तु है यह आश्चर्य महान
कर रहा मैं तेरा अपमान;
बता मुझ में तुझ में क्या भेद
न तुझमें लाज न मुझ में खेद!
अरे ओ मेरे भक्त-समाज
समूचा मेरा जीवन श्राप;
आज स्वीकार करूंगा पाप
न मेरे मन में कुछ सन्ताप!

अस्थि पञ्जर में मेरे सखे
सुलगती घोर नरक की आग ;
पाप से मेरा आतप भाल
काँप उट्ठोगे सुनकर हाल !
वासनाएं जीवन से बँधीं
हँसी में छुपा भयङ्कर ज़हर ;
पतन के पथ का हूँ मैं पथिक
सखे, सुनकर क्यों होते चकित ?
उसी श्रेणी का हूँ मैं एक
कि जिसमें पतिता हैं औ पतित !
उन्हें मैं कैसे दूंगा श्राप ?
कि जिनका अङ्ग स्वयं मैं आप !

सीमित असीम

श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

यह जीवन हार न, अमर जीत !
छोटी-सी पृथिवी, मैं महान
छिछला-सा सागर, मैं अगाध
तृण में जग की कामना बन्द
मेरी निर्बन्ध असीम साध !
यह नीलाम्बर लघु बिन्दुमात्र
मेरा स्वरूप कल्पनातीत।
जल-जल कर बनता निर्विकार
मेरी ज्वाला में अंधकार,
मेरे हिम से गल अचल-प्रांत
बहता बन पावन-सलिल-धार ।
मैं अवधि-बाध अब चुका तोड़,
अभिशाप स्तब्ध, भ्रम खड़ा भीत।
मैं अंश नहीं, हूँ पूर्ण आज
विस्तार चाहता युगासीन,
मेरी श्वासों में महाश्वास
मेरी चितवन में प्रलय लीन।
पल-भर में मैंने लिया खोज
सदियों का खोया स्वर्ण-गीत;
यह जीवन हार न, अमर-गीत।

वैषम्य

—:o:—

विश्वम्भरनाथ

—o⁐o—

यहां

अचानक शायद दैवी योग
प्रथम जब पलकें मेरी खुलीं;
भृत्य थे, था इक महल विशाल
ऐश के थे सारे सामान;
पिता का पाया लाड़ दुलार
मिली माता की ममता सदा;
दूध के कुल्ले मैंने किये
स्वर्ण के चम्मच मुंह में लिये;
सम्पदा बिखरी छाई पड़ी
प्रफुल्लित हंसता था सौभाग्य।

वहां

वहीं थी तृण की कुटिया एक
खिली उसमें नन्ही सी कली;
प्रफुल्लित मां का मुखड़ा हुआ
पिता के ओठों में थी हंसी;
कलेजे का था टुकड़ा किन्तु
न था मां के स्तन में दूध!
अभागे तीनो प्राणी सदा
तड़पते थे रोटी के लिये!
ग़रीबी का दृढ़ आलिङ्गन
फूट कर रोता था दुर्भाग्य!

युक्ति

न स्वेच्छा, औ न अत्याचार
कहीं अति दूर अर्ष के बीच;
बहुत बूढ़ा सा परमेश्वर—
हमारा करता न्याय विचार?

मृत्यु-पर्व

'विनोद'

(१)

उठ रहा तूफ़ान भीषण, व्योम में छाई ललाई।
दश दिशाओं को कंपाती गूंजती हुंकार आई।
आज मानस में प्रमन्थन चित्त लोडित हो रहा है।
विश्व-पीड़ा-सिन्धु में विश्वास संज्ञा खो रहा है।
विकट बन्धन-बेड़ियों की,
शृङ्खलाएं टूटती है।
वन्हि अन्तर की धधक,
ज्वालामुखी सी फूटती हैं।

(२)

काल मानो आज खुलकर मृत्यु-पर्व मना रहा है।
रुद्र डमरू डिमडिमाता प्रलय मंगल गा रहा है।
जल रहे प्रासाद चहुँदिक घोर हाहाकार छाया।
नाश की दारुण घड़ी में कौन है अपना पराया?
प्रबल उल्का पात हैं,
प्रलयंकरी ज्वाला जगी है।
क्रान्ति की इन लोल लपटों में—
रसा जलने लगी हैं।

(३)

जाय जल विश्वास वह, जिससे मनुजता है विभाजित।
बन्ध वह गल जाय, जिससे प्रेम मानव का पराजित।
भक्ति वह छुट जाय, जिसमें भ्रमित है मति आत्मा की।
शक्ति वह मिट जाय, जिसमें रुद्ध है गति आत्मा की।
ज्ञान - अभिनव - लोक में,
नव - जगत का निर्माण होए।
प्रेम में जन-मन रंगे—
सुख-दुःख का सन्ताप खोए।

भारतीय चीनी मिट्टी

प्रो० मनोहरलाल मिश्र, एम० एस-सी०, एल-एल० बी०

मिट्टी के बर्तनों का उपयोग संसार में मानव इतिहास के आरम्भ ही से चला आता है। शुरू का इनसान ज़मीन की सतह से या नदी के किनारों से मिट्टी लेकर किसी पत्थर पर फैला लेता था। उसे पैरों व हाथों से गूंद कर, अपनी मोटी बुद्धि के अनुसार उसके बर्तन बनाकर उन्हें धूप में सुखा लेता था। बाद में वह उन्हें आग में भी पकाने लगा। धीरे-धीरे दुनियाँ में कुम्हार के चक्के का इस्तेमाल शुरू हुआ। विद्वानों की राय में कुम्हार का चक्का हज़रत ईसा से कम से कम छः हजार वर्ष पहले ईजाद हुआ। प्राचीन मिश्र, प्राचीन सुमेर, मेसोपोटामिया, इलाम, सुसा और महंजो-दड़ो में जो आज से ५,००० वर्ष पुराने मिट्टी के बर्तन खुदाई से निकले हैं, वे कुम्हार के चक्के पर ही बनाये गये हैं। मनुष्य स्वभाव से ही कलापूर्ण है। उसने इन मिट्टी के बर्तनों पर तरह तरह की चित्रकारी और बेल-बूटे बनाने शुरू किये। प्राचीन काल में मिश्र और सुमेर वालों ने मिट्टी के बर्तन बनाने की कला में बेहद उन्नति की थी। लचीली मिट्टी को पकाकर पत्थर सा मज़बूत कर लेना, उसमें तरह तरह के रंग और रोगन देना, उसमें ऐसे पदार्थ मिलाना, जिससे बर्तन चमकने लगें, इस्तेमाल तथा सजावट के सामान और सुन्दर धार्मिक मूर्तियां तथा दृश्य आदि बनाने में आज से पांच हज़ार वर्ष पूर्व के मिश्रियों और सुमेरियों ने कमाल हासिल कर लिया था। उस समय के बर्तन अजायब घरों में देख कर दांतों तले उंगली देनी पड़ती है और दर्शक हैरत से पूछने लगता है कि ये बर्तन किसी मौजूदा आर्ट स्कूल के बनाये हुए तो नहीं हैं? बाद के काहिरा, सिकन्दरिया, दमिश्क और अनातोलिया आदि के मुसलमान कुम्हारों ने मिस्री और सुमेरी कला को पुनरुज्जीवित करने की कोशिश की। इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के विद्वान लेखक के अनुसार वर्तमान यूरोप की चीनी मिट्टी की कारीगरी पर मुसलमान कारीगरों का स्पष्ट प्रभाव है।

महंजो-दड़ो और हड़प्पा में मिट्टी के जो सुन्दर रंगीन और चमकदार बर्तन मिले हैं, उनमें इस्तेमाल के बर्तन तथा सजावट के सामान दोनों हैं। हड़प्पा में तो मुर्दों को बड़े बड़े विशालकाय हंडों में बन्द करके ही दफ़न किया जाता था। तक्षशिला, सारनाथ और नालन्दा की खुदाई से भी हमें मिट्टी के सुन्दर पदार्थ और मूर्तियां मिली हैं।

किन्तु कला और व्यावसायिक दृष्टि से मिट्टी के बर्तन, मिट्टी के सजावट के सामान और मिट्टी की मूर्तियाँ आदि बनाने में जितनी उन्नति चीन ने की उतनी किसी देश ने नहीं की। हज़ारों वर्ष तक चीनियों की शुमार दुनियाँ के सर्वोत्तम कुम्हारों में की जाती थी। चीनियों से ही दुनियाँ ने रंग बिरंगी चमदार पाटरी के अलावा स्फटिक सी सफ़ेद रंग की चमदार पाटरी बनाना सीखा।

सोलहवीं सदी तक यूरोप में मिस्र, ईरान, शाम, चीन और जापान के चीनी मिट्टी के बर्तनों से यूरोप के बाज़ार भरे रहते थे। ये बर्तन यूरोप के अमीरों की शान को बढ़ाते थे। यूरोप में सब से पहले चीनी पोर्सिलेन बर्तनों की नक़ल पर फ्लोरेन्स में सन् १५६५-८५ में सफ़ेद चीनी मिट्टी के बर्तन बनाने की कोशिश की गई। सच पूछा जाय, तो इस समय पहली बार यूरोप में चीनी मिट्टी की कला का प्रारम्भ हुआ। किन्तु १९वीं सदी तक यूरोप के बने हुए पोर्सिलेन चीनी मिट्टी के बर्तन चीन देश के आये हुए बर्तनों का न कला की दृष्टि से और न व्यवसाय की दृष्टि से ही कोई मुक़ाबला कर सके। बीसवीं सदी के प्रारम्भ से यूरोप और अमेरिका ने अपने बड़े-बड़े कारख़ानों में चीनी मिट्टी के सुरुचिपूर्ण बर्तन बड़ी मिक़दार में बनाने प्रारम्भ किये। आज यूरोप में चीनी मिट्टी के बर्तनों की जो कुछ भी तरक्की है, वह वास्तव में केवल २५ वर्ष की ही तरक्क़ी है। किन्तु अब भी पतलेपन, सादगी, सफ़ाई और सस्तेपन में यूरोप और अमेरिका के कारीगर जापानी कारीगरों का मुक़ाबला नहीं कर पा रहे हैं।

भारतवर्ष में चीनी मिट्टी बहुतायत से पाई जाती है। यह स्थान-स्थान से खोदकर निकाली और काम में लाई जा सकती है। यहां की चीनी मिट्टी सामान्यतया अच्छी होती है और थोड़े से संशोधन से ही संसार के अन्य देशों में पाई जाने वाली अच्छी से अच्छी चीनी मिट्टी से वह सब बातों में टक्कर ले सकती है। इतना होते हुये भी हमारा यह दुर्भाग्य ही है कि अपने देश में मिलने वाली और हर प्रकार के उपयोग में आने वाली चीनी मिट्टी के विषय में हमारा ज्ञान बहुत ही कम हो। हमारे देश में कितने ही स्थान ऐसे हैं, जहां उच्च से उच्च कोटि की चीनी मिट्टी मिलना सम्भव है। पर हम अभी तक यह नहीं जानते कि ये स्थान कहां हैं। इसी प्रकार कितने ही स्थान ऐसे हैं, जहां हम जानते हैं कि उत्तम प्रकार की चीनी मिट्टी पाई जाती है। पर ऐसे स्थानों की चीनी मिट्टी का उपयोग नहीं हो रहा है। ये स्थान बेकार ही पड़े हैं। इन स्थानों की चीनी मिट्टी को उपयोग में लाने की ओर हमारा ध्यान कदाचित् ही गया हो। ऐसे स्थानों की चीनी मिट्टी बेकार ही पड़ी हुई किसी विदेशी का मुंह ताक रही हैं कि वह आकर उनका जन्म सार्थक करे। जो मिट्टियां उपयोग में लाई जा रही हैं, उनका दुर्भाग्य इसी में है कि वे अपने ही देश में होकर, अपने ही स्वजनों द्वारा खोदी जाकर, अपने ही स्वजनों द्वारा उपयोगी वस्तुओं में परिणत होकर और अपने ही स्वजनों के उपयोग में आते हुए भी विदेशियों की ही जेब में पैसा भरती हैं।

भारतवर्ष एक बहुत ही बड़ा देश है और ऐसे देश में भू-गर्भ सम्बन्धी खोज करना और खनिज पदार्थों के औद्योगिक महत्व को मनन कर उनसे व्यावसायिक स्वार्थ-साधन की चेष्टा करना हंसी खेल नहीं है। चीनी मिट्टी के बारे में अभी तक जो कुछ भी किया गया, वह नगण्य ही है। कुछ इने गिने स्थानों की खोज तथा वहां पाई जाने वाली मिट्टी के कुछ थोड़े से गुण जानने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हुआ है। यदि किसी स्थान विशेष पर चीनी मिट्टी निकालने का कार्य आरम्भ किया जाय और उससे सामान्य व्यवहार में आने वाली उपयोगी वस्तुएं तय्यार की जांय, तो क्या-क्या करना होगा, कितनी पूंजी लगेगी, आदि प्रश्नों पर प्रकाश ही नहीं डाला गया है। इसका एक मात्र कारण हमारी पराधीनता है। इस बारे में विदेशी शासन की रीति नीति सदा से ही विपरीत रही है। यदि विदेशी लोग हमारी मूर्खता से फ़ायदा उठायें, तो दूसरों की मूर्खता से लाभ उठाना तो दुनिया का ही क्रम है। इसलिये हमें उन्हें भला बुरा न कहकर अपनी ही मूर्खता को हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि हम अपनी मूर्खता की कोठरी से बाहर-निकल आयें, तो सारे संसार को इस बात का ज्ञान हो जायगा कि भारतवर्ष निरा कृषि प्रधान देश ही नहीं है। भारतवासी केवल किसान ही नहीं हैं। वे भी दुनिया के दूसरे देशों के साथ व्यापार, कला-कौशल तथा दूसरे कार्यों में अपना कौशल दिखाने की प्रतियोगिता में

भाग ले सकते हैं। इतना ही नहीं वे इस दौड़ में बाज़ी जीतने का भी दावा कर सकते हैं।

धार्मिक और सामाजिक अन्ध विश्वासों के कारण हिन्दू घरों में चीनी मिट्टी का उपयोग बहुतायत से न हो सका। इससे हिन्दुस्तानी कुम्हार की सारी शक्ति अचार और मुरब्बों के लिये मर्तबान बनाने की ओर ही लग गई। चीनी मिट्टी के खाने-पीने के बर्तन बनाने का एकदम अभाव ही रह गया।

मुस्लिम शासन-काल में भारतवर्ष में मसजिदों और मक़बरों में रङ्गीन चमकदार चीनी मिट्टी की टाइलें लगाने का रिवाज चला। दक्षिण भारत में मिट्टी के तरह-तरह के बर्तन बनाने का अपना अलग ही तर्ज़ रहा। पुराने समय में मिट्टी के बर्तन बनाने में दक्षिण भारत ने जितनी तरक्क़ी की उत्तर भारत ने उतनी नहीं की।

मिट्टी के बर्तन बनाने वालों को आमतौर पर दो वर्गों में बांटा जा सकता है। एक गांव का कुम्हार, जो सादे बर्तन बनाता है, जिनमें न तो चमक होती है और न पालिश। दूसरा कूज़ागर कहलाता है। यह चमकदार और कलापूर्ण बर्तन तय्यार करता है। दक्षिण भारत में वेलोर के बर्तनों को छोड़कर रोग़नी और चमकदार मिट्टी के बर्तन बनाने का रिवाज भारत में मुसलमानों के समय से ही शुरू हुआ।

सादी मिट्टी के बर्तन सारे भारतवर्ष में बनते हैं। बाज़-बाज़ जगह तो वे इतने पतले बनाये जाते हैं कि लोग उन्हें काग़ज़ी बर्तन कहते हैं। इस तरह के बर्तन गुजरानवाला, बहावलपुर, और अलवर में अधिकता से बनते हैं। बाज़-बाज़ जगह भट्टी जलाने के पहले ज़मीन पर उङ्गलियों से तरह-तरह की डिज़ाइन बना लेते हैं। इस क्रिया में अलीगढ़ के कुम्हार बहुत मशहूर हैं। सीवान, खुलना, आज़मगढ़, चुनार, रत्नागिरी, मदुरा और तवाय (बर्मा) में काले रङ्ग के बड़े सुन्दर चमकीले बर्तन बनते हैं। इनमें ज़रा-सा सुधार करके इन्हें और भी अधिक कलापूर्ण बनाया जा सकता है। बर्तनों पर रोग़न करने के लिये राजपूताना मशहूर है। दक्षिण भारत में लाल रङ्ग का उपयोग किया जाता है। लखनऊ में टेराकोट्टा मिट्टी से सुन्दर-सुन्दर खिलौने और मूर्तियां बनने लगी हैं। इनको देखकर पुराने यूनान की तंगारा मूर्तियां नज़रों में घूम जाती हैं।

भारतवर्ष में रङ्गीन बर्तनों की सबसे मशहूर जगहें पेशावर, जलन्धर, होशियारपुर, झज्जर, पिण्डदादख़ान, गुजरानवाला, रावलपिण्डी, बहावलपुर, लाहौर, अमरोहा, लखनऊ, उतरौला, सीतापुर, कोटा और सेलम हैं। पकाने के बाद बर्तनों पर रङ्ग किया जाता है। भारतवर्ष में यही कला धार्मिक मूर्तियों के बनाने और मन्दिरों की दीवारों पर पौराणिक चित्र अंकित करने के उपयोग में प्राचीन काल से लाई जाती है। यही कला मुसलमानों के भारत में आने के बहुत पहले से प्रचलित थी। बर्तनों के अधिकतर नमूने हिन्दू-काल के हैं और कुछ मुसलिम काल की ईजाद हैं। कुछ नमूने तो ख़ास-ख़ास मुसलिम राजकुलों के समय से ही चले हैं। शाहाबाद ज़िले में सहसराम की बर्तनों की कला हिन्दू और मुसलिम कला का बड़ा सुन्दर समन्वय है। यह दोनों से भिन्न किन्तु दोनों से उन्नतर है।

मिट्टी के चमकदार बर्तन बनाने की कला भी भारतवर्ष में कई तरह की है। पेशावर में सफ़ेद बर्तनों पर हल्का हरा या गुलाबी रङ्ग देते हैं। दिल्ली और जयपुर के मिट्टी के बर्तन फेल्सपार, गोंद और बुरादा मिलाकर बनाये जाते हैं। इसी कारण वे कुम्हार के चक्के पर नहीं बन सकते, उन्हें हाथ से बनाना पड़ता है। सिन्धी बर्तनों की तरह मुलतान की मिट्टी के बर्तन बनाने की कला भी खपरैल से शुरू हुई। फिर वहां मिट्टी के गंगाल, गमले, हौदे, फूलदान और दूसरी सुन्दर वस्तुएं बननी शुरू हुईं। गहरे नीले और दूध से सफ़ेद रङ्ग भी वे लोग इस्तेमाल करते थे। रामपुर, खुरजा, बम्बई और वेलोर के बर्तनों में भी गहरे और सुन्दर रङ्ग काम में लाये जाते थे। बर्मा में पेगू के मिट्टी के बर्तन बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध हैं। बौद्ध भिक्षुओं की अस्थियों को मिट्टी के सुन्दर बर्तन में ही सुरक्षित रखा जाता था।

संसार में चीनी मिट्टी का उपयोग प्राय: प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। यह मिट्टी काग़ज़ और कपड़ा बनाने में भी बहुतायत से काम में आती है। साबुन, चेहरे का पाउडर, दांत का मंजन आदि भी इसी से बनते हैं। इसीसे अल्ट्रामेरिन रङ्ग, फिटकरी, रसायनिक खाद, कीड़ों को मारने की गोलियां तथा पाउडर, अनेक प्रकार के रङ्ग, भांति-भांति की पेन्सिलें, चित्र बनाने के रङ्ग तथा पेन्सिलें, टाइप करने की मशीन के तथा डुपलीकेटर के बेलन, तस्वीरों के चौखट, सफेद रङ्ग, जूते में लगाने की सफ़ेदी, फरमें, बटन, चाकू, छुरी, तथा खाना खाने के कांटों की मूठ, इण्डिया रबर आदि भी बनाये जाते हैं। इसका अधिक उपयोग मूर्तियां, खिलौने, घरेलू बर्तन, फूल-दान, गमले, मर्तबान, खपरैल, चित्रित पत्थर, स्वास्थ्य सम्बन्धी-बर्तन जैसे कमोड, नाली के नल और दीवार तथा फ़र्श पर लगाने के चौकोर टुकड़े आदि के बनाने में भी होता है। इसी प्रकार चीनी मिट्टी से बिजली के इन्सुलेटर, लैम्प में ऊपर लगाने के ढकन आदि अनगिनती वस्तुएं बनाई जाती हैं। भट्टी में तथा बायलर में ऊंचा तापक्रम सहने वाली ईंटों की आवश्यकता होती है। वे भी इसीसे बनाई जाती हैं।

इतना होने पर भी हमारे देशवासी अन्धकार में ही पड़े हैं। उन्हें यह भी नहीं मालूम है कि चीनी मिट्टी है क्या। अपढ़ लोगों की बात तो दूर रही, अधिकांश पढ़े लिखे लोगों का भी यही मत है कि चीनी मिट्टी भारतवर्ष में होती ही नहीं है; वह चीन देश से लाई जाती है। 'चीनी मिट्टी के बर्तन हड्डी के बने हैं' यह बात आम तौर से सुनने में आती है। लोगों में यह भी भ्रम है कि इन बर्तनों की चिकनाई अण्डों की सफ़ेदी से दी जाती है और इसी लिए वे अशुद्ध हैं। जब संसार में चीनी मिट्टी के बर्तनों का उपयोग उसकी स्वच्छता के कारण बढ़ता ही जाता है, तब हमारे देश में ऐसे ग़लत विचार बने रहें, यह बड़े ही दुःख की बात है।

चीनी मिट्टी के बर्तन बड़ी आसानी से साफ़ हो जाते हैं और यदि सच पूछा जाय तो ये स्वच्छ रखे जाने में दूसरी धातुओं के बर्तनों से अच्छे हैं। इनका दूसरा गुण यह है कि गर्म वस्तु रखने पर जल्द गरम नहीं होते और इस लिए इनका उपयोग चाय आदि गरम पदार्थ पीने के समय अधिक होता है। ये अनेक रंगों में बनाये जाने के कारण अधिक सुन्दर भी लगते हैं। बुराई इनमें यही है कि ये टूटते भी जल्द हैं। इन्हें रखने के लिए अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है।

अँग्रेज़ी व दूसरी विदेशी भाषाओं में तो इस विषय पर अनेक पुस्तकें हैं और वे एक से एक धुरन्धर विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं। परन्तु हिन्दुस्तान में इस विषय की शायद ही कोई पुस्तक हो। इसका कारण यह नहीं है कि इस देश में इस विषय के पंडितों की कमी है। कुछ साल से हमारे देशवासियों ने इस ओर ध्यान देना शुरू किया है। फल स्वरूप विदेशों में इस विषय की उच्च शिक्षा पाये हुए लोग हमारे देश में भी हैं और कार्य भी सुचारु रूप से कर रहे हैं। परन्तु जनता की इस ओर दिलचस्पी न होने के कारण उन लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ।*

*

---

* पण्डित मनोहरलाल मिश्र ने इस सम्बन्ध में एक बहुत उपयोगी ग्रन्थ लिखा है जो विज्ञान परिषद शीघ्र ही प्रकाशित कर रही है।—सम्पादक।

इसलाम का महान सत्याग्रही

श्री विजय वर्मा

अरबों का साम्राज्य एक ओर अरब से मिश्र, लीबिया और स्पेन तक और दूसरी ओर इराक़, ईरान और समरक़न्द तक फैला हुआ था। इस विशाल साम्राज्य में एक ऐसा व्यक्ति भी था, जो ख़लीफ़ा की राज-भक्ति की शपथ लेना—इसलाम की तौहीन मानता था। इस बात की बड़ी कोशिश हुई कि वह अपनी ज़िद छोड़ दे; पर वह क़ुरान पाक और रसूल की शिक्षाओं को छोड़ कर, उन लोगों की जो इसलाम के अनुसार चलने वाले न थे, सुनता ही क्यों? उसका दावा तो यह था कि उन्हें ही उस की बात सुननी चाहिए, क्योंकि उसके बताये हुए मार्ग में चलने से ही इसलाम का कल्याण था।

हज का महीना था। उसके अधिकांश साथी 'एहराम' बांध चुके थे। यह 'एहराम' एक चादर थी, जिसे बांधना 'हज' के लिए प्रतिज्ञा बद्ध होना था। नंगे पैर और नंगे सिर लोग उस बड़े मैदान में इकट्ठा होने के लिए यात्रा करते थे, जो मक्के से दस-बारह मील दूर था। मदीने का गवर्नर, उतबा, उस पर ज़ोर दे रहा था कि वह भी राज-भक्ति की शपथ ले और उसके साथी हज के बाद उसके साथ जहां वह चाहे, वहीं उसके साथ चल खड़े होने को तय्यार थे। पर उसने इस अवसर को ही अपने कूच के लिए सब से उपयुक्त अवसर समझा।

यह कूच कोई साधारण यात्रा न थी! यह इसलामी साम्राज्य को इसलाम की शक्ति दिखा देने वाली यात्रा थी! लोगों ने उसे वहीं शस्त्रों की सहायता देनी चाही, अपने प्राणों को तुच्छ समझ स्वयं आगे होना चाहा, पर यह सब उसे मन्ज़ूर न था।

बहत्तर—हां, केवल बहत्तर—लोगों को, जिन में उसके लड़के, और उसकी बीवी भी थी, साथ में लिये हुए वह चल खड़ा हुआ!

पहले ही उसने मदीने के लोगों से कह दिया था और इस तरह कह दिया था कि वे उसे भूल न सकते थे—इसलाम सिर्फ़ ख़ुदा को हाकिम मानता है और अरब तथा ग़ैर अरब—यानी एक देश और दूसरे देश, और एक नस्ल और दूसरे नस्ल के लोगों में कोई फ़र्क नहीं समझता। वह ज़ोर देता है नेकी को अपनाने और बदी को दूर करने के लिए। जो उसकी समता और सदाचार पालन की आज्ञाओं से इनकार करता है, वही बाग़ी है, उसे 'सरकश' कहा गया है और उस बाग़ी के ख़िलाफ़ बग़ावत करना हमारा मज़हब है!

पर ऐसी ओजस्वी बात राज-शक्ति सहन नहीं कर सकी। हुक्म हुआ—जाओ उसको पकड़ कर लाओ। और तीस घुड़ सवारों के साथ हूर साहब उसे पकड़ने दौड़े!

फिर एक दस्ता उम्र बिन्सार के साथ भेजा गया—उस उम्र के साथ, जिसके पिता सार ने पैग़म्बर साहब की रक्षा के लिए लड़ते हुये तलवार टूट जाने पर अपना दाहिना हाथ उनके सिर पर करके उस हाथ के कट जाने में अपने जीवन की सार्थकता समझी थी!

अब उन्हीं पैग़म्बर के वास्तविक अनुयाई के विरुद्ध, उसी रक्षक का पुत्र आया! पर अगर राज-शक्ति के प्रभाव ने हूर की रूह पर अन्त तक विजयी रहने की आशा की थी, तो यह उसकी भूल थी!

फिर भी हृदय-परिवर्तन आसान नहीं है! हूर का हृदय-परिवर्तन भी आसानी से नहीं हुआ।

तीन दिनों तक—पूरे तीन दिन रात—रेगिस्तान के मैदान में जो सब से आवश्यक वस्तु प्राणों की रक्षा के लिए थी वही रोक दी गई—पानी का मिलना बन्द हो गया। बच्चे तड़प उठे, स्त्रियां बिलबिला गईं, पर इस सत्याग्रही के चेहरे पर एक शिकन तक न आई! उसे क़ुरान पाक की वह आयत याद आई, जिसमें कहा गया है—ख़ुदा हमारा इम्तिहान लेता है—हमें मुसीबतों में डाल कर और उन मुसीबतों को बढ़ा कर।

पर अन्त में हूर इसे सहन न कर सका। उसने स्पष्टतः अनुभव किया कि शाम के गवर्नर की शान हृदय हीन है—उसे स्मरण आया कि प्रथम ख़लीफ़ा ने कहा था कि उनका कफ़न नये वस्त्र का भी न हो! और उन्होंने शरीर रक्षकों के रखना या महलों में रहना इसलाम के अनुकूल नहीं माना था! काफ़िर के प्रति भी जैसा सहनशील व्यवहार करने का उपदेश क़ुरान पाक में है, वह भी उसे याद आया और उन्होंने इस इसलामी सत्याग्रही के अपमान में स्वयं इसलाम का अपमान देखा। वह उसी समय उसकी ओर चल पड़ा।

"मैं आप को ओर से लड़ूंगा।" उसने वहां आकर कहा।

उत्तर मिला—लेकिन मैं तो लड़ाई नहीं चाहता। ऐसी लड़ाई अगर मैं पसन्द करता, तो मुझे वहां से कूच करने की ज़रूरत ही क्या थी? मैं जानता हूं कि शाम के गवर्नर अमीर मुवाइया ने ऐसी शान व शौकत का ढंग अपना लिया है, जो किसी तरह इसलामी नहीं कहा जा सकता।

हूर ने वेदना भरे स्वर में कहा—मुझे भी इसमें बहुत शक है कि यह कार्रवाही यज़ीद के हुक्म से हो रही है। मैंने इब्न साद तक अपनी बात पहुंचाई। पर कुछ नतीजा न हुआ।

"तुमने ग़लती की"—तुम समझे नहीं! मेरे बड़े भाई ने जब सल्तनत से दस्तबरदारी की, तभी यह भी कहा था कि इसके माने यह नहीं हो सकते कि हम इसलामी क़ानून की वफ़ादारी छोड़ दें! और यह क़ानून क्या है? क्या यह इसलामी क़ानून लोगों के दूसरों पर अपनी शान जमाने को कहता है, या दूसरों पर हूकूमत करने को कहता है? हरगिज़ नहीं! इसलाम के माने ही यह हैं कि सिर्फ़ ख़ुदा की हुकूमत मानी जावे! सारी दुनिया पर उसी की हुकूमत मान कर सब के साथ यकसां सलूक किया जावे! 'बैतुल-माल' को—लोगों के ख़ज़ाने को—अपनी शान के लिये हर्गिज़ ख़र्च न किया जावे! फ़क़ीरों की तरह ज़िन्दगी बसर की जावे! लेकिन अन्याय के सामने सिर न झुकाया जावे। मैं इसी इसलाम को मानता हूं। जिस राज-भक्ति को मैं ख़िलाफ़ मानता हूं, उसे कैसे ले सकता हूं? मैं इस राज्य के बाहर जाने को तय्यार हूं।

स्वयं हूर भी यह देख रहा था। सवाल सिर्फ़ राज-भक्ति की शपथ का था। मुहर्रम के ठीक सातवें दिन लड़ाई शुरू हुई। हूर मारा गया। इसके बाद एक तीर इस महान सत्याग्रही के सिर में लगा। प्यास से परेशान जब वह नदी किनारे गया, तब एक दूसरा तीर लगा। उसने हाथ उठा कर ख़ुदा की प्रार्थना की!

यही करबला के ऐतिहासिक स्थान में इमाम हुसेन साहब की शहादत की घटना है।

इसमें किसे सन्देह हो सकता है कि जो हूकूमत की और शान की चाह इसलाम के नाम से आई। उसका उस मज़हब से कोई सम्बन्ध नहीं! पिता से पुत्र को राजगद्दी मिलने का रिवाज जारी हुआ और एक नस्ल दूसरी से ऊंची समझी जाने लगी, वह सब भी इसलाम के ख़िलाफ़ है। इसलाम तो बार बार कहता है—आदमी की आदमी पर हूकूमत न हो—हूकूमत हो सिर्फ़ ख़ुदा के क़ानूनों की जिनके अनुसार सभी लोग एक से हैं और हर एक अपनी-अपनी नेकी तथा बदी के मुताबिक़ ही अच्छे या बुरे समझे जा सकते हैं। और असल में यही मानव-धर्म का सार है। धन्य हैं वे 'शहीद' जो अपनी ज़िन्दगी में इसे पूरा उतारते हैं और इसी के लिये मौत का भी सामना निर्भयता से करते हैं! इमाम हुसेन ऐसे ही सत्याग्रही थे!

ईता और हिनिन

विश्वम्भरनाथ

अस्पृश्यता का विचार और जन साधारण से पृथक अस्पृश्य कहाने वाली जातियों का अस्तित्व भारत के अतिरिक्त अन्य प्राचीन देशों में भी पाया जाता है। और उन देशों को भी अर्वाचीन समय में अपना राष्ट्रीय अस्तित्व क़ायम रखने के लिए इस समस्या का उसी प्रकार सामना और उसका हल करना पड़ा है, जिस प्रकार इस समय भारत को करना पड़ रहा है। इन देशों में से हम केवल जापान का उदाहरण इस समय पाठकों के सामने रखना चाहते हैं।

प्राचीन और मध्यकालीन जापान में अस्पृश्य जातियों के अतिरिक्त एक और जाति-भेद मौजूद था, जो अनेक अंशों में हिन्दुओं के वर्तमान जाति-भेद से मिलता हुआ था। इसलिए जापान की अस्पृश्य जातियों की उत्पत्ति इत्यादि का वर्णन करने से पूर्व हम इस प्राचीन जापानी जाति-भेद का कुछ हाल दे देना आवश्यक समझते हैं।

यह जाति-भेद जापान में ईसा की पांचवीं शताब्दी में अर्थात् आज से लगभग १५०० वर्ष पूर्व शुरू हुआ। इससे भी पूर्व अधिक प्राचीन जापान में संसार के अन्य प्राचीन देशों—यूनान, मिश्र, रोम और चीन के समान समस्त मनुष्य-समाज दो स्पष्ट टुकड़ों में बँटा हुआ था—(१) स्वतन्त्र वर्ग; और (२) दास वर्ग। दासों की संख्या स्वतन्त्र वर्ग के लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक थी। दोनों वर्ग पैतृक थे।

स्वतन्त्र वर्ग के लोगों और उनकी विविध श्रेणियों का वृत्तान्त देने से पहिले हम प्राचीन जापान के इन दासों का थोड़ा सा हाल और बता देना चाहते हैं। स्वतन्त्र वर्ग के प्रत्येक कुल के साथ अनेक स्त्री-पुरुष दासों अथवा ग़ुलामों की तरह रहते थे। इन दासों की संख्या इतनी होती थी कि कभी कभी ख़ास कर उच्च कुलों में कुल वालों की निस्बत दासों और दासियों की तादाद बढ़ जाती थी। इनकी संख्या के बढ़ते रहने के कई तरीक़े थे। एक तो अधिक प्राचीन समय में आज से लगभग ढाई तीन हज़ार वर्ष पूर्व अनेक बार चीन तथा कोरिया से जा जाकर अनेक लोग समय समय पर जापान में बसते गए। जिनमें से पीछे आने वालों ने अपने से पहले आए हुए कमज़ोर लोगों को प्रायः अपना दास बना लिया। इसके अतिरिक्त उन दिनों राज-दण्ड द्वारा भी अनेक लोग दास बना दिए जाते थे। जो लोग क़र्ज़ अदा न कर सकते थे, वे अपने ऋणदाता के दास बना दिए जाते थे। चोर जिसका माल चुराते थे, उसके सदा के लिए दास बना दिए जाते थे। प्रायः दास तथा दासियाँ पशुओं के समान बाज़ारों में बेची जाती थीं। उस समय के कठोर सामाजिक अनुशासन के अनुसार किसी भी कुल के अन्दर पिता पुत्र को, बड़ा भाई छोटे भाई को; अथवा कुल का मुखिया कुल के किसी भी मनुष्य को धन के बदले में बेच कर दूसरों का दास बना सकता था। और एक बार दास बनने पर वह सदा के लिए दास हो जाता था; यहाँ तक कि दासों की औलाद भी दास ही हुआ करती थी। प्राचीन जापान के इन दास दासियों के मुखों और हाथों पर कोई एक चिन्ह

पहिचान के लिए गोद दिया जाता था; तथा दासों के सिर मुंड़वाने (घुटाने) का तरीक़ा भी औरों से पृथक था। इन दासों में भी कई भेद थे; किन्तु इस विषय का अधिक विस्तार हमारे प्रसङ्ग से बाहर है। दासत्व की यह प्रथा जापान में लगभग दो ढाई हज़ार वर्ष तक, अर्थात् कहीं कहीं पिछली शताब्दी तक जारी रही; तथापि यह कथा उस देश की अस्पृश्यता की कथा नहीं है। प्रचीन जापान के इन दासों के साथ और चाहे कितना भी कठोर व्यवहार क्यों न रहा हो; परन्तु उन्हें अस्पृश्य कोई न समझता था। जापान की अस्पृश्य जातियाँ इन दासों से भी पृथक और अधिक हीन थीं, जिसका वृत्तान्त आगे चल कर दिया जावेगा। इन दासों और मध्यकालीन जापान की अस्पृश्य जातियों में लगभग वैसा ही अन्तर था जैसा भारत के सामान्य शूद्रों और अन्त्यजों में।

तथापि ईसा की चौथी शताब्दी तक वहां के स्वतन्त्र वर्ग के लोगों में हिन्दुओं के जाति-भेद से मिलता जुलता कोई भेद मालूम नहीं होता था। हाँ, लगभग आदि काल से ही इन स्वतन्त्र वर्ग के लोगों की तीन श्रेणियां अवश्य थीं—(१) कोबेत्सु; (२) शीनबेत्सु; और (३) बामबेत्सु।

इनमें सबसे ऊपर 'कोबेत्सु' अर्थात् वे लोग थे, जो राजकुल से अपनी उत्पत्ति बतलाते थे; और जो अपने को जापानियों की सबसे बड़ी देवी 'सूर्यदेवी' के वंशधर मानते थे। उनके नीचे दूसरी श्रेणी में 'शीनबेत्सु' अर्थात् वे लोग थे, जो अन्य अनेक देवी-देवताओं से अपना निकास बतलाते थे; और सबसे नीचे तीसरी श्रेणी में 'बामबेत्सु' अर्थात् समाज के सर्व-साधारण की गणना की जाती थी। 'कोबेत्सु' का अर्थ 'आदि कुल से उत्पन्न', 'शीनबेत्सु' का अर्थ 'देवताओं के कुलों से उत्पन्न' है। अन्य प्राचीन क़ौमों के समान प्राचीन जापान-निवासी भी असंख्य देवी-देवताओं के उपासक थे। बढ़ते बढ़ते इन तीनों श्रेणियों में से प्रत्येक में अनेक बड़े बड़े कुलों वा क़बीलों की गणना की जाने लगी। ये तीनों श्रेणियाँ सर्वथा पैतृक थीं। पहली दोनों श्रेणियों में से देश के शासक और राज-कर्मचारी लिए जाते थे; और तीसरी श्रेणी के लोग जो संख्या में पहली दोनों श्रेणियों से कई गुने थे, साधारण प्रजा समझे जाते थे।

धीरे धीरे यानी ईसा की चौथी शताब्दी के लगभग जापान में पेशों के अनुसार हिन्दुओं की सी जातियों और उप जातियों का निर्माण शुरू हुआ। जापानी लोग अपने यहाँ की इन जातियों व बिरादरियों को 'काबाने' कहते थे। उदाहरणार्थ—कुम्हारों सुनारों, लुहारों, किसानों इत्यादि के अलग अलग काबाने थे। प्रत्येक काबाने में एक कुल होता था, जिसका कुलपति काबाने का मुखिया समझा जाता था। जैसे जैसे चीन और कोरिया से लगातार संसर्ग के कारण जापान में नए नए व्यवसाय और उद्योग धन्धे आते रहे, वैसे वैसे ही जापान में समय समय पर नए नए काबाने भी बनते रहे; और कभी कभी पुराने काबानों में भी उलट फेर होते रहे। किन्तु आम तौर पर यह सब काबाने पैतृक थे; और प्रत्येक बड़े से बड़े कुल के सारे पुरुष, स्त्री और बच्चे किसी एक ही काबाने में शुमार किए जाते थे; और शुमार हो सकते थे।

बढ़ते बढ़ते ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक प्राचीन जापान के उस जाति-भेद ने अपना अन्तिम रूप धारण किया, जो उस देश में लगभग १४०० वर्ष तक जारी रहा; और जिसका पिछली शताब्दी में जाकर अन्त हुआ। पाँचवीं शताब्दी में जापान के समस्त स्वतन्त्र वर्ग के लोगों की चार स्पष्ट और पैतृक जातियां बन गईं। इनमें सबसे ऊपर 'सामुराई' जाति के लोग थे; जिन्हें 'बुशी' भी कहते थे। प्रान्तीय दाइम्यो (शासक), राज्य के छोटे बड़े कर्मचारी, सेना के लिए सेनापति तथा साधारण सिपाही सब इसी जाति में से लिए जाते थे। सामुराइ जाति एक प्रकार से जापान की क्षत्रिय जाति थी। सामुराइ से उतर कर दूसरी जाति में देश के किसान थे, इस जाति का नाम 'ह्याकुशो' था। तीसरी जाति 'शोकुनीन' नाम की थी, जिसमें समस्त दस्तकारों अर्थात्—सुनार, लुहार, कुम्हार, बढ़ई आदि की गणना की गई। इसी जाति में हाल के बने

हुए लगभग समस्त कावाने शामिल कर लिए गए। और सब से नीचे 'आकिन्दो' नाम की जाति थी, जिसमें व्यापारी लोग गिने जाते थे। ऊंच नीच का विचार भी जापान की जातियों में लगभग वैसा ही था, जैसा हिन्दुओं की जातियों में। विशेष कर सामुराइ लोगों को शेष समस्त समाज से अपने श्रेष्ठ होने का बड़ा अभिमान था। यह अभिमान हिन्दुओं में ब्राह्मणत्व के अभिमान से बहुत कुछ मिलता हुआ था। शेष तीनों जातियों के लोगों को मिला कर 'हीनिन' अर्थात् साधारण प्रजा भी कहते थे। इन लोगों को राज की ओर से आज्ञा थी कि वे सामुराइ का विशेष आदर करें। यदि इन तीनों जातियों में से किसी जाति का कोई मनुष्य किसी सामुराइ का निरादर करता था, तो छोटे से छोटे सामुराइ को भी अधिकार होता था कि वह उसे तुरन्त मार डाले। सामुराइ जाति के लोगों को किसी प्रकार का कोई कर भी नहीं देना पड़ता था। देश में धन सम्पत्ति उत्पन्न करना, राजकीय कर देना तथा लाखों सामुराइयों का पालन पोषण करना हीनिन लोगों का काम था।

हिन्दुओं के जाति भेद और प्राचीन जापान के इस जाति-भेद में एक मुख्य अन्तर यह था कि इन चार जापानी जातियों में ब्राह्मण जाति जैसी कोई नहीं थी। मालूम होता है कि अति प्राचीन समय से ही उस देश में क्षात्र-धर्म को ब्राह्मण-धर्म से ऊपर स्थान दिया जाता रहा और क्षात्र-धर्म की ही उस देश में सदा प्रधानता रही। सामुराइयों में से ही अनेक बड़े बड़े विद्वान होते थे और 'शिन्तो' तथा 'बौद्ध' पुरोहित भी सामुराइयों में से ही लिए जाते थे। इस प्रकार ब्राह्मण-धर्म को जापान में क्षात्र-धर्म का केवल एक अङ्ग समझा जाता था।

इस जापानी जाति-भेद की दो और विशेषताएं ध्यान देने योग्य हैं। एक यह कि खेती का काम उस देश में अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता था। अधिक प्राचीन समय में देश का प्रत्येक किसान शस्त्रों का अभ्यास करता था और योद्धा होता था। सामुराइयों के लिए खेती करना कहीं कहीं निषिद्ध भी समझा जाता था। किन्तु समस्त जापान में योद्धाओं से उतर कर दूसरा पद किसानों को ही दिया जाता था। दूसरी विशेषता यह थी कि तिजारत का काम जापान में सदा अत्यन्त नीच समझा जाता था। एक चावल बेचने वाला, चाहे वह कितना भी धनवान क्यों न हो, एक धनहीन कुम्हार अथवा जुलाहे की अपेक्षा नीच समझा जाता था।

इस समस्त जाति-बन्धन के अतिरिक्त उस समय जापान में और भी असंख्य सामाजिक नियम थे, जिन्होंने छोटे से बड़े तक समस्त जापानी व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को पूरी तरह जकड़ रक्खा था। लगभग प्रत्येक मनुष्य की आय का नियमित होना और प्रत्येक व्यवसाय का पैतृक समझा जाना ही व्यक्तिगत स्पर्धा तथा स्पृहा को रोकने के लिए कुछ कम न था। किन्तु इन सब से बढ़ कर समस्त प्रजा का रहन सहन इत्यादि छोटी से छोटी बातों के लिए उस समय कठोर नियम बने हुए थे।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि उस युग में राज्य की ओर से इस प्रकार के नियम तक बने हुए थे कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वार्षिक आय तथा अपनी सामाजिक स्थिति के अनुसार किस प्रकार का और कितनी लागत का मकान बनवावे, कैसा वस्त्र पहने, कैसा भोजन खावे, अपनी कन्या के विवाह में कितने और किस प्रकार के उपहार कन्यादान में देवे, अपनी स्त्री को कैसा वस्त्र तथा भूषण पहिनावे, बच्चों को कितनी लागत के खिलौने देवे, घर में कितने और कैसे बर्तन रक्खे, अपने पुत्र के जन्म, विवाह अथवा किसी सम्बन्धी की मृत्यु के समय अधिक से अधिक कितने लोगों को तथा कितने प्रकार का भोजन करावे इत्यादि, इत्यादि। समस्त समाज को इन नियमों का पालन करना पड़ता था। इनका उल्लंघन पाप समझा जाता था और उल्लंघन करने वाले को राज्य तथा जाति की ओर से दण्ड दिया जाता था।

उच्च जाति के लोगों के लिए ये नियम अधिक कठोर होते थे। सब से ऊपर सामुराइयों को एक कठिन अनुशासन के आधीन अपना समस्त जीवन व्यतीत

करना पड़ता था। अपने बड़ों के सम्मुख किस प्रकार खड़ा होना, किस प्रकार बैठना, किस प्रकार बोलना और किस प्रकार हँसना तक उनके लिए नियमित था। इन लोगों के लिए दण्ड इतने कड़े थे कि यदि कोई सामुराइ इस प्रकार की किसी छोटी सी बात में भी आचार-विरुद्ध व्यवहार करता था, तो प्रायः उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दिए जाते थे।

इस प्रकार प्राचीन जापान में सामुराइ इत्यादि चार मुख्य जातियाँ और पांचवीं दास अथवा ग़ुलाम जाति थी। यद्यपि इन पाचों जातियों में पैतृक जातियों के समस्त गुण-दोष मौजूद थे; तथापि ईसा की आठवीं शताब्दी तक जापानी समाज में छुआ छूत का विचार क़तई न था और न उस समय तक उस देश में अस्पृश्य समझी जाने वाली कोई जाति ही थी। ईसा की छठवीं शताब्दी में जापान में भारत के बौद्धमत ने प्रवेश किया। बौद्धमत के साथ साथ जापानी समाज में एक ज़बर्दस्त परिवर्तन हुआ और उस समय से ही धीरे धीरे अस्पृश्यता का विचार भी जापानी समाज में घर करने लगा। कारण यह था कि बौद्धमत के प्रभाव से पशु हिंसा से सम्बन्ध रखने वाले समस्त व्यवसाय जापान में पहली बार घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे। तभी से धीरे धीरे इस तरह के व्यवसायों में लगे हुए लोगों की पृथक् जातियां बनने लगीं। इन सब अन्य जातियों को मिला कर 'चोरी' कहा जाने लगा। किन्तु भिन्न व्यवसायों के अनुसार इनके 'ईता' 'हिंनिन' इत्यादि कई नाम भी पड़े हुए थे। जब कि एक ओर प्राचीन जापान की चार मुख्य जातियों के बीच खान पान अथवा छुआ छूत के कोई बन्धन न थे; और न दासों तक के साथ कोई इस प्रकार का परहेज था। दूसरी ओर उन चारों जातियों के लोग आठवीं शताब्दी के बाद 'चोरी' के साथ सर्वथा वैसा ही बर्ताव करने लगे, जैसा कि भारत के कट्टर से कट्टर प्रान्त में यहां के अन्त्यजों अर्थात् चमारों इत्यादि के साथ किया जाता है। यहां तक कि उस समय से 'चोरी' लोगों को जापानी अथवा मनुष्य तक न गिना जाता था।

ये 'चोरी' लोग अधिकतर कुएँ, क़ब्र आदि खोदने, पशुओं का बध करने, जूते, ढोल तथा अन्य चमड़े की चीज़ें बनाने, बाग़ों में झाड़ू देने इत्यादि का काम करते थे। विशेषकर पशुओं का बध तथा चमड़े का काम देश में उनके अतिरिक्त और कोई न कर सकता था।

इन अछूतों के आपस के कोई अभियोग साधारण जापानी न्यायालयों में न जाते थे। इनके अपने मुखिया होते थे, जो स्वतन्त्रता के साथ इन पर शासन करते थे; और जिन्हें उन्हें मृत्यु-दण्ड देने तक का अधिकार होता था। इनका सबसे बड़ा मुखिया यौदो नामक शहर में रहता था। उसे सम्राट् की ओर से सामुराइयों के समान दो खड्ग धारण करने का विशेष अधिकार तक मिला हुआ था। जापान की अन्य चारों जातियों में किसी जाति का कोई जापानी यदि किसी 'चोरी' को मार डालता था, तो उसे साधारण न्यायालय में जाकर केवल थोड़ा सा जुर्माना देना पड़ता था। जन-साधारण उसे मनुष्य (हितो) नहीं; किन्तु एक तरह की बेजान वस्तु समझते थे। उनकी एक उपजाति राज्य की ओर से मुजरिमों को दण्ड देने, बेत मारने, फांसी देने और यातना देने इत्यादि के लिए नियुक्त थी; और दूसरी उपजाति रात्रि को चौकीदारी का काम करती थी। इनमें से कुछ नट और गवइयों का कार्य भी करते थे।

इन अछूतों की बस्तियां शेष आबादी से मिली हुई; किन्तु शहर के बाहर और एक ओर होती थीं। वे शहरों में अपनी बनाई हुई चीज़ें बेचने अथवा अपनी खाद्य सामग्री ख़रीदने के लिए प्रवेश कर सकते थे; किन्तु सिवाय जूतों के व्यापारी की दूकान के वे अन्य किसी दूकान व मकान की ड्योढ़ी के अन्दर प्रवेश न कर सकते थे। हिन्दुस्तान के कञ्जरों की तरह जापान में इन अछूतों का गाना लोग सुन लेते थे; किन्तु उन्हें घरों में घुसने की इजाज़त न थी, इसलिए वे सड़कों पर या बाग़ीचों ही में गा-बजा कर अपनी जीविका उपार्जन करते थे। परम्परा से जो पेशे उनके घरों में चले आते थे, केवल उन्हीं पेशों

को वे अपनी जीविका-निर्वाह का साधन बना सकते थे; और अन्य समस्त रोजगार उनके लिए मना थे। चारों उच्च जातियों के जापानी उनके स्पर्श को वैसा ही अपवित्र समझते थे, जैसा भारत में चमारों और मेहतरों के स्पर्श को आज दिन तक समझा जाता है।

कोई अन्य जापानी स्वप्न में भी उनकी बस्ती में प्रवेश करना न सोच सकता था; सिवाय इसके कि उसे किसी सरकारी काम के लिए मजबूरन जाना पड़े।

हालाकि देखने में अछूतों की बस्तियां अत्यन्त साफ़-सुथरी होती थीं। उनमें सुन्दर कुएं, तालाब, बग़ीचे, मन्दिर और सुघड़ मकान होते थे, जिन्हें देख कर कहीं-कहीं शेष जन-साधारण की बस्तियां भी गन्दी मालूम होती थीं, तथापि इस सफ़ाई तथा सजावट के रहते हुए भी १०० वर्ष तक उन्हें असहाय, अपवित्र और पशु समझ कर अपने को पवित्र समझने वाला समाज उनके साथ घृणित और कुत्सित से कुत्सित व्यवहार करता रहा।

इन अछूतों की एक उपजाति का नाम 'हिनिन' (Hinin) भी था। हिनिन का अर्थ है 'मनुष्य नहीं'। हिनिन में भिखमङ्गे, गवइए, नट, कुछ वेश्याएं और ऐसे मनुष्य, जिन्हें शेष समाज ने बहिष्कृत कर दिया था, शामिल थे।

कोई मनुष्य जिसे समाज ने बहिष्कृत कर दिया हो, हिनिन में शरीक हो सकता था; किन्तु हिनिन होने के उपरान्त उसे शेष समस्त मानव-समाज को अलविदा कहनी पड़ती थी। सभ्य समाज में उससे सहानुभूति रखने वाला कोई बाक़ी न बचता था।

उस समय की जापानी सरकार इन अछूत जातियों के अस्तित्व से एक ख़ास फ़ायदा यह उठाती थी कि उनके कारण समाज के छोटे-मोटे अपराधियों और आवारागर्दों को जेलख़ाने में रखने की ज़रूरत न पड़ती थी। इस तरह के अनेक लोगों को एकमात्र दण्ड यह दिया जाता था कि वे अपनी जाति विशेष से निकाल दिए जाते थे। मजबूर होकर इन्हें 'हिनिन' में जा मिलना पड़ता था; और उनका हिनिन में मिल जाना ही उनके लिए एक सुरक्षित जेलख़ाने का काम देता था।

अछूतों में स्त्रियों की स्थिति और भी निकृष्ट थी। मामूली क़ीमत पर लोग उन्हें दूसरों को बेंच दिया करते थे। बलात्कार की सूरत में लोग स्त्री-पुरुष दोनों को ज़िन्दा जला दिया करते थे। बाक़ायदा विवाह की प्रथा उन लोगों में प्रचलित थी; किन्तु विवाह के लिए उन्हें अपने मुखिया की आज्ञा का लेना आवश्यक था। कुछ सूरतों में तो पुरुष को अपनी नव-विवाहिता पत्नी एक रात्रि के लिए मुखिया की नज़र करनी पड़ती थी। स्त्रियों की कमी के कारण कुछ समय तक अछूतों में बहुपतिवाद का भी रिवाज था। परिवार के सारे भाइयों की एक ही पत्नी हुआ करती थी। कुल का छोटे से छोटा लड़का स्त्रियों पर शासन कर सकता था। वे ग़ुलामों की ग़ुलाम थीं।

जापानी-समाज की यही स्थिति १९ वीं शताब्दी के मध्य तक जारी रही। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जापान के अन्दर फिर एकाएक एक ज़बर्दस्त सामाजिक परिवर्तन हुआ, जिसका मुख्य कारण यह था कि उस समय यूरोप की सभ्यता और यूरोपियन-समाज के नए-नए आदर्श जापान में पहुंचे। उनके प्रकाश में जापान को अपने यहां का समाज सड़ा, गला, कठोर और निरर्थक रूढ़ियों से बंधा हुआ दिखाई दिया।

जापानियों ने फ़ौरन समझ लिया कि हज़ारों वर्ष की पुरानी रूढ़ियों को साथ रख कर वे जाग्रत और संयुक्त यूरोपियन राष्ट्रों और उनके राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक दांव-पेचों के मुक़ाबले में नहीं ठहर सकते। जापानी समाज के नेताओं के सामने उस समय दो स्पष्ट मार्ग थे। एक ओर परिवर्तन और जीवन, दूसरी ओर स्थिति-पालन और मृत्यु। जापानी परिवर्तनशील और दूरदर्शी थे। वे तुरन्त अपने यहां के समाज का रूपान्तर करने में तत्पर हो गए। देश में ज़ोर-शोर से आन्दोलन मचाया गया; और अन्त में वे सफल हुए।

१९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उदारता और समता के विचारों ने जापान में वेग के साथ बढ़ना आरम्भ किया। स्कूलों, व्याख्यानों, सभाओं समाचार पत्रों पुस्तकों तथा पत्रिकाओं द्वारा छोटे-बड़े समस्त जापानियों को नए विचारों की शिक्षा दीक्षा दी जाने लगी! उस समय के सार्वजनिक नेताओं तथा समाज सुधारकों में एक महाशय फ़ुकुज़ावा का नाम अत्यन्त विख्यात है। फ़ुकुज़ावा ने देश में नवीन विचारों के प्रचार के हित ग्रन्थ रचने, समाचार-पत्र निकालने और विद्यालय खोलने में अपना समस्त जीवन व्यतीत कर दिया। फ़ुकुज़ावा कई बार यूरोप और अमरीका की यात्रा कर आए थे। वे स्वयं शिक्षक भी थे; और शिष्यों को सर्वभावेन देशाचार परिवर्तन तथा यूरोपियन सभ्यता के अनुसरण का उपदेश दिया करते थे। फ़ुकुज़ावा महाशय की अछूतों के विषय में राय थी—"प्रकृति ने सब मनुष्यों को समान बनाया है; और जन्म से जाति का कोई भेद नहीं होता......। इसलिए प्रकृति का लक्ष्य तथा अभीष्ट यही प्रतीत होता है कि मनुष्यमात्र को निजी जीवन की आवश्यकताओं के लिए संसार की प्रत्येक वस्तु से लाभ उठाने का एक समान अवसर दिया जावे, जिससे प्रत्येक मनुष्य बिना दूसरों के अधिकारों में रुकावट डाले आनन्द, स्वतन्त्रता तथा स्वच्छन्दता के साथ जीवन निर्वाह कर सके।" इन्हीं फ़ुकुज़ावा को अर्वाचीन जापान का "मानसिक पिता" (Intellectual Father) माना जाता है। वास्तव में एक व्यक्ति के नाते फ़ुकुज़ावा ने जापानी समाज पर ज़बर्दस्त असर डाला।

अन्त में सन् १८६१ ई० का प्रसिद्ध वर्ष आया। देशभक्त शासकों ने, देशभक्त समाज-सुधारकों का पूरा-पूरा साथ दिया। अछूत जाति जो पूरे एक हज़ार वर्ष तक बुरी तरह पद-दलित की जा चुकी थी, इसी वर्ष १२ अक्टूबर को राजाज्ञा द्वारा हर प्रकार से बराबर कर दी गई। इन जातियों के पिछले नाम मिटा दिए गए, और उन्हें शेष जापानी जन-समाज के साथ खान-पान, विवाह-शिक्षा आदि के सम्बन्ध द्वारा मिल कर एकमय हो जाने की आशा दी गई; और उनसे किसी तरह का भी परहेज़ करने वाले को राज्य की ओर से दण्ड दिया जाने लगा। क़ानून बनने के समय जापान में अछूतों की संख्या १२,६९,९११ थी। कानून बनने के कुछ वर्षों बाद अछूतों को कानूनन तो समान अधिकार प्राप्त हो गए थे; किन्तु उनके प्रति लोगों की घृणा जो परम्परा से चली आ रही थी, थोड़ी-बहुत बनी रही। अन्त में शिक्षा तथा प्रचार की अधिकता और देश-प्रेम की सर्वव्यापकता ने लगभग १० वर्ष के अन्दर ही उस भेद-भाव को मिटा कर जापान की प्रत्येक सन्तान का हृदय समता के भावों से भर दिया।

आज दिन जापान में न कोई 'ईता' है न कोई 'हिनिन'। न कोई 'सामुराई' है और न कोई 'हेमीन'। समस्त जापानी समाज इस समय एक सुसङ्गत, सुवर्ण और सुसङ्गठित राष्ट्र बना हुआ है। उनमें न कोई खान-पान के भेद हैं, न कोई जात-पांत और न किसी तरह की छुआ-छूत। पुराने जाति-भेद और पुरानी रूढ़ियों के अब कहीं अवशेष तक नहीं मिलते।

———:o:———

प्राप्ति-स्वीकार

जो किताबें हमारे पास समालोचनार्थ आई हुई हैं। उनकी अभी हम प्राप्ति स्वीकार करते हैं बाद में क्रमशः सभी किताबों की समालोचना प्रकाशित की जायगी। —सम्पादक

१—माता

योगी अरविन्द, अनुवादक श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे, प्रकाशक श्री अरविन्द ग्रन्थमाला, ४ हेयर स्ट्रीट कलकत्ता। मूल्य आठ आना।

२—हमारा योग और उसके उद्देश्य

योगी अरविन्द, अनुवादक श्री मदनगोपाल गाडोदिया, प्रकाशक श्री अरविन्द ग्रन्थमाला, पांडिचेरी। मूल्य आठ आना।

३—योग के आधार

श्री अरविन्द, अनुवादक श्री मदनगोपाल गाडोदिया, प्रकाशक—श्री अरविन्द ग्रन्थमाला, पांडिचेरी। मूल्य दो रुपया।

४—इस जगत की पहेली

श्री अरविन्द, अनुवादक श्री मदनगोपाल गाडोदिया, प्रकाशक —श्री अरविन्द ग्रन्थमाला, ४ हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता। मूल्य दस आना।

५—श्री अरविन्द और उनका योग

सम्पादक श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे, प्रकाशक श्री अरविन्द ग्रन्थमाला, ४ हेयरस्ट्रीट, कलकत्ता। मूल्य आठ आना।

६—योग-प्रदीप

श्री अरविन्द, अनुवादक श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे, प्रकाशक श्री अरविन्द-ग्रन्माला, ४ हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता। मूल्य आठ आना।

७—नागरिक कहानियां

लेखक श्री सत्येन्द्र एम० ए०, प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला बृन्दावन। मूल्य दस आने।

८—साम्राज्य और उनका पतन

लेखक श्री भगवानदास केला, प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला, बृन्दावन। मूल्य सवा रुपया।

९—निर्वाचन पद्धति

लेखक द्वय—श्री दयाशङ्कर दुबे और श्री भगवान दास केला, प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, बृंदावन। मूल्य नौ आना।

१—भारतवर्ष में जातिभेद

—लेखक आचार्य क्षितिमोहन सेन शास्त्री, एम० ए०, आचार्य विद्याभवन, विश्वभारती, शान्ति निकेतन पृष्ठ संख्या २६२। मूल्य २)।

२—मन के भेद

—लेखक प्रो० राजाराम शास्त्री, काशी विद्यापीठ, बनारस। पृष्ठ संख्या १३७। मूल्य १।)।

३—आधुनिक हिन्दी साहित्य

—श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन द्वारा सम्पादित हिन्दी-साहित्य-परिषद् मेरठ में एक समारोह के अवसर पर हिन्दी के ११लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकारों के व्याख्यानों का संग्रह, पृष्ठ संख्या १७८। मूल्य १॥)।

प्रकाशक—श्री गिरजाशंकर वर्मा, अभिनव भारती ग्रन्थ माला, १७१-ए, हरिसन रोड, कलकत्ता।

सम्पादकीय-विचार

गान्धी जी का महत्वपूर्ण वक्तव्य

भारत मन्त्री मि० एमरी से लेकर हर टाम, डिक, और हेरी बयान पर बयान प्रकाशित कर रहा है कि युद्ध-विरोधी सत्याग्रह का एक मात्र उद्देश्य हिटलर को आमन्त्रण देना है, बाहर की फ़ासिस्ट शक्तियों को सहायता देना है और हिन्दुस्तान को अगले एक हज़ार वर्ष तक हिटलर की दासता में समर्पित करने का एक प्रस्ताव करना है। ये अंग्रेज़ अधिकारी हमें देशभक्ति का पाठ पढ़ाने का दावा करते हैं। ये हमें बताते हैं कि भारत की भलाई किस बात में है। अपने को 'राष्ट्रीय' कहने वाला 'स्टेट्समैन' अख़बार तो गान्धी जी को भी खुल्लम खुल्ला हिटलर का साथी बता रहा है। बम्बई से निकलने वाले 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' ने भी पिछले दिनों अपने एक अग्रलेख में अहिंसा का मज़ाक़ उड़ाते हुए गान्धी जी पर भी व्यक्तिगत आक्षेप किए थे। 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' को जवाब देते हुए गान्धी जी ने एक बयान प्रकाशित किया। इधर अरसे से गान्धी जी के वक्तव्यों पर सरकार ने प्रतिबन्ध लगा रखा है। किन्तु बम्बई से इस अधगोरे अख़बार ने शिष्टता बरतते हुए गान्धी जी का यह बयान छापा है। अहिंसात्मक सत्याग्रह पर गान्धी जी के इस बयान से काफ़ी रोशनी पड़ती है। गान्धी जी लिखते हैं—

'आप चाहे हम पर विश्वास करें या न करें, मगर मेरा इस बात पर पूरा विश्वास है कि बुरे से बुरे स्वभाव के मनुष्य को भी अहिंसा से हम बदल सकते हैं। अहिंसा की यही ख़ूबी है कि वह समस्त विरोधों पर विजय पाती है। मैं अपने को इस दर्जे तक अहिंसामय नहीं बना पाया यह सही है। और यह भी सही हो सकता है कि मेरे साथियों में मुझसे भी कम अहिंसा हो। किन्तु इसके कारण अहिंसा की शक्ति का महत्व कम नहीं हो जाता और न मैं इस पर ही विश्वास कर सकता हूँ कि हिटलर पर अहिंसा का कोई अच्छा असर न पड़ेगा।"

'टाइम्स आफ़ इण्डिया' ने इसी पत्र में पराजित यूरोपीय राष्ट्रों की तुलना करते हुए गान्धी जी को लिखा है कि हथियार रख देने से इन देशों की कोई भलाई नहीं हुई। गान्धी जी इस पर लिखते हैं—"आपकी मिसालें मौज़ूं नहीं होतीं। ख़ाली हथियार रख देने से ही कोई आदमी अहिंसात्मक नहीं हो जाता। चेक, डेन, आस्ट्रियन और पोलों ने मुमकिन है बुद्धिमानी से काम लिया हो; किन्तु उनका रवय्या अहिंसात्मक तो ज़रा भी नहीं था। हिंसात्मक उपायों से यदि वे सफलता पूर्वक मुक़ाबला कर सकते, तो उन्होंने अपने देशवासियों की भलाई की होती। मुक़ाबला बेकार समझ कर, जब उन्होंने आत्म समर्पण किया तो मैं इसके लिए उन्हें दोष भी नहीं दे सकता।"

सत्याग्रह का किन सूरतों में जन्म हुआ, इस पर प्रकाश डालते हुए गान्धी जी लिखते हैं—"इसी तरह की दिक़्क़तों का मुक़ाबला करने के लिए और नाश के मौजूदा अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित और शक्तिशाली व्यक्ति के सामने कमज़ोर से कमज़ोर आदमी अपने को अशक्त न समझ सके; इसलिए यह सत्याग्रह का अस्त्र खोजा गया। सन् १९०७ में दक्षिण अफ्रीका में इसका इस्तेमाल किया गया। तब से इसका अनेक स्थलों और मुश्किल से मुश्किल अवसरों पर सफलता पूर्वक प्रयोग किया जा चुका है।"

सत्याग्रह का हर विरोधी, अंग्रेज़ों की सज्जनता और नाज़ियों की दुर्जनता की कल्पना करके यह सवाल पूछता है कि अंग्रेज़ जैसे सज्जन शत्रु से ही सत्याग्रह किया जा सकता है। नाज़ी तो फ़ौरन इन्हें तोप के मुंह से उड़ा देंगे। इस प्रश्न का जवाब देते हुए गान्धी जी लिखते हैं—"अंग्रेज़ और नाज़ियों में यदि मैं कोई भेद न करूं तो आप इसके लिए मुझे माफ़ करेंगे। मेरी नज़रों में अब तक मुझे जिस शक्ति से मुक़ाबला करना पड़ा है और आगे जिससे करना पड़ेगा, उनमें कोई अन्तर नहीं है। हिटलर हर सत्याग्रही को मार डालेगा, यह सुनकर न तो मुझे निराशा होती है और न मुझे डर ही लगता है।

"यदि बहुत से सत्याग्रही हिटलर की सेना के आगे सत्याग्रह करते हुए मारे जांय और अपने चित्त में ज़रा भी द्वेष न रखें, तो यह हिटलर के लिए एक नया अनुभव होगा। उस पर इसका कोई असर पड़े या न पड़े; किन्तु इतिहास और दन्तकथाओं में जिन वीरों और वीरांगनाओं के नाम मशहूर हैं, उन्हीं की तरह इन वीरों के नाम भी सदा अमर रहेंगे।

"आपकी दलीलें बहुत लचर हो जाती हैं, जब आप मेरे साथियों की सचाई और उनकी अहिंसा पर शुबहा करते हैं। आपको पूरा अधिकार है कि आप पूना के प्रस्ताव को मेरे मुंह पर फेंक दें। मैं ख़ुद इस चीज़ को स्वीकार कर चुका हूं कि मेरी क्षणिक कमज़ोरी के कारण ही पूना का प्रस्ताव पास हो सका। रही ईमानदारी और अहिंसा की कमी की बात, तो मैं सिर्फ़ इतना ही कह सकता हूं कि भविष्य ही इस बात को बताएगा कि यह सत्याग्रही महज़ दिखावटी थे या इन में भी ईमानदारी और सचाई थी।

"आपने राष्ट्रपति की बात लिखी है। राष्ट्रपति ने तो साफ़ साफ़ अपनी सीमित अहिंसा की बात कह दी है। यदि मुझे मौलाना साहब जैसे सीमित विश्वास के भी आदमी मिल जांय, तब भी मैं अहिंसात्मक उपायों से हिटलर का मुक़ाबला करने के लिये तय्यार हो जाऊंगा। इस तरह की अहिंसा कसौटी पर खरी उतर सकती है या नहीं, यह एक निरर्थक प्रश्न है। मैंने तो इसी तरह के सामान से अब तक विजय पाई है।"

इस गोरे पत्र ने आगे चल कर सत्याग्रहियों की नीयत पर सन्देह किया है। उसका जवाब देते हुए गान्धीजी लिखते हैं—"आपने एक बहुत ही तकलीफ़देह व्यंग किया है। आपने लिखा है कि स्वतन्त्र भाषण के लिये जो मेरी मांग है, वह अंग्रेज़ों से और अधिक राजनैतिक हक़ वसूल करने की एक चाल है!

"राजनैतिक दृष्टि से इस बात में कोई बुराई नहीं कि अहिंसा के ज़ोर पर राजनैतिक हक़ वसूल किए जांय। यह सब जानते हैं कि पूना का प्रस्ताव अब ख़त्म हो चुका और जहां तक मेरा सम्बन्ध है, वह तब तक ख़त्म रहेगा, जब तक यह लड़ाई चल रही है। यदि भाषण की स्वतन्त्रता मिल गई और पुरानीसी कैफ़ियत फ़िर से क़ायम हो गई, तो सत्याग्रह बेशक वापस ले लिया जायगा।"

इस बार के सत्याग्रह की गम्भीरता की तरफ़ इशारा करते हुये गान्धी जी लिखते हैं—"पिछले आन्दोलनों के वक़्त मैंने यह कभी नहीं कहा कि वे आन्दोलन देर तक चलेंगे। मगर इस बार मैंने यह कहा है; क्योंकि मेरा विश्वास है कि पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी बात में सरकार के साथ हमारा समझौता नहीं हो सकता। लड़ाई के ज़माने में तो कांग्रेस कभी भी धन और जन से इस युद्ध में मदद नहीं कर सकती। ऐसा करने से वह अपनी बीस वर्ष की अहिंसा की नीति को मटियामेट कर देगी। और पूर्ण स्वाधीनता उस वक़्त तक किसी समझौते से नहीं मिल सकती जब तक यह लड़ाई चल रही है।"

'टाइम्स आफ़ इण्डिया' ने आगे चल कर लिखा है कि गान्धी जी इंगलैण्ड के नाश में ही भारत का कल्याण देखते हैं। इसका जवाब देते हुये गान्धी जी यह लिखते हैं—"मैं ब्रिटेन की क़ीमत पर हिन्दुस्तान का भला नहीं चाहता और न मैं जर्मनी की ही क़ीमत पर हिन्दुस्तान का भला चाहता हूं। हिटलर आते रहेंगे और हिटलर जाते रहेंगे। जिन लोगों का यह ख़्याल है कि हिटलर की मृत्यु के बाद उन प्रवृत्तियों

की भी मृत्यु हो जायगी, जिन्होंने हिटलर को जन्म दिया है, तो वे बड़ी ग़लती कर रहे हैं। सब से बड़ी बात यह है कि हम इस तरह की प्रवृत्तिका मुक़ाबला किस तरह कर रहे हैं। अहिंसा या हिंसा से ? यदि हम हिंसा से इसका मुक़ाबला कर रहे हैं, तो हम इस प्रवृत्ति को फलने फूलने का मौक़ा देते हैं। पर अगर हम अहिंसा से इसका मुक़ाबला करते हैं, तो हम इसे निर्जीव बना देते हैं।"

इसी वक्तव्य में गान्धी जी ने यह भी कहा है कि चाहे उनके बारे में ग़लत फहमी ही क्यों न हो मगर वे अपने इस सत्याग्रह से भारत, ब्रिटेन और मानवता की ही सेवा कर रहे हैं।

गान्धी जी के इस वक्तव्य का प्रत्युत्तर देते हुये 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' अपने १७ फ़रवरी के सम्पादकीय में लिखता है—

"गान्धीजी प्रश्न को जिस तरह सुलझाना चाहते हैं, वह तो आत्महत्या का ही दूसरा रूप है। सत्याग्रहियों के नाम इतिहास में अमर होने से क्या लाभ यदि निर्दयता पूर्वक उन्हें मार डाला गया ? हम चाहते हैं कि वीर ज़िन्दा रहें और ज़िन्दा रहकर अमली उपायों से मानवता की सेवा करें। हम नहीं चाहते कि वे गान्धीजी का तरीक़ा अख़्तियार करें।"

हम बड़े अदब के साथ 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' के इस ईसाई सम्पादक से पूछना चाहते हैं कि क्या वह क़यामत के दिन हजरत मसीह से भी यही सवाल करेगा कि—"हजरत आप क्रूस पर क्यों चढ़े ? आप को तो ज़िन्दा रहकर मानवता की सेवा करनी चाहिये थी।" क्या यह ईसाई सम्पादक पहली और दूसरी सदी के उन हजारों ईसाई प्रचारकों और भक्तों की निन्दा करने को तय्यार है जो अपने विश्वास के लिये ज़िन्दा जला दिये गये या सूली पर चढ़ा दिये गये ? चूंकि कोई बर्बरता पूर्वक हत्या कर देगा लिहाज़ा दृढ़ता के साथ मुक़ाबला करना बेकार है—क्या इस दलील के अनुसार वह ब्रिटेन को जर्मनी का मुक़ाबला करने से रोकेगा, चूंकि जर्मनी बर्बरता पूर्वक हत्या कर रहा है ? क्या इस सम्पादक की नज़रों में मन्सूर, शम्स तबरेज़ और पचासों तपस्वियों की क़ुरबानी व्यर्थ है ? कोई भी देशभक्त हिन्दुस्तानी टाइम्स आफ़ इण्डिया के आक्षेपों और उसके प्रत्युत्तर से सहमत नहीं हो सकता।

चूंकि ये ग़ुलाम बन्दी हैं—

गत १२ फ़रवरी को केन्द्रीय असेम्बली ने डेटीन्यूज़ को सुविधा देने के सम्बन्ध में श्री एन० एम० जोशी के प्रस्ताव को ४० के विरुद्ध २३ वोट से ठुकरा दिया। एसोशियेटेड प्रेस के वक्तव्य में लिखा है कि श्री जोशी के प्रस्ताव पर मुसलिम लीग, कांग्रेस नेशनलिस्ट और अन्य स्वाधीन मेम्बरों ने वोट दिया था। होम मेम्बर सर रेजिनल्ड मेक्सवेल ने प्रस्ताव का विरोध करते हुये फ़रमाया—

"ये नज़रबन्द डेटेन्यु ईमानदार और भले आदमी नहीं हैं। ये हमारी हमदर्दी के मुस्तहक़ भी नहीं हैं··· मुझे विश्वास है कि इन लोगों को, जो भयंकर से भयंकर देशघातकता कर सकते हैं, इस असेम्बली मे आप लोग सहानुभूति न दिखावेंगे।"

इन नज़रबन्दियों के निरीह परिवार को मदद देने के प्रश्न पर होम मेम्बर ने कहा—"ये नज़रबन्द दुश्मनों से तनख़्वाह पाते थे। जो लोग इन्हें तनख़्वाह देते थे, उन्हीं के पास इनके परिवारों को याचना के लिये जाना चाहिये······ये लोग अपने ही मुल्क के साथ बग़ावत कर रहे थे।"

झूठ और अहमन्यता की भी कोई हद होती है ! क्या होम मेम्बर जनता के सामने इन देशभक्तों के तनख़्वाहदार होने के कोई प्रामाण पेश करेगा ? यदि नहीं तो हमें इसके वक्तव्यों पर कोई विश्वास नहीं। महज़ कम्यूनिस्ट विचार रखने से ही कोई आदमी मुजरिम नहीं हो जाता। यदि ऐसा होता तो इङ्गलैण्ड की सरकार सोवियत रूस की इतनी ख़ुशामद न करती। स्वयं इङ्गलैण्ड में कम्यूनिस्ट विचारों के लोग आज़ादी से घूमते हैं। फिर क्या यह सच नहीं है कि देवली में नज़रबन्द कुछ युवकों के मां बाप इतने धनिक हैं, जो सर रेजिनेल्ड जैसे व्यक्तियों

को ख़रीद सकते हैं ! रही उनके क्रान्तिकारी होने की बात ? तो क्या होम मेम्बर यह बतायेंगे कि गान्धी जी के दख़ल देने पर जब से बङ्गाल और दूसरे प्रान्तों के क्रान्तिकारी छूटे हैं, उनमें से किसी ने भी कहीं पर भी हिंसात्मक षड्यन्त्र रचा हो ? यदि हां तो हम होम मेम्बर से इसके प्रमाण चाहेंगे। 'शान्ति रक्षा के नाम पर हम कुछ न बतायेंगे।' ख़ाली यह कह देने से काम नहीं चलेगा । हम हिंसात्मक कम्यूनिज़्म के घोर विरोधी हैं; लेकिन नज़रबन्दों में से कई हमारे अनन्य मित्र हैं। हम डाक्टर अहमद, डाक्टर अशरफ़, सज्जाद ज़हीर, शरफ़ अथर, महमूद और फ़ैज़ आदि दर्जनों मित्रों को जानते हैं, जिनके सम्बन्ध में होममेम्बर के विचार ज़रा भी मौज़ूं नहीं होते। रही विश्वासघात की बात ? तो वह तो होम मेम्बर ख़ुद अपने अन्तस्तल में अच्छी तरह जानते हैं कि ये नवयुवक और चाहे जो कुछ हों, किन्तु विश्वासघाती नहीं हैं।

हम जनता के सामने सरकार के रवइये की एक दूसरी तसवीर भी रखना चाहेंगे। दिल्ली से निकलने वाले सरकारी पत्र "भारतीय समाचार" के ८ फ़रवरी के अङ्क में निम्न लिखित समाचार प्रकाशित हुआ है—

"जर्मनी और इटली से युद्ध होने पर भारत में जर्मनों और इटालियनों की गतिविधि को नियन्त्रण में रखना आवश्यक होगया। ये लोग या तो फ़ौजी देख रेख में अहमदनगर के नज़रबन्द कैम्प में रखे गये हैं या कुछ नागरिकों की निगरानी में 'पेरोल' पर हैं। अहमदनगर में कोई महिला नज़रबन्द नहीं है । युद्ध के प्रथम वर्ष के बाद भारत में ८१९ जर्मन और इटालियन नज़रबन्द थे, ५०० (स्त्री और पुरुष) 'पेरोल' पर थे और १,६८० जिनमें अधिकतर महिलाएं और मिशनरी हैं) पर कोई पाबन्दी नहीं थी।"

पेरोल केन्द्र

"बम्बई प्रान्त में सतारा और पुरन्धर, युक्त प्रान्त में नैनीताल, बिहार में हज़ारीबाग, बंगाल में कटा पहाड़, आसाम में शिलांग और मद्रास प्रान्त में येरकाड और कोडईकानल आदि स्थानों में 'पेरोल' केन्द्र स्थापित किये गये हैं । इन केन्द्रों का सारा ख़र्च भारत सरकार उठाती है। अधिक से अधिक की दर इस प्रकार है : दम्पति को १३० रुपये, अविवाहित स्त्री या पुरुष को ७० रुपये और २० रु० बच्चों को । यदि सुपरिन्टेन्डेंट आवश्यक समझे, तो बच्चों की छोटी मोटी सुविधाओं के लिए ३ रुपये और दे सकता है।"

"नज़रबन्द कैम्पों में खेल कूद की सब सुविधाएं हैं । फ़ुटबाल, हेडबाल, बास्केटबाल, टेनिस और बैडमिंटन, टेबिलटेनिस और अन्य कई जर्मन खेलोंका प्रबन्ध है। पानी का पोलो खेलने के लिए तालाब भी हैं। कुछ नज़रबन्दों ने अपने छोटे छोटे बाग़ीचे भी लगाये हैं, जिनमें वे फूल व सब्ज़ी इत्यादि लगाते हैं।"

"नज़रबन्दों को सप्ताह में तीन बार सिनेमा दिखाने का प्रबन्ध कर दिया गया है । नाटक, नाच आदि के लिए इन लोगों ने अपनी समितियां बना ली हैं।"

"युद्धकालीन सेंसर के अतिरिक्त चिट्ठी पत्री पर कोई रोक नहीं है और प्रायः नज़रबन्दों के मित्र उनसे मिलने के लिए बाहर से आते ही रहते हैं।"

यह है फ़र्क़ एक जर्मन और इटालियन देशभक्त और एक भारतीय देशभक्त में ! और यह क्यों ? क्या इस लिये कि वे स्वाधीन देशों के निवासी हैं और हमारे ये नज़रबन्द ग़ुलाम देश के रहने वाले हैं ! हमें ख़ुशी इस बात की है कि असेम्बली के ग़ैर सरकारी सदस्यों में से किसी ने होम मेम्बर की घृणित युक्तियों की दाद नहीं दी।

ग़ुलामों की गणना—

१९ फ़रवरी से १ मार्च सन् १९४१ तक ग़ुलामों की गिनती का काम ख़त्म हो गया। सबसे पहले सन् १८७१-७२ में ग्लेडस्टन के ज़माने में तमाम हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ सरकार ने अपने ग़ुलामों की गिनती की थी—मर्द, औरत, बच्चे; कौनसी बोली बोलते हैं; हर साल कितने पैदा होते हैं और कितने मरते हैं; कितने कबूतर ख़ानों में विविध सम्प्रदायों

ने इन गुलामों को बन्द कर रखा है; वग़ैरह वग़ैरह। बहुत सी बातों का तख़मीना लगाया गया था। उसके बाद से यह क्रम हर दसवें साल दोहरा दिया जाता है। सन् १९११ में हमें बताया गया कि हम ग़ुलामों की तादाद ३० करोड़ है। दुनिया ने महसूस किया कि अंग्रेज़ क़ौम कितनी प्रतिभाशाली है, जो तीस करोड़ आदमियों पर शासन करती है। हमारी आंखें खुल रही थीं और हमारे एक महान कवि ने हमें आश्वासन देकर कहा—

त्रिंस कोटि कंठ कल कल निनाद कराले,
द्वित्रिंश कोटि भुजैर्धृत खर कर वाले!
के बोले मां तुमि अबले?

फिर १९२० में सहसा हमारे अन्दर आज़ादी की एक लहर दौड़ी और जब हमसे कहा गया कि सन् १९२१ की ग़ुलामों की गिनती में हम भी अपनी शुमार करा लें, तो हमने इस प्रस्ताव को निरादर से ठुकरा दिया। इतनी बड़ी शरम लेकर हम कैसे जीते? ३५ करोड़ इन्सान १॥ लाख ग़ैर क़ौम के पैरों से ऐसे कुचले जाते हैं कि वे उफ़ तक नहीं कर सकते! हमने फ़ैसला किया कि दुनिया यह जाने कि इस मर्दुमशुमारी के बाहर भी जेल के अन्दर आज़ादों की बस्ती है। सन् १९३१ में भी हमने यही फ़ैसला किया और अपने को ग़ुलामों की श्रेणी में शुमार कराने से इन्कार कर दिया।

मगर वह १० वर्ष पहले की बात थी। तब से अब तक गङ्गा का कितना पानी बङ्गाल की खाड़ी में जा चुका है। आज हमारा मस्तक लज्जा से झुक जाता है, जब हम देखते हैं कि राष्ट्रीयता की डींग हांकने वाले कांग्रेसी अख़बार गला फाड़ फाड़ कर चिल्ला रहे हैं—"हिन्दू भाइयो सावधान, अपना धर्म हिन्दू और बोली हिन्दी लिखाना।"

और यह सब क्यों हो रहा है? इसलिये कि राष्ट्रीयता का नक़ाब पहने हुये लोग सरकार के सामने यह दावा पेश कर सकें कि असेम्बली में हमारी सीटें बढ़ाई जांय और हमारी भाषा में ग़ुलामी के परवाने काटे जांय। दुनिया को यह मालूम हो जाय कि ग़ुलामों की तादाद बढ़ाने में महज़ मुसलमान ही आगे नहीं हैं, हिन्दू और ख़ासकर कांग्रेस वाले उनसे किसी तरह पीछे नहीं हैं।

इस गणना की जो तालिका है, उसमें २२ सवाल हैं। उन सवालों पर अगर हम एक सरसरी निगाह डालें तो हमें पता चलेगा कि किसानों और मज़दूरों की उन्नति या अवनति को इस गणना में कोई स्थान नहीं है। पूरी तालिका में किसी सवाल के जवाब से आप इस नतीजे पर नहीं पहुँच सकते कि भारत-वासियों की औसत आय क्या है? हमारे यहां सम्मिलित कुटुम्ब की प्रणाली है, किसान परिवार एक साथ ज़मीन पर क़ाबिज़ होते हैं। जब तक उनकी औसत आयका पता न चलेगा, तब तक हम उनकी सही तसवीर कैसे जान सकते हैं? कितना उन पर क़र्ज़ा है, इसका जवाब भी किसी सवाल से नहीं निकलता। ग्रामीण उद्योग-धन्धों से हमारे देश की क्या आमदनी है, इसका भी पता हमें नहीं चल सकता। कितनी स्त्रियां परदा करती हैं, यह भी हम नहीं जान सकते। हमारे कितने आदमी क्षय से मरते हैं, यह भी हम नहीं मालूम कर सकते। कितने पिताओं को दहेज़ देना पड़ा, इस तरह का भी कोई सवाल नहीं है। हमारे यहां शादी की औसत आयु क्या है, यह भी आप नहीं मालूम कर सकते। देश की वास्तविक दशा जानने के लिए जिज्ञासु भारत-वासी अपने समाज और अपनी परिस्थिति का जो भी ज्ञान प्राप्त करना चाहेगा, उसकी सामग्री; इस गणना में नहीं मिलेगी। जिस अधिकारी ने भी यह तालिका तय्यार की है, उसने बहुत होशियारी के साथ इन सवालों से अपने को बचाया है। मालूम होता है पढ़े लिखे शहरी लोगों के लिए यह तालिका तय्यार की गई है। और इन पढ़े लिखों की तादाद है क्या? मुश्किल से ६ फ़ी सदी। अख़बारों के पढ़ने से पता चलता है कि यह ६ फ़ी सदी का गिरोह अपने महत्व को काफ़ी समझता है। चुनांचे हम देख रहे हैं कि हमारे अख़बार सारा ज़ोर सवाल नं० १८—हमारी

बोली पर ही दे रहे हैं! हम हिन्दी बोलते हैं कि उर्दू बोलते हैं या हिन्दुस्तानी बोलते हैं? हमारे हिन्दी अख़बारों के लिए इस गणना का महत्व बस इसी एक प्रश्न तक सीमित है।

पता नहीं कब हमारे ये भाई चीज़ों की गहराई में पैठ कर व्यापक रूप में वास्तविकता को देखने का प्रयत्न करेंगे?

नाम की लड़ाई

इधर अरसे से समाचार पत्रों में इस बात की चर्चा है कि हमारी भाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी' हो या 'हिन्दी'? इस बात पर भी विवाद है कि हमारी राष्ट्र-भाषा का स्वरूप क्या हो और नाम क्या हो? रेडियो और जन गणना को लेकर इस विवाद में भी काफ़ी गरमी दिखाई दे रही है। मानों भाषा और जाति का अस्तित्व इन्हीं दो प्रश्नों के हल से बन बिगड़ सकता है।

हम ग़ुलाम क़ौम हैं और अरसे की ग़ुलामी ने हमारे अन्दर से रचनात्मक कार्य की क्षमता को नष्ट कर दिया है। क्या करना चाहिये—इसके कोई मन्सूबे नहीं। क्या न होना चाहिये—इसी पर सारी बहस है और इसीलिये यह बहस निरर्थक है और इससे हमारी प्रगति आगे नहीं बढ़ सकती। जिन्होंने ज़िन्दगी में एक हर्फ़ हिन्दी का नहीं लिखा, वे आज इस आन्दोलन के नेता हैं। जनता की कैफ़ियत यह है कि वह भी अज्ञान में थोथे नारों के पीछे चल खड़ी होती है। देश के अन्दर जो राष्ट्रीय विचार के लोग हैं, वे भी इसी लहर में बहने लगते हैं।

दुनिया प्रगतिशील है, वह एक जगह स्थिर नहीं रहती। भाषा और संस्कृति भी निरन्तर बदलती रहती हैं। संस्कृत हमारी देव भाषा थी, मगर उसका क्या हश्र हुआ? वह केवल ग्रन्थों में बन्द पड़ी है। प्राकृत हमारी बोल चाल की भाषा थी, मगर वह भी केवल बौद्ध ग्रन्थों तक ही सीमित रह गई। फिर मागधी, सौरसेनी, अवधी, ब्रजभाषा के दौर आये और फिर खड़ी बोली का ज़माना आया। समय के अनुसार विचारों का प्रवाह जितना विस्तृत होता है, भाषा भी वैसा ही रूप धारण करती है। सन्तों और उपदेशकों ने सदा आमफ़हम और सरल भाषा कोही अपने प्रचार का माध्यम बनाया। कबीर ने उपदेश दिया—

संसकिरत है कूप जल भाषा बहता नीर।

कबीर, नानक, दादू आदि सन्तों ने, तुलसी और सूर जैसे भक्तों ने अपने लिये एक नई ही भाषा का सृजन किया। लाख लाख जनता ने इनकी अमृत-वाणी से अपना जीवन धन्य किया। हिन्दू और मुसलमान सब चाव से इनके उपदेश सुनते और समझकर उन्हें ग्रहण करते थे। उनकी भाषा ही ऐसी थी, जिसे सब आसानी से समझ सकते थे। सन्त मलूकदास के मठ तिब्बत, नैपाल, काबुल, सिन्ध, आसाम और उड़ीसा-सब जगह फैले हुये थे। इन मठों में ख़ाली मलूकदास की ही बानी नहीं गाई जाती थी, बल्कि कबीर, नानक दादू आदि सभी सन्तों की बानियों के रस से श्रोता आनन्द विभोर होते थे। तुलसीकृत रामायण को ही ले लीजिये, सैकड़ों फ़ारसी और अरबी लफ़्ज़ उसमें मिलेंगे। हमारी यह उदार भावना कोई नई नहीं थी। यूनानी, पार्थव, शक, हूण, यू-ए-ची आदि कितनी ही विदेशी क़ौमें यहां आईं और हम में मिल जुल गईं। उनका रूप, रङ्ग और गठन; उनके भाव और उनकी भाषाएं सब हमारे अन्दर पेवस्त हो गईं। हमारे ग्रन्थों में इन भाषाओं के सैकड़ों शब्द आज उनकी स्मृति के रूप में क़ायम हैं। फिर इसलामी सभ्यता का दौर आया। बग़दाद में ख़लीफ़ा के दरबार में हमारे सैकड़ों पण्डितों, कलाकारों और चितेरों की अभ्यर्थना हुई। उपनिषद्, गीता, ज्योतिष, वैद्यक आदि अनेकों संस्कृत और बौद्ध ग्रन्थों के अरबी में तर्जुमे हुये। संस्कृत और बौद्ध साहित्य ने अरबी साहित्य पर अपनी अमर छाप छोड़ी है। पुरानी सभ्यताएं सीमा बन्धनपर विश्वास न रखती थीं। अरबी साहित्य हमीं से उत्कृष्ट बनकर जब वापस हमारे देश में आया, तो हमने भी उसे आदर से अपनाया। अरबी साहित्य ने कई दिशाओं में हमें प्रभावित किया। ज्योतिष के

ताजक शास्त्र के (वर्ष फल, मास फल आदि बतलाने वाला ज्योतिष शास्त्र का एक अङ्ग) के योगों के नाम में बीसियों अरबी शब्द मिलेंगे। ताजक नील कण्ठी (एक ज्योतिष ग्रन्थ) के श्लोक तो क़ुरान की आयत की तरह ही हैं। एक श्लोक है--

'खञ्जासरं रद्दमथो दुफालिः कुत्थम् तदुत्थोत्थ दिवीरनामा' और

'स्यादिक्कवालः इशराफ योग'—आदि

रमल नामक ज्योतिष ग्रन्थों में बीसों अरबी और फ़ारसी के शब्द व्यवहृत हुये हैं। एक श्लोक में 'तारीख़' शब्द का ऐसा व्यवहार किया गया है, मानों वह पणिनि का ही शब्द है—'तारीख़े च त्रितये त्रयोदशे। सुलतान शब्द का 'सुरत्राण' रूप संस्कृत काव्य ग्रन्थों में ही नहीं, मुसलमान बादशाहों के सिक्कों पर भी पाया जाता है।' मसीत (मसजिद) शब्द अनुप्रास के सांचे में बैठाकर 'अशीतिर्मसीति' बनाया गया है।

मुग़ल बादशाहों के ज़माने में देशी भाषाओं को बेहद प्रोत्साहन दिया गया। बाबर और उसके साथी आरम्भ में ईरानी ज़बान बोलते थे। थोड़े ही दिनों में उन्होंने अपने घरों में, दफ़्तरों में और दरबारों में हिन्दुस्तानी बोलनी शुरू की। हिन्दुस्तानी उनकी मातृभाषा बन गई, किन्तु उनका साहित्य और पत्र व्यवहार फ़ारसी में जारी रहा। सन् १७५० के क़रीब उन्होंने साहित्य के लिये भी हिन्दुस्तानी को अपनाना शुरू कर दिया। क़ुदरती तौर पर इस हिन्दुस्तानी में फ़ारसी और तुरकी के अधिक शब्द आगये, और शाही दरबार में यह भाषा इस्तेमाल होने पर और दिन प्रति दिन मंजने लगी। इसी से मुग़ल शासन के दिनों में उर्दू की नींव रखी गई। सम्राट बहादुरशाह उर्दू का सुन्दर कवि था।

दूसरी भारतीय भाषाओं ने भी मुग़ल काल में अपूर्व उन्नति की। सर जादुनाथ सरकार लिखते हैं—

"अकबर ही के अधीन हिन्दी में तुलसीदास और बङ्गला में वैष्णव लेखकों के प्रताप से एक ज़बरदस्त हिन्दू साहित्य देश की भाषाओं में पैदा हुआ।"

(Mughal Administration p. 146.)

दिनेशचन्द्र सेन जिनकी पुस्तक बङ्गला भाषा और साहित्य के इतिहास पर अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है, लिखते हैं—

"बङ्गला भाषा को साहित्य के पद तक पहुंचाने में कई प्रभावों ने काम किया है, जिनमें निस्सन्देह एक सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव मुसलमानों का बङ्गाल विजय करना था। यदि हिन्दू राजा स्वाधीन बने रहते, तो बङ्गला भाषा को राजाओं के दरबारों तक पहुंचने का मुशकिल से ही मौक़ा मिल सकता था"

(History of Bangala Language and Litrarature p. 10.)

श्री सेन आगे चलकर लिखते हैं—

"इस तरह की मिसालें बेहद मिलती हैं, जिनमें कि मुसलमान सम्राटों और सरदारों ने संस्कृत और फ़ारसी के ग्रन्थों का अपनी ओर से बङ्गला में अनुवाद कराया, और दूसरों को इस तरह के कामों में मदद दी। × × × हिन्दू राजाओं के दरबारों में बङ्गाली कवियों की नियुक्ति का रिवाज मुसलमान बादशाहों की देखा देखी शुरू हुआ। (Ibid P. P 13, 14)

बङ्गाल के मुसलमान बादशाहों के समान दक्खिन के बहमनी बादशाहों ने भी वहां के साहित्य और कला कौशल को ख़ूब उन्नति दी। आदिल शाही बादशाहों के दफ़्तरों में मराठी भाषा का उपयोग किया जाता था और मराठों को माल और सेना विभाग के उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। क़ुतुब शाह दक्खिनी ख़ुद मराठी भाषा का सुन्दर कवि था और साहित्य का बड़ा प्रेमी था।

हिन्दी या उर्दू उस समय किसी मज़हब विशेष या गिरोह विशेष की भाषायें न थीं। उन पर प्रत्येक भारतवासी का यकसां अधिकार था।

भाषा को लेकर जो यह मौजूदा विवाद खड़ा हुआ है, वह हमारी अङ्गरेज़ सरकार की कृपा से इसी बीसवीं सदी की उपज है। यदि हम हिन्दी और उर्दू के साहित्य को देखें, तो पिछले तीस बरस में दोनों साहित्यों में कोई विशेष प्रगति नहीं दिखाई देती।

युग का चित्र और कहीं मिले पर हिन्दी और उर्दू में नहीं मिलता। हमें आपस के ही झगड़ों से फ़ुर्सत नहीं मिलती। जो थोड़े बहुत नामधारी कलाकार हमारे अन्दर हुये, उनका एक मात्र लक्ष्य स्कूली किताबें लिखना रहा। निरर्थक कला के नाम पर हमारे कवि और साहित्यिक जीवन-दायिनी शक्ति से हीन साहित्य हमें देते रहे। परिणाम यह है कि आज हिन्दी में जो साहित्य है, उस पर हम किसी विदेशी के सामने अभिमान से सर ऊंचा नहीं कर सकते।

हिन्दी और उर्दू आज टेक्स्ट बुक के प्रकाशकों और चुनाव बाज़ों के हाथों का आन्दोलन बन गई हैं। हिन्दी समाचार पत्र आज हिन्दुस्तानी के विरोध में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ रहे हैं।

इन अक़्लमन्दों से मामूली सा प्रश्न किया जाय कि चीन की राष्ट्र-भाषा क्या है? जापान की राष्ट्र-भाषा क्या है? फ्रान्स की राष्ट्र भाषा क्या है? जर्मनी की राष्ट्र भाषा क्या है? उसका एक ही जवाब है चीनी, जापानी, फ्रान्सीसी और जर्मन। उसी तरह हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा भी हिन्दुस्तानी ही होनी चाहिये। जो देश का नाम हो वही भाषा का भी? शिकायत यह है कि उर्दू में अरबी फ़ारसी के शब्दों का बाहुल्य है। उर्दू का जो सब में बड़ा प्रामाणिक कोष है, उसमें ५६ हज़ार शब्दों की सूची है। इन ५६ हज़ार शब्दों में केवल ७-८ हज़ार शब्द फ़ारसी और अरबी के हैं बाक़ी सब भारत की भाषाओं के हैं।

रहा भाषा को क्लिष्ट बनाने की शिकायत तो उस दोष के दोषी हिन्दी उर्दू साहित्यकार दोनों हैं। हमें हिन्दी साहित्य का अनुभव है। इतने कठिन शब्दों की भरमार हिन्दी साहित्य में होनी शुरू हुई कि मामूली पाठक के पल्ले, तो पचास फ़ी सदी शब्द भी नहीं पड़ते थे। फिर अरबी फ़ारसी के प्रचलित शब्दों को बाहर निकालना तो असम्भव भी है। मसलन हर हिन्दू के यहां 'तवे' पर 'रोटी' बनती हैं। 'तवा' और रोटी' दोनों अरबी शब्द हैं। अब इन्हें छोड़कर आप "लौह कर्णिका" और "वृत्त पर्णिका" शब्द इस्तेमाल कीजिये और जब तक ये ठेठ अरबी शब्द बाहर न हो जांय, तब तक कट्टर हिन्दीवादी तवे पर रोटी पकाना छोड़ दें। बाज़ार की बनी हुई इमरती, बालूशाही, खस्ता, कलाकन्द, मालपुआ, हलवा, गुलाब जामुन, जलेबी आदि मिठाइयां छोड़कर हिन्दी व्रत धारी केवल खीर पर ही सन्तोष करें। कारण ये सब फ़ारसी शब्द हैं।

मुशकिल फ़ारसी, अरबी और संस्कृत शब्दों को बचा कर जो भाषा बने, वही हिन्दुस्तानी है। अगर हम ऐसी भाषा का विरोध करते हैं, तो वह हमारी संकुचित मनोवृत्ति का ही परिचायक है, हमारे हिन्दू द्वेष और मुसलिम द्वेष का परिणाम है। हम एक तीसरी शक्ति के हाथों में खेल रहे हैं। हमारे कट्टर हिन्दी पन्थी हिन्दुस्तानी के विरोध में "बेगम सीता" की मिसाल पेश करते हैं। इन पाखण्डियों को Queen Sita (क्वीन सीता) कहने में कोई लज्जा नहीं आती मगर बेगम सीता कहने में इनका धर्म बह जाता है। ग़ुलाम मनोवृत्ति की भी कोई हद है? इनसे पूछो आख़िर 'महारानी' का उर्दू में क्या तर्जुमा होगा? जो हाल हिन्दी वालों का है, वही हाल उर्दू वालों का है। दोनों के दिमाग़ों पर ग़ुलामी का पारा चढ़ गया है। विदेशी शासक हंसते हुये तमाशा देखते हैं। रहा लिपि रक्षा का प्रश्न। यदि एक ही लिपि क़ायम रह सकती तो हमारे देश का पांच हज़ार वर्ष पूर्व का जो गौरव पूर्ण इतिहास महंजो-दड़ो में बन्द पड़ा है, उससे हम अवगत होते। लिपि विशारदों की सारी मिहनत कई बरस से व्यर्थ जा रही है और वे उस लिपि को नहीं पढ़ पा रहे। हम अपने देश के महान इतिहास से आज अपरिचित हैं। जो व्यक्ति भाषा और लिपि को उसी तरह क़ायम रखने के स्वप्न देखता है, वह मूर्खों के स्वर्ग में रहता है। कोई भाषा और कोई लिपि न अब तक अमर हुई है और न हो सकती है।

सब से बड़ी शंका यह की जाती है कि हिन्दुस्तानी से सरकार का तात्पर्य ख़ालिस उर्दू से है। इस सम्बन्ध में सर विलियम मैरिस ने, जो युक्त प्रान्त

के गवर्नर थे, हिन्दुस्तानी एकेडेमी का उद्घाटन करते हुये कहा था—

"जिस सरकारी प्रस्ताव से यह एकेडेमी बनाई गई, वह हिन्दू और उर्दू को जोड़वां ज़बान समझता है और दोनों को एक ही नाम 'हिन्दुस्तानी' के मातहत शुमार करता है।

"मैं इस सवाल पर ज़ोर नहीं देना चाहता कि हिन्दी और उर्दू दो ज़बाने हैं या एक। मैं अपने को सिर्फ़ इस बयान तक ही महदूद रखूंगा कि उनमें किन्ही बातों में समानता है और किन्ही बातों में नहीं है।"

सरजार्ज ग्रिअरसन, जो इस सम्बन्ध के प्रामाणिक विद्वान हैं अपनी पुस्तक Linguistic Survey में लिखते हैं—

"हिन्दुस्तानी ख़ास तौर पर उत्तर दोआब की ज़बान और भारत की राष्ट्र-भाषा है। यह नागरी और फ़ारसी दोनों लिपि में लिखी जा सकती है। जब यह साहित्य के काम आती है, तब इस में मुशकिल उर्दू और हिन्दी शब्द का अधिक प्रयोग बचाया जाता है।"

इन बयानों के बाद सरकार की स्थिति बिलकुल साफ़ हो जाती है। उसकी नज़रों में हिन्दुस्तानी उस भाषा का नाम है, जो सरल हिन्दी और सरल उर्दू के मेल से बनती है। यही हमारी राष्ट्र भाषा है। रेडियो से कोई व्यक्ति ऐसी सरल भाषा यदि न बोल सके तो यह ग़रीब हिन्दुस्तानी का दोष नहीं

सन् १९२५ में कानपुर कांग्रेस अधिवेशन में श्रद्धेय बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन के प्रस्ताव पर अखिल भारतीय कॉंग्रेस महासभा ने हिन्दुस्तानी को अपनी कार्यवाही का माध्यम स्वीकार किया था।

ज़रूरत इस बात की थी कि हम इस तरह की भाषा की रचना में अपनी शक्ति का सदुपयोग करते; न कि कोरी लफ़्ज़ी बहस में पड़ कर अपनी शक्ति नष्ट करते। हम फिर एक बार दोहरा दें कि हिन्दुस्तानी की भाषा का स्वरूप जनता ही निर्धारित करेगी। किताबों से किसी देश की भाषा का निर्माण नहीं होता।

इसमे एक ख़तरा और भी है। संकुचित भावनाओं के नये नये दावेदार खड़े हो जावेंगे। उसकी एक मिसाल हमारे सामने है। सहयोगी 'नवशक्ति' में एक समाचार प्रकाशित हुआ है—

बिहार शिक्षा पुनर्सङ्गठन समिति की सिफ़ारिशों में प्रो० अमरनाथ झा का प्रस्ताव है कि बंगला की तरह मिथिला भाषा को भी प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम स्वीकार करना चाहिये। बंगालियों के ही समान मैथिलों का भी एक सांस्कृतिक अस्तित्व स्वीकार किया जाना चाहिये।

इस पर श्री राजेन्द्र प्रसाद की टिप्पणी है—कि यदि हर बोल चाल की भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया जाने लगे, तो उनकी तादाद बे शुमार हो जायगी। अगर मिथिला भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया जायगा. तो मागधी या मगही और भोजपुरी को भी स्वीकार करना होगा। डा० सच्चिदानन्द सिन्हा ने भी लिखा है कि मिथिला भाषा को प्रारम्भिक शिक्षा का माध्यम स्वीकार करने पर अनर्थ हो जाने की सम्भावना है।

अनर्थ हो या न हो। कट्टरता तो अधिक से अधिक संकुचित मार्ग ही ग्रहण करेगी। क्या हम आशा करें कि देश के सुलझे हुये विचारों के लोग हमारे सामने साहसपूर्वक सही सही मार्ग रखेंगे?

राजनैतिक क़ैदियों का वर्गीकरण

सन् १९३० से राजनैतिक क़ैदियों के वर्गीकरण के प्रश्न को लेकर कांग्रेसी क्षेत्रों में काफ़ी बहस मुबाहिसा रहा है। सन् १९३० में भारतवर्ष की विविध जेलों में 'सी' क्लास के सत्याग्रहियों के साथ अमानुषिक दुर्व्यवहार किया गया था। हमारे कतिपय नेताओं को 'ए' और 'बी' श्रेणी में रखकर सरकार अपने कर्तव्य से मुक्त हो गई थी। 'सी'-क्लास के सत्याग्रही अपनी अज्ञानता के कारण तरह तरह की सख्तियों के शिकार हुये। उनके बीच में उन्हें कोई

रास्ता दिखाने वाला न रहा। कितना करुणा जनक था वह दृश्य जब एक ही जेल में हमारे तथा कथित नेता अण्डा और मक्खन उड़ाते थे और ग़रीब किसान क़ैदी कोल्हू और चक्की में पीसे जाते थे। इस सारी तसवीर का शर्मनाक हिस्सा वह था जब हमारे बीसों ऊंचे से ऊंचे नेता अपने वर्गीकरण के लिये, यानी 'बी' से 'ए' क्लास के तबादले के लिये, ज़मीन आसमान के क़ुलाबे मिला रहे थे।

यरवदा जेल में 'सी' क्लास के क़ैदियों के साथ दुर्व्यवहार को देख कर गान्धी जी ने भी साधारण भाकरी (ज्वार की रोटी) खाने का निश्चय किया था। स्वर्गीय अब्बास तय्यब जी ने भी 'सी' क्लास का खाना शुरू कर दिया था। ८० वर्ष का बूढ़ा शरीर वह भोजन न सह पाया। जेल में उन्हें पेचिस हुई और अन्त में उनकी जान के साथ ही गई।

सत्याग्रह की समाप्ति पर सन् १९३१ के मई महीने में बनारस में, जो कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी की मीटिंग हुई, उसमें गान्धी जी ने चाहा कि वर्किङ्ग कमेटी सत्याग्रही बन्दियों के वर्गीकरण के विरुद्ध अपनी स्पष्ट राय मुल्क के सामने रखे। चार घण्टे इस पर बहस हुई। समाचार पत्रों में इस बात की चर्चा हुई थी कि गान्धी जी चाहते थे कि सत्याग्रही ए० और बी० क्लास लेने से इन्कार कर दें। मगर वर्किङ्ग कमेटी के दो प्रमुख सदस्यों ने गान्धी जी के इस मन्तव्य का घोर विरोध किया। बाद में संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की कौंसिल के सामने भी यह तजवीज़ आई, जो डेढ़ दिन की बहस के बाद गिरा दी गई। पिछले ५–७ बार की जेलों के अनुभव ने हमें यह बताया है कि नवयुवक कार्य कर्ताओं को 'बी' क्लास का मोह छोड़ कर 'सी' क्लास में ही ग़रीब सत्याग्रहियों के साथ रहना चाहिए। सन् १९३३ में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के कार्यकर्ताओं की एक सभा में इस आशय का एक प्रस्ताव भी रखा गया था। किन्तु किसी प्रान्तीय नेता ने हमारे उस प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया। उस प्रस्ताव के पास होने के बाद अकेले पं० जवाहर लाल जी ही ऐसे थे, जिन्होंने अपनी कलकत्ते की सज़ा पर मैजिस्ट्रेट से ऊंची क्लास न देने की ही प्रार्थना की थी।

यदि आज जेलों में 'सी' क्लास वालों की यह दुर्दशा है, तो उसकी ७५ फ़ी सदी ज़िम्मेवारी कांग्रेस के स्वार्थी नेताओं पर है। एक रफ़ी अहमद क़िदवई को यदि रेलवे के तीसरे दर्जे में सरकार ले जाती है, तो कांग्रेसी अख़बार गला फाड़ कर शोर मचाने लगते हैं। गोया रफ़ी साहब का रेलवे के तीसरे दर्जे से कोई ताल्लुक़ ही नहीं रहा। मिनिस्टर बनने से पहले वे बराबर तीसरे दर्जे में ही सफ़र करते थे। गान्धी जी इस अवस्था में भी तीसरे दर्जे में ही सफ़र करते हैं। अगर रफ़ी साहब ने एक रात तीसरे दर्जे में सफ़र कर लिया, तो कौन सी बिजली टूट पड़ी? कहा जाता है कि रफ़ी साहब को दिल की बीमारी है। हम सन् १९३२ के कम से कम तीन सत्याग्रहियों को जानते हैं जो दिल की बीमारी होने पर भी चक्की पीसने के लिये मजबूर किये जाते थे और अन्त में उनमें से दो भाइयों की जेल में ही मृत्यु हो गई। मगर किसी कांग्रेसी नेता के सर पर इस वाक़े से जूं तक न रेंगी। अब भी सैकड़ों सत्याग्रही 'सी' क्लास में तरह तरह की मुसीबतें भोग रहे हैं। मगर उनके लिए बाहर कोई आन्दोलन नहीं हो रहा है। ग़रीब राजनैतिक क़ैदियों का कोई पुरसां हाल नहीं है। राष्ट्रीय अख़बारों में ख़ाली इसी बात की चर्चा रहती है कि फ़लां आदमी को 'बी' क्लास क्यों नहीं दिया गया और फ़लां आदमी को 'ए' से 'बी' मे क्यों उतार दिया गया। हमारी राय में इस सवाल का उस समय तक कोई हल नहीं हो सकता, जब तक हमारे नेता क़ैदियों के वर्गी करण से साफ़ इन्कार नहीं कर देते। पिछले दिनों त्रिचना पल्ली जेल के 'ए' और 'बी' क्लास के क़ैदियों ने जब यह फ़ैसला किया कि वे अपना 'ए' क्लास छोड़ देंगे, तो हमें बेहद ख़ुशी हुई। क्या देश की दूसरी जेलों के क़ैदी भी इसी नीति को अपनाएंगे?

सिन्धी भाषा में अरबीयत

सिन्ध प्रान्त के शिक्षा मन्त्री शेख़ अब्दुल मजीद इस बात से सहमत हो गए हैं कि वे नई सिन्धी-शिक्षा पुस्तकों से शब्दों के अरबी हिज्जे निकाल देंगे—एशोटियेटेड प्रेस की यह खबर समाचार पत्रों में छपी है। सच पूछा जाय, तो यह समस्या आज भारत की बहुत सी भाषाओं के सामने है। बंगला में लिखा जाता है स्मशान और पढ़ा जाता है 'सशान' लिखा जाता है 'पद्मा', 'लक्ष्मी' और 'महात्मा' पर पढ़ा जाता है 'पद्दा' 'लक्खी' और 'महात्ता'। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टाकुर ने इस दिशा में क़दम उठाकर यह फ़ैसला किया कि जिस तरह पढ़ा जाता है, उसी तरह हिज्जे भी की जाय। हिन्दी में गोस्वामी तुलसीदास जी ने जनता के उच्चारणों को देखते हुए 'क्ष'; 'लृ', 'ष' आदि के उपयोग से ही छुट्टी पाली। इधर कुछ वर्षों से हम देख रहे हैं कि मुसलमानों में अरबी उच्चरण और अरबी हिज्जे पर ज़ोर बढ़ता जा रहा है। जिस क्लिष्टता से सदियों के प्रयत्न के बाद भाषा और लिपि को छुट्टी मिली थी, वह सम्प्रदायवाद के जोश में फिर से वापस आ रही है। इसीलिए सिन्ध की इस खबर को पढ़कर हमें बड़ा सन्तोष हुआ।

स्व० हेनरी बर्गसां

समाचार पत्रों में पाठकों ने फ्रांस के प्रसिद्ध दार्शनिक श्री हेनरी बर्गसां की मृत्यु का समाचार पढ़ा होगा। श्री हेनरी बर्गसां अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान थे। गत महायुद्ध के बाद उन्होंने अपना सारा समय अन्तराष्ट्रीय राजनीति की ओर लगाया। वे कमेटी आफ़ इन्टलेकचुअल कोआपरेशन के सदर रहे। १९२८ में उन्हें साहित्य का नोबुल पुरस्कार मिला। दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने अपनी नई धारा ही बहाई। उनके सिद्धान्तों के सम्बन्ध में हम "विश्ववाणी" के पाठकों को किसी अगले अंक में विस्तार के साथ बताएंगे।

श्री बर्गसाँ की मृत्यु से दर्शन के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी खाई पड़ गई है।

स्व० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल!

गत ३ फ़रवरी को काशी में पण्डित रामचन्द्र शुक्ल की मृत्यु हो गई।

स्व० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य के विद्वानों में एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे, उन्होंने हिन्दी साहित्य में सम्यक समालोचना की नींव रखी। स्व० शुक्ल जी के साहित्य-जगत में आने के पहले हिन्दी में समालोचना विकसित न हो पाई थी।

स्व० शुक्ल जी ने नागरी प्रचारिणी सभा के सहयोग से जिन ग्रन्थों की रचना की है, वे ही आज हिन्दी साहित्य के प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। वैसे तो हिन्दी में हिन्दी साहित्य का इतिहास, इतिहास की संज्ञा पाने लायक आज तक कोई नहीं है; पर फिर भी शुक्ल जी ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिख कर इस दिशा में इतना प्रारम्भिक काम कर दिया है कि अब यह आसान हो सकता है। 'काव्य में रहस्यवाद' इस प्रवृत्ति पर एक अच्छा विवेचनात्मक निबन्ध है। उनका 'तुलसीदास' तुलसीदास की ही स्पिरिट में है और वह तुलसीदास को समझने के लिए एक ही चीज़ है। पर इन सब के अलावा, उन्होंने जो सब से महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ लिखा है, वह है "जायसी"। किसी भी समालोचनात्मक ग्रन्थ में जिन जिन तत्वों की ज़रूरत होती है, वे सभी इस महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ में पूर्ण विकसित मात्रा में मौजूद हैं। हिन्दी में समालोचना का ऐसा ग्रन्थ हमने नहीं देखा।

उन्होंने बहुत से नये लेखकों को उत्साह दे देकर ऊपर उठाया और उनको बनाया। स्व० शुक्ल जी की साहित्य-साधना को देखते हुए हम कह सकते हैं कि वह व्यक्ति नहीं अपने आप में हिन्दी साहित्य की एक संस्था थे। शुक्ल जी की मृत्यु से हिन्दी-साहित्य-जगत आज निर्धन और दुःखी है।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद।

अप्रैल १९४१

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

वार्षिक मूल्य ६)

इस अङ्क के प्रमुख लेखक

एक अंक का ।।=)

विश्ववाणी सहयोगियों की नज़रों में

'विश्ववाणी' ने भारत की राजनीति और साहित्य में एक नया अध्याय खोला है। हम अपने आदर्शों की महानता, अपने उद्देश्यों की गम्भीरता और अपने मार्ग के कंटकों को खूब समझते हैं। देश के विख्यात नेताओं और विद्वानों ने 'विश्ववाणी' का जो अपूर्व स्वागत किया, वह हम छाप चुके हैं। अब हम यहां देश के हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू के प्रतिष्ठित पत्रों की राय पाठकों के सामने पेश कर रहे हैं।

LEADER

Allahabad, 27th January, 1941.

The 'Vshva-Vani' a new Hindi monthly published from Allahabad under the editorship of Mr. Vishwambhar Nath and the direction and supervision of Pandit Sundar Lal, bids fair to take a place of eminence among the Indian periodicals Its first number, for the month of January, replete with outstanding contributions from prominent personalities of national and international renown, gives promise of breaking up a new path in Hindi journalism. Making its appearance in such troubled times, it seeks to study thoroughly the deeper causes of the terrible malady which holds humanity in its destructive grips, and to spread the message of universal love and peace transcending all barriers of race and religion or colour and creed, and emphasizing all those powerful but little understood forces of human history, that make for the unity and indivisibility of mankind. If one were to judge from the fare presented in its inaugural issue, it can be confidently hoped that the journal will prove equal to the laudable task it has set itself to achieve

In his inspiring article on 'Eastern vs. Western Civilization,' Sir S. Radhakrishnan puts forth a strong plea for the development of a system of a philosophy combining the materialism of the west with the spiritualism of the East and embracing all human race in its protective fold. Dr. Syed Mahmud discusses the nature and effect of 'Muslim Invasions of India' with special reference to the present day communal controversy; while Dr. Mehdi Hussian points out how books written on history have widened the gulf between the two communities, and suggests the ideal mode of the presentation of our history.

Among other important contributions may be mentioned those of Pandit Sundar Lal (on Ancient Aryan civilization in Turkey and a glimpse of Sevagram) Mr. Mahadeo Desai (on the visit of H. E. Tai Chi-Tao to Gandhiji) Maulana Abul Kalam Azad (on the one-ness of all religions) Prof. Tan Yun Shan (on Developments in China) Mr. F. R. Miller (on Experience of an air-raid) and Mr Manzar Ali Sokhta (on The Implications of India's non-violent struggle). Besides there are several other weighty articles, interspersed with bright poems, stories and skits, by such eminent writers as Poet Tagore, Yogi Arvind, Sohanlal Dwivedi, Miss E R. Bennet, Miss Tyabjee, Pandit Deen Dayal Shastri, Prof. Dharam Deo Shastri and Pandit Mohanlal Nehru—all setting a high standard in form and content.

HINDUSTAN STANDARD

Calcutta, 9th March 1941.

There is a no dearth of newspapers and magazines in Hindi But from a perusal of the January and February issues of Vishwa-Vani, we are convinced that it has entered the field of Hindi journalism with a full responsibility of searching for the basic principles of human life and of guiding ways and means for their effective application. As the name, given to it by Gurudev Ravindranath Tagore, implies it has attempted in its own admirable way to record and interpret the voice of the time spirit. It has successfully tried to catch and reproduce those underlying echoes of human history which represent its great unity, harmony and synthesis, and which help to link its various stages, past present and future into a common whole It has tried to examine and analyse those vast currents of thought and activity which are at present influencing human society and laying down the foundations of the life to come It has thus approached life in all its aspects and dealt with all factors and forces which are tending to mould the world.

In the editorial for January we are assured by the learned editor the able disciple of Pandit Sundarlalji the celebrated author of British Rule in India', that Vishwa Vani in its external out look will follow the lines foreshadowed above Internally it will try to interpret the voice of India's history and the cry of India's soul—the unity of its great ideals the communion of fellowship of its men and women, which made it the asylum, the home and the family centre of every race and creed that catered its hospitable doors.

In short this magazine both for India and outside, will stand for a common humanity, for the moralization of politics, for a harmony of

human thought and effort for the eradication of communal and racial antagonism, for the establishment of economic justice and equality, for self-determination and self-sufficiency, in a word for the attainment, of a fuller, richer and more balanced life, national and international.

The January issue contains contributions on Eastern versus Western civilization by Sri Radhakrishnan Introduction to Chinese History by Prof. Tan Yun Shan, Present war and Islamic world by Dr. K. M. Ashraf, One Religion by Rashtrapati Azad Modern Turkey by Bay Bulgi Indian Art by Dr. James Cousins besides many other learned contributions on Maratha History, Turkish Culture, International Politics etc

The February number is a great improvement upon the January one It contains articles from the pen of Dr Bhupendranath Datta on Afghan History, Prof Chintamani Kar on Artist and Politics

We wish every success to Vishwa Vani

आज

बनारस, ३ फ़रवरी, १९४१

इसी जनवरी मे प्रयाग से कर्मवीर श्री सुन्दरलाल जी के संरक्षण में यह पत्रिका निकलने लगी है। पत्रिका का उद्देश्य है—'देश के अन्दर और बाहर मनुष्य मात्र की एकता और समता का प्रतिपादन करना, राजनीति का सदाचार के साथ नाता जोड़ना, समस्त मनुष्य-समाज के विचारों और प्रयत्नों में सामंजस्य लाने और दर्शाने की चेष्टा करना, धर्मों, जातियों और सम्प्रदायों के विरोध को मिटाने का प्रयत्न करना, आर्थिक क्षेत्र में न्याय और समता कायम करने की कोशिश करना, मनुष्य मात्रके लिये स्वतंत्रता, स्वराज्य और स्वावलम्बन का समर्थन करना और अधिक पूर्ण, अधिक समृद्ध, अधिक सुखमय, अधिक प्रेममय और अधिक संयुक्त राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन तक पहुंचने में पाठकों का अपनी शक्तिभर हाथ बंटाना। प्रस्तुत अंक को देखकर अनुमान होता है कि पत्रिका अपने पावन उद्देश्य में अवश्य सफल होगी। देश के विद्वानों और नेताओं का सहयोग पत्रिका को प्राप्त है। इस अंक में और लेख तो पठनीय हैं ही, पर 'सेवा गांव की एक झलक', 'प्रीतम का प्यादा', 'आज़ाद हिन्दुस्तान में न फौज होगी न हथियार होंगे',—ये लेख सभी को पढ़कर देखना चाहिये।

प्रताप

कानपुर, २ मार्च, १९४१

इस वर्ष जनवरी महीने से इस नयी मासिक पत्रिका का जन्म हुआ है। इसे 'भारत में अंग्रेजी राज' के प्रसिद्ध लेखक पं० सुन्दरलाल की संरक्षता प्राप्त है। पं० सुन्दरलाल जी विद्वान, और अध्ययन परायण ही नहीं, अच्छे लेखक भी हैं। उनकी लेखनी में पाण्डित्य के साथ साथ ओज, बल और प्राञ्जलता भी है। उनकी संरक्षता एवं छत्रछाया में होने के कारण इस पत्रिका का भविष्य उज्ज्वल और महान है। यह पत्रिका मानव मात्र की एकता और समता का प्रतिपादन करने, धर्मों, जातियों और सम्प्रदायों को मिटाने, आर्थिक-जगत में न्याय और समता कायम करने के लिए, स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन का समर्थन करने, एवं युग की आवाज को बुलन्द करने और भारतीय आत्मा की पुकार सुनाने के महान उद्देश्य से अवतरित हुई है। इस पत्रिका के

दो अङ्क निकल चुके हैं। दोनों अपने महान उद्देश्य के अनुरूप हैं। दोनों अङ्कों के प्राय: सभी लेख सुन्दर, गम्भीर, विचारपूर्ण और मननीय हैं। इस पत्रिका के लेखकों में सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, डा० सैयद महमूद, प्रो० तान युन शान, श्री मंज़र अली सोख़्ता, और पं० सुन्दरलाल के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके लेख बहुत अच्छे विद्वत्ता-पूर्ण और पठनीय हैं। दोनों अंकों में लेखों के अतिरिक्त सुन्दर और मनोरंजक कहानियां तथा भावपूर्ण कवितायें भी हैं। यह हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह पत्रिका हिन्दी संसार में अपने ढंग की अकेली है। हम इस पत्रिका का स्वागत करते हैं। हमें आशा है कि यह हिन्दी-संसार में आदर और सम्मान प्राप्त करेगी।

देशदूत

इलाहाबाद, ९ मार्च, १९४१

यह पत्रिका गत जनवरी मास से कर्मवीर पण्डित सुन्दरलाल की संरक्षणता में प्रकाशित होने लगी है। पत्रिका को देश के श्रेष्ठ नेताओं तथा ख्यातनामा लेखकों का सहयोग प्राप्त है। इसका दूसरा अंक हमारे सम्मुख है। सभी लेख बहुत ही उच्चकोटि के तथा विचारपूर्ण हैं। 'विश्ववाणी' का उद्देश्य सम्पूर्ण विश्व की संस्कृति के एकत्व को जनता तक पहुँचा कर साम्प्रदायिकता की भावना को नष्ट कर देना है। सहयोगी के उद्देश्य निस्सन्देह बहुत ही ऊंचे हैं। पत्रिका अत्यन्त प्रगतिशील तथा विचारपूर्ण सामग्री हिन्दी-भाषा-भाषी जनता के सम्मुख प्रस्तुत करेगी, ऐसा हमें विश्वास है।

योगी

पटना, २४ जनवरी, १९४१

पण्डित सुन्दरलाल जी हिन्दी-साहित्य मन्दिर के भारत विख्यात तपोनिष्ठ पुजारी हैं। हिन्दी की अन्य सेवायें दर किनार, एक 'भारत में अंग्रेजी राज्य' ने ही उन्हें इतना प्रसिद्ध किया कि हिन्दी-भाषी प्रान्त का बच्चा बच्चा उन्हें जान चुका है। हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित होने के नाते पण्डितजी का आदरणीय स्थान है ही, साथ ही अंग्रेजी, संस्कृत और फ़ारसी के भी आप अच्छे विद्वान हैं। संस्कृत और फ़ारसी का जितना गहरा अध्ययन आपने किया है, उतना शायद ही किसी हिन्दी-सेवी ने किया हो। ऐसे ही व्यक्ति के संरक्षण में 'विश्ववाणी' निकल रही है। इसका प्रथम अंक हमारे सामने है।

लेखों का जैसा चयन इस प्रथम अंक में हुआ है। अगर यही क्रम जारी रहा, तो निस्संकोच यह कहा जा सकेगा कि 'विश्ववाणी' हिन्दी-साहित्य की सर्व श्रेष्ठ पत्रिका है। हम यही आशा करते हैं कि 'विश्ववाणी' का स्टैण्डर्ड दिन ब दिन उन्नति करता जायगा। 'विश्ववाणी' के संरक्षक तथा सम्पादक के सदुद्देश्यों के साथ हमारी सहानुभूति तथा शुभ कामना है और हम उन्हें पत्र की सुन्दर छपाई, सुपाठ्य सामग्री का संकलन, तथा अन्य विशेषताओं के लिये हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

नवशक्ति

पटना, ८ मार्च, १९४१

जनवरी १९४१ से इलाहाबाद से यह एक नया सर्वाङ्ग सुन्दर मासिक पत्र निकलने लगा है। इस पत्रिका के संरक्षक या संस्थापक 'भारत में अंग्रेजी राज' प्रणेता पं० सुन्दरलाल का नाम बहुतों ने सुना होगा। पण्डित जी के निदर्शन में यह पत्रिका बहुत ही सुन्दर निकल रही है। जहां तक गम्भीर पाठ्य-सामग्री का सम्बन्ध है, अभी तक के प्रकाशित तीन अंकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी में अभी तक इस कोटि की एक भी मासिक पत्रिका नहीं है। इस दृष्टि से यह अंग्रेजी के सुसम्पादित मासिक पत्रों का मुकाबला कर सकती है। हम 'विश्ववाणी' का मुक्त हृदय से स्वागत करते हैं।

स्वराज्य

खंडवा, १४ जनवरी, १९४१

जनवरी १९४१ में पंडित सुन्दरलालजी की संरक्षणता में तथा श्री विश्वम्भर नाथ के संपादकत्व में प्रयाग से 'विश्ववाणी' मासिक-पत्रिका निकलने लगी है। मनुष्यमात्र की समानता और विश्वप्रेम का प्रतिपादन करने के लिये 'वाणी' ने जन्म लिया है। अपने उद्देश्यों के अनुरूप प्रथम पृष्ठ पर ही, प्रख्यात समतावादी मुग़ल राजपुत्र दाराशिकोह की पराजय पर लिखी श्री विश्वम्भरनाथ जी की कविता है जो हिन्दू मुसलिम एकता का आध्यात्मिक दृष्टि लिये हुये है। इसी उद्देश्य की पूर्ति में श्री सुन्दरलालजी, श्री मंज़ूरअली सोख्ता तथा अन्य विचारशील लेखकों के सांस्कृतिक और साम्प्रदायिक एकता के बढ़ाने की दिशा में इंगित करने वाले सुन्दर पठनीय एवं ज्ञान-वर्धक लेखादि प्रकाशित हुये हैं। हिंदी में आज भी 'विश्ववाणी' जैसी उच्च कोटि की मासिक-पत्रिका की आवश्यकता है। हम इस नूतन सत्साहस का स्थायित्व एवं सफलता चाहते हैं।

नई दुनिया

वर्धा, फरवरी, १९४१

विश्ववाणी के दो अंक सामने हैं। हिन्दी की प्रथम श्रेणी की पत्रिकाओं में तो यह गिनी ही जायगी, साथ ही इसकी कुछ विशेषता भी रहेगी। सचित्र और सुरुचिपूर्ण लेखों का सुन्दर संग्रह तो इसमें है ही, साथ ही लेखकों में हिन्दू और मुसल्मान दोनों क़ौमों के अच्छे अच्छे नाम हैं। हिन्दू-मुसलिम एकता के लिये अनेक तरह की—ख़ास कर ऐतिहासिक—सामग्री इसने रक्खी है। राष्ट्रीयता के साथ सांस्कृतिक एकता और मानवहित इस पत्रिका का लक्ष्य है। देशभक्त पण्डित सुन्दरलाल जी इसके संरक्षक हैं इसी से इस पत्र की निष्पक्षता और सुरुचिपूर्णता का पता लग सकता है। पत्र में बहुत ही गम्भीर विचार पूर्ण लेख हैं। हम पत्रिका की हर एक दृष्टि से सफलता चाहते हैं और इसके संचालकों को इस प्रयत्न के लिये बधाई देते हैं।

जीवन-साहित्य

नई दिल्ली, मार्च, १९४१

हिन्दी में पं० सुन्दरलालजी के संरक्षकत्व में एक प्रभावशाली पत्रिका प्रकाशित होने लगी है—'विश्ववाणी'। इसके दो अंक अभी तक निकले हैं। मानव-जाति के उत्थान व कल्याण के लिए राष्ट्रीयता से अधिक गहरा व पुख्ता आधार है संस्कारिता का। इस सांस्कृतिक नींव पर 'विश्ववाणी' भारतीय एकता के संदेश को लेकर आई है, जो धार्मिक व सामाजिक संकुचित स्वार्थों से छिन्न-भिन्न हो रहे, इस अभागे देश के लिए इस समय भूखे को भोजन व मरते को संजीवनी बूटी पिलाने के समान आवश्यक व सामयिक है। जिस कोटि के लेखकों का सहयोग इसे अब तक प्राप्त हुआ है, वह एक हिन्दी पत्रिका के लिए वास्तव में गौरवपूर्ण है। जिन विषयों पर अब तक लेख आये हैं, वे पत्रिका के उद्देश के पूरक व पाठकों की बुद्धि व अंतःकरण को अच्छा भोजन देने वाले हैं। मैं इसका स्वागत करता हूं।

विशाल भारत

कलकत्ता, माघ, १९९७

हमारे सामने "विश्ववाणी" के प्रथम दो अंक हैं। दोनों ही अंकों में उच्चकोटि के लेख हैं। पहले अंक में 'सामूगढ़ में दाराशिकोह की पराजय' शीर्षक कविता बहुत सुन्दर है और दाराशिकोह का रंगीन चित्र भी कलापूर्ण और भावपूर्ण है। श्री सुन्दरलाल जी का 'तुर्की में पांच हज़ार वर्ष पुरानी आर्य सभ्यता के खंडहर' शीर्षक लेख, डाक्टर अशरफ़ का 'इस्लामी दुनिया और मौजूदा जंग' और डाक्टर मेंहदी हुसैन का

'हिन्दुस्तान में इतिहास कैसे लिखा जाय' बहुत अच्छे और विचारपूर्ण हैं। फ़रवरी अंक में श्री सुन्दरलालजी का 'हमारे नैतिक आदर्श' श्री विनोबा का 'साहित्य की दिशा भूल' और श्री सोख़्ता साहब का 'आज़ाद हिन्दुस्तान में न फ़ौज होगी न हथियार' पठनीय तथा विचारपूर्ण हैं।

हम पत्रिका की सफलता की कामना करते हैं।

ओरियण्टल कालेज मैगज़ीन

लाहौर, फरवरी, १९४१

"विश्ववाणी" हिन्दी का माहवारी रिसाला है, जिसका पहला नम्बर जनवरी १९४१ में निकला। पं० विश्वम्भर नाथ इसके एडिटर हैं। "विश्ववाणी" के अग़राज़ व मक़ासिद है हिन्दुस्तान के साथ साथ दीगर ममालिक के पोलिटिकल हालात का मताला करना और उनकी गुज़श्ता तारीख़ और मौजूदा हालत की सच्ची तसवीर खींचना। इसका नसबुल-ऐन है हिन्दुस्तान की मुकम्मिल आज़ादी का हासिल करना, जिसकी कामयाबी के लिए यह हिन्दू-मुसलिम इत्तफ़ाक़ व दीगर अक़वाम के बाहमी मेल जोल का हामी है। इसका यह भी अक़ीदा है कि हिन्दू मुसलिम निफ़ाक़ की वजह मुल्क की पोलिटिकल ग़ुलामी है।

पहले पर्चे के मज़ामीन इसके अग़राज़ व मक़ासिद की काफ़ी ताईद कर रहे हैं। अक्सर देखने में आता है कि उर्दू रिसालों में हिन्दुओं की क़लम से और हिन्दी रिसालों में मुसलमानों की क़लम से शाज़ व नादिर ही काम लिया जाता है। बरअक्स इसके "विश्ववाणी" के नामनिगार मज़हब के रू से हिन्दू-मुसलिम ईसाई वग़ैरह और क़ौमियत की रू से हिन्दुस्तानी, अंग्रेज़ और चीनी वग़ैरह हैं। श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के नाम ख़ास तौर पर क़ाबिल ज़िक्र हैं।

"विश्ववाणी" के मज़ामीन का मैयार भी बहुत ऊंचा है। जो मज़मून निगारों की आला तालीम और आज़ाद ख़्यालात का सबूत है।

ज़बान के लिहाज़ से "विश्ववाणी" सचमुच हिन्दू-मुसलिम इत्तिहाद का नमूना है। यह हिन्दी और उर्दू का ख़ुशज़ायका मुरक्कब है। आम तौर पर उर्दू में संस्कृत अलफ़ाज़ का और हिन्दी में अरबी फ़ारसी अलफ़ाज़ का इस्तेमाल ममनूअ़ समझा जाता है। ख़्वाह अंग्रेज़ी अलफ़ाज़ मुहावरे और तरकीबों की दोनों में भरमार हो जावे। लेकिन "विश्ववाणी" में बाज़ जगह एक ही फ़िक़रे में अरबी, फ़ारसी और संस्कृत तीनों के अलफ़ाज़ मौजूद हैं। ख़ुद एडिटर साहब के अपने नोट में पचासों अलफ़ाज़ अरबी फ़ारसी के मौजूद हैं। मैं तो इसी को सच्चे मानों में हिन्दुस्तानी ज़बान कहूंगा, जिसकी हिमायत मुकम्मिल आज़ादी चाहने वाली कांग्रेस ने की है। क्लासिकल ज़बानों की मदद बग़ैर आम बोल चाल की कोई भी ज़बान इल्मी ज़बान होने का दम नहीं भर सकती। इसलिये हिन्दुस्तान की मुल्की और इल्मी ज़बान वही हो सकती है, जिसकी पुश्त पनाह इस मुल्क की क्लासिकल ज़बानें यानी अरबी, फ़ारसी और संस्कृत हो। पस "विश्ववाणी" मुल्क के हर एक मुहब्बे वतन से हमदर्दी और ख़ैरख़्वाही की मुस्तहक़ है।

डा० बनारसी दास जैन
एम ए०, पी० एच० डी०

सूचना

विषय-सूची

अप्रैल १९४१

(९) एक मात्र निःशस्त्र देश,
(१०) ब्रिटेन के लड़ाई के उद्देश्य,
(११) मेताक्सा का जनतन्त्र,
(१२) पराजित चीनी प्रान्तों की भीतरी हालत,
(१३) नाज़ी जरमनी की भीतरी हालत,
(१४) वाई० एम० सी० ए० का प्रशंसनीय कार्य
(१५) क्वेकर रिकार्डों की रक्षा,
(१६) अदल सम्मेलन,
(१७) शेरख़ानी मोल,
(१८) सिद्धान्त की बात,
(१९) भेद की गहराई,
(२०) स्व० शाह मुहम्मद सुलेमान,
(२१) स्व० ग्रिअर्सन,
(२२) दीनबन्धु एण्ड्रूज़,
(२३) राष्ट्रीय सप्ताह,
(२४) सरहदी धावे,
(२५) शाम की परिस्थिति,
(२६) मैसूर में मादक द्रव्य निषेध।

आर्ट पेपर पर चित्र—२०

बापू

श्री कनु गान्धी के सौजन्य से]

विश्ववाणी

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ

वर्ष १ | अप्रैल, १९४१ | अङ्क ४

सेवाग्राम-आश्रम

(१)

श्री प्रभाकर माचवे

—भारतीय संस्कृति का तत्वम्
यहा पूर्व-पश्चिम का सङ्गम
यहा संयमित-से जड़-जङ्गम
सरल, शुद्ध, जीवन क्रम !

—यह छोटा सा गाँव
बैर-डाह या फूट-ग्राह की यहा न कोई छांव !
दृष्टि ने खुला-खुलापन देखा
खेतों की इक ओर हरी-सी रेखा···
शुद्ध नीर औ सादा भोजन
हरा शाक औ दुग्धायोजन
यहा न कृत्रिमता की छाया
(वैसे अपने शहरी जीवन—
में इतना व्यापा है तन-मन
जो लगता सब कुछ ही वांपर कृत्रिम और पराया)
इस आश्रम में आकर पाया
काया को सब समझे काया !

—देखा है अन्यत्र
लोग क्या-क्या पोशाकें चित्र-विचित्र—
किये, मलते हैं सेंट-इत्र
और यहा पर, मिट्टी को मिट्टी की क़ीमत
मिट्टी ही समझे हैं न्यामत
'मिट्टी से मैंने मिट्टी के सारे बर्तन डाले माज
दो-दो कौर जहा महगे हैं,
उस भू पर सुख की आवाज ?
तुम्हें गुलामों कैसी लाज ?
दिल्ली दूर कि दूर स्वराज !

—यहाँ सत्य-श्रम की पूजा है
यहाँ वही आवेगा कोई खूब असत् से जो जूझा है
यहा वही ईसा की सूजी
नयन - मार्ग से ऊंट निकाला,
पर ओ धनिक तुम्हारे खातिर,
जन्नत के दरवाज़े ताला !

—यहाँ मनुज हैं सारे
प्रभु के प्यारे, प्रभु के ही बेचारे।
यहां सभी यकसा हैं;
चाहे मुसलमान, ईसाई,—हों मसीह की भेड़ें
चाहे यूरोपीय, चिनाई,—हों गौतम के चेले
सभी यहां हैं भाई-भाई
सब हैं उसी सत्य के राही!
जो राह बड़ी अटपट रे
कितने ही तो थकते जाते
कितने ही तो हटते जाते
यह क्रान्ति नहीं झटपट रे!

—पहिले अन्तः शुद्धि-नींव यह खोदो, खोदो, खोदो
संस्कारों की चट्टानें तोड़ो!
अति कठोर, अति प्रिय यह निजका निजपर शासन
पर उसके बिना न मिलता वह सिंहासन,
जो खून सना नहिं प्रेम तन्तु से निर्मित
जिसमें समता, समृद्धि, शान्ति अन्तर्हित!

—मुफ्त यहाँ आकाश, मुफ्त आत्माएं
सायंप्रातः जो गाएं—
स्थितप्रज्ञ के मानी
अथवा तुलसी की बानी
बस, राम नाम ही सत्य यही है
जो अनित्य वह नित्य यही है!
धन्य भगवती गीता
ओ अपरिमिता सुविनीता!

—यह खेतीहर
इनके ये कच्चे छोटे घर।
करघा कात रहे हैं सब
(पर रह-रह सूत कभी टूटे हैं)
इतने सारे हाथ जुटे हैं।
ये वे हाथ कि जिनने हँस-हँस लौह-शृङ्खला पहरी
ये वे हाथ कि जिनने मिट्टी की सेवा की गहरी!

—कर्म मार्ग से बुद्धि यहाँ पर हुई भक्ति की चेरी।
यहाँ दिशान्ध अँधेरी। मिट्टी हुई स्वर्ण की ढेरी!

—यह 'बापू' की कुटिया
(जैसे कोई बुढ़िया—
झुर्रियों भरी चेहरे की
पर आंखें ज्योतित देखीं?)
यह छोटा सा बाग, बांस का दरवाजा,
बालू का आंगन, मिट्टी की दीवारें,
कवेलुओं का छत, वर्तुल वातायन
यों प्रासाद-महल-अट्टाएँ
सब न्यौछावर हैं सब घटिया—.
यह बापू की कुटिया!
यों ऐयाशी रौगन
निखरा सात्विक जीवन

—रे दूर यहां कोलाहल
यान्त्रिक स्पर्द्धा की हलचल
मानव मानव गत शोषण
यों पर आंखों से ओझल
केवल करुणा का पोषण
देवत्व-अर्चना प्रतिपल
(पर शंका उठती रह-रह
यह अन्ध तो नहीं है आग्रह?
दृग छलछल······शंका तो छल···)

—'पर ओ द्रष्टा, तुम बहुत दूर मत देखो
नजदीक न भूले। बचा रखो अपने को—
आदर्श-स्वप्न की मोह-नगरिया से, ओ—
खो जाय न आंखें खुलते ही वह सपना।
खेओ अपनी तरी, माझी, निश्चय खेओ
पर विचार तुमसे भूल न जाये अपना
हो लक्ष्य किनारा, और नहीं ध्रुवतारा'
'पर एक न मिलता जब तक दूजे का न सहारा!'

(२)

वह बूढ़ा दुर्बल किसान !

वह बूढ़ा दुर्बल किसान !
कितना बूढ़ा, फिर भी जवान !!
कितना दुर्बल, कितना महान !!!

वह बूढ़ा दुर्बल तंतुकार
जो कात रहा है तार-तार,
जिस पर जीता संसार-सार,
जिसने जग का विष पी अपार—
बांटा जग को पियूष प्यार !
वह वीर विचारक निर्विकार !!

जिस तंतुकार ने ढंका आज—
जग का नंगापन, रखी लाज।
कांटों का पहने हुए ताज !
वह अस्थि-पुञ्ज, जिसका कि वजन*
मुश्किल से होगा रे दो मन !
दो मन ! होंगे उसको न सहन।
सत्याधारित जिसका जीवन,
छूते न जिसे झूठे बन्धन,
जो अनासक्त, उसको वन्दन !

चौड़ा कपाल, माथा सुडौल,
आंखें भूरी, भोली, चिलोल
उन पर ऐनक के अर्ध गोल।

लम्बी सी नासा, बड़े कान,
चेहरा, कि झुर्रियों का मकान,
वह बूढ़ा दुर्बल भूमि प्राण !
वह बूढ़ा दुर्बल तंतुकार
जिसने देखा भवसिन्धु पार
औ' देखा जिसने बिंदु - क्षार !†
लाखों की आंखों का उफ़ान,
इक दन्तहीन स्मिति, सब समान।
सुख-दुख हैं जिसके एकतान !

धीमे-धीमे अति सरल बोल
दिन भर श्रम-अविरत, श्रम अमोल !
चलना वह भी पग तौल-तौल

खद्दर की चादर, दीन वेष,
निःशेष अहम्, ममता अशेष।
झेले स्वदेश के लिये क्लेश।
जिसने रक्खा मन में न लेश—
सिद्धान्तों के प्रति पशोपेश।
अति-संयममय, अति निरावेश !!१

सादा भोजन, सादा लिबास
सादा लेखन औ वाग्विलास।
देवत्व - सदा करता निवास
जिसके संग, जिसके आसपास।
जिसकी आत्मा का शुभ प्रयास—
चिर-ध्येयोन्मुख। जो नहीं दास।
वह बूढ़ा दुर्बल तंतुकार,
है उसे हमारा नमस्कार
चालीस कोटि जन बारबार
श्रद्धायुत करते नमस्कार—
'हे अति-महिमामय, हे उदार !!

'तुझ में हिमाद्रि की महा शक्ति,
तुझ में गंगा की प्रखर भक्ति।
तुझ में निर्व्यक्तिक महा-व्यक्ति।२
तुझ में विंध्या का धीर ओज,
है रेवा का गम्भीर सोज़।
'सत' की कितनी बेपीर खोज !३

'तुझ में सागर का महागान
नीरवता उतनी भासमान
जितना नीरव है आसमान।
ओ बूढ़े से दुर्बल किसान !';

* बापू का वजन १३२ पौंड है।
† बिन्दु का क्षार—आंसू, नमक।

१ निरावेश—आवेश शून्य।
२ Impersonal personality.
३ सोज़—व्यथा।

(३)

वह मुक्त-हास्य !

वह मुस्कान सरल सुमनों सी, शिशु सी निश्छल, पीठी, पावन
वह अतिशय उन्मुक्त हँसी ज्यों बरस पड़े हों सौ-सौ सावन।
दन्तहीन उस रूपहीन स्मिति में अन्तः-सौन्दर्य सन्निहित।
आशा के नवलवोन्मेष सी; घृणा, लोभ, ईर्ष्या से विरहित।

वह निष्काम हँसी जिसका कुछ ईप्सित औ इत्यर्थ नहीं है
तज 'आनन्दम रूपममृतम्' जिसका कोई अर्थ नहीं है।*
यहीं सत्य-शिव-सुन्दर सारे एक प्राण है, एक रूप है
जिस स्मिति पर सौ-सौ आसू भी न्यौछावर हैं, वह अनूप है!

वह ऐसी है हँसी न जो रुक पाई चाहे लाख समुन्दर
राह रोक कर बिछे, राम का तपो-भङ्ग ज्यों हुआ न तिल भर।
वह ऐसी है हँसी कि जिसके सम्मुख लाखों आल्प्स-हिमाचल
राह रोक कर खड़े, किन्तु बोनापार्टी का धीरज अविचल!

वह ऐसी है हँसी ख़ूब दृढ़, तपः पूत औ अद्वितीय यों
जिसमें मिलकर भूल गये सब क्षुद्र भेद परकीय-स्वीय ज्यों।
वह ऐसी है हँसी विनीता जिसके सम्मुख हत गर्वोन्नत।
उस हँसने में यह इङ्गित है, कैसे आज मिलेगा सत्पथ!

काबा, काशी, मथुरा-मक्का, हो पेकिंग या जेरूसेलम
एक हँसी के महाउदधि से मिलीं नर्मदा, गङ्गा, झेलम!
सत्य न किसी दिशा ने बाधा, सत्य न किसी दिशा का दावा
महाकाश है सत्य! जगत् स्फोटक-नग; राज पिपासा लावा!

सत्य अकेला ओयसिस है, जब कि चतुर्दिक हो दावानल।
मरू भू, आतप, श्रान्त कारवाँ। सत्य अनित्य एक छायाचल!
वही सत्य उस एक हँसी में उतरा है बिखरा-निखरा है।
जबकि नित्य जग के हाटक में मृषा आँसुओं का बिका है![1]

वही मुक्त-स्मिति, वह चिन्मय द्युति, वही चिरंतन है, मंगल है
वह तो एक व्यक्ति का हँसना नहीं, युगों का बल-संबल है!
बापू जब बच्चों में हिलमिल, हँसते हैं बच्चों सा खिलखिल
एक समां बंध जाता—सहसा पृथ्वी-व्योम-सलिल-अनलानिल।
प्रेम-सत्य के महत्तत्व से आलोडित हो उठते उस पल
हिंसा-दम्भ सकल मिट जाते स्थिरालोक से ज्यों तम चंचल!

* उपनिषद वचन।

१ नकाश्रुओं का विक्रय।

वि
श्व
वा
णी
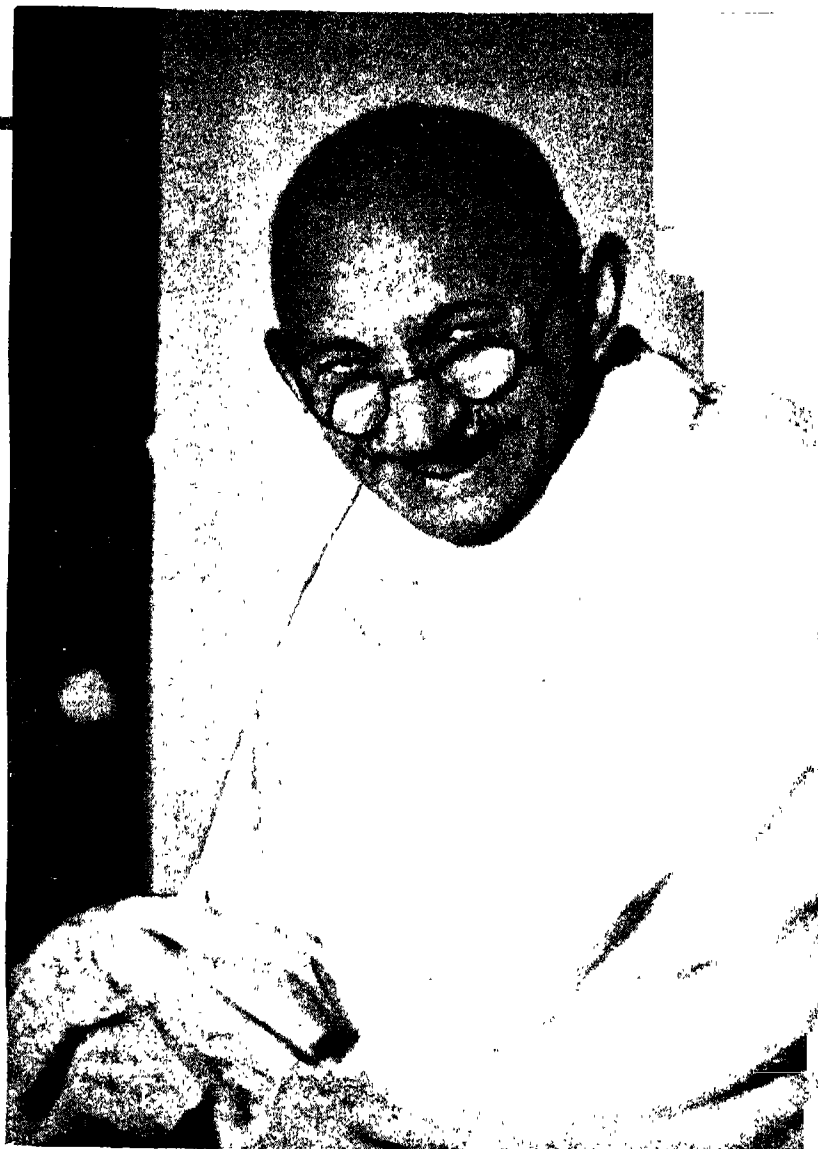
वह मुक्त हास्य

[कनु गान्धी के सौजन्य से]

बापू की दिन चर्या क्या है ?
कृषकों की दिन चर्या क्या है ?

बापू का भोजन कैसा है ?
खाते सकल श्रमीजन क्या है ?

बापू का पहिनावा कैसा ?
रहता एक जुलाहा कैसा ?

प्रतिदिन अतिप्रत्यूष जागरण ?
नियमित अखंड गीता-पाठन

प्रातःसायं ईश-स्मरण-क्रम
निज क्षमतानुसार दैनिक श्रम !

सभी मुक्तमन सब ही हरिजन
एक समान धनिक औ निर्धन।

क्यों सिक्कों के बल पर मानव
खरीद लेता सेवा मानव ?

निज विलास पर करके संयम
बनें क्यों न श्रमजीवी सब हम ?

भोजनः समय, प्रमाण व कीमत
सभी संतुलित, स्वल्प, स्वास्थ्यप्रद !

नित्य कातना, नियमित चर्खा।
मौन। बात पक्की की पक्की !

सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य औ
अपरिग्रह, अ-स्वाद, अचौर्य औ,

शरीर श्रम, सब धर्म समाना,
स्वदेशीत्व—जीवन का बाना !

ठाठ फ़कीराना, शाहाना,
दुनिया-दीन सभी पहचाना।

लिखी ध्येय रेखा—श्री गीता।
जिसने मन को मारा, जीता !!

जो दरिद्र नारायण का दिन
वही महात्मा का प्रति दिन !

जो जन साधारण का जीवन—
वही महात्मा का संजीवन !

बापू जीवन से विरक्त हैं ?
कहाँ ? आर्तता स्पष्ट व्यक्त है—

मुद्रा से, आँखों से, स्वर से
करुणा बरस रही अन्तर से—!

बापू जीवन से ऊबे हैं ?
नहीं, प्रार्थना में डूबे हैं।

नयन निमीलित अर्धनम्र से
हरि-सकीर्तन में निमग्न से—*

---

१ "युग की आत्मा" नामक अप्रकाशित काव्य के कुछ अंश।

निष्पक्ष साधना

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन

युग युग से भारत भूमि में कितना मानव-प्रवाह आया, इसे आज नाप सकना भी असम्भव है। नदियों के प्रवाह में बह कर आई हुई मिट्टी से जिस प्रकार धीरे धीरे डेल्टा द्वीप बन जाता है, उसी प्रकार भारतवर्ष का धर्म इन सब नाना जातियों की धर्म-साधना के ऊपर गठित है। हम लोग आज हिन्दू-धर्म को वेद विहित कह कर गर्व करते हैं; पर आज का यह हिन्दू-धर्म कितनी दूर तक वेदों के ऊपर प्रतिष्ठित है? वेद-पूर्व और वेदबाह्य शत शत आचार और मतवादों से हिन्दू-धर्म विरचित है।

संसार के अन्यान्य धर्मों की तरह हिन्दू-धर्म किसी व्यक्ति विशेष अथवा मत विशेष के अनुशासन के ऊपर प्रतिष्ठित नहीं है। भारतवर्ष के साधना-महासागर में जितनी धाराएं आकर पड़ी हैं, उन सबों ने धीरे धीरे इस भारतीय अर्थात हिन्दू धर्म को प्राण और रूप दिया है। इसीलिए मनुष्य के नाम से इसका नामकरण न होकर, देश के नाम से हुआ। "हिन्दू" अर्थात् भारतवर्ष का धर्म "हिन्दू-धर्म" नाम पड़ा।

अति प्राचीन काल से हम अपने देश के धर्म में दो धाराएं पाते हैं। (१) शास्त्र-पन्थी जिसका नेतृत्व ब्राह्मणों और पंडितों ने किया। और (२) भक्ति-पन्थी (भागवत) जिसका नेतृत्व भक्तों, साधुओं और सन्यासियों के हाथ में रहा। इसी भागवत समूह में शैव, वैष्णव प्रभृति मतवाद को गिना जा सकता है।

बाहर से जो सब जातियां भारतवर्ष में आईं, उन सबों को स्मार्त धर्म वाले कभी भी उस प्रकार आत्मसात न कर सके, जिस प्रकार भागवत धर्म वालों ने किया। इसीलिए हम बेसनगर के शिला-लेख में देखते हैं कि ई० पू० दूसरी शताब्दी में तक्षशिला वासी यूनानी भक्त हेलियोडोरस ने वासुदेव के मन्दिर पर गरुड़ध्वज बनवाया। काबुल के अधिपति काडफाईसासेर की मुद्रा में देखा जाता है कि उन्होंने शैव-धर्म ग्रहण कर लिया था; वह "माहेश्वर" अर्थात शैव थे।

यूनानी, शक, हूण आदि जातियां इसी प्रकार क्रम से भारतीय-साधना-सागर में आकर, इसी साधना में अन्तर्भुक्त होकर मिल गई। इस तरह कितनी जातियों ने भारतीय अर्थात "हिन्दू" धर्म में अपनी साधना दी और उसकी साधना ली, इसका हिसाब आज कौन कर सकता है? लेकिन उस समय यह सुविधा थी कि भारतवर्ष के बाहर से कोई भी जाति सुनिर्दिष्ट सीमाबद्ध साधना लेकर नहीं आई थी, इसीलिए उन जातियों का मेल सहज था। इसके बाद सुनिश्चित सीमा में दृढ़ भाव से निर्दिष्ट इसलाम धर्म भारतवर्ष में आया। ऐसे धर्म को इसी रूप में अंगीभूत करना कठिन था; तब भी भारतवर्ष जिस प्रकार युग युग से सभी साधनाओं का स्वागत करता आया था, उसी प्रकार उसने इस साधना का भी स्वागत किया। उसके बहुत दिनों बाद यह देश मुसलमानों के अधीन हुआ।

युग युगान्तर की बहुत सी साधनाओं के सम्मिलन स्वरूप हिन्दू-धर्म और नवागत इसलाम धर्म, एक ही देश में पास-पास रहें और फिर भी दोनों में एकता स्थापित न हो, यह कैसे सम्भव था ! पर हिन्दू और मुसलमान पंडितों द्वारा दोनों में एकता का क़ायम होना इसलिए असम्भव था कि पण्डित लोग अपने अपने शास्त्रों द्वारा निर्धारित सीमा को कट्टरता पूर्वक क़ायम रखना चाहते हैं। और इस तरह यदि दोनों अपनी अपनी सीमा को सम्हालने में ही व्यस्त रहें, तब भला मिलन-सेतु का बनाना किस प्रकार सम्भव है ? जिस समय चारों तरफ ढूंढने पर भी हिन्दू और मुसलमानों की मिलन-साधना का कोई भी रास्ता नहीं दिखाई पड़ता था; उस मध्य-युग में हम देखते हैं कि भारत-भाग्य-विधाता ने अपने भक्तों और साधकों को इन दोनों धर्मों का मेल कराने के लिए भेजा।

मध्य-युग के भारतीय भक्तगण हिन्दू और मुसलमानों के मिलाने का व्रत लेकर ही साधना में प्रवृत्त हुए। रामानन्द, कबीर, रविदास, नानक, दादू आदि शत शत साधक—कोई हिन्दू कुल में और कोई मुसलमान कुल में जन्म ग्रहण करके शास्त्राचार और लोकाचार से परे हटकर, भक्ति और प्रेम के बल से इस मिलन-पथ को ढूंढने लगे।

कबीर ने कहा—नाना साधनाओं के प्रेमपूर्ण मिलन से ही भारतीय साधकों का पथ बनेगा। पर उस समय भी यह मिलन सहज नहीं था; क्योंकि मुसलमान विजेता और हिन्दू विजित थे। कठिनाइयों के होते हुए भी उन दिनों आज की तरह घर के और बाहर के आगन्तुक लोगों के राजनैतिक स्वार्थ संघातों ने कूट-छल और भेद-बुद्धि की ऐसी सृष्टि नहीं की थी, जिससे यह मिलन आज की तरह असम्भव हो जाय। उस समय के प्रबल और प्रचण्ड भेद भी छल रहित थे। देश वासियों और परदेशियों के क्षुद्र स्वार्थ और उनकी कूटनीति उन दिनों इस कठिन और दुस्सह व्रत को और भी दुःख साध्य नहीं कर रही थी।

उस समय के सन्त और भक्त लोग किस तरह इस मिलन-चेष्टा में लगे थे; इसे किसी सन्त की वाणी को देखकर ही समझा जा सकता है। इसी प्रकार सभी प्रदेशों में शत शत साधक महात्माएं थीं। इन में से किस को छोड़ा जाय ? उस युग की मंडली से मुसलमान वंश-जात महान साधक दादू की वाणी से इस मिलन-साधना का हम यहां कुछ परिचय देंगे।

हिन्दू और मुसलमानों के परस्पर विरोध से जिस समय भारतवर्ष का आध्यात्मिक आकाश एकान्त दुःख-पीड़ा से परिपूर्ण था, उस समय महान पुरुष दादू ने कहा—"हिन्दू कहते हैं हमारा ही पथ सत्य है और मुसलमान कहते हैं हमारा ही रास्ता सत्य है; कहो भाई अल्लाह का पन्थ कौन है ? तुमने तो यूं ही देखा है।"

हिन्दू मारग कहै हमारा, तुरुक कहै रह मेरी।
कहां पन्थ है कहो अलह का, तुम तो ऐसी हेरी॥

"(साम्प्रदायिक भेद बुद्धिगत) यह द्वैत दुई मिथ्या ही लोगों को अच्छी लगती है। किन्तु भगवान को सत्य ही प्रिय है ! कहो तो भाई हम किस रास्ते से चलें; हे साधु गण तुम्हीं विचार करो।"

दुई दरोग लोग को भावै, सांई सांच पियारा।
कौन पंथि हम चलैं कहौ धू, साधौ करौ विचारा॥

दादू कहते हैं—"यदि हमसे हमारे मतामत की जिज्ञासा करो, तो हम कहेंगे कि हिन्दू मुसलमान दोनों ही की साधनाओं को यदि विच्छिन्न करके देखा जाय, तब दोनों ही संकीर्ण और क्षुद्र मालूम होंगी। उदार सत्य-जगत में किसी भी विच्छिन्न भाव को स्थान नहीं है।" "हे दादू यह दोनों ही विच्छिन्न भावनाएं भ्रान्त हैं; इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही संकीर्ण और गंवार हो जाते हैं। इन दोनों की संकीर्णता के ऊपर जो है, उसी को ग्रहण करके सत्य का विचार करो।"

दादू दून्यूं भरम हैं, हिन्दू तुरुक गंवार।
जे दुहवां थैं रहित हैं, सो गहि तत्व विचार॥

केवल हिन्दू-मुसलमान ही क्यों जितने तरह के सम्प्रदाय और मतवाद हैं, सब के मूल में नाना प्रकार की झूठी चीज़ें मिलती हैं। "क्या योगी, क्या जंगम, क्या सेवड़ा (श्वेताम्बर जैन मत या शैव मत में एक दल लिंगधारी साधु) क्या बौद्ध, क्या सन्यासी क्या षड़दर्शन वादी; भगवान के न पाने पर ये सभी कपटाचारी और भेषधारी मात्र हैं।

"हे दादू, शेख, मूसा मतवादी, औलिया, पैग़म्बर और पीर किसी के साथ उसका कोई दरस-परस नहीं है। आज भी ये सब यहीं पड़े हैं—इसी किनारे पर।

"हे दादू, ये सब नाना भेख (सज्जा, वेष) बनाकर केवल अपनी अहमिका को ही देखते हैं। हे दादू, यह सब भेद-बुद्धि दूर करके परम स्वामी के साथ प्रेम-ध्यान में युक्त हो।

"गतानुगतिक सब लोग, केवल देखा देखी ही चलते हैं। कितने कितने मत आते और जाते हैं! पर भगवान का ऐसा प्रेमिक नहीं मिलता, जो अपने आपको अपने और परमात्मा के अन्दर देखे।"

जोगी, जंगम, सेवड़े, बौध, सन्यासी, सेख।
षड़दर्शन दादू राम बिन सबै कपट के भेख॥
सेख, मसाइक, औलिया, पैकंबर सब पीर।
दर्सन परसन कछू नहीं अजहूँ वैसी तीर॥
नाना भेख बनाइ करि, आपा देखि दिखाई।
दादू दूजा दूरि करि, साहिब सूं ल्यौं लाई॥
देखा देखी लोक सब केते आवैं जाहिं।
राम सनेही ना मिलैं जे निज देखैं माहिं॥

"हे दादू, देखो कितने पण्डित लोग केवल पुस्तक पढ़ पढ़ के मरते गए! केवल वेद पुराण पढ़ पढ़ के मर गये।"

दादू केते पुस्तक पढ़ि मुए पंडित वेद पुरान

"जो क़ाज़ी है, वह कजा (भगवान का विधान) नहीं जानता। अथच हाथ में उसके काग़ज़ और क़ुरान है! पढ़ते पढ़ते उसका दिन चला गया; पर भीतरी रहस्य के साथ कोई परिचय नहीं!"

काजी कजा न जानहीं, कागद हाथि कतेब।
पढ़ता पढ़ता दिन गया, भीतरि नहीं भेद॥

"काग़ज़ और स्याही के भरोसे क्यों संसार छूट रहा है? दादू कहते हैं कि मन का सब भ्रम और विकार तो भगवान के बिना नहीं छूट सकता।"

ससि कागद के आसरे क्यों छूटै सब संसार।
राम बिना छूटै नहीं दादू भर्म विकार॥

"कितने वेद पुराण में काग़ज़ काला कर करके मर गए! हे दादू, एक ही अक्षर प्रियतम का जो पढ़ सका, वही तो सुजान है।"

कागद काला करि मुए केते वेद पुरान।
एकै आखिर पीव का दादू पढ़ै सुजान॥

शास्त्र और क्या सहायता कर सकता है? उस परम सत्य को प्रत्यक्ष करने के लिए तो साक्षात उपलब्धि चाहिए। इसीलिए दादू कहते हैं—"वेद और क़ुरान के लिए जो स्थान अगम्य है, उस जगह (हम) पहुँच गए। उस जगह देखा कुछ आश्चर्य लीला। वह एक अपूर्व देश है।"

जहं वेद कुरान की गमि नहीं, तहां किया परनेस।
तहं कुछ अचिरज देखिया, यहु कुछ औरै देस॥

"जो कुछ वेद और क़ुरान के भी ऊपर है, जो अगम्य और अगोचर कथा है, उसको भी अनुभव के बल पर कहा जा सकता है। दादू कहते हैं, वचन से अतीत तत्व को भी एक मात्र अनुभव ही कह सकता है।"

जे कुछ वेद कुरान थैं अगम अगोचर बात।
सो अनुभव सांचा कहै दादू अकह कहात॥

"बिना प्रेम के अनुभव नहीं होता। बिना वेदना के प्रेम सम्भव नहीं। विरह वेदना के मध्य से प्रेम उपजता है। इसके बाद मिलन सम्भव है। दादू कहते हैं—"पहले विरह का आगमन होता है, उसके बाद प्रेम का प्रकाश। यदि मन प्रेम-मगन लव-लीन हो, तब ही मिलन की आशा है।"

पहिली आगम विरह का पाछे प्रीति प्रकास।
प्रेममगन लैलीन मन तहां मिलन की आस॥

"हे दादू, प्रेम की जो लिपि है, उसको शायद ही कोई पढ़ पाता है। प्रेम से रहित जो पठनीय पुस्तकें हैं, उनको तो कितने ही पढ़ते हैं!"

दादू अख्यर प्रेम का कोई पढ़ैगा एक।
दादू पुस्तक प्रेम बिन केते पढ़ैं अनेक॥

प्रेम हीन शास्त्रों के पाठक बहुत हैं, क्योंकि उसे पढ़ने में प्रेम का प्रयोजन नहीं है। प्रेम को छोड़कर और किसी भी तरीक़े से लोगों में सत्य का मर्म नहीं पहुंचाया जा सकता है। किन्तु प्रेम दुर्लभ साधना का धन है, इसीलिए सहज ही कोई इस पथ पर चलना नहीं चाहता।

"हे दादू, प्रेम की इस पाती को शायद ही कोई देख और पढ़ पाता है। अथच सभी पढ़ते हैं वेद, पुरान और क़ुरान! प्रेम बिना यह सब होगा क्या?"

दादू पाती प्रेम की बिरला बांचै कोइ।
वेद पुरान क़ुरान पढ़ै प्रेम बिना क्या होइ॥

निखिल चराचर का शास्वत शास्त्र है वही प्रेम। उसी प्रेम की सर्व भौम सत्ता को पढ़ कर देखा जा सकता है सकल घट में एक ही आत्मा को। इसीलिए दादू कहते हैं—"सब हमने खोज कर देख लिया; दूसरा और कोई नहीं है! क्या हिन्दू क्या मुसलमान, सकल घट में एक ही आत्मा विराजमान है।"

सब हम देखा सोधिकर दूजा नाहीं आन।
सब घट एकै आत्मा क्या हिन्दू मुसलमान॥

इसलिये—"न हम अपने को हिन्दू कह कर समझ सकते हैं और न मुसलमान। षड्दर्शन के बीच भी हम नहीं। हम प्रेम रंग में रंग गए हैं; वही है दयामय भगवान का रंग।"

ना हम हिन्दू होहिंगे ना हम मूसलमान।
षड्दर्शन में हम नहीं हम राते रहिमान॥

"हमें तो एक अल्लाह का बल चाहिए, राम का बल चाहिये। डार पात सब त्याग कर, सब लोग एक मूल को ग्रहण करो।"

अलह कहो भावै राम कहो।
डाल तजो सब मूल गहो॥ *

"अल्ला और राम का भेद-भ्रम हम से छूट गया। हिन्दू-मुसलमान में कुछ भी भेद नहीं है; सर्वत्र तुम्हारा ही रूप प्रत्यक्ष है।

(सर्वत्र) वही प्राण, वही देह, वही रक्त, वही मांस, वही आंखें, वही नासिका, सहज ही क्या लीला प्रकाशित किया है।

(सर्वत्र) कानों में शब्दों का गुंजन होता है, जिह्वा में माधुरी लगती है; वही एक ही क्षुधा सर्वत्र व्याप्त है, देखता हूं कि एक ही युक्ति से सब जागते हैं।

(सर्वत्र) वही सन्धि है और वही बन्ध, (सर्वत्र) एक ही सुख और दुःख, (सर्वत्र) एक ही हाथ है और एक ही पांव; वही एक शरीर है।

हे (ख़ालिक) सृष्टि कर्ता श्री हरि, यह सभी तुम्हारे (वैचित्र्य) का खेल है। तुम्हीं बार-बार (अपने आपको सब घटों में प्रतिष्ठित रखकर) सब को ऐक्य के योग में युक्त करते हो। दादू कहते हैं जगत में तुम्हारी इस लीला की उपलब्धि करके प्राणों में तुम्हारे विश्वास की प्रतिष्ठा की।"

अलह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिन्दू तुर्क भेद कुछ नाहीं देखौं दर्सन तोरा॥
सोई प्राण पिण्ड पुनि सोई सोई लोही मासा।
सोई नैन नासिका सोई सहजै कीन्ह तमासा॥
स्रवणौं सबद बदिता सुनिये जिह्वा मीठा लागै।
सोई भूख सबन को व्यापै एक जुगति सोई जागै॥

* विख्यात मरमी जैन साधु कवि आनन्द घन का भी ऐसा ही एक पद है।— लेखक]

सोई सन्ध-बन्ध पुनि सोई सोई सुख सोई पीरा।
सोई हस्त पाव पुनि सोई सोई एक सरीरा॥
यह सब खेल खलिक हरि तोरा तोहिं एक करलीना।
दादू जुगति जानिकार ऐसी तब यहु प्राण पतीणां॥

अखिल वैचित्र्य के मध्य में, जिस समय इस ऐक्य की लीला का प्रत्यक्ष दादू को हुआ, उसी समय दादू ने मुक्त कंठ से कहा—"भाई रे, ऐसा है हमारा पन्थ! हिन्दुओं और मुसलमानों के दलगत पक्षपात से ऊपर है। यह पन्थ; एकता के आधार पर प्रतिष्ठित है यह अवर्णनीय पन्थ।"

भाइरे ऐसा पन्थ हमारा।
द्वै पथ रहित पन्थ गहि पूरा॥
अवरण एक अधारा॥

"पूर्ण ब्रह्म के दृष्टिकोण से देखकर विचार करने पर ब्रह्म की पूर्णता, व्यापकता और सभी आत्माओं का ऐक्य दिखाई पड़ेगा। शरीर के गुण से यदि देखा जाय, तो दिखाई पड़ेगा नाना वर्ण और अनैक्य।"

जब पूरण ब्रह्म विचारिए तब सकल आत्मा एक।
काया के गुण देखिये तो नाना वरण अनेक॥

इसलिए "हे दादू, हिन्दू-मुसलमान इन दोनों की साम्प्रदायिक भेद-बुद्धि को दूर करके, सत्य-साधक की संगति का लाभ करो; और स्वामी का आश्रय करो।"

दादू हिन्दू तुरक का द्वै पथ पन्थ निवारि॥
संगति सांचे साध की साईं को सम्भारि॥

किन्तु हाय इस सत्य उपदेश को सुनने लायक आदमी है कहां? "हिन्दू लगे रहते हैं अपने मन्दिर में और मुसलमान लगे रहते हैं मसजिद में; हम लगे हैं एक अलख (अवर्णनीय) के संग, वहां ही है सदा निरन्तर प्रेम-योग।"

हिन्दू लागे देहरै मूसलमान मसीति।
हम लागे एक अलेख सों सदा निरन्तर प्रीति॥

"उस जगह न तो हिन्दू का मन्दिर है और न मुसलमान की मसजिद। हे दादू उस जगह वह (भगवान) अपने आप विराजते हैं। वहां पर किसी प्रकार की साम्प्रदायिक रीति-नीति के बन्धन नहीं हैं।"

न तहां हिन्दू देहरा न तहां तूरक मसीति।
दादू आपै आप है नहीं तहां रह रीति॥

"इस जीवन में ही मसजिद है, जीवन में ही मन्दिर है, सतगुरु ने यह दिखा दिया। इसी के अन्दर सेवा और प्रणति चलती है, तब क्यों बाहर जाते हो?"

यह मसीत यहु देहरा सतगुरु दिया दिखाई।
भीतर सेवा बन्दगी बाहिर काहे जाई॥

"किसी भी दल व सम्प्रदाय में मत जाओ, दलादली और साम्प्रदायिकता से ऊपर है वह निर्मल नाम। स्वामी के सम्मुख ही सदा हाज़िर रह, सभी दिशाओं से सब समय मुक्त रह।"

पथ काहू के ना मिलै निरपंथ निर्मल नांव।
साईं सौं सनमुख सदा मुकता सबहीं ठांव॥

"संसार भर में दलादली और साम्प्रदायिकता का दौर है; शायद ही कोई दलादली और साम्प्रदायिकता से ऊपर है। जिन्होंने निरंजन के निर्मल नाम को जीवन में प्राप्त कर लिया है, वही दलादली और साम्प्रदायिकता के बन्धन से मुक्त हैं।"

पन्था पन्थी संसार सब निरपंथ निराला कोई।
सोई निरपंथ होइगा, जाकै नांव निरंजन होई॥

"सभी अपने अपने सम्प्रदाय को गर्व और बड़प्पन की निगाह से देखते हैं; तभी तो दादू पन्था-पन्थी को त्याग कर के अन्तर में प्रेम-ध्यान के द्वारा उसी एक अद्वीतीय के साथ युक्त हुआ।"

अपने अपने पन्थ की सब को कहै बड़ाई।
तातैं दादू एक सों अन्तर गति ल्यों लाई॥

"हे दादू, जो इन दोनों सम्प्रदायों की साम्प्रदायिकता और दलादली से ऊपर उठकर निर्मल नाम का आश्रय करते हैं, जो अहमिका को मिटा करके हरि को भजते हैं; हम उनकी बलिहार जाते हैं।"

दादू द्वै पथ दूरि करि निर्पंथ निर्मल नांव।
आपा मेटै हरि भजै ताकी मैं बलि जांव॥

"अपने को किसी विशेष (दल के) नाम से परिचय मत दो, किसी के दल में जाकर मत भिड़ो; हे दादू, स्वामी के साथ प्रेम-ध्यान में लीन होकर सभी सम्प्रदायों और दलों से ऊपर रहो।

कछू न कहावै आपको काहू संगि न जाइ।
दादू निर्पंथ ह्वै रहै साहिब सों ल्यौ लाइ॥

"हे दादू, निर्भय सभी दलादलों और सम्प्रदायों से ऊपर उठ कर, सभी सम्प्रदायों की सीमा को छोड़ कर, असीम के साथ मिलो। जिस जगह दूसरा कोई नहीं है, उसी जगह उस एक के संग मिल कर रहो।"

दादू हद छाड़ि बेहद मैं निर्भै निर्पंथ होइ।
लागि रहै ऐस एक सौं जहां न दूजा कोइ॥

कहने में सहज होने पर भी पथ पर चलना कितना कठिन है, इसे दादू की वाणी में ही समझा जा सकता है। भीतर की बाधा का तो अन्त है ही नहीं; बाहर में भी बाधाएं आ आ कर आघात करती हैं, यह देख कर विस्मय होता है। दलादली छोड़ देने से सभी सन्तुष्ट होंगे, यह भी नहीं है! बल्कि दलादली से मुक्त होने पर देखा जाता है कि उभय दल भीषण रूप में क्रोधित हो जाते हैं। दादू कहते हैं—

"जिस समय हम दलादली और साम्प्रदायिकता से मुक्त हुए, (उस समय से) सभी ख़फ़ा हो गए। लेकिन सद्गुरु के प्रसाद से हमें न तो हर्ष हुआ और न शोक।"

जब थैं हम निर्पंथ भये सबै रिसानें लोक।
सतगुरु के परसाद थैं मेरे हरख न सोक॥

जिस अखण्ड परब्रह्म पर सभी काल में मानव मात्र निर्भर रहता है, उसी को साम्प्रदायिक-बुद्धि से सभी ने खण्ड खण्ड करके लिया। संसार रूपी भव-सागर से पार होने के लिए जिस एक नाव का आश्रय रख कर सब चल रहे हैं, यदि हम लोग उसी को खण्ड खण्ड करके, एक एक तख्ता अलहदा अलहदा कर लें, तब हमारे ऐसा मूढ़, सर्वनाशी और आत्मघाती और कहां होगा? इसी दुर्गति को लक्ष करके श्री रवीन्द्रनाथ कहते हैं—

जे एक तरणी लक्ष लोकेर निर्भर।
खण्ड खण्ड करि तारे तरिबे सागर?

दादू कहते हैं— "(लोगों ने) ब्रह्म को ही खण्ड-खण्ड करके सम्प्रदाय-सम्प्रदाय में हिस्सा लगा कर के बंटवारा कर लिया! हे दादू, पूर्ण ब्रह्म को त्याग कर के ये सब अपने अपने भ्रम की ग्रन्थियों में बंध गए।

खण्ड खण्ड करि ब्रह्म को पखि पखि लिया बांटि।
दादू पूरण ब्रह्म तजि, बंधे भरम की गांठि॥

युग युग से भारतवर्ष के महापुरुषों की यह एक ही कथा है। किसी ने किसी की वाणी को सुन कर अपनी वाणी का दान नहीं किया है। तब भी सब की वाणियों में अपूर्व ऐक्य देखकर ऐसा लगता है कि भारतीय मर्म-सत्य यही है। सदा सर्वदा भारतवर्ष की सकल साधना इसी महा सत्य का सन्धान करती हुई फिरेगी। जितने दिनों तक भारतवर्ष इस सत्य को अपनी साधना द्वारा प्रत्यक्ष नही कर सकेगा, उतने दिनों तक भगवान अपने भक्तों को भेज कर इस सत्य को एक स्वर से सर्वयुगीन चित्त में क्रमागत झंकृत करावेंगे। इस सत्य को जिसने उपलब्ध नहीं किया, वह कैसा साधक? इसीलिए दादू कहते हैं—

"यह सत्य जितने दिनों तक दृष्टि गत नहीं हुआ, उतने दिनों तक तो आंखें अन्धी थीं। हे दादू, उतने दिनो तक मुक्तस्वरूप को छोड़ कर गले में फांसी लगाए रहा।"

"जितने दिनों तक सत्य दृष्टिगत नहीं हुआ, उतने दिनों तक आंखें अन्धी थीं। हे दादू, उतने दिनों तक बन्धनातीत मुक्तिदाता को छोड़कर मनुष्य अन्धा हो कर सम्प्रदायों के बन्धन में जा फंसा।

सांच न सूझै जब लगै तब लग लोचन अन्ध।
दादू मुक्ता छांड़ि करि गल मैं घाला फन्द॥
सांच न सूझै जब लगै तब लग लोचन नाहि।
दादू निरबन्ध छांड़ि करि बंधा रहै पख माझि॥

इस सब दलादली और पक्षा पक्षी को छोड़ कर जो उस ऐक्य स्वरूप को जान कर सब के साथ युक्त होता है, उसकी ही साधना सत्य है, उस का जीवन धन्य है।

"वही तो साधू, वही तो सिद्ध, वही तो सत्यवादी शूर; हे दादू, वही तो मुनिवर श्रेष्ठ है, जो उस स्वामी के सम्मुख सदा हाज़िर रहता है।

"वही तो सच्चा, वही तो सत्यव्रत, वही तो साधक सुजन, वही तो पंडित, जो भगवान के रंग में रंग गया।"

"हे दादू, वही तो योगी जंगम, वही तो सूफ़ी, वही शेख़, वही सन्यासी, वही सेवड़ा (श्वेताम्बर जैन वा शैव लिंगधारी साधु) जिसने उस अलख को प्राप्त कर लिया है।"

"वही क़ाज़ी, वही मुल्ला, वही मोमिन* मुसलमान, वही विचक्षण कल्याण मय, जो दयामय भगवान के रंग में रंग गया है।

सोई जन साधू सिध सो सोई सतवादी सूर।
सोई मुनिवर दादू बड़े, सम्मुख रहनि हजूर॥
सोई जन सांचे, सो सत, सोई साधक सुजान।
सोई ज्ञानी सोई पंडिता जे राते भगवान॥
सोई जोगी सोई जंगमा सोई सोफी सोई सेख।
सोई सन्यासी सेवड़े दादू एक अलेख॥
सोई काजी सोई मुल्ला सोई मोमिन मुसलमान।
सोई सयाने सब भले जे राते रहिमान॥

एक भगवान को ही सभी के मध्य में उपलब्ध कर लेने से साधना यथार्थ सत्य होती है। जितने दिनों तक यह सत्य जीवन में यथार्थ भाव से नहीं आता, उतने दिनों तक तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा वा मनीषा द्वारा इस ऐक्य कथा को समझ लेने पर भी उस महा एकत्व के रस और योग के आनन्द से हमारा जीवन और मरण भरपूर नहीं होगा। इसीलिए दादू कहते हैं—

* "मोमिन" अर्थ निष्ठावान विश्वास परायण एक श्रेणी के मुसलमान समझे जाते हैं।—लेखक]

"बाबा, पराया तो कोई नहीं! हे एकस्वरूप, अनेक तुम्हारा ही नाम है, हम तो इसको छोड़ कर और कुछ जानते ही नहीं।

"अलख इलाही एक तुम्हीं हो, तुम्हीं राम और रहीम हो, तुम्ही मालिक हो, मोहन हो; हे केशव, तुम्हारा ही नाम करीम है।

"तुम्ही स्वामी, तुम्ही सृजन कर्ता, तुम्हीं पवित्र, तुम्हीं पावन, तुम्हीं नित्य, निर्भर, कर्ता, तुम्हीं हरी, तुम्हीं सदा सर्वदा सर्वत्र स्वयं विराजमान हो।

"तुम्ही लीलामय, तुम्ही एक मात्र सब के भरण कर्ता, तुम्हीं सरस-मधुर, तुम्ही 'सुबहान' (पवित्र महान) तुम्ही कादिर (समर्थ ईश्वर), तुम्ही एक मात्र कर्ता तुम्ही स्वामी सुलतान हो।

"तुम्ही एक मात्र अनिर्वचनीय अल्लाह तुम्ही ऐश्वर्य मय, तुम्ही एक मात्र गोसाईं, अपूर्व अनुपम तुम्ही हो; दादू कहते हैं (ये सब) अनेक तुम्हारे ही नाम हैं।"

बाबा नाहीं दूजा कोई।
एक अनेक नाऊं तुम्हारा मों पै और न होई॥
अलख इलाही एक तू तूं ही राम रहीम।
तूं ही मालिक मोहना केसो नाऊं करीम॥
साईं सिरजन हार तूं, तूं पावन तूं पाक।
तूं काइम करतार तूं, तूं हरि हाजरि आप॥
रमिता राजिक एक तूं, तूं सारंग सुबहान।
कादिर करता एक तूं, तूं साहिब सुलतान॥
अविगत अल्लः एक तूं, गनी गुसाईं एक।
अजब अनूपम आप है दादू नाऊं अनेक॥

यही उपलब्धि जिस समय हुई, उस समय उस ऐक्य भाव से पूर्ण होकर दादू कहते हैं—

"हम उस असीम-पथ के पथिक हैं, हमारे मन में और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जिसको उन्होंने अपना ऐक्य स्वरूप दिखा दिया, एक मात्र वही प्रियतम के पथ का पता पाता है।"

"कोई हिन्दू-पथ का पथिक है, कोई मुसलमान पथका पथिक और कोई और किसी में अनुरक्त है;

कोई सूफ़ी-पथका पथिक है और कोई सेवड़ा (लिङ्ग-धारी सन्यासी) पथका पथिक है और कोई सन्यासियों के ही मत में माता हुआ है।

"कोई जोगी और जंगम पथ में और कोई दौड़ता है शक्ति-साधना के पथ में; कोई कमण्डल धारियों के पथ में है। और कोई कितने कितने तरह से उसको मना रहा है।

"कुछ लोग और भी बहुतों बहुतों के पन्थ से चल रहे हैं। हम कुछ भी नहीं जानते। दादू कहते हैं जिसने इस जगत की रचना की हम तो केवल उसी को मानते हैं।"

मैं पंथि एक अपार के, मनि और न भावै।
सोई पंथ पावै पिवका जिसे आप लखावै॥
को पंथि हिन्दू तूरुक के को काहूँ राता।
को पंथि सोफी सेवड़े को सिन्यासी माता॥
को पंथि जोगी जंगमा को सकती पंथ ध्यावै।
को पंथी कमड़ कापड़ी को बहुत मनावै॥
को पंथि काहूँ के चलै मैं और न जानौं।
दादू जिन जग सिरजिया ताही को मानौं॥

यह जो दादू ने कहा कि "वही व्यक्ति प्रियतम के पथको पा सकता है, जिसके निकट वह अपने को व्यक्त करते हैं", इसी बात को सुनकर मन में उपनिषद की कथा याद आ जाती है।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्
(कठोपनिषद् १, २, २३)

इसकी उपलब्धि जिस समय दादू को हुई, उस समय उन्होंने अपने को जगत के सभी क्षुद्र परिचयों से अतीत समझा। मनुष्यों ने जिस समय उनका परिचय चाहा, उस समय उन्होंने अपना क्षुद्र परिचय न देकर मुक्त कंठ से कहा—"केशव ही हमारा कुल, सृजनकर्ता ही हमारा अपना जन, जगतगुरु ही हमारी जाति और परमेश्वर ही हमारा परिवार है।"

कुल हमारे केसवा सगा त सिरजनहार।
जाति हमारी जगतगुरु परमेसुर परिवार॥

यह सब कथा क्या दादू के अहंकार का लक्षण है? क्या ऐसा मन में आता है? युग युगों से जितने साधकों ने सत्य के इस मर्म राज्य में प्रवेश किया है, सभी यह एक ही कथा नाना भाव से नाना भाषाओं में कह गए हैं। दादू कहते हैं—

"जो पहुंचे हैं, उन सभों ने यह एक ही कथा कही है। जिसने उपलब्धि प्राप्त किया है, वह सभी एक मत और एक जाति के हैं।"

"जो पहुंचे हैं उनसे पूछ कर देखो, उन सभों की एक ही कथा है। सभी साधुओं का एक ही मत है। ये जो बीच के (झूठे) हैं, उन्हीं से नाना तरह का मत चलता है।

"जिन्होंने प्रत्यक्ष उपलब्धि पाई है, उन सभों ने कहा है कि पहुँचे हुओं का घर एक है। हे दादू, जो लोग पथ के भीतर हैं, उनकी (उपलब्धि हीनों की) तो अनेक कथा हैं।

जे पहुँचे ते कहि गए तिनकी एकै बात।
सबै सयाने एक मत उनकी एकै जात॥
जे पहुँचे ते कहि गए, तिनकी एकै बात।
सब साधों का एक मत बिच के बारहबाट॥
सबै सयाने कहि गए पहुँचे का घर एक।
दादू मारग मानि ले, तिनकी बात अनेक॥

साधक गण जिस समय सत्य के मर्मस्थल पर आकर पहुंचते हैं, उस समय वह सकल सम्प्रदायों से अतीत हो जाते हैं। अथच जगत के क्षुद्र-क्षुद्र उपदेशक कहते हैं, "कोई एक विशेष सम्प्रदाय न ग्रहण करने से सेवा और साधना किस प्रकार होगी?" इसीलिए चराचर जगत के सत्य के मर्म की उपलब्धि करके दादू ने दृढ़ कंठ से प्रश्न किया—

"यह धरनी और आकाश (जो उसकी सदा सेवा करते हैं), यह किस पन्थ में हैं? हे दयामय, जल-पवन, दिन-रात्रि, चन्द्र-सूर्य (प्रभृति अक्लान्त सेवक) गण किस पन्थ में हैं?

हे गुरुदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम से तो नाना सम्प्रदाय हैं, किन्तु महासाधक) ब्रह्मा, विष्णु

और महेश का कौन पन्थ है? तुम स्वामी, सृजन कर्ता, तुम अलख ज्ञानातीत; तुम्हीं समझा कर इसे बताओ!

महम्मद (जिसके नाम से तो पन्थ बना है) किस मत में थे, जिबराइल (ईश्वर के दूत) किस पथ के पथिक थे? इनके गुरु और पीर कौन थे? हे प्रभु इसकी बात तुम्हीं बता दो!

हे दादू, ये लोग (किस के मत को मानकर) चले हैं? यही बात हमारे मन के अन्दर है!"

धरती क्या साधन किया अम्बर कौन अभ्यास?
रवि ससि किस आरम्भ थैं अमर भये निज दास॥
ये सब किसके पन्थ में धरती अरु असमान।
पाणी पवन दिया रात का चन्द सूर रहिमान॥
ब्रह्मा विष्णु महेस का कौन पन्थ गुरुदेव?
साईं सिरजन हार तूं कहिए अलख अभेव॥
महमद किसके दीन में जिबराइल किस राह?
इनके मुर्सिद पीर को कहिए एक अलाह॥
यह सब किसके ह्वै रहै यहु मेरे मन माहि॥

निखिल चराचर से ध्वनित होकर उत्तर मिला—
अलख इलाही जगत गुरु दूजा कोई नाहिं।

एक मानव धर्म की आवश्यकता

आज से पौने तीन सौ साल पहले जिस मार्ग से विचलित हो जाने के कारण धीरे धीरे हमारी राष्ट्रीय विपत्तियों का प्रारम्भ हुआ, अपने कल्याण के उसी एकमात्र मार्ग को हमें फिर से ग्रहण करना होगा। हमें यह स्वीकार करना होगा कि मानव समाज के टुकड़े करने वाली पृथक पृथक धर्मों और सम्प्रदायों की दीवारें कृत्रिम और हानिकर हैं। कबीर के शब्दों में हमें यह मानना पड़ेगा कि इस संसार में 'दो जगदीश' नहीं हो सकते। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि किसी देश, किसी काल, किसी जाति या किसी भाषा विशेष ने, चाहे वह कितनी भी प्राचीन क्यों न हो, ईश्वर ज्ञान का इजारा नहीं ले रक्खा। वास्तव में इस तरह के अनुदार विचार ही मानव समाज की आधी से अधिक विपत्तियों की जड़ हैं। सारांश यह कि जन सामान्य को अपने अपने ढंग से इष्टदेव की आराधना करने में स्वाधीन छोड़ कर भी हमें सब धर्मों की मौलिक एकता को साक्षात करना होगा। उस मौलिक एकता की रोशनी में ही हमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, जैन, पारसी और ईसाई के भेदों की असत्यता और हानिकरता को भी अनुभव करना होगा और समस्त समाज को एक सच्चे सार्वभौम मानवधर्म की ओर लाने का सस्नेह और प्रशान्त प्रयत्न करना होगा। जात पांत या छुआछूत जैसी रूढ़ियों की अनर्गलता और अन्याय्यता को तो आज अधिकांश विचारवान भारतवासी अनुभव करने लगे हैं। इन समस्त भेदभावों को हमें अपने राष्ट्रीय जीवन से समूल उखाड़ कर फेंक देना होगा। इस सब के स्थान पर हमें मानवता, समता, मानव-प्रेम, पर-सेवा, स्वार्थ-त्याग, न्याय और सत्यता के उस सार्वभौम धर्म को अपना एकमात्र धर्म स्वीकार करना होगा, जिस तक मनसूर और कबीर जैसे अनेक सूफ़ियों और महात्माओं ने हमें लाने का प्रयत्न किया।

और किसी भी तरह का सुधार, सामाजिक या राजनैतिक, केवल रोग की जड़ों को छोड़कर पत्तियों और डालियों के साथ काट छांट करना है। इस तरह का कोई सुधार चिरस्थायी नहीं हो सकता। वास्तव में यदि सत्य है तो यही है और यदि भारत के या संसार के भावी कल्याण का कोई सच्चा मार्ग है तो यही है।

—सुन्दरलाल

क़ुरान की शिक्षा

राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आज़ाद

थोड़ी देर के लिए उस झगड़े की ओर ध्यान दीजिए, जो क़ुरान और उसके विरोधियों में उत्पन्न हो गया था। ये विरोधी कौन थे? ये पिछले धर्मों के अनुयाई थे, जिनमें से कुछ के पास धर्म-ग्रन्थ थे और कुछ के पास नहीं थे।

झगड़े का कारण क्या था? क्या यह कारण था कि क़ुरान ने उन धर्मों के संस्थापकों और पथ-प्रदर्शकों को झूठा कहा था, या उनके पवित्र धर्म-ग्रन्थों से इनकार किया था, और इसलिए वे उसका विरोध करने पर कटिबद्ध हो गये थे?

क्या यह कारण था कि क़ुरान ने इस बात का दावा किया कि ईश्वरीय सत्य केवल मेरे ही हिस्से पड़ा है, और अन्य समस्त धर्मों के अनुयायियों को उचित है कि वे अपने अपने धर्मों को छोड़ दें?

या, फिर क़ुरान ने धर्म के नाम पर कोई ऐसी बात उपस्थित कर दी थी, जो अन्य धर्मानुयायियों के लिए बिलकुल नई थी, और इस कारण क़ुरान को मानने में उन्हें आपत्ति थी?

क़ुरान के पृष्ठ खुले हुए हैं और उसके आने का इतिहास भी दुनिया के सामने है। ये दोनों हमें बतलाते हैं कि ऊपर की बातों में से कोई बात भी न थी, और न हो सकती थी। क़ुरान ने न केवल उन सारे धर्मसंस्थापकों को प्रमाण माना, जिनके नामलेवा उसके सामने थे, बल्कि साफ़ शब्दों में कह दिया कि मुझसे पहले जितने भी रसूल और धर्म-प्रवर्तक आ चुके हैं, मैं सबको प्रमाण मानता हूं, और उनमें से किसी एक के न मानने को भी ईश्वरीय सत्य से इन्कार करना समझता हूं। उसने किसी धर्मवाले से यह नहीं चाहा कि वह अपने धर्म को छोड़ दे, बल्कि जब कभी चाहा, तो यही चाहा कि सब अपने धर्मों की वास्तविक शिक्षा पर अमल करें, क्योंकि समस्त धर्मों की वास्तविक शिक्षा एक ही है। न तो उसने कोई नवीन सिद्धान्त उपस्थित किया, और न कोई नवीन कार्य-पद्धति ही बतलाई। उसने सदा उन्हीं बातों पर ज़ोर दिया, जो संसार के समस्त धर्मों की सबसे ज़्यादा जानी बूझी हुई बातें रही हैं—यानी एक जगदीश्वर की उपासना और सदाचरण का जीवन। उसने जब कभी लोगों को अपनी ओर बुलाया है, तो यही कहा है कि अपने अपने धर्मों की वास्तविक शिक्षा को फिर से ताज़ा कर लो, तुम्हारा ऐसा करना ही मुझे क़बूल कर लेना है।

प्रश्न यह है कि जब क़ुरान के उपदेशों का यह हाल था, तो फिर आख़िर उसमें और उसके विरोधियों में झगड़े का क्या कारण हुआ? जो व्यक्ति किसी को बुरा नहीं कहता, सबको मानता और सबकी इज़्ज़त करता है; और हमेशा उन्हीं बातों का उपदेश करता है, जो सबके यहां मानी हुई हैं; उससे कोई लड़े तो क्यों लड़े? और क्यों लोगों को उसका साथ देने से इनकार हो?

कहा जा सकता है कि मक्के के क़ुरैशों* का विरोध इस आधार पर था कि क़ुरान ने मूर्ति-पूजा से इन्कार कर दिया था, और वे मूर्ति-पूजा से प्रेम

*'क़ुरैश' मक्के में रहने वाला एक वंश, जिसमें मुहम्मद पैदा हुए। यही लोग काबे के पुजारी थे।

रखते थे। निस्सन्देह विरोध का कारण एक यह भी था; लेकिन सिर्फ़ यही कारण नहीं हो सकता। प्रश्न यह होता है कि यहूदियों ने क्यों विरोध किया, जो मूर्ति-पूजा से बिलकुल अलग थे? ईसाई क्यों विरोधी हो गये? उन्होंने तो कभी मूर्ति पूजा की हिमायत का दावा नहीं किया।

असल बात यह है कि इन धर्मों के अनुयायियों ने क़ुरान का विरोध इसलिए नहीं किया कि वह उन्हें झूठा क्यों बतलाता था, बल्कि इसलिए किया कि वह उन्हें झूठा क्यों नहीं कहता था। हर धर्म का अनुयाई यह चाहता था कि क़ुरान केवल उसी को सच्चा कहे, बाक़ी सब को झूठा कहे, और चूंकि क़ुरान सब का समान रूप से समर्थन करता था, इसीलिए कोई उससे प्रसन्न नहीं हो सकता था। यहूदी इस बात से तो बहुत प्रसन्न थे कि क़ुरान हज़रत मूसा को प्रमाण मानता है। लेकिन वह सिर्फ़ इतना ही नहीं करता था, वह हज़रत ईसा को प्रमाण मानता था, और यहीं आकर उसके और यहूदियों के बीच विरोध खड़ा हो जाता था। ईसाइयों को इस पर क्या आपत्ति हो सकती थी कि हज़रत ईसा और हज़रत मरियम की शुचिता और सच्चाई की घोषणा की जाय? लेकिन क़ुरान सिर्फ़ इतना ही नहीं कहता था, वह यह भी कहता था कि मुक्तिका दार मदार मनुष्यों के अपने कर्मों पर है, न कि हज़रत ईसा की क़ुरबानी और बपतिस्मे पर। किन्तु मुक्ति का यह व्यापक नियम ईसाई सम्प्रदाय के लिए असह्य था।

इसी प्रकार मक्का के क़ुरैशों के लिए इससे बढ़ कर प्रसन्नता की बात और कोई नहीं हो सकती थी कि हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल का महत्व स्वीकार किया जाय। लेकिन जब वे देखते थे कि क़ुरान जिस तरह इन दोनों का महत्व स्वीकार करता है उसी तरह यहूदियों तथा ईसाइयों के पैग़म्बरों को भी स्वीकार करता है, तो उनके जातिगत और साम्प्रदायिक अभिमान को बड़ी ठेस लगती थी। वे कहते थे कि ऐसे व्यक्ति हज़रत इब्राहीम और इस्माईल के अनुयाई कैसे हो सकते हैं, जो उनके महत्व और सचाई की पंक्ति में दूसरों को भी लाकर खड़ा कर देते हैं?

सारांश यह कि क़ुरान के तीन सिद्धान्त ऐसे थे, जो उसके तथा अन्य धर्मों के अनुयाइयों के बीच विरोध के कारण हो गये—

(१) क़ुरान धर्म के नाम पर गिरोह बन्दी का विरोधी था और सब धर्मों की एकता का ऐलान करता था। अगर अन्य धर्मों के अनुयाई यह मान लेते तो उन्हें यह भी मानना पड़ता कि धर्म की सचाई किसी एक गिरोह के हिस्से में नहीं आई है, बल्कि सब को समान रूप से मिली है। परन्तु यही मानना उनकी साम्प्रदायिकता के लिए घातक था।

(२) क़ुरान कहता था—मुक्ति और कल्याण का दार-मदार कर्मों पर है, वंश, जाति, सम्प्रदाय, अथवा बाह्य रीति-रिवाजों पर नहीं। यदि वे इस तथ्य को मान लेते, तो मुक्ति का द्वार बिना भेदभाव मनुष्य मात्र के लिए खुल जाता है और किसी एक सम्प्रदाय की ठेकेदारी बाक़ी न रहती। लेकिन इस बात के लिए उनमें से कोई भी तय्यार न था।

(३) क़ुरान कहता था, वास्तविक धर्म ईश्वरोपासना है, और ईश्वरोपासना यह है कि बिना किसी और को बीच में लाये एक परमात्मा की सीधी उपासना की जाय। लेकिन दुनिया के समस्त सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में बहु ईश्वरवाद और मूर्ति-पूजा के ढंग स्वीकार कर लिये थे। यद्यपि उनको इससे इनकार नहीं था कि वास्तविक धर्म ईश्वरोपासना ही है, और ईश्वर एक ही है तथापि अपनी रूढ़ियों और प्रथाओं से अलग होना उन्हें बेतरह खलता था।

ऊपर की सारी बहस का सार इस प्रकार दिया जा सकता है—

(१) क़ुरान के आने के समय वंशों, कुटुम्बों और परिवारों के अलग अलग सामाजिक रहन-सहन की तरह संसार के धर्मों में भी अलग अलग दल-बन्दियां कर ली गई थीं। प्रत्येक दल का आदमी यही समझता था कि धार्मिक सत्य सिर्फ़ मेरे ही हिस्से

में पड़ा है। जो व्यक्ति इस धार्मिक परिधि के अन्दर है, वह मुक्त है; जो बाहर है, वह मुक्ति से वंचित है।

(२) प्रत्येक दल धर्म के केवल बाह्य कर्मों और रीतियों को ही धर्म की असलीयत और उसका तथ्य समझता था। ज्योंही कोई व्यक्ति इन बाह्य रीति रिवाजों को अंगीकार कर लेता, त्यों ही यह विश्वास कर लिया जाता कि मुक्ति और कल्याण उसे प्राप्त हो गया—जैसे, उपासना की एक विशेषविधि, कुरबानियों के रीति-रिवाज, किसी विशेष प्रकार का भोजन करना या न करना, किसी विशेष वेश-भूषा को स्वीकार करना या न करना।

(३) चूंकि ये रीति-रिवाज प्रत्येक सम्प्रदाय में भिन्न-भिन्न थे, इसलिये प्रत्येक धर्म का अनुयाई विश्वास करता था कि दूसरे सम्प्रदाय वालों के पास धार्मिक सच्चाई नहीं है, क्योंकि उनके कर्म और रीति-रिवाज वैसे नहीं हैं, जैसे मेरे हैं!

(४) प्रत्येक सम्प्रदाय का दावा सिर्फ़ यही नहीं था कि वह सच्चा है, बल्कि यह भी था कि दूसरा झूठा है। परिणाम यह था कि हर सम्प्रदाय केवल अपनी सचाई की घोषणा करके ही सन्तोष नहीं करता था, बल्कि दूसरों के विरुद्ध पक्षपात और घृणा फैलाना भी आवश्यक समझता था। इस परिस्थिति ने मनुष्यों को निरन्तर लड़ाई झगड़ों में फँसा रखा था। धर्म और ईश्वर के नाम पर प्रत्येक गिरोह दूसरे गिरोह से घृणा करता और उसका ख़ून बहाना जायज़ समझता था।

(५) लेकिन क़ुरान ने मनुष्यमात्र के सम्मुख नए सिरे से इस सिद्धान्त को उपस्थित किया कि धर्म की सचाई विश्वव्यापी सचाई है।

(क) उसने सिर्फ़ यही नहीं बतलाया कि प्रत्येक धर्म में सचाई है, बल्कि यह भी साफ़ साफ़ कह दिया कि सभी धर्म सच्चे हैं। उसने कहा कि धर्म परमात्मा की एक ऐसी देन है, जो सबको समान रूप से प्राप्त है। इसलिए सम्भव नहीं कि यह देन किसी एक जाति या गिरोह ही को दी गई हो और दूसरों का इसमें कोई हिस्सा न हो।

(ख) उसने कहा कि परमात्मा के समस्त प्राकृतिक नियमों की तरह मनुष्य के आध्यात्मिक कल्याण का नियम भी एक ही है, और सबके लिए है। इसलिए विविध धर्मों के अनुयाइयों की सबसे बड़ी भूल है कि उन्होंने ईश्वरीय धर्म की एकता को भूलकर अपने अलग अलग गिरोह बना लिये हैं, और हर गिरोह दूसरे से लड़ रहा है।

(ग) क़ुरान ने बतलाया कि ईश्वरीय धर्म इसलिए था कि मनुष्य-समाज के परस्पर भेदभाव और झगड़े दूर हों, इसलिए न था कि वह स्वयं विरोध और लड़ाई का कारण बन जाय। इसलिए इससे बढ़कर गुमराही और क्या हो सकती है कि जो वस्तु भेदों को दूर करने आई थी, वही भेदों की जड़ बना ली गई?

(घ) उसने बतलाया कि धर्म एक चीज़ है, और विधि-विधान दूसरी। धर्म एक ही है, और एक प्रकार से सबको दिया गया है। हां, विधि-विधान में भेद हुआ है, और यह भेद अनिवार्य था, क्योंकि हर युग और हर जाति की अवस्था एक सी नहीं थी। यह आवश्यक था कि जैसी जिसकी अवस्था हो, उसी के अनुसार विधि और व्यवस्था उसे बताई जाय। इसलिए विधि-विधान के भिन्न भिन्न होने से असली धर्म भिन्न भिन्न नहीं हो सकता। तुमने धर्म के तत्त्व को तो भुला दिया है और केवल विधि-विधान के भेदों को लेकर एक दूसरे को झूठा कह रहे हो।

(च) उसने बतलाया कि तुम्हारी धार्मिक दलबन्दियों और उनके बाह्य रीति-रिवाजों का मनुष्य की मुक्ति और कल्याण के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। ये दलबन्दियां तुम्हारी बनाई हुई हैं। ईश्वर का ठहराया हुआ धर्म क्या है? क़ुरान बताता है—एक ईश्वर की उपासना और सदाचरण का जीवन। जो व्यक्तिभी ईश्वर पर विश्वास रखेगा और सदाचरण का मार्ग ग्रहण करेगा, उसके लिए मुक्ति है, चाहे वह तुम्हारी गिरोह बन्दी में शामिल हो, या न हो।

(छ) क़ुरान ने साफ़ साफ़ शब्दों में घोषित कर दिया कि उसके उपदेशों का उद्देश्य इसके सिवा और

कुछ नहीं कि सभी धर्मों के अनुयाई अपने सर्वसम्मत और सर्वस्वीकृत सत्य पर एकत्र हो जायँ। वह कहता है कि सभी धर्म सच्चे हैं, लेकिन उनके अनुयाई सचाई के रास्ते से भटक गये हैं। अगर वे अपनी भूली हुई सचाई फिर से अख़्तियार कर लें, तो मेरा काम पूरा हो गया; और उन्होंने मुझे क़बूल कर लिया। सभी धर्मों की यही सर्वसम्मत और सर्वस्वीकृत सच्चाई है, जिसे क़ुरान अलदीन (अद्दीन) और 'अल् इस्लाम' के नाम से पुकारता है।

(ज) क़ुरान कहता है, ईश्वर का धर्म इसलिए नहीं है कि एक मनुष्य दूसरे से घृणा करे, बल्कि इस लिए है कि प्रत्येक मनुष्य दूसरे से प्रेम करे और सब एक ही परमपिता के भक्ति-सूत्र में बँध कर एक हो जायँ। वह कहता है, जब सबका पालनकर्त्ता एक है, जब सब का लक्ष्य उसी की भक्ति है, जब प्रत्येक व्यक्ति के लिए वही होना है, जैसा कि उसका कर्म है, तो फिर ईश्वर और धर्म के नाम पर ये समस्त विरोध और लड़ाइयाँ क्यों हैं?

(६) संसार के धर्मों की परस्पर भिन्नता केवल भिन्नता तक ही परिमित नहीं रही, बल्कि पारस्परिक घृणा और शत्रुता का भी साधन बन गई है। प्रश्न यह है कि यह शत्रुता दूर कैसे हो? यह तो हो नहीं सकता कि सब धर्मों के अनुयाई अपने दावे में सच्चे मान लिये जायँ क्यों कि प्रत्येक धर्म का अनुयाई सिर्फ़ यही दावा नहीं करता कि मैं सच्चा हूं, बल्कि यह भी दावा करता है कि दूसरे झूठे हैं। इसलिए अगर उन सब के दावे मान लिये जायँ, तो मान लेना पड़ेगा कि हर धर्म एक ही समय में सच्चा भी है और झूठा भी। यह भी नहीं हो सकता है कि सब को झूठा क़रार दिया जाय, क्यों कि अगर सब धर्म झूठे हैं, तो फिर धार्मिक सत्य है कहाँ? इसलिए यदि कोई तरीक़ा झगड़ा मिटाने का हो सकता है, तो वह वही है, जिसका उपदेश लेकर क़ुरान प्रकट हुआ है। सारे धर्म सच्चे हैं, क्योंकि वास्तविक धर्म एक ही है और वह सब को दिया गया है, लेकिन समस्त धर्मों के अनुयाई धार्मिक सत्य से अलग हो गये हैं, क्योंकि उन्होंने धर्म की वास्तविकता और उसकी एकता नष्ट कर दी है, और अपनी गुमराही से अलग अलग टोलियाँ बना ली हैं। अगर इस गुमराही से लोग हट जायँ और अपने अपने धर्म की वास्तविक शिक्षा को अपना लें, तो सब धार्मिक झगड़े स्वयं मिट जायँगे। प्रत्येक गिरोह देख लेगा कि उसका मार्ग भी वास्तव में वही है जो और गिरोहों का है। क़ुरान कहता है कि सभी धर्मों का यही सर्वसम्मत और सर्वस्वीकृत सत्य 'अद्दीन' है, यानी मनुष्य जाति के लिए यही वास्तविक धर्म है और इसी को वह 'अल्-इस्लाम' के नाम से पुकारता है।

(७) मनुष्य-जाति के पारस्परिक प्रेम और ऐक्य के जितने भी सम्बन्ध हो सकते थे, सब मनुष्यों के ही हाथों टूट चुके। सब की नसल एक थी, परन्तु हज़ारों हो गईं। सब की जाति एक थी, परन्तु असंख्य जातियां बन गईं। सब का जन्मस्थान एक ही था, पर वे अलग अलग देशों में बट गये। सब का दरजा एक था; लेकिन अमीर और ग़रीब, कुलीन तथा अकुलीन, ऊँच और नीच बहुत सी श्रेणियां बना ली गईं। ऐसी अवस्था में वह कौन सा सम्बन्ध है, जो इन सब विभिन्नताओं और विषमताओं को मिटा कर मनुष्यमात्र को एक पंक्ति में ला खड़ा कर सकता है?

क़ुरान कहता है कि वह सम्बन्ध ईश्वर-भक्ति का सम्बन्ध है, जो मनुष्य के बिछुड़े हुए परिवार को फिर से एकत्र कर दे सकता है। यह विश्वास कि हम सब का पालन कर्त्ता एक ही है, और हम सब के सिर उसी एक की चौखट पर झुके हुए हैं, ऐक्य और प्रेम के ऐसे भाव हममें उत्पन्न कर देता है कि मनुष्य-निर्मित भेदों का उन पर विजयी हो सकना सर्वथा असम्भव है।

चीन का सांस्कृतिक जीवन

प्रोफ़ेसर तान युन-शान

समाज संगठन

सुन-त्सु, कुआन-त्सु, हान-त्सु, शांग-त्सु आदि चीन के पुराने दार्शनिकों ने अनादि काल से समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध और समाज शास्त्र के अध्ययन को बहुत महत्व दिया है। सुन-त्सु ने अपनी एक पुस्तक में इस प्रकार लिखा है—

"पानी और अग्नि में सांस है किन्तु जीवन नहीं; दरख्तों और घास में जीवन है किन्तु ज्ञान नहीं; पक्षियों और पशुओं में ज्ञान है किन्तु विवेक नहीं; अकेला मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिसमें सांस, जीवन, ज्ञान और भले बुरे की पहिचान है। इसलिये इस चराचर में मनुष्य ही सब में अधिक उन्नतिशील प्राणी है। मनुष्य की शारीरिक शक्ति पशुओं से अधिक नहीं है, उसकी गति घोड़े जैसी भी नहीं है; किन्तु तिस पर भी मनुष्य ही इन पशुओं और जानवरों को अपने फ़ायदे के लिये इस्तेमाल करता है। यह इसलिये सम्भव है कि मनुष्य एक सूत्र में बँधे हुए हैं और पशुओं में जीवन को प्रवाह देने वाली एकता नहीं है। किन्तु मनुष्यों में यह एकता कैसे सम्भव हुई? कर्तव्य की स्वाभाविक भावना ही मनुष्य को एकता के सूत्र में बांध देती है। चूंकि उनमें विवेक है इसीलिये वे भले बुरे की पहिचान कर सकते हैं। चूंकि उनमें कर्तव्य ज्ञान और विवेक है, इसीलिये उनमें एकता की भावना है, और चूंकि उनमें एकता की भावना है, इसीलिये उनका संगठन हो सकता है और वे शक्ति संचय कर सकते हैं।"

ये चार हज़ार साल पहले के एक चीनी दार्शनिक के वाक्य हैं। हाला कि सुन-त्सु के विचार पूरी तरह वैज्ञानिक नहीं हैं फिर भी वे मानव समाज की मौलिक एकता को भली भांति ज़ाहिर करते हैं।

चीनी समाज तीन मुख्य भागों में बँटा हुआ है:—

(१) कुलों के अनुसार संगठन।
(२) स्थानों के अनुसार संगठन।
(३) पेशों के अनुसार संगठन।

यह सभी जानते हैं कि चीनी जनता अपने अपने कुलों के संस्थापकों की पूजा करती है और इसीलिए उनमें कुल-बन्धुत्व बहुत गहरा होता है। हम चीन वाले अपने आपको एक आदि पुरुष की सन्तान मानते हैं।

हर कुल अपने आप में समाज का एक भाग होता है, और हर भाग का कुल के नाम से एक भवन होता है, जो उनका 'कुल मन्दिर' कहलाता है। हर कुल में भी कई फ़िरक़े होते हैं, और हर फ़िरक़े का अपना परिवार भवन होता है जो 'परिवार मन्दिर' कहलाता है। आमतौर पर ज़िले के केन्द्र में कुल-मन्दिर होता है और गांव गांव में परिवार-मन्दिर। कुल का सब में बूढ़ा आदमी ही कुलपति होता है, और कुल भवन के प्रबन्ध के लिये समस्त कुल वाले मिल कर एक कमेटी चुन लेते हैं। कुल पिता के जन्म दिन पर और दूसरे त्यौहारों पर समस्त कुल वाले कुल मन्दिर में इकट्ठा होते हैं और कुलपिता की याद में उत्सव मनाते हैं। कुल से सम्बन्ध रखने

वाले तमाम मामलों का वहां निपटारा होता है। कुल के सदस्यों में जब आपस में कोई मुकदमे बाज़ी होती है तो उसका फ़ैसला भी इसी अवसर पर होता है। जब कुल मन्दिर में फ़ैसला नहीं हो सकता तभी सरकारी अदालतों में मुक़दमे जाते हैं; हर कुल सावधानी के साथ अपना वंश परिचय सुरक्षित रखता है और कुल से सम्बन्ध रखने वाली ख़ास-ख़ास घटनाओं का क्रमबद्ध इतिहास लिखा जाता है। कुल के हर सदस्य की जन्म और मृत्यु की तारीखें भी कुल मन्दिर के रजिस्टर में सावधानी के साथ दर्ज की जाती हैं।

चीन में लोग अपने ख़ानदान और अपने गांव या शहर के प्रति भी सम्मान व भक्ति रखते हैं। उनकी यह भक्ति चीन के सामाजिक जीवन पर एक खास असर डालती है। गांव में "तु-ति मिआव" (स्थानीय मन्दिर), "शेह-त्सांग" (गांव का अन्न भंडार), "शु-युआन" (स्थानीय ग्राम सभा) आदिक संस्थायें होती हैं। शहरों में और खास कर ऐसे शहरों में जहां कल कारख़ाने हैं वहां की मुख्य संस्था "हुई-कुआन" है। यह संस्था मध्यकालीन इंगलैण्ड की ट्रेड गिल्ड से मिलती जुलती है।

गांव के मन्दिर में गांव वाले मिलकर पूजा करते हैं और गांव के अन्न भण्डार में गांव वाले मिल कर, अपनी खपत से बचा हुआ, नाज भर देते हैं जो अकाल के दिनों में काम आता है। मैं समझता हूं आप के देश हिन्दुस्तान में भी इस क़िस्म के अन्न भण्डार गांव गांव में होते थे। ग्राम सभा के सुपुर्द एक भवन का इन्तज़ाम होता है जहां बड़े बड़े सामाजिक जलसे और सभाएं होती हैं। गांव के आपसी झगड़ों का निपटारा इन्हीं ग्राम सभाओं में होता है। जिस तरह गांव की सभाएं होती हैं उसी तरह ज़िले के केन्द्र में भी ग्राम सभाओं का संगठन होता है जहां ज़िले भर के गांव के प्रतिनिधि समय समय पर इकट्ठा होते हैं। ज़िले ही की तरह प्रान्त में केन्द्रीय सभाएं होती हैं। जहां विविध ज़िले के प्रतिनिधि इकट्ठा होकर प्रान्तीय महत्व की बातों पर अपने फ़ैसले करते हैं। इन सभाओं के पास अपनी बड़ी बड़ी जायदादें होती हैं।

चीनी दस्तकारों और पेशेवरों का संगठन बहुत पुराना और अपने आप में परिपूर्ण है। विविध उद्योग धंधों में लगे हुए लोगों और दस्तकारों की जमातों को "हांग" (वर्ग) कहते हैं। एक पेशे के सब दस्तकारों को "तुंग-हांग" (उसी वर्ग के) कहते हैं। चीन में विविध धंधों की इस तरह की तीन सौ साठ हांग हैं। हर हांग का केन्द्र ज़िले या प्रान्त की राजधानी में होता है, हर हांग के पास बहुत सा धन होता है, उसका अपना संगठन विधान होता है और उसकी चुनी हुई कार्यकारिणी समिति होती है। हांग की जनरल कमेटी की साल में दो बैठकें होती हैं—एक बसन्त में और दूसरी खिज़ां में। इन बैठकों में समस्त दस्तकार अपने अपने व्यापार या धन्धों की चर्चा करते हैं और उसे फैलाने और बढ़ाने के उपायों पर सलाह मशविरा करते हैं। हर हांग का एक एक इष्टदेव होता है जो उस धन्धे का आविष्कारक समझा जाता है और साल में एक बार उसकी पूजा होती है, और उसकी मूर्ति के सामने भेंट चढ़ाई जाती है।

इन तीन प्रमुख समाज सङ्गठन के अतिरिक्त (१) गुप्त समितियां (२) परोपकारिणी सभायें और (३) धार्मिक समितियां भी होती हैं। गुप्त समितियों में "कोलाव हुई" और 'चिंग हुंग पेन' मुख्य हैं। ये आवारा और घुमक्कड़ों की समितियां हैं। इन गुप्त समितियों के महत्व को कम समझना उचित न होगा। ये समाज का बेहद नुक़सान भी कर सकती हैं और उसे फ़ायदा भी पहुंचा सकती हैं। पिछले दिनों इनमें से कई समितियां डाकुओं और बदमाशों के गिरोह में मिल गई थीं और कई क्रांतिकारियों के साथ हो गई थीं।

परोपकारिणी सभाएं और मुल्कों की तरह चीन में भी अनाथालय, विधवाभवन, छोटी लड़कियों के लिये आश्रय गृह, बूढ़े और अपंगों के लिये आश्रम खोलती रहती हैं और इसी तरह के दूसरे काम करती

रहती हैं । और भी अनगिनती धार्मिक सभाएं हैं जो अपने अपने उद्देश्यों को पूरा करने में लगी हुई हैं। यहां यह बता देना ज़रूरी है कि चीन में पूरी धार्मिक स्वतंत्रता है और साम्प्रदायिक झगड़ों या दगों का वहां नाम निशान तक नहीं है ।

चीनी समाज की सब में बड़ी विशेषता यह है कि वहां जाति पांति के झगड़े नहीं हैं। शुरू शुरू में चीनी जनता चार भागों में बंटी हुई थी। (१)'शिह' (विद्वान), (२) 'नूंग' (किसान) (३) 'कुंग' (दस्तकार) और (४) 'शांग' (व्यापारी) यह वहां का समाज संगठन था। और सरकार भी इनके साथ उसी तरह का व्यवहार करती थी। किन्तु एक गिरोह से दूसरे गिरोह में जाने की मनाही न थी और महज़ पैदाइश की वजह से कोई एक गिरोह का अधिकारी न हो सकता था। चारों में से किस गिरोह में कोई व्यक्ति रहे यह उसकी अपनी रुचि और पेशे पर निर्भर था। चारों गिरोहों में आपस में ख़ूब शादी ब्याह भी होते थे। विद्वान के गिरोह की समाज में सब से ज़्यादा इज़्ज़त थी और हर जगह उनका आदर होता था। व्यापारी को समाज में सब में निकृष्ट समझा जाता था। बावजूद उसके पैसे के लोग उससे इसलिये नफ़रत करते थे कि वह अपनी मेहनत से कुछ न पैदा करता था और समाज के ऊपर जोंक की तरह चिपटा रहता था।

परिवार और स्त्रियों की स्थिति

ऊपर लिख चुका हूं कि चीनी समाज में परिवार का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। चीनी जनता माता पिता के प्रति भक्ति, भाई चारे और दोस्ती पर बहुत ज़ोर देती है। सब की यही ख़्वाहिश होती है कि उनका परिवार ख़ूब बढ़े और वे सब साथ रहें।

चीन में सब में आदर्श परिवार उसे कहते हैं कि जिसमें माता पिता हों, दादा दादी हों, भाई और भाभियां और नाती पोते हों। इस तरह के परिवार को 'वु ताइ तुंग तांग' कहते हैं। इसका अर्थ है ऐसा परिवार जिसमें पांच पीढ़ियें साथ रह रही हों। इस तरह के परिवार की समाज व सरकार दोनों इज़्ज़त करते हैं। दस आदमियों का परिवार तो एक साधारण सी बात है। बहुत से परिवार ऐसे हैं जिनके सदस्यों की तादाद सौ से अधिक है। कुछ बरस पहले चीन के समाचार पत्रों में 'ति चिंग युन' नामक एक चीनी विद्वान की तस्वीर और जीवनी छपी थी। यह विद्वान १६६० ई० में पैदा हुआ, और २५८ वर्ष तक जिया, चौदह बार शादी की और १८० बच्चे पैदा किये। ये सारी बातें बिलकुल सच्ची हैं और सरकारी रिकार्ड से साबित हैं। मैं शंघाई के एक परिवार को जानता हूं जिसमें एक सौ सदस्य हैं। उनकी अपनी परिवार की सभायें होती हैं, परिवार का ही एक समाचार पत्र निकलता है उन्हीं की अपनी पुलिस है। ऐसे परिवार में छोटे, बड़े, स्त्री, पुरुष हर एक के परिवार के प्रति कर्तव्य होते हैं जिनका पालन करना उनके लिये ज़रूरी होता है। परिवार की पूंजी सम्मिलित होती है और सारे परिवार के फ़ायदे के लिये इस्तेमाल होती है। परिवार के व्यक्तिगत सदस्यों को भी अपनी निजी पूंजी रखने की इजाज़त होती है, किन्तु ज़रूरत के वक्त उनकी यह पूंजी परिवार की सम्मिलित पूंजी में मिला ली जाती है ।

प्यार की भावना, एकता, सहयोग और आपसी मदद ही इस तरह के परिवार को बढ़ाती और चलाती हैं। परिवार का हर सदस्य इन्हीं भावों से ओत प्रोत रहता है । किन्तु परिवार के इस तरीक़े में बहुत सी कमियें हैं। परिवार के बहुत से नौ जवान सदस्य बेकार पड़े रहते हैं। वे कोई काम ही नहीं करते। उन्हें इतमीनान रहता है कि खाना कपड़ा मिल ही जायगा । बेकार आदमी आपस में लड़ते हैं और उसके कभी कभी भयंकर नतीजे हो जाते हैं। हालत यह है कि परिवार का यह पुराना तरीका ख़स्ता होकर टूट रहा है। कुछ पश्चिम का असर भी इसे ख़तम करने में मदद दे रहा है। हमारे बहुत से विद्यार्थी जो ऊंची शिक्षा के लिये यूरोप व अमरीका जाते हैं वे और असबाबों के साथ एक विलायती बीवी ले आते हैं । ये विलायती बीबियां हमारे परिवार में किसी तरह भी

नहीं खपतीं। यदि विदेशी व्यापारी ने हमारे देश की प्राचीन आर्थिक प्रणाली को नष्ट भ्रष्ट कर दिया तो इन विलायती बीवियों ने भी हमारे सम्मिलित परिवार की प्रणाली को उलटने में कोई कसर बाक़ी नहीं रखी। अब ये सम्मिलित परिवार पुरानी स्मृति के रूप में ही शेष रह गये हैं।

अब मैं आपसे हमारे चीनी समाज में स्त्रियों की जो स्थिति है उस पर कुछ अर्ज़ करूं। जैसा मैंने ऊपर आपसे कहा है कि परिवार चीनी समाज का केन्द्र है इसी तरह परिवार का केन्द्र है पत्नी। उसी के हाथ में सारी शक्ति होती है और वही घर पर हुकूमत करती है। हम चीनियों का बहुत पुराने ज़माने से यह विश्वास रहा है कि मरदों को घर ग्रहस्थी के अन्दरूनी मामलों में कोई दख़ल न देना चाहिये। यह काम पूरी तरह औरतों के सुपुर्द है। हमारे सब से पुराने धर्म ग्रन्थ 'ली-चिंग' में लिखा है, "मर्दों को घर ग्रहस्थी के मामलों में कोई बहस नहीं करनी चाहिये और औरतों को बाहर के मामलों में कोई दख़ल न देना चाहिये।" इस तरह पत्नी परिवार के अन्दर सचमुच ही हुकूमत करती है और घर के मामलों मे उसका पूरा बोल बाला रहता है। पच्छिम की औरतें भले ही आज़ादी की डींग हांकें मगर अभी वहां की औरतों को उतने अधिकार नहीं मिले जितने हमारे यहां की औरतों को हमेशा से प्राप्त हैं। चीनी औरतें अपने पति पर पूरी तरह हुकूमत करती हैं। हम लोग चीन के मर्द, एक तरह से अपनी बीवियों के ग़ुलाम (Hen-pecked husbands) हैं। बहुत से चीनी पति जो बाहर शेर की तरह दहाड़ते हैं, ज्यों ही घर के दरवाज़े के अन्दर क़दम रखते हैं भीगी बिल्ली बन जाते हैं। एक पुरानी चीनी कहावत है "किसी वीर के लिये एक बीवी के बनिस्बत एक लाख फ़ौज का संचालन कर लेना ज़्यादा आसान है।" पिछले दिनों जनरल चांग-ह्सु-लियांग ने जब बग़ावत की तो उसकी बीवी यूरोप में थी। जैसे ही उसने सुना वह फ़ौरन चीन वापस आई और उसने बयान दिया कि "मर्द पर जहां बीवी की हुकूमत कम हुई वहीं वह शरारत पर आमादा हो जाता है। इन सब बातों से साफ़ पता चलता है कि हमारे चीन में स्त्रियों का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मगर बावजूद अपनी इस शक्ति के स्त्री का समाज में उतना ऊंचा स्थान नहीं है जितना कि पुरुष का। चीनी इतिहास के पुराने उल्लेखों से पता चलता है कि चीन में किसी ज़माने में स्त्रियां ही जायदाद की मालिक और उत्तराधिकारिणी होती थीं। उस ज़माने में बेशक स्त्रियों का दरजा पुरुषों से ऊंचा रहा होगा। किन्तु वह ज़माना बदल गया। दार्शनिकों और व्यवस्थापकों ने समय समय पर क़ानून बना कर स्त्रियों की शक्ति को कम करके समाज में उनके दरजे को घटा दिया।

चीनी धर्म ग्रन्थ "लि-चि" (सामाजिक नियम) में स्त्रियों को तीन कर्तव्यों का आदेश दिया गया है। इस आदेश को चीनी भाषा में "सन-त्सुङ्ग" कहते हैं। स्त्रियों में चार तरह के गुण होने चाहियें। इन गुणों को "सुतेह" कहते हैं। उसके तीन कर्तव्य हैं—(१) बचपन में वह पिता के अधिकार में रहे। (२) शादी के बाद पति के अधिकार में और (३) विधवा होने पर लड़के के अधिकार में। उसके चार गुण हैं—(१) सतीत्व और धार्मिकता, (२) प्रेम और मिठास से बात करना (३) सदाचरण और नम्रता और (४) घर के काम काज में पटुता यानो खाना पकाना, कपड़ा बुनना, सीना पिरोना और गृहस्थी संभालने में निपुणता।

बचपन से ही चीनी स्त्रियां कठोर अनुशासन के साथ शिक्षा देकर पाली पोसी जाती हैं। इसीलिये बड़े होने पर वे सदाचार और नम्रता की मूर्ति होती हैं। हमारे समाज में आदर्श स्त्री 'लिआंगचि' (अच्छी पत्नी) और "हिसृएन-मु" (दयालु मां) समझी जाती हैं।

हाला कि चीनी समाज में परदा नहीं है और स्त्रियां बिना घूंघट निकाले बाहर आती जाती हैं फिर भी स्त्री पुरुष आपस के बर्ताव में आदर और अलहदगी बरतते हैं। हमारे यहा युवक युवतियां एक

दूसरे के हाथ में हाथ डाले सड़कों पर घूमते हुये नज़र न आवेंगे, न एक दूसरे की कमर में हाथ डाले संगीत की थाप पर नाचते हुये ही दिखाई देंगे। इन सारे रिवाजों को चीनी जनता बहुत भद्दा समझती है। यूरोप की देखा देखी बहुत से चीनी युवक और युवतियां इस तरह की बातें करते दिखाई देते हैं मगर कोई उनकी इज़्ज़त नहीं करता।

चीनी जनतन्त्र की स्थापना के बाद सरकार ने स्त्री पुरुषों को एक सी स्वाधीनता और एक से अधिकार दे रखे हैं। हमारी राष्ट्रीय सरकार ने स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिये हर तरह के प्रयत्न किये हैं। सह शिक्षा एक छोटी उम्र तक ही होती है उसके बाद लड़के लड़कियां अलग अलग स्कूल और कालेजों में पढ़ते हैं। हमारी स्त्रियों ने देश के राजनैतिक जीवन में भी काफ़ी दिलचस्पी ली है। वे सभाओं और जुलूसों में भी बहुत बड़ी तादाद में शामिल होती हैं। सरकारी नौकरियां भी उनके लिये खोल दी गई हैं और स्त्रियों की एक बहुत बड़ी तादाद सरकारी पदों पर नियुक्त होती है जो होशियारी और ज़िम्मेवारी के साथ अपने फ़र्ज़ अदा करती है।

रीत-रिवाज और आचार-विचार

चीनी समाज नीति शास्त्र के ही आधार पर कायम है। चीन का सारा सामाजिक ढांचा एक नैतिक ढांचा है और सामाजिक सम्बन्ध एक प्रकार का नैतिक सम्बन्ध है। छोटे बड़े, क़रीब के या दूर के, सब रिश्तेदारों के बीच में दरजे बने हुए हैं। उदाहरण के तौर पर बड़े भाई को 'ह्सि उंग' और बड़ी बहिन को रज़' कहते हैं। छोटे भाई को 'ति' और छोटी बहिन को 'मे' कहते हैं। ताया को 'पो' और चचा को 'शु' कहते हैं। बुआ को 'कु' मामा को 'चिन' और मासी को 'यि' कहते हैं। ताई को 'पो-मु', चाची को 'शु-मु', फूफा को 'कु-फु', मामी को 'चिन-फु', और मौसा को यि-फु कहते हैं। चचेरे भाइयों को 'ताङ्ग-ह्सि उङ्ग ति' और चचेरी बहिनों को 'ताङ्ग-रजु-मे' कहते हैं। पच्छिम वालों की नज़रों में सब भाई 'ब्रदर', सब बहिनें 'सिस्टर', सब चचा 'अंकिल', सब भाञ्जे और भतीजे 'नेव्यु' और सब भानजियां और भतीजियां 'नीस' हैं। छोटे बड़े और नज़दीक दूर का उनकी नज़रों में कोई फ़रक़ ही नहीं।

चीनी समाज में शुरू शुरू में तीन तरह के बन्धन थे जो 'सन-काङ्ग' कहलाते थे। रिश्तों में छै दरजे थे जो 'वु-लुन' कहलाते थे और नौ पीढ़ियों के रिश्तेदारों का हिसाब रहता था जिसे 'चिउ-त्सु' कहा जाता था। तीन तरह के बन्धन थे, (१) राजा और प्रजा का सम्बन्ध, (२) मां-बाप और सन्तान का सम्बन्ध, (३) पति और पत्नी का सम्बन्ध। छै दरजे हैं—(१) पिता और पिता के छोटे, बड़े भाई, (२) भाई और बहिनें, (३) कुल, (४) मां और मां के भाई, (५) गुरु और (६) मित्र। पांच रिश्तेदारियाँ हैं—(१) मां बाप और औलाद, (२) राजा और प्रजा, (३) पति और पत्नी, (४) भाई और बहिन और (५) मित्र। नौ पीढ़ियों में चार पीढ़ियें ऊपर की यानी माता-पिता, दादा-दादी, परदादा-परदादी और लकड़दादा-लकड़दादी और चार पीढ़ियां नीचे की यानी बेटे बेटी, नाती-पोते, परनाती-परपोते और परनाती परपोतों की औलाद। इनके अतिरिक्त तीन तरह के आम सामाजिक सम्बन्ध हैं—(१) ख़ानदान के (२) रिश्तेदारों के और (३) दोस्तों के।

चूं कि चीनी समाज नैतिक बुनियाद पर क़ायम है इसीलिये वह सदाचरण पर बहुत ज़ोर देता है। क्योंकि सदाचरण के बग़ैर नैतिकता रह ही नहीं सकती और न नैतिकता के बग़ैर सदाचरण। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। चीनी सन्तों ने अनादिकाल से नैतिकता और सदाचरण के बहुत से नियम बना दिये हैं। इनमें सब से महत्त्वपूर्ण और ज़रूरी पांच नैतिक नियम हैं जो वु-चाङ्ग कहलाते हैं। इनमें (१) 'जेन', यानी परोपकार (२) 'यि' यानी न्याय (३) 'लि' व्यवहार, (४) 'चिह' यानी बुद्धिमानी और (५) 'ह्सिन' यानी विश्वासपात्रता। चार तरह के आवश्यक कर्तव्य हर एक को करना लाज़िमी हैं जो 'रजु' ह्सिङ्ग' कहलाते हैं। ये हैं—(१) 'ह्सि आव' यानी

माता-पिता की भक्ति (२) 'ति' 'भाइयों से स्नेह, (३) 'चुङ्ग' यानी राज-भक्ति, (४) हि्सङ्ग' यानी विश्वास-पात्रता। समझा जाता है कि समाज चार स्तम्भों पर क़ायम है (१) 'लि' यानी व्यवहार, (२) 'यि' न्याय, (३) 'ल्यु' ईमानदारी और (४) 'चिह' यानी लज्जा की भावना। इनके अतिरिक्त और बहुत से नैतिक नियम हैं जिनका यहां बयान करना मुश्किल है। चीन के राष्ट्र-निर्माता स्वर्गीय डा० सुनयात सेन ने संसार के समस्त महापुरुषों की शिक्षा का सार लेकर व्यवहार के नये नियम बनाये हैं। इन्हें 'या-तेह' यानी आठ सद्गुण कहते हैं। ये हैं (१) 'चुंग' यानी विश्वसनीयता, 'हि्स-आव' याने पित्र भक्ति, (३) 'जेन' यानी परोपकार (४) 'ऐ' यानी प्रेम, (५) 'हि्सङ्ग' यानी विश्वास पात्रता (६) 'यि' यानी न्याय (७) 'हो' यानी एकता और (८) 'पिन' यानी शान्ति। चीन की जनता आज कल इसी को, राष्ट्रीय सदाचार का आदर्श मान कर, पालन करती है।

चीन को चीनी और दूसरे विदेशी भी 'संस्कारों और उत्सवों का देश' कहते हैं। दुनिया में और किसी देश में इतने उत्सव और संस्कार नहीं होते। हमारे यहां तीन सौ 'विधि संस्कार' और तीन हज़ार रीत-रिवाज माने जाते हैं। इनकी वजह से साधारण जनता के लिये परेशानी और मुसीबत बेहद बढ़ जाती है। यहां मैं शादी और मृतक कर्म के सम्बन्ध में कुछ रीत रिवाज की चर्चा करूंगा। चीन में शादी ज़िन्दगी की सब से महत्व पूर्ण घटना है और इसीलिये उसकी संस्कार विधि बहुत लम्बी होती है। सगाई और शादी के बीच में छै संस्कार विधि होती हैं। वे हैं—(१) "ना-त्साइ" यानी वर-दीक्षा (२) "वेन-मिङ्ग" यानी लड़की का नाम पूछना (चीन में उस समय तक लड़की का नाम नहीं पूछ सकते जब तक शादी पक्की तरह बंध न जाय), (३) "ना चि" यानी सगाई की रस्म (तिलक), (४) "चिङ्ग चि" यानी शादी की तारीख़ मुक़र्रर होना, (५) "ना-चिङ्ग" यानी कपड़े, बर्तन, गहने आदि की दहेज़ की रस्म का अदा किया जाना और (६) 'चिन-यिङ्ग' यानी शादी की तारीख़ पर वर का वधू के यहां जाकर शादी के बाद उसे बिदा करके अपने घर लाना। शादी के दिन वर और वधू की बड़ी ख़ातिरदारी की जाती है। वधू जब अपनी सुसराल आती है तो उसे फूलों की पालकी में बैठाकर लाते हैं। इस पालकी को चार या आठ कहार उठाते हैं और आगे आगे जुलूस गाजे-बाजों के साथ चलता है। जब बारात दुलहन को लेकर वापस आती है तो सबसे पहले धरती और आसमान की पूजा की जाती है। फिर कुल देवों और इष्ट देवों की पूजा होती है। इसके बाद वर वधू आमने सामने खड़े होकर एक दूसरे को प्रणाम करते हैं। इसके बाद दोनों को सुहाग-भवन में ले जाते हैं। वहां दो लाल मोमबत्तियां जला दी जाती हैं। इसके बाद दोनों को सुहाग के पलंग पर बैठाया जाता है। फिर दोनों को एक ही प्याले से शादी की मदिरा पीनी पड़ती है। फिर तमाम घर वाले और रिश्तेदार मुंह देखकर दोनों को आशीर्वाद देते हैं। बुज़ुर्गों के बाद छोटों की पारी आती है और वे तरह तरह का मज़ाक़ करके वर-वधू को परेशान कर देते हैं। शरम के मारे वर का मुंह लाल हो जाता है और वधू लज्जा से गड़ जाती है। दूसरे दिन सुबह वर वधू का मां बाप, भाई बहिन, नाते गोत्र वाले और दोस्तों से परिचय कराया जाता है। शादी के अवसर पर वर और कन्या पक्ष दोनों को एक या दो दिन ख़ूब बड़ी दावतें देनी होती हैं। जब वधू ससुराल जाती है तो अपने पति के घर में वह एक महीने तक बिलकुल मेहमान की तरह रहती है। रोज़ श्रृङ्गार करना और रिश्तेदारों और दोस्तों के यहां दावत उड़ाना। एक माह के बाद वह तीन दिन के लिये अपने मायके वापस जाती है। लौटकर ससुराल में वह घर गृहस्थी के काम में जुट जाती है और आने वाले मातृत्व की तय्यारी करती है। पुराने ज़माने में शादियें माता पिता ही तय करते थे। लड़के लड़कियों से कोई सलाह न ली जाती थी। मगर आजकल लड़के लड़कियां ख़ुद अपने लिये साथी चुनकर शादी करना पसन्द करते हैं। विवाह की रस्म

चीनी विवाह का एक दृश्य। बधू के हाथ में फूलों का गुच्छा है।

बारहवीं सदी की चीनी पेंटिङ्ग

चीन की चौदह सौ मील लम्बी बड़ी दीवार।

यह हज़रत ईसा से २२८ वर्ष पहले बनी थी।
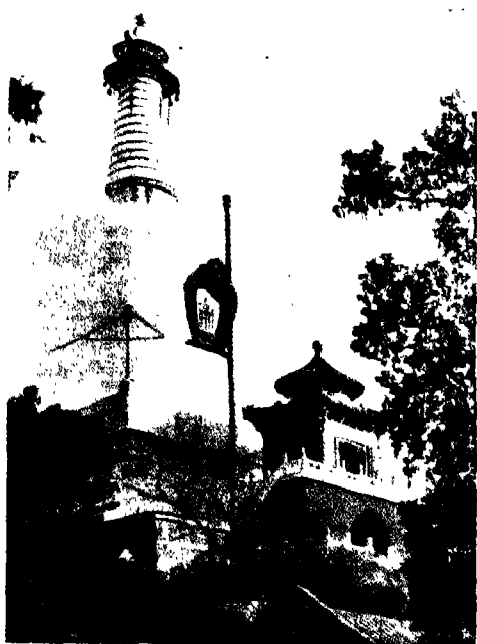
पीकिंग का प्रसिद्ध बौद्ध मन्दिर दागोबा
यह इमारत सन् १६५२ ईसवी में बनी थी

शान्सि में छठवीं सदी की भगवान बुद्ध की मूर्ति

मध्य चीन का एक मुसलमान शेख़

पीकिंग के लामा मन्दिर का पुरोहित

भी बहुत बदल गई। अभी पिछले दिनों शंघाई और दूसरे बड़े शहरों में 'त्ज़ी-तुआन चेह-हुएन' नामक शादी की रीति चली। इसके अनुसार एक साथ और एक जगह बहुत सी शादियां हो जाती हैं। इसका मतलब यह है कि शादी की रसम में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया।

चीन में मृतक का क्रिया कर्म भी एक महत्वपूर्ण संस्कार है। चीनी रिवाज के अनुसार शादी माता पिता का बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य को अदा करना है और मृतक कर्म बच्चों का मां बाप के तरफ़ अपने कर्तव्य का पालन करना है। इसलिए जब मां बाप की मृत्यु होती है तो बच्चों के ऊपर ज़बरदस्त ज़िम्मेवारी आ जाती है। मृत्यु के बाद पूरे सौ दिन तक हजामत बनवाना, शराब पीना, मांस खाना और यात्रा करना मना है। कोरा सफ़ेद कपड़ा पहिनना, एक ख़ास वियोग की टोपी पहिनना और शव के पास सिकुड़े हुए बैठे रहना—यही उनका काम है। इसके बाद वे अपने तमाम रिश्तेदारों और दोस्तों के पास मृतक पत्र भेजते हैं। जिस रिश्तेदार या मित्र को यह मृतकनामा मिलता है, उसका फ़र्ज़ है कि वह अर्थी पर जाकर फूल चढ़ाये और शोक सन्तप्त परिवार के साथ समवेदना प्रकट करे।

चीनी प्रथा के अनुसार शव को ज़मीन में दफ़नाया जाता है। मौत के बाद फ़ौरन बहुत नज़दीकी रिश्तेदार शव को नहलाते हैं और ख़ास तौर पर बनाया हुआ रेशमी कपड़ा उसे पहिनाते हैं। उसके बाद शव को एक सुन्दर और क़ीमती कफ़न में बन्द करके एक घर में बड़े कमरे में रख देते हैं, ताकि रिश्तेदार और दोस्त आकर समवेदना प्रकट कर सकें। मौत के तीसरे दिन कफ़न को सील कर दिया जाता है और एक लकड़ी की तख़्ती में मृतक का नाम, उसके जन्म और मृत्यु की तारीख़ लिख दी जाती है। जब उन्चास दिन बीत जाते हैं, तब दफ़नाने के लिये एक अच्छी जगह और शुभ मुहूर्त तय किया जाता है। शव जिस दिन दफ़न किया जाता है, उस दिन का संस्कार बहुत महत्वपूर्ण होता है। कफ़न को ख़ूब सजाया जाता है और आठ से चौंसठ आदमी तक उसे उठाते हैं। बेटे और पोते लकड़ी का सहारा लेकर आगे आगे चलते हैं। दूसरे रिश्तेदार और मित्र कफ़न के अगल बग़ल चलते हैं। स्त्रियां गाड़ियों पर कफ़न के पीछे चलती हैं। बौद्ध भिक्खु और 'ताओ' पुरोहित और भजन वाले गाजे बाजों के साथ आगे और पीछे रहते हैं। मृतक के इस जुलूस की शान और बड़प्पन शादियों के जुलूसों से कहीं ज़्यादा होता है।

चीन मे खेल तमाशों और त्योहारों का बहुत महत्व है। चीनी किसान अपने फ़ुरसत के मौक़ों पर तरह तरह के खेल तमाशे करते रहते हैं। उनका एक खेल है 'ता-तुङ्ग'। इसमें दीवों का प्रदर्शन होता है। दूसरा खेल है 'वु-शिह'। इसमें शेर का प्रदर्शन किया जाता है। तीसरा खेल है 'वु-लुङ्ग'। इसमें एक दानव के कारनामे हैं। और भी बहुत से नाटक और तमाशे होते हैं। दीवों के खेल में तमाम गांव वाले जलते हुए दीपक लेकर इकट्ठा होते हैं और जुलूस बनाकर गाजे बाजों के साथ गांव गांव जाते हैं। सिंह और दानव के तमाशों में उछल कूद, तलवार चलाना और दूसरी शारीरिक कसरतें दिखाई जाती हैं। इस तरह के खेल पन्द्रह दिन से लेकर महीने भर तक चलते हैं। बारी बारी से सभी गांव में ये खेल किये जाते हैं। एक गांव की बारी अक्सर कई बरसों में आती है। इन मेलों तमाशों के साथ साथ गांव की बनी चीज़ों की नुमाइश भी होती है, जहां कारीगरी और सुन्दरता की वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा होती है। बाज़ार भी लगते हैं, जहां हिन्दुस्तानी मेलों की तरह चीज़ों की ख़रीद-फ़रोख़्त होती है।

हिन्दुस्तानियों की तरह चीनी जनता भी तीज त्योहारों को बहुत महत्व देती है। उनका सब में बड़ा त्योहार नौरोज़ है। चीनी पञ्चांग के अनुसार पहिले महीने में पहिली तारीख़ से लेकर पंद्रह तारीख़ तक यह उत्सव मनाया जाता है। हर मकान और हर झोपड़े को सजाया जाता है। दरवाज़े और खिड़कियों

पर लाल काग़ज़ की बन्दनवार और आकाश-दीप लटकाये जाते हैं। घरों में शुभ शब्द और शुभ कहावतें लिखी जाती हैं। तरह तरह के दिल बहलाव के तमाशे होते हैं और घर घर में दावतें होती हैं। नौ रोज़ के बाद पांचवें महीने के पांचवें दिन 'तुआन-वु' और आठवें महीने के पन्द्रहवें दिन 'चुङ्ग-चिन' नामक त्योहार मनाये जाते हैं। दो त्योहार अपने पूर्वजों और बुज़ुर्गों की याद में मनाये जाते हैं। इन तिथियों में लोग अपने अपने बुज़ुर्गों के मज़ारों पर जाते हैं और इनके नाम पर भेंट चढ़ाते हैं। सातवें महीने का सातवां दिन कुमारी कन्याओं के लिये बड़ा शुभ समझा जाता है। नौवें महीने के नौवें दिन तमाम विद्वान और कवि पहाड़ों पर चढ़ते हैं। वहीं भोजन करते हैं और गा बजाकर दिन बिताते हैं। और भी बहुत से त्योहार हैं, जिनकी विस्तार में चरचा करने से बहुत सी जगह भर जायगी। चीनी और दूसरे मुल्कों के त्योहरों में जो एक सबसे बड़ा फ़र्क़ है, वह यह है कि जब कि दूसरे मुल्कों के त्योहार धार्मिक होते हैं, चीन के त्योहार ऋतुओं के बदलने पर और दुनयावी बातों के सिलसिले में मनाये जाते हैं। जन-क्रान्ति के बाद सरकारी तौर पर चीन का पुराना पंचांग छोड़ कर सन् ईसवी की तारीख़ें ही मानी जाने लगीं हैं और त्योहारों की सूची में बहुत से राष्ट्रीय उत्सव भी शामिल कर लिये गये हैं। किन्तु जनता अब तक पुराने पञ्चाङ्ग और पुराने त्योहारों से ही चिपटी हुई है। इसका मतलब यह नहीं कि चीनी जनता कट्टर है, बल्कि चीनी पञ्चांग ईसवी सन् से कहीं ज़्यादा उनके लिये मौज़ूं है और पुराने त्योहार मौसमों के साथ उनका गहरा सम्बन्ध जोड़ देते हैं।

चीन का नया सांस्कृतिक आन्दोलन

चीनी सभ्यता दुनिया की अति प्राचीन सभ्यता है। चीनी जनता अपनी सभ्यता और संस्कृति की बेहद क़दर और इज़्ज़त करती है। चीन ने सदा अपने आस पास की क़ौमों में अपनी संस्कृति का प्रचार किया है। भारतीय बौद्धकाल को छोड़ कर हमारा यह क्रम हज़ारों बरस तक क़ायम रहा है। सिर्फ़ उन्नीसवीं सदी से जब कि चीन पच्छिमी सभ्यता के संसर्ग में आया, तब से चीन की सांस्कृतिक बुनियाद डांवा डोल होने लगी है। चीनियों में पच्छिमी रीति रिवाज और आदर्शों की नक़ल शीघ्रता से बढ़ती जा रही है। हम पच्छिम वालों के संसर्ग के इस आधुनिक काल को तीन हिस्सों में बांट सकते हैं।

पहला काल सन् १८४० से १८४२ तक जो 'ओपियमवार' का काल कहलाता है। दूसरा काल सन् १८४८-६० तक का काल है, जब चीन में अङ्गरेज़ों और फ़्रान्सीसियों की सम्मिलित फ़ौज़ों से लड़ाई हुई। इस लड़ाई में चीनी बुरी तरह से हारे। अङ्गरेज़ों और फ़्रान्सीसियों के पास लड़ाई के आधुनिक हथियार थे। किन्तु इस हार ने चीनियों की गहरी नींद को तोड़ दिया। उन्होंने कमर कस कर नये पच्छिमी तरीक़ों की नक़ल शुरू की और इस मामले में आश्चर्यजनक उन्नति करके दिखाई। चीनी जल-सेना उस ज़माने में संसार में अङ्गरेज़ों के बाद दूसरे नम्बर की जल शक्ति थी। किन्तु इस तय्यारी के बाद भी बदक़िस्मती से चीन सन् १८९५ में जापान से फिर हार गया और उसकी जल-सेना का भी ह्रास हो गया।

इसके बाद आधुनिक काल का दूसरा दौर शुरू होता है। जापान से हारने के बाद लोगों ने समझा कि महज़ यूरोपीय लड़ाई के तरीक़ों की ही नक़ल से काम नहीं चल सकता; उसके लिये यूरोपीय शासन प्रणाली भी ज़रूरी है। चुनांचे जनतन्त्र का आन्दोलन शुरू हुआ और जनतन्त्र की स्थापना भी हुई। किन्तु जनतन्त्र की स्थापना के बाद भी लोगों के दुःख दूर नहीं हुए और गृह-युद्ध शुरू होगये। इसके बाद आधुनिक काल का तीसरा दौर आता है।

गृह-युद्ध और बाहर के हमलों से चीनी जनता को अपने प्राचीन रहन सहन और विश्वासों से पूरा एतबार उठ गया। वे समझ गये कि ज़िन्दगी के मौजूदा संघर्ष में पुराने विश्वासों से काम नहीं चल सकता। यदि चीन को अपनी मौजूदा मुसीबतों से छुटकारा पाना है, तो उसे अपना सारा दिमाग़ी रवइया

बदल कर पच्छिमी तौर तरीक़े को अपनाना चाहिये। जो बातें पच्छिम के देशों ने सदियों में सीखीं, उन्हें चीन वालों ने कुछ ही वर्षों में सीखने का फ़ैसला किया। यह भावना कि यूरोप की हर बात सीखने और नक़ल करने योग्य है चीन के नये सांस्कृतिक आन्दोलन की आधार है।

चीन का यह नया सांस्कृतिक आन्दोलन पीकिङ्ग विश्वविद्यालय मे शुरू हुआ। विश्वविद्यालय के सभापति डा० त्साई युआन-पे इस आन्दोलन के जन्म दाता थे। डा० त्साई की शिक्षा दीक्षा पुराने चीनी तरीक़े से हुई थी, उन्होंने मांचू ज़माने की अपने देश की सब से बड़ी परीक्षा पास की थी। वे आदर्शवादी और सीधे सादे विद्वान थे। वे पुराने और नये ख़याल के जोड़ने वाले समझे जाते हैं। उनके भक्तों में उग्रवादी चेनतु-हिस्उ, हु-शिह और लिम-शू थे।

चेनतु हिस्उ ने अपने चारों ओर उदीयमान नव युवकों की एक टोली जमा कर ली। वह "न्यू-यूथ" नामक एक पत्र का सम्पादक था। इस पत्र के द्वारा पुरानी चीनी संस्कृति के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त आन्दोलन होता रहा। उसके पक्ष समर्थक इसे अपने उद्धार का एक मात्र मार्ग मानते थे और विरोधी उसे जहन्नुम में जाने का रास्ता समझते थे। किन्तु इस पत्र के छपे हुये लेख बड़े प्रभावोत्पादक और विचार शील होते थे। ये लेख एकांगी होते थे; किन्तु इनसे आधुनिक चीन के दिमाग़ का पता चलता है।

इस आन्दोलन का नतीजा तो यह हुआ कि इससे पुराने अन्ध विश्वास टूट कर नया दृष्टिकोण पैदा हुआ और दूसरी ओर यह चीनी संस्कृति के लिये बहुत ख़तरनाक साबित हुआ। डाक्टर त्साइ पुरानी और नई संस्कृति का एक समन्वय चाहते थे। वे दोनों के मेल से एक नई संस्कृति ही निर्माण करना चाहते थे। किन्तु उन्हें इस काम में सफलता नहीं मिल सकी। उनके उग्र समर्थक उनके आदर्शों के अनुसार नहीं चल सके और नतीजा यह हुआ कि चीन के पुराने सांस्कृतिक जीवन की बुनियादें हिल गईं। इसकी भी प्रतिक्रिया हुई और चीन में "नवजीवन आन्दोलन" नाम से एक नया आन्दोलन शुरू होगया।

चीनी नव-जीवन आन्दोलन

चीनी नव-जीवन आन्दोलन फ़रवरी सन् १९३४ में मार्शल चियाङ्ग काइ-शेक द्वारा शुरू किया गया। इस आन्दोलन के ज़रिये चीन ने एक निश्चित दिशा में पैर बढ़ाने शुरू किये। जब कि चीन नये नये प्रयोग करके ऊब चुका था और अंधेरे में भटक रहा था तब यह आन्दोलन शुरू हुआ।

इस नये आन्दोलन का उद्देश्य है कि चीनी अध्यात्म और दर्शन को चीनी संस्कृति का आधार बनाया जाय और तब पच्छिमी विचार धारा को एक वैज्ञानिक ढङ्ग से ग्रहण किया जाय। चीन का हज़ारों वर्ष का इतिहास है। अनगिन्ती सन्त और महात्मा वहां हुए हैं, जिन्होंने जीवन की समस्याओं पर अपने बेशुमार अनुभव अपने देश को उत्तराधिकार में दिये हैं। ये सब सर्व मान्य सत्य की तरह प्रत्येक चीनी-हृदय में अंकित हैं; किन्तु दूसरी ओर लम्बे अरसे से चीन में निराशा, पतन और नाश का भी दौर चल रहा है। उचित बात यह थी कि पुराने आदर्शों पर ज़ोर दिया जाय और मौजूदा बुराइयों को प्राचीन अनुभवों की रोशनी में दूर किया जाय। इसके साथ ही साथ जहां से जो चीज़ भी अच्छी मिले उसको ग्रहण किया जाय। इस तरह से यह नव-जीवन उन्हें उचित मार्ग पर लगा देगा और उनके लिये गौरव पूर्ण भविष्य का द्वार खोल देगा।

इस नई ज़िन्दगी के छै मुख्य कार्यक्रम हैं—(१) एक सी पोशाक, (२) सफ़ाई, (३) सादगी (४) सहज स्वभाव, (५) चुस्ती और फुरती (६) वास्तविकता का ज्ञान। इन छै सिद्धान्तों को पूरी तरह मान कर उन पर अमल करना, यही नये आन्दोलन का मुख्य ध्येय है। इनका उद्देश्य है ज़िन्दगी में (१) अनुशासन पैदा करना, (२) उसे क्रियात्मक बनाना, (३) उसे कला पूर्ण बनाना। अनुशासन से राष्ट्र में एक वफ़ादार और देशभक्त फ़ौज तय्यार हो जायगी, जो

हर मौक़े पर एक दिमाग़ और एक गति से अमल करेगी और जिसके सैनिक सादा और साफ़ जीवन व्यतीत करेंगे। क्रियात्मक होने से हर शख़्स देश की दौलत बढ़ाने में मदद देगा, मज़दूरी के पैमाने को उन्नत करेगा और व्यर्थ की बरबादी से मुल्क को बचावेगा। कलापूर्ण जीवन मनुष्य को स्वतन्त्र, नम्र और प्रशान्त बनाने में मदद देगा। इस तरह इस आन्दोलन का उद्देश्य यह है कि मनुष्य में नम्रता, शान्ति, फ़ुर्ती, चुस्ती, सादगी, पवित्रता आदि गुण पैदा करके उसे ज़िन्दगी की परेशानियों का मुक़ाबला करने के योग्य बनावे।

चाङ्गशा के शहर को इस नये आन्दोलन का केन्द्र बनाया गया। वहां इन्हीं उसूलों पर लोगों की ज़िन्दगी ढाली गई। लोग व्यक्तिगत जीवन कैसा बितायें, चाय की दूकानें, होटल वग़ैरह किस तरह चलें, सार्वजनिक टट्टियां और स्नानागार में लोग किस तरह बर्ताव करें, घरों में लोग कैसे रहें—हर चीज़ पर यह नया आन्दोलन ध्यान देता था। लोगों में यह भावना पैदा की गई कि ज़िन्दगी का उद्देश्य महज़ खाना पीना नहीं है, बल्कि कलापूर्ण ढङ्ग से रहना है। खाना पकाने वालों के लिये उन्होंने १६ तरह के नियम बनाये। मसलन खाना पकाने से पहले रसोइया अपने हाथ धोये या जब भी वह अपने बदन को खुजाये फ़ौरन हाथ धोये या टट्टी से लौटे तब अच्छी तरह हाथ धोए। सड़ा गला खाना फेंक दिया जाय और किसी ख़रीदार को न दिया जाय। किसी वक़्त भी रसोइया रसोई घर में नंगे पैर या नंगे बदन न रहे। उसके कपड़े रोज़ धोए जायं। उसके तौलिये रोज़ खौलते पानी में उबाले जायं। वे रसोई की आग को सावधानी के साथ जलायें बुझायें आदि।

यह नया आन्दोलन बिजली की तरह देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गया। विदेशी लोग चीन वालों को अफ़ीम पीने का दोषी बताते हैं; हालांकि चीन में अफ़ीम पीने वालों की तादाद सदा थोड़ी रही है और आजकल तो हमारे देश में सिगरेट पीने को भी नफ़रत से देखते हैं। जुआ खेलना चीन में बिलकुल बन्द कर दिया गया।

यदि हमारे देश की तरक्क़ी की यह हालत रही तो कुछ वर्षों में ही हमारा देश अभूतपूर्व उन्नति कर लेगा।

प्रवासी

'शतदल'

हम प्रवासी—आज हैं, कल जा रहे !
सुखद सपनों में निहित हम, चार क्षण के लिये आते!
एक विद्युत् के सदृश हम चमक उठते,
फिर उसी में लीन हो, हम कड़क उठते, चले जाते !

एक कन्दुक सम शिखर से ढुलकते हैं चले आते;
प्रेम पाते, जहां रुकते, राह धरते, चले जाते !

हम वनों में, हम गुहा में, चिर, अचिर साथी बनाते;
प्रेम के दो बोल सुनकर तृप्त होते, चले जाते !

पूछते तुम, कहां के हम ? समझ लो अति दूर के हम,
जगत को सुन्दर बनाने निकल आए त्याग गृह को,
हम प्रवासी, आज हैं, कल जा रहे !

यह साम्प्रदायिक कटुता शुरू कैसे हुई ?

डाक्टर सैयद महमूद साहब

हमने अपने पिछले लेखों में हिन्दू-मुसलमानों के प्रेमपूर्ण सम्बन्ध की चरचा की है। अब हमें अपने इस लेख में मौजूदा साम्प्रदायिक कटुता को बयान करने का तकलीफ़ देह काम करना पड़ेगा। हमें देखना होगा कि किस तरह उन्नीसवीं सदी में यह हिन्दू-मुसलिम समस्या पैदा हुई और कैसे उसके ज़हर ने हमारे सारे जीवन को आज दूषित बना रखा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस देश पर अङ्गरेज़ों की हुकूमत ने हमारी सांस्कृतिक एकता को बड़ा धक्का पहुंचाया। अङ्गरेज़ों के कारण हमारे देश का आर्थिक. राजनैतिक और सामाजिक ढांचा बिलकुल उलट पलट होगया। संस्कृति की सामाजिक बुनियाद टूट जाने के कारण ख़ुद हमारी संस्कृति की ही जड़ें खोखली पड़ गई। नई बातें और नई समस्याएं हमारे लिये खड़ी कर दी गई, जिनसे हमारी मुसीबतें और परेशानियां बेहद बढ़ गई और समाज के पुनर्निर्माण का काम एक तरह से नामुमकिन होगया।

अङ्गरेज़ों की हुकूमत शुरू होने के पहले, और दूसरे समाजों की तरह हमारा समाज भी दो वर्गों में बंटा हुआ था। पहले वर्ग में पण्डित, मौलवी, साधु, सन्त, नवाब, राजा, सरकारी अफ़सर, साहूकार, व्यापारी आदि थे। और दूसरे वर्ग में किसान, मज़दूर, शिल्पकार और दस्तकार आदि थे। पहला वर्ग समाज का नेतृत्व करता था और दूसरा वर्ग उनके पीछे पीछे चलता था। विद्या, बुद्धि, सरकारी ओहदा और पैसा, इन्हीं से मनुष्य को समाज में रुतबा मिलता था। किन्तु उस रुतबे के साथ साथ उनकी राजनैतिक और सांस्कृतिक ज़िम्मेवारी भी बढ़ जाती थी। हमारी मध्यकालीन सभ्यता के बनाने वाले इस वर्ग के अन्दर से पैदा हुये थे। अङ्गरेज़ों की हूकूमत ने इस वर्ग का नाश कर दिया।

पच्छिमी शिक्षा-प्रणाली ने हमारे देश का सांचा ही बदल दिया। समाज के ऊपर से पुराने पण्डितों और मौलवियों का असर कम होगया, उनका नेतृत्व ख़त्म होगया और लोग उन्हें समाज के उपर जोंक की तरह समझने लगे। उनकी जगह जो नए पढ़े लिखे लोग अङ्गरेज़ी तालीम से पैदा हुए, वे अपने आप को जनता से बिलकुल भिन्न समझने लगे और उनके तथा देश के करोड़ों भाइयों के बीच में एक गहरी खाई पैदा हो गई। पर अङ्गरेज़ी पढ़े लिखों की इस जमात की कहीं जड़ें ही नहीं थीं। उसे भारतीय जीवन के आचार विचार से कोई सहानुभूति ही नहीं रही। इन अङ्गरेज़ी पढ़े लिखों के जीवन का सारा उद्देश्य केवल बन्दरों की तरह पच्छिमी सभ्यता की नक़ल करना रह गया।

हमारे राजनैतिक पतन के साथ साथ पुराने रईसों और पुश्तहापुश्त से चले आने वाले सरकारी नौकरों का ख़ात्मा होगया। यही हमारे राजनैतिक और सामाजिक नेता थे। जो थोड़े बहुत रईस बच गए, उनकी पतित औलादें कतई बेकारी की ज़िन्दगी बिताने लगीं। अपनी ज़मीदारी की रिआया से जो उन्हें ऐश और इशरत का सामान मिलता था, उसके बदले रिआया को उनसे कोई फ़ायदा न पहुंचता था। इन बेकार

पुश्तैनी रईसज़ादों में न तो प्रतिष्ठा का ही कोई ख़याल था और न तो अपनी शक्ति बढ़ाने का ही। ये आराम की ज़िन्दगी बसर करना चाहते थे। चूंकि हुकूमत इन्हें इस तरह की ज़िन्दगी बिताने की गारण्टी देती थी, इसीलिए ये लोग अङ्गरेज़ी हुकूमत के सब में बड़े मददगार बन गये।

अङ्गरेज़ व्यापारियों के हाथों में हमारे देश का रोज़गार चले जाने के कारण देश के व्यापारी वर्ग का नाश हो गया। अङ्गरेज़ सरकार ने जान बूझ कर भारतीय उद्योग-धन्धों का गला घोंट दिया, ताकि इङ्गलिस्तान के साथ हमारी कोई प्रतिस्पर्धा न रह सके और हमारा देश केवल कच्चेमाल की एक बड़ी भारी मण्डी मात्र रह जाय।

किन्तु अङ्गरेज़ी हुकूमत का जो सब में बुरा असर हमारे ऊपर पड़ा, वह था हमारी जनता के अन्दर से स्वाभाविक एकता का नाश हो जाना। हमारे देश में विविध सम्प्रदायों के लोग साथ साथ रहते थे, उनकी एक ही तरह की ज़िन्दगी थी, उनके रहन सहन का तरीक़ा भी एक ही तरह का होगया था और उनका सारा जीवन एक दूसरे से गुंथा हुआ था। हर जाति और हर वर्ग अपना अपना पेशा करते थे, किन्तु वे सब एक ही भारतीय जीवन के अङ्ग थे। हर एक का अलग अलग पेशा था; आपस में कोई प्रतिस्पर्धा न थी और इसीलिये हमारे समाज की एकता और संहति में कोई फ़र्क न पड़ता था। धर्म भी इस एकता में कोई बाधा न पहुंचाता था। अङ्गरेज़ी हुकूमत ने हमारे इस सारे ढांचे को तोड़ दिया। अङ्गरेज़ सरकार के हाथों में शक्ति और संरक्षण चले जाने के कारण लोग सरकारी आश्रय पर ही निर्भर करने लगे। आपस का व्यवहार और सहारा नष्ट होगया और विविध गिरोह अलग अलग धारा में स्वतन्त्र बहने लगे। पराजितों की फूट और अशक्ति में ही विजेता की जीत का रहस्य छुपा होता है और उसी फूट और अशक्ति के ही कारण पराजितों के ऊपर उसका शासन क़ायम रहता है। "फूट फैलाओ और राज करो" यह राजनीतिज्ञों का आज़मूदा और पुराना नुसख़ा है। हमारे पतन के कारणों को सरकार की इस नीति ने और अधिक पक्का किया और भारतीय जनता छिन्न भिन्न और असंगठित होकर रह गई।

उन्नीसवीं सदी के भारतीय इतिहास में दो तरह की शक्तियां काम करती हुई नज़र आती हैं। एक ओर हमारे आर्थिक संगठन की मध्यकालीन बुनियादें उखड़ गई। पहले हमारा हर गांव अपनी ज़रूरतें पूरी कर लेता था और अपने आप में सन्तोष रखता था, पर अब वह बात मिट गई। हमारे पेशेवरों का संगठन भी ख़स्ता होने लगा। मशीनों के चलन और दुनिया की परिस्थिति ने सारे भारत को आर्थिक दृष्टि से एक कर दिया। आर्थिक एकता ने हमारे अन्दर कई सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन भी किये और नये नये सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनों को जन्म दिया। विदेशी सरकार ने हमारी आर्थिक प्रगति को कोई सहायता नहीं पहुंचाई, बल्कि उसमें बराबर रुकावट ही डाली है। इसीलिये आर्थिक दृष्टि से हमारा देश उसी शताब्दी में उतनी उन्नति न कर सका, जितनी पच्छिमी यूरोप ने की। किन्तु इसमें कोई शक नहीं कि आर्थिक परिवर्तन हमारे जीवन की धारा को उसी एक दिशा में बहा कर ले जारहे हैं।

दूसरी ओर राजनैतिक और सांस्कृतिक शक्तियों को इस तरह उभारा जा रहा है कि हमारे अन्दर विच्छेद-भावना बनी रहे। इस भावना के दुःखपूर्ण इतिहास पर ग़ौर करते हुये हमें यह न भूलना चाहिये कि इसकी जड़ें गहरी हैं और यह आज की चीज़ नहीं है।

हिन्दुस्तान पर अपनी हुकूमत के शुरू से ही अङ्गरेज़ यह नीति बरतते रहे कि इस देश पर उनका शासन और उनका प्रभुत्व क़ायम रहे। गिरोह-गिरोह और सम्प्रदाय-सम्प्रदाय को लड़ाते रहना ही उनकी इस नीति के साधन रहे हैं। इनके लड़ाने का ढंग यह रहा है कि ये कभी एक गिरोह को नियामतें देते और कभी दूसरे गिरोह को। आपस की ईर्षा और नौकरियों का लालच दिखा कर कभी एक को उकसाते और कभी दूसरे को। अपनी अदूरदर्शिता में

अपनी ग़रीबी और बेकारी से छुटकारा पाने के ख़याल से विविध गिरोह और सम्प्रदाय अपने शासकों के हाथों में खेलते रहे।

इस देश में अङ्गरेज़ों की हुकूमत मुसलमान सुलतानों और नवाबों से संघर्ष के साथ शुरू हुई। इसीलिये अङ्गरेज़ मुसलमानों को अपना प्रधान शत्रु और प्रतिस्पर्धी समझने लगे। मुसलमानों को दबाने, उनका असर और उनकी दौलत नष्ट करने की हर मुमकिन काररवाई की गई। शक्ति और दौलत के सारे दरवाज़े उनके लिये बन्द कर दिये गये। मुग़लों के ज़माने में उन्हें फ़ौज और माल मोहकमे में सरकारी ख़िदमत के एवज़ जागीरें मिली हुई थीं। उनके क़ाज़ी न्यायाधीशों के पद पर नियुक्त थे; उन्हें राज सम्मान प्राप्त था। अङ्गरेज़ी राज में ये सुविधाएं क़रीब क़रीब समाप्त होगईं। हिन्दुओं के साथ ख़ास चहेता व्यवहार किया जाने लगा। उन्हें बहुत सी जायदादें और जागीरें अता की गईं। ग़ुलाम क़ौम को जो नौकरियां उस समय दी जा सकती थीं, उनमें सबमें हिन्दू भर दिये गये और वे अपने अङ्गरेज़ स्वामियों के इशारों पर नाचने लगे। मुसलमानों में शंका, अलहदगी और अवज्ञा के भाव भर गये।

किन्तु ज़रूरत पर अङ्गरेज़ मुसलमानों को अपने मतलब के लिये इस्तेमाल करने से कभी नहीं चूके। जब सन् १८२० में बरेली के सय्यद अहमद ने सिखों के ख़िलाफ़ जेहाद का ऐलान किया, तो उसे और उसके अनुयाइयों को महाराजा रनजीत सिंह के ख़िलाफ़ लड़ाई चलाने में, अंगरेज़ी इलाक़े से पैसों और आदमियों को इकट्ठा करने में हर तरह की मदद दी गई हालाकि ज़ाहिरा तौर पर रनजीत सिंह अङ्गरेज़ों का दोस्त और साथी था। किन्तु ज्योंही सिख साम्राज्य का नाश करके पञ्जाब को अङ्गरेज़ी अमलदारी में मिला लिया गया, त्योंही सैयद अहमद के साथियों को बीन बीन कर देश निकाला देदिया गया या उन्हें फांसी पर लटका दिया गया।

जब सन् १८५७ का स्वाधीनता युद्ध शुरू हुआ, तब भी यह वहाबी आन्दोलन पूरी तरह नहीं दबा था और मुसलमान उसके लिये ज़िम्मेवार ठहराये गये। पुराने शक और शुबहे तो थे ही, उनमें ग़ुस्से की नई वजहें और जुड़ गईं। भयङ्कर रूप से दमन-चक्र चला। किन्तु जितना ही मुसलमानों पर ज़ुल्म किया गया, उतना ही वे विरोधी और विद्रोही होते गये। आख़ीर में बङ्गाल, बिहार, युक्तप्रान्त और पञ्जाब में मुसलमानों के ज़बरदस्त आन्दोलन खड़े होगये, जिसमें अङ्गरेज़ अधिकारियों की आंखें खुल गईं। अन्त में सन् १८७३ में गवरनर जनरल लार्ड मेयो की हत्या के बाद तो उन्होंने इस समस्या के सुधार के नये तरीक़ों पर ग़ौर करना शुरू किया। दमन की नीति सफल न हो सकी और उन्होंने अब समाधान की नीति को एक मौक़ा देना चाहा।

मालिकों की मुहब्बत की निगाहें दूसरी ओर फिरी देखकर हिन्दुओं की ईर्षा जाग उठी। उनके अख़बारों में सरकारी नीति का विरोध किया गया। 'ज़िद्दियों को समझाना बेकार है'; इस पर उन्होने लम्बे लम्बे लेख लिखे। किन्तु पांसा तो फेंका जा चुका था। नम्र और सीधा साधा राजभक्त बङ्गाली हिन्दू यह भूल गया कि अङ्गरेज़ों की कृपा से ही उसे यह पद और रुतबा मिला है। वह निलहे गोरों के ख़िलाफ़ आन्दोलन करने लगा; बड़ी बड़ी नौकरियां और तनख़्वाहें मांगने लगा। वह अङ्गरेज़ मुजरिमों को सज़ा देने के अधिकार की मांग भी पेश करने लगा।

दक्खिन में भी पूना में मराठा ब्राह्मणों ने क्रान्ति की चिनगारियां सुलगानी शुरू कीं। सन् १८६२ में जगह जगह षड़यन्त्र के मामलों का भण्डा फोड़ हुआ और कई जगह डाके भी पड़े। पञ्जाब में कूका सिख जो, ख़ास तौर पर गो-रक्षा पर ज़ोर देते हैं, विद्रोह कर बैठे। किन्तु १८७२ में उनके विद्रोह को सख़्ती के साथ कुचल दिया गया।

हिन्दुओं की इस विरोध-भावना को दबाने के लिये सरकार ने बहुत से क़ानून बनाये, जिनका प्रधान उद्देश्य एक गिरोह को दूसरे गिरोह से जुझाना था। पुराने ताल्लुक़ेदार, ज़मीदार और जागीरदारों को सरकारी झण्डे के नीचे खड़ा किया गया और उन्हें नई

लेजिस्लेटिव कौन्सिलों का मेम्बर बनाया गया। उन्हें आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाया गया और उन्हें टाइटिलें अता करके अपनी ओर किया गया। उनके बच्चों को सर्वसाधारण से अलग कर दिया गया और उनकी शिक्षा के लिये अजमेर में मेयो कालेज खोला गया।

दूसरी ख़ास बात जो की गई, वह फ़ौज का पुनर्संङ्गठन था। सन् ५७ के पहले बङ्गाल आर्मी में ब्राह्मण और राजपूतों की अधिकता थी और मद्रास व बाम्बे कमाण्ड में तामिल, तेलगु और मराठों की भरमार थी। सन् ५७ के बाद मिलवां रेजिमेण्ट तोड़ दी गई और उनकी जगह अलग अलग जातियों की पलटनें बनाई गईं। ब्राह्मण, राजपूत, मद्रासी और मराठों की तादाद कम कर दी गई। पठान, गोरखे, सिख और पञ्जाबी मुसलमानों की तादद बेहद बढ़ा दी गई।

पढ़े लिखे हिन्दुओं की राजनैतिक जागृति और बेचैनी के ख़िलाफ़ सरकार के पास सब में बड़ा तुरुप का पत्ता मुसलमानों के प्रति अपनी नीति का बदल देना था।

पढ़े लिखे हिन्दुओं का विरोध-भाव बढ़ता ही जा रहा था। इलबर्ट बिल की बहस के बाद उन्होंने देश में जगह जगह राजनैतिक समितियां क़ायम करनी शुरू कीं। आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज और थियासाफ़िकल सोसायटी आदि हिन्दुओं के सुधार आन्दोलनों ने उनके अन्दर जातीय अभिमान और आत्म-भावना पैदा करनी शुरू की। "यदि अङ्गरेज़ों को हुकूमत की ज़बरदस्त चाह है, तो हिन्दुस्तानियों को भी बराबरी की उतनी ही ज़बरदस्त इच्छा है।" इण्डियन नैशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। क्षितिज पर ख़तरे के आसार नज़र आने लगे। मुसलमान हिन्दुओं का साथ न दें, सरकार इसकी हर मुमकिन कोशिश करने लगी।

सन् १८७० में मिस्टर डब्लु० डब्लु० हण्टर ने, जिन्हें बाद में सर का ख़िताब मिला अपनी पुस्तक "दी इण्डियन मुसलमान्स" में सबसे पहले सरकार को इस ख़तरे से आगाह किया। मिस्टर जेम्स ओकिनीली ने भी, जो वहाबियों पर मुक़दमा चलाने के इनचार्ज थे, इस समस्या पर सरकार का ध्यान आकर्षित करते हुये एक लेख माला लिखी। उसने लिखा "हमने मुसलमानों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया, इसीलिए मुसलमान किसानों और जनता पर वहाबी सिद्धान्तों का इतना ज़्यादा असर है।" गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया के होम डिपार्टमेण्ट के सेक्रेटरी ई० सी० बेली ने मुसलमानों में फैली हुई बेचैनी को दिखाते हुए उसके समाधान करने की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया। सर डब्लु० डब्लु० हण्टर लिखता है—"अन्त में ऊंचे से ऊंचे सरकारी अधिकारी वायसराय लार्ड मेयो से लेकर छोटे से छोटे सरकारी नौकर तक ने मलका की मुसलमान प्रजा के कष्टों को मानते हुए स्वीकार किया कि उनके साथ सरकार ने अपना फ़र्ज़ अदा नहीं किया।"

गवर्नर जनरल ने मुसलमानों की शिक्षा के सम्बन्ध में अपना एक वक्तव्य प्रकाशित किया और नीचे लिखी बातों पर ख़ास तौर पर ज़ोर दिया—

(१) कोई शख़्स उस वक्त तक सच्चा मुसलमान नहीं, जब तक उसे थोड़ी उर्दू और थोड़ी अरबी न आवे। (२) वह हिन्दू शिक्षक से किसी हिन्दू मदरसे में नहीं पढ़ सकता (३) इसलिए हमें अपनी मुसलमान रिआया की क़ौमी भावनाओं का लिहाज़ रखते हुये स्कूलों और इम्तहानों में अरबी, फ़ारसी और उर्दू को जगह देनी चाहिये।

"मुसलमान आबादियों के बीच जो अङ्गरेज़ी स्कूल बने हुये हैं, वहां योग्य अङ्गरेज़ीदां मुसलमान शिक्षकों की नियुक्ति को लाभ के साथ प्रोत्साहित किया जा सकता है।······मुसलमानों को अपने स्कूल खोलने के लिये मुनासिब ग्राण्ट भी दी जा सकती है।"

मार्ड मेयो को विश्वास था कि "हालत को देखते हुये इस तरह का प्रस्ताव समयोचित और न्यायानुकूल है और इससे मुसलमान जनता की भावना पर अच्छा असर पड़ेगा।"

"हमारी नीति के अनुसार मुसलिम युवक को शिक्षा दिये जाने के प्रस्ताव को आख़िर अमल में

लाया गया" (हण्टर)। सन १८८२ में डाक्टर हण्टर की सदारत में एक एजूकेशन कमीशन मुक़र्रर किया गया, जिसने इस सम्बन्ध में एक विस्तृत रिपोर्ट तय्यार की और मुसलिम शिक्षा को अमली प्रोत्साहन देने के लिये सरकार ने सन् १८८५ में एक तजवीज़ पास की।

इसी बीच अलीगढ़ में सर सैयद अहमद ख़ां ने मुसलमानों के लिये एक शिक्षा केन्द्र खोला। अलीगढ़ का एम० ए० ओ० कालेज शीघ्र ही मुसलिम सम्प्रदाय का एक सामाजिक और राजनैतिक केन्द्र बन गया। किन्तु दुर्भाग्यवश मुसलमानों ने अलीगढ़ का यह नेतृत्व अपने अङ्गरेज़ प्रिन्सिपलों के हाथों में छोड़ दिया और २५ वर्ष तक अङ्गरेज़ प्रिन्सिपल ही मुसलिम सम्प्रदाय के राजनैतिक नेता, फ़िलासफ़र, मित्र और मार्ग प्रदर्शक रहे।

मिस्टर बेक ने यह काम इतनी सुन्दरता के साथ किया कि उन्होंने सर सय्यद के राजनैतिक विचार ही बिलकुल बदल दिये। जब तक बेक अलीगढ़ नहीं आया था, तब तक सर सय्यद तमाम भारतीय मांगों के ज़बरदस्त समर्थक थे। पर थोड़े ही दिनों में बेक ने सर सय्यद की राय बिलकुल बदल दी और सर सय्यद नई नई इण्डियन नैशनल कॉंग्रेस के ज़बरदस्त विरोधी बन गये। उनके नेतृत्व में मुसलमानों का एक बड़ा जत्था भी कांग्रेस का विरोध करने लगा। सन् १८८८ में "यूनाइटेड इण्डियन पेट्रिआटिक एसोशियेसन" नामक संस्था क़ायम की गई, जिसमें कॉंग्रेस के विरोधी तमाम हिन्दू और मुसलमान शरीक थे। किन्तु सन् १८९३ में एक बिलकुल साम्प्रदायिक संस्था क़ायम की गई और उसका नाम "मुसलिम रक्षा समिति" (Muhammadan Defence Association) रखा गया। मिस्टर बेक इस समिति के मन्त्री चुने गये।

मिस्टर बेक के बाद सर थियोडोर मारीसन अलीगढ़ कालेज के प्रिन्सिपल मुक़र्रर हुये। मारीसन ने हर तरह के राजनैतिक आन्दोलनों से मुसलमानों को बाहर रखा। मारीसन के ज़माने में अलीगढ़ को पैन-इसलामी केन्द्र बनाने की भी कोशिश की गई। बहुत से दूत हिन्दुस्तान के बाहर ईरान आदि देशों में भेजे गये ताकि वे वहां के धनी युवकों को भारत आकर शिक्षा लेने के लिये प्रोत्साहित कर सकें।

मारीसन के बाद मिस्टर आर्कबोल्ड ने, जो १९०५ से १९१० तक प्रिन्सिपल रहे, बहुत महत्व पूर्ण पार्ट अदा किया। जिस वक्त वह अलीगढ़ आये तमाम हिन्दुस्तान लार्ड कर्ज़न के ख़िलाफ़ आन्दोलन से गूंज रहा था। परिस्थिति का मुक़ाबला करने के लिये सरकार तमाम माडरेटों और भक्तों को उग्र आन्दोलनकारियों को कुचलने के लिये अपने समर्थन में इकट्ठा कर रही थी। माडरेटों को ख़ुश करने के लिये कौन्सिलों को भी बढ़ाने की तजवीज़ थी। मिस्टर आर्कबोल्ड सरकार और मुसलमान नेताओं के बीच बिचौलिया बन गये। वे सिमले में वायसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी से मिले और उनसे तय किया कि मुसलिम नेताओं का एक डेपुटेशन वायसराय को मानपत्र देकर प्रार्थना करेगा कि मुसलमानों को नये सङ्गठन विधान में प्रथक निर्वाचन का अधिकार दिया जाय। हिज़ हाइनेस दि आग़ा ख़ां के नेतृत्व में यह डेपुटेशन वायसराय से मिला। उसके जो नतीजे हुये उनसे सभी परिचित हैं और उन्हें यहां बयान करना बेकार है। मिस्टर डाडवेल के शब्दों में—"अन्त में यही विचार निश्चित रहा कि प्रत्येक सूबे में ज़मीदारों, व्यापारियों और मुसलमानों को अलग अलग प्रतिनिधित्व मिले। पेशेवर वर्गों के ख़िलाफ़ यह एक नई चाल थी।" लेडी मिण्टो अपने पति लार्ड मिण्टो की जीवनी मे पृथक-निर्वाचन के सम्बन्ध में सरकारी अधिकारियों की भावनाओं का उल्लेख करते हुये लिखती हैं—"मेरे पति ने जिस दिन मुसलिम लीग का मानपत्र स्वीकार किया, उसी शाम उन्हें एक सरकारी अधिकारी का पत्र मिला। उस अधिकारी ने लिखा था कि 'यूअर एक्सिलेन्सी! मैं आपको एक लाइन लिखकर यह बताना चाहता हूं कि आज एक बहुत महत्व पूर्ण घटना हुई है। आज की हमारी नीतिज्ञता हिन्दुस्तान को और हिन्दुस्तान के इतिहास

को बरसों तक प्रभावित करती रहेगी। अपनी नीतिज्ञता से हमने छै करोड़ बीस लाख मुसलमानों को राजद्रोही संस्था (कांग्रेस) में शामिल होने से बचा लिया'।"

बीज बोया जा चुका था और शीघ्र ही उसके फल भी मिलने लगे। सन् १९०६ में तीन प्रमुख उद्देश्यों को लेकर मुसलिम लीग क़ायम हुई—

(१) मुसलिम लीग अङ्गरेज़ सरकार के तरफ़ राजभक्ति के भाव फैलायेगी और सरकार और मुसलमानों के बीच में जो ग़लतफ़हमियां होंगी, उन्हें दूर करेगी।

(२) मुसलमानों के राजनैतिक हित और अधिकारों की देख भाल करेगी और सरकार के सामने उनकी ज़रूरतें पेश करेगी।

(३) लीग को बग़ैर नुक़सान पहुँचाये हुए दूसरी सम्प्रदायों की ओर विरोध भावना को दबायेगी।

मुसलमानों की सारी नीति के पीछे सन् १८७० ईसवी तक की वह याददाश्त थी, जिसके कारण वे अवज्ञा और तनज्जुली की हालत में रहे। सरकारी कृपा के हटने और अपनी नौकरियों के छूटने का डर उन्हें सदा बना रहता था। इस डर को बड़े यत्न के और कौशल के साथ एक एक मुसलमान के दिल में अङ्कित कर दिया गया। उन्हें यह बताया गया कि राजनैतिक उन्नति के साथ साथ हिन्दुओं की हुकूमत उन पर क़ायम हो जायगी।

इससे यह स्पष्ट है कि इस सदी के शुरू में सरकारी नौकरियों की ख़्वाहिश और आपसी डर से दोनों सम्प्रदायों के बीच में एक खाई तय्यार हो रही थी। सब मुसलमानों पर इसका असर नहीं था, यह प्रसिद्ध उर्दू कवि अकबर की इन पंक्तियों से ज़ाहिर है—

कटी रगे इत्तहाद मिल्लत
रवां हुईं ख़ूने दिल की मौजें,
वो समझे हैं उसको आबेसाक़ी
नहा रहे हैं निखर रहे हैं।
कफ़स है कम हिम्मती का सीमीं
पड़े हैं कुछ दानिहाले शीरीं,
उन्हें ये मायल है तबा शाहीं
न बाल अब हैं न पर रहे हैं।

अनेक वर्षों तक मुसलिम राजनीति इसी धारा में बहती रही; किन्तु अन्त में हिन्दुस्तान में और बाहर कुछ ऐसी घटनायें हुईं, जिनसे मुसलिम राजनीति को एक ज़बर्दस्त धक्का लगा। बिगुल बजा बजा कर मुसलमानों को ख़ुश करने के लिये, जो बंग-भंग किया था, उसे सन् १९११ में रद्द कर दिया गया। सन् १९१२ में हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने डाक्टर अनसारी की सदारत में तुर्की की सहायता के लिये एक मेडिकल मिशन भेजा। सन् १९१४ में यूरोपीय युद्ध शुरू हुआ। उसमें तुर्की ने अङ्गरेज़ों के दुश्मनों का साथ दिया। हिन्दुस्तान के मुसलमान इन सारी घटनाओं से बेहद प्रभावित हुए और बहुतों को यह ख़याल पैदा हुआ कि क्या सन् १९०६ की मुसलिम लीग की नीति उचित थी?

इसके बाद मुसलमानों की तबियत में एक बड़ा इनक़लाब आया। सन् १९१६ में लखनऊ में मुसलिम लीग और इण्डियन नैशनल कांग्रेस की सम्मिलित बैठक हुई और मशहूर लखनऊ-पैक्ट पर दस्तख़त हुए। इसका फ़ौरन असर यह हुआ कि १८ अगस्त सन् १९१७ को शाही ऐलान हुआ, जिसमें रिसपान्सिबल सेल्फ़ गवर्नमेण्ट के क़ायम करने का ऐलान किया गया। किन्तु जैसे ही लड़ाई ख़त्म हुई, सरकार ने अपनी उदारता की नीति छोड़कर दमन का चक्र घुमाना शुरू किया। रौलट बिल पास हुआ और १९१९ में जलियानवाला बाग़ का हत्या-काण्ड हुआ। मुसलमानों के दिलों में सेवरे के उस सुलहनामे से और भी विक्षोभ पैदा हुआ, जिससे तुर्की के ऊपर अपमान जनक शर्तें लादी गईं। इस तरह अगले तीन बरस तक हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर स्वराज्य और ख़िलाफ़त के मसले पर सरकार से लोहा लिया। किन्तु दुर्भाग्यवश असहयोग आन्दोलन के स्थगित होने और ख़िलाफ़त के टूटने पर यह एकता भी भङ्ग हो गई।

लड़ाई के बाद जो एकता क़ायम हुई थी, वह चल न सकी। यह सही है कि कुछ मुसलिम जमाअतें मसलन जमैयत-उल-उलेमा, मजलिसे-अहरार, ख़ुदाई ख़िदमतगार, शिया पोलिटिकल कान्फ्रेंस आदि कांग्रेस से सहयोग करती रहीं किन्तु दूसरी मुसलिम जमाअतें जैसे ख़िलाफ़त कान्फ्रेन्स, मुसलिम लीग और मुसलिम कान्फ्रेंन्स कांग्रेस की विरोधी बन गईं। आजकल कुछ मुसलमान कांग्रेस के साथ हैं, किन्तु व्यापारी, ज़मीदार, कारख़ाने वाले और पढ़े लिखे मुसलमान आज कांग्रेस के विरोधी हैं। परिस्थिति को देखते हुये आज उन्हीं का बोलबाला है।

हमारे राजनैतिक नेताओं ने जो ग़लतियां कीं यह सब उसी का परिणाम है। मुसलमानों की शुरू की छोटी से छोटी मांगों को ठुकराने से उनकी मांगें भी बढ़ती ही गईं। अपने जिन नेताओं और संस्थाओं की मुसलमान जनता क़द्र करती थी, उन्हीं के साथ अवज्ञा का बर्ताव किया गया। इससे भी नेताओं को मुसलमान जनता को भड़काने का मौक़ा मिला।

इन सब वाक़यों को विस्तार के साथ बयान करने की यहां ज़रूरत नहीं। इनमें विशेष वाक़ये हैं सन् १९२८ की आल पार्टीज़ कान्फ्रेन्स में मिस्टर जिनाके प्रस्ताव का ठुकराना, अली भाइयों और बाद में मिस्टर जिना का विरोधी बनना, मौलाना हसरत मोहानी, नवाब मोहम्मद इसमाइल, चौधरी ख़लीकुज़्ज़मा, मिस्टर फ़ज़लुल हक़ आदि राष्ट्रीय मुसलमानों का राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग होना।

इस तरह दोनों सम्प्रदायों के बीच की खाई दिन प्रतिदिन चौड़ी ही होती गई। इन सब बातों का एक ही नतीजा हो सकता था यानी—पाकिस्तान।

राम रहीम कहावत एकै

माला कहां औ कहां तसबीह,
अब चेत इनहिं कर टेक न टेकै।
काफ़िर कौन मलेच्छ कहावत,
सन्ध्या निवाज समै करि देखै।
है जमराज कहां जबरील है,
काजी है आप हिसाब के लेखै।
पाप औ पुण्य जमा कर बूझत,
देत हिसाब कहां धरि फेकै।
दास मलूक कहां भरमौ तुम,
राम रहीम कहावत एकै॥

—मलूकदास

जल-कन्या के आंसू

डाक्टर, एन० एस० वर्धन

मुसलमानों की नमाज़ से मुझे बेहद आकर्षण है और ख़ास तौर पर इशा की नमाज़ से। कितनी ही बार मैंने मुअज़्ज़िन को अज़ान देते और इमाम को नमाज़ पढ़ाते देखा है। ज़ाहिद कितने सुरीले स्वर से क़ुरान की तिलावत करता है और नमाज़ियों की कतार ध्यान-मग्न होकर अल्लाह के साथ अपना नाता जोड़ती है। मुझे नहीं मालूम कि औरों को भी इसमें आकर्षण मिलता है या नहीं और न मैंने कभी अपने इस असर की ही छान बीन करने की कोशिश की है।

हां, तो मैं आपको मलाया द्वीप की बात सुना रहा था। सूर्यास्त के बाद नमाज़ी मसजिद में आकर ही इशा की नमाज़ का इन्तज़ार करते हैं। कुछ क़ुरान का मुताला करते हैं और कुछ नीति की बातें और हज़रत पैग़म्बर के साथियों की भक्ति की कहानी सुनते हैं। सुदूर पूर्व के देशों में, मलाया में, यात्री का जी ख़ास तौर पर रम जाता है। इच्छा ही नहीं होती कि कोई यात्रा पूरी करके आगे की राह ले।

इस आकर्षण का रहस्य क्या है, यह बताना ज़रा मुश्किल है। कुछ देश की सुन्दरता, कुछ देशवासियों का प्रेमी स्वभाव, कुछ प्रकृति की गम्भीरता और कुछ सुखद जल-वायु, सब मिल कर यात्री के दिल पर एक अजीबो ग़रीब असर डालते हैं और यदि उसे मजबूरन मलाया छोड़ना भी पड़े, तब भी वह यही संकल्प करके छोड़ता है कि दूसरी बार कुछ ज़्यादा फ़ुरसत साथ लेकर वह वहां पहुंचेगा। इनसाइक्लोपीडिया से अपने ज्ञान की पूंजी बढ़ाने वाले इस बात का अन्दाज़ ही नहीं कर सकते कि यात्रा में जो चीज़ें मिलती हैं, उनका ज़िक्र तक पुस्तकों में नहीं होता; और फिर यह कितने सन्तोष की बात है कि चीज़ों को अपने आप जाकर देखे। अब भी मुझे रह रहकर मलाया की उस यात्रा की याद आती है। वह देश क्या है, दो तूफ़ानी समुद्रों के बीच ज़मीन की एक पतली सी रेखा है। किन्तु समुद्र के तूफ़ान उसके किनारों से टक्कर नहीं लेते। वहां का मौसम सदा ग्रीष्म है। न वहां कोई ज्वालामुखी जानता है, न भूचाल और न समुद्री तूफ़ान। मौसम में चीन सागर और हिन्द महासागर की क्षुधित लहरें इस सुन्दर प्रायद्वीप के अरक्षित किनारों तक पहुंचते पहुंचते थक कर शिथिल हो जाती हैं।

जिस बात की मैं चरचा कर रहा था, उससे मैं ज़रा भटक गया। इशा की नमाज़ ख़त्म हो चुकी थी और मैं मसजिद में नमाज़ियों के बीच में बैठा था। सुनहली सन्ध्या रजनी की काली साड़ी पहन रही थी। मुअज़्ज़िन और इमाम दुआ देकर आराम करने चले गये थे। लोग आराम से दीवार के सहारे बैठ गये और मैंने हाथों का सहारा लिये उनसे तरह तरह की बातें छेड़ दीं और उसी सिलसिले में इसकी चरचा भी वहां शुरू हो गई।

कोने में बैठा हुआ एक शख़्श बोल उठा, "मुझे वह घटना अच्छी तरह याद है। वह एक अपरचित व्यक्ति था और लोग उसे नाख़ुदा माबीन कह कर पुकारते थे। उसने बेचारी लड़की को एक ऐसी

औषधि मिला दी, जिससे वह उसके प्रेम में दीवानी हो गई। वह बातूबारा का रहने वाला एक व्यापारी था। अपने देश सुमात्रा के द्वीप से वह वहां की बनी मशहूर रेशम नाव में लाद कर लाया था और नदी के रास्ते गांव गांव में उसे बेचता फिरा था। रेशम बेच कर और अपना रुपया वसूल करके वह नदी के मुहाने की ओर चल पड़ा। सुमात्रा के लिए समुद्र में नाव डालने के पहले लोग पीने का पानी इकट्ठा कर लेते हैं। नदी के रास्ते में दो ही जगह यह मीठा पानी मिल सकता है। एक हमारे बन्दरगाह तेलुक बातू में और दूसरी जगह है पास का एक दूसरा छोटा सा द्वीप। मगर चूंकि वह द्वीप समुद्री डाकुओं का अड्डा था इसलिये नाखदा तेलुकबातू में ही ताज़ा मीठा पानी इकट्ठा करने के लिये ठहर गया। उसे जल्दी न थी और वह इस काम के लिये हफ़्ते भर से महीना भर तक ठहर सकता था। इसीलिये वह पहले तेलुक बातू के मुखिया तोह परमताङ्ग से मिला और उसके बाद पानी भरवाने की स्कीम बनाने लगा। तोह परमताङ्ग की चार लड़कियां थीं, जिनमें तीसरी लड़की राउना बेहद ख़ूबसूरत थी। किसी छोटी सी जगह कोई ख़ूबसूरत सी लड़की हो, तो लोग उसकी काफ़ी चरचा करते हैं। नाखदा के कानों में भी राउना की प्रशंसा पड़ी और उसने संयोग वश राउना को देखा भी। उसे देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। राउना की शादी बंध चुकी थी, किन्तु नाखदा उसे पाने के उपाय सोचने लगा। ये सुमात्रा के लोग रेशम और ख़ञ्जर बनाने के अलावा और बहुत सी चीज़ें बनाना जानते हैं और नाखदा के पास एक बड़ी प्रभावोत्पादक वशीकरण औषधि थी। यह औषधि जल-कन्या के आंसुओं से बनती है। इस जल-कन्या को हम लोग 'दुयोङ्ग' कहते हैं। यह जल-कन्या समुद्र में निवास करती है। जब कभी यह समुद्र से निकल कर दूब खाने आती है, तब इसे पकड़ कर इसके आंसू निकाल लिये जाते हैं। इसका आकार मनुष्य से कुछ बड़ा होता है। कुछ लोग इसका मांस भी खाते हैं। भैंस के मांस की तरह इसका मांस भी लाल होता है और इसके आंसू भी लाल होते हैं। यदि इन आंसुओं को भात के साथ मिला दिया जाय, तो भात का रङ्ग भी लाल हो जाता है। कम से कम लोग ऐसा कहते हैं। नाखुदा ने एक बुढ़िया को लालच देकर राउना के भात में जल कन्या के आंसू मिलवा दिये। राउना उसे खाकर नाखदा के प्यार में दीवानी हो गई। नाखदा एक महीने तक तेलुकबातू में ठहरा रहा और बुढ़िया की मदद से वह रोज़ राउना से मिलता रहा। राउना तो बिलकुल पागल और दीवानी बन चुकी थी। किन्तु इस तरह की बात अरसे तक चलती रहे और कोई सन्देह न करे यह असम्भव था। नाखदा मन में डरा। राउना वहां के मुखिया की लड़की थी और वह एक परदेशी रोज़गारी। यदि तोह परमताङ्ग को ज़रा भी सन्देह हुआ, तो निश्चय ही उसे फांसी पर चढ़ा दिया जायगा। इसलिये पीने का पानी लेकर, बग़ैर किसी से कुछ कहे, नाखदा ने लङ्गर उठा दिये। छोटी सी जगह में ज़रा ज़रा सी बात की चरचा होती है। राउना के कान में ज्योंही नाखदा की रवानगी की भनक पड़ी वह उन्मत्त होकर समुद्र की ओर दौड़ी, उसकी बहिनें उसके पीछे पीछे। हवा अधिक न थी और नाव अभी ज़्यादा दूर न गई थी; राउना समुद्र की लहरों को चीरती आगे बढ़ी। उसकी बहिनों ने उसे पूरी शक्ति के साथ पकड़ कर रोका और मुशकिल से उसे डूबने से बचा सकीं। चीख पुकार सुनकर किनारे के कुछ लोग इकट्ठा हो गये। सारी कहानी सुनकर उन्होंने नाखदा को वापिस आने के लिये कहा। किन्तु नाखदा वापसी का मतलब ख़ूब समझता था। लोगों ने उसकी नाव का पीछा किया, किन्तु वे उसे न पा सके।

"राउना अपने कायर और निष्ठुर प्रेमी के वियोग में व्याकुल और शोक सन्तप्त, रोती और चीखती रही। राउना की कथा का विरह-गीत मलाया में अब तक गाया जाता है। नाखदा फिर कभी नहीं लौटा। मुझे वह गीत याद है और यदि आप ऊब न जायें तो मैं आपको सुनाऊं—

मेरे आधार !
मेरे प्राणों के आधार ! तुम कहां हो ?
उन्नत भाल ताड़ के वृक्ष—
मेरे दूतों की तरह तुम्हें जोह रहे हैं !
फल वृक्षों से विलग होकर सर धुन रहे हैं !

मैं तुम्हारी प्राण, अति सुन्दरी,
तुम्हारी अंगूठी की हीरक कनी,
परमताङ्ग गुणताङ्ग की ज्योति,
तुम्हारे विरह में तड़प रही हूं !

मेरे प्राणाधार !
तुम्हारे चप्पुओं की नपी तुली छप, छप,
मेरे कानों में पड़ रही है !
तुम्हारी नाव उत्ताल तरंगों में तैरती हुई—
दूर, बहुत दूर, प्रतिपल दूर, चली जा रही है !

मेरे प्राण, मेरे आधार !
तुम्हारी पुजारिन तुम्हारी पूजा में व्यस्त है !

प्रियतम ! सूर्य की किरणें निस्तेज हो रही थीं,
तब तुमने लङ्गर उठाया था !
हवा का रुख अनुकूल न था !
किन्तु प्रभु की दया असीम है;
उसकी अनुकम्पा से हम जन्नत में—
बाग़ के बाहर मिलेंगे।

प्रियतम !
रह रह कर दक्षिण से तूफ़ानी तरङ्गें उठ रही हैं।
देखो सतर्क रहना;
बाईं ओर का पाल न खोल्ना !
तीन महीने और दस दिन में—
मेरे प्रियतम, तुम अवश्य लौट आना !

मेरे जीवन के आधार !
श्रीराम द्वीप पहुंच कर विश्राम कर लेना;
तुम मुझे छोड़ कर जा रहे हो;
किन्तु मुझे अधिक वियोग न सहने देना;
दो महीने बस—
अधिक से अधिक तीन महीने में लौट आना !

प्रियतम ! समुद्र की लहरें शान्त हैं;
किनारे पर किश्ती क्यों नहीं लगाते ?
क्या मेरे वर से डरते हो ?
क्या तुमने अपने खड्ग की धार—
अभी हाल ही में नहीं तेज़ कराई थी ?

मेरे प्राणों के आधार ! तुम तेलुक बातू आये,
और मेरे हृदय की शान्ति चली गई !
शैतान मेरी व्यथा देख कर प्रसन्न हो रहा है,
मेरा हृदय तो तुम्हारे पास है !

प्रियतम ! मेरी प्रार्थना पर ग़ौर करो।
वासनाएं आत्मा के साथ द्वन्द करती रहती हैं !
अनमोल हीरे को अपने हाथ से न फेंको,
अन्यथा सब तुम्हारी हंसी उड़ायेंगे !

मेरे नाखदा !
सुनहले तारों मे बुनी इस चटाई पर कौन लेटेगा ?
इस रेशमी दुलाई को कौन ओढ़ेगा ?
इस मखमली चौकी पर कौन बैठेगा ?
और यह तकिया अब किसको सहारा देगा ?

मेरे नाखदा !
थाली में सजे हुये पकवान अब कौन खावेगा ?
बर्फ़ सा ठण्डा जल अब कौन पियेगा ?
तुम्हारी निराश प्रियतमा को कौन ढाढ़स देगा ?
ओ मौत ! मुझे कष्टों से छुटकारा दे।

"इसके बाद राउना रोती और चिल्लाती रही। समुद्र की लहरों में समा जाने को छटपटाती रही। यदि उसकी बहिनें न होतीं, तो कौन कह सकता कि क्या होता ?

"राउना और नाखुदा की यही कहानी है और मलाया का बच्चा बच्चा इसे जानता है। लड़की पूरे छै महीने तक नाखुदा के वियोग में दुखी और दीवानी रही। अन्त में उसके पिता ने एक दूसरे आदमी से ज़बरदस्ती उसकी शादी कर दी। उस पर कैसी बीती यह जान सकना असम्भव है; क्योंकि उसका कोमल शरीर उसकी आत्मा को अधिक दिनों तक समेट कर न रख सका।"

मैंने आह भर कर पूछा—"ये जल-कन्या के आंसू मिलें कैसे?"

मलाया हंस कर कहने लगा—"वह तो बहुत आसान है। जल-कन्या जब किनारे की मीठी दूब खाने समुद्र से बाहर निकले, तब उसे पकड़ लो और उसे किनारे पर कस कर बांध दो। थोड़ी देर में वह अपने साथी के वियोग में रोने लगेगी। तुम उसके आंसुओं को एक प्याले में इकट्ठा कर लो। बस इसी से तुम लोगों को वश में कर सकते हो।"

इसके बाद मसजिद में सन्नाटा छा गया। फिर कोने से एक आदमी बोल पड़ा—"मैंने सुना है पेनाङ्ग शहर में जल-कन्या के आंसू बिकते हैं।"

कहानी सुनाने वाले ने फ़ौरन जवाब दिया—"वह तो मैंने भी सुना है। मगर वह नक़ली चीज़ होगी। बग़ैर परीक्षा किये उसे ख़रीदना व्यर्थ है।"

"किन्तु परीक्षा कैसे की जाय?"—मैंने पूंछा

"वह आसान है। एक मुर्ग़ी की चोंच में उसे मल दीजिये। यदि जल-कन्या के आंसू सच्चे हैं, तो मुर्ग़ी आशिक़ होकर आपके पीछे पीछे चल देगी। जहां जहां आप जावेंगे मुर्ग़ी आपका पीछा न छोड़ेगी।"

"क्या आपने इसकी परीक्षा ली है?"—मैंने पूछा।

"जी नहीं! मुझे वशीकरण की ज़रूरत नहीं। मेरा उनके बग़ैर काम चल जाता है। मैं ऐसी ज्वाला नहीं सुलगाना चाहता जो मेरे क़ाबू में न रहे। किसी को अपने प्यार में, जल-कन्या के आंसू से, दीवाना बना देना तो सरल है; मगर उसे होश में लाना असम्भव है। बहर हाल मैं ये आंसू यदि ख़रीदूं, तो इन्हें पहले मुर्ग़ी पर ज़रूर आजमाऊं। जो हो राऊना और नाखुदा की कहानी बिलकुल सच्ची है।"

रात घने अन्धकार की चादर ओढ़ कर निस्तब्ध सो रही थी। दूर समुद्र तट से लहरों की छप छप सुनाई दे रही थी और मैं बैठा हुआ जल-कन्या के आंसुओं की बात सोच रहा था।

"विश्ववाणी" के पाठकों के लिये मैंने राऊना के *विरह गीत का अनुवाद ज्यों का त्यों किया है। ख़ाली* "आधार" शब्द का मलाया में मूल अर्थ "छाता" होता है। छाता धूप और मेह से बचाता है और पीला छाता शाही छाता होता है और वह शाही संरक्षण समझा जाता है। पुरुष चूंकि अपनी प्रेयसी की रक्षा करता है इसलिये मलाया में उसे 'छाता' ही कह कर पुकारा जाता है।

—:○:—

प्राचीन भारत में

उत्सव-नाच-गान-अभिनय

पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी

प्राचीन भारतीय नागरिक नाच, गान और उत्सवों का आनन्द जम कर लिया करते थे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन दिनों पेशेवर नर्तकों का अभिनय गृह किसी निश्चित स्थान पर होता था या नहीं, क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। पर इतना निश्चित है कि राज्य की ओर से पहाड़ों की गुफाओं में दुमंज़िले प्रेक्षागृह बनाये जाते थे और निश्चित तिथियों या अवसरों पर उनमें नाच, गान और नाटकाभिनय भी होते थे। छोटा नागपुर के रामगढ़ की पहाड़ी पर एक ऐसे ही प्रेक्षागृह का भग्नावशेष आविष्कृत हुआ है। फिर ख़ास ख़ास मन्दिरों में भी धार्मिक उत्सवों के अवसर पर नाच, गान की व्यवस्था रहा करती थी। शादी, ब्याह, पुत्र जन्म या अन्य आनन्द-व्यंजक अवसरों पर नागरिक लोग रङ्गशाला और नाच घर बनवा लेते थे। नाट्यशास्त्र में स्थायी रङ्गशालाओं की भी चर्चा है। राजभवन के भीतर तो निश्चित रूप से रङ्गशालायें हुआ करती थीं। प्रायः ही संस्कृत नाटिकाओं में अन्तःपुर के भीतर अन्तःपुरिकाओं के विनोद के लिये नृत्य-गान-अभिनय आदि का उल्लेख पाया जाता है। नाट्यशास्त्र में ऐसे प्रेक्षागृहों का भाव भी दिया हुआ है। साधारणतः ये तीन प्रकार के होते थे। जो बहुत बड़े होते थे वे देवों के प्रेक्षागृह कहलाते थे और १०८ हाथ लम्बे होते थे। दूसरे ६४ हाथ लम्बे वर्गाकार होते थे और तीसरे त्रिभुजाकार होते थे, जिनकी तीनों भुजायें बत्तीस बत्तीस हाथों की होती थीं। दूसरे तरह के प्रेक्षागृह राजा के कहे जाते थे। ये ही साधारणतः अधिक प्रचलित थे। ऐसा जान पड़ता है कि राजा लोग और अन्यधिक समृद्धिशाली लोगों के गृहों में तो इस प्रकार की रङ्गशालायें स्थायी हुआ करती थीं। पर साधारण नागरिक यथा अवसर तीसरे प्रकार की अस्थायी शालायें बनवा लेते थे। नाट्यशास्त्र में इन्हें प्रजाओं की प्रेक्षाशाला कहा गया है। राजाओं की विजय-यात्राओं के पड़ाव पर भी अस्थायी रङ्गशालायें बना ली जाती थीं। इन शालाओं के दो हिस्से हुआ करते थे। एक तो जहां अभिनय हुआ करता था, वह स्थान और दूसरा दर्शकों का स्थान, जिसमें भिन्न भिन्न श्रेणी के लोगों के लिये उनकी मर्यादा के अनुसार स्थान नियत हुआ करते थे। जहां अभिनय होता था, उसे रङ्गभूमि (या संक्षेप में 'रङ्ग') कहा करते थे। इस रङ्गभूमि के पीछे तिरस्करणी या पर्दा लगा दिया जाता था। पर्दे के पीछे के स्थान को नेपथ्य कहा करते थे। यहीं से सजधज कर अभिनेता गण रङ्गभूमि में उतरते थे। 'नेपथ्य' शब्द (नि + पथ + य) में 'नि' उपसर्ग को देखकर कुछ पण्डितों ने अनुमान किया है कि 'नेपथ्य' का धरातल रङ्गभूमि की अपेक्षा नीचा हुआ करता था, पर वस्तुतः यह उल्टी बात है। असल में नेपथ्य पर से अभिनेता रङ्गभूमि में उतरा करते थे। सर्वत्र इस क्रिया के लिये 'रङ्गावतार' (रङ्गभूमि में उतरना) शब्द ही व्यवहृत हुआ है।

दर्शकों में छोटे-बड़े शिक्षित अशिक्षित सभी हुआ करते थे, पर ऐसा जान पड़ता है कि अधिकांश दर्शक रस शास्त्र के नियमों के ज्ञाता हुआ करते थे। कालिदास, हर्ष आदि के नाटकों में गुणग्राहिणी परिषद् का उल्लेख है। भारतीय जीवन की यह विशेषता रही है कि ऊंची से ऊंची चिन्ता जन-साधारण में घुली मिली पाई जाती है। यद्यपि शास्त्रीय विचार और तर्क-शैली सीमित क्षेत्र में ही परिचित होती थी; किन्तु सिद्धान्त सर्वसाधारण में ज्ञात होते थे। नृत्य और अभिनय संबन्धी मूल सिद्धान्त भी उन दिनों सर्वसाधारण में परिचित रहे होंगे। संस्कृत नाटकों और शास्त्रीय सङ्गीत और अभिनय के द्रष्टा को कैसा होना चाहिये, इस विषय में नाट्यशास्त्र ने स्पष्ट रूप में कहा है (२७-५१ और आगे) कि उसके सभी इन्द्रिय दुरुस्त होने चाहिये, ऊहापोह में उसे पटु होना चाहिये (अर्थात् जिसे आजकल 'क्रिटिकल आडिएंस' कहते हैं, ऐसा होना चाहिये,) दोष का जानकार और अनुरागी होना चाहिये। जो व्यक्ति शोक से शोकान्वित न हो सके और आनन्द जनक दृश्य देखकर आनन्दित न हो सके अर्थात् जो संवेदन शील न हो, उसे नाट्यशास्त्र प्रेक्षक या दर्शक का पद नहीं देना चाहता (२७.५२)। यह ज़रूर है कि सभी की रुचि एक सी नहीं हो सकती। वयस, अवस्था और शिक्षा के भेद से नाना भांति की रुचि और अवस्था के अनुसार भिन्न विषय के नाटकों और अभिनयों का प्रेक्षकत्व निर्दिष्ट किया है। जवान आदमी शृङ्गार-रस की बातें देखना चाहता है, सहृदय काव्य-नियमों (समय) के अनुकूल अभिनय को पसन्द करता है, अर्थपरायण लोग अर्थ चाहते हैं, वैरागी लोग विरागोत्तेजक दृश्य देखना चाहते हैं, शूर लोग वीभत्स, रौद्र आदि रस पसन्द करते हैं, वृद्ध लोग धर्माख्यान और पुराण के अभिनय देखने में रस पाते हैं (२७.५७.५८) फिर एक ही तमाशे के सभी कैसे तमाशबीन हो सकते हैं! फिर भी जान पड़ता है कि व्यवहार में इतना कठोर नियम नहीं पालन किया जाता होगा और उत्सवादि के अवसर पर जो कोई अभिनय को देखना पसन्द करता होगा, वही जाया करता होगा। परन्तु कालिदास आदि जब परिषद् की निपुणता और गुणग्राहकता की बात करते हैं, तो निश्चय ही कुछ चुने हुए सहृदयों की बात करते हैं।

साधारणतः ये नाच, गान और अभिनय दिन में या सायङ्काल होते होंगे। प्राचीन ग्रन्थों में यह नहीं लिखा है कि अभिनय कब हुआ करते थे। कामसूत्र में एक स्थान पर (पृ० ४७-४८) कहा गया है कि दोपहर के बाद नागरिक प्रसाधन करके गोष्ठी विहार को जाया करते थे। फिर सायङ्काल (प्रदोषे) को सङ्गीत का अनुष्ठान होता था। वैसे नाट्यशास्त्रीय विवेचनाओं में अभिनय के समय प्रदीप आदि का उल्लेख कम ही मिलता है। जो हो, कामसूत्र की गवाही पर हम मान ले सकते हैं कि सायङ्काल ही यह अनुष्ठान हुआ करते थे। नागरक गण दैनिक कृत्यों से फ़ुरसत पा कर अच्छे वस्त्रालङ्कार धारण करके इन अनुष्ठानों में जाते थे। मृच्छकटिक में रेभिल नामक सुकंठ वणिक् गायक ने सायं सन्ध्या के बाद ही अपने घर की सङ्गीत मजलिस में गान किया था।

साधारणतः विवाह के अवसर पर या राजकीय किसी उत्सव के अवसर पर ऐसे आयोजनों का भूरिशः उल्लेख पाया जाता है। जब नगर में वर-वधू प्रथम बार रथस्थ होकर निकलते थे, तो नगर में खरभर मच जाती थी। पुरसुन्दरियां सब कुछ भूल कर राजपथ के दोनों ओर गवाक्षों में आंखें बिछा देती थीं। केश बांधती हुई बहू हाथ में कबरीबंध के लिये सम्हाली हुई पुष्पस्रक् (माला) लिये ही दौड़ पड़ती थी, महा-वर देने में दत्त चित्ता कुलरमणी एक पैर की महावर से घर को लाल बनाती हुई खिड़की पर दौड़जाती थी, काजल बाईं आंख में पहले लगाने का नियम भूल कर कोई सुन्दरी दाहिनी आंख में काजल देकर जल्दी जल्दी में हाथ में अञ्जन-शलाका लिये ही भाग पड़ती थी, रसना में मणि गूंथती हुई विलासिनी आधे गुंथे सूत्र को अंगूठे में लिये हुए ही दौड़ पड़ती थी (रघुवंश.७

९-१० और कुमारम्भव ७.५७.१०) और इस प्रकार नगर सौधों के गवाक्ष सुन्दरियों की बदन-दीप्ति से दमक उठते थे। जब कुमार चंद्रापीड समस्त विद्याओं का अध्ययन समाप्त करके विद्या-गृह से निर्गत हुए थे और नगर में प्रविष्ट हुए थे, तो कुछ इसी प्रकार की खरभर मच गई थी।

संभ्रान्त परिवारों में जिनका आपस में संबंध होता था, उनके घर उत्सव होने पर एक घर के लोग बड़े ठाट बाट से दूसरे घर जाया करते थे। राजा, मन्त्री, श्रेष्ठी आदि समृद्ध नागरिकों में यह आना-जाना विशेष रूप से दर्शनीय हुआ करता था। मंत्री शुकनास के घर पुत्र जन्म होने पर राजा तारापीड़ उसका उत्सव मनाने के लिये गये थे। उनके साथ अन्तःपुर की देवियां भी थीं। बाणभट्ट की शक्तिशाली लेखनी ने इसका जो विवरण दिया है, उससे उस युग के ऐसे जुलूसों का बहुत मनोरंजक परिचय मिलता है। राजा तारापीड़ जब शुकनाश के घर जाने लगे, तो उनके पीछे अन्तःपुर की परिचारिका रमणियां भी थीं। उनके चरण-विघट्टन (पदक्षेप) जनित नूपुरों के क्वणन से दिगन्त शाब्दायमान हो उठा था, वेग पूर्वक भुज-लताओं के उत्तोलन के कारण मणिजटित चूड़िया चंचल हो उठी थीं; इससे बाहुलतायें भी झनकार करने लगी थीं, उनकी ऊपर उठी हथेलियों को देखने से ऐसा लगता था; मानों आकाश गंगा में की कमलिनी वायु विलुलित होकर नीचे चली आई हैं, भीड़ के संघर्ष से उनके कानों के पल्लव खिसक रहे थे, वे एक दूसरे से टकरा जाती थीं और इस प्रकार एक का केयूर दूसरी की चादर में लग कर उसे खरोंच डालता था, पसीने से धुले हुए अंग राग उनके चीन-वसनों को रँग रहे थे, भीड़ के कारण शरीर का तिलक थोड़ा ही बच रहा था, साथ साथ चलने वाली विलासवती वार-वनिताओं की हँसी से वे प्रस्फुटित कुमुद वन के समान सुशोभित हो रहीं थीं; चंचल हार लतायें ज़ोर ज़ोर से हिलती हुई उनके वक्षो भाग से टकरा रही थीं, खुली केशराशि सिंदूर विंदु पर आकर पड़ रही थी, अबीर की निरन्तर झड़ी होते रहने के कारण उनके केश पिंगल वर्ण के हो उठे थे, उन दिनों के संभ्रान्त परिवारों के अन्तःपुर में सदा रहने वाले गूंगे, कुबड़े, बौने और मूर्ख लोग उद्धतनृत्य से विह्वल होकर आगे चले जा रहे थे, कभी कभी किसी वृद्ध कंचुकी के गले में किसी रमणी का उत्तरीय वस्त्र अटक जाता था और खींच तान में पड़ा हुआ वह विचारा खासे मज़ाक का पात्र बन जाता था, साथ वीणा, वंशी, मृदंग और कांस्यताल (करताल) बजता चलता था, अस्पष्ट किन्तु मधुर गान सुनाई दे रहा था। राजा के पीछे पीछे उनके परिवार की संभ्रान्त महिलायें भी जा रही थीं, उनका मणिमय कुण्डल आन्दोलित होकर कपोल तल पर निरन्तर आघात कर रहा था, कान के उत्पल-पत्र हिल रहे थे, शेखर-माला भूमि पर गिरती जा रही थी, वक्षःस्थल विराजित पुष्पमाला निरन्तर हिल रही थी, इनके साथ भेरी-मृदंग-मर्दल-पटह आदि बाजे बज रहे थे, और उसके पीछे पीछे काहल और शंख के नाद हो रहे थे, और इन शब्दों के साथ राज परिवार की देवियों के सुनूपुर चरणों के आघात से इतना ज़बर्दस्त शब्द हो रहा था कि धरती के फट जाने का अदेशा होता था। इनके पीछे राजा के चारणगण नाचते नाचते चले जा रहे थे, नाना प्रकार के मुखवाद्य से कोलाहल करते जा रहे थे, कुछ लोग राजा की स्तुति कर रहे थे, कुछ विरद पढ़ रहे थे और कुछ यों ही उछलते-कूदते चले जा रहे थे।

जो उत्सव पारिवारिक नहीं होते थे, उनका ठाट-बाट कुछ और तरह का होता था। काव्यग्रन्थों में इन का भी उल्लेख पाया जाता है। साधरणतः राजा की सवारी, विजय-यात्रा, विजय के बाद का प्रवेश, बारात आदि के जुलूसों में हाथियों और घोड़ों की बहुतायत हुआ करती थी। स्थान स्थान पर जुलूस रुक जाता था और घुड़सवार नौजवान घोड़ों को नचाने की कला का परिचय देते थे। नगर की देवियां गवाक्षों से धान की खीलों और पुष्पवर्षा से राजा, राजकुमार या वर की अभ्यर्थना करती थीं। जुलूस के पीछे बड़ी दूर तक साधारण नागरिक पीछे चला करते थे। जान पड़ता है कि प्राचीन काल के ये जुलूस जन-साधारण

के लिये एक विशेष आनन्द दायक उत्सव थे। राजा जब दीर्घ प्रवास के बाद अपनी राजधानी को लौटते थे, उत्सुक जनता प्रथम चंद्र की भांति अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक उनकी प्रतीक्षा करती रहती थी और राजा के नगर द्वार में पधारने पर तुमुल जयघोष से उनका स्वागत करती थी। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में राजा दिलीप के वन-प्रवास के अवसर पर भी यह दिखाया है कि किस प्रकार वन के वृक्ष और लतायें नागरिकों की भांति उनकी अभ्यर्थना कर रही थीं। बाल लतायें पुष्प वर्षा करके पौर कन्याओं द्वारा अनुष्ठित खीलों की वर्षा की कमी पूरी कर रही थीं, वृक्षों के सिर पर बैठ कर चहकती हुई चिड़ियां मधुर शब्द करके आलोक शब्द या रोशनचौकी के अभाव को भली भांति दूर कर रही थीं और इस प्रकार वन में भी राजा अपने राजकीय सम्मान को पा रहा था। जुलूस जब गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाता था, तो वहां के आनुष्ठानिक कृत्य के सम्पादन के बाद नाच, गान, अभिनय आदि द्वारा मनोरञ्जन की व्यवस्था हुआ करती थी। दर्शकों में स्त्री-पुरुष, वृद्ध-बालक ब्राह्मण-शूद्र सभी हुआ करते थे। सभी के लिये अलग-अलग बैठने की जगहें हुआ करती थीं।

यहां यह कह रखना उचित है कि कामसूत्र से हमें कई प्रकार की नाच, गान और रसालाप संबंधी सभाओं का पता मिलता है। एक तरह की सभा हुआ करती थी, जिसे समाज कहा करते थे। यह सभा सरस्वती के मन्दिर में नियत तिथि को हर पखवारे हुआ करती थी। इसमें जो लोग आते थे, वे निश्चय ही अत्यन्त सुसंस्कृत नागरिक हुआ करते थे। इस सभा में जो नाचने-गाने वाले नागरिक का मनोविनोद किया करते थे, उन में अधिकांश उसके नियुक्त हुआ करते थे। किन्तु समय-समय पर अन्य स्थानों से आये हुए कुशीलव या नाच-गान के उस्ताद भी इसमें अपनी कला का प्रदर्शन किया करते थे। दूसरे दिन इन्हें पुरस्कार दिया जाता था। जब कभी कोई बड़ा उत्सव हुआ करता था, तो इन समाजों में कई स्वतन्त्र और आगन्तुक नर्तक और गायक सम्मिलित भाव से अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। इनकी खातिरदारी करना समूचे गण अर्थात् नागरिक समाज का धर्म हुआ करता था। केवल सरस्वती के मन्दिर में ही ऐसे उत्सव हुआ करते हों सो बात नहीं है, अन्यान्य देवताओं के मन्दिर में भी यथा-नियम हुआ करते थे (कामसूत्र पृ० ५०-५१)।

इसी प्रकार नागरिकों के मनोविनोद के लिये एक और तरह की भी सभा बैठा करती थी, जिसे गोष्ठी कहा करते थे। ये गोष्ठियां नागरिक के घर पर या किसी गणिका के घर भी हुआ करती थीं। इस में निश्चय ही चुने हुए लोग ही निमंत्रित होते थे। गणिकायें, जो उन दिनों अपनी विद्या, कला और रसिकता के कारण सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थीं, नागरिकों के घर पर होने वाली गोष्ठियों में निमंत्रित होकर आती थीं और सिर्फ नृत्यगीत से ही नहीं; बहुविध काव्य समस्यायें, मानसी काव्य-क्रिया, पुस्तक वाचन, दुर्वाचक योग, देश-भाषा-विज्ञान, छन्द, नाटक आख्यान आख्ययिका संबंधी आलोचनाओं और रसालापों से भी नागरिकों का मनोविनोद किया करती थीं। भास के नाटकों, ललितविस्तर आदि बौद्ध काव्यों से पता चलता है कि ये गोष्ठियां उन दिनों बहुत प्रचलित थीं और रईसी का आवश्यक अंग मानी जाती थीं। यह ज़रूर है कि कभी कभी लोगों में इस प्रकार की गोष्ठियों के विषय में निन्दा भी होती थी। वात्स्यायन ने भले आदमियों को निन्दित गोष्ठियों में जाने का निषेध किया है (पृ० ५८-५९)। इन गोष्ठियों के समान ही एक और सभा नागरिकों की बैठा करती थी, जिसे वात्स्यायन ने आपानक कहा है। इस में मदपान की व्यवस्था होती थी पर हमारे विषय से उसका कोई संबंध नहीं है। दो और सभायें—उद्यान यात्रा और समस्या क्रीड़ा-कामसूत्र में बताई गई हैं, जिनकी चर्चा यहाँ नहीं करेंगे।

संगीत रत्नाकर (१३५१-१३६०) में रत्न स्तंभ विभूषित पुष्प प्रकर शोभित, नाना वितान-संपन्न अत्यन्त समृद्धिशाली रंगशाला का उल्लेख है। इसके

बीच में सिंहासन पर सभापति बैठा करते थे। इस सभापति में सभी प्रकार की कला मर्मज्ञता और विवेकशीलता का होना आवश्यक माना गया है। सभापति की बाईं ओर अन्तःपुर की देवियों के लिये और दाहिनी ओर प्रधान अमात्यादि के लिये स्थान नियत हुआ करते थे। इन प्रधानों के पीछे कोशाध्यक्ष और अन्यान्य करणाधिप या अफ़सर रहा करते और इनके निकट ही लोक-वेद के विचक्षण विद्वान् कवि और रसिक जन बैठा करते थे। बड़े बड़े ज्योतिषी और वैद्यों का आसन विद्वानों में हुआ करता था। इसी ओर मंत्रिमंडली भी बैठती थी। बाईं ओर अन्तःपुरिकाओं की मंडली बैठा करती थी। सभापति के पीछे रूप यौवन-संभार शालिनी चारु-चामर-धारिणी स्त्रियां धीरे धीरे चंवर डुलाया करती थीं, जो अपने कंकण झंकार से दर्शकों का चित्त मोहती रहती थीं। सामने की ओर बाईं ओर कथक, वंदी और कलावंत आदि रहा करते थे। सभा की शान्ति रक्षा के लिये दक्ष वेत्रधर भी तैयार रहते थे।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में एक और प्रकार की सभा का विधान किया है, जो मनोरंजक है। इस के अनुसार राजा काव्य-साहित्यादि की चर्चा के लिये जो सभा मंडप होगा, उसमें सोलह खंभे, चार द्वार और आठ अटारियां होंगी। राजा का क्रीड़ा गृह इसी से सटा हुआ होगा। इसके बीच में चार खम्भों को छोड़ कर हाथ भर ऊंचा एक चबूतरा होगा और उसके ऊपर एक मणिजटित वेदिका। इसी पर राजा का आसन होगा। इसके उत्तर की ओर संस्कृत भाषा के कवि बैठेंगे। यदि एक ही आदमी कई भाषाओं में कवित्व करता हो, तो जिस भाषा में अधिक प्रवीण हो वह उसी भाषा का कवि माना जायेगा। जो कई भाषाओं में बराबर प्रवीण हो, वह जहां चाहे उठ कर बैठ सकता है। संस्कृत कवियों के पीछे वैदिक दार्शनिक, पौराणिक स्मृति शास्त्री, वैद्य, ज्योतिषी आदि का स्थान होगा। पूर्व की ओर प्राकृत भाषा के कवि और उनके पीछे नट, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवन, कुशीलव, तालावचर आदि रहेंगे। पश्चिम की ओर अपभ्रंश भाषा के कवि और उनके पीछे चित्रकार, लेपकार, मणिकार, जौहरी, सुनार, बढ़ई, लोहार आदि का स्थान होगा। दक्षिण की ओर पैशाची भाषा के कवि होंगे और उनके पीछे वेश्या, वेश्या-लम्पट, रस्सों पर नाचने वाले नट, जादूगर, जम्भक, पहलवान, सिपाही आदि का स्थान निर्दिष्ट रहेगा। इस विवरण से ही प्रकट है कि राजशेखर की बनाई हुई यह सभा मुख्यतः कवि सभा है, यद्यपि नाचने गाने वालों की उपस्थिति से अनुमान होता है कि इस प्रकार की सभा में अवसर विशेष पर गान वाद्य और नृत्य का भी आयोजन हो सकता था।

जो सङ्गीत-भवन स्थायी हुआ करते थे, उनके स्थान पर मृदङ्ग स्थापन की जगहें बनी होती थीं। कादम्बरी में एक जगह इस प्रकार की उपमा दी गई है, जिसमे इस व्यवस्था का पता चलता है 'सङ्गीत भवनमिवानेक स्थान स्थापित मृदङ्गम।' यह मृदङ्ग उन दिनों की सङ्गीत की मजलिस का अत्यन्त आवश्यक उपादान था। कालिदास ने सङ्गीत प्रसङ्ग उठते ही 'प्रसक्त सङ्गीत मृदङ्ग घोषः' कह कर इस बात की ओर इङ्गित किया है।

इन सभाओं में गणिका का आना एक विशेष आकर्षक व्यापार था। यहां यह स्पष्ट समझ रखना चाहिये कि गणिका यद्यपि वारांगना ही हुआ करती थी, तथापि कामसूत्र से जान पड़ता है कि वह अन्यान्य साधारण वेश्याओं से कहीं अधिक सम्मान का पात्र मानी जाती थी। वेश्याओं में जो सबसे सुन्दरी और गुणवती होती थी, उसे ही 'गणिका' की आख्या मिलती थी। राजा लोग उसका सम्मान करते थे और गुणज्ञ सहृदय लोग उसकी स्तुति किया करते थे। * ललित विस्तर में राजकुमारी को गणिका

---

* आभिरभ्युच्छ्रिता वेश्या शील रूप गुणान्विता।
लभते गणिका शब्दं स्थानं च जन संसदि॥
पूजिता च सदा राज्ञा गुणवद्भिश्च संस्तुता।
प्रार्थनीया भिगम्याश्च लक्ष्यभूता च जायते॥

[पृष्ठ ४०]

के समान शास्त्रज्ञा बताया गया है। (शास्त्रे विधिज्ञ कुशला गणिका यथैव)। ये गणिकायें शास्त्र की जानकार और कवित्व की रसिका हुआ करती थीं। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में इस बात को सिद्ध करना चाहा है कि पुरुषों के समान स्त्रियां भी कवि हो सकती हैं और प्रमाण स्वरूप वे कहते हैं कि सुना जाता है कि प्राचीन काल में बहुत-सी गणिकायें और राजदुहितायें बहुत उत्तम कवि हो गई हैं। इन गणिकाओं की पुत्रियों को नागरक जन के पुत्रों के साथ पढ़ने का अधिकार था। गणिका वस्तुतः समस्त गण (या राष्ट्र) की संपत्ति मानी जाती थी और बौद्ध साहित्य से इस बात का प्रमाण खोजा जा सकता है कि वह समस्त समाज के गर्व की वस्तु होती थी। संस्कृत के नाटक में उसे नगरश्री कहा गया है। मृच्छकटिक नाटक में वसन्तसेना नामक एक ऐसी ही गणिका का प्रेम वृत्तान्त चित्रित किया गया है। सारे नाटक में एक जगह भी बसन्तसेना का नाम लघु भाव से नहीं लिया गया। अदालत के प्रधान अधिकरणिक से लेकर कायस्थ तक उसके प्रति अत्यन्त सम्मान का भाव प्रकट करते हैं। उसकी वृद्धा माता जब गवाही देने के लिये आती है, तो उसे अधिकरणिक भी सम्मान के साथ 'आर्या' कहकर सम्बोधन करते हैं। इन सब बातों से जान पड़ता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में गणिका यथेष्ट सम्माननीया मानी जाती थी। वैशाली की अम्बपालिका गणिका समस्त नगरी के अभिमान की वस्तु थी। गणिका के सम्मान का अन्दाज़ा मृच्छकटिक की इस कथा से भी लग सकता है कि राज्य की ओर से जब सब गाड़ियों की तलाशी करने की कड़ी आज्ञा थी, तब भी पुलिस के सिपाहियों में से किसी किसी ने सिर्फ़ यह जान कर ही चारुदत्त की गाड़ी की तलाशी नहीं ली कि उसमें बसन्तसेना थी। आज के ज़माने में और गाड़ियां चाहे छोड़ दी जातीं; पर वारविलासिनी की गाड़ी की तलाशी ज़रूर ली जाती।

परन्तु बाद में गण-राज्यों के उठ जाने के बाद से गणिका का सम्मान भी जाता रहा। परवर्ती काल में ठीक इसी सम्मान और आदर की अधिकारिणी वारवनिता का उल्लेख नहीं मिलता। गण-राज्यों के साथ जो गणिका का सम्बन्ध था, वह मनु के उस एक साथ कहे हुये निषेध-वाक्य से भी जाना जाता है, जिसमें कहा गया है कि ब्राह्मण को गणान्न और गणिकान्न नहीं ग्रहण करना चाहिये। (मनु० ४.२०९)।

गणिका के अतिरिक्त जो स्त्री पुरुष अभिनय आदि का पेशा करते थे, वे समाज में किस दृष्टि से देखे जाते थे; इस विषय में प्राचीन ग्रन्थों में दो तरह की बात पाई जाती है। धर्म-ग्रन्थों के अनुसार तो निश्चित रूप से उन्हें बहुत ऊंचा स्थान नहीं दिया गया। मनु० (८.६५) और याज्ञवल्क्य (२.७०) तो उनकी दी हुई गवाही को भी प्रामाणिक नहीं मानते। इसका कारण शायद यह है कि वे अत्यन्त झूठे और फ़रेबी माने जाते रहे होंगे। जायाजीव, रूपजीव आदि शब्दों से नटों को निर्देश करने से जान पड़ता है कि ये अपनी पत्नियों के रूप का व्यवसाय किया करते थे। इस बात का समर्थन इस प्रकार भी होता है कि मनु ने नटी के साथ बलात्कार करने वाले व्यक्ति को कम दण्ड देने का विधान किया है (मनु० ८.३६२)। स्मृति ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि इनके हाथ का अन्न अभोज्य है। इस प्रकार धर्मशास्त्र की दृष्टि से विचार किया जाय, तो नाचने का पेशा बहुत निकृष्ट माना जाता था। जान पड़ता है कि शुरू शुरू में जब नाट्यकला उन्नत नहीं हुई थी और नट लोग पुतलियों को नचा कर या इसी तरह के अन्य व्यवसायों से जीविका उपार्जन करते थे, तब से ही समाज में उनके प्रति एक अवज्ञा का भाव रह गया था। पर जैसे जैसे नाटकीय कला उत्कर्ष को प्राप्त करती गई वैसे वैसे इनकी सामाजिक मर्यादा भी कुछ ऊंची उठती गई। पर सब मिलाकर समाज की दृष्टि में वे बहुत ऊंचे नहीं उठे। यद्यपि नाटकों, काव्यों और काम शास्त्रीय ग्रन्थों से इनकी उच्चतर सामाजिक मर्यादा के प्रमाण संग्रह किये जा सकते हैं; परन्तु समाज की मनोभावना को समझने के लिये इन ग्रन्थों की अपेक्षा स्मृति ग्रन्थों की गवाही कहीं अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय है।

नाट्यशास्त्र में दो प्रकार के नाचों का विस्तृत उल्लेख है, ताण्डव और लास्य। ताण्डव के प्रसङ्ग में मुनियों ने भरत मुनि से प्रश्न किया कि यह नृत्त (ताण्डव) किसलिये भगवान शङ्कर ने प्रवृत्त किया, तो भरत मुनि ने उत्तर दिया था कि नृत्त किसी अर्थ की अपेक्षा नहीं रखता। यह शोभा के लिये प्रयुक्त होता है। स्वभावतः ही प्रायः लोग इसे पसन्द करते हैं और यह मङ्गलजनक है, इसीलिये शिव जी ने इसे प्रवर्तित किया। विवाह, जन्म, प्रमोद, अभ्युदय आदि के उत्सवों के अवसर पर यह विनोद जनक है, इसलिये भी इसका प्रवर्तन हुआ है [नाट्यशास्त्र (चौखंबा) ४.२६०-३]। इस वक्तव्य से जान पड़ता है कि विवाह आदि के अवसरों पर नृत्त या ताण्डव का अभिनय होता था। नाट्यशास्त्र में नृत्त के आविर्भाव की बड़ी मनोरञ्जक कहानी दी हुई है। ब्रह्मा के अनुरोध पर नाना भूतगण-समावृत्त हिमालय के पृष्ठ पर शिव ने सन्ध्याकाल में नाचना आरम्भ किया। तण्डु नामक मुनि को शिव ने उसी नाच की विधि बताई थी। किस प्रकार हाथ और पैर के योग से १०८ प्रकार के करण होते हैं, दो करण (अर्थात् हाथ और पैर की विशेष भङ्गियां) मिलकर किस प्रकार नृत्तमातृका बनती हैं, फिर तीन करणों से कलापक, चार से मण्डक और पांच करणों से सघातक बनता है। इनसे अधिक नौतक करणों के संयोग से किस प्रकार अंगहार बनते हैं, इन बातों को विशद रूप से समझाया। अङ्गहार नृत्त के महत्त्व पूर्ण अङ्ग हैं। ये बत्तीस प्रकार के बताये गये हैं। इन भिन्न अङ्गहारों के साथ चार रेचक हैं—पाद रेचक, कटी रेचक, कर रेचक और कंठ रेचक। जब शिव इन रेचकों और अङ्गहारों के द्वारा अपना नृत्त दिखला रहे थे, उसी समय पार्वती आनन्दोल्लास में सुकुमार भाव से नाच उठीं। पार्वती का यह नाच नृत्त (या उद्धत नाच) नहीं था, बल्कि नृत्य (या सुकुमार नाच) था। इसी को लास्य कहते हैं। एक और अवसर पर दक्ष-यज्ञ विध्वंस के समय सन्ध्याकाल को जब शिव नृत्त कर रहे थे, उस समय शिव के गण मृदङ्ग, भेरी, पटह, भाण्ड, डिंडिम, गोमुख, पणव, दर्दुर आदि आतोदय बाजे बजा रहे थे, शिव ने आनन्दोल्लास में समस्त अङ्गहारों के नाना भांति के प्रयोग से लय और ताल के अनुकूल नृत्य किया। देव-देवियां और शिव के गण इस अवसर पर चूके नहीं। डमरू बजाकर प्रमत्तभाव से नर्तमान शङ्कर की विविध भङ्गियों को अर्थात् विविध अङ्गहारों के पिण्डीभूत बंध विशेष को—पिण्डियों को—उन्होंने याद रखा। ये पिण्डियां उन उन देवताओं के नाम पर प्रसिद्ध हुईं, जिन्होंने उन्हें देखा था। तब से किसी उत्सव और आमोद के अवसर पर इस मांगल्य जनक नृत्त का प्रयोग होता आ रहा है। प्राचीन भारतीय रङ्गशाला में उन दिनों नृत्त या ताण्डव नृत्य का बड़ा प्रचलन था। अनेक प्राचीन मन्दिरों पर भिन्न भिन्न करण और अङ्गहारों के चित्र उत्कीर्ण हैं। नाट्यशास्त्र के चतुर्थ अध्याय में विस्तृत रूप से इसके प्रयोग की बात बताई गई है।

सब से पहले ब्राह्मण लोग कुतप (नगाड़ा ?)-विन्यास विधिपूर्वक कर लेते थे; फिर भाण्ड वाद्य के बजाने वालों के साथ नर्तकी प्रवेश करती थी, उसकी अंजलि में पुष्प होते थे। एक विशेष प्रकार की नृत्य-भंगी से वह रंगस्थल पर पुष्पोपहार रखती थी। फिर देवताओं को विशेष भंगी से नमस्कार करके वह अभिनय आरंभ करती थी। जब वह गान के साथ अभिनय करती थी, तब बाजा बजना बन्द रहता था और जब वह अंगहार का प्रयोग करने लगती थी, तब वाद्य भी बजने लगते थे। इस प्रकार गीत और नृत्य के पश्चात् नर्तकी रंगशाला से बाहर निकलती थी और फिर इसी विधान से अन्यान्य नर्तकियां रंगभूमि में पदार्पण करती थीं और बारी बारी से पिंडी बंधों का अभिनय करती थीं (ना० शा० ४,२६९-७७)।

प्राचीन साहित्य में इस मनोहर नृत्य अभिनय के अनेक उल्लेख हैं। यहां पर एक का उल्लेख किया जा रहा है, जो कालिदास की

सरस लेखनी से निकला है। यह चित्र इतना भाव-व्यंजक और सरस है कि उस पर कुछ विशेष टीका करना अन्याय जान पड़ता है। मालविकाग्निमित्र नाटक में दो नृत्याचार्यों में अपनी कला-चातुरी के सम्बन्ध में तनातनी होती है। यह तै पाता है कि अपनी अपनी शिष्याओं का अभिनय दोनों दिखायें और अपक्षपातिनी सन्यासिनी भगवती कौशिकी दोनों में कौन श्रेष्ठ है इस बात का निर्णय करें। दोनों आचार्य राज़ी हो गये। मृदंग बज उठा। प्रेक्षागार में दर्शकगण यथास्थान बैठ गये। मालविका की अनुमति से रानी की परिचारिका मालविका के शिक्षक आचार्य गणदास यवनिका के अन्तराल से सुसज्जिता शिष्या (मालविका) को रंगभूमि में ले आये। यह पहले ही स्थिर हो गया था कि चलित नृत्य—जिसमें अभिनेता दूसरे की भूमिका में उतर कर अपने ही मनोभाव व्यक्त करता है, ऐसे नृत्य-गीत के साथ होने वाले अभिनय—को दिखाया जायगा। मालविका ने गान शुरू किया। मर्म यह था कि दुर्लभ जन के प्रति प्रेम परवशा प्रेमिका का चित्त एक बार पीड़ा से भर उठता है, और फिर आशा से उल्लसित हो उठता है, बहुत दिनों के बाद फिर उसी प्रियतम को देखकर उसी की ओर वह आंखें बिछाये है। भाव मालविका के हृदय से सीधे निकले थे, कंठ उसका करुण था। उसके अतुलनीय सौन्दर्य, अभिनय व्यंजित अंग सौष्ठव, नृत्य की अभिराम भंगिमा और कंठ के मधुर संगीत से राजा और प्रेक्षक गण मन्त्र-मुग्ध-से हो रहे। अभिनय के बाद ही जब मालविका पर्दे की ओर बढ़ने लगी, तो विदूषक ने किसी बहाने उसे रोका। वह ठिठक कर खड़ी होगई—उसका बायां हाथ कटिदेश पर विन्यस्त था, उसका कंकण कलाई पर सरक आया था, दाहिना हाथ शिथिल श्यामालता के समान सीधा झूल पड़ा था, झुकी हुई दृष्टि पाद पर अड़ी हुई थी, जहां पैर के अंगूठे फर्श पर बिछे हुए पुष्पों को धीरे धीरे सरका रहे थे और कमनीय देहलता नृत्यभंगी से ईषदुन्नीत थी,—मालविका ठीक उसी प्रकार खड़ी हुई, जिस सौष्ठव के साथ देह-विन्यास करके अभिनेत्री को रंगभूमि में खड़ा होना उचित था १। परिव्राजिका कौशिकी ने दाद दी—अभिनय बिलकुल निर्दोष है। बिना बोले भी अभिनय का भाव स्पष्ट ही प्रकाशित हुआ है, अंगविक्षेप बहुत सुन्दर और चातुरी-पूर्ण हुआ है। जिस जिस रस का अभिनय हुआ है, उस उस रस में तन्मयता स्पष्ट लक्षित हुई है। भावचेष्टा सजीव होकर प्रकट हुई है, मालविका ने बलपूर्वक अन्य विषयों से हमारे चित्त को अभिनय की ओर खींच लिया है। २ इस चित्र में कालिदास ने उस युग के अभिनय की सजीव मूर्ति अंकित की है।

यह समझना भूल है कि अभिनय में केवल अंगों की विशेष प्रकार की भंगिमायें ही प्रधान स्थान अधिकार करती थीं। अभिनय के चारों अंगों अर्थात् आंगिक, वाचिक, आहर्य्य और सात्त्विक—पर समान भाव से ज़ोर दिया जाता था। अंगिक अर्थात् देह-सम्बन्धी अभिनय उन दिनों अपने चरम उत्कर्ष पर था। इसमें देह मुख और चेष्टा के अभिनय शामिल थे। सिर, हाथ, कटि, वक्ष, पार्श्व और पैर इन अंगों के सैकड़ों प्रकार के अभिनय नाट्यशास्त्र और अभिनय दर्पण आदि ग्रंथों में गिनाये गये हैं। नाट्यशास्त्र में विस्तार पूर्वक बताया गया है कि किस अंग या उपांग के अभिनय का क्या विनियोग है, अर्थात् वह किस अवसर पर अभिनीत हो सकता है। फिर नाना प्रकार के घूम कर नाची जाने वाली भंगिमाओं का भी विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। फिर वाचिक अर्थात् वचन संबंधी अभिनय को भी उपेक्षणीय नहीं समझा जाता था। नाट्य शास्त्र में कहा गया है (१५-२) कि वचन का अभिनय बहुत साव-

१ वामं सन्धिस्तिमित वलयं न्यस्य हस्तं नितंबे
कृत्वा श्यामाविटपि सदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम्।
पादांगुष्ठालुलित कुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्यादस्याः स्थितमति तरां कान्त मृज्वाय तार्द्धम्।

२ अंगैरन्तर्निहित वचनैः सूचितः सम्यगर्थः,
पादन्यासो लय मनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिमृ र्दुरभिनय स्तद् विकल्पानुवृत्तौ,
भावो भावं नुदति विषयाद्रागबंधः स एव।

धानी से करना चाहिये; क्योंकि यह नाट्य का शरीर है, शरीर और पोशाक के अभिनय वाक्यार्थ को ही व्यंजित करते हैं। उपयुक्त स्थलों पर उपयुक्त यति और काकु देकर बोलना, नाम-आख्यात-निपात-उपसर्ग-समास-तद्धित-विभक्ति-संधि आदि को ठीक ठीक प्रकट करना, छंदों को उचित ढंग से पढ़ सकना, शब्दों के प्रत्येक स्वर और व्यंजन को उपयुक्त रीति से उच्चारण कर सकना, इत्यादि बातें अभिनय का प्रधान अंग मानी जाती थीं। परन्तु यही सब कुछ नहीं था। केवल शारीरिक और वाचिक अभिनय भी अपूर्ण माने जाते थे। आहार्य या वस्त्रालंकारों की उपयुक्त रचना भी अभिनय का ही अंग समझी जाती थी। यह चार प्रकार की होती थी, पुस्त, अलंकार, अंग रचना और संजीव। नाटक के स्टेज को आज के समान 'रियलिस्टिक' बनाने का ऐसा पागलपन तो नहीं था; परन्तु पहाड़, रथ विमान आदि को कुछ यथार्थता का रूप देने के लिये तीन प्रकार के पुस्त व्यवहृत होते थे। वे या तो बांस या सरकंडे के बने होते थे, जिन पर कपड़ा या चमड़ा चढ़ा दिया जाता था, या फिर यंत्रादि की सहायता से फ़र्जी बना लिया जाता था, या फिर अभिनेता इस प्रकार की चेष्टा करता था, जिससे उन वस्तुओं का बोध प्रेक्षक को हो जाता था (२३,५-१)। इन्हें क्रमशः संधिम, व्याजिम और चेष्टिम पुस्त कहते थे। अलंकार में विविध प्रकार के माल्य, आभरण, भूषण, वस्त्र, आदि की गणना होती थी। अंग रचना में पुरुषों और स्त्रियों के बहु विध वेष-विन्यास शामिल थे। प्राणियों के प्रवेश को संजीव कहते थे (२३.१५२) परन्तु इन तीनों प्रकार के अभिनयों से कहीं अधिक महत्त्व पूर्ण अभिनय सात्त्विक था। भिन्न भिन्न रसों और भावों के अभिनय में अभिनेता या अभिनेत्री की वास्तविक परीक्षा होती थी। नाट्यशास्त्र ने ज़ोर देकर कहा है कि सत्त्व में ही नाट्य प्रतिष्ठित है (२४.१), सत्त्व की अधिकता, समानता और न्यूनता से नाटक श्रेष्ठ, मध्यम या निकृष्ट हो जाता है (२४.२); यह सत्त्व अव्यक्त रूप है, भाव और रस के आश्रय पर है, इसके अभिनय में रोमांच अश्रु आदि का यथास्थान और यथा रस प्रयोग अभीष्ट है।

जब कोई नाटक खेला जाने वाला होता था, तो उस के आरम्भ में एक बहुत आडंबर पूर्ण विधि का अनुष्ठान किया जाता था। इसे पूर्व रंग या नाटक आरंभ होने के पहले की क्रिया कहते थे। पहले नगाड़ा बजाकर नाटक आरम्भ होने की सूचना दी जाती थी, फिर गायक और वादक लोग रंग भूमि में आकर यथास्थान बैठ जाते थे, कोरस आरंभ होता था, मृदंग, वेणु, वीणा आदि वाद्य यंत्र ठीक किये जाते थे, ताल ठीक होने पर सभी वाद्य नर्तकों के नूपुर झंकार के साथ बज उठते थे और इन कार्यों के बाद नाटक का उत्थापन होता था।' पंडितों में यहां तक की क्रिया के विषय में मतभेद है कि वे पर्दे के पीछे होती थीं या बाहर। पर चूंकि शुरू में ही अवतरण नामक क्रिया का उल्लेख है, इससे जान पड़ता है कि ये पर्दे के पीछे न हो कर वास्तव में रंग भूमि में ही होते थे और प्रेक्षक या दर्शक लोग उन्हें देखते रहते थे। फिर सूत्रधार का प्रवेश होता था, उसके एक पार्श्व में भृङ्गार में जल लिये हुए एक भृङ्गार धर होता था और दूसरी ओर जर्जर (ध्वजा) लिये हुए दूसरा जर्जर-धर। इन दोनों पारिपार्श्विकों के साथ सूत्रधार पांच पग आगे बढ़ आता था। उद्देश्य ब्रह्मा की पूजा होती थी। यह पांच पग बढ़ना मामूली बढ़ना नहीं है, इसके लिये एक विशेष प्रकार की अभिनय भङ्गी होती थी। फिर वह (सूत्रधार) भृंगार से जल लेकर आचमन प्रोक्षणादि से पवित्र हो लेता था। वह एक विशेष आडंबर पूर्ण अभिनय भङ्गी से विघ्न के जर्जर करने वाले जर्जर (ध्वज) को उत्तोलित करता था और भिन्न भिन्न दिशाओं में भिन्न देवताओं को प्रणाम करता था। वह दाहिने पैर के अभिनय से शिव को और वाम पद के अभिनय से विष्णु को नमस्कार करता था। पहला पुरुष का और दूसरा स्त्री का पद समझा जाता था। एक नपुंसक पद भी होता था, जब कि दाहिने पैर को नाभि तक उत्क्षिप्त कर लिया जाता था। इस भङ्गी से वह ब्रह्मा

को प्रणाम करता था। फिर विधि पूर्वक चार प्रकार के पुष्पों से वह जर्जर की पूजा करता था। वह वाद्य यंत्रों की भी पूजा करके निकल जाता था और तब नान्दी पाठ होता था। वह सर्व देवता और ब्राह्मणों को नमस्कार करता था, देवताओं से कल्याण की प्रार्थना करता था, राजा की विजय कामना प्रकट करता था, दर्शकों की धर्म वृद्धि होने की शुभाकांक्षा प्रकट करता था, कवि (नाटककार) को यश मिले और उस की धर्म वृद्धि हो, ऐसी प्रार्थना करता था, और अन्त में अपनी यह शुभ कामना भी प्रकट करता था कि इस पूजा से समस्त देवता प्रसन्न हों। प्रत्येक शुभाकांक्षा की समाप्ति पर परिपार्श्विक लोग ऐसा ही हो (एवमस्तु) कह कर प्रति वचन देते थे और नान्दी पाठ समाप्त होता था। फिर शुष्कावकृष्टा विधि के बाद वह एक ऐसा श्लोक पाठ करता था, जिसमें अवसर के अनुकूल बातें होती थीं, अर्थात् वह या तो जिस देवता की विशेष पूजा के अवसर पर नाटक खेला जा रहा था, उस देवता की स्तुति का श्लोक होता था, या फिर जिस राजा के उत्सव पर अभिनय हो रहा है उसकी स्तुति का। या फिर वह ब्रह्मा की स्तुति का पाठ करता था। फिर जर्जर के सम्मान के लिये भी वह एक श्लोक पढ़ता था और फिर चारी नृत्य शुरू होता था। चारी के बिना नाट्य का कोई अंग नहीं होता था। इसकी विस्तृत व्याख्या और विधि नाट्यशास्त्र के ग्यारहवें अध्याय में दी हुई है। यह चारी का प्रयोग पार्वती की प्रीति के उद्देश्य से किया जाता था। क्योंकि पूर्वकाल में कभी शिव ने इस विशेष भङ्गी से ही पार्वती के साथ क्रीड़ा की थी। इस सविलास अंग-विचेष्टित रूपचारी के बाद महाचारी का विधान भी नाट्य शास्त्र में दिया हुआ है। इस समय सूत्रधार जर्जर या ध्वजा को पारिपार्श्विकों के हाथ में दे देता था। फिर भूत गण की प्रीति के लिये ताण्डव का भी विधान है। फिर विदूषक आकर कुछ ऐसी ऊल जुलूल बातें करता था, जिससे सूत्रधार के चेहरे पर स्मित-हास्य छा जाता था और फिर प्ररोचना होती थी, जिस में नाटक के विषय-वस्तु अर्थात् किसकी कौन सी जीत या हार की कहानी अभिनीत होने वाली है, ये सब बातें बता दी जाती थीं। और अब वास्तविक नाटक शुरू होता था। शास्त्र में ऊपर की कही बातें विस्तार पूर्वक कही गई हैं। परन्तु साथ ही यह भी कहा गया है कि इस क्रिया को संक्षेप में भी किया जा सकता है। और यदि इच्छा हो तो और भी विस्तार पूर्वक करने का निर्देश देने में भी शास्त्र चूकता नहीं। ऊपर बताई हुई क्रियाओं के प्रयोग से यह विश्वास किया जाता था कि अप्सरायें, गंधर्व, दैत्य, दानव, राक्षस, गुह्यक, यक्ष तथा अन्यान्य देव गण और रुद्रगण प्रसन्न होते हैं और नाटक निर्विघ्न समाप्त होता है।

नाट्यशास्त्र के बाद के इसी विषय के लक्षण ग्रंथों में यह विधि इतनी विस्तार पूर्वक नहीं कही गई है। दशरूपक, साहित्य दर्पण आदि में तो बहुत संक्षेप में इसकी चर्चा भर कर दी गई है। इस बात से यह अनुमान होता है कि बाद को इतने विस्तार और आडंबर के साथ यह क्रिया नहीं होती होगी। विश्वनाथ के साहित्य दर्पण से तो इतना स्पष्ट ही हो जाता है कि उनके ज़माने में इतनी विस्तृत क्रिया नहीं होती थी। जो हो, सन् ईसवी के पहले और बहुत बाद में भी इस प्रकार की विधि रही ज़रूर है।

अभिनीयमान नाटकों में सब प्रकार के मनोरंजक और रसोद्दीपक रूपक होते थे। शृङ्गार, वीर या करुण रस प्रधान ऐतिहासिक 'नाटक', नागरिक रईसी की कवि कल्पित प्रेम-कथाओं के 'प्रकरण', धूर्तों और दुष्टों का हास्तोत्तेजक उपस्थापन मूलक 'भाण', स्त्री-हीन, वीर रस प्रधान एकांकी 'व्यायोग', और तीन अंक का 'समवकार', भयानक दृश्यों को दिखाने वाला भूत प्रेत पिशाचों का उपस्थापक 'डिम', स्वर्गीय प्रेमिका के लिये जूझ पड़ने वाले प्रेमियों की सनसनी फैलाने वाली प्रतिद्वंदिता वाला 'ईहामृग', स्त्री-शोक की करुण-कथा-समन्वित एकांकी 'अंक', एक ही पात्र द्वारा अभिनीयभाव विनोद और शृङ्गार-प्रधान 'वीथी', हँसाने वाला 'प्रहसन' आदि रूपक बहुत लोक प्रिय थे। फिर बहुत तरह के उपरूपक भी थे, जिनमें नाटिका

का प्रचलन सब से अधिक था। यह स्त्री-प्रधान चार अंक का नाटक होता था और इसका कार्यक्षेत्र साधारणतः राजकीय अन्तःपुर तक ही सीमित था। प्रकरणिका, सट्टक और त्रोटक इसी श्रेणी के हैं। गोष्ठी में नौ, दस पुरुष और पांच या छः स्त्रियां अभिनय करती थीं, हल्लीश में एक पुरुष कई स्त्रियों के साथ नृत्य करता था। इसी प्रकार के और बहुत से छोटे मोटे रूपकों का अभिनय होता था। परवर्ती ग्रन्थों में अट्ठारह प्रकार के उपरूपक गिनाये गये हैं; उपर्युक्त उपरूपकों के सिवा नाट्य-रासक है, प्रस्थान है, उल्लाप्य है, काव्य है, प्रेंखण है, रसिक है, संलापक है, श्रीगदित है, शिल्पक है, विलासिका है, दुर्मल्लिका है, माणिका है। अचरज की बात यह है कि इतने विशाल संस्कृत साहित्य में इन उपरूपकों में से अधिकांश को उदाहरण स्वरूप समझाने के लिये भी मुश्किल से एकाध पुस्तक मिल पाती है, कभी कभी तो एक भी नहीं मिलती। ऐसा जान पड़ता है कि ये साहित्यिक की अपेक्षा लौकिक अधिक थे और सर्वसाधारण में अच्छी तरह घुले मिले हुए थे।

समय

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

जर्जर-वपुष विशाल !
महा दनुज विकराल !
भीमाकृति ! बढ़ बढ़ कबन्ध-सा कर फैलाए,
लील, दीर्घ भुजबन्ध बीच जो कुछ आ जाए।
बढ़, बढ़, चारों ओर छोड़ निज ग्रास न कोई,
रह जाए अवशिष्ट सृष्टि का ह्रास न कोई!
भर बुभुक्षु! निज उदर तुच्छतम द्रव्य-निकर से,
केवल अचिर, असार, त्याज्य, मिथ्या, नश्वर से।
सब खा कर भी हाय, मिला कितना कम तुझको,
सब खो कर भी किन्तु, घटा कितना कम मुझको?
खा कर जग का दुरित एक दिन तू मदमाता,
होगा अन्तिम हविष् स्वयं सर्वभुक् क्षुधा का!
तब भी कमल-प्रफुल्ल रहेगा शास्वत जीवन,
लहराएगा जिसे घेर किरणों का सावन।
क्या होगा आनन्द! मलिन पट मिट्टी का तज—
जिस दिन सारे प्राण तारकों से निज को सज—
आ बैठेंगे घेर देवता का सिंहासन।
लील समय! मल, कलुष कि हम पाएं नव जीवन—
—वह जीवन जिसमें न जरा, रुज, क्षय का भय है
जो निसर्गतः कालजयी है, मृत्युञ्जय है।

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की रक्षा

श्री डीटर वान डेर शलनबर्ग

मानव - सभ्यता की प्रगति में वर्णमाला का आविष्कार एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। डाक्टर हन्स बाअर के अनुसार "वर्णमाला की ईजाद मानवी दिमाग़ की सब में बड़ी सूझ है।" हमें आज यह बात बहुत सहज मालूम पड़ती है कि हमारे बच्चे वर्णमाला के गिने चुने अक्षर फ़ौरन याद कर लेते हैं और इन्हीं थोड़े अक्षरों की मदद से दुनिया की हर चीज़ लिख पढ़ लेते हैं। किन्तु यदि हम अपनी लिपि की चीनी लिपि से तुलना करें कि जिसमें अक्षरों की जगह पर लगभग पचास हज़ार निशान हैं और जिनका सीखना आसान नहीं, तब हम अपनी लिपि का महत्व समझ सकते हैं। हालाकि इन पचास हज़ार निशानों में बहुत निशानों का उपयोग नहीं होता, ताहम एक ऊंचे दरजे के विद्वान को कम से कम नौ हज़ार निशान तो जानने चाहियें और हर व्यक्ति के लिये यह कोई सहल बात नहीं है कि वह इन निशानों को या उनके समानार्थी निशानों को ज़बानी याद करले। इसलिये चीनी विद्वानों को शब्द कोष की बेहद मदद लेनी पड़ती है।"

यूरोप वालों ने सबसे पहले वर्णमाला के अक्षर रोम वालों से सीखे। रोम वालों ने यूनानियों से सीखा। और यूनानियों को फ़ोनीशियनों ने सिखाया और फ़ोनीशियनों को वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान 'कदमों' नामक एक पूर्वीय जाति के लोगों से प्राप्त हुआ। यूनानियों ने उसमें तरक़्क़ी की; उन्होंने उसमें स्वरों के निशान जोड़े और बाएं से दाहिने लिखने का रिवाज शुरू किया। डाक्टर बाअर के अनुसार यूरोप में तेरहवीं सदी ई० पू० से पहले वर्णमाला का निशान तक न था। बारहवीं सदी ई० पू० में उसका काफ़ी प्रचार हो गया था। डाक्टर बाअर लिखते हैं "हमारी लिपि ईसा से तेरह सौ वर्ष पूर्व शायद सीरिया से आई। सबसे पहले उसे भूमध्य सागर के किनारे के देशों के रहने वालों ने सीखा। पहले उसमें ख़ाली व्यञ्जन थे और वह दाहिने से बाएं को लिखी जाती थी। ख़ाली व्यञ्जन ही इस्तेमाल करने की यह वजह हो सकती है कि इस लिपि का कोनदार लिपि से निकास हुआ और कोनदार लिपि में केवल व्यञ्जन ही इस्तेमाल किये जाते हैं।" डाक्टर बाअर के अनुसार कोनदार लिपि पूर्व ऐतिहासिक काल से मिस्र में इस्तेमाल की जाती थी और इसलिये मिस्री लिपि को ही मौजूदा यूरोपियन लिपि की जन्मदात्री कहना चाहिये।*

जिस समय भी वर्णमाला ईजाद हुई यह सवाल पैदा हुआ कि लेखों को किस चीज़ पर लिखा जाय। ईसा से हज़ारों वर्ष पहले मिस्रियों ने इस काम के लिये नील नदी के किनारे पैदा होने वाले 'पेपरी' नामक एक जङ्गली पौधे को चुना। उसकी छाल छील कर और साफ़ करके फ़ीते की तरह उसकी

---

* आज से लगभग साढ़े चार हज़ार वर्ष पूर्व सीरिया में खत्ती नामक आर्य सभ्यता थी, जहां कोनदार लिपि इस्तेमाल होती थी। मिस्र की ऐतिहासिक काल की लिपि चित्रावली लिपि है। किन्तु मिस्र वाले बाबुल, मितन्नी, खतियों और फ़ोनीशियों के साथ पत्र व्यवहार में कोन लिपि ही इस्तेमाल करते थे, क्योंकि इन देशों में कोन लिपि ही रायज थी। कोनलिपि उस ज़माने की अन्तर्राष्ट्रीय लिपि थी। मिस्र की अपनी लिपि तो चित्रावलि थी। इसी से सम्भव है डाक्टर बाअर को भ्रम हुआ हो—सम्पादक।

कुण्डली बना लेते थे। फिर कई छालों को चिपका कर उसे चौड़ा कर लेते थे। ज़रूरत के मुताबिक़ ही इस पेपरी की कुण्डली बड़ी छोटी बनाते थे। इस तरह दुनिया में जो सबसे पहली पुस्तकें लिखी गईं, वे लिपटी हुई कुण्डली की शकल में। पांच हज़ार वर्ष पहले तक की इस पेपरी की पुस्तकें मिलती हैं। शुरू ज़माने की पेपरी हस्त लिपि अधिक तादाद में नहीं मिलतीं। मिस्र के मध्य साम्राज्य के बाद के, यानी ईसा के दो हज़ार बरस पहले से पेपरी पर लिखे हुए अनेक कुण्डली-ग्रन्थ मिले हैं। मिस्र में इस ज़माने में जो फेरोए सम्राट हुए हैं, उन्होंने साहित्य और विद्या को बेहद तरक़्क़ी दी थी। इस ज़माने में मिस्र में अनेक साहित्यकार और कलाकार पैदा हुए। विज्ञान और कला पर अनेक बहुमूल्य पुस्तकें इस ज़माने में लिखी गईं। इसी ज़माने में यह भी रिवाज चला कि दूसरी दुनिया में मृत व्यक्ति के इस्तेमाल के लिये पेपरी पर लिखकर धार्मिक और साहित्यिक ग्रन्थ लाश के साथ क़ब्र में रख दिये जाते थे। बहुत से पेपरी ग्रन्थों में तो सुन्दर चित्रकारी भी बनी होती थी।

आज चार हज़ार वर्ष बीत जाने के बाद भी जब हम इन पेपरी ग्रन्थों को देखते हैं, तो हमारा दिल ताज्जुब और हैरत से भर जाता है कि किस तरह मिस्री कारीगरों की चतुर उङ्गलियों ने इन काग़ज़ों को बनाया था। वास्तव में, मिस्री दुनिया के सबसे पुराने ग्रन्थसाज थे। बहुत सी कुण्डली तो मालूम होता है एक ही छाल से बनाई गई हैं और जहां कई छालें जोड़ी गई हैं, वहां तेज़ से तेज़ नज़र भी उनके जोड़ का पता नहीं लगा सकती। पेपरी का काग़ज़ पेपरी पौधे के तने की छालों से बनाया जाता था। इन छालों को पास पास रखकर तानों की तरह जोड़ देते थे। फिर उसके ऊपर छाल की एक पर्त बानों की तरह रखकर जोड़ दी जाती थी। इसके बाद उसे कुन्दी करके दबा दिया जाता था। इस तरह मज़बूत गफ़ और टिकाऊ काग़ज़ तय्यार हो जाता था। इस ख़ूबसूरती के साथ पेपरी की छालें जोड़ी जाती थीं कि कुण्डली को मोड़ने से भी वे न टूटती थीं। मिस्र में जब यूनानियों का राज था, तब क़रीब ३०० ई० पू० में बाने में पेपरी की छाल की जगह बांस का गूदा इस्तेमाल करने लगे थे। काग़ज़ बनाने के धन्धे पर राज्य का ही पूरा अधिकार था। राज्य ही धर्मगुरुओं, पादरियों, मुन्शियों और सरकारी दफ़्तरों को इस्तेमाल के लिये काग़ज़ दिया करता था। यूनानियों और रोमियों ने भी काग़ज़ों और ग्रन्थों के बारे में मिस्रियों की ही नक़ल की। उस ज़माने के यूनानी और रोमी पुस्तकालयों में कुण्डलीकार लपटे हुए ग्रन्थ होते थे और उसके लिये मिस्र में ही काग़ज़ तय्यार किया जाता था। हर ग्रन्थ में एक लेबल लटका दिया जाता था जिसमें उस ग्रन्थ का नाम लिखा होता था। कहा जाता है टालेमी के पुस्तकालय में लगभग दो लाख कुण्डलीनुमा ग्रन्थ थे। सिकन्दरिया के पुस्तकालय में चार लाख से ज़्यादा पेपरी ग्रन्थ थे। यदि आज वे ग्रन्थ सुरक्षित होते, तो संसार के ज्ञान के कोष में बेहद वृद्धि हुई होती। किन्तु सिकन्दरिया का यह विशाल पुस्तकालय रोम के सम्राट सीज़र ने जलवा डाला। मिस्र की सम्राज्ञी क्लियोपेट्रा ने लगभग दो लाख पुस्तकें देकर फिर से सिकन्दरिया के पुस्तकालय को क़ायम किया। इस पुस्तकालय को भी सन ३८९ ईसवी में आर्क बिशप थियोफ़िलास के कहने से थियोडोसियस ने जलवा कर राख कर दिया। बाद के यूरोपीय ग्रन्थकारों ने निर्लज्ज होकर इस पुस्तकालय के जलाने का झूठा इलज़ाम ख़लीफ़ा उमर के सेनापति और मिस्र के विजेता अमरू के सर मढ़ दिया। सिकन्दरिया के इस पुस्तकालय में अकेले अरस्तू के पांच सौ ग्रन्थ थे। रोमी सम्राटों के इस जङ्गलीपन से संसार को जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती।

दूसरी सदी ई० पू० में परगामन शहर में जानवरों की खालों को साफ़ करके उस पर लिखने का रिवाज शुरू हुआ। इतिहास लेखक प्लिनी के अनुसार खाल पर लिखने का रिवाज इसलिये शुरू हुआ चूंकि मिस्र के राजा ने मिस्र से बाहर पेपरी का भेजना बन्द कर दिया था। पेपरी केवल मिस्र ही में होता था

विश्ववाणी

चार हजार वर्ष पुराने मिस्री ग्रन्थ की धज्जी धज्जी अलग होगई है। डाक्टर ह्यूगो इबशर उसके इंच इंच टुकड़े को धैर्य के साथ जोड़ रहे हैं इस तरह एक एक ग्रन्थ का जीर्णोद्धार करने में कई कई वर्ष लग जाते हैं।

मिस्री पेरोए मेसास्रिस के जमाने के एक वैद्यक ग्रन्थ का एक पृष्ठ। यह ग्रन्थ करीब चार हजार साल पहले लिखा गया है। बड़े परिश्रम के बाद इसे इस तरह जोड़ कर तय्यार किया गया है।

विश्ववाणी

प्रसिद्ध ईरानी सुधारक मानी का एक ग्रन्थ जिसकी करीब करीब लुग्दी बन गई है। इसके एक एक टुकड़े को अलग करके उसकी जांच की जायगी बाद में अलग कांच के टुकड़े पर उन्हें जोड़ा जायगा ताकि उसके दोनों ओर पढ़ा जा सके।

इस ग्रन्थ के कई पन्ने साथ चिपक कर जुड़ गये हैं। इनको अलग अलग करना भी मेहनत का काम है। इतने खस्ता हैं कि छूने से ही टूट जाते हैं।

और चूंकि कागज़ की मांग बेहद बढ़ गई, जो कि मिस्र में पूरा हो सकना असम्भव था, इसलिये भी पेपरी की जगह चमड़े का इस्तेमाल शुरू हुआ। चमड़े को लोग पार्चमेन्ट कहते थे। पहली दफ़ा पेपरी की कुण्डली की जगह पार्चमेन्ट की पुस्तकें बननी शुरू हुईं, जिनका एक एक वर्क़ अलग अलग था।

विविध देशों के पुरातत्व विभागों ने जब से बाबुल, मिस्र, असुरिया आदि देशों के पुराने ग्रन्थ निकाले हैं, तब से सैकड़ों विद्वान उन लिपियों को पढ़ने, उनका मतलब निकालने, उन्हें समझने और उन्हें सुरक्षित रखने के महान कार्य में लगे हुए हैं। कोनदार लिपि, चित्र लिपि, अरामी, कुमी आदि अनेकों लिपियों की छान बीन की जा रही है। इस महान कार्य का सब से बड़ा श्रेय जर्मनी के स्टेट म्यूज़िअम के क्यूरेटर डाक्टर ह्यूगो इब्शर को है। डाक्टर इब्शर एक जिल्दसाज़ के यहां छोटी सी तनख़्वाह पर नौकर थे, किन्तु संसार को उनसे महान कार्य लेना था और आज अपनी बुद्धि और लगन के कारण सारी दुनिया उन्हें पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों की रक्षा का विशेषज्ञ मानती है।

डाक्टर इब्शर को मिस्री सरकार ने इलाहून के समय के २५० पेपरी ठीक करने और पढ़ने के लिये दिये थे। ये पेपरी बारहवें राजकुल के समय के थे। इनमें निजी इन्तज़ाम, धार्मिक कर्तव्य और फ़रमान, गृह-प्रबन्धकों के नाम पत्र, राज्य के इन्तज़ाम आदि कई विषयों के उल्लेख थे। कुछ उल्लेखों में धार्मिक आदेश भी थे। मसलन "साइरस फलां दिन निकलेगा उस दिन बलि का प्रबन्ध कर रखना।" इस उल्लेख से आजकल के सामुद्रिक शास्त्रियों ने अन्दाज़ लगाया है कि यह उल्लेख १८८० ई० पू० का लिखा है। इन उल्लेखों के अतिरिक्त और कई पेपरी पुराने साम्राज्य के समय के मिले हैं। इनमें पार्चमेन्ट के भी उल्लेख मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि पार्चमेन्ट का इस्तेमाल चार हज़ार साल पहले भी मिस्र वालों को मालूम था।

सन् १९३० में प्रसिद्ध ईरानी सुधारक मानी के लिखे २७०० पृष्ठ मिले हैं। डाक्टर इब्शर ने इनका बड़ा सफल सम्पादन किया है। इस्ताम्बूल के पुस्तकालय में भी कई पुराने ग्रन्थ थे, जिन्हें चूहों ने कुतर डाला था और जिनके किनारे सड़ गए थे, डाक्टर इब्शर ने उनके सुरक्षित रखने का उपाय और उनके सम्पादन का काम बड़ी ख़ूबी से किया। डाक्टर इब्शर ने टालेमी के एटलस का भी जीर्णोद्धार किया।

साधारण पाठक यह अन्दाज़ भी नहीं लगा सकता कि इन पुराने ख़स्ता ग्रन्थों के टुकड़े टुकड़ों को किस तरह जोड़ कर पढ़ने लायक बनाया जाता है? कभी कभी तो फटी हुई धज्जियों के ढेर को अलग अलग टुकड़े जोड़ कर उनकी ख़स्ता पर्तें अलग करना और फिर उन्हें पढ़ने लायक बनाना एक आश्चर्य जनक करिश्मा ही है। पेपरी के टुकड़ों को पुस्तक के विषय को ध्यान में रखकर नहीं जोड़ा जाता, बल्कि छालों के रेशों को और उनके मोड़ों को देख कर जोड़ा जाता है। यह काम तब और भी मुशकिल हो जाता है, जब पेपरी के दोनों ओर लेख हों। बेहद धैर्य और उत्साह की इसमें आवश्यकता होती है। डाक्टर इब्शर ने पिछले चालीस वर्ष के अपने तजरुबे से इस काम में बेहद दक्षता प्राप्त कर ली है। अमूल्य टुकड़ों को जोड़ कर उन्हें कांच में चिपका कर सुरक्षित बनाया जाता है। जो पहले कूड़े का ढेर मालूम होता है, वही इतनी मेहनत के बाद सुन्दर ग्रन्थ में बदल जाता है। अनेक देशों ने डाक्टर इब्शर का सम्मान किया है। डेनमार्क की सरकार ने सब में बड़ा सम्मान उन्हें दिया था, क्योंकि सन् १९३७ में डाक्टर इब्शर ने कार्ल्सबर्ग एकेडमी में महात्मा ज़रथुस्त्र के ज़ेन्द अवस्ता की सब में पुरानी कापी के ख़स्ता टुकड़ों को जोड़कर उसका सम्पादन किया। डाक्टर इब्शर ने उन टुकड़ों को रेशम पर चिपका कर सुरक्षित किया। इस अवस्ता के दो सौ पृष्ठ हैं और पहले जो खोई हुई निधि समझी जाती थी, उसे अब सब अच्छी तरह पढ़ सकते हैं।

उत्सव-दर्शन

आचार्य गुरुदयाल मलिक

चाँदनी रात थी। आकाश एकदम स्वच्छ था। संसार रूपे की झीनी चादर ताने चुपचाप सो रहा था। अपने घर की सीढ़ियों पर तरुणी गायिका चुपचाप और अकेली बैठी हुई थी। जो कुछ सुरीला और रंगीन है, उसके साथ इस तरुणी के दिल में एक सहज और सुकुमार संवेदना थी। अचानक शीतकाल की उत्तरी हवा ने अपना पथ बदल दिया और अपनी अलस गति से दक्षिण की ओर से बहने लगी। वह प्राण-पूरक, आनन्दमय ऋतुराज के आगमन की अग्रदूती थी! तरुणी ने उसके चञ्चल दोल और मदिर-गंध को तत्क्षण पहिचान लिया और वह गा उठी :—

"आओ, हे बसन्त, आओ!
सौन्दर्य का भी सौन्दर्य
और सीमाहीन की शोभा लेकर—
आओ, हे बसंत, आओ—
अनन्त के आनन्दलोक में
उन्मुक्त कर दो हृदय के रुद्ध कपाट!
आओ, हे बसन्त, आओ!
उत्सव के अकूल आयोजन में
अपने-पराए, शत्रु-मित्र, पास और दूर—
के सब मिथ्या भेद—
डूब जाएं—निश्चिन्ह होकर।
आओ, हे जाग्रत बसंत, आओ।"

घर के दीपक बुझ गए; गान थम गया; तरुणी विश्राम करने चली गई। उसके मुख पर स्निग्ध शांति थी और पांओं में छन्द की लय। वह जैसे इस निखिल विश्व के साथ—शाश्वत के साथ—एकतान थी। शिशिर की बूँद मानो चमकते हुए सिन्धु में मग्न हो गई थी। न जाने किस सुदूर की सुरभित श्वास बह रही थी, जिसमें दैनन्दिन जीवन की संपूर्ण व्यथा और क्षुद्रता क्षण भर के लिए डूब गई। सहसा न जाने किस लोक से आकाश को परिपूर्ण करती हुई मेघमन्द्र ध्वनि उठी—'शान्तम् शिवम् अद्वैतम्'! शांति हो, मंगल हो, हृदय से हृदय का मिलन हो!

यदि प्रकृति के विशाल प्राङ्गण में शत शत पुष्पों और तृण गुल्म लताओं के भीतर से बसंत अपना यह आध्यात्मिक सँदेसा लेकर आता है, तब अवश्य ही हमारे प्रत्येक उत्सव और त्यौहार के भीतर भी कुछ-न कुछ अर्थ और कोई-न कोई संदेशा रहता ही होगा। प्रकृति और मानव क्या एक ही जीवन-ढाल के दो पहलू नहीं हैं?

तब हमारे उत्सवों की निगूढ़ आत्मा—बाह्य देह नहीं—क्या है? मनुष्य के अंतर में जो कुछ उसका सर्व श्रेष्ठ है, उसके आधार पर मानव-मानव के बीच बन्धुत्व का सेतु निर्माण करना—यही है। और प्रेम के अतिरिक्त अन्य कौन सी वस्तु हमारी सर्व श्रेष्ठ संपद कहला सकती है? हमारे भीतर जो कुछ उदार है, जो शाहाना है, जो रोज़मर्रा की लुब्धता अथवा कृपण चेष्टा के कहीं परे है, उसी को उत्सव आकर जगा देता है। रोज़ हम प्राप्ति की नीति स्वीकार करते हैं; किंतु इस दिन हमारी वृत्ति त्याग की होती है। जिस क्षण हम अपना संचित वैभव—चाँदी के टुकड़े हों या आत्मा का धन लुटाते हैं, चाहे वह कितने ही संकुचित पैमाने पर क्यों न हो, हम उस क्षण विधाता के समकक्षी हो उठते हैं। उस समय हमारी सतर्क दृष्टि तराजू की डंडी पर ही नहीं रहती। ऐसे क्षण क्या हमें इसी बात का ज्ञान कराने नहीं आते कि यदि भगवान् को पाना हो, तो स्वयं भी

भगवान् बनना होगा; वैसा ही उन्मुक्त उदार, उतना ही अकुण्ठ दानी !

केवल यही नहीं। उत्सव के दिन (और उत्सव के दिन हमारे सम्मिलित जीवन के तिथि-पत्र में गाढ़ी लाल स्याही से ख़ूब स्पष्ट ही अंकित रहते हैं) हमारे परिचय और अभिज्ञता की सीमाएँ फैलकर बड़ी हो जाती हैं। मैत्री का घेरा विस्तृत भी होता है, गहरा भी। हमें इस सत्य की अधिकाधिक उपलब्धि हो चलती है कि हमारी आत्मा में ही प्रेम की अक्षय निधि संचित है। इस अन्तरालवर्तिनी संपदा का बोध करके, उसके दर्शन की मदिरा से बेसुध होकर हम अपनी अंतर की मानवता को पहचान पाते हैं और आनन्द में मस्त होकर नीरव किंतु निविड़ गान गा उठते हैं—'मानव मानव इसीलिए है।'

प्रभु ईसा ने कहा—मनुष्य केवल रोटी से ही जीवित नहीं है,' बात नितांत सच्ची है। इसकी सचाई का एक ताज़ा प्रमाण इन पंक्तियों के लेखक को अभी हाल में मिला, जब कि वह पास ही के एक दुर्भिक्ष-पीड़ित गाँव में था। अवसर था "नवान्न" का। "कैसा मज़ाक है"—एक तार्किक मित्र कहने लगे, "घर में अन्न का एक दाना नहीं है और मनाने जा रहे हैं नवान्न ! आदमी भी किस क़दर युक्तिशून्य होता है !" जो हो, गांव के निवासी—स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध—सभी चार दिन तक गीत और नृत्य का अटूट उत्सव मनाते रहे। ये चार दिन वे अपनी नग्न कंगाली भूलकर प्राणों के उस लोक में चले गए थे, जहां भूख, प्यास और अभाव मनुष्य को पराजित नहीं कर पाते। रोटी इस देह को पुष्ट कर सकती है, किन्तु मनुष्य की आत्मा अपार आनन्द का ही पान करके सशक्त और समाहित होती है। कदाचित इसीलिए भागीरथी के पुण्य तट पर पुण्यकाल के ऋषि का आनन्दोदात्त स्वर फूट पड़ा था—"आनन्द से ही इस विपुल सृष्टि का जन्म है; आनन्द में ही इसकी स्थिति है !" अतीत के नेपोलियन अथवा भविष्य के विश्व विजेता की सेना चाहे भूखे पेट एक क़दम भी न बढ़ सके, किन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि कलाकारों की विशाल वाहिनी युग-युग में पेट को पीठ से मिलाए शांति के उत्तुंग शिखर की ओर अक्लांत बढ़ती रही है। भूख से तड़पते हुए कोटि कोटि मानवों की जीवन-नैया को इन्हीं अपराजय शिल्पियों के आशा और विश्वास ने ध्रुव नक्षत्र के समान तरंगसकुल सागर में भी साहस और शक्ति दी है।

इसी कारण उत्सव हमारे जीवन की प्रयोग शालाएं हैं। यहां हम आनन्द की वीथिका में से गुज़रते हुए सीमित जीवन को विराट बनाने का प्रयोग करेंगे। बिखरे हुए मानवों को ऐक्य की सुकुमार पर सुदृढ़ डोर में बांध देंगे। उत्सव विश्व के साथ एक हो जाने की चेष्टा है। उन्मुक्त आनन्द ही इसकी आत्मा है। उत्सव के समय जो अकेला रहना चाहता है, वह उसके उद्देश्य को तो व्यर्थ करता ही है, अपनी भी क्षति करता है। निखिल सृष्टि को आनन्द के रस से सिंचित करने वाली सजल धारा से अपने को विच्छिन्न करने से हमारी ही हानि होगी। यदि ऐसे लोग सचमुच इस दुनियां में हैं, तो उन्हें गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टाकुर की इस वाणी का स्मरण दिलाने की इच्छा होती है:—

—"जो शिशु राजकुमारों जैसी सज्जा से आवेष्टित है, जिसके सुकुमार गले को रत्नजटित मणिमाला घेरे हुए है, वह अपने खेल का सारा आनन्द खो बैठता है। उसकी बहुमूल्य वेशभूषा पग पग पर बाधा देती है।

—इस भय से कि कहीं उसके वस्त्र उलझ कर फट न जायें अथवा धूल से मलिन न हो जाएँ, वह साथियों से दूर जा बैठता है; उसका चपल अंग सञ्चालन भी जड़ हो जाता है।

—माँ, यदि तुम्हारी यह परम मूल्यवान् सज्जा; हमें धरती की निपट-पावन, करुण सुन्दर धूलि से वंचित रखती है, यदि मानवों के विराट-उत्सव आयोजन में हमें प्रवेश नहीं करने देती, तो यह नितान्त व्यर्थ है।"

—*'गीतांजलि'*

क़ौमी निशान

'मायर' स्यालकोटी

(जनाब 'मायर' स्यालकोटी उर्दू के एक बहुत बड़े राष्ट्रीय कवि हैं और ग़ालिबन उर्दू में पहले शायर हैं, जो अपनी कविताओं में महात्मा गांधी की अहिंसा और शांतिमय तरीक़ों की तारीफ़ करते हैं। आप एक बड़े दार्शनिक और विचारक हैं। आपकी शायरी में काफ़ी गहराई और विचार है। आपने सर इक़बाल के एक ख़ास ज़माने के प्रतिक्रियावादी विचारों का खण्डन किया है। नीचे हम आपकी एक इसी तरह की कविता दे रहे हैं। पाठकों को याद होगा कि सर इक़बाल ने "बच्चों का क़ौमी तराना" शीर्षक एक कविता लिखी थी, जिसमें यह शेर था :—

तेग़ों के साये में हम पल कर जवाँ हुए हैं।
ख़ंजर हिलाल का है क़ौमी निशां हमारा॥

इस पर "मायर" साहब ने लिखा है—

हिलाले१ ख़ूंचकां२ इस दौर में क़ौमी निशां क्यों हो?
यह तेरो जांसितां३ नसीबे-दुश्मनां क्यों हो?
जो काटे सर मुसलमां का, जो चाटे खूं बरहमन का।
वो क़ौमी ख़ंजरे ख़ूंख़ार, फिर जन्नतनिशां४ क्यों हो?
करे जो हक़-परस्तों५ के बदन को ख़ून से रंगीं।
वो नामूसेनबूवत६ का जहां में पासबां क्यों हो?
वो जिसने बस्तियों की बस्तियां वीरान कर डालीं।
वो ज़ालिम पैकरे-बेदाद७ मैमारे-जहां८ क्यों हो?
रुकी अक़वामे९ आलम की हों जिसके दम से तामीरें१०।
वो इबनाये११ वतन के वास्ते रहमत निशां क्यों हो?
कमां हिन्दू की हो, मुसलिम का ख़ंजर, सिख की किरपानें।
ज़मीने चिश्ती ओ नानक में सामाने ज़ियां१२ क्यों हो?
मुहब्बत रूह मुसलिम की, मुहब्बत जां बरहमन की।
जो काटे रिश्तये-उलफ़त, वो ख़ञ्जर दरमियां क्यों हो?
निशाने ख़ंजरो, किरपां था ज़ालिम से हिफ़ाज़त का।
जो काटे भाई भाई को निशाने गाज़ियां१३ क्यों हो?
ऋषी की सरज़मीं में दरसे१४ चंगेज़ी व तैमूरी।
अयां१५ यह पस्तिये-फ़ितरत१६ मियाने क़ुदसियां१७ क्यों हो?
पयामे आशिक़ां "मायर" है उल्फ़त का मुहब्बत का।
सितम-मसलक१८ पयामे-शायरे-हिन्दोस्तां१९ क्यों हो?

---

१ चांद, २ ख़ूं टपकता हुआ, ३ जान लेने वाला, ४ स्वर्ग का निशान, ५ हसन-हुसैन से मतलब है, ६ पैग़म्बर साहब की इज़्ज़त, ७ अत्याचार की मूर्ति, ८ जहान को बनाने वाला, ९ क़ौम का बहुवचन, १० निर्माण, ११ निवासी, १२ नुक़सान, १३ बहादुर, १४ १४ सबक़, १५ ज़ाहिर, १६ स्वभाव की नीचता, १७ फ़रिश्ते, १८ हिंसावादी, १९ भारत के कवि [इक़बाल की ओर इशारा है] का सन्देश।

निग्रो संस्कृति की एक झलक

कुमारी, ज़ोरा नील हर्स्टन

इस लेख की लेखिका कुमारी हर्स्टन स्वयं एक विदुषी निग्रो महिला हैं। अपनी जाति का उन्होंने गम्भीर मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है। संसार भर के विविध पत्रों में निग्रो संस्कृति पर आपके लेख रहते हैं। हमें विश्वास है कि हम "विश्ववाणी" के पाठकों को कुमारी हर्स्टन के और लेख भी दे सकेंगे। अन्य हिन्दी पत्रों से हमारी प्रार्थना है कि वे इस लेख के प्रचार में हमारी सहायता दें—सम्पादक

यूरोप और अमरीका के लेखकों का आम तौर पर यह इलज़ाम है कि निग्रो में मौलिकता नहीं होती। किन्तु यदि कोई व्यक्ति निग्रो क़ौम का ग़ौर से अध्ययन करे, तो फ़ौरन इस बयान की झुठाई साबित हो जाती है। किसी बात की मौलिकता का दावा तो संसार की सभ्य से सभ्य कहलाने वाली जाति भी नहीं कर सकती। मौलिकता से हमारी मन्शा विचारों को एक तरतीब देने से होती है। शेक्सपीयर के जो बड़े से बड़े प्रशंसक हैं, वे भी शेक्सपीयर के मौलिक होने का दावा नहीं कर सकते। दूसरों से विचारों का क़र्ज़ लेकर उन्हें ख़ूबसूरती के साथ पेश कर देना यही शेक्सपीयर की ख़ूबी है।

यदि हम इस सिद्धान्त की बिना पर विचार करें, तो निग्रो हमें उतना ही मौलिक व्यक्ति दिखाई देगा, जितना संसार की किसी भी जाति का कोई भी व्यक्ति। वह गोरी सभ्यता के बीच में रहता है और उन्हीं के सम्पर्क में आता है; किन्तु वह जिस चीज़ को भी छूता है, उस पर अपनी छाप लगा देता है। वह अङ्गरेज़ी ज़बान बोलता है; किन्तु उसकी अङ्गरेज़ी बिलकुल अपनी है उसके भोजन बनाने का तरीक़ा जुदा है; वह अपने तरीक़े से इलाज करता है, धर्म को उसने अपने मायने पहना कर ग्रहण किया है और वह शेख़ों की तरह अपने बाल कटवाता है। ग़रज़ यह कि बग़ैर अपनी छाप लगाये, वह अन्धों की तरह कोई चीज़ स्वीकार नहीं करता।

हर शख़्स जानता है कि गोरों के वाद्य-यन्त्रों में उसने कितने सुधार किये हैं; यहां तक कि गोरों ने भी उसके सुधारों को स्वीकार कर लिया है। प्रसिद्ध निग्रो बाजनहार पाल व्हाइटमैन ने यूरोपियन आरकेस्ट्रा पर अपने सुधारों का प्रदर्शन देकर लाख लाख गोरी जनता को मन्त्र-मुग्ध बनाया है। सभ्य संसार में संगीत के क्षेत्र में निग्रो संस्कृति की यह महान देन है और हमें अपनी इस देन का गर्व है। इसी तरह आपस के आदान प्रदान से विविध संस्कृतियां सम्पन्न होती रहती हैं।

अलहदगी और एकान्तता की भावना

कहा जाता है निग्रो किसी बात में परदा नहीं करते, न अपनी कोई बात गुप्त ही रखते हैं। इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिये। हम लोग घरों से बंधे हुये नहीं हैं। खुले आकाश के नीचे रहना हमें भाता है। हमारे अन्दर बेहद आपस का प्रेम, यकजाइयत और भाई-चारा रहता है।

अफ़रीका के गांवों में कोई परदा या अलहदगी नहीं होती। आपस के प्रेम और लड़ाइयों या अधि-

कारों का फ़ैसला हम खुल्लमखुल्ला करते हैं। सारे समाज के सामने हमारी आपसी लड़ाइयों और ब्याह शादियों का प्रदर्शन होता है। हम एक अभिनेता की हैसियत से ज़िन्दगी बिताते हैं और अभिनेता को वाहवाही देने के लिये दर्शकों की ज़रूरत होती है। बग़ैर दर्शकों के नाटक का लुत्फ़ ही क्या? हम प्रकृति के अनुकूल ही जीवन बिताते हैं।

प्रकृति में एकता से अधिक विभिन्नता है। यदि हम "जो मज़बूत है वह जिये और जो कमज़ोर है वह मरे" इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लें, तो इसके लिये हमें युद्ध की प्रणाली स्वीकार करनी होगी। युद्ध को उत्तेजना देने के लिये ललकारने की ज़रूरत है और यदि कोई स्त्री या पुरुष ललकारता है तो वह इस काम को झाड़ियों की आड़ में क्यों करे? सारे समाज के सामने वह अपनी इस कला का प्रदर्शन क्यों न करे? इसीलिये हमारे झगड़े और युद्ध खुले ख़ज़ाने होते हैं। अपना गुस्सा भी निकल जाता है और लोगों का दिल बहलाव भी हो जाता है। फिर दो बराबरी के लड़ाकुओं को लड़ते हुये देखने से रोमाञ्चकारक कोई दूसरी बात नहीं।

इसी तरह प्राणि-विज्ञान के अनुसार प्रेम करना भी प्राणियों की एक महान आवश्यकता है। सारी दुनिया इस सिद्धान्त पर अमल करती है। हम निग्रो भी प्यार को सर्वोच्च कला बनाकर उस पर अमल करते हैं। इसलिये यदि कोई स्त्री या पुरुष अपने को प्रेम करने के योग्य समझता है, तो वह ख़ामोशी क्यों बरते? मर्द अभिमान से सीना ऊंचा करता है और स्त्री मादक नयनों से डग भरती है। सोहाग-शय्या को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने के लिये गीतों की रचना होती है। जिस काम को सारा समाज कला समझता है, उसमें एक व्यक्ति दूसरे से आगे बढ़ने की चेष्टा क्यों न करे?

यह हमारा एक नुक़्ते नज़र है। प्रेम और युद्ध अपनी समस्त ख़ूबियों के साथ महान कलाएं हैं। दूसरी क़ौमों में और दूसरी बातें कला समझी जाती हैं, और लोग उन पर उसी तरह अभिमान के साथ बहस करते हैं और उनका प्रदर्शन करते हैं, जिस तरह हम प्रेम और युद्ध पर। दूसरी क़ौमें इस कला का इज़हार बन्द दरवाज़ों के पीछे कानों में धीमी आवाज़ से करती हैं। हम निग्रों की नज़रों में गोरे व्यक्ति तुच्छ लड़ाके और ज़लील क़िस्म के प्रेमी होते हैं। एक निग्रो भाई ने गोरों के सम्बन्ध में चरचा चलाते हुये कहा—"बैङ्क और अदालतों में गोरे व्यक्तियों का रवइया सम्माननीय होता है, किन्तु औरतों के बीच में उनकी झूठी बातों को सुनकर लज्जा आने लगती है।"

मैंने उस भाई से इसे विस्तार से समझाने के लिये कहा। उसने जवाब दिया—"गोरे कहते हैं कि उनकी शादी की मन्शा होती है केवल उन्मादक नयनों से अपनी प्रेयसी की आंखों को निहारते रहना, जब कि वास्तव में उनकी शादी का उद्देश्य वही होता है, जो हमारा है। दूसरी बात गोरे कहते हैं कि वे प्रति-स्पर्धा में विजयी होकर ही अपनी प्रेमिका को प्राप्त करते हैं। यह सरासर झूठ है। वे उन्हें प्रतिस्पर्धा में नहीं प्राप्त करते, बल्कि धन से ख़रीदते हैं। शादी के बाद हमारी औरतें हमारे साथ जुट कर मिहनत करती हैं। गोरे जब शादी करते हैं, तो उन्हें यही नहीं मालूम होता कि वे अपनी पत्नियों से क्या काम लें और इन्हें कैसे खुश रखें? इसीलिये वे उन्हें तरह तरह के उपहार दे कर नाच गानों में लगाये रहते हैं। उनका जी बहलाना ही उनके जीवन का उद्देश्य हो जाता है। उनकी पत्नी उनके जीवन की सच्ची साथी नहीं रह जाती। जब कि हमारी स्त्रियां दिन भर के काम के बाद थकावट से चूर होकर हमारी बाहों पर सर रख के गहरी नींद में सोती हैं। मगर गोरी औरतों को यह नींद कहां नसीब? यह सब गोरे मर्दों का क़ुसूर है। सच तो यह है कि औरतों के मामले में ये गोरे मर्द बिलकुल भोंदू और मूर्ख होते हैं।"

नाटक और रंगमंच

निग्रो जीवन के हर पहलू को नाटक में उतारा गया है। उनके नाटकों में सुख और दुःख दोनों का

चित्रण मिलेगा। उन्हें हर बात का अभिनय करना आता है। उनके जीवन की एक एक घड़ी कार्य-क्षमता से भरी होती है। जिन लोगों के पास भाषा का भंडार है, उनके पास बिखरे विचारों को भी व्यक्त करने के शब्द हैं, जैसे जिस पर बैठते हैं, उसे व्यक्त करने के लिए 'कुर्सी' शब्द है, जिससे शरीर छिद कर कष्ट पहुंचे, उसके लिए 'बर्छी' शब्द है। कोई कोई शब्द मूर्तिमान विचार होते हैं। किन्तु आदिम निवासी हर शब्द को फैला कर कहता है। उसके शब्द विचारों पर ठीक तरह चस्पां होते हैं। जैसे निग्रो कुल्हाड़ी नहीं कहेगा, वह कहेगा 'लकड़ी चीरने वाली कुल्हाड़ी', उसी तरह कुर्सी नहीं कहेगा, कहेगा 'बैठने वाली कुर्सी'। ऐसे ही पकाने के बर्तन, खाने के बर्तन और हाथ धोने के बर्तन। बग़ैर विशेषण के उसकी संज्ञा नहीं चलती। निग्रो केवल शब्द को नहीं, पूरे विचार को ग्रहण करता है। संसार की दूसरी सभ्य जातियां लिखी हुई भाषा में सोचती हैं, पर निग्रो के शब्दों के पीछे उस वस्तु का चित्र आजाता है।

क्या आपने सड़क के कोने पर खड़े हुए किसी निग्रो नव-युवक को नहीं देखा? उसके पास है ही क्या? केवल फटे कपड़े, भरी जवानी और अदम्य शक्ति। क्या वह आप को भिखमगे की तरह लगता है? नहीं! सम्राट १४ वां लुई भी उससे अधिक धनी न दिखाई देगा। उसकी आंखों से साफ़ टपकता है—"स्त्री—रुक!" उसके तर्ज़ से ज़ाहिर होता है—"ऐ स्त्री मैं ही जीवन-दाता अनन्त पुरुष हूं! मेरे गरम लहू में संसार का सर्वोच्च सुख सन्निहित है। मुझे प्रणाम कर! मैं ही साकार शक्ति हूं।" और इसे कहने के लिए शब्दों की ज़रूरत थोड़े ही है। यदि आप मन्द-बुद्धि नहीं हैं, तो उसे देख कर ही ये सारे विचार आप के दिमाग़ में घूम जायेंगे।

निग्रो युवती को मालूम होता है, संसार का सम्पूर्ण यौवन ही उत्तराधिकार में मिला है। अपनी गोरी बहिनों की तरह उसे हाव भाव और नाज़-नख़रे नहीं आते। किन्तु उसकी सारी देह ही मानों यौवन की पींग भरती है। जब कभी वह कन्धे हिलाती है, तभी केवल उसके उन्नत उरोजों की हलचल आप देख सकते हैं। उसके डगों में आत्मविश्वास होता है और उसका हर क़दम मानों कहता है—"मैं ही संसार की मनोहरिका प्रेयसी हूं!" उसका दर्शन साकार यौवन का साक्षात्कार है।

हज़ारों शहरों की दर्जनों सड़कों में प्रतिदिन ये चलते-फिरते नाटक होते रहते हैं। और उसके वास्तविक अर्थों में किसी को संशय नहीं रह जाता।

सजावट की भावना

निग्रो की बात चीत और उसके रहन सहन में सजावट की भावना ओतःप्रोत होती है। उसे गहनों का शौक नहीं है। न वह दूसरों को दिखाने के लिये सजावट पसन्द करता है। अपनी आत्मा का सन्तोष ही उसका प्रमुख उद्देश्य होता है। जहां तक भाषा का सवाल है, निग्रो ने अंग्रेज़ी ज़बान को बेहद अलंकृत किया है। उसने कोई अफ़्रीकन शब्द अंग्रेज़ी ज़बान में नहीं मिलाए। अंग्रेज़ी ज़बान में ही सुधार करके उस पर अपनी छाप लगा दी है। आज उसके गढ़े हुए सैकड़ों शब्द सारी दुनिया में अंग्रेज़ी भाषा-भाषी इस्तेमाल करते हैं। उसने बहुत से कर्णकटु और करीह शब्दों को कोमल और मृदु बनाया है। साधारण निग्रो के घरों में उनके कमरों की दीवारें चमकदार तस्वीरों, पक्के रंग के कलेण्डरों और इश्तहारी चित्रों से सजी रहती हैं। यूरोप और अमरीका वाले इश्तहारी चीज़ों से घरों को सजाना बहुत बुरा समझते हैं। किन्तु निग्रो के दिल पर न तो कलेण्डर और न इश्तहारी चीज़ें ही कोई बुरा असर डालती हैं। वह पोर्टलैण्ड सीमेंट के कलेण्डरों से भी अपनी कला-भावना को सन्तोष दे लेता है। यह सब भद्दा और तुच्छा मालूम होगा; लेकिन इसके पीछे कला के सौन्दर्य को देखने की भावना है। हम में से हर एक की कला के सम्बन्ध में अलग अलग रुचि है; और हम सब अपनी अपनी कला के दावेदार हैं। इसीलिए कोई दूसरा व्यक्ति न्यायाधीश बन कर निग्रो-कला को भला बुरा कहने का अधिकार नहीं रखता।

निग्रो जो कुछ करता है, वह अपने वातावरण के सौन्दर्य को बढ़ाने की ही ग़रज से करता है। उसकी धार्मिक प्रार्थनाएं गद्य काव्य के सुन्दर नमूने हैं। ईसाइयों की प्रार्थनाओं और उपदेशों को उसने इतना मांजा और निखारा है कि वे बिलकुल उसकी अपनी वस्तु बन गई हैं। गोरों की प्रार्थना उनके व्यवहार को देखते हुए उपहासास्पद लगती है। निग्रो की प्रार्थना उसके अन्तर से निकली हुई प्रभु की पुकार है; और हमारा यह दावा है कि तौरात की प्रार्थनाओं से हमारी प्रार्थना में कम सौन्दर्य नहीं है।

छन्द-भंग और गति-भंग

सजावट के बाद जो दूसरी विशेष बात निग्रो में है, वह है उसका गति-भङ्ग। जिस चीज़ को वह छूता है बीरानापन मिटाकर उसमें नोकीलापन पैदा कर देता है। यदि आप अफ्रीका की निर्माण कला को देखें, तो उसमें सीधी सपाट चीज़ों के बजाय क्रंगूरों पर क्रंगूरा लदी चीज़ें मिलेंगी। उसकी हर कृति से रहस्य प्रकट होता है। उसके धार्मिक सिद्धान्तों में भी रहस्यवाद की पुट रहती है।

निग्रो नृत्य-कला संगीत की एक ही थाप पर देर तक नहीं चलती। पग-ध्वनि निरन्तर बदलती रहती है। 'पोज़' और 'पास्चर' हर क्षण बदलते रहते हैं। जिन्होंने निग्रो-नृत्य देखा है, वे जानते हैं कि उनकी हर गति-विधि एक दूसरे से भिन्न होती है। इससे नृत्य का सौन्दर्य भी बढ़ता है। यूरोपियन इसी भिन्नता को बचाता है, किन्तु निग्रो इसी भिन्नता में से सामञ्जस्य पैदा करता है।

निग्रो अपने घरों में तसवीरें हमेशा कोने में टांगेगा। फ़र्नीचर भी टेढ़ा रखा हुआ मिलेगा। वह हमेशा सीधी लकीर बचाता है। सिमेट्री और सन्तुलन को वह पसन्द नहीं करता। उसकी कविताओं में एक पंक्ति की मात्राओं से दूसरे पंक्ति की मात्राएं अधिक मिलेंगी।

सिमेंट्री के अभाव के कारण ही गोरी क़ौमों को निग्रो-नृत्य सीखने में कठिनाई होती है। झटके के साथ अनिश्चित रूप में उनकी नृत्य-थाप और नृत्य-गति बदल जाती है। उनके संगीत की लय और तान भी स्वर और रागिनी की दासी नहीं। उनके संगीत की हर लय मुक्त और स्वच्छन्द होती है। कहा जाता है सिमेंट्री के बग़ैर लय नहीं पैदा हो सकती। किन्तु निग्रोने इसे सम्भव करके दिखा दिया है। भानमती के कुनबे में वह सामञ्जस्य और लय पैदा करता है। उसके संगीत के हर टुकड़े में स्वतन्त्र लय और स्वतन्त्र गति होती है।

निग्रो-नृत्य

निग्रो-नृत्य में ज़बरदस्त सुझाव की भावना भरी होती है। देखने वाले को वह भले ही विकराल और उग्र दिखाई दे, किन्तु नृत्य की हर गति से दर्शक को मालूम होता है कि नर्तक या नर्तकी इसके बाद और कुछ इज़हार करेंगे। दर्शक मन्त्र-मुग्ध की तरह उसकी गति-विधि में अपनी कल्पना से रंग भरता है और अपने मनमें भावुक कथानक तय्यार करता रहता है।

गोरों और निग्रो की नृत्य-कला का ज़ाहिरा फ़र्क़ यह है कि गोरा नर्तक अपनी समस्त भावनाओं को व्यक्त कर देता है और निग्रो कुछ को व्यक्त करता है, कुछ रहस्यपूर्ण रखता है और दर्शक की कल्पना को भी अन्दाज़े का मौक़ा देता है। यही सफल कला का मूल रहस्य है; इसीलिए निग्रो गोरों की अपेक्षा श्रेष्ठ और सफल कलाकार है।

निग्रो ग्राम-साहित्य

निग्रो ग्राम-साहित्य किसी पुराने ज़माने की बीती बात नहीं है। वह अब भी निर्माण हो रहा है। उसकी विचित्रता निग्रो दिमाग़ की सूझ और उसकी दिमाग़ी सम्पन्नता ज़ाहिर करती है। नई, पुरानी, देशी, विदेशी, छोटी, बड़ी हर बात को वह अपने ग्राम-साहित्य में स्थान देता है। ईश्वर और शैतान, राकफ़ेलर और फ़ोर्ड, बुद्धिमान और मूर्ख, सब को उसके कहानी साहित्य में यकसां स्थान प्राप्त है। उसकी कहानियों में फ़रिश्ते और सन्त साधारण आदमियों की तरह

गहरी नींद में सोया एक निग्रो

इस लेख की लेखिका
कुमारी ज़ोरा नील हर्स्टन

प्रसिद्ध निग्रो नर्तक बिल राबिन्स

प्रसिद्ध निग्रो कलाविशारद श्रीमती एथेल वाटर्स

न्यूयार्क के एक पार्क में धूप लेते हुए निग्रो युवक

निग्रो चित्रपट का एक दृश्य

एक निग्रो वीर

बातें करते और घूमते हैं और उन सब के बीच में विचरण करता है जैक नामक एक निग्रो-नायक, जो शैतान से भी अधिक चतुर है। कहानियों में जैक के बाद चतुराई में शैतान की बारी आती है। शैतान के मुक़ाबले में ईश्वर बेचारा तो कहीं ठहरता ही नहीं। निग्रो कहानियों में शैतान को दयालु और परोपकारी कह कर बयान किया गया है, जो मुसीबतों में लोगों को मदद देता है।

शैतान के बाद सन्त पीटर महत्वपूर्ण नायक समझा जाता है। सच पूछा जाय तो निग्रो दरअसल ईसाई है ही नहीं। उसके अपने पुराने देवताओं की जो कल्पना है, उसके अनुसार वे अपने भक्तों की कल्याण कामना में दिन रात मशग़ूल रहते हैं, अपने भक्त का वे उतना ही ध्यान रखते हैं, जितना कि भक्त उनका! प्रमुख ईसाई सन्तों में पीटर ही सब में ज़्यादा कार्यशील है; इसीलिये वह निग्रो कल्पना को अपील करता है।

ख़रगोश, भालू, शेर, लोमड़ी आदि की भी निग्रो कहानियों में काफ़ी चर्चा है।

"जूक"

निग्रो अपने क्लब को 'जूक' कहते हैं। वहीं उनके नृत्य, गान और नाटक होते हैं। निग्रो स्टाइल के गानों को 'जूक' के ही कारण 'जूकिंग' कहते हैं। इसी 'जूक' से ही निग्रो नृत्य और गायन सारी दुनिया में फैले हैं। निग्रो के सामाजिक नृत्य की पग-ध्वनि धीमी होती है। हलकी हलकी पग-ध्वनि एक समां बांध देती है। इससे ग़ज़ब की काम-भावना पैदा हो जाती है। जब पुरुष, स्त्री, समय और स्थान एक जगह एकत्रित हो गये तब उसे रोकने की चेष्टा कौन करे? उसके प्रत्यक्ष प्रभाव को कौन मेट सकता है। हलके हलके प्यार के उच्चारण लपट पर लपट की पुट चढ़ाते जाते हैं।

निग्रो के इस सामाजिक नृत्य का भी सारी दुनिया में प्रचार हुआ। निग्रो जूक के एक नाटक का कथानक है एक गोरी बीवी अपने पति के साथ सो रही है। पति उसे जगा देता है। पत्नी पूछती है—"प्रियतम! तुम्हें मालूम है तुम्हारे जगाने से पहले मैं क्या सपना देख रही थी?" पति उत्तर देता है—"नहीं प्रिये! बताओ क्या देख रहीं थीं?" पत्नी कहती है—"मैंने तुम्हारे लिये स्वादिष्ट भोजन बनाया और तुम्हारी गोद में बैठकर उसी प्लेट से खाते हुये तुम्हें प्यार कर रही थी और तुम्हारा चुम्बन ले रही थी और तुम कितने मधुर लग रहे थे।"

फिर एक निग्रो स्त्री को एक निग्रो पति जगाता है। स्त्री पति के बाल पकड़ कर झकझोर डालती है। जब शान्त होती है, तो कहती है—'तुझे पता है मैं क्या सपना देख रही थी?' निग्रो कहता है—'नहीं प्रियतमे! क्या सपना देख रहीं थीं?' 'मैं देख रही थी कि तुम मेरी नाक के ऊपर अपना गन्दा घूसा घुमा रहे थे और मैंने कुल्हाड़ी से तुम्हारे सर के दो टुकड़े कर दिये।'

किन्तु इस नाटक के कथानक के बावजूद भी निग्रो युवक और युवतियां काम धन्धा करते हुये प्रेम-गीत गाते हैं। लकड़ी चीरते हुये एक निग्रो गाता है—

वह कलूटी लड़की बराबर भुनाई रहती है,
नई जूती लाओ, नई जूती लाओ,
मैं उसे नई जूती और नये मोज़े ख़रीद दूंगा
और स्लिपर भी, हां स्लिपर भी!

फिर आगे की कड़ी गाता है—

बेरी जितनी काली होगी, रस उतना ही मीठा होगा!

सच तो यह है कि काली निग्रो लड़की की शक्ति अब भी अखण्ड है और उसकी कृपाकांक्षा प्राप्त करने के लिये अब भी भीषण संघर्ष होता रहता है। सैकड़ों गोरे नाटककार और सिनेमा एक्टर निग्रो कथानक पर अपने नाटक को सजाते हैं।

सदियों के अत्याचार और कष्ट निग्रो की आत्मा और उसके स्वभाव को निस्तेज नहीं बना पाये। अब निग्रो अपने आपको समझने लगा है। उसे अपनी क़ौम, अपनी सभ्यता और अपनी संस्कृति पर गर्व है। यदि उसे अवसर मिले, तो सभ्यता की दौड़ में वह गोरों को कहीं पीछे फेंक देगा, क्योंकि उसमें अदम्य उत्साह और अमिट जीवन है।

धर्म बदलना

——:o:——

श्री रघुवीरशरण दिवाकर, बी० ए०, एल-एल० बी०

मनुष्य कहलाने वाला प्राणी अहंकार का उग्र पुजारी है। उसे यदि अहंकार का पुतला कहा जाय, तो भी शायद अत्युक्ति न हो। अहंकार से पैदा हुए व्यक्ति वाद—"अहमेव न द्वीतीयः—" की भावना इतनी प्रबल है कि वह उसमें ही अपने पृथक अस्तित्व की सार्थकता समझता है। यह अहंकार की भावना उसके समष्टिवाद को भी दूषित कर डालती है। ज्यों ज्यों वह समष्टिवाद की तरफ़ आगे बढ़ता जाता है—क्यों कि उसे ज़िन्दा रहने के लिए बढ़ना पड़ता है—त्यों त्यों वह इस अहंकार की भावना को भी फैलाता और बढ़ाता जाता है; क्यों कि वह कभी भी उससे पूरी तरह अपना पिंड छुड़ाना नहीं चाहता, और इस दिशा में वह जान बूझ कर इस तरह पैर बढ़ाता है कि यह भावना किसी भी हालत में इतनी विस्तृत नहीं बनने पाती, जिससे उसका प्रभाव शून्य में विलीन हो जाय।

मनुष्य इस के फलस्वरूप घृणा, साम्प्रदायिकता, पक्षपात, द्वेष, कलह आदि अनेक दोषों का घर बनकर सर्वनाश की ओर बढ़ने लगता है। वह अपने ही कुल, जाति, सम्प्रदाय या मज़हब को सर्वोपरि मानकर घोर अनर्थ कर डालता है। अर्थ का भी अनर्थ कर डालता है। उसका 'मैं' ही नहीं 'मेरा' भी जब विशेष नाम रूपादि और ख़ास ख़ास नियमों और रूढ़ियों में अपने को क़ायम करता है; तब वह अपने चारों ओर अहमिका को अधिक से अधिक आश्रय देकर अपनी कुत्सित पिपासा को शान्त करने की अत्यन्त अशान्तिमय धृष्टता करने लगता है। वह मज़हब के क्षेत्र में इस धृष्टता का इतना नग्न अभिनय करता है कि यदि निर्लज्जता भी उस अभिनय को देखले, तो लज्जा के भार से दब जाय। धर्म-परिवर्तन की समस्या इसी अभिनय की एक अदा है।

किसी मज़हब को ले लीजिये। हर मज़हब के अनेकानेक अनुयायियों में धर्मान्धता कूट कूट कर भरी हुई है। ईसाई पादरी जनता में ईसाई मत की महिमा का गान करते हैं; मुसलमान मौलवी इसलाम की और आर्य समाजी वैदिक धर्म की तारीफ़ों के पुल बाँधते हैं। इतना ही नहीं एक दूसरे की निन्दा भी करता है और उस निन्दा में अपने धर्म की प्रशंसा समझने की नासमझी प्रदर्शित करता है। नतीजा यह है कि कलह और द्वेष की भट्टी सुलगने लगती है और धर्म के नाम पर अधर्म की उपासना में तल्लीन होकर मूढ़ मदोन्मत्त मानव समाज अनन्त अन्धकार में अपनी मानवता को ढकेल देता है। यह द्वेषाग्नि सभी मज़हब वालों को झुलसा कर पागल बना देती है। उनमें परस्पर प्रतियोगिता का बाज़ार गर्म हो जाता है। हर आदमी दूसरे मज़हब वाले को अपने मज़हब का अनुयायी बनाना चाहता है और इसके लिये यथाशक्ति अनुचित उपायों का भी सहारा लेने में संकोच नहीं करता। उसे उस व्यक्ति के उद्धार की इतनी चिन्ता नहीं, जितनी अपनी अहंकार-पिपासा को शान्त करने की। यदि कोई ग़ैर ईसाई चरित्रवान है, कर्त्तव्य में पवित्र है, नैतिकता का

पुजारी है, तब भी ईसाई पादरी यही चाहेगा कि वह ईसाई हो जाय। यदि किसी को अपने मज़हब का अनुयायी बनाने के लिये आर्थिक सहायता देने की या कैसे भी अनैतिक साधनों की आवश्यकता होती है, तो इसे पूरा करना भी ठीक समझा जाता है। नैतिकता अनैतिकता की उपेक्षा पर ही धर्म-परिवर्तन के अन्दोलन का आधार है—हर मज़हब यह दावा करता है कि उसको अपनाने ही कोई भी अपने जीवन को पवित्र या नैतिक बना सकता है, मानों उसके सभी अनुयायी पवित्र हों और बाक़ी सब अपवित्र। कौन नहीं देखता है कि हर मज़हब के अनुयायियों में नैतिकता के पुजारी भी हैं और अनैतिकता के भी। किसी भी मज़हब का आश्रय लेकर कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में अधिकाधिक उन्नति कर सकता है। अपने जीवन को उच्च, पवित्र और आदर्श बना सकता है। साथ ही जो अपने मज़हब का दुरुपयोग करेगा, उसके उपदेशों की अवहेलना करेगा, उसके नैतिक नियमों पर लात मारेगा, वह अपने जीवन को अनैतिक और अपवित्र बनाकर पतन का आह्वान करेगा। जब हर मज़हब की यही हालत है, तब यह धर्म परिवर्तन का भूत लोगों के सिर पर क्यों सवार है? यदि मनुष्य-जीवन को पवित्र व उच्च बनाना ही लक्ष्य है, तो क्यों अपने अपने मज़हब के सदुपयोग पर उचित व आवश्यक ज़ोर नहीं दिया जाता? क्यों नैतिकता, सच्चरित्रता, पवित्रता का सङ्गीत नहीं सुनाया जाता? जो नैतिक सिद्धान्त सभी मज़हबों में समान या भिन्न रूपों में पाये जाते हैं, उनका आश्रय लेकर मनुष्य के दोषों को दूर करने का आन्दोलन क्यों नहीं किया जाता?

धर्म-परिवर्तन का आन्दोलन सर्वधर्म समभाव के अमूल्य सत्य सिद्धान्त को भयङ्कर आघात पहुंचता है। जब कोई व्यक्ति एक मज़हब छोड़कर दूसरे मज़हब से जा चिपटता है और सर्वधर्म समभावी इस परिवर्तन की निन्दा करता है, तो साम्प्रदायिक लोग यह कह कर कि सर्वधर्म समभावी हर मज़हब को समान समझता है, इसलिये उसको यह परिवर्तन आपत्तिजनक न होना चाहिये, उस निन्दा की निन्दा करने लगते हैं। किन्तु क्या किसी व्यक्ति का एक मज़हब से दूसरे मज़हब में जाना सर्वधर्म समभाव पर कुठाराघात नहीं है? क्यों एक मज़हब को छोड़कर दूसरे मज़हब में प्रवेश किया गया? क्यों एक को त्याज्य और दूसरे को ग्राह्य समझकर एक को दूसरे से नीचा दिखाने का अशुद्ध प्रयत्न किया गया? इस परिवर्तन ने सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त पर प्रहार किया—इसलिये यह निन्दनीय है। और जब इस परिवर्तन का आधार नैतिकता से वञ्चित हो, तब तो यह और भी अधिक निन्दनीय हो जाता है।

इस धर्म-परिवर्तन के भूत ने अनेकों को उनकी स्वार्थ पूर्ति में सहायता दी है। बहुतों ने तो इसे अपना व्यवसाय बना रखा है। अपने अहङ्कार रूपी दाद को खुजलाने में जनता को मज़ा आता है, इसी-लिये वह ऐसे लोगों द्वारा उसे खुजलाती और चैन का अनुभव करती है, जिसका नतीजा अन्त में अधि-काधिक बेचैनी के सिवा और क्या हो सकता है? यह कहना कि यदि एक व्यक्ति अपने मज़हब के दोषों से ऊब कर दूसरे मज़हब की शरण ले, तो क्या हर्ज़ है? सरासर भ्रमपूर्ण है। ऐसा कौनसा मज़हब है, जिसमें दोष नहीं आ गए हैं, अपने मज़हब के दोषों को ठुकरा कर उसके सात्विक रूप में ही असीम श्रद्धा क्यों न रखी जाय? क्यों न अपने मज़हब के विकारों को दूर करके उसके शुद्ध स्वरूप में भक्ति-भावना रखी जाय?

महात्मा टालस्टाय ने अपने धर्म श्रद्धा के सम्बन्ध में कहा था—

"हम ईसा मसीह के धर्म को मानते हैं; परन्तु अप्रमाणिक और अस्पष्ट बातों में हमारा विश्वास नहीं है। हमारा धर्म इस संसार में सुख की प्रतीक्षा करने वाला नहीं। हमारा सिद्धान्त है कि धर्म के द्वारा मनुष्य मात्र में एकता स्थापित की जाए।" यह दृष्टिकोण कितना उपयोगी है। यदि ऐसे ही उपयोगी दृष्टिकोण से अपने मज़हब के प्रति भक्ति रखी जाय, तो क्या ही अच्छा हो। अपने अपने

मज़हब के दोषों को हटाकर, उसके सात्विक स्वरूप का गहरा उपयोग किया जाय, तो धर्म परिवर्तन की आवश्यकता ही क्या रह जाय। मज़हबों में जो परस्पर भिन्नता या विरोध दीखता है, उसका कारण केवल उनमें आये हुये विकार हैं। प्रत्येक मज़हब धर्म-तत्व का एक विशेष रूप है। उसके दोषों को हटाकर मज़हबों में धर्म-तत्व विशुद्ध अवस्था में पाया जाता है।

विश्ववंद्य महात्मा गांधी ने धर्म-परिवर्तन के सम्बन्ध में कहा था—

"एक ईसाई या एक हिन्दू की यह इच्छा क्यों होती है कि दूसरे को अपने मज़हब का अनुयाई बनाए। यदि हिन्दू नेक और ईश्वर भक्त है, तो ईसाई क्यों उसकी सच्चरित्रता से सन्तुष्ट नहीं है? यदि मनुष्य की नैतिकता के प्रति उपेक्षा-भाव है, तो गिरजाघर, मसजिद या मन्दिर में अमुक पद्धति से उपासना करने का प्रश्न निरर्थक है। निरर्थक ही नहीं व्यक्तिगत व सामाजिक उन्नति में बाधक है। किसी विशेष पद्धति या रीति पर ज़ोर देने से हिंसात्मक कलह-युद्ध और हत्याकांड होने की संभावना है। और इसका नतीजा धर्म और परमात्मा में अविश्वास ही हो सकता है।"

धर्म-परिवर्तन का आन्दोलन धर्म को रसातल में पहुँचाने वाला है। जिसके सिर पर यह भूत सवार है, उसका सर्वनाश निश्चित समझिए। जो लोग धर्म का मर्म नहीं समझते, वे ही इस बला को निमंत्रित करते हैं। महात्मा कबीर ने संक्षेप में ठीक ही कहा है—

"हिन्दू कहैं राम मोंहि प्यारा, तुरुक कहैं रहिमाना।
आपस में दोउ लरि-लरि मूये, मरम न काहू जाना॥"

इस सब संकीर्णता को दूर करने के लिये सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त का अधिकाधिक प्रचार ज़रूरी है। हर विवेक-प्रेमी का कर्त्तव्य है कि वह सच्चे अर्थों में सर्व-धर्म-समभावी बनकर संकीर्ण सम्प्रदाय वादियों को सर्व-धर्म समभावी बनाए। इसी में मानव का और मानव-जाति का कल्याण है।

भाग रहे हैं जीवन के क्षण

श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा

हँसता प्रात अभी था आया,
सौरभ कलियों में न समाया,
ढुलक पड़े मधुघट रीती ही रही सुधा पीने को चितवन!
धधक उठी दुपहर यौवन की,
भभक उठीं साधें तन-मन की,
क्षार हुई लपटों से बुझ जल पाया भी न देर तक जीवन!
श्रान्त शिथिल सन्ध्या के भी स्वर,
भर न सके पीड़ा से अन्तर,
छिपा सकेगी निशि भी काले आँचल में न हमारे दृग-कण!
फिर क्यों तुम ही निश्चल होकर,
बन गतिहीन गये, गति देकर,
आज बनालो बाँध पलों को, जन्म जन्म को चिर-स्थिर नूतन!
भाग रहे हैं जीवन के क्षण!

आज़ाद हिन्दुस्तान में न फ़ौज होगी न हथियार होंगे

श्री मञ्जूरअली सोख़्ता

(३)

इख़लाक़ी यानी नैतिक दृष्टि

नित्य परिवर्तन संसार का एक अटल नियम है। विश्व की हर चीज़ बराबर बदलती रहती है। जानवरों में सिर्फ़ वे जातियां ही ज़िन्दा रह सकती हैं, जो अपने आस पास की बदली हुई हालत, आबहवा वग़ैरह के साथ साथ और उसके मुताबिक़ अपने को भी बदलती रहती हैं। जब कभी किसी पशु जाति के आस पास की हालत ज़्यादह तेज़ी के साथ बदलने लगती है और वह जाति उतनी तेज़ी के साथ अपने को नहीं बदल पाती, तो वह जाति कमज़ोर होने लगती है और घटने लगती है। और अगर नई ज़रूरत के मुताबिक़ उसका बदलना बन्द हो जाता है, तो मिट जाती है। साइन्स (बायोलाजी) ने इस बात को पूरी तरह साबित कर दिया है कि दुनियां के तमाम जानवर इस नियम के मातहत हैं। साइन्स के सब विद्वान इस बारे में एक राय के हैं।

इससे पहले के लेख में हमने दुनिया की इस समय की हालत पर एक नज़र डाली थी। हमने देखा था कि दुनिया का वह निज़ाम या व्यवस्था, जिसके सहारे दुनियां क़ायम है, बिल्कुल उलट पुलट हो गई है और इन्सानी दुनियां अपनी हालत में वह तब्दीलियां नहीं कर पा रही है, जिनके बिना उसका ज़िन्दा रहना नामुमकिन है।

यूरोप के अन्दर फ़ौजों और हथियारों के बे इन्तहा बढ़ जाने से दुनिया के ऊपर दो तरह की मुसीबतें आ गई हैं। एक तरफ़ तो ख़ुद यूरोप को एक "बढ़ते हुए तपेदिक़" ने आ घेरा है, जो यूरोप के फेफड़ों को तेज़ी के साथ गलाए डाल रहा है, और सारी यूरोपीय सभ्यता को टुकड़े टुकड़े करके ख़त्म किये डालता है। दूसरी तरफ़ एशिया को एक ऐसे नाग ने जकड़ रक्खा है, जिसके लपेटों से छुटकारा पाने के लिये एशिया की क़ौमें तड़प रही हैं; लेकिन यह नाग उन्हें बेबस किये हुए है और उनकी सारी ताक़त और उनका सारा ख़ून बेदर्दी के साथ चूस रहा है। मालूम होता है कि एशिया और यूरोप दोनों आख़िरी साँस ले रहे हैं और दोनों मौत का इन्तज़ार कर रहे हैं।

सच यह है कि यूरोप और एशिया दोनों की नैतिक और भौतिक शक्तियों का वह सामंजस्य, जो क़ौमों को संभाले और ज़िन्दा रखता है, बुरी तरह बिगड़ गया है। यूरोप का इसलिये क्योंकि उसकी ज़बरदस्त माद्दापरस्ती, उसके जड़वाद और अनीश्वर वाद ने यूरोप की पाशविक शक्ति को बेतहाशा बढ़ा दिया है। एशिया का इसलिये क्योंकि उसकी राजनैतिक और आत्मिक कमज़ोरियों को एक तो उसके यूरोप के साथ सम्पर्क ने और दूसरे उसकी अपनी पुरानी धार्मिक और नैतिक कुरीतियों ने बेहद बढ़ा दिया है।

इङ्गलिस्तान का मशहूर विद्वान् ऐच० जी० वेल्स लिखता है—"क्या यह मुमकिन है कि मनुष्य समाज अपने जिस्म, अपने दिल और अपने दिमाग़ पर फिर से क़ाबू हासिल करले, या परस्पर नाशकारी हिंसा की तरफ़ मनुष्य का इस घातक तरीक़े पर घूम पड़ना तमाम इन्सानी क़ौम के ख़ात्मे का सन्देश है?" यही सवाल आज क़रीब क़रीब हर मनुष्य के

दिल में पैदा हो रहा है, लेकिन उसका कोई सन्तोष जनक उत्तर नहीं मिलता। हमारा कहना है कि हिन्दुस्तान की अहिंसात्मक तहरीक ही इस सवाल का एक मात्र ठीक ठीक जवाब है। अपने इस दावे पर और अधिक रोशनी डालने से पहले जरूरी है कि हम इस सवाल की पूरी गहराई को समझने और उस पर हर पहलू से नज़र डालने की कोशिश करें। इससे पहले के लेखों में हमने आजकल की हालत के ऐतिहासिक और राजनैतिक कारणों को समझाने की कोशिश की थी। इस लेख में हम इख़लाक़ी यानी नैतिक कारणों पर एक निगाह डालना चाहते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि ऊपर के सवाल की असली जड़ें नैतिक क्षेत्र में ही मिलेंगी। दुनिया को इस समय जितनी ज़्यादह ज़रूरत अपनी राजनैतिक ज़िन्दगी को फिर से ठीक करने की है, उससे कहीं ज़्यादह ज़रूरत अपनी इख़लाक़ी ज़िन्दगी को फिर से दुरुस्त करने की है। बदक़िस्मती से हमारे विचार इतने बदल गये हैं कि ज़िन्दगी के इख़लाक़ी पहलू का हम कोई महत्व ही नहीं समझते और न उस तरफ़ हमारी निगाहें जाती हैं। इसलिए इन्सानी जीवन के नैतिक पहलू को पूरी तरह सामने लाने के लिये हमें इसे ज़रा तफ़सील के साथ बयान करना होगा।

हम ऊपर कह चुके हैं कि आस पास की परिस्थिति के बदलने के साथ साथ सब जानवरों को अपनी ज़िन्दगी के तरीक़ों में लगातार तब्दीलियां करनी पड़ती हैं। लेकिन जानवर अपने अन्दर बहुत कम और बहुत धीरे धीरे तब्दीली कर पाते हैं। मनुष्य भी शुरू में हज़ारों साल तक दूसरे पशुओं ही की तरह धीरे धीरे बदलता रहा। लेकिन साइन्स बताता है कि बहुत शुरू के ज़माने में, न जाने किन वजहों से इन्सान का दिमाग़ बाक़ी सब जानवरों के दिमाग़ों से ज़्यादह वसीअ होने लगा। चीज़ों को जानने और समझने की इच्छा उसमें ज़्यादह तेज़ी के साथ बढ़ने लगी। वह अपनी देखी सुनी चीज़ों को और अपने तजुर्बों को ज़्यादह अच्छी तरह याद रखने लगा। और अपनी ज़रूरत की चीज़ों को पसन्द करने में दूसरे जानवरों के मुक़ाबले में ज़्यादह आज़ादी से काम लेने लगा। इस तरह धीरे धीरे उसमें घटनाओं से नतीजे निकालने और असूल क़ायम करने की ताक़त बढ़ने लगी। इन तब्दीलियों की वजह से मनुष्य की इन्सटिंक्ट (प्राकृतिक चेतना) ने आहिस्ता आहिस्ता अक़्ल यानी तर्क शक्ति का रूप धारण कर लिया। अन्त में इसी शक्ति के बल मनुष्य ने अपने आस पास के प्राकृतिक हालात और दूसरे जानवरों पर क़ाबू हासिल कर लिया।

अक़्ल के पैदा हो जाने का लाज़मी नतीजा यह हुआ कि मनुष्य की नज़र चीज़ों की अच्छाई और बुराई पर पड़ने लगी। अच्छी वह उन चीज़ों को समझने लगा, जो उसे ज़िन्दा रहने में मदद देती थीं और बुरी उन्हें, जो उसे तकलीफ़ पहुँचाती थीं या उसकी ज़िन्दगी को ख़तरे में डालती थीं। वह अच्छी चीज़ों को अख़्तियार करने और बुरी चीज़ों से बचने की कोशिश करने लगा। लेकिन शुरू में अपनी ज़िन्दगी के कार बार में आदमी चीज़ों के केवल तात्कालिक नतीजों को देखता था। ज्यों ज्यों उसका तजुर्बा बढ़ता गया, वह उन्हीं चीज़ों के दूर के नतीजों पर ज़्यादह ध्यान देने लगा। इसके बाद मनुष्य में एक नई शक्ति और पैदा हुई। उसकी अक़्ल ज़्यादह तर केवल पास के नतीजों या अमली नतीजों में ही उलझकर रह जाती थी। इस नई शक्ति ने मनुष्य के दिमाग़ को चीज़ों के दूर के नतीजों की तरफ़ ले जाना शुरू किया, उसे यह दिखाना शुरू किया कि किसी बात का नतीजा अन्त में दूर जाकर मनुष्य के अपने लिये या सारी मनुष्य क़ौम के लिये हितकर होगा या अहितकर। यह नई शक्ति सत्-असत्-विवेक की शक्ति थी, जिससे मनुष्य ने भलाई और बुराई, नेकी और बदी, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म में भेद करना सीखा और अपनी सब चीज़ों और सब कामों को नये सिरे से अच्छे और बुरे दो हिस्सों में बांटना शुरू किया। यही मनुष्य की आत्मा में इख़लाक़ी यानी नैतिक

जीवन या सदाचार के जीवन का प्रारम्भ था। इस नई शक्ति के हाथों में कसौटी सदा केवल यही रहती थी कि किसी चीज़ या किसी काम का नतीजा अन्त में जाकर मनुष्य समाज के लिए हितकर होगा या अहितकर। लाखों बरस की जांच पड़ताल और तजुर्बों से यह शक्ति बराबर बढ़ती रही। धीरे धीरे इसी की मदद से मनुष्य ने दुनिया की भौतिक व्यवस्था के ऊपर अपनी एक अलग व्यवस्था क़ायम करदी, जिसे हम इन्सानी या नैतिक व्यवस्था कह सकते हैं। इस व्यवस्था के क़ायम करने में मनुष्य को बहुत धीरे धीरे सफलता मिली। इस नई व्यवस्था की विशेषता यह थी कि इसमें इख़लाक़ यानी नेकी बदी की तमीज़ का पहलू मुख्य था। धीरे धीरे इस व्यवस्था का प्रभाव मनुष्य-जीवन के हर पहलू पर बढ़ता गया। यहां तक कि मनुष्य की शुरू की प्राकृतिक चेतना (इंसटिंक्ट) धीरे धीरे कमज़ोर होती गई और उसकी जगह यह नेकी बदी में तमीज़ करने की ताक़त यानी सत् विवेक शक्ति बराबर तेज़ और गहरी होती गई। मनुष्य के जीवन की पेचीदगियाँ ज्यों ज्यों बढ़ती गईं, इस शक्ति का काम भी ज़्यादह पेचीदा होता गया और अभ्यास और आवश्यकता के साथ साथ यह शक्ति दिन पर दिन ज़्यादह निर्मल होती गई और उसका असर ज़िन्दगी के हर पहलू पर बढ़ता गया।

दुनिया के सब देशों में मनुष्यों के स्वभाव और उनकी ज़रूरतें क़रीब क़रीब एकसी थीं। इसलिये क़ुदरती तौर पर मनुष्य ने सब जगह अपनी समस्याओं को सुलझाने या अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए क़रीब क़रीब एक ही से तरीक़े निकाले। लेकिन परिस्थितियों के फ़रक़ की वजह से इन तरीक़ों में भी थोड़े बहुत फ़रक़ पैदा हो गये। साथ ही शुरू की पशु हालत का व्यक्तिगत स्वार्थ, इन्द्रिय लोलुपता, नैतिक ग़ैर ज़िम्मेदारी और बरबरता ये सब बातें अभी तक मनुष्यों में बाक़ी थीं और समाज पर बराबर अपना असर डालती रहती थीं। मनुष्य-स्वभाव को इन दोषों से पाक करने और समाज को उनके असर से बचाने के लिये मनुष्य लगातार संग्राम करता रहा। इतिहास के हर पृष्ठ से साबित है कि इस संग्राम में मनुष्य ने अलौकिक सफलता प्राप्त की है।

दूसरी ओर इसमें भी शक नहीं कि मनुष्य-जीवन के अन्दर यह संग्राम अभी तक जारी है। हर आदमी के दिल में एक तरफ़ अपने तुच्छ स्वार्थ, अपने व्यक्तिगत सुख की चाह और दूसरी तरफ़ सबके भले की इच्छा, इन दोनों प्रवृत्तियों के बीच संग्राम बराबर होता रहता है। एक हद तक स्वार्थ-दृष्टि मनुष्य में ज़रूरी है। यह उसे अपने को ज़िन्दा और अपनी नसल को क़ायम रखने में मदद देती है। इसे जड़ से खोद फेकना नामुमकिन है। मगर इसे सार्वजनिक हित की भावना के वश में करके अधिक उच्च और अधिक पवित्र बनाया जा सकता है। व्यक्तिगत हित और सार्वजनिक हित, इन दोनों में एक सुन्दर स्वस्थ समन्वय, एक तरह का सामञ्जस्य पैदा किया जा सकता है। बदक़िस्मती से क़ुदरत ने ख़ुद इस तरह का कोई अटल समन्वय क़ायम नहीं किया है। इन्सान की शुरू की वह ज़िन्दगी, जिसमें प्राकृतिक चेतना उसकी रक्षा करती थी, ख़त्म हो गई। अक़ल, जिसने उस चेतना की जगह ली स्वार्थ और ख़ुदी के भावों में डूबी रहती है। इस वजह से जो थोड़ा बहुत समन्वय प्रकृति ने मनुष्य और समाज में पैदा कर दिया था, वह भी कमज़ोर पड़ गया। इसीलिये आज तक तरह तरह की शक्लों में व्यक्तिगत भोगविलास की इच्छा हमेशा सार्वजनिक हित के साथ टक्कर खाती रहती है। और मनुष्य जाति में हमेशा अपने अन्दर की उन प्रवृत्तियों को, जिनका रुझान समाज की संहति को मिटा देने की ओर रहता है, और इन प्रवृत्तियों से सम्बन्ध रखने वाली भावनाओं—जैसे, क्रोध, घृणा, कपट, डर, लालच वग़ैरह—को दबा कर रखने की कोशिशों में लगी रहती है। मानव इतिहास के शुरू से अब तक इस तरह की प्रवृत्तियों और भावनाओं को दबाना ही मनुष्य जाति का सब से बड़ा मक़सद

रहा है। अपने इस मक़सद को पूरा करने की कोशिश में ही मनुष्य जाति ने अपना सब से ज़्यादह दिमाग़ और अपनी सबसे ज़्यादह ताक़त ख़र्च की है। लेकिन अभी तक उसे सफलता नहीं मिली।

इस मक़सद को हासिल करने के लिए मनुष्य जाति के हर गिरोह ने ऐतिहासिक समय से बहुत पहले अपने जीवन को एक ख़ास तरह के ढांचे में ढालने की कोशिश शुरू की। उसने कुछ ऐसे आदर्श मनुष्य, कुछ ऐसे आचार-विचार, और कुछ ऐसे नियम बनाए, जो क़रीब क़रीब सब मुल्कों और सब क़ौमों में पाए जाते हैं। इनमें मुख्य ये हैं—(१) सब इन्सान एक ही पूर्वज की औलाद हैं। यह पूर्वज कहीं पर एक साधारण मनुष्य मान लिया गया, कहीं पर कोई प्राकृतिक पदार्थ और कहीं पर कोई अलौकिक प्राणी या देवता। (२) मनुष्य मात्र भाई भाई हैं, (३) भलाई-बुराई, नेकी-बदी के बारे में कुछ निश्चित विचार, और (४) नेकी को बढ़ाने और बदी को रोकने के लिए कुछ ख़ास ख़ास तरीक़े और विधान। धीरे धीरे इस एक पूर्वज के विचार ने बढ़ते बढ़ते बड़े बड़े गिरोहों, जातियों या क़ौमों के एक उपास्य देव या एक जातिदेव का रूप धारण किया। इसके बाद यही विचार और ज़्यादह व्यापक होगया। और मनुष्य ने सारी सृष्टि के एक रचने वाले, एक पालन कर्त्ता और एक शासन कर्त्ता की कल्पना की। इसी तरह सब मनुष्य भाई भाई हैं, इस विचार ने जब ज़्यादह व्यापक रूप लिया, तो पृथ्वी भर के सब मुल्कों और सब क़ौमों के लोग उसमें शामिल कर लिये गए। नेकी और बदी के विचार और ज़्यादह साफ़ होते चले गए। उन पर अमल करना मनुष्य मात्र के लिए दिन पर दिन ज़्यादह ज़रूरी समझा जाने लगा। इन्सानी इख़लाक़ यानी सामाजिक सदाचार के जो बुनियादी असूल इन विचारों पर क़ायम किये गए, वे धीरे धीरे ज़्यादह स्पष्ट होकर धार्मिक नियमों, आज्ञाओं और धर्म शास्त्रों के रूप में प्रकट हुए। इस सब के साथ साथ इस लिए कि इन नियमों को मानने या इन आज्ञाओं का पालन करने की मनुष्य को आदत पड़ जावे, इनही असूलों के मातहत सम्प्रदाएं, पन्थ और संस्थाएं खड़ी कर दी गईं। इन पन्थों और संस्थाओं ने क़ायम होकर मनुष्य के सत्-असत्-विवेक को, और पुण्य पाप की भावना को और ज़्यादह ज़ोरदार कर दिया और इस विवेक की रोशनी में चलना मनुष्य के लिए लाज़मी बना दिया।

शुरू से अब तक लाखों बरस के अन्दर मनुष्य की बनाई हुई संस्थाओं ने कैसे कैसे बेशुमार रूप अख़्तियार किये, उन सब की कल्पना कर सकना नामुमकिन है। लेकिन मालूम होता है कि इस तमाम कार्य में मनुष्य ने बराबर नमूने के तौर पर कुटुम्ब की संस्था को अपने सामने रक्खा। विज्ञान यह बताता है कि सोशल ऐनिमल्स यानी वह जानवर, जो एक तरह की समाजी ज़िन्दगी बसर करते हैं; अपने कामों में आम तौर पर एक दूसरे को मदद देने और एक व्यवस्था के साथ मिलकर काम करने के असूलों पर चलते हैं। इन असूलों के मुताबिक़ जो इख़लाक़ी ज़िम्मेवारी एक की दूसरे पर आजाती है, उसे वे निहायत आसानी के साथ पूरा करते रहते हैं। नैतिक भावना मनुष्य में इसी छोटे से अंकुर से बढ़कर पैदा हुई है। इसी बुनियाद के ऊपर इस भावना ने मनुष्य समाज की सारी इमारत को रच कर खड़ा किया है। मनुष्य समाज ज्यों ज्यों बढ़ता गया और उसकी ज़रूरतें ज्यों ज्यों ज़्यादह होती गईं, त्यों त्यों इन असूलों की व्याख्या होती गई और उन पर अमल कराने के तरीक़े निकालने के लिए तर्क शक्ति से मदद ली गई। इस तरह प्राकृतिक चेतना (इन्सटिंक्ट) की जगह धीरे धीरे इस नैतिक भावना ने लेली। मनुष्य की इस नई नैतिक भावना और पशु-जीवन की उस प्राकृतिक चेतना दोनों का एक ही काम था, यानी जीवन रक्षा। केवल इतना फ़रक़ था कि प्राकृतिक चेतना का क्षेत्र परिमित था और यह नैतिक भावना मनुष्य समाज की नित्य बदलती और बढ़ती हुई ज़रूरतों के साथ साथ सदा बढ़ती और अधिक व्यापक होती गई। इस तमाम प्रगति में तर्क शक्ति से

बड़ी मदद मिली। जैसा हम कह चुके हैं तर्कशक्ति में वह स्थिरता नहीं थी, जो प्राकृतिक चेतना में थी, और इसीलिए वह स्वार्थ और ख़ुदी के भावों में डूब कर बार बार बहक जाती थी। ऐसी सूरतों में नैतिक भावना, जिसने प्राकृतिक चेतना की जगह लेली थी, तर्क शक्ति को क़ाबू में रखती थी और उसे मनुष्य को ग़लत रास्ते पर ले जाने से रोकती रहती थी। मनुष्य समाज की सैकड़ों परम्पराएं, रीति-रिवाज और मर्यादाएं तर्क शक्ति की इस अनस्थिरता के बुरे नतीजों से समाज को सुरक्षित रखने में मदद देती थीं।

इतिहास हमें बताता है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन की रचना में और संकटों और कठिनाइयों को पार करने में नैतिक भावना उसे रास्ता दिखाती थी, देखभाल और तजुरबे उसे मदद देते थे, और कोई अदृष्ट, गुप्त गैबी ताक़त जिसे 'विधि' कहते हैं, उसे चलाती और प्रेरित करती थी।

मनुष्य का सारा सामाजिक जीवन बड़े कुटुम्ब के सांचे में ढाला गया है। इस सामाजिक जीवन की अनेक संस्थाओं ने समय समय पर नए नए रूप धारण किये हैं। लेकिन ऐतिहासिक युग शुरू होने के बहुत पहले ही इस जीवन के बुनयादी असूल एक निश्चित रूप धारण कर चुके थे। वह असूल ये हैं—किसी की जान मत लो, चोरी मत करो, सच बोलो, एक दूसरे से प्रेम करो—कितने सीधे, कितने गहरे और मनुष्य की व्यक्तिगत और सामाजिक बहबूदी के लिए कितने ज़रूरी, कितने अनिवार्य! मनुष्य की लाखों बरस की उन्नति की ये सब से बड़ी कमाई हैं। ये उसकी सब से बड़ी मीरास और सब से क़ीमती पूंजी हैं। मनुष्य समाज के बड़े से बड़े विचारों को और निर्माण कर्त्ताओं के सदियों और युगों के तजुरबों और उनकी संचित बुद्धिमत्ता का ये सार हैं। इन निर्माण कर्त्ताओं ने मनुष्य के स्वभाव और उसकी सामाजिक ज़रूरतों की इतनी गहराई के साथ छानबीन की और इतनी क़ाबिलियत के साथ उसकी बीमारियों का पता लगा कर उसके इलाज के लिए स्थाई और अमोघ औषधियां बनाईं कि लाखों बरस तक तूफ़ान आए और तब्दीलियां हुईं, लेकिन ये बुनियादी असूल इन्सान की तमाम तरक्क़ी का धुरा उसके अन्तिम लक्ष्य और उसके भाग्य का रास्ता बताने वाले ध्रुव तारे बने रहे। जिस तरह हड्डियों का पिंजर मनुष्य के पट्ठों और उसके मांस को सभांले रखता है, उसी तरह इन असूलों ने मनुष्य समाज को सभांले रखा। इनसे अनन्त शाखें निकलीं और उनके अनन्त रूप बदले। लेकिन इन सब शाखों और रूपों ने ख़ून की तरह मनुष्य समाज की नाड़ियों में प्रवाह करके समाज को ज़िन्दा, ताज़ा और तन्दुरुस्त रखा। एक बार जब ये असूल क़ायम हो गए, तो फिर ये नहीं बदले और न कोई इन्हें बदल सका। मानव इतिहास भर में कोई सम्प्रदाय, पन्थ या विचार प्रणाली ऐसी नहीं हुई, जिसने इन असूलों की बुनियादी सचाई, उनकी मज़बूती और उनकी फलवत्ता में शक करने का साहस किया हो।

इन असूलों को मनुष्य के व्यक्तिगत और समाजी जीवन में पैवस्त कर देने के लिए बड़े बड़े दर्शन, बड़ी बड़ी विचार प्रणालियां क़ायम की गईं और बड़ी बड़ी संस्थाएं और सम्प्रदाएं खड़ी की गईं। राजनैतिक और सामाजिक आज्ञाओं के अलावा पारलौकिक आज्ञाओं से भी काम लिया गया। मनुष्य ने जब अपने रहस्यमय भूतकाल की तरफ़, और उससे भी ज़्यादह रहस्यमय भविष्य की तरफ़ गहरी नज़र डाली, तो उसकी कल्पना शक्ति ने स्वर्ग और नरक, अपने शुरू के जीवन और आगे के जीवन, इन सब की तसवीरें खींच डालीं। ये तसवीरें क़ुदरती तौर पर मनुष्य के अपने व्यक्तित्व का अक्स और उसी का फैलाव थीं। इसी तरह यह सारी नैतिक व्यवस्था, जिसका हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं, उसी के व्यक्तित्व का अक्स और फैलाव थी। मनुष्य ने अपनी सारी मानसिक शक्ति, इख़लाक़ी जोश, आकांक्षाओं और उमंगों को इसी नई व्यवस्था को निर्माण करने की कोशिशों में लगा दिया। इसी व्यवस्था के पवित्र मन्दिर में मनुष्य ने सत्यता, शिवता और सुन्दरता; साधुता और उच्चता के अपने तमाम ऊंचे से ऊंचे आदर्शों को लाकर स्थापित कर दिया।

इन्सान को अपना सारा वजूद एक गहरे और अभेद्य रहस्य से घिरा हुआ दिखाई दिया। इस रहस्य को समझने के लिए उसने इसी नैतिक व्यवस्था की कल्पना से काम लिया। मनुष्य ने इस रहस्य को तर्क की मदद से भेदने की कोशिश की; लेकिन जब तर्क ने उसका साथ न दिया तो उसने अदम्य कल्पना और श्रद्धा से मदद लेना शुरू किया। इसी विराट रहस्य में उसने अपने जीवन की असलियत देखी। इसी में उसने अपने जीवन का केन्द्र पाया। यहीं उसे विश्व की आधारशिला दिखाई दी। यही सत्य था। यही हक़ था। इसी को मनुष्य ने दिव्य देव, ईश्वर या अल्लाह माना। अपने क्षणिक और अकिंचन पार्थिव जीवन से अपने को ऊपर उठाने के लिए उसने इसी रहस्य से एक ज़बरदस्त साधन का काम लिया।

हमारा हरगिज़ यह मतलब नहीं कि ये सब चीज़ें मनुष्य की केवल कल्पना की उपज हैं। हम यहां फ़लसफ़े, दर्शन शास्त्र या अध्यात्म विद्या की दृष्टि से चीज़ों को नहीं देख रहे हैं। हम केवल इस जड़ जगत् की दृष्टि से और बुद्धि की दृष्टि से बात कर रहे हैं। और इस दृष्टि से मनुष्य समाज की रचना और उसकी उत्तरोत्तर उन्नति में किसी चीज़ ने भी इतना ज़बरदस्त, इतना व्यापक और इतना रचनात्मक हिस्सा नहीं लिया, जितना इस ख़याल ने कि एक रहस्यमय शक्ति प्रतिक्षण मनुष्य के भाग्य के चारों ओर मंडला रही है और उसे प्रभावित कर रही है। मनुष्य जाति के उन निर्माणकर्त्ताओं ने जो दिव्य प्रेरणा से प्रेरित यानी द्रष्टा या साहबे इलहाम माने जाते हैं, अपने भीतर की प्रेरणा से इस बात को साफ़ देख लिया कि मनुष्य के दिल और दिमाग़ पर इस अलौकिक रहस्यमय सभ्यता का कितना ज़बरदस्त असर पड़ता है। उन्होंने यह भी समझ लिया कि ऐसी रहस्यमय कल्पनाओं का अच्छा और बुरा दोनों तरह का असर पड़ सकता है। एक तरह की अलौकिक दृष्टि से उन्होंने इस विराट रहस्य को भेदा, उससे जो बुराई की सम्भावनाएं हो सकती थीं, उन्हें असम्भव कर दिया। और मनुष्य के लिए उसे एक शुद्ध, नित्य और अनन्त कल्याण का चश्मा बना दिया। इस रहस्य में डूब कर जो आशाएं उन्होंने मनुष्य के लिए निकालीं, वे मनुष्य के अन्दर की छिपी हुई पशुता को जीतने और मनुष्य की उन प्रवृत्तियों को दबाने के लिए, जिसमें समाज के टुकड़े टुकड़े हो जाने का डर था, लौकिक या सांसारिक आशाओं के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादह ज़बरदस्त साबित हुईं। इन्सान की ज़िन्दगी के तमाम पहलुओं को ग़ौर से देखने पर पता चलता है कि इन कल्पनाओं और आशाओं का इस ज़िन्दगी पर कितना ज़बरदस्त और गहरा असर पड़ा।

इस सब के अलावा इन्सानी तहज़ीब, कलचर या संस्कृति की असली जड़ें इसी महान रहस्य के अन्दर मिलती हैं। इस कल्पना की व्याख्या पिता, माता और पुत्र के शब्दों में की गई। इस कल्पना और इस व्याख्या ही के असर से मनुष्य की आत्मा में भय और आश्चर्य का स्थान प्रेम ने लिया, हिंसा का स्थान अहिंसा ने और व्यक्तिगत स्वार्थ का स्थान उदारता, परोपकार और सेवा-भाव ने। मनुष्य के अन्दर जितने ऊंचे से ऊंचे गुण हैं, उसके स्वभाव में जितने सुन्दर से सुन्दर और प्यारे से प्यारे पहलू हैं—श्रद्धा, ख़ुद दारी या अपनी आन का ख़याल, आत्म समर्पण, आत्मनिग्रह, संयम, वीरता, उदारता, दयालुता, आत्म-गौरव, नम्रता, सज्जनता, सुशीलता, शिष्टता, स्नेह, प्रेम, भक्ति, साधुता सब के साथ सहानुभूति, मनुष्य-मात्र को भाई समझना इत्यादि—ये सब सुन्दर गुण इस ईश्वरीय कल्पना से इस तरह निकलते हैं, जिस तरह किसी अनन्त झरने से मीठे पानी की धाराएं। साथ ही मनुष्य के जीवन में जितनी नीची और गन्दी चीज़ें हैं, उनके हमलों से मनुष्य की आत्मा और समाज को बचाए रखने के लिए इस ईश्वरीय कल्पना से बढ़कर अभेद्य ढाल कोई नहीं है। जिन पशुओं के साथ मनुष्य पैदा हुआ था और जिनका शुरू में लाखों बरस तक वह साथी और सहजातीय रहा, उनके रहन सहन और प्राकृतिक जीवन से जब हम मनुष्य के जीवन और रहन सहन की तुलना करते हैं, तो मालूम होता है कि मनुष्य इस तमाम

समय में इतना बदल गया कि अब पहचाना नहीं जा सकता। और वह मुख्य चीज़ जिसने यह ज़बरदस्त परिवर्तन पैदा कर दिया, उस नैतिक व्यवस्था का क़ायम होना था, जिसकी जड़ें जीवन के महान रहस्य में गड़ी हुई हैं।

मनुष्य जाति के नैतिक विकास की तसवीर का यह एक फीका सा ख़ाका है। ऐतिहासिक युग के शुरू होने से पहले मनुष्य इस विकास की सब मुख्य मुख्य सीढ़ियों पर से गुज़र चुका था। हम कह चुके हैं कि मनुष्य की लाखों बरस की जीवन-यात्रा, मेहनत और मुसीबतों, अनन्त संग्राम और कशमकश की एक लम्बी राम कहानी है। इस सारे ज़माने में ही एक महान समस्या सदा उसके सामने रही है, वह यह कि व्यक्ति और समष्टि, मनुष्य और समाज दोनों के हितों को इस तरह एक दूसरे में गूंथ दिया जावे कि फिर सदा के लिए एक के हित में दूसरे का हित और एक के अहित में दूसरे का अहित हो, और सारी दुनिया एक प्रेम-पाश में बंध जावे। व्यक्ति, गिरोह, और सारी मनुष्य जाति इन तीनों की असली तरक़्क़ी में कोई विरोध या असंगतता नहीं है। सच तो यह है कि इन तीनों में एक ज़बरदस्त और सजीव सम्बन्ध है, इनमें एक सामञ्जस्य और अखण्डता है, इन में से हरेक की भलाई में बाक़ी दोनों की भलाई और हरेक की बुराई में बाक़ी दोनों की बुराई है। लेकिन इनका यह सामञ्जस्य और एक दूसरे पर निर्भरता साफ़ साफ़ समझ में नहीं आती और न आसानी से अमल में लाई जा सकती है। यह तभी हो सकता है जब कि हम मनुष्य-जीवन के अन्तिम उद्देश्य को और अपने अपने कामों के दूर के और अन्तिम नतीजों को समझने की कोशिश करें। बदक़िस्मती से हम में अपने अपने व्यक्तिगत सुख-भोग की लालसा जिसे हमारी बेलगाम और संस्कार रहित तर्कशक्ति और भी ज़्यादह भड़का देती है, हमें सांसारिक भोगों के भंवर में फंसा देती है और मजबूर कर देती है कि हम हर चीज़ के तात्कालिक पहलू पर निगाह रखें, जिसे हम अमली और व्यावहारिक पहलू कहते हैं। मनुष्य ने समाज की हर शक्ति को इसी समस्या को हल करने में लगाया है। धार्मिक सिद्धान्तों, सदाचार के नियमों बड़े बड़े कर्म काण्डों, रिवाजों परम्पराओं, आदर्शों और आत्मसंयम के बड़े बड़े तरीक़ों, यम नियम योग और तप इन सब से काम लिया गया है, और इनकी मदद से मनुष्य ने बड़ी बड़ी सफलताएं भी हासिल की हैं; लेकिन समस्या अभी तक पूरी तरह हल नहीं हुई। समस्या समस्या के रूप में अभी तक मनुष्य के सामने मौजूद है।

वास्तव में इन्हीं चीज़ों ने, जो मनुष्य के इख़ला-क़ी यानी नैतिक विकास में मदद देने के लिए रची गई थीं, और नई नई मुशकिलें पैदा कर दीं। इन से मदद इसलिए ली गई थी कि ये व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की उन प्रवृत्तियों को, जो एक को दूसरे से लड़ाने और जुदा करने की तरफ़ जाती हैं दबाए रखें। और व्यक्ति और समाज दोनों के नफ़े नुकसान को एक करके दोनों की निगाहों को एक ही ओर फेर दें। लेकिन इन्होंने मनुष्यों के दिलों और दिमाग़ों पर काबू पाने के लिए उन्हें आहिनी सांचों में ढाल दिया। इसी से नई पेचीदगियां पैदा हो गईं। ये सांचे इतने कड़े और अटूट हो गए कि इन्हें बढ़ा घटा सकना या बदल सकना नामुमकिन होगया। इसके दो नतीजे हुए। एक यह कि जिन अलग अलग क़ौमों के दिल और दिमाग़ अलग अलग तरह के सांचों में ढल गए, उनमें एक दूसरे से हमेशा के लिए कशमकश और लड़ाई झगड़े के सामान पैदा हो गए। और दूसरे यह कि मनुष्यों की तर्क शक्ति इन सांचों में फंस कर अशक्त और कुण्ठित हो गई और अपनी बदलती हुई ज़रूरतों के मुत'बिक़ अपनी हालत में परिवर्तन कर सकना इनके लिए नामुमकिन हो गया। इन्सानी ज़िन्दगी और उसके विकास की यही सब से ज़्यादह दुःखकर समस्या है। व्यक्तियों और गिरोहों की उस क़ुदरती स्वार्थपरता को क़ाबू में करने के लिए जो तमाम फूट की जड़ है, लोहे के नैतिक और सांस्कृतिक सांचों की ज़रूरत पड़ती है। ये सांचे जब एक बार सख़्त पड़ जाते हैं, तो इनके अपने ही

अन्दर की प्रतिक्रियाएं और बाहर के लगातार नाश कर हमले इन्हें तोड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं। और इसी ग़रज़ को पूरा करने के लिए फिर नए सांचों की ज़रूरत पड़ती है। मनुष्य के आस पास की परिस्थिति के कारण यह समस्या और भी विकट रूप धारण करती रही है। शुरू शुरू में मनुष्यों को ख़ाना बदोशों की ज़िन्दगी बसर करनी पड़ती थी। गिरोह के गिरोह टुकड़े टुकड़े होकर जगह और ख़ूराक की तलाश में इधर उधर भटकते फिरते थे। यह हालत लाखों बरस तक जारी रही। इसमें इन गिरोहों को हद दर्जे की तकलीफ़ें उठानी पड़ती थीं। पुराने साथी छूट जाते थे। पुरानी रिश्तेदारियां हमेशा के के लिए टूट जाती थीं। जिन चीज़ों से मनुष्य को मुहब्बत हो जाती थी, उनसे हमेशा के लिए नाता तोड़ना पड़ता था। बनी बनाई सामाजिक संस्थाएं भी धीरे धीरे मिट जाती थीं। नई जगहों में मनुष्यों को नए सिरे से और नए तरीक़ों पर अपनी व्यवस्था करनी पड़ती थी। पुराने रस्म रिवाज नाकारा और बेमाइने हो जाते थे। नई नई आदतें डालनी पड़ती थीं। इस सब में मनुष्यों को काफ़ी मेहनत पड़ती थी और मुसीबतें झेलनी पड़ती थीं। इस सब के अलावा अकसर कई कई गिरोह जगह और ख़ूराक की तलाश में एक ही जगह पहुंच जाते थे और एक दूसरे से लड़ लड़ कर ख़ून की नदियां बहाते थे। इन लड़ाइयों में कौमों की क़ौमें मिट जाती थीं और हज़ारों साल की पुरानी संस्कृतियों के टुकड़े टुकड़े उड़ जाते थे। इन तमाम लाखों बरस के कष्टों और मुसीबतों, यत्नों और असफलताओं की कल्पना करके हम चकित रह जाते हैं। हमारा आश्चर्य और भी बढ़ जाता है, जब हम उन वीर और निर्भीक लोगों का ख़याल करते हैं, जो हिम्मत के साथ उस सर्वथा अपरिचित विशाल तूफ़ानी समुद्र के अन्दर से अपनी टूटी हुई किश्तियों को खेए लिए चले जाते थे। प्रकृति की सारी शक्तियां उनका मुक़ाबला करती थीं और फिर भी वे प्रकृति पर विजय प्राप्त करते थे। समाज के अन्दर की वे सब प्रवृत्तियां, जो समाज की संहति को नाश कर उसके टुकड़े टुकड़े कर डालती हैं, अपना पूरा ज़ोर दिखाती थीं, फिर भी उन लोगों ने मनुष्य समाज को संभाले रखा, मानव-सम्बन्ध के दायरे को और अधिक विशाल कर दिया, मनुष्य की निगाहों को कहीं अधिक वसीअ बना दिया, सामाजिक संस्थाओं में एक सामञ्जस्य और एकता पैदा कर दी, मुख़्तलिफ़ बाजों की तरह समाज के विभिन्न स्वरों को मिलाकर उनमें एक स्वरता उत्पन्न करदी, समस्त मनुष्य समाज के इख़लाक़ी मयारों, उसके नैतिक आदर्शों और नेकी बदी की कल्पनाओं को एक सांचे में ढाल दिया, और एक अर्थों में सारे समाज के विरुद्ध होते हुए भी, वे उस समाज को मानों उसकी इच्छा के ख़िलाफ़ एक कहीं अधिक विशाल और व्यापक समन्वय की तरफ़,—"वसुधैव कुटुम्बकम्" मनुष्य मात्र भाई भाई हैं, इस उच्चतम आदर्श की तरफ़ ढकेलते हुए लेगए। उनका रास्ता मौत की घाटी में से होकर था, उनके सामने कोई दूसरा चारा न था। किन्तु इस वीभत्स रास्ते को भी जिस होशियारी और ख़ूबसूरती के साथ उन्होंने तय किया, उससे हमें मनुष्य के भविष्य और उसके भाग्य का ख़ासा पता चलता है।

इसके बाद हम उस समय पर आते हैं, जिसे मनुष्य का ऐतिहासिक युग कहा जाता है। इस युग में भी मनुष्य की उन्नति और विकास का रास्ता लड़ाई झगड़ों, प्रयत्नों और असफलताओं, सृजन और प्रलय, प्रलय और सृजन में से होकर ही गुज़रता दिखाई देता है। किन्तु यहां पहुंच कर इस समस्त प्रगति का असली उद्देश्य, उसका अन्तिम लक्ष्य और भी ज़्यादह साफ़ दिखाई देने लगता है। इन्हीं क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं में से मनुष्य के छोटे छोटे कुटुम्ब मिल कर बड़े बड़े क़बीले बन जाते हैं। क़बीलों की दीवारें टूट कर क़ौमें बन जाती हैं। क़ौमें मिल मिल कर बड़ी बड़ी जातियां (Races) बन जाती हैं। फिर उनसे और बढ़ कर बड़े बड़े जाति समूह एक होकर रहने लगते हैं। इसी प्रगति के असर से क़बीलों के नेता या सरदार बादशाह या

राजा बन जाते हैं। बादशाहतें बढ़कर और एक दूसरे में मिलकर शहनशाहतें यानी साम्राज्य खड़े हो जाते हैं। ये साम्राज्य बनते हैं और बिगड़ते हैं। नए नए साम्राज्य सामने आते हैं।

इन साम्राज्यों में से सभ्यताएं जन्म लेती हैं। सभ्यताएं बढ़ती हैं, फैलती हैं, यहां तक कि ये सभ्यताएं देश में और जातियों की सीमाओं को तोड़ कर उनसे पार हो जाती हैं। फिर ये सभ्यताएं भी गिरती हैं, मरती हैं, और दफ़न हो जाती हैं। और मानव एकता के पवित्र उद्देश्य को पूरा करने के लिए नई नई सभ्यताएं उनकी जगह लेती हैं। यह महान कार्य इसी तरह निरंतर बेरोक जारी रहता है। अनेक गिरोह, अनेक जातियां अपने अपने मज़हबों और संस्थाओं के आहिनी पिंजरों में बन्द, और अपने अपने रीति रिवाजों और अंध-परम्पराओं में इस तरह लिपटी हुई, जिस तरह मुर्दा अपने कफ़न में लिपटा रहता है, अपने अलग अस्तित्व को कायम रखने की जीतोड़ कोशिशें करती हैं, किन्तु विश्वात्मा, अपनी सहज, स्वाभाविक और बेरोक यात्रा में उन सब को अपनी ओर खेंचती रहती है और अपने में लीन करती रहती है और इस तरह लगातार अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ती रहती है। सन्त और महात्मा, पैगम्बर और अवतार बराबर आते रहते हैं। धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक सुधार की लहरें समुद्र की लहरों की तरह उठकर मानव-समाज में चारों ओर फैलती रहती हैं। ये लहरें तमाम कृत्रिम दीवारों को तोड़कर मनुष्य मात्र को एक करती रहती हैं, और मनुष्य जाति को निरंतर—एक ईश्वर, एक धर्म, एक तत्त्व और उस एक सुन्दर दिव्य लक्ष्य की ओर बढ़ाती रहती हैं, जिसकी ओर यह सारी सृष्टि जा रही है।

इन्सानी ज़िन्दगी के इस पहलू पर विचारवान लोगों ने काफ़ी ध्यान नहीं दिया। इतिहास की पुस्तकें सदा एक न एक खास पक्षपात को सामने रख कर लिखी गई हैं। इतिहास ने अपना सम्बन्ध केवल राजनीति, अलग अलग युगों और क़ौमों से रखा है। जिसे हम इन्सान कहते हैं, उसके सार्वाङ्गिक जीवन की ओर इतिहास ने कभी ध्यान नहीं दिया। धर्म या मज़हब ने हमेशा केवल इख़लाक़ी और रूहानी पहलुओं से ही सम्बन्ध रखा है और मनुष्य के विकास के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पहलुओं की अवहेलना की है। इसके ख़िलाफ़ साइन्स यानी विज्ञान ने निहायत अवैज्ञानिक ढंग से चलकर, जीवन के सिर्फ़ भौतिक यानी माद्दी पहलू की तरफ़ ध्यान दिया, और उन इख़लाक़ी और रूहानी घटनाओं को समझने की कोशिश नहीं की, जो समस्त मनुष्य-जीवन में भरी पड़ी हैं और जिनका उस सारे जीवन की प्रगति पर सब से गहरा असर है। इस आम बेपरवाही और यकतरफ़ापन का नतीजा मनुष्य-समाज के लिए बहुत बुरा हुआ। इसी गलती के सबब से लोगों के दिलों पर यह गलत, किन्तु गहरा असर पड़ गया है कि मनुष्य समाज सदा से कमाल और ज़वाल, उत्थान और पतन, सभ्यता और बरबरता के कुचक्र में चक्कर खाता रहा है। इस घातक विचार ने हमारी आखों पर परदा डाल दिया है और हमारे दिलों में बेबसी और मायूसी पैदा कर दी है। इसने इस तरह की विचार-प्रणालियों को बढ़ाने का मौका दिया है, जो समाज की संहति के लिए घातक और उसका नाश कर देने वाली हैं। इसने समस्त मानव-जाति को एक कुटुम्ब बना देने की उस महान समस्या के असली ठीक ठीक हल की कोशिशों का रास्ता रोक दिया है, जिसे हल किये बिना मनुष्य को कभी स्थाई शान्ति और वास्तविक सुख प्राप्त नहीं हो सकते।

किन्तु यदि हम इन्सानी ज़िन्दगी की तमाम प्रगति पर शान्ति के साथ और रचनात्मक दृष्टि से नज़र डालें, तो हमें इस तरह के नैराश्य की कोई गुंजाइश नज़र नहीं आती। इतिहास यह साबित करता है कि ज़िन्दगी के क़रीब क़रीब हर मैदान में मनुष्य जाति हमेशा आगे ही बढ़ती रहती है। किन्तु इस विषय का ज़िक्र हम अपने अगले लेख में करेंगे।

वाल्ट ह्विटमैन की क्रान्ति-कल्पना

स्वर्गीय वाल्ट ह्विटमैन अमरीका के प्रसिद्ध रहस्यवादी कवि थे। उनकी कविताओं में कबीर और मौलाना रूम दोनों की छाप मिलेगी। किन्तु उनका रहस्यवाद जीवन के संघर्ष से विमुख न था। अमरीका के स्वाधीनता-युद्ध के समय उनकी कवित्व-धारा ने अनुपम उत्साह की लहर दौड़ाई थी। हम यहां पर उनकी 'क्रान्ति की कल्पना' के सम्बन्ध में कुछ पद्य दे रहे हैं—सम्पादक।

काज न करना आज किसानो,
नाज न भरना आज किसानो,
गिरें धान की बाली सारी,
सूखे ये हरियाली सारी!
गूंजे प्रलयंकर सङ्गीत!
गूंजे मत्त भयङ्कर गीत!
भीषण क्रान्ति देश में जागे,
मुर्दा शान्ति दिलों से भागे!

× × ×

कुछ आमोद प्रमोद न होंगे,
मन के कोई मोद न होंगे,
नाच न होगा, खेल न होंगे,
सन्धि न होगी, मेल न होंगे!
टूटी सी पतवारें होंगी,
रौद्र भयानक धारें होंगी!
हुंकारें नभ में बस जायें,
टंकारें जग में धंस जायें!

× × ×

शान्ति न होगी, मिलन न होगा,
प्रियतम से सम्मिलन न होगा,
सांसों में उफ़ आह न होगी,
कायर की परवाह न होगी!
रोतों का कुछ ख्याल न होगा,
पूजा का भ्रम-जाल न होगा,
बच्चों के प्रति प्यार न होगा,
बूढ़ों का सत्कार न होगा,

आज न मां की ममता होगी,
बन्धन-हीन विषमता होगी!
रण-भेरी क़ब्रों को हिला दे,
लाशों तक को आज जगा दे!
इतना हो तूफ़ानी राग,
भूलें हम सारा अनुराग!
रण-भेरी बज उठे भयङ्कर,
होवे जल-थल-नभ प्रलयङ्कर!

फूल और कांटे

श्री विष्णु

भूमिका

याज्ञिक बोले—उन दिनों छूत-छात बहुत थी। हमारे घर के बरतन यदि मुसलमान छू भी लेता, तो उन्हें आग में डाल कर शुद्ध किया जाता था। आप कहेंगे कितनी घृणास्पद बात है यह। मैं भी सोचता हूं आदमी आदमी के बीच यह कैसी खाई है? परन्तु कभी-कभी मन में उठता है कि यह खाई तो हम सदा पार करते रहे। कभी दिक्क़त नहीं हुई। पर आज जो खाई हमारे दिलों में पड़ गई है, वह क्या कभी भर सकेगी? मैं कल उस पार्टी में गया था, जो मि० बागची के तबादले के उपलक्ष में मि० अहमद ने दी थी। वहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और सिख सब थे। सब एक साथ एक टेबुल पर खा रहे थे। रामानन्द और मुश्ताक़ तो ऐसे बैठे थे, जैसे एक मां के जोड़ुआ बेटे हों; परन्तु आप जानते है उन दोनों से बढ़ कर एक दूसरे का दुश्मन कोई और नहीं होगा। मुझे तो लगता है कि छूत छात का जो गहरा मैल था, वह मानो हमने खुरच कर अपने अन्दर डाल लिया है। हमारे शरीर गोरे हैं और दिल काले। एक दिन था, जब लोगों को अपने शरीर की परवाह नहीं थी, परन्तु क्या मजाल कि दिलों में फ़र्क़ पड़ जावे। मुझे याद है, गांव के स्कूल में पढ़ते समय कई मुसलमान लड़के, जो हमारे दोस्त थे, हमारे घर आते और आकर खाना भी खाते।

एक दिन हमारा दोस्त सईद हमारे घर आया और मेरी मां से बोला—आपा ने कहा है कि तू रोज़ उनके घर जाता है। आज उनको बुलाकर ला। अम्मा ने हँस कर कहा था—तो लेजा न! लेकिन शाम को छोड़ जाना।

और फिर हम उसके गांव में गये थे। घूमे थे। सईद के घर भी गये थे और हमें देख कर उनकी औरतें बोली थीं—कितना ख़ूबसूरत है!

'मोटे मोटे गद्दे सा।'

एक ने पूछा था—क्या खाते हो तुम?

मैंने कहा था—रोटी और दूध।

और तभी उस औरत ने मुड़ कर कहा था—सईद! इनको खाने को नहीं पूछेगा?

सईद अचकचाया—आपा! तुम खिलाओ न।

आपा हँसी थीं—ये क्या हमारे घर का खाते हैं?

सईद और भी अचकचाया—क्यों आपा! मैं भी········।

आपा बीच ही में बोली थीं—नहीं, नहीं; ये नहीं खायेंगे। जा तू अपने अब्बा से कह, जल्दी जा!

सईद चला गया और उसकी आपा हमसे बातें करती रही घर की, दुकान की, अम्मा की और न जाने किस किस की।

मैं भूला नहीं हूं उस दृश्य को जब हमने खाना खाया था। बाज़ार की मिठाई थी, जो एक हिन्दू हमारे सामने रख गया था। सईद की आपा हमारे पास बैठी देखती रही थी, लेकिन उसने मिठाई को छुआ नहीं था। दूर से कह देती थी—अरे! तुम

खाते नहीं! यह खाओ, देखो यह कितना ज़ायकेदार है आदि········।

सईद के अब्बा भी आये थे। बातें भी की थीं। परन्तु उन्होंने हमारी छूत छात की जो रक्षा की वह मुझे नहीं भूलती, बल्कि टीसती है! काश कि उसी तरह किसी सईद की आपा मुझ से आकर कहे—बेटे मेरे! मैं तेरा खाना न छुऊँगी, पर तू एक बार मेरे घर चल! मैं तुझसे अपने सुख दुख की बातें करूँगी! तू मेरे चूल्हे पर की पकी रोटी मत खाना, पर मेरे पास बैठ कर मेरे दर्द की कहानी सुन लेना·····

याज्ञिक कहते कहते चुप हो गये। उनकी आवाज़ भारी हो गई थी। आंखों में पानी भर आया था और उन्होंने मुह फेर लिया था कि हम उनके आंसू न देख लें। हम सब देख रहे थे, लेकिन बोलने की हिम्मत हममें भी नहीं थी। कुछ देर के लिये हमारी मीटिंग में सन्नाटा सा छा गया। ऐसा लगा कि दर्द ने हमारे ओठों को सी दिया है। लेकिन यह अवस्था देर तक नहीं रही। सहसा रामनाथ, जो हमारी पार्टी का सबसे कम बोलने वाला मेम्बर था, बोल उठा—मित्रों! मुझे आज्ञा हो तो एक छोटी सी घटना सुनाऊं।

हाँ, हाँ!—हम सब कह उठे।

याज्ञिक को तो जैसे मुक्ति मिली। बोले—ज़रूर सुनाओ रामनाथ!

और रामनाथ ने कहना शुरू किया—

(कहानी)

सुधीर एक नवयुवक था। उमर के प्रभाव में आकर वह ज़रा ज़रूरत से ज़्यादा अपने ऊपर विश्वास रखता था। लेकिन यह कल्पना उसने नहीं की थी कि जहाँ वह जा रहा है, वहाँ का मानव दानव बन चुका है। वह बहुत बड़ा नगर था और ईद के दिन वहां हिन्दू-मुसलमानों का भयंकर दंगा हो जाने की सम्भावना थी। मित्रों ने कहा था—सुधीर! जान बूझ कर आग में कूदना ठीक नहीं है।

सुधीर बोला था—मैं कहता हूं यह डर ही ऐसे दंगों को सम्भव बनाता है और फिर मैं किसी से लड़ने तो नहीं जा रहा हूं। काम करके परसों तक लौट आऊँगा।

और वह चला गया था। जिस समय वह स्टेशन से बाहर आया, तो सन्ध्या हो चुकी थी। बिजली के प्रकाश में जनता अपने अपने रास्ते पर बढ़ रही थी। तांगे, मोटर और ट्राम की आवाज़ के कारण एक गूंज सी वातावरण में भर आई थी। उस समय यह कहना कठिन था कि यहां भी दंगा होने की कोई सम्भावना हो सकती है।

सुधीर ने सदा के अनुसार एक तांगे वाले को पुकारा; लेकिन पैसों की बात नहीं पटी। दूसरा तांगे वाला भी आकर चला गया और तीसरा भी नहीं माना। सुधीर उस शहर में नया नहीं था, इसी कारण तांगे वालों को पहचानता था।

वह इन लोगों की शैतानियत पर चिढ़ा हुआ खड़ा ही था कि एक और तांगे वाला आ गया—'कहाँ चलियेगा, बाबू जी?'

'पहाड़ी टोला।'

'आइये।'

'क्या लोगे?'

'जो आप दीजियेगा।'

'दो आने दूंगा मैं तो।'

'दो आने। दो आने तो कम हैं बाबू जी! लेकिन ख़ैर, आप बैठिये।

और उसने तांगा आगे बढ़ा दिया। सुधीर बैठ चुका था। घोड़ा तेज़ था। सरपट दौड़ चला। एक एक करके सड़कें जाने लगीं। अनेक कार, बसें और ट्राम पास से निकल गई। बाज़ार पीछे छूट गये। सिनेमा हाउस, बैंक की इमारतें और यहां तक कि कम्पनी बाग़ भी छूट चला। सुधीर को लगा जैसे कि तांगे वाला रास्ता भूल गया है। उसने ध्यान से रास्ते को देखा और पूछा—किधर जा रहे हो भाई?

पहाड़ी टोला—तांगे वाले ने लापरवाही से कहा।

सुधीर बोला—लेकिन वह तो इधर नहीं है।

नहीं बाबू जी,—तांगे वाले ने कहा—यही तो सीधा रास्ता है। उधर सड़क पार करके दिल्ली गेट है, आगे पहाड़ी टोला। ज़रा लम्बा फेर है, परन्तु रात के समय सीधा रास्ता ठीक होता है बाबू जी!

बात उसने ठीक कही थी। सुधीर चुप हो गया। उसने देखा—रास्ता सचमुच लम्बा है। वह उकता गया। लम्बी सड़क पार हो गई थी। दरवाज़े के अन्दर एक सकरे रास्ते पर तांगा आगे बढ़ रहा था। रास्ते के दोनों ओर छोटी-छोटी दूकाने थीं। दुकानदार सब मुसलमान थे और सुधीर को लगा—बाज़ार बहुत गन्दा है। एक अजीब बदबू आने लगी है।

उसने अचकचा कर पूछा—हम कहां हैं?

तांगे वाला हँसा—अगले मोड़ पर चौड़ी सड़क है बाबू जी!

लेकिन अचरज, मोड़ तो आया पर चौड़ी सड़क नहीं आई। मोड़ पर चारों तरफ़ बस्ती थी और एक तरफ तंग सी गली का रास्ता था, जिसमें आगे आकर मसजिद जान पड़ती थी, क्योंकि अजान की आवाज़ अभी अभी बन्द हुई थी। यहीं आकर तांगे वाले ने सहसा तांगा रोक दिया और बोला—आप ठहरिये बाबू जी! मैं जरा रोशनी करने को लालटैन उठा लाऊं। साफ़ करने को छोड़ गया था। आगे पुलिस वाला मिलेगा। दो मिनट में आता हूं। यह रहा मेरा घर!

लेकिन—सुधीर बोला—यह कौन जगह है। मैंने इसे कभी नहीं देखा।

'बहुत बड़ा शहर है यह बाबू जी! आप क्या क्या देखेंगे; लेकिन आप माफ़ करेंगे मैं अभी आया।'

और वह चला गया। सुधीर उसी सकरे रास्ते को देखता रहा। वहां सन्नाटा था। कभी कभी मकानों से कुछ आवाज़ आ जाती थी और मोड़ की दुकान पर एक मुसलमान दूकानदार बीड़ी-चने-पान-आलू और न जाने दुनिया की कौन-कौन सी चीज़ें धरे चुपचाप बैठा था.........।

सुधीर देखता रहा—पांच मिनिट बीते, दस, पन्द्रह, बीस और पच्चीस मिनिट भी हो गये। वह एक बार घड़ी को देखता और दूसरी बार उस सकरे रास्ते को, जिस पर तांगे वाला गया था और आने का नाम नहीं लेता था। सुधीर ने अब दुकानदार को आवाज़ दी—क्यों भाई, तांगे वाले का घर कौन सा है?

दुकानदार न हिला, न बोला पर उसी समय सामने के रास्ते से चार पांच मुसलमान वहां आ गये। वे एक दम सुधीर के पास आकर बोले—नीचे उतर आओ।

सुधीर अचकचा कर बोला—तुम कौन हो?

सबसे आगे एक लम्बा आदमी था। वह हँसा—हम कौन है यह तो फिर बता देंगे, पर तुम नीचे उतर आओ।

सुधीर कांपा तो पर न जानें कहां से हिम्मत उसके भर आई। बोला—अगर न उतरूं तो.........

'तो हम उतार लेंगे।'

'उतार लो फिर।'

और वह तन कर बैठ गया। अपने दोनों हाथ उसने ओवरकोट की जेबों में डाल लिये और निश्चित सा सकरे रास्ते की ओर देखने लगा। लम्बे आदमी को जैसे अचरज हुआ—

उसने कहा—हिम्मत तुममें है, पर तुम जानते हो तुम कहाँ हो?

कहाँ हूं!—सुधीर मुड़ कर बोला।

'यह इसलाम पुरा है और यहाँ आकर कोई लौटा नहीं। इसीलिये कहता हूं चुपचाप उतर पड़ो।'

सुधीर की आंखों के आगे अँधेरा छा गया। दिल धक धक कर उठा और उसे लगा कि अब वह बचेगा नहीं। वह हक्का बक्का सा चारों ओर देखने लगा। दुकानदार उसी तरह बुत बना हुआ बैठा था और पास के मकान में बिल्कुल सन्नाटा छा गया था कि सहसा किसी के बोलने की एक हल्की परन्तु तेज़ आवाज उसे सुनाई पड़ी और एक क्षण बीते-बीते कि एक और आदमी पास के जीने से नीचे उतर आया। उसने पूछा—क्या बात है?

लम्बे आदमी ने जवाब दिया—कल ईद है और लड़ाई होनी ही है; इसीलिये मजीद एक काफ़िर को पकड़ लाया है·········।

और वह हँस पड़ा। पर इस नये आदमी ने सुधीर के पास आकर उसे देखा, तो जैसे चौंका सा। फिर देखा—और अचानक चिल्ला उठा—अरे तुम हो तुम·········।

लम्बा आदमी भी चौंका—कौन है यह ?

सुधीर की दशा का वर्णन नहीं हो सकता। सौभाग्य से वह तांगे में बैठा था। खड़ा होता तो उसके मन-मन भर के पैर उसे रोक न सकते। वह लड़-खड़ा कर गिर पड़ता। नये आदमी ने एक बार फिर उसे देखा और मुड़कर उन आदमियों से बोला—तुम देख नहीं सकते यह मुसलमान है। क्या ईद के दिन मुसलमान की कुरबानी करोगे ?

और मुड़कर फिर सुधीर से बोला—तुम जजी में काम करते हो न ? तुम्हारा नाम तो अकबर है ?

सुधीर आस्मान से गिरा। क्षण भर के लिये उसने महसूस किया वह इस दुनियां में नहीं है और जो कुछ वह देख रहा है, सपना है; पर न जाने कैसे उसके मुह से निकला—जी हाँ। मेरा नाम अकबर है। मैं जजी में काम करता हूं।

वे सब भौचक्के से पीछे हट गये। नये आदमी की बात काटने की हिम्मत उनमें नहीं रह गई थी। लम्बे आदमी ने गुस्से में भर कर कहा—मजीद क्या अन्धा हो गया है। अपने आदमी को भी नहीं पहिचानता।

और सुधीर से बोला—माफ़ करना, बिरादर ! हम अन्धे हो गये थे। आप कहाँ जायेंगे ?

सुधीर के प्राण जैसे लौटे, बोला—पहाड़ी टोला।

नया आदमी बोला—आबिद हुसैन के घर।

जी हां—सुधीर को कहना पड़ा।

नया आदमी तांगे पर चढ़ गया। बोला बड़ा लम्बा रास्ता है। मैं छोड़े आता हूं। और उसने बड़े आराम से तांगे को घुमाया। उन लोगों की ओर देखकर बोला—अगर मैं न आ जाता, तो कितना बड़ा गुनाह कर बैठते तुम लोग। तोबा तोबा·····।

वे लोग नहीं बोले। तांगा आगे बढ़ गया। सुधीर का दिल अभी कांप रहा था, लेकिन दिल्ली गेट के बाहर आते आते जैसे उसे हँसी आने लगी। रोक कर तांगे वाले से बोला—तुमने मेरी जान बचाई है। तुम बता सकते हो कि·····।

नया आदमी बीच ही में ज़ोर से हँस पड़ा—आप मुझे माफ़ कर देंगे, आपका नाम क्या है ?

सुधीर ने कहा—मेरा नाम सुधीर कुमार है। मैं इन्दौर में रहता हूं।

उसने कहा—मेरा नाम लतीफ़ हुसैन है और मैं यहीं पर एक दफ़्तर में काम करता हूं। आप कहां जावेंगे ?

'पहाड़ी टोले में लाला चन्द्रभान के घर।'

लतीफ़ बोला—आपको बड़ा ताज्जुब हो रहा होगा। होना भी चाहिये।

सुधीर ने कहा—जन्म जन्म आपका अहसान न भूलूंगा, आपने·····।

लतीफ़ बीच ही में बोल उठा—आप क्या सचमुच यही समझते हैं कि मैंने आपकी जान बचाई है।

अप्रतिभ सा सुधीर बोला—इसमें समझने की बात क्या है, यह तो·····।

नहीं, नहीं—उसने फिर बीच में टोका—आप नहीं जानते, आपको बचाने वाला कौन है ?

कौन है फिर वह—सुधीर ने अचरज से पूछा।

तांगा लम्बी सड़क पार करके पहाड़ी टोले की लेन में आ गया था। बस्ती सामने नज़र आ रही थी। लोग गरम कपड़ों में लिपटे सैर करके लौट रहे थे। यही चुङ्गी के दफ़्तर के सामने लतीफ़ ने तांगा रोक कर कहा—अब आप जा सकते हैं !

लेकिन सुधीर ने पूछा—आपने बताया नहीं, वह कौन था, जिसने आज मेरी जान बचाई है ?

लतीफ़ बोला—सुधीर बाबू ! आप क्या करेंगे जान कर ?

"याद रखूंगा कि इस दुनियां में कोई है, जिसकी छाती में दिल है और दिल में दर्द और······।"

और क्या—लतीफ़ ने एक बार फिर बीच में टोंका।

सुधीर में अचानक भावुकता भर उठी। उसने कहा—और कुछ नहीं जानता, भाई लतीफ़। सच तो है मैं उसको जान कर क्या करूंगा? इन्सान जब इन्सानियत को समझ लेता है, तो उसके लिये इस दुनियां में कुछ भी नहीं रहता, जिसकी वह चाहना कर सके। तब मैं उस इन्सान को क्या दूंगा?

और सुधीर तांगे से उतर पड़ा। उसने अपनी जेब से रुपया निकाला और लतीफ़ की तरफ़ बढ़ाता हुआ बोला—तुम्हें कुछ पैसे देकर मैं तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता, पर मेरी ओर से भाई इन पैसों को तुम किसी ज़रूरतमन्द को दे सको, तो मैं तुम्हारा और भी अहसानमन्द रहूंगा।

लतीफ़ को इतनी उम्मीद नहीं थी। उसने कहा—सुधीर बाबू! सुनिये मैं आपको बताता हूं। मैं मुसलमान हूं और मुझे मुसलमान होने का फ़ख़्र है। मैं अपनी मज़हबी किताब क़ुरानशरीफ़ को हमेशा मोहब्बत और ईमान के साथ पढ़ता रहा हूं। उसका एक एक हरूफ़ मेरे लिये ख़ुदा का हुक्म है। उसी क़ुरान में मैंने पढ़ा था—"हर गिरोह के लिये कोई न कोई सिमत है, जिसकी ओर इबादत करते समय वह अपना मुंह कर लेता है। इसलिये तूल न देकर नेकी की राह में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की कोशिश करो·····।" और फिर पढ़ा था—"नेकी की राह तो उसकी यह है जो ख़ुदा पर, आख़िरत पर, फ़रिश्तों पर तमाम इलहामी किताबों पर और सब पैग़म्बरों पर ईमान लाता है और अपनी प्यारी दौलत रिश्तेदारों, यतीमों, ग़रीबों, मुफ़लिसों और मांगने वालों की राह में और ग़ुलामों को आज़ाद कराने में ख़र्च करता है, नमाज़ पढ़ता है, ज़कात देता है, बात का पक्का है, और घबराहट व तङ्गी और मुसीबत के वक़्त तहम्मुल रखता है, ऐसे लोग ईमान के सच्चे हैं और ये ही हैं जो बुराइयों से बचने वाले इन्सान हैं।"

बहुत दफ़ा मैंने इसे पढ़ा और पढ़कर सुनाया था, पर आज जब तुम्हें पकड़ कर ये लोग ले आये, तो मेरे मन में एक सवाल उठा था—क्या यह नेकी की राह है·····क्या सचमुच ख़ुदा यही चाहता है कि हम उसके बन्दों के ख़ून से हाथ लाल करें·····। मैं सच कहता हूं, मैं कुछ भी फ़ैसला नहीं कर पा रहा था कि मेरी लड़की मेरे पास आई और बोली—अब्बा! कल तुम नेकी की राह का ज़िक्र कर रहे थे। क्या इस इन्सान को जो धोखे से फंसा कर लाया गया है, बचाना नेकी की राह में इन सबसे आगे बढ़ना न होगा·····। मैं अचकचाया था। मैंने उस लड़की की तरफ़ देखा था कि उसकी आंखों में पानी भर आया है। उसका चेहरा सुनहरा हो उठा है और जैसे वह पूछने नहीं, बल्कि हुक्म देने आई है—"अब्बा! नेकी की राह में आगे बढ़ना है, तो उस मुसीबतज़दा इन्सान की जान बचाओ।"

मेरे लिये यह इलहाम था। मैं वहां न ठहर सका। नीचे उतर आया और फिर क्या हुआ, यह तुम जानते हो। पर मुझे ख़ुद ताज्जुब है कि यह बात इतनी आसानी से कैसे हो गई? लेकिन ख़ैर अब तुम जा सकते हो। मैं भी जा रहा हूं। मेरी लड़की बीमार है। उसे देखने वाला कोई नहीं है·····।

और इतना कहकर लतीफ़ ने घोड़े को चाबुक लगाई। घोड़ा एक बार लड़खड़ाया और फिर तेज़ी से दौड़ पड़ा। सुधीर अचरज से पागल होकर पुकार उठा—लतीफ़ बाबू सुनिये तो·····।

लतीफ़ बाबू बहुत दूर निकल गये थे और सुधीर में लौटकर उनके घर जाने की हिम्मत नहीं थी। सो उसे उस लड़की के लिये पैदा हुये दर्द को दिल ही में बटोर कर पहाड़ी टीले की ओर बढ़ना पड़ा।

उपसंहार

और यहां आकर रामनाथ बोले—मियां ! कहानी यहां समाप्त होती है, लेकिन आप अचरज न करें, तो मैं इतना और कह दूं कि कहानी सच्ची है।

सच्ची है—हम सब अचकचा कर कह उठे।

"हां !"—रामनाथ ने कहा—सुधीर कुमार गुप्त की जगह आप रामनाथ को समझ लीजिये। पिछले साल यह घटना मेरे साथ बीती थी; मैं इसे कभी नहीं भूल सकता। काशकि मैं उस लड़की को देख पाता। रामनाथ की आवाज़ में एक दर्द पैदा हो चला था। हमारे दिल भर आये। हम बोल न सके। चुपचाप सोचने लगे—क्या आज भी ऐसी बातें हमारे हिन्दुस्तान में हो सकती हैं ?

गति की ओर

'विनोद'

जीवन आज गति की ओर !
बन प्रबल हिल्लोल मय छूने चला जग छोर।
जीवन आज गति की ओर।

कब कहा कोई पराया,
एक दुख-सुख एक काया,
मृत्यु-जीवन एक सबका—
एक सब की विश्व-माया,
पर अहमिका-जाल मे मति भ्रमित थी चहुँ ओर।
जीवन आज गति की ओर।

भिन्नता के बाध टूटे,
एकता के ज्ञान छूटे,
है सभी में एक प्रियतम,
मिलन का वरदान लूटें,
प्रेम सूरज की प्रभा में अन्ध-तम का भोर।
जीवन आज गति की ओर।

सब हृदय में आज आएं,
रक्त में घुल-मिल समाएं,
नस शिराओं रोम कूपों—
में चरन-रज डाल जाएं,
आज मानव-चरण-तल में है छिपा चित-चोर।
जीवन आज गति की ओर।

मुसलमान क्या चाहते हैं ?

मिस्टर बशीर अहमद, बैरिस्टर एट-ला, सम्पादक—"हुमायूं"

डाक्टर मोहम्मद अशरफ़ ने मुझे लिखा है कि मैं हिन्दी पढ़ने वालों की ख़िदमत में अर्ज़ करूं कि मुसलमान क्या चाहते हैं ? यह एक बहुत बड़ा सवाल है और इसका जवाब अगर पूरा पूरा दिया जाय, तो बहुत लम्बा हो जायगा। इसलिये मैं सिर्फ़ चन्द लफ़्ज़ों में अपना मतलब बयान करने की कोशिश करूंगा।

हिन्दुस्तान के मुसलमान हिन्दुओं से जुदा क़ौम हैं या नहीं, इस पर बहुत बहस हो रही है। किसी का कहना है कि हिन्दुओं-मुसलमानों में कोई फ़र्क़ नहीं, कोई कहता है वह एक दूसरे से बिल्कुल अलग अलग हैं।

यह ज़ाहिर है कि हिन्दुस्तान के तमाम मुसलमान मुल्क के बाहर से आकर यहां नहीं बसे। कुछ बाहर से आये; लेकिन अक्सर यहीं के रहने वाले हैं। मगर "बाहर, अन्दर" से क़ौमियत का फ़ैसला नहीं हो सकता।

इस बात से किसी को इन्कार नहीं कि इसलाम हिन्दू मत से एक जुदा सिस्टम है। इसलाम में जात-पांत नहीं। ज़ायदाद की बांट और तरह होती है। बराबरी ज़्यादह है। औरतों को ज़्यादह हक़ दिये गए हैं। बुतपरस्ती नहीं। एक ख़ुदा की इबादत की जाती है। नमाज़, रोज़ा, जक़ात, हज यह इसलाम के बड़े बड़े हुक्म हैं। मुसलमान अमूमन गोश्त खाते हैं। मुसलमान अमूमन शराब नहीं पीते। ऐसी ही बाज़ और बातें हैं। हिन्दुओं की बाज़ अपनी ख़ास बातें हैं।

लेकिन इससे भी किसी को इन्कार नहीं हो सकता कि हिन्दुस्तान में आकर इसलाम और हिन्दू-मत का एक दूसरे पर गहरा असर पड़ा। भक्ति की तहरीक, सिक्ख मत की इब्तिदा हिन्दू मत पर इसलाम के असर की वजह से हुई। इसी तरह मुसलमानों में बहुत सी रसमें हिन्दुओं से आईं। यानी हिन्दू-मुसलमानों पर एक दूसरे का इतना असर पड़ा कि बाज़ बातों में एक दूसरे में फ़र्क़ करना मुश्किल हो गया।

फिर भी हिन्दू-मुसलमान दो अलग अलग फ़िरक़े समझे गये और समझे जाते हैं। हमारे रेलवे स्टेशनों पर हिन्दू पानी, मुसलमान पानी की आवाज़ें यह याद दिलाने के लिये काफ़ी हैं कि हिन्दू-मुसलमानों में अभी बहुत सा फ़र्क़ है।

यह दुरुस्त है कि बाज़ तालीमयाफ़्ता हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे से ख़ूब मेल-जोल रखते हैं। बाज़ अब मिलकर खाते पीते भी हैं। कहीं कहीं मुसलमान हिन्दू की शादी भी होती है। लेकिन ये मिसालें सिर्फ़ कहीं कहीं मिलती हैं। यूरोप के असर से और सोशलिज़्म के असर से बाज़ नौजवान हम ख़याल हो गये हैं और ग़ालिबन यह हमख़याली आहिस्ता आहिस्ता बढ़ेगी। लेकिन इससे इन्कार नहीं हो सकता कि यह बातें ज़्यादातर एक छोटे से हल्क़े तक महदूद हैं और रहेंगी।

देहातियों में, अवाम में भी बाज़ बातें मिली-जुली पाई जाती हैं। ग़रीबों में ग़रीबी आम है। उनकी बाज़ मुश्किलें मुश्तरक हैं; लेकिन फिर भी हिन्दू-मुसलमान का ख़्याल अक्सर जगह पाया जाता है।

क्या इस फ़र्क़ को दूर करना हमारा फ़र्ज़ है ? क्या बेहतर यह है कि हम सब हिन्दुस्तानी यकसां हो जाएं ?

इसमें शुबहा नहीं कि यकसांनियत अच्छी चीज़ है। हम अमूमन पसन्द करते हैं कि दूसरे भी हमारी तरह के हो जाएं, लेकिन मेरे ख़्याल में यकसांनियत आजकल एक ख़ब्त यानी पागलपन की हद तक पहुँचती जाती है। आजकल हमें यही सीखना चाहिये कि हम दूसरों को उनके हाल पर छोड़दें। उनका इख़्तलाफ़ हमको बुरा मालूम न हो। उर्दू के एक बड़े शायर का क्या अच्छा शेर है—

गुलहाए रङ्ग रङ्ग से है जीनते चमन
ऐ ज़ौक़ इस जहां को है ज़ेब इख़्तलाफ़ से।

ज़बर्दस्ती दूसरे को अपने जैसा बनाने की ख़्वाहिश दीवानगी से कम नहीं। आजकल कौमियत, ख़ासियत जमहूरियत (जन तन्त्र) दुनिया को हमवार करने में लगे हैं। हर क़ौम अपने को बेहतर और दूसरी क़ौम को बदतर समझती है। यह दुनियां के तनज्जुल की निशानी है। तरक़्क़ी की निशानी नहीं है।

क़ुरान शरीफ़ में आया है 'इकराहे फी अल्लाह दीन' यानी मज़हब में कोई ज़बरदस्ती नहीं। हम हिन्दुस्तानियों का उसूल यह होना चाहिये कि एक दूसरे के साथ ज़बरदस्ती न करें, बल्कि हर एक को अपने तरीक़े पर चलने दें।

हिन्दुस्तान के मुसलमान सिर्फ यह चाहते हैं कि उनको उनके मज़हब पर चलने की पूरी इजाज़त हो। वह नमाज़ पढ़ें, रोज़ा रक्खें, ज़कात दें, क़ुरबानी दे सकें। उनकी माली हालत इतनी अच्छी हो कि वह इन्सानों की तरह ज़िन्दगी बसर कर सकें। वह अपने ज़ायदाद के क़ानून पर अमल कर सकें। उनकी औरतें ज़ायदाद में हिस्सेदार हों। वह अपना लिबास अपना तर्ज़े इसलाम, अपनी ज़बान सब क़ायम रख सकें।

इस में शक नहीं कि बाज़ बातों में हिन्दुस्तान के मुसलमान ख़ुद ग़ल्ती करते हैं। हिन्दू उनकी जगह होकर उनको बेहतरीन इन्सान नहीं बना सकते, लेकिन इसमें भी शुबहा नहीं कि एक गिरी हुई क़ौम के उभरने में हमसाया क़ौम की मदद और हमदर्दी भी दरकार होती है। हिन्दू-मुसलमान हममुल्क भाई हैं, उनको एक दूसरे की मदद करनी चाहिये।

हर मज़हब में अच्छी बातें होती हैं। अगर हम हिन्दू-मुसलमानों को अपनी अपनी जगह फूलने फलने देंगे, तो यक़ीनी बात है कि उनमें ख़ुद ब ख़ुद बाज़ बातें मुश्तरक़ हो जाएंगी। बाज़ चीज़ें जो इस वक़्त हिन्दू-मुसलमानों में मुश्तरक़ हैं, उनको तरक़्क़ी देना हमारा मुल्की फ़र्ज़ है। उर्दू दोनों क़ौमों की ज़बान है। यह दरअसल हिन्दू - मुसलमानों के मेल जोल से पैदा हुई है। जो लोग हिन्दू - मुसलमानों का मेल-जोल देखना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वह उर्दू को हर दिल अज़ीज़ बनाएं।

हिन्दुओं को चाहिये कि वह शौक़ से हिन्दी पढ़ें। जिस तरह मुसलमानों को अरबी-फ़ारसी से लगाव है, उसी तरह हिन्दुओं को संस्कृत और हिन्दी से प्रेम है। इस पर किसी को एतराज़ नहीं हो सकता। लेकिन इन चारों ज़बानों के दरम्यान एक ज़बान उर्दू है, जो हिन्दू-मुसलमानों के मेल-जोल और मिलाप से पैदा हुई। इसका क़ायम रखना, इसे तरक़्क़ी देना, इसे सीखना-सिखाना हर हिन्दू-मुसलमान का फ़र्ज़ होना चाहिये।*

अगर हिन्दू उर्दू को छोड़ देंगे, तो उसका नतीजा यह होगा कि मुसलमान यह समझ लेंगे कि हिन्दू किसी चीज़ को, जिसमें मुसलमानों का साझा हो, क़ायम नहीं रखना चाहते। फिर हिन्दू हिन्दी को और मुसलमान उर्दू को अपनी ज़बान समझेंगे और एक दूसरे से दूर दूर होते जाएंगे।

सच्चा हिन्दू वही है, जो किसी मुसलमान से नफ़रत न करे। हिन्दू को अपने दिल में प्रेम और मुसलमान को अपने दिल में मुहब्बत पैदा करनी चाहिये। यही सही इन्सानियत है।

* उत्तर भारत के रहने वालों की बोलचाल की ज़बान वही है, जिसमें संस्कृत, फ़ारसी और अरबी शब्दों की भरमार न हो। इस तरह की ज़बान को चाहे सहल उर्दू कहा जाय या सहल हिन्दी या फिर हिन्दुस्तानी कहा जाय—सम्पादक।

करबला की घटना का ऐतिहासिक महत्व

——:o:——

प्रोफ़ैसर मेहदीहसन एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट्

तारीख़ी ऐतबार से वाक़या करबला की बड़ी अहमियत है। मुहर्रम सन् ६० हिजरी (अक्टूबर सन् ६८० ई०) का यह वाक़या है, जिसने सब्र व रज़ा, तवक्कुल (ईश्वर पर भरोसा) इस्तक़लाल, धैर्य, ईसार (त्याग) क़ुरबानी, ख़ुदाशनासी और हक़ परस्ती (सत्य की पूजा) की सुनहरी मिसाल हमेशा के लिए क़ायम कर दीं जिसने तमाम दुनियां को अच्छे इख़लाक़ (सदाचार) अख़्तियार करने और दीनफ़रोशी (धर्म बेंचने) और ख़ुदग़रज़ी, नफ़्सानियत (विषय लालसा) से और ज़ुल्म जोर व तशद्दुद (हिंसा) से नफ़रत करने का बेहतरीन सबक़ पढ़ा दिया।

मादियत (भोगविलास) के मुक़ाबले में हज़रत इमाम हुसेन अलेहस्सलाम ने रूहानियत का जो आला नमूना पेश किया और दुनियावी ज़बरूतियत (स्वेच्छाचार) के मुक़ाबले में, दीनो इक़्तदार (आध्यात्मिक प्रभुत्व) को जिस तरह क़ायम रक्खा और इन्तहाये ज़ुल्म के मुक़ाबले में जो सब्र दिखाया और जिस हिम्मत व जुर्रत से काम लिया, दुनिया की तारीख़ में उसकी नज़ीर नहीं मिलती।

बिला शुबहा करबला का वाक़या सारी दुनिया की तारीख़ में सबसे बड़ा जानदार वाक़या है, यह बनी नौ इन्सान की तारीख़ में सबसे बड़ी ट्रेजडी है;

इमाम हुसेन अलेहसलाम का यज़ीद की बैत (अधीनता स्वीकार) न करने और ख़न्दह पेशानी से (हँसते हँसते) तमाम मुसीबतें बरदाश्त करने से असली मतलब यह था कि दुनिया में आज़ादी (Freedom of Consience) और अमन क़ायम हो, ख़ुदा की वहदानियत (एकता) और इसलाम की हक़्क़ानियत (सत्यता) हमेशा के लिए मुस्तहकम (दृढ़) हो जाये। बनी आदम (मनुष्य जाति) इनसानियत सीखें, सब्र व इस्तक़लाल से काम लें, दुनिया की बेसबाती (अस्थिरता) को मद्देनज़र रक्खें और उसकी हर जाई दौलत व सल्तनत पर गिरवीदह (लट्टू) होकर ज़ुल्म के मुरतकिब (करने वाले) न हों और ख़ुदग़रजी और नफ़सानियत को अपना शआर (कार्य-प्रणाली) न बनावें। उमवी गवर्नमेंट (उमइया ख़लफ़ीओं के शासन) ने उस ज़माने में जब्र व तशद्दुद और इस्तब्दादियत (स्वेच्छाचरिता) की इन्तिहा कर दी थी—न जान महफ़ूज थी न माल, न इज्ज़त। आज़ादी का तो क्या ज़िक्र है! अरब की नस्ली ख़सूसियतें और इस्लाम की अच्छी हकीकतें उस वक्त के मुसलमानों से जा चुकी थीं।

इस ज़ुल्म व जिहालत के तारीक ज़माने में एक भाई और एक बहन यानी रसूल सलम के लाड़ले, अली व फ़ात्मा के दुलारे हुसेन और उनकी जाँ निसार बहन जनाब ज़ैनब ने हक़ को क़ायम करने के लिए ऐसी ऐसी मुसीबतें बरदाश्त कीं, जिनके तसव्वुर (कल्पना) से दिल पानी पानी होता है। जनाब ज़ैनब ने हुसैनी कारनामे को कामयाब बनाने के लिए अजीब हैरत अंगेज़ काम किये। जब अहले मदीना ने इमाम हुसेन अलह अस्सलाम को औरतों की हमराही से रोका, तो जनाब ज़ैनब ने ऐसे नाज़ुक वक्त

में अपने भाई के साथ रहने का ही फ़ैसला कर लिया। वाक़ई आप हकीकत सनास थीं। आपने समझ लिया था कि इस सफ़र में औरतों और बच्चों का न होना बादशाह वक्त पर ख़रूज (चढ़ाई) का बहाना हो जायगा।

इसी मज़मून को अल्लामह डाक्टर मुहम्मद इक़-बाल मरहूम ने एक शैर में यों अदा किया है—

मुद्द आयश सल्तनत बूदे अगर
ख़ुद न कर दे बातुनी सामाँ सफ़र

(अर्थात् अगर उसका उद्देश्य राज्य लेना होता तो उसने इस तरह का सामान लेकर सफ़र न किया होता।) ग़रज़ इसी वक्त से जनाब ज़ैनब भाई की ऐसी रफ़ीक (साथी) बनीं कि इब्तिदा से इन्तिहा तक कोई मुसीबत ऐसी नहीं मिलती, जिसमें भाई के साथ बहिन का हिस्सा न हो। सफ़र की तकलीफों में, पियास और गरमी की नाक़ाबिल बरदाश्त मुसीबतों में, गोद के पाले हुए बच्चों की जुदाई की मुसीबतों में जनाब ज़ैनब हुसेन मज़लूम की शरीक थीं।

अगर इमाम हुसेन ने नाना का दीन (धर्म) बचाने के लिए अपना सूखा गला कटा दिया, तो जनाब ज़ैनब ने कमज़ोरों की आज़ादी और औरतों की हुरमत (सतीत्व) क़ायम रखने के लिए अपना शाना (कंधा) ज़ुल्म की रस्सी में बंधवा दिया। अगर इमाम हुसेन ने वक्त आख़िर सरमायादारी के ग़रूर को ढाने के लिए बोशीदह पैराहन (कुरता) जगह जगह से चाक करके ज़ेब तन किया (पहरा), तो जनाब ज़ैनब ने फ़ाक़हकशों, नादारों (दरिद्र), और लावारिस औरतों की हिमाअत में पुश्तनाक़ह (ऊंट की पीठ) पर खुले सिर बैठना और कूफ़ा व शाम के बाज़ारों में सरबरहना (नंगे सर) तशहीर (प्रदर्शित होना) गवारा कर लिया।

जिस तरह भाई ने असीरी (क़ैदी होने) और बेकसी के आलम में ख़ुतबा और वाज़ (व्याख्यान और उपदेश) के ज़रिये हक़ की असाअत (सत्य का प्रचार) की इसी तरह जनाब ज़ैनब ने भी वाज़ कहे। टूटे हुए दिल से वह वह मज़ा-मीन निकले जिन्होंने मुर्दा अरब में एक नई रूह फूंक दी। इस मुअज़्ज़मह (महान् स्त्री) की हिम्मत, बहादुरी, जुरात, शुजाअत (बहादुरी), इस्त-कलाल व सब्र ईसार से और आप की पुरमग़ज़ (सारगर्भित) तक़रीरों से क़यामत तक के लिए हिदायत (उपदेशों) का सरचश्मा जारी होगया। हुसैनी कारनामें को चार चान्द लग गये। इसलाम सच्चा साबित होगया। तबलीग़ रिसालत (मुहम्मद साहब के मिशन) की तकमील (पूर्ति) हो गई और रसूल अल्ला की तेइस बरस की रियाज़त (तपस्या) बरबादी से बच गई।

नोट— मैंने 'विश्ववाणी' के मार्च नम्बर में एक मज़-मून 'इस्लाम का महान सत्याग्रही' की सुरख़ी [शीर्षक] का देखा। बड़े शौक और दिलचस्पी से पढ़ा। यह मज़मून मि० विजय वर्मा ने बड़ी मिहनत से और छान बीन के बाद लिखा है। लेकिन बहुत मुख़्तसिर है। चूंकि सांस्कृतिक दृष्टि से करबला का वाक़िया निहायत अहम [महत्वपूर्ण] है और सिर्फ़ मुसलमानों ही के लिए अहम नहीं है, बल्कि सारी दुनियां के लिए और कुल आलम के लिए, हर क़ौम और हर मज़हब के लिए, इस लिए कि इस में बहुत से रूहानी सबक़ पिन्हां [छिपे हुए] हैं, मेरा दिल चाहा कि मैं 'विश्ववाणी' में मि० विजयवर्मा की ताईद करते हुए अपनी उस किताब का दीबाचा शाया [प्रकाशित] करा दूं, जो मैंने 'तारीख़ हुसैनी' के नाम से कई साल हुए लिखी थी, जो दर असल एक अरबी मक़तल का तर-जुमा है जिसे नये पैराये में लिखा गया और जिस में वाक़या करबला का मुख़्तसिर मगर जामें [पूरा] हाल मौजूद है। इस किताब को मुसलमानों ही ने नहीं, हिन्दू हज़रात ने, और सिख भाइयों ने भी बहुत पसन्द क़िया।—मेंहदी हसन

सम्प्रदायों की एकता और 'दीनबन्धु'

आचार्य गुरुदयाल मलिक

ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाईबिल में प्रभु यीशु का एक वाक्य है, जिसका अर्थ ऐसा किया जा सकता है कि "सब नियमों की सफलता प्रेम में ही पूर्ण रूप से होती है।" इस वाक्य का प्रभाव दीनबन्धु ऐराड्रूज के, जिनकी पहले वर्ष की मृत्युतिथि ५वीं अप्रैल को पड़ती है, जीवन भर की सामाजिक सेवाओं पर बहुत ही गहरा था। इसलिये जब कभी कोई ऐसा मामला उठ खड़ा होता और किसी दो व्यक्ति या किसी दो सम्प्रदायों या दलों के बीच समझौता कराने का प्रयत्न उन्हें करना होता, तो वे नियमों से भी ऊपर प्रेम को स्थान देते थे। वे सामाजिक रीति नीति या राजनैतिक विचारों या सरकार का लाल फ़ीते से घिरा दफ़्तर, इन सबों को सहज में पार करके हम सबों में जो एकही मानवता का कोमल स्थान रहता है, उसी को बारम्बार स्पर्श करने की चेष्टा किया करते थे। ऐसा करते समय उन्हें अपनी व्यक्तिगत दीनता कुछ भी नहीं मालूम देती थी और सरकारी हाकिमों और अफ़सरों के पास दौड़ते दौड़ते उन्हें जो कष्ट होता था, उनकी भी वे परवाह नहीं करते थे।

मुझे याद है कि पञ्जाब में मार्शल्ला के बाद जब उन्हें वहां जाने की इजाज़त मिली (१९१९), तब कई दफ़ा उन्होंने सरकारी अफ़सरों को, जो न्यायप्रियता दिखाने के लिये या फिर अपने किसी बन्धु को या सहकर्मी को बचाने के स्वार्थ में संकोच करने के साथ कहते···"हमें सरकारी नियम ऐसा करने से मना करता है' तब दीनबन्धु उठकर खड़े हो जाते और उसके कंधे पर प्रेम से हाथ रखकर हाथों में एक विचित्र ज्योति भर कर कहते—But my friend, love is Greater then all your laws···(पर मेरे मित्र तुम्हारे सब नियमों से भी बड़ा प्रेम है।) ऐसा कहने के बाद मैंने अनुभव किया है कि ज्यों ही उस अफ़सर ने यह शब्द सुने हैं, त्यों ही वह उग्र की जगह शान्त-स्थिर हो गया है और चुपचाप दोनों हाथों से अपनी भुजाओं को जकड़ कर कुर्सी में ढीला हो गया है और कह उठा है—All right Mr. Andrews, what you want will be done I shall send a note to the proper party. (अच्छी बात है मि० ऐराड्रूज, जो आप चाहते हैं वैसा ही किया जायेगा और जिसका इस मामले से सम्बन्ध है, उसे मैं एक पत्र भेज देता हूं।) लेकिन दुःख की बात तो यह हुआ करती कि जहां बड़े अफ़सर राज़ी हो जाते, वहां उनके मातहत अफ़सर और भी अकड़ बैठते और यही कारण था कि कई दफ़ा दीनबन्धु की कोशिशें जितनी जल्दी और जिस तरह सफल होनी चाहिये थीं, न होती थीं।

हिन्दू-मुसलमानों की एकता के सवाल पर उन्होंने कभी ख़ास मौक़े पर कुछ कहा हो, ऐसा अभी याद नहीं आ रहा है। लेकिन उनके एक दो इशारों से जो मुझे अभी याद है, उनके मन के रुख को समझा जा सकता है। एक दिन मैंने निराश होकर उनसे कहा था—"हिन्दू-मुसलमानों के वैर-भाव की खाई दिन-ब-दिन गहरी होती जा रही है और सरकार

इसी बहाने उधर इस मौके से लाभ उठाते हुए कहती जा रही है कि जब तक ऐक्य न होगा, तब तक स्वराज्य नहीं मिलेगा।" उन्होंने उस समय कहा था कि "But my dear friend, freedom is the soul's birth-right and it is far greater than Hindu-Muslim unity. What the soul demands no power on earth could ever resist for long For the soul is of God (आज़ादी आत्मा का अधिकार है और हिन्दू-मुसलिम एकता से बड़ी चीज़ है। और जो कुछ आत्मा मांगती है, उसे दुनिया की कोई शक्ति नहीं, जो उसका देर तक मुक़ाबला कर सके। क्योंकि आत्मा भगवान का अंश है।)

आत्मा से उनका क्या मतलब था और हिन्दू-मुसलमानों के परस्पर सम्बन्ध पर कैसे और क्या असर पड़ेगा, वह उन्होंने साफ़ करके मुझे नहीं बतलाया। लेकिन उस दिन रात को लाहौर का Tribune पढ़ते हुए उन्होने ख़ुदाई ख़िदमतगारों के विषय में कुछ पढ़ा। पढ़ने के बाद मुझे देते हुए बोले That is the way (यही वह रास्ता है)। ख़ुदाई ख़िदमतगारों के विषय में पढ़ो। पढ़ने के बाद मुझे मालूम हुआ है कि वे यह मानते हैं कि हिन्दू और मुसलमान सीटों के लिये लड़ने की अपेक्षा ख़ुदाई ख़िदमतगारों की तरह मिलकर प्रेम से एक दूसरे की सेवा करें। यदि वे एक हों, तब तो स्वराज्य आज ही मिल जायेगा। यही कारण था कि गांधी जी के सत्याग्रही-संघ और ख़ुदाई ख़िदमतगार तथा चीन में जो New life movement (नव जीवन-आन्दोलन) के लिये उनके दिल में सच्ची श्रद्धा और गहरी हमदर्दी थी।

एक और इशारा मैंने उस समय पाया, जबकि वे दिल्ली के मुंशी ज़काउल्ला साहेब का ज़िक्र कर रहे थे। ग़दर के दिनों में मुंशीजी को एक अंग्रेज़ ने अपने घर में छिपा कर उनका प्राण बचाया था। और तब से मुंशी जी इस जीवन-रक्षा के लिये विक्टोरिया रानी तथा उनके राज्य का गुण-गान किया करते थे। दीनबन्धु ने कहा कि "यदि हिन्दू और मुसलमानों के झगड़े के समय स्व० गणेशशङ्कर विद्यार्थी की तरह प्राण दे देने वाले भाव सबों के दिल में आ जायें, तब वे सब अपने धर्मों की सच्ची सेवा कर सकते हैं और अपने धर्म की भी रक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं। क्योंकि कोई भी धर्म किसी से दुश्मनी नहीं करता।

दीनबन्धु के लिये देश या धर्म से बड़ा मनुष्य था और उनका पूरा विश्वास था कि मानव प्रभु की ही एक मूर्ति है (Man is made in the image of God)। और जैसे प्रभु को पाने का प्रेम ही एक सच्चा रास्ता है, उसी तरह मानव मानव के द्वेष को दूर करने का प्रेम ही एक रास्ता है।

पर हम में से प्रेम करना जानते ही कितने हैं? हमारे तो प्रत्येक कार्य में स्वार्थ का एक बड़ा हिस्सा भरा रहता है। और ज्ञान द्वारा अद्वैत भाव कभी उत्पन्न हो भी जाये; लेकिन वह सहज कभी नहीं होता। लोग अमृत की तलाश में फिरते हैं। लेकिन अमृत से बड़ी वस्तु प्रेम है, इस ओर उनका ध्यान जाता ही नहीं! एक सूफ़ी ने ठीक ही कहा है—"जिन प्रेम रस चाख्या नहीं, उन अमृत पिया तो क्या हुआ"।

सम्पादकीय-विचार

साम्प्रदायिक एकता का मार्ग

गत १० मार्च को लाहौर में ब्रेडला हाल में एक साम्प्रदायिकता-विरोधी कान्फ्रेंस हुई। सभापति का आसन सीमान्त-गान्धी ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां ने ग्रहण किया। अपने सभापति के भाषण में ख़ान साहब ने कहा—

"तब तक वास्तव में कोई हिन्दू-मुसलिम एकता नहीं हो सकती, जब तक कि हम एक दूसरे के धर्म और संस्कृति को समझने की कोशिश नहीं करेंगे"

ख़ान साहब ने आगे चल कर कहा—

"हम बहुत अरसे से 'हिन्दू-मुसलिम की जय' का नारा सुनते आ रहे हैं; मगर खेद की बात है कि साम्प्रदायिक मतभेद मिटने के बजाय और अधिक बढ़ गये हैं। जो खाई सन १९१९ में विद्यमान थी, वह और अधिक चौड़ी होगई है। यह खेद की बात है कि हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के धर्म और संस्कृति को भी समझने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। जब तक वे ऐसा नहीं करते, तब तक यह समस्या यों ही बनी रहेगी। केवल लम्बे प्रस्ताव पास करने और भाषण करने से ही हम साम्प्रदायिक एकता के ध्येय तक नहीं पहुंच सकते।"

ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां साहब ने रोग की जड़ पर पहुंच कर सही-सही इलाज हमारे सामने रखा है। सच तो यह है कि चालीस करोड़ इन्सानों की भलाई का यह महामन्त्र है। बाबर से लेकर शाहजहां तक सारे देश में एक दूसरे की संस्कृति और धर्म को समझने के लिये एक लहर सी दौड़ गई थी। सैकड़ों हिन्दू और मुसलमान देश के कोने-कोने में "राम वही है रहिमान वही है" का पैग़ाम सुनाते फिरते थे। सन् १६७८ ई० में महाराजा सवाई जय सिंह ने सम्राट औरंगज़ेब के सामने इसी आदर्श को रखते हुये एक गंभीर चेतावनी दी थी—

"ख़ुदा केवल मुसलमानों का ही ख़ुदा नहीं, बल्कि तमाम इन्सानों का ख़ुदा है; उसके सामने तमाम हिन्दू और मुसलमान एक समान हैं। हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों का अनादर करना उस सर्व शक्तिमान परमात्मा की इच्छा की अवहेलना करना है।"

और कौन कहता है कि औरंगज़ेब ने अपने मित्र की इस गंभीर चेतावनी पर अमल नहीं किया? हमारा सांस्कृतिक जीवन फिर एक धारा में बहता हुआ दिखाई दे रहा था। सम्राट शाह आलम ने पूना के पेशवा को अपनी सल्तनत का वकील क़रार दिया था। सम्राट अकबर शाह ने ब्रह्म समाज के जन्मदाता प्रसिद्ध राममोहन राय को राजा का ख़िताब देकर और अपना वकील नियुक्त करके इंगलिस्तान भेजा। सिराजुद्दौला के सब से विश्वस्त अनुयायी राजा मोहन लाल ने प्लासी के मैदान में सिराजुद्दौला के लिये अपने प्राण दिये। मीरजाफ़र ने रज़ा ख़ां के स्थान पर महाराजा नन्द कुमार को अपना दीवान नियुक्त करने की ज़िद की। महाराजा रणजीत सिंह के कई मुख्य मंत्री मुसलमान थे। जगतगुरू शंकराचार्य और टीपू सुल्तान में गहरा प्रेम था। अन्त में सन् १८५७ में लाखों हिन्दू और मुसलमानों का देश की आज़ादी के प्रयत्न में साथ साथ ख़ून बहा। करोड़ों हिन्दू और मुसलमान जनता का सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन एक धागे में गुथा हुआ था। इतने में आये अंग्रेज़।

सन् १८१३ में सर जान मैलकम ने पार्लिमेण्ट की तहकीक़ाती कमेटी के सामने गवाही देते हुये कहा था—

"इस समय हमारा साम्राज्य इतनी दूर तक फैला हुआ है कि जो असाधारण ढंग की हुकूमत हमने भारत में स्थापित की है, उसके बने रहने के लिये केवल एक बात का हमें सहारा है; वह यह कि जो बड़ी-बड़ी जातियां इस समय अंग्रेज़ सरकार के अधीन हैं, वह सब एक दूसरे से अलग-अलग हैं, और जातियों में फिर अनेक जातियां और उप जातियां। जब तक यह लोग एक दूसरे से बंटे रहेंगे, तब तक हमें इस बात का डर नहीं कि कोई भी बलवा हमारी सत्ता को हिला सके।"

सन् १८३१ की जांच के समय मेजर जनरल सर लिओनल स्मिथ ने कहा था—

"अभी तक हमने साम्प्रदायिक पक्षपात के द्वारा मुल्क को वश में रखा है—और हिन्दू-मुसलमानों को तथा इसी प्रकार अन्य जातियों को एक दूसरे से लड़ाये रखा है।"

इसी सिद्धान्त के अनुसार धीरे-धीरे हमारी रगों में ऐसा ज़हर पेवस्त किया गया कि हम अपने ही भाइयों को एक दूसरे का दुश्मन समझने लगे। समाज-विज्ञान का प्रसिद्ध अमरीकन विद्वान् ई० ए० रास लिखता है—

"किसी राष्ट्र के चरित्र के अधःपतन के सब से प्रबल कारणों में से एक कारण उस राष्ट्र का किसी विदेशी क़ौम के अधीन हो जाना है......भारतवासियों के उच्चतर जीवन के ऊपर विदेशी शासन का प्रभाव ऐसा ही है, जैसा कि किसी चीज़ को पाला मार जाना।"

आज जब कि हम अपनी राष्ट्रीय बीमारी का निदान और इलाज ढूंढ़ने में व्यस्त हैं, उस समय हमें रोग की तह तक पहुंच कर इलाज की ओर ध्यान देना चाहिये। सांस्कृतिक एकता के जिस स्रोत को हमने अंग्रेज़ों कूट नीति के प्रभाव में आकर सुखा दिया था, उसे हमें फिर से प्लावित करना है। वही हमारे सूखे हुये राष्ट्रीय जीवन को हरा-भरा करेगी। इसीलिये हम ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां की इस समयोचित चेतावनी को आदर की दृष्टि से देखते हैं। मगर जैसा ख़ान साहब ने कहा है कि महज़ प्रस्ताव पास कर देने से या व्याख्यान दे देने से यह मसला हल नहीं हो सकता है, इसके लिये अमली कार्रवाई की ज़रूरत है। क्या हम ऐसी सूरत पैदा करने की कोशिश करेंगे, जिससे लाखों हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्म और संस्कृति को जानने और समझने का प्रयत्न करें?

शिक्षा बनाम संस्कृति

कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त अभिभाषण में सर तेज़बहादुर सप्रू ने बहुत सी काम की और मार्के की बातें कहीं। भारत की राजनैतिक समस्या पर प्रकाश डालते हुये सर सप्रू ने फ़रमाया—

(१) "जो लोग हिन्दुस्तान में रहते हैं, वे चाहे जिस मज़हब के हों, या ज़िन्दगी पर चाहे जैसे विचार रखते हों और उनके पूर्वज दुनिया के चाहे जिस हिस्से से यहां आये हों, वे सब एक राष्ट्र हैं। (२) आज की हमारी जो मौलिक समस्या है, वह है हिन्दुस्तान की आज़ादी, यानी हिन्दुस्तान वाले मिलकर अपनी क़िस्मत का फ़ैसला करें और दुनिया के राष्ट्रों के बीच में बराबरी का रुतबा हासिल करें। (३) इस उद्देश्य को हासिल करने के लिये, हमारे लिये मिलकर प्रयत्न करना सम्भव होना चाहिये। हमें बर्बादकुन नाइत्तफ़ाक़ी की ज़रूरत नहीं है बल्कि एकता की ज़रूरत है, जिससे हम फूल-फल सकें।"

सच पूछा जाय तो भारतीय जीवन को एक धागे में बांधने वाली यह एकता ही हमारा विशेष गुण थी। इस सरसब्ज़ ज़मीन में अंग्रेज़ों के क़दम पड़ने से पहिले, इस एकता के महामन्त्र को न सिर्फ़ अपने देश ही में हमने साधा था, बल्कि हमने दुनिया की संस्कृति को यह देन दी थी। भारत मन्त्री मिस्टर एमेरी आज हमें एकता का पाठ पढ़ाते हैं! किन्तु क्या "फूट फैलाओ और राज करो" की नीति

आज हमारी इस शोचनीय हालत की ज़िम्मेदार नहीं है ? क्या हमें इसके लिये अंग्रेज़ इतिहासकारों के उद्धरण पेश करने पड़ेंगे ? इसी अङ्क में अलग प्रकाशित डाक्टर सय्यद महमूद साहब का लेख 'संशयात्माओं' की आखें खोल देगा।

सर तेज़ बहादुर सप्रू को हम देश की उन इनी-गिनी आत्माओं में समझते हैं, जो सच्ची भारतीय संस्कृति के उपासक हैं। जिनकी नज़रों में किसी तरह का हिन्दू-मुसलिम भेद-भाव नहीं है। हमारे दिल में उनके लिये इज़्ज़त है, किन्तु जब वे यह कहते हैं कि भारत में अंग्रेज़ों की शिक्षा-नीति ने हमारी आध्यात्मिक और दिमाग़ी ज़िन्दगी को कोई नुक़सान नहीं पहुंचाया, वहीं हमारा और डाक्टर सप्रू का मत-भेद शुरू हो जाता है। उनकी नज़रों में अंग्रेज़ी शिक्षा ने भारतीय राष्ट्रीयता के हित में बड़े ज़बरदस्त उपकार किये हैं। पर हमारा इतिहास का ज्ञान सर सप्रू के इस कथन का समर्थन नहीं करता। ५ जुलाई सन् १८५३ को प्रसिद्ध इतिहास लेखक प्रोफेसर एच० एच० विलसन ने पार्लिमेंट की सिलेक्ट कमेटी के सामने बयान दिया था—

"वास्तव में हमने अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों की एक पृथक जाति बना दी है, जिन्हें अपने देशवासियों के साथ या तो बिल्कुल ही सहानुभूति नहीं है और यदि है, तो बहुत ही कम।"

इतिहास लेखक डाक्टर डफ़ ने लिखा है—

"मैं यह विचार प्रकट करने का साहस करता हूं कि भारत के अन्दर अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी साहित्य को फैलाने और उसे उन्नति देने को लार्ड विलियम बैण्टिङ्क का क़ानून भारत के अन्दर अंग्रेज़ी राज्य के अब तक के इतिहास में कुशल राजनीति की सब से ज़बरदस्त और अपूर्व चाल स्वीकार की जायेगी।"

२३ जून सन् १८५३ को सर चार्ल्स ट्रैवेलियन ने पार्लिमेण्ट की कमेटी के सामने बयान देते हुये कहा था—

"अपने यहां की शुद्ध स्वदेशी पद्धति के अनुसार मुसलमान हमें क़ाफ़िर समझते हैं, जिन्होंने इसलाम की कई सर्वोत्तम बादशाहतें मुसलमानों से छीन ली हैं,.....उसी प्राचीन स्वदेशी विचार के अनुसार हिन्दू हमें म्लेच्छ समझते हैं, अर्थात् इस तरह के अपवित्र अधर्मी जिनके साथ किसी तरह का भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं रक्खा जा सकता; और वे सब के सब मिलकर अर्थात् हिन्दू और मुसलमान, हमें इस तरह के आक्रामक विदेशी समझते हैं, जिन्हों ने उनका देश उनसे छीन लिया है और उनके लिये धन तथा मान प्राप्त करने के समस्त मार्ग बन्द कर दिये हैं। यूरोपियन शिक्षा देने का परिणाम यह होता है कि भारतवासियों के विचार एक बिल्कुल दूसरी ही ओर मुड़ जाते हैं। वे हमें अपने शत्रु और राज्या-पहारी नहीं समझते, बल्कि हमें अपने मित्र, अपने मददगार और बलवान तथा उपकार शील मनुष्य समझने लगते हैं।"

सन् १७५७ से लेकर १८५४ तक लगभग १०० वर्ष के अनुभव और परामर्श के बाद इंगलिस्तान के नीतिज्ञों को इस बात का विश्वास हुआ कि भारत-वासियों को अंग्रेज़ी शिक्षा देना इस देश में अंग्रेज़ी साम्राज्य को क़ायम रखने के लिये ज़रूरी है। आज हमारे देश में लगभग ९४ प्रतिशत अशिक्षित हैं और थोड़े से अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुये लोग अपने शेष देश-वासियों के सुख-दुख से उदासीन, सच्ची राष्ट्रीयता के भावों से कोसों दूर, एक दूसरे की गर्दन काटने को तत्पर और विदेशी सत्ता के निर्लज्ज पृष्टपोषक बने हुये हैं।

हम बड़े आदर से सर तेज़ बहादुर सप्रू से अंग्रेज़ी शिक्षा के मुताल्लिक़ फिर से ग़ौर करने के लिये कहेंगे। देश के सांस्कृतिक जीवन को सत्यानाश करके एक दूसरे को लड़ाने वाले अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुये नेता ही हैं।

अमानुषिक न्याय

गत ११ मार्च को इलाहाबाद हाईकोर्ट के दो सम्माननीय जजों ने कानपूर के एक मज़दूर कार्यकर्ता श्री खान मुहम्मद की आजन्म कारावास की सज़ा की अपील

खारिज करते हुए अपने फ़ैसले में लिखा—"जिन हालतों में श्री जान मुहम्मद ने अपना व्याख्यान दिया, उसको देखते हुये आजन्म कारावास की सज़ा उचित नहीं मालूम होती, किन्तु इस मामले में हम मजबूर हैं। इन्डियन पीनल कोड की धारा १२१ के मुताबिक़ फांसी या आजन्म कारावास की ही सज़ा दी जा सकती है। सज़ा घटाने का यदि कोई सवाल पेश होता है, तो उसकी अपील उचित अधिकारियों के पास ही होनी चाहिये।" कानपूर के सेशन जज श्री हएटर ने, जिन्होंने यह आजन्म कारावास की सज़ा दी थी, अपने फ़ैसले में यही लिखा था "इस मामले में जिन हालतों में मुझे आजन्म कारावास की सज़ा देनी पड़ रही है, उसका मैं विरोध करता हूं और इस सज़ा को मैं बिलकुल बेहूदा समझता हूं।"

हम मामले की बारीकियों में नहीं जाना चाहते। श्री जान मुहम्मद ने दस-बीस मज़दूरों को सशस्त्र क्रान्ति के लिये भड़काया या नहीं, यह प्रश्न भी हमारे सामने नहीं है। सवाल सिर्फ़ यह है कि जिस सज़ा को योग्य सेशन जज और हाईकोर्ट के सम्मान्नीय जज अनुचित समझते हैं, वह सज़ा श्री जान मुहम्मद को क्यों दी गई? १२१ दफ़ा का मुक़दमा चलाने के लिये प्रान्तीय सरकार से मंज़ूरी लेनी पड़ती है। हम पूछना चाहते हैं प्रान्तीय सरकार ने यह अमानुषिक मंज़ूरी क्यों दी? बहरहाल अब इस मामले की क्या सूरत हो सकती है? जैसा कि सेशन जज और हाई-कोर्ट के जजों ने इशारा किया है, केवल प्रान्तीय सरकार ही, सेशन जज के शब्दों में, इस बेहूदा सज़ा को न्यायोचित तरीक़े से घटा सकती है। मौसम-बे-मौसम प्रजातंत्र की रक्षा और न्याय के गीत गाने वाले सर मारिस हैलेट से क्या हम यह उम्मीद करें कि वह इस मामले में दख़ल देकर श्री जान मुहम्मद पर उपकार के हेतु से नहीं, बल्कि अपने जजों की आत्मा के बोझ को हल्का करने के लिये, इस सज़ा को घटायेंगे?

ताज़ीरात हिन्द की यह बेहूदा धारा आख़िर अब तक रह कैसे सकी? ताज़ीरात हिन्द के कर्ता लार्ड मैकाले के सामने भारतीय हितका तो कोई प्रश्न था ही नहीं। सन् १८३४ में गवर्नर जनरल की कौंसिल का ला मेम्बर बनकर वह भारत पहुंचा। इस नये पद के विषय में उसने १७ अगस्त सन् १८३३ को इंग-लिस्तान में रहते हुये अपनी बहिन के नाम एक पत्र में लिखा कि ला मेम्बर का पद—

"अत्यन्त मान और आमदनी का पद है। वेतन दस हज़ार पाउण्ड सालाना है। लोग मुझे विश्वास दिलाते हैं कि मैं कलकत्ते में पांच हज़ार पाउण्ड सालाना में शान के साथ रह सकता हूं और अपनी बाक़ी तनख़्वाह मय सूद के बचा सकता हूं। केवल उनचालीस साल की उम्र में तीस हज़ार पाउण्ड की रक़म लेकर मैं इंगलिस्तान वापस आ सकूंगा। इससे अधिक धन की मुझे कभी ख़्वाहिश भी न हुई थी।"

लार्ड मैकाले का काम भारतवासियों के लिये क़ानून बनाना था, किन्तु न वह भारतवर्ष की कोई भाषा जानता था और न भारतवासियों के इतिहास, और उनके रस्मो रिवाज इत्यादि से परिचित था। भारतवासियों, भारत की धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं और समस्त भारतीय चीज़ों से उसे पूर्ण घृणा थी। लार्ड मैकाले के बनाये हुये क़ानून "ताज़ी-रात हिन्द" और आइरिश पीनलकोड में ज़बरदस्त समानता है। आइरिश पीनलकोड के विषय में बर्क ने लिखा था—

"यह एक चतुर और पेचीदा यंत्र है, और कभी किसी भी कुशाग्रधी किन्तु सदाचार रहित मनुष्य ने किसी क़ौम पर अत्याचार करने, उसे दरिद्र बनाने और उसे आचार भ्रष्ट करने, तथा उनके अन्दर से मनुष्यत्व का नाश करने के लिये इससे अधिक उप-युक्त यन्त्र न रचा होगा।"

लगभग यही बात लार्ड मैकाले के इन्डियन पीनलकोड के विषय में कही जा सकती है। इस क़ानून का उद्देश्य भारतवासियों को निर्धन बनाना, उन्हें चरित्र भ्रष्ट करना, उनमें बेईमानी और मुक़दमें बाज़ी की आदत डालना और उन्हें सर्वथा बर्बाद करना

था। मारक्विस आफ हेसटिंग्स् ने सन् १८१९ में डाइरेक्टरों के नाम एक पत्र लिखा था, जिसमें उसने विस्तार के साथ यह दिखलाया था कि किस प्रकार सन् १७८० से लेकर उस समय तक नई अंगरेज़ी अदालतों ने बङ्गाल की जायदादों को बर्बाद कर दिया, देश के सुखी व समृद्ध किसानों को निर्धनता और दरिद्रता की नीचतम स्थिति तक पहुंचा दिया, उनके सदाचार का नाश कर दिया और पुरानी सामाजिक संस्थाओं को तोड़-फोड़ डाला। लार्ड मैकाले के पीनलकोड ने इस स्थिति को और भी ख़राब कर दिया। अंग्रेज़ विद्वानों की स्पष्ट सम्मतियां हैं कि संसार के किसी भी सभ्य देश में इतनी ज़बर-दस्त सज़ायें नहीं दी जातीं, जितनी भारत में।

दुनिया के दूसरे देशों में सभ्यता की प्रगति के साथ-साथ अमानुषिक क़ानून भी बदलते जा रहे हैं। किन्तु भारतवर्ष की छाती पर अब भी वही डेढ़ सौ वर्ष पुराने अमानुषिक क़ानून लदे हुये हैं कि जिनके अनुसार सज़ा देने में अंग्रेज़ जजों की भी आत्मायें कांप उठती हैं।

संसार की भोजन-समस्या

यों तो ज़ाहिरा तौर पर केवल यूरोप के मुल्क ही महायुद्ध में फंसे हुये दिखाई देते हैं, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से महायुद्ध का असर सारी दुनिया पर पड़ रहा है। क़रीब-क़रीब सभी मुल्कों की सारी शक्ति लड़ाई के लिये, या लड़ाई से बचने के लिये, जंगी सामान की तैय्यारियों में लगी हुई है। पनडुब्बियों और सुरङ्गों की वजह से सारी दुनिया का व्यापार क़रीब क़रीब ख़त्म सा हो गया है। दुनियां की अरबों जनता के सामने भूख की विकराल समस्या आज नाच रही है। यदि शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से इस समस्या पर विचार न किया गया, तो करोड़ों आदमी भूख से बे मौत मर जायेंगे। लन्दन से निकलने वाले "इस्टर नेशनल इकानामिक न्यूज़ सरविस" पत्र ने इस भयङ्कर समस्या को ज़ोरदार शब्दों में पेश किया है। "लण्डन टाइम्स" का हवाला देते हुये यह पत्र लिखता है—"नये सरकारी परवाने के मुताबिक़ उन सब अङ्गरेज़ किसानों को सज़ा दी जायेगी, जिनकी १९४१ की फ़सल सन् १९४० की फ़सल के मुक़ाबले में कम उतरेगी। नाज के दाम बेहद बढ़ रहे हैं। गृह मन्त्री ने एक फ़रमान निकाला है, जिसके मुताबिक़ ३० मई १९४१ तक कोई अङ्गरेज़ किसान नाज के दाम ५० फ़ीसदी से ज्यादह न बढ़ा सकेगा। सरकारी नाज के मुहक़मों में आलू की क़ीमतों पर भी ३० जून सन् १९४१ तक के लिये प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। फ़ौज की ज़रूरत के लिये बंधे हुये दाम पर आलू ख़रीद लिये जायेंगे। बचे हुये आलू ही जनता ख़रीद सकेगी। खाने की दूसरी चीज़ों के दाम भी बढ़ रहे हैं। इङ्गलैण्ड की सरकार ने एक कमेटी मुक़र्रर करदी है, जो व्यापारियों को ग़रीबों से मनमाना दाम वसूल करने से रोकेगी।

डेनमार्क

मुल्क में खाने-पीने की चीज़ों की बेहद कमी हो गई है। केवल सरकारी टिकट दिखा कर ही लोगों को रोटिया मिल सकती हैं। दिन भर में हर मनुष्य को केवल तीन रोटियां मिलती हैं, जिनमें दो राई की और एक गेहूं की। क़ीमत क़रीब-क़रीब दूनी हो गई है।

स्वीडन—

यहां भी लोगों पर भोजन के लिये प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। फ़सल बेहद ख़राब हुई है। रोटियों का वज़न घटाकर तीन चौथाई कर दिया गया है, क़ाफ़ी पचास फ़ीसदी, कोको चालीस फ़ीसदी और चाय में बीस फ़ीसदी कमी की गई है। हर मनुष्य को सात दिन में केवल छै छटाक चीनी मिलती है।

नार्वे—

"न्यू ज़रकर ज़ीतङ्ग" नामक एक जर्मन अख़बार लिखता है कि नार्वे में रोटी के वज़न में हर मनुष्य पीछे सत्रह फ़ीसदी कमी करदी गई है। सप्ताह में हर मनुष्य को केवल तीन छटाक मक्खन मिलता है। चाय के वज़न में ७५ फ़ीसदी कमी कर दी गई है। एक सप्ताह में एक मनुष्य को केवल दो छटाक चीनी

मिलती है। अण्डे का नाम नहीं। एक महीने में एक छटाक नहाने का साबुन और एक छटाक कपड़ा धोने का साबुन मिलता है।

फ़िनलैण्ड—

पहिले फ़िनलैण्ड मक्खन की बड़ी मिक़दार बाहर भेजा करता था। मगर वह सब बन्द हो गया है। अब हर मनुष्य को ढाई छटाक मक्खन एक सप्ताह में मिलता है। ३० सितम्बर से तो पनीर, मलाई और दूध पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। प्रति सप्ताह प्रति मनुष्य को पौने दो छटाक चीनी मिलती है। चाय और कोको पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। मगर बाज़ार में उनके दर्शन ही नहीं होते।

हालैण्ड—

प्रति सप्ताह प्रति मनुष्य को केवल पांच छटाक गोश्त मिलता है। बच्चों को इसकी आधी मिक़दार मिलती है और जो कड़ी मेहनत करते हैं, उन्हें एक छटाक गोश्त ज्यादह मिलता है। रोटियों के वज़न में हर मनुष्य के पीछे २५ फ़ीसदी की कमी कर दी गई है।

आस्ट्रेलिया—

यहां १६४१ में गेहूं की पैदावार कम से कम २५ फ़ीसदी कम होगी। गेहूं की क़ीमत २५ फ़ीसदी बढ़ गई है। आस्ट्रेलिया के किसान अपनी सरकार को इस बात की धमकी दे रहे हैं कि यदि गेहूं की क़ीमत स्थायी रूप से न बढ़ा दी गई, तो वे अगले साल से गेहूं बोना बन्द कर देंगे।

जमैका—

जमैका को यदि केलों का देश कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। लाखों रुपये का केला जमैका से हर साल इङ्गलिस्तान आता था। पिछले २२ दिसम्बर १६४० को इङ्गलिस्तान की सरकार ने जमैका को इत्तिला दे दी है कि जहाज़ों के ख़ाली न होने की वजह से-जमैका से केला न ख़रीदा जायगा। अब जमैका के केले का क्या हो? इसके लिये सरकार ने फ़ैसला दिया है कि वह अपने ख़र्च पर पन्द्रह लाख रुपये के केलों को नष्ट करवा देगी। इङ्गलिस्तान की सरकार ने यह फ़ैसला किया है कि इन्सान के लिये केला कोई ज़रूरी चीज़ नहीं है! निग्रो जमैका से केले ख़रीदने के बजाय इतने ही रुपयों के अब अमेरिका से सन्तरे ख़रीदे जायंगे।

जापान—

तोकियो की ख़बर है कि जापानी जनता दिन-ब-दिन लड़ाई के विरुद्ध होती जाती है। जापान में चावल की बेहद कमी हो गई है। जापानी चाय के शौक़ीन हैं; मगर तमाम होटलों को हुक्म हो गया है कि वे सिर्फ़ ५ बजे शाम से ५॥ बजे शाम तक होटल खोल सकते हैं, जहां हर जापानी को केवल दो कप चाय और एक बिसकुट मिल सकता है।

रूस—

भोजन पर सरकारी रुकावटें दिन-ब-दिन सख़्त होती जाती हैं। भोजन की दूकानों पर लोगों की फ़रलांगों लम्बी क़तार रोटी पाने के इन्तज़ार में घण्टों खड़ी रहती है। अमरीका से निकलने वाले एक पत्र का संवाद दाता जब साइबीरियन रेलवे से सफ़र कर रहा था, तो उसने देखा कि मुसाफ़िर एक-एक अण्डे के लिये पन्द्रह से तीस रुपये तक दे रहे थे। यह पता नहीं चलता कि रूस में सचमुच खाने की की कमी हो गई है या नाज इकट्ठा करके रक्खा जा रहा है।

चीन—

हांगकांग से निकलने वाला चीनी अख़बार "चाइना एयर मेल" लिखता है कि चीन में नाज की क़ीमत बेहद बढ़ रही है। १६३७ के नवम्बर में जितने नाज की क़ीमत १०७ रुपये थी," १६४० के नवम्बर में उतने ही नाज की क़ीमत बढ़ कर ११६१ रुपये हैं। चीनी सरकार का बयान है कि क़ीमतों की इस बढ़ती की वजह चावल की पैदावार की कमी नहीं है, बल्कि व्यापारियों में चावल इकट्ठा कर रखने की भावना है। २७ नवम्बर को मार्शल चियाङ्ग-काई-शेक ने मैजिस्ट्रेटों के नाम सख़्त ताक़ीद की थी

कि क़ीमतों की यह कैफ़ियत न रहे और काफ़ी मिक़दार में चावल की बिक्री का इंतज़ाम हो। मार्शल चियाङ्ग-काई-शेक के शब्द है—"कुछ ज़िला मैजिस्ट्रेटों ने मेरी हिदायतों पर अमल किया, मगर कुछ ज़िला मैजिस्ट्रेटों का काम अब तक संतोष जनक नहीं है। यह मैजिस्ट्रेट तो ऊपर से सरकारी हुकुम मानने का बहाना करते हैं; मगर अन्दर ही अन्दर सरकार के ख़िलाफ़ काम करते हैं। इस तरह के मैजिस्ट्रेटों को सख़्त सज़ा दी जायेगी।"

आगे चलकर इस बयान में लिखा है—

"हमें स्वार्थी अमीरों को सज़ा देनी पड़ेगी। हमें ग़रीब जनता को बचाना होगा। ये स्वार्थी अमीर कौन हैं और उन्होंने अपने चावलों को कहां छिपा रखा है? इसकी इत्तला हमें दस दिन के अन्दर दो। अगर ये लोग फ़ौरन अपना चावल का ढेर सरकार के सुपुर्द नहीं करते, तो ये हमारे राष्ट्रीय युद्ध के ख़िलाफ़ जापानियों को मदद देने वाले समझे जायेंगे। ऐसी सूरत में उनकी जायदाद फ़ौरन ज़ब्त करली जायगी और उन्हें जेलख़ाने में डाल दिया जायगा। जो मैजिस्ट्रेट मेरी इस हिदायत को सख़्ती से नहीं बरतेगा, उसको भी सख़्त सज़ा दी जावेगी। इस तरह के लोग किसी तरह की हमदर्दी के मुस्तहक़ नहीं हैं।"

चीनी सरकार की कोशिशों का क्या नतीजा हुआ, इसकी रिपोर्ट अभी अख़बारों ने हमें नहीं दी।

बल्कान—

बल्कान के देश रूमानिया, हंगरी, यूगोस्लेविया और बलगेरिया ही एक तरह से सारे यूरोप को गेहूं देते हैं। किन्तु १९४० की फ़सल के आंकड़े बताते हैं कि रूमानिया में बत्तीस फ़ीसदी, हंगरी में पच्चीस फ़ीसदी, यूगोस्लेविया में चालीस फ़ीसदी और बलगेरिया में गेहूं की फ़सल में बीस फ़ीसदी कमी हो गई है।

पच्छिमी अफ़रीका—

हर साल चार लाख टन कोको पैदा होता है। यानी दुनिया को जितनी कोको की ज़रूरत होती है, उसका दो तिहाई पश्चिमी अफ़रीका में होता है। इस कोको में से अस्सी हज़ार टन अमरीका और एक लाख टन इङ्गलैण्ड में जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि क़रीब दो लाख टन कोको की बिक्री का इस समय कोई इन्तज़ाम नहीं है। नाश की भयङ्कर तसवीर पश्चिमी अफ़रीका के किसानों के सामने घूम रही है। "मैनचेस्टर गार्जियन" नामक पत्र ने पश्चिमी अफ़रीका के किसानों के साथ काफ़ी हमदर्दी दिखाई है। मगर ख़ाली हमदर्दी से उनका बेड़ा पार नहीं होगा।

हिन्दुस्तान—

लड़ाई की वजह से हिन्दुस्तान का काफ़ी का बाज़ार क़रीब-क़रीब ख़त्म हो चुका। गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया के नये फ़रमानों द्वारा काफ़ी की फ़सल को बेहद घटा दिया गया है। इसका असर दक्षिण भारत के हज़ारों किसानों पर पड़ा है।

अमरीका की तरफ़ प्रेम दिखाने के लिये इङ्गलिस्तान की सरकार ने यह फ़ैसला किया है कि आइन्दा वह अमरीका की ही बनी हुई रुई इस्तेमाल करेगी। सन् १९४० में इङ्गलैण्ड ने अमरीका से रुई की सात लाख गांठें ख़रीदी थीं और इसके एवज़ में अमरीका को अस्सी हज़ार टन रबर दी थी। हिन्दुस्तानी रुई का दूसरा सबसे बड़ा निकास जापान था। मगर चीन-जापान की लड़ाई की कैफ़ियत से यह भी बेहद मन्दा पड़ गया है। रुई बोने वाले लाखों भारतीय किसानों का क्या होगा—इस सम्बन्ध में भारतीय सरकार बिलकुल चुप है।

तीसरी सब में बड़ी चोट इस लड़ाई की वजह से भारतीय किसानों को पहुंची है वह है, चीनी के बाज़ार का बन्द हो जाना। इण्डियन शुगर सिन्डीकेट के अन्दाज़ के मुताबिक़ लाखों टन चीनी इस वक़्त गोदामों में बन्द पड़ी है। विविध प्रांतीय सरकारों ने इस सम्बन्ध में ख़ासी बेरुखी दिखाई है। इसका नतीजा यह है कि करोड़ों टन ईख बिहार और पूर्वीय युक्त प्रांत के खेतों में खड़ी-खड़ी बर्बाद हो रही है।

न गुड़ बनाने के कोल्हू किसानों के पास हैं और न मिल वाले ही इस ईख को लेने को तैयार हैं। भारत के ग़रीब किसान कैसे इस चोट को सह सकेंगे, यह एक गम्भीर समस्या है।

ग़रज़ यह कि जैसे-जैसे युद्ध ज़ोर पकड़ता जा रहा है, वैसे-वैसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मन्दा पड़ता जा रहा है। इस युद्ध से अमरीका के बनियों के लिये भले ही स्वर्ग की दौलत के फाटक खुल गये हों और वे हथियार, बारूद, हवाई जहाज़ और पनडुब्बियां बनाकर ब्रिटिश साम्राज्य की सारी दौलत क्यों न अपने पास इकट्ठा कर लें; किन्तु संसार के सामने भयङ्कर नाश घूम रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के बन्द हो जाने से भोजन की समस्या अधिक से अधिक भयङ्कर होती जा रही है। अभी तो लड़ाई का यह दूसरा वर्ष है। आसार साफ़ कह रहे हैं कि १९४४ से पहिले यह लड़ाई किसी तरह बन्द नहीं होगी। किन्तु यदि यही कैफ़ियत रही, तो हथियारों की लड़ाई से भयङ्कर यह भूख की लड़ाई सारी दुनिया का नाश कर देगी।

क्या रुज़वेल्ट का जनतन्त्र यही है ?

अटलाण्टा (अमरीका) यूनिवर्सिटी का मुख पत्र "फाइलान" लिखता है—अमरीका के अख़बार अरसे से इस बात का ऐलान कर रहे हैं कि मेक्सिको में क्रान्ति होने वाली है। किन्तु न अब तक यह क्रान्ति हुई और न आगे ही उसके होने के कोई आसार नज़र आते हैं। इस प्रचार के पीछे हमारे और मेक्सिको के सम्बन्ध का लम्बा इतिहास है। मेक्सिको के साथ पहले युद्ध में अमरीका ने उसका बहुत सा हिस्सा छीन कर अपने में मिला लिया था। उसके बाद फिर और बहुत सा हिस्सा छल और बल से अमरीका ने हड़प लिया। वुडरो विलसन ने यह कहा था—

"मेक्सिको को सब में ज़्यादा ज़रूरत आर्थिक मदद की है। किन्तु अपनी आज़ादी के नाश और अपनी ग़ुलामी की क़ीमत पर उसे यह आर्थिक मदद नहीं चाहिये।

"मैं इलज़ाम नहीं लगा रहा। मैं तो केवल अमरीका के उस तरीके को दोष दे रहा हूं, जिसके अनुसार मेक्सिको को आर्थिक सहायता देकर हमने उसके हाथ पैर बांध दिये और उसके लिये हिलने-डुलने तक की स्वाधीनता नहीं रखी। यहां तक कि उसकी राजनैतिक स्वाधीनता एक तरह से ख़त्म हो गई।"

इस समय की सारी बहस मेक्सिको की तेल की खानों को लेकर हो रही है। प्रसिद्ध मेक्सिकन प्रोफ़ेसर सीज़र आरटिज़ ने हाल में मेक्सिको में व्याख्यान देते हुए कहा था—

"अमरीकन आयल कम्पनियां हमें यह विश्वास करने के लिए कहती हैं कि मेक्सिको का तेल उन्होंने खोज निकाला, वरना वह दफ़न पड़ा रहता। उनकी इस खोज से ही देश की ख़ुशहाली बढ़ी। मैं यह कहता हूं कि इन विदेशी व्यापारियों ने नहीं, बल्कि वहां के मूल निवासी "इण्डियन्स" ने तेल को खोज रखा था और वे उसे 'चपोपोते' कहते थे।

"किन्तु जब सदियों बाद उत्तर के इन विदेशियों ने उसे देखा, तो वे कहने लगे—'यह हमारे लिये सुनहला मौक़ा है!' उसके बाद जो बात उन्होंने खोज कर निकाली, वह यह कि ये इण्डियन कितने मूर्ख हैं कि इन्हें यह भी पता नहीं कि वे कितनी महत्वपूर्ण वस्तु के स्वामी हैं! उन्होंने तेल का नहीं, बल्कि हमारे भोलेपन का पता लगाया।

"उसके बाद जो कुछ हुआ, उससे शर्म से गर्दन नीची हो जाती है। जब मेक्सिको के किसानों ने इन विदेशियों को अपनी ज़मीनें बेचने से इनकार किया, तो जाने कैसे उनकी नृशंस हत्याएं करदी गई। किन्तु चूंकि ज़मीन की मालियत के लिये क़ानूनी दृष्टि से पट्टे का होना ज़रूरी है, इसलिये इन मुरदा किसानों के अंगूठों में स्याही लगाकर बैनामे के काग़ज़ों पर उनके अंगूठे के निशान लगा लिये गये। मृत किसानों के निशान अंगूठों वाली यह सभ्यता लेकर अमरीकन, डच और अङ्गरेज़ मेक्सिको पहुंचे। संघर्ष लाज़िमी था।"

सन् १९१० में मैक्सिको में क्रान्ति हुई और मज़दूरों को उसमें काफ़ी अधिकार मिले। किन्तु जब उन्होंने उस अधिकार का प्रयोग करना चाहा, तो तेल कम्पनी वालों ने इनकार कर दिया। मामला सुप्रीम कोर्ट में गया, तो सुप्रीम कोर्ट ने मज़दूरों के हक़ में फ़ैसला दिया। उस फ़ैसले को भी कम्पनियों ने मानने से इनकार किया। इस पर मैक्सिको के राष्ट्रपति ने इन कम्पनियों पर सरकारी क़ब्ज़ा शुरू किया। किन्तु अमरीका ने अपने परराष्ट्र सचिव कोर्डल हल की मारफ़त इसमें तरह-तरह के अड़ङ्गे डाले। तेल कम्पनियों ने कहा कि इनकी मालियत डेढ़ अरब रुपये की है। मैक्सिको की सरकार ने जवाब दिया कि इनकम टैक्स के वक्त इन्हीं कम्पनियों ने अपनी मालियत कुल पैंतालीस करोड़ रुपया बताई थी। इस पर मैक्सिको की सरकार मामले को गत जुलाई में पंचायत के सुपुर्द कराने को तय्यार हुई। मगर कम्पनियों ने इससे इनकार कर दिया। यही नहीं, उन्होंने ज़िद की कि तेल की खानें उन्हें लौटा दी जांय और मज़दूरों से मनमाना सुलूक करने की उन्हें अनुमति मिले। मैक्सिकन सरकार इसे किसी तरह मानने को तय्यार नहीं है। अमरीका के परराष्ट्र सचिव मिस्टर हल बजाय इसके कि मैक्सिकन सरकार और ग़रीब मैक्सिकनों का साथ देते, वे मैक्सिकन सरकार को धमकी पर धमकी दे रहे हैं कि यदि मैक्सिकन सरकार ने तेल कम्पनियों के मालिकों की बात न सुनी, तो अमरीकन जहाज़ों की तोपें मैक्सिको को मिसमार कर देंगी।

मैक्सिकन सरकार मिस्टर हल की इस चेतावनी को डाकुओं की चेतावनी से अधिक नहीं समझती। संसार की शान्ति के नये मसीह और जनतन्त्र की रक्षा के लिये आकुल मिस्टर रूज़वेल्ट क्या अपने ही पड़ोसी के साथ न्यायोचित बर्ताव करेंगे? यदि नहीं तो बक़ौल मैक्सिकन राष्ट्रपति के मैक्सिको का बच्चा-बच्चा अपने देश की आज़ादी की हिफ़ाज़त के लिये मरने पर कटिबद्ध मिलेगा।

मौजूदा युद्ध और अरब क़ौमें—

"न्यूयार्क टाइम्स" में भूतपूर्व मिस्री मन्त्री अब्दुल रहमान अस्सम बे का निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित हुआ है—

"पिछली उन्नीसवीं सदी के मध्य तक अरब क़ौम बिलकुल स्वाधीन थी। उस पर किसी यूरोपियन देश की हुकूमत नहीं थी और गत महायुद्ध के बाद से अपनी स्वाधीनता को फिर से हासिल करने के उनके प्रयत्न निरन्तर बढ़ते रहे हैं। पिछले महायुद्ध के बाद बहुत सी नीम आज़ाद अरबी रियासतें क़ायम कर दी गईं। इससे थोड़े दिनों के लिये तो अरब क़ौम धोखे में रही। मगर बाद में वह समझ गई की यह आज़ादी की नहीं बल्कि ग़ुलामी की चमकदार मूरतें हैं।

"जब मौजूदा लड़ाई शुरू हुई, तो अरबों ने समझा शायद अब हमारी उम्मीदें पूरी उतरें। हर अरब दिल में यह ख़याल पैदा हुआ कि इस लड़ाई से और हमारे भविष्य से मुमकिन है कोई सम्बन्ध हो। हर अरब दिल में यूरोपियनों की ग़ुलामी से सख़्त नफ़रत भरी हुई है।

"अरब अपने स्वभाव से और अपने मज़हबी अक़ीदों से आज़ादी पसन्द इनसान हैं। इस लड़ाई का चाहे जो नतीजा हो; लेकिन अरब विदेशियों की ग़ुलामी की जी तोड़ कर मुख़ालफ़त करेगा; चाहे वह ग़ुलामी सीधी हो या क़ानूनी हो। फिर राष्ट्रीय अभिमान के ख़याल से नहीं, बल्कि अपनी हिफ़ाज़त के भी ख़याल से वे यह ज़रूरी समझते हैं कि पूर्वीय भूमध्य सागर की अरब क़ौमें अपना एक अलग राष्ट्रीय संघ क़ायम करें।

"राजनैतिक कारणों के अलावा भी अरब अपने जातीय और सामाजिक सुधार के लिये आपस में एकता क़ायम करना चाहते हैं। मिस्र जैसे कुछ अरब मुल्क हैं, जो घने बसे हुये हैं और इराक़ और सीरिया जैसे मुल्कों की आबादी बहुत कम है। अरब राष्ट्रीय संघ की स्थापना न केवल अरबों के राजनैतिक,

सांस्कृतिक और सामाजिक फ़ायदे के लिये ज़रूरी है, बल्कि उसकी वजह से पच्छिमी ताकतों की आपस की ईर्षा भी ख़त्म हो जावेगी और भूमध्य सागर में राजनैतिक शान्ति रहेगी।

"इस तरह का अरब राष्ट्रसंघ अरब देशों को दुनिया के उन्नत देशों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देगा। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार भी बढ़ेगा।

"पिछले महायुद्ध में ब्रिटेन ने इस तरह के अरब राष्ट्रसंघ के कायम करने में मदद देने के बीसों वादे किये और इस बार भी कर रहे हैं। जर्मनी और इटली भी अरब राष्ट्रसंघ की स्थापना के वादे कर रहे हैं।"

वह दिन दूर नहीं जब श्री अरसम बे पर इन दोनों के वादों की सच्चाई ज़ाहिर हो जायगी। पश्चिमी कूटनीति ने किसी बात में इतना कमाल हासिल नहीं किया, जितना वादों और सन्धियों को तोड़ने में। अरब राष्ट्र की वास्तविक भलाई विदेशियों के वादों पर नहीं, बल्कि अपने संगठन और अपनी शक्ति पर निर्भर है।

क्या इथियोपिया हेल सिलासी को मिलेगा ?

एसोशियेटेड प्रेस आफ़ अमेरिका की एक ख़बर है—

"प्रसिद्ध महिला कार्यकर्त्री सिलविया पैङ्कहर्स्ट अमरीकन निग्रो में इस बात का प्रचार कर रही हैं कि उन्हें बड़ी से बड़ी तादाद में इथियोपिया को स्वाधीन करने में मदद देना चाहिये। इस तरह अमरीकन निग्रो न केवल अपने इथियोपियन निग्रो भाइयों को मदद देगा, बल्कि दुनिया में जनतन्त्र की रक्षा के आन्दोलन में हाथ बटायेगा।"

सम्राट हेल सिलासी कहां हैं, इसका किसी को पता नहीं। कुछ लोगों का अनुमान है कि वे एङ्ग्लो इजिप्शियन सूडान में हैं। हेल सिलासी के साथ उनका बड़ा लड़का भी है। एक अमरीकन पत्र लिखता है—

"यह ताज्जुब की बात है कि अब तक अंग्रेजों ने एक भी ऐलान हेल सिलासी को इथियोपिया वापिस देने का नहीं निकाला। वे इस मामले में ख़ामोशी अख़्तियार किये हुये हैं।"

मिस्टर चर्चिल की सरकार बीसों बार इस बात का ऐलान कर चुकी है कि वह जनतन्त्र की हिफ़ाज़त के लिये लड़ रही है और इस बात को भी उसने नहीं छुपाया कि उसके जनतन्त्र में केवल यूरोप के गोरे राष्ट्र ही हैं। सच तो यह है कि लेवल और सेमुएल होर के कुचक्र से ही इथियोपिया को अपनी स्वाधीनता से हाथ धोना पड़ा था। इटली और जर्मनी दोनों गोरे राष्ट्र हैं। कल को उन्हीं के साथ बैठकर अंगरेज़ों को गोलमेज़ परिषद में सुलह की बातें करनी हैं। इस आपसी समझौते की ख़ुशी में काली, भूरी और पीली कौमों के पुलाव की दावत उड़ाई जायगी। मिस्टर चर्चिल इतने नासमझ नहीं हैं कि वे इथियोपिया की स्वाधीनता का ऐलान करके उस महान दावत के पकवानों में से एक पकवान कम कर दें।

अमरीका युद्ध के पथ पर

पिछले महीने अमरीका की सरकार ने जो उधार पट्टा क़ानून पास किया है, उस पर अपना वक्तव्य देते हुये प्रेज़िडेण्ट रूज़वेल्ट ने कहा—

'मानवता कभी भी स्थायी रूप से हथियारों द्वारा लादी हुई ग़ुलामी की पद्धति को स्वीकार न करेगी।"

श्री रूज़वेल्ट ने अमरीका को समस्त जनतन्त्र राष्ट्रों के लिये एक तोपख़ाना बताया और अमरीकन जनता को चेतावनी दी—

"त्याग और क़ुरबानी के लिये तय्यार रहो। तुम्हें बहुत कम मुनाफ़ा मिलेगा, तुम्हारे टैक्स ज़्यादा बढ़ा दिये जायंगे, दिन में ज़्यादा घंटों तक तुम्हें मज़दूरी करनी पड़ेगी।"

आगे चल कर आपने कहा—

"यदि जनतन्त्र का यह युद्ध असफल रहा, तो बोलने और विचारने की स्वतन्त्रता और धार्मिक स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी।"

आज अमरीका ब्रिटेन, यूनान, चीन आदि को मदद देने के लिये तय्यार है। क्या जुलाई १९३७ से चीन को जापान के विरुद्ध मदद की आवश्यकता न थी? फिर अमरीका पौने चार साल चुप क्यों रहा? क्या यह सच नहीं है कि यदि अमरीका जापान की मदद न करता, तो चीन-जापान लड़ाई इससे पहले ही समाप्त हो जाती?"

लाखों और करोड़ों रुपयों का लड़ाई का सामान ब्रिटेन और अमरीका ने पिछले तीन-चार बरसों में जापान के हाथों बेचा है। अभी पिछले साल ही ब्रिटेन ने जापान को मदद देने के लिये बर्मा-यूनान सड़क बन्द करवा दी थी। आज यदि अमरीका चीन को मदद देने को तत्पर है, तो क्या इसका कारण यह नहीं है कि सुदूरपूर्व में आज अमरीका के हित ख़तरे में हैं। क्या अमरीका को आज जापान की ओर से भयंकर ख़तरा नहीं दिखाई दे रहा है?

जापानी पत्र "असाही शिम्बून" इस वक्तव्य पर लिखता है "प्रेज़िडेण्ट रूज़वेल्ट अमरीका को युद्ध की ओर ले जा रहे हैं। अमरीका को आज हिम्मत है कि वह अमरीकन जहाज़ों में लड़ाई का सामान चीन भेजे। जापान के पास कोई चारा नहीं, सिवाय इसके कि वह सख्ती के साथ अमरीका के इस उद्देश्य को उसी तरह विफल करे, जिस तरह विफल करने का इरादा चान्सलर हिटलर ने किया है।"

श्री चर्चिल ने पार्लिमेंट के अपने वक्तव्य में स्वीकार किया है कि उधार पट्टा बिल पास होने के बाद १५ दिन के अन्दर अंग्रेज़ों के २,४०,०४६ टन वज़न के जहाज़ जर्मनी ने डुबा दिये। पिछले दिनों अमरीकन पत्रों ने स्वीकार किया है कि जर्मन हवाई जहाज़ प्रशान्त महासागर के जापानी द्वीपों को अड्डा बनाकर वहाँ भी गोले बारी कर रहे हैं। १० मार्च से १८ मार्च तक ब्रिटेन में जर्मन गोले बारी से लगभग ढाई हज़ार आदमी हताहत हुये हैं। ग़रज़ यह कि जब से अमरीका का उधार पट्टा बिल पास हुआ है, तब से युद्ध की भयङ्करता बेहद बढ़ गई है।

श्री रूज़वेल्ट आज यूरोप के छोटे-छोटे राष्ट्रों की ग़ुलामी के लिए चिन्तित हैं; किन्तु चालीस करोड़ आबादी वाले भारत की ग़ुलामी के लिए उनके पास सहानुभूति का एक शब्द नहीं। भारत की बात तो दूर रही, अपने ही देश के डेढ़ करोड़ निग्रो भाइयों के साथ भी रूज़वेल्ट मानवीय व्यवहार करने को तय्यार नहीं। ऐसी सूरतों में मानवीय स्वाधीनता के लिये लड़ाई का यह दावा सर्वथा मिथ्या है। ब्रिटेन के साम्राज्यवाद को स्थायी बनाना ही अमरीका की इस सहायता का उद्देश्य है। वार्साइ के परिणाम से भिन्न इसके कोई दूसरे परिणाम न होंगे।

मगर प्रश्न यह उठता है कि इस मदद का असली नतीजा अमरीका के लिये कम से कम जापान के साथ लड़ाई की शिरकत है। अमरीका की जहाज़ी शक्ति प्रशान्त महासागर में, अमरीकन विशेषज्ञों के अनुसार, उतनी मज़बूत नहीं है कि वह जापानी-जल शक्ति का मुक़ाबला कर सके। फिर क्या वह अटलाण्टिक और प्रशान्त महासागर दो जगह युद्ध का दायित्व उठा सकेगा? जापान का अगला क़दम क्या होगा इसका फ़ैसला जापानी परराष्ट्र सचिव की हिटलर और मोलोतोव की मुलाक़ात के बाद ही होगा। प्रसिद्ध जापानी पत्र "निशी निशी" लिखता है—"हिन्द चीन और दक्षिणी समुद्री इलाक़े में जापान की नीति निश्चित है। वह उसके लिये बेहद ज़रूरी है। बग़ैर उस ओर बढ़ने के जापान का काम नहीं चल सकता। इसकी परवाह नहीं कि अमरीकन बयान और हरकतें चाहे जितनी चेतावनी से भरी हुई हों, मगर जापान को उनकी मुतलक़ परवाह नहीं।"

यदि एक बार जापान को रूस की ओर से निष्पक्षता का आश्वासन मिल गया, तो फिर जापान पूरी शक्ति के साथ अमरीका का मुक़ाबला करने के लिये तय्यार हो जायगा। वैसी सूरत में युद्ध दो क्षेत्रों

में बंट जायगा। इसी अप्रेल तक इस बात का फ़ैसला हो जायगा।

एक मात्र निःशस्त्र देश

नो फ्रण्टियर न्यूज़ सरविस की एक ख़बर है—रेयक्जाविक—दुनिया में केवल आइसलैण्ड ही ऐसा स्वाधीन देश था, जहां कोई फ़ौज नहीं थी। जब से अङ्गरेज़ों ने रक्षा के बहाने आइसलैण्ड पर क़ब्ज़ा किया है, तभी से ज़िन्दगी में पहली बार—आइसलैण्ड वालों ने वर्दियों से लैस सैनिक देखे हैं।

आइसलैण्ड बरफ से ढका देश है बिलकुल उत्तर में। वहां के निवासी एकदम शान्ति प्रिय और स्वभाव से ही दार्शनिक हैं। समन्वयात्मक धार्मिक अध्ययन का उन्हें बेहद शौक है। भारतीय सभ्यता पर भी वहां पुस्तकें लिखी गई हैं। गान्धी जी की अहिंसा की नीति को वहां ख़ास तौर पर लोगों ने समझने और उसे पसन्द करने की कोशिश की है। अपने ढङ्ग का दुनिया में वह अकेला अहिंसात्मक देश है जहां न फ़ौज है और न हथियार।

क्या हम आशा करें कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी लड़ाई की समाप्ति पर आइसलैण्ड को स्वतन्त्र कर देंगे?

ब्रिटेन के लड़ाई के उद्देश्य

एक अमरीकन पत्र "एन० एफ० एन० एस० " में नीचे लिखी ख़बर छपी है—

"आज हज़ारों ब्रिटिश नागरिक इस बात का आन्दोलन कर रहे हैं कि ब्रिटेन का लड़ाई का वास्तविक उद्देश्य क्या है? वे इसलिये ब्रिटेन का लड़ाई का उद्देश्य जानना चाहते हैं क्योंकि उनके देश में ऐसे कुचक्री दल हैं, जो इस लड़ाई से अपनी साम्राज्य वादी नीति को और अधिक आगे बढ़ाना चाहते हैं। यह बिलकुल सच है। इसमें ज़रा भी मुबालग़ा नहीं। मुझे इस बात का व्यक्तिगत ज्ञान है। पिछली फ़रवरी में पश्चिमी यूरोप के एक देश के परराष्ट्र मन्त्री हाउस आफ़ लार्ड्स के एक प्रमुख सदस्य के साथ लंच खा रहे थे। खाना खाते-खाते उन्होंने उक्त लार्ड महोदय से अङ्गरेज़ों के वास्तविक लड़ाई के उद्देश्य पूछे। उक्त लार्ड ने जवाब दिया—'जो कुछ हमारे पास है, उस पर दख़ल बनाये रखना और जो कुछ मिल सके, उस पर क़ब्ज़ा करना।' वह विदेशी नीतिज्ञ अङ्गरेज़ों का बड़ा तरफ़दार था। यह जवाब सुनकर वह बिलकुल हतोत्साह हो गया। उसे ऐसा लगा जैसे किसी ने उसे चांटा मार दिया हो। इङ्गलैण्ड आने की उसकी सारी ख़ुशी चली गई। समाचार पत्रों ने इस लार्ड का नाम ज़ाहिर नहीं किया। उस वक्त तो मुझे नहीं मालूम हुआ, किन्तु अब मैं इस लार्ड का नाम जानता हूं। जनरल दे गाल के पत्र "फ़्री फ्रेंच" ने भी इस ख़बर को छापा है और उसमें इस बात का ज़िक्र किया है कि लार्ड क्रेवे ने भी ऐसे ही साम्राज्यवादी विचार ज़ाहिर किये हैं। दे गाल तो दुश्मनों के आदमी नहीं, वह तो अङ्गरेज़ों के पक्के मित्र हैं और अङ्गरेज़ी रुपयों से ही उनका अख़बार निकला है।"

अङ्गरेज़ साम्राज्यवादियों की इस नीयत पर अब किसी को भी सन्देह नहीं रह गया कि उनकी मन्शा इस युद्ध से साम्राज्यवादी नीति को ही मज़बूत करना है। रही जनतन्त्र की रक्षा की बात, सो हाथी के दांत दिखाने के और होते हैं और खाने के और।

मेताक्सा का जनतन्त्र

"न्यूज़ सरविस" की एक ख़बर है—

न्यूयार्क······किसी को इस बात में आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि यूनानी एक बहादुर क़ौम है और लड़ाई के मैदान में उनके सिपाही जान की बाज़ी लगाकर लड़ते हैं। युद्ध क्षेत्र से जो ख़बरें आ रही हैं, उसमें यूनान के राजा जार्ज दूसरे और प्रधान मन्त्री मेताक्सा दुनिया की नज़रों में प्रजातन्त्र के रक्षक की हैसियत से चमक उठे हैं। वैसे अपने रवइये से यूनानी सरकार उतनी ही स्वेच्छाचारी और निरंकुश सरकार है, जितनी दुनिया में कहीं कोई हो सकती है। इसलिये प्रधान मन्त्री को जनतन्त्र के रक्षक के रूप में पाना एक आश्चर्य ही है।

जार्ज दूसरा अङ्गरेज़ों की कठपुतली के रूप में सन् १९३५ में गद्दी पर बैठा। उसके गद्दी पर बैठने के समय जो मत लिये गए वे हिटलर और मुसोलिनी की प्लेबीसाइट के तर्ज़ के ही थे। जनतन्त्र वालों के बैलट बाक्स एक रङ्ग के थे और राजतन्त्र वालों के दूसरे रङ्ग के। रायलिस्ट यानी राजतन्त्रवादी ही पोलिंग बूथों का प्रबन्ध कर रहे थे और जो राजा के ख़िलाफ़ राय देता था, उसे धमकाया जाता था।

जब से मेताक्सा प्रधान मन्त्री बना, उसने तमाम मज़दूर संघों को ग़ैर क़ानूनी क़रार दिया। राजा ने अपने दस्तख़ती फ़रमान से बोलने और लिखने की जो स्वाधीनता दी थी, उसको ख़त्म कर दिया। सन् १९३९ की गर्मियों में यूनानी पुलिस अफ़सर जर्मनी भेजे गये थे, ताकि वे जर्मन पुलिस गेस्टापो से अत्याचार और सताने के तरीक़े सीख कर आ सकें। मेताक्सा ने ख़ुद बर्लिन की मिलीटरी एकेडमी में तालीम पाई है। अब तक उसके विचार बिलकुल नाज़ीवादी थे। यह सही है कि उसकी सरकार 'एण्टी एक्सिस' यानी धुरी राष्ट्रों के ख़िलाफ़ है, किन्तु वास्तविक अर्थों में तो वह यूनानी हितों के पक्ष में बिलकुल भी नहीं है। और किसी भी कल्पना के मुताबिक वह जनतन्त्र की हिमायती तो है ही नहीं।

अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ कब तक यूनान के सम्बन्ध में लोगों को धोखे में रख सकते हैं। आज वह जर्मनी का दुश्मन है, इसलिये भले ही उसकी तारीफ़ करलें, किन्तु अङ्गरेज़ी बयान हमेशा सचाई के ट्रेडमार्क नहीं।

पराजित चीनी प्रान्तों की भीतरी हालत

पिछले चार बरस के लगातार युद्ध के परिणाम स्वरूप क़रीब दो तिहाई चीन पर जापानियों का क़ब्ज़ा है। वहां की कोई ख़बर बाहर नहीं आ पाती। सौभाग्यवश पीपिंग से निकलने वाले एक चीनी पत्र पर हमारी नज़र पड़ी। उसमें पराजित चीनी प्रान्तों की भीतरी हालत की जो तसवीर खींची गई है, वह इस तरह है—

"पीपिंग···दो बरस पहले उत्तरी चीन की जो हालत थी, उससे आज की हालत बिलकुल भिन्न है। हर जगह जापानियों की भीड़ दिखाई देती है। सड़कों पर, सार्वजनिक जगहों पर, दूकानों में और होटलों में जापानी ही जापानी दिखाई देंगे। साइनबोर्डों पर भी अब जापानी लिपि दिखाई देती है। जापानी बच्चों की तालीम के लिये नई-नई इमारतें बन गई हैं, जहां पीठ पर बस्ते लादे जापानी लड़के चहकते हुये जाते हैं। पुराने चीनी स्कूल, जिनके बनाने में बेहद धन और परिश्रम ख़र्च हुआ था, इस समय जापानी सैनिकों के क़ब्ज़े में हैं। जिन ख़ूबसूरत फ़र्शों पर बच्चे बैठकर पढ़ते थे, वहां अब घोड़े बांधे जाते हैं। जापानी अपने साथ अपना राष्ट्रीय खेल 'बेसबाल' भी लाये हैं और जहां खुली जगह पाते हैं खेलते हैं। चीनी कन्या पाठशालाओं की डारमेटरी तक में जापानी बेसबाल खेलने घुस जाते हैं।

"सड़कों पर पहले की अपेक्षा ज़्यादा भीड़ होती है। लेकिन इनमें दो तिहाई फ़ौजी सिपाही होते हैं। रेलों में भी जापानियों की भीड़ रहती है। पहले और दूसरे दर्जे तो जापानियों के लिये बिलकुल रिज़र्व होते हैं। तीसरे दर्जे में चीनी बैठ सकते हैं। स्टेशनों के नाम पहले अङ्गरेज़ी में भी लिखे रहते थे, जिनसे विदेशी यात्रियों को सुविधा रहती थी। किन्तु अङ्गरेज़ी को तो अब जड़ से उखाड़ कर फेंक दिया गया। घड़ियें तोकियो टाइम से चलती हैं। फ्रेंच और ब्रिटिश पट्टों के इलाक़ों में पहले तो स्टैण्डर्ड टाइम चलता रहा, मगर बाद में उन्हें भी तोकियो टाइम स्वीकार करना पड़ा।

"पराजित चीनी प्रान्तों की आर्थिक स्थिति बेहद ख़राब है। चीनी डालर के दाम बिलकुल घट गये हैं। अमरीका के एक डालर में १३·३० चीनी डालर चढ़ते हैं। सन् १९४० में तो २० चीनी डालर चढ़ते थे। यह कैफ़ियत जापानियों के रिज़र्व बैङ्क की है। नाज की क़ीमत बेहद बढ़ गई है। ज़मीन की क़ीमत और लगान भी बेशुमार बढ़ गया है। उत्तरी चीन बेहद ठण्डा है। वहां जाड़े में कोयले की ज़रूरत

होती है। मगर चीनियों को मुंह मांगा दाम देने पर भी कोयला नसीब नहीं होता।"

जापानी राजनीतिज्ञ बयान के बाद बयान शाया करते हैं कि उत्तरी चीन पराधीन नहीं है, बल्कि वहां चीनी राष्ट्रीय सरकार है और वह अपनी मरज़ी से जापानियों के साथ सहयोग कर रही है। हमें बताया जाता है कि "पूर्वीय एशिया के नव निर्माण" में चीनी अपनी मरज़ी से जापानियों का साथ दे रहे हैं। पराजित चीन में ज़बान बन्दी के बीसों क़ानून, गिरफ़्तारियों की भरमार, और घर-घर की तलाशी क्या चीनियों की मरज़ी को ज़ाहिर करते हैं? सत्तर फ़ी सदी व्यक्तियों को तो रोज ही जापानी पुलिस से गम्भीर चेतावनी मिलती रहती है। जो चीनी शिक्षक जापानी हुक्कामों के तरफ़ आदर नहीं दिखाता, उसे गिरफ़्तार कर लिया जाता है।

किन्तु यह ख़ुशी की बात है कि सब जापानी इस तरह के निर्दयी नहीं हैं। भले जापानी जब किसी चीनी पर अत्याचार होते देखते हैं, तो उनके दिल दया से भर जाते हैं। यही शुभ लक्षण भी है। गत वर्ष एक जापानी मित्र मण्डल जापान की इस नृशंस लड़ाई का विरोध करते हुये चीन में घूमा था और जगह-जगह लाखों की तादाद में चीनी जनता ने इन दयालु जापानियों का स्वागत किया था। सच पूछा जाय, तो यही वीर जापानी जापान के वास्तविक पथ प्रदर्शक हैं। यदि जापान सचमुच में एशिया की कल्याण कामना से एशिया का नव-निर्माण करना चाहता है, तो उसका एक मात्र उपाय है बहादुर चीन को आज़ाद करके अपने पापों का प्रायश्चित्त करना। वरना दुनिया की नज़रों में अत्याचारी अत्याचारी है, चाहे वह गोरे रङ्ग का हो या पीले रङ्ग का।

चीनी विश्व विद्यालयों की रक्षा

ज़िन्दगी और मौत के इस भयङ्कर युद्ध में लगे रहने पर भी चीनी नवीन चीन के निर्माण पर काफ़ी ध्यान दे रहे हैं। अपने विश्व विद्यालयों की उन्हें बेहद क़द्र है। उनके विद्यार्थियों की सूची में ऐसे नेता पैदा होंगे, जिन पर चीन का भविष्य निर्भर है। इसीलिये लड़ाई के बावजूद भी वे अपने विश्व विद्यालयों की रक्षा करते हैं। चुङ्गकिङ्ग के चीनी पत्र की एक ख़बर है—

"युन्नान में तुङ्गची राष्ट्रीय विश्व विद्यालय को हटाकर दूर स्ज़ेकवान भेजा जा रहा है। जापान के हिन्द-चीन के रास्ते से जो हमले होंगे, उनमें यह विश्व विद्यालय नष्ट न हो जाय, इसलिये उसे हटाया जा रहा है। इस विश्व विद्यालय में कालेज आफ़ मेडीसन, एञ्जीनियरिङ्ग, साइन्स, सीनियर मिडिल स्कूल, औद्योगिक स्कूल और एक जरमन लैंग्वेज स्कूल शामिल हैं। इसके विद्यार्थियों की संख्या ११०० है। स्ज़ेकवान तुङ्गची से ७५० मील दूर है। सवारी का कोई प्रबन्ध नहीं। हर विद्यार्थी को १५० से २०० डालर सफ़र ख़र्च के लिये दिया गया है, ताकि वह अपनी किताबों और सामान को अपनी पीठ पर लाद कर पैदल स्ज़ेकवान पहुंच सके।

नाज़ी जर्मनी की भीतरी हालत

अमरीका के पाक्षिक पत्र नो फ्रण्टियर न्यूज़ सरविस में छपा है—

"एक सम्माननीय अमरीकन यात्री, जो जर्मनी की सैर करके पिछले दिसम्बर में साइबीरिया और प्रशान्त महासागर होते हुए अमरीका पहुंचे हैं, कहते हैं कि जर्मनी में युद्ध के विरुद्ध भावना बढ़ती जाती है। जर्मनी भर में लोगों की यह आम राय है कि केवल दो व्यक्ति देश को नाश होने से बचा सकते हैं। एक हरमेन रशनिग और दूसरे मार्शल गोअरिङ्ग। गोअरिङ्ग हमेशा ईमानदार और योग्य प्रबन्धकों को ही अपने साथ रखता है। उसका शासन प्रबन्ध भी न्यायोचित और अच्छा होता है। यहूदियों के विरुद्ध भी वह बहुत कहने सुनने पर सख़्ती करता है। प्रशन स्टेट लाइब्रेरी गोअरिङ्ग के मातहत है। वहां यहूदी बड़ी आज़ादी से पढ़ सकते हैं, किन्तु, जो लाइब्रेरियां गाबेल्स के मातहत हैं, वहां यहूदी घुस तक नहीं सकते।

"इस यात्री के कहने के अनुसार जर्मनी में नाज की उतनी कमी नहीं है, जितनी बताई जाती है! वैसे नाज पर प्रतिबन्ध है, किन्तु साधारण मनुष्य उन प्रतिबन्धों को गम्भीर नहीं समझता। यहूदियों के लिये परिस्थिति बेशक नाजुक है, क्योंकि वे केवल चार बजे से पांच बजे शाम तक ही जिनिस ख़रीद सकते हैं। कोयला तो उन्हें कोई बेचता ही नहीं। वे टेलीफ़ोन और रेडियो भी अपने घरों में नहीं लगा सकते। किन्तु इस यात्री के अनुसार यहूदी-विरोधी भावना अब बेहद घट गई है। बहुत से जर्मन ऐसे हैं, जो यहूदियों के साथ बेहद दया का बर्ताव करते हैं। बहुत से जर्मन अधिकारी तो यहूदी जनता को आने वाली आपत्तियों की पहले से सूचना दे देते हैं।

"सन् १९४० में करीब दस हज़ार यहूदियों को जर्मनी से दक्षिणी फ्रान्स भेज दिया गया है। बहुत से यहूदी पोलैण्ड भी भेजे गये, किन्तु वहां के जर्मन शासकों ने उन्हें वापस कर दिया।

"जर्मन जनता को बाहर की सच्ची ख़बरें बिलकुल नहीं मिलतीं, मगर बहुत से जर्मन, जो अङ्गरेज़ और नाज़ियों, दोनों के वार बुलेटिन पढ़ते हैं, उनका कहना है कि सच्चाई दोनों बयानों के बीच में ही है। ब्रिटिश अखबार रायल एयर फ़ोर्स के हमलों से जर्मनी को जितना नुकसान बताते हैं, वह सब झूठ है। किन्तु जर्मन जितना कम कहते हैं वह भी ग़लत है।"

इस यात्री के अनुसार ये सरकारी बयान और फ़रमान एतबार के काबिल नहीं। सच्चाई न इनमें रहती है और न उनमें।

वाइ० एम० सी० ए० का प्रशंसनीय कार्य

स्वीजर लैण्ड का एक पत्र लिखता है—"जिनेवा ...अन्तर्राष्ट्रीय वाइ० एम० सी० ए० लड़ाई के लाखों क़ैदियों को सुविधा पहुंचाने में बेहद परिश्रम कर रही है। १२ मुल्कों के ७० कन्सनट्रेशन कैम्पों में एक लाख पुस्तकें बांटी गई हैं। खेल-कूद का बहुत सा सामान भी इन क़ैदियों का जी बहलाने के लिए भेजा जा रहा है। जर्मनी में अङ्गरेज़, फ्रान्सीसी और पोलिश क़ैदी हैं, उनकी सुविधा के लिये एक डेनिश, तीन स्वीड, एक जर्मन और एक अमरीकन कार्यकर्ता काम कर रहे हैं। ये लोग करीब चौदह लाख लड़ाई के क़ैदियों की देख भाल करते हैं। इनमें से लाखों फ्रान्स के संरक्षित हिस्से में क़ैद हैं। खाने की कमी, मलेरिया, टायफ़ायड आदि बीमारियां इन क़ैदियों की हालत को और भी बदतर बना रही हैं।"

हमें इन चौदह लाख अङ्गरेज़, फ्रान्सीसी आदि क़ैदियों के साथ पूरी हमदर्दी है। इनकी मदद के सम्बन्ध में वाइ० एम० सी० ए० जो कुछ भी कर रही है, प्रशंसा की बात है। इन क़ैदियों का कसूर केवल यह है कि ये अपने देश से मोहब्बत करते थे। इसी तरह के अपने देश को प्यार करने वाले ५-७ हज़ार और राष्ट्रीय क़ैदियों की ओर हम अन्तर्राष्ट्रीय वाइ० एम० सी० ए० का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। ये बदनसीब देवली और भारत की दूसरी जेलों में बन्द हैं। क्या इनकी सुविधा के लिये भी अन्तर्राष्ट्रीय वाइ० एम० सी० ए० कोई कदम उठायेगी?

क्वेकर रिकार्डों की रक्षा

एक अमरीकन साप्ताहिक पत्र में लन्दन की भेजी हुई ख़बर छपी है—

"लन्दन...इस लड़ाई के दौरान में इङ्गलिस्तान की क्वेकर समिति के पुराने रिकार्डों के नष्ट हो जाने की सम्भावना थी। अमरीका के हैवर्फ़ोर्ड कालेज की लाइब्रेरी ने फ़ैसला किया है कि वह अपने ख़र्च पर इन तमाम रिकार्डों की फ़िल्म बनवाले। इस तरह से इङ्गलिस्तान के विद्वानों के ऐतिहासिक महत्व के उल्लेख बच भी जायंगे और उन्हें देखने की हर एक को सुविधा भी हो जायगी। अब तक अमरीका के सैकड़ों विद्यार्थी इनके अध्ययन के लिये इङ्गलिस्तान आया करते थे।"

इस ख़बर को पढ़ कर हमारे दिल में एक नई भावना पैदा हुई। भारतवर्ष की अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री, पुराने हस्तलिखित ग्रन्थ और ऐतिहासिक

उल्लेख हमारे गौराङ्ग मेहरबान समय-समय पर भारत से लेजा कर ब्रिटिश म्यूज़िअम में इकट्ठा करते रहे हैं। इन उल्लेखों में और हस्तलिपियों में हिन्दू, बौद्ध और मुग़ल कालीन इतिहास के अतिरिक्त और बहुत सी सामग्री है। लन्दन और इङ्गलिस्तान के दूसरे शहरों को धुंआधार बमों से बरबाद किया जा रहा है। इस बात की बड़ी आशंका है कि भारत की यह बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री भी नष्ट हो जाय।

इस समय जब कि हमारे यहां के श्रीमन्त करोड़ों रुपये वार फण्ड में दान दे रहे हैं, क्या हम आशा करें कि इसमें से कुछ रक़म इङ्गलिस्तान में रखे हुए भारत के प्राचीन ग्रन्थों के फ़िल्म बनाने में ख़र्च की जाय, ताकि यह बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री सम्पूर्ण रूप से नष्ट होने के ख़तरे से बच सके? क्या हैवर्फ़ोर्ड कालेज की लाइब्रेरी की तरह हमारे यहां के विविध विश्वविद्यालयों की लाइब्रेरियां इस काम को अपने हाथ में लेंगी? इससे दो फ़ायदे होंगे, एक तो हमारी बहुमूल्य सामग्री हमारे देश में सुरक्षित आ जायगी। दूसरे हमारे सैकड़ों विद्यार्थी, जो इतिहास के रिसर्च के लिये इङ्गलैण्ड जाते हैं, उनके जाने-आने की तवालत और उनका खर्च बच जायगा।

अदल सम्मेलन

पिछले महीने बम्बई में सर तेज बहादुर सप्रू की सदारत में कुछ बाअसर हिन्दुस्तानी अदल सम्मेलन के नाम से इकट्ठा हुये। सम्मेलन ने इस बात की चर्चा की कि हिन्दुस्तान की राजनीति में जो विषम परिस्थिति इस समय पैदा हो गई है, उसका क्या हल हो सकता है। बहस-मुबाहिसे के बाद सम्मेलन इस नतीजे पर पहुँचा कि वायसराय की कार्य समिति को फिर से सङ्गठित किया जाय और उसमें ज़िम्मेवार ग़ैर सरकारी सदस्यों को नामज़द किया जाय। सर तेज ने फ़रमाया "मालूम होता है ब्रिटिश नीतिज्ञता बिलकुल दिवालिया हो चुकी है। यदि मिस्टर अमेरी भारत की वास्तविक परिस्थिति और भारतवासियों की भावना जानना चाहते हैं, तब उन्हें समुद्र पार बैठकर तक़रीरें झाड़ने की ज़रूरत नहीं, बल्कि उन्हें यहां आकर अपने आप चीज़ें देखनी चाहियें। यदि वे चाहें, तो अपने साथ पार्लिमेण्ट के आधे दर्जन मेम्बरों को भी ला सकते हैं। यदि लार्ड विलिङ्गडन को दक्षिण अमरीका, और दूसरे अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञों को साम्राज्य के दूसरे हिस्सों में मिशन लेकर भेजा जा सकता है, तब उन्हें यह बेहूदा मालूम होता है कि चालीस करोड़ इन्सानों की क़िस्मत का फ़ैसला समुद्र पार से रेडियो पर तक़रीरें करने से हो।"

चालीस करोड़ ग़ुलाम, जो अपनी राजभक्ति के प्रदर्शन में ज़रा भी संकोच नहीं करते, उनके लिये किसके दिल में क़द्र हो सकती है? दुनिया में कहीं ग़ुलामों की भी इज्ज़त हुई है? सर तेज जिस सत्याग्रह को गुमराही कहकर घातक बताते हैं, उसी ने पिछले बीस वर्षों में संसार के आदर के पैमाने में हिन्दुस्तान को ऊंचा उठाया है। फिर हिन्दुस्तान की मदद की ज़रूरत किसे है और मिस्टर अमेरी किसलिये हिन्दुस्तान तशरीफ़ लायें? अङ्गरेज़ नीतिज्ञ इस देश की तरफ़ अपनी साम्राज्यवादी नीति को किसी तरह भी बदलने को तय्यार नहीं हैं। फिर आज उनके सामने हिन्दू-मुसलिम मतभेद का ज़बरदस्त बहाना भी है।

गान्धी जी इस बात को दर्जनों बार साफ़ कर चुके हैं कि हिन्दू-मुसलिम समझौते का जब तक ठोस आधार न हो, तब तक समझौता हवाई बुनियादों पर क़ायम नहीं हो सकता। सवाल यह है कि अङ्गरेज़ बिला यह बताये कि वे हमें कितने अधिकार देंगे, हमसे चाहते हैं कि हम आपस में पहले से ही हिस्सा बंटवारा करलें। अब भी मुल्क में ऐसे समझदार हिन्दू और मुसलमान मौजूद हैं, जो ईसप की कहानियों की सौतेली मां की तरह बच्चे को दो टुकड़े करके मां बनने का दावा नहीं पेश करेंगे।

सर तेज के राजनैतिक विचार चाहे जैसे हों; मगर उसूल और तबियत से वे सच्चे हिन्दुस्तानी हैं। हिन्दू-मुसलमान सबको उन पर एतबार है। वे सच्ची भारतीय संस्कृति के दावेदार हैं। हिन्दू और मुसलमान

दोनों को मिलाने के लिये वे एक पुल का काम कर सकते हैं। यदि अपने सम्मेलन की स्टैण्डिङ्ग कमेटी के जरिये वे मुल्क के आपसी मतभेद को दूर करने में समर्थ हो सकें, तो वे देखेंगे कि मिस्टर अमेरी भागते हुये हिन्दुस्तान आते हैं। अङ्गरेज़ जाति एकता और दृढ़ता पर विश्वास करती है और जिनमें उसे ये गुण दिखाई देते हैं, उसी का वह आदर करती है।

शेर खानी मोल

मार्च महीने की 'विश्ववाणी' में भारतीयता का हामी सम्राट शेरशाह, नामक लेख पढ़ कर डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त लिखते हैं—

"मुझे श्री अब्दुल बाक़ी ख़ां का लेख पढ़ कर ख़ुशी हुई। मैं शेरशाह के सम्बन्ध में और इत्तला भेज रहा हूं, जिसे लोग नहीं जानते। स्व० नगेन्द्र नाथ बसु प्राच्यविद्यार्णव अपने महत् ग्रन्थ 'बंगेर जातीय इतिहास' की दूसरी जिल्द में लिखते हैं—'अब्बास ख़ां कृत समकालीन मुसलिम इतिहास 'तारीख़े शेरशाही' में लिखा है कि—गौड़ के बादशाह शेरशाह ने मुख़्तलिफ़ सूबों के ब्राह्मणों से दोस्ती की।' एक दूसरे समकालीन मुसलिम इतिहास 'वक़ी तात-ए-मुतक़ी' में लिखा है कि—'शेरशाह मुसलमान शेख़ों और सम्माननीय पण्डितों के साथ बैठ कर भोजन करना पसन्द करता था।' श्री नगेन्द्र नाथ बसु अपनी उसी पुस्तक में आगे लिखते हैं कि—'बंगाल के रहरी ब्राह्मणों में शेर ख़ानी मोल नामक एक फ़िर्क़ा है। ये वे ब्राह्मण हैं, जो शेरशाह के साथ बैठ कर खाना खाने की वजह से जात से बाहर निकाल दिये गए थे।"

इस पर डा० दत्त लिखते हैं—विविध धर्मों के समन्वय का अकबर का जो महान प्रयत्न था; शेरशाह के प्रयत्न उसकी पेशबन्दी थे।

सिद्धान्त की बात

पिछले चुनाव से लेकर अब तक सिन्ध में चार दफ़ा मिनिस्ट्री बदल चुकी। बाहर के लोगों ने हैरत के साथ सिन्ध असेम्बली के विविध दलों और ख़ास कर कांग्रेस पार्टी के रवय्ये को समझने की कोशिश की है। मगर वे नाकामयाब हुए। कांग्रेस पार्लिमेंट्री कमेटी और सिन्ध के कांग्रेसी नेताओं के कोई बयान अल्लाबक्स की मिनिस्ट्री के प्रति उनके बर्ताव को न्यायोचित नहीं ठहरा सके। कांग्रेस पार्टी की तटस्थता से ही अल्लाबक्स की मिनिस्ट्री को स्तीफ़ा देना पड़ा। हर तीसरे दिन अल्लाबक्स हवाई जहाज़ से सरदार पटेल से मिलने बम्बई आते थे। मगर सरदार पटेल सिन्ध के कांग्रेसी मेम्बरों और अल्लाबक्स में कोई समझौता न करा सके। अल्लाबक्स मिनिस्ट्री के स्तीफ़ा देने पर मीर बुन्दे अली ने मुसलिम लीग की मिनिस्ट्री बनाई। मगर मिनिस्ट्री बनाने के बाद ही फ़ौरन इस बात का ऐलान किया कि उनकी मिनिस्ट्री से मुसलिम लीग का कोई ताल्लुक़ नहीं रहेगा। एक क़दम आगे बढ़ कर उन्होंने संयुक्त निर्वाचन का प्रस्ताव भी पेश किया। ज़ाहिरा तौर पर मीर बुन्दे अली की मिनिस्ट्री सबके साथ मिलकर सिन्धी जनता के फ़ायदे की ही कोशिश कर रही थी। ऐसी सूरत में हमारी समझ में नहीं आया कि मौलाना आज़ाद ने कराची जाकर वहां के मामलों में क्यों दख़ल दिया और यदि दख़ल दिया था, तो मीर बुन्दे अली को स्तीफ़ा देने पर क्यों मजबूर किया? इसका मतलब यह है कि राष्ट्रपति ने सिद्धान्त से अधिक ज़ाती चीज़ों पर ज़ोर दिया। उनकी इस ग़लती से सिन्ध में मि० जिन्हा के क़दम मज़बूत हुए। फिर यदि आपस के मेल-जोल का सवाल था, तो मुसलिम लीग के नुमाइन्दों को निकाल देने का क्या अर्थ? यदि कांग्रेस वाले दूसरे प्रान्तों में कांग्रेस मैन की हैसियत से मिनिस्ट्री कर सकते थे, तो मुसलिम लीग वाले भी सिन्ध में मुसलिम लीगी मिनिस्टर बने रह सकते थे। अभी चार दिन भी अल्लाबक्स मिनिस्ट्री को बने नहीं हुए और फिर वहां के आधे दर्जन कांग्रेसी मेम्बरों ने अविश्वास और खींचा-तानी शुरू कर दी। भानमती का कुनबा जोड़ कर अल्लाबक्स की मिनिस्ट्री क्या कारेनुमायां कर सकेगी; इस पर कल्पना को ज़ोर देने की ज़रूरत नहीं!

भेद की गहराई

औरय्या से निकलने वाले "शारदा" नामक मासिक पत्र में पं० कमलाकान्त त्रिपाठी शास्त्री का 'मुसलिम भाषाओं का उत्पत्ति स्थान' नामक एक लेख प्रकाशित हुआ है। अपने इस लेख में श्री शास्त्री लिखते हैं—

"सामी भाषाओं के अन्तरगत अरबी भाषा यदि लिपि में ज़ेन्द का अनुकरण करती है, तो शब्दों में संस्कृत का। कहना यह चाहिए कि अरबी की उत्पत्ति संस्कृत और ज़ेन्द के संयोग से हुई। ज़ेन्द भाषा जैसे संस्कृत में अधिक सारल्य और संकोच को लेकर उत्पन्न हुई, वैसे ही अरबी भाषा संस्कृत और ज़ेन्द से भी अधिक सारल्य और संकोच को व्यक्त करती है। क़ुरान को देखने से यह बात साफ़ समझ में आ जाती है कि उसका निर्माण संस्कृत की क्लिस्टता और विस्तार को त्याग कर हुआ है। नीचे लिखे शब्दों से ऊपर की बात सिद्ध हो जाती है—

संस्कृत	अरबी
हर्म्यम्	हरम
सुराः	हूर
नरकः	नार
अन्तकाल	इन्तिकाल
गल्भः	वला
अजहार	इजहार
दैत्यः	दिअत
खम्	खला
औरसः	वारिस
यामः	योम
धनी	गनी
भ्रम	वहम

× × ×

"इस तरह के सैकड़ों शब्द यहां उधृत किये जा सकते हैं।"

× × ×

आगे चल कर श्री शास्त्री लिखते हैं—"संस्कृत साहित्य के इतिहास में कुछ ऐसे मुसलमान आए हैं, जिनके ग्रन्थरत्नों से संस्कृत भण्डार आज भी आलोकित हो रहा है; उनकी भावच्छटा हृदय में एक अपूर्व और अनिर्वचनीय आह्लाद उत्पन्न करती है। महमूद ग़जनवी के दरबार में शरीफ़ नामक एक मुसलमान सुकवि रहता था। यह संस्कृत का उत्कृष्ट कवि था। इसकी रचना 'सुभाषितावली' नामक ग्रन्थ में उद्धृत है। उसका एक छन्द है—

अत्यन्तोन्नतपूर्वपर्वतमहा—
पीठे· हरस्पर्द्धया।
दूरोदञ्चितधूमर्सान्न भतम—
स्तारास्फुलिङ्गकुलम् ॥
नूनं पञ्चशरोऽकरोच्छशिमिषात्
स्वं ज्वाललिङ्गा यतो।
गर्वाच्छर्वपरान् दहेन्मुनिवरान्,
सर्वानखर्वांशुभिः ॥

अकबर के नौरत्न अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना भी संस्कृत के सुकवि थे। ये फ़ारसी और संस्कृत मिला कर भी कविता लिखते थे। इनका इस तरह का एक श्लोक है—

दर्राको ज़रदारः पितृगुरु-
भक्तश्च क़ाबिलो मनुजः।
जोहरा शाहमकाने भवति
मुर्शीदश्च साहबो वा स्यात् ॥

गंगा की स्तुति में ख़ानख़ाना लिखते हैं।

अच्युतचरणतरङ्गिणि, शशि—
शेखर-मौलि-मालतीमाले!
त्वयि तनु वितरण समये
हरता देया न हरिता ॥"

यह सच है राजनैतिक कारणों से आज हमें भाषा-भाषा के अन्दर भेद दिखाई देता है। किन्तु यदि हम इस भेद की गहराई में जाने की कोशिश करते हैं, तो हमें मालूम होता है कि अनैक्य का यह पौधा अभी तक जड़ें नहीं पकड़ पाया है। सारी

भाषाओं का विकास उसी एक मूल स्रोत से हुआ है। आज हम संस्कृति की रक्षा के नाम पर अपने मतभेद को चाहे कितना ही बढ़ाएं; किन्तु यह फूट की नदी केवल बर्साती तूफ़ान ही पैदा कर सकती है। गुलामी के दूर होते ही हमें विश्वास है कि हम सत्य को यथार्थ रूप में देखना शुरू कर देंगे।

स्वर्गीय शाह मुहम्मद सुलेमान

पाठकों ने पिछले महीने सर शाह मुहम्मद सुलेमान की मृत्यु का समाचार पढ़ा होगा। सर शाह मृत्यु के समय केवल ५५ वर्ष के थे। यूं तो वे इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस और बाद में फ़ेडरल कोर्ट के जज रहे थे। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय जगत में वे एक न्याय प्रिय जज की हैसियत से नहीं, बल्कि एक वैज्ञानिक की हैसियत से मशहूर थे। "लाइट" और 'रेलिटिविटी" और उनके दूसरे आविष्कारों ने सारी दुनिया में एक तहलका मचा दिया था। गुरुत्वाकर्षण के सम्बन्ध में भी उनकी खोज बड़ी महत्व पूर्ण साबित हुई और ग्रहों के बारे में तो उन्होंने बिलकुल नए सिद्धान्त ही दुनिया के सामने रखे हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइन के सिद्धान्तों का सर शाह से बढ़ कर कोई समालोचक न था। ताज्जुब तो यह है कि जजी करते हुए भी वे अपने वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए समय निकाल लेते थे। उनकी मृत्यु से विज्ञान और खासकर गणित-विज्ञान को बड़ा धक्का पहुंचा।

स्वर्गीय ग्रिअर्सन

प्रसिद्ध आयरिश विद्वान सर जार्ज ग्रियर्सन का ९० वर्ष की उम्र में गत मास देहान्त हो गया। सर जार्ज ग्रिअर्सन ने भारतीय भाषाओं की खोज में बहुत बड़ा हिस्सा लिया है। भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में वे सरकारी सर्वे के डाइरेक्टर भी रहे। हैदराबाद मैसूर और मद्रास को छोड़ कर उन्होंने भारत की विविध भाषाओं की छान बीन की। १७९ भाषाओं और ४५५ बोलियों का उन्होंने वृहत् रेकार्ड इकट्ठा किया। यह सब मसाला 'लिंगविस्टिक सर्वे' के नाम से २१ जिल्दों में छपा है। इसके अतिरिक्त स्वर्गीय ग्रिअर्सन ने मैथिली, भोजपुरी और मगही भाषाओं के व्याकरण भी तय्यार किये हैं। उन्होंने भारतियों के रस्म-रिवाज, उनके रहन-सहन और उनके लोक-गीतों का भी संग्रह किया है। वे भारतीय भाषाओं के मान्य विद्वान माने जाते थे। उनकी मृत्यु से एक भारत भक्त आयरिश विद्वान उठ गया।

दीनबन्धु एण्ड्रूज़

इसी ५ वीं अप्रैल को स्व० दीनबन्धु ऐण्ड्रयूज़ की पहली बरसी है। गान्धी जी ने दीनबन्धु के स्मारक के लिए ५ लाख रुपये की अपील की है। यह सारा रुपया शान्तिनिकेतन में खर्च किया जायगा। दान देने वाले को इसमें दो लाभ रहेंगे—दीनबन्धु का स्मारक भी क़ायम हो जायगा और गुरुदेव का आशीर्वाद भी मिलेगा। हमें विश्वास है कि गन्धीजी की इस अपील पर लोग उत्साह से अमल करेंगे।

राष्ट्रीय सप्ताह

६ अप्रैल से १३ अप्रैल तक हर साल राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाता है। गान्धी जी ने इस वर्ष के राष्ट्रीय सप्ताह को मनाने के सिलसिले में एक बयान प्रकाशित किया है। वे लिखते हैं—"राष्ट्रीय सप्ताह जल्दी आ रहा है। इसके मनाने के दो अर्थ हैं (१) ६ अप्रैल और १३ अप्रैल को उपवास करके आत्म शुद्धि करना, (२) रचनात्मक कार्यक्रम पर अधिक ज़ोर देकर जनता की जागृति को बढ़ाना।... रचनात्मक कार्यक्रम की सफलता से ही हम सत्याग्रह की सफलता का अन्दाज़ लगा सकते हैं। इसलिए मेरा विश्वास है कि समस्त कांग्रेस कार्यकर्ता ६ अप्रैल तक राष्ट्रीय सप्ताह में अपना सारा समय रचनात्मक कार्यक्रम में लगाएंगे। खादी और दूसरे ग्रामोद्योग इस कार्य के सदा महत्वपूर्ण अंग रहे हैं। क्यों कि इसमें सब जवान और बूढ़े, स्त्री और पुरुष हिस्सा ले सकते हैं और इसकी तरक्की का अन्दाज़ गणित के अङ्कों में लग सकता है। आशा है पिछली बार से कहीं अधिक जनता इस क्रम को अपनाएगी।"

सरहदी धावे—

एसोशियेटेड प्रेस की पेशावर की २२ मार्च की ख़बर है कि इपी के फ़क़ीर के एक साथी गुलनवाज़ ने बन्नू के पास के इलाक़े पर धावा मारा और ख़ान बादशाह नामक एक अमीर पठान को मय बन्दूक़, जवाहरात और रुपये के उठा ले गये। कुछ दिन पहले बन्नू से तीन मील दूर दो मुसलमान मिस्त्रियों को भी ये क़बीले वाले उठा ले गये थे।

इस ख़बर का साम्प्रदायिक दृष्टि से एक विशेष महत्व है। कुछ पत्र-पत्रिकाएं हिन्दू जनता पर यह असर डालने की कोशिश करती हैं कि क़बीले वाले केवल हिन्दू नागरिकों को ही अपने धावों में उठा ले जाते हैं। मुसलमानों के उठा ले जाने की ख़बरें या तो छापी नहीं जातीं या उनको कोई महत्व नहीं दिया जाता। भूखे पठानों को हिन्दू और मुसलमानों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वह रोटी और बन्दूक़ें ख़रीदने को पैसा चाहता है। जो व्यक्ति इन निधियों से सम्पन्न होता है, उसी को वे उठा ले जाते हैं।

पिछले दिनों हिन्दुस्तानी हल्क़ों से यह ख़बर प्रकाशित की गई थी कि इपी का फ़क़ीर नाज़ी जर्मनी का एजेन्ट है। ख़बर फैलाने वालों का उद्देश्य स्पष्ट था —भारतीय जनता के दिल में आतंक और भय पैदा करना। मगर क़ाबुल के अफ़ग़ान गृह-मन्त्री ने इसके बाद ही एक स्पष्ट वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें साफ़ शब्दों में भारतीय हल्क़ों के बयान का खण्डन किया गया। अफ़ग़ान मन्त्री ने स्पष्ट कहा कि इपी के फ़क़ीर का नाज़ी जर्मनी से किसी तरह का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। भारत के सरकारी हल्क़े अफ़ग़ान गृह-मन्त्री के वक्तव्य पर चुप्पी साधे हैं।

शाम की परिस्थिति

२५ मार्च का रायटर का तार है—

"शाम की परिस्थिति ज्यों की त्यों ख़तरनाक बनी हुई है। इस्ताम्बूल की ख़बर पर मास्को के रेडियो ने ऐलान किया है कि दमिश्क के बहुत से आन्दोलनकारियों को तीन वर्ष से लेकर ५ वर्ष तक की सख़्त सज़ा मिली है। बर्लिन से रायटर का दूसरा तार है कि पिछले कुछ दिनों से दमिश्क और अलेप्पो में प्रचण्ड आन्दोलन चल रहा है। फ़ौजें परेड के लिए बुलाई गईं, मगर फिर भी दमिश्क में आन्दोलन नहीं दबा।"

पाठकों को मालूम होगा कि पिछले महायुद्ध में शाम यानी सीरिया फ्रांस के संरक्षण में दे दिया गया था और वर्साई के सुलहनामे में शाम से यह कहा गया था कि धीरे-धीरे फ्रांस उसे आज़ाद कर देगा। इसके बाद यह बड़ी लड़ाई सर पर आई और फ्रांसीसी सरकार का पतन हो गया। फ्रांसीसी सरकार के पतन के बाद अंग्रेज़ों ने यह मंशा ज़ाहिर की थी कि शाम पर वह क़ब्ज़ा कर लें। मगर तुर्की की सरकार ने अंग्रेज़ों की इस ख़्वाहिश की कड़ी आलोचना की और अंग्रेज़ों को मजबूरन रुकना पड़ा।

शाम के देशभक्त जी तोड़ कर यह कोशिश कर रहे हैं कि किसी तरह उनका मुल्क फ्रांसीसी ग़ुलामी के चंगुल से छूटे।

मैसूर में मादक द्रव्य निषेध

बैंगलोर की एसोशियेटेड प्रेस की एक ख़बर है—

"चन्नपटना के शहर में पहली जुलाई से कोई शख़्स गांजा-भांग, शराब और अफ़ीम आदि मादक द्रव्य अपने पास न रख सकेगा। यह इसलिये किया गया है कि ग्राम सुधार के इलाक़ों में मादक द्रव्य निषेध को अधिक से अधिक सख़्ती के साथ बर्ता जाय। मैसूर की सरकार नहीं चाहती कि ग्राम-सुधार हल्क़ों के लोग पास के इलाक़ों में जाकर ताड़ी पी सकें।

मैसूर सरकार के इस रवय्ये की हम प्रशंसा करते हैं। जब कि एक ओर अंग्रेज़ी इलाक़ों के हाईकोर्ट प्रोहीबीशन ऐक्ट को ग़ैर क़ानूनी घोषित कर रहे हैं और यू० पी, बिहार, उड़ीसा आदि की सरकारें शराब बन्दी को उठा रही हैं, मैसूर का यह काम प्रशंसनीय है। मोग़ल ज़माने में शराब बनाने वाले और पीने वाले का एक हाथ काट दिया जाता था और अंग्रेज़ी हाईकोर्टों के मुताबिक़ शराब बन्द करने की मंशा ही ग़ैर क़ानूनी है। किमाश्चर्य मतः परम्!

समालोचना

साम्राज्य और उनका पतन—

लेखक श्री भगवानदास केला, प्रकाशक भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन, पृष्ठ संख्या २२८ मूल्य १।)

भारतीय ग्रन्थ माला की यह चौबीसवीं पुस्तक है। इसमें ग्यारह साम्राज्यों के उत्थान और पतन का ख़ाका खींचा गया है। साम्राज्य कैसे बनते हैं, कैसे बढ़ते हैं और किस तरह उनका पतन होता है; इसकी साफ़ तसवीर इस पुस्तक को पढ़ने पर आंखों के सामने घूम जाती है। पुस्तक की छोटी सी भूमिका पंडित सुन्दरलाल जी की लिखी हुई है। वे लिखते हैं—"जिस मेहनत, सचाई और निष्पक्षता के साथ केला जी ने इस पुस्तक की सामग्री जमा की है और जितनी गहराई और हमदर्दी के साथ अलग-अलग साम्राज्यों के उत्थान और पतन की विवेचना की है, उसकी मैं तारीफ़ किए बिना नहीं रह सकता हूं—इसका ढङ्ग शुद्ध वैज्ञानिक है। विद्यार्थियों के लिये यह पुस्तक बड़े ही काम की चीज़ है। हिन्दी साहित्य में यह एक बहुमूल्य वृद्धि है। जो भी हिन्दी प्रेमी इस विषय से दिलचस्पी रखते हों, वे इस पुस्तक को ज़रूर पढ़ें।"

हम केला जी को ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिये बधाई देते हैं।

नागरिक कहानियां

लेखक-प्रोफ़ैसर सत्येन्द्र एम० ए०, प्रकाशक उपर्युक्त, मूल्य ।।=) पृष्ठ संख्या १५९

प्रस्तुत पुस्तक ग्यारह कहानियों का संग्रह है। हिन्दी का यह युग कहानियों का युग समझा जाता है। जैसा कि पुस्तक के नाम से ज़ाहिर है ये कहानियां नागरिक अधिकार, नागरिक कर्तव्य, नागरिक बर्ताव आदि इसी तरह की बातों को लेकर लिखी गई हैं। "खंडहर के उपदेश", "मृत्यु पर विजय", "न्याय के लिए", "मेरा चोर" आदि कहानियां सचमुच रोचक और कलापूर्ण हैं। भारतीय ग्रन्थमाला का कहानी की धारा बदलने का यह सफल और स्तुत्य प्रयत्न है।

निर्वाचन पद्धति

लेखक-प्रोफ़ैसर दयाशंकर दुबे और श्री भगवान दास केला, प्रकाशक उपर्युक्त। पृष्ठ संख्या १२० मूल्य ।।-)

निर्वाचन पद्धति पर लेखकों की यह सुन्दर और उपयोगी पुस्तक है। इसकी उपयोगिता का पता यों चलता है कि यह पुस्तक का तीसरा संस्करण है। पुस्तक को दस अध्यायों में बांटा गया है, साम्प्रदायिक पृथक निर्वाचन और परिशिष्ट के 'मैं किसे मत दूं' नामक अध्याय बहुत सुन्दर लिखे गए हैं और मौजूदा निर्वाचन प्रणाली पर अच्छी रोशनी डालते हैं। हिन्दी में तो निर्वाचन के सम्बन्ध में पुस्तकों का सर्वथा अभाव है; ऐसी सूरत में इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है।

तरुण जैन—

सम्पादक—श्री विजयसिंह नाहर और श्री भंवर मल सिंघी। वार्षिक मूल्य ३।।) प्रस्तुत अंक तरुण जैन का विशेषाङ्क 'अहिंसा अङ्क' है। इस २०० पृष्ठ के अङ्क में अनेक महत्व पूर्ण लेख और सामग्री भरी हुई है। अङ्क के अधिकांश भाग पर जैन धर्म की दृष्टि से अहिंसा के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये

गये हैं, किन्तु अहिंसा के मानवीय और राजनैतिक दृष्टिकोण को भी आंखों से ओझल नहीं होने दिया गया है। अहिंसा सम्बन्धी अन्य लेखों के विभाग की भूमिका में सम्पादक गण लिखते हैं—

"पहिले वाले चार स्तम्भों में हमने अहिंसा-प्रश्नावली के आए हुए जैन मुनियों, श्रावकों और पत्र सम्पादकों के उत्तर छापे हैं। पाठक देखेंगे कि इन उत्तरों में अहिंसा की जैन परम्परा को समझने के लिए पर्याप्त सामग्री आ गई है······हम अहिंसा सम्बन्धी कुछ स्वतन्त्र लेख छाप रहे हैं। इनसे अहिंसा सम्बन्धी वर्तमान युग की विचार धारा को समझने में मदद मिलेगी तथा अहिंसा धर्म का जो स्वरूप प्राचीन विचार परम्परा में मिलता है, उसका तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने में सरलता होगी।" प्रश्नावली में प्रश्न नम्बर २ और ४ सब की दिलचस्पी के हैं। प्रश्न नम्बर २ है—क्या यह सम्भव है कि बाहर के आक्रमण या अन्दरूनी झगड़ों, जैसे हिन्दू-मुस्लिम दंगे या लूटमार, से बिना हथियारों या फ़ौज के अहिंसात्मक ढङ्ग से देश की रक्षा हो सकती है? प्रश्न नम्बर ४ है—यदि अहिंसा के द्वारा देश की रक्षा का प्रश्न हल हो सकता है, तो किस तरीक़े से और क्यों कर?

इन्हीं प्रश्नों पर जैन धर्म की दृष्टि से और नैतिक दृष्टि से इस अंक में विस्तृत विचार किया गया है। श्री किशोरलाल मशरूवाला, श्री काका कालेलकर, श्री जैनेन्द्र कुमार और महात्मा गांधी के भी विचार प्रकाशित किए गए हैं। प्रमुख जैन विद्वानों ने भी इन प्रश्नों पर अपनी राय दी है।

हम इस अंक के सम्पादक श्री विजय सिंह नाहर, श्री सिद्धराज ढड्ढा और श्री भवंरमल सिंघी को मृत्यु और नाश के इस संकट काल में अहिंसा के प्रश्न को इस रूप में रखने के लिए हार्दिक बधाई देते हैं। प्रत्येक विचारवान व्यक्ति को तरुण जैन का यह विशेषांक अवश्य पढ़ना चाहिए।

प्रजा-सेवक—

सम्पादक और प्रकाशक—श्री अचलेश्वर प्रसाद शर्मा, वार्षिक मूल्य ४)

यह जोधपुर से निकलने वाला राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र है। प्रस्तुत अङ्क अट्ठारहवां अङ्क है। जोधपुर प्रजा परिषद के आन्दोलन को आगे बढ़ाना और जनता के सुख-दुःख को निर्भीक होकर सामने रखना इसका ध्येय है। मारवाड़ के समस्त लोक-सेवकों का सहयोग इसे प्राप्त है। हम सहियोगी की दिन प्रति-दिन उन्नति चाहते हैं।

संगीत का विशेषांक "नृत्य अंक"

इस अंक के संपादक श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी एम० ए०, एल० एल० बी० हैं। वार्षिक मूल्य २) विशेषांक १) प्रकाशक संगीत कार्यालय, हाथरस।

आजकल भारतीय नृत्य-कला के पुनरुत्थान का ज़माना है। पिछले १० वर्षों के अन्दर हम ने अपनी सोई हुई कला को जगा कर दुनिया के सामने नये रूप में खड़ा किया है। इस समस्त प्रयत्न को हमारे मित्र द्विवेदी जी ने सफलता पूर्वक संगीत के इस विशेष-अंक में रक्खा है। इस अंक को पढ़कर पाठकों को मौजूदा नृत्य आन्दोलन की झांकी मिल सकती है। हम प्रकाशकों को ऐसा सुन्दर अंक निकालने के लिए बधाई देते हैं।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद।

मई १९४७

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ

विश्व-वाणी

इस अङ्क के प्रमुख लेखक

१—महात्मा गान्धी
२—श्री मंजूर अली सोख्ता
३—आचार्य गुरुदयाल मल्लिक
४—पण्डित सुन्दरलाल
५—पूज्य माताजी, पाण्डुचेरी
६—वेरा मिचेल्स डौन
७—डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त
८—डाक्टर महदी हुसैन
९—डाक्टर ईश्वरनाथ टोपा

वार्षिक मूल्य ६)

एक अङ्क का ॥=)

विश्ववाणी पर लोकमत

कमला

बनारस, अप्रैल १९४१

यह मासिक पत्रिका अभी दो तीन महीनों से निकल रही है। इसके प्रकाशन से हिन्दी के उच्च-कोटि के मासिक साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है। हिंदी की गण्यमान्य पत्रिकाओं में इसका अपना विशेष स्थान है। पत्रिका अपने नाम के अनुरूप है। विश्व की विविध सार्वजनिक हलचलों पर इसमें लब्धकीर्त्ति मनीषियों के सुपाठ्य लेख हैं। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक, साहित्यिक, सभी दिशाओं की महत्वपूर्ण समस्याओं पर इसमें स्वच्छ प्रकाश डाला गया है। छपाई-सफ़ाई सुरुचिपूर्ण है। हम इसके दीर्घायु की कामना करते हैं।

सरस्वती

प्रयाग, अप्रैल १९४१

यह पत्रिका गत जनवरी मास से कर्मवीर पंडित सुन्दरलाल की संरक्षता में प्रकाशित होने लगी है। इसका उद्देश्य समता तथा विश्वप्रेम का प्रतिपादन करके संस्कृति के विश्व-व्यापी ऐक्य की शिक्षा देना है। सम्पूर्ण विश्व की संस्कृति यद्यपि एक ही है परन्तु फिर भी हम वाह्य आधारों पर उसके खण्ड-खण्ड करने का प्रयत्न करते हैं। जातीय मतभेद तथा फूट का कारण संस्कृति की विश्व-व्यापकता को न समझना है। 'विश्ववाणी' को भारत के श्रेष्ठ विद्वानों तथा नेताओं का सहयोग प्राप्त है। फ़रवरी के अंक में राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, पंडित सुन्दरलाल, डाक्टर सैयद महमूद, प्रोफ़ेसर तान युन शान, श्रीमती कैथलीन थार्न्स, डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त आदि के लेख हैं। सभी लेख अत्यन्त मननशील तथा विचार पूर्ण हैं। कवितायें अत्यन्त प्रगतिशील हैं। सम्पादकीय टिप्पणियां ज़ोरदार, विचार पूर्ण तथा निष्पक्ष हैं। हम *सहयोगी की सफलता के इच्छुक हैं।*

हंस

बनारस, फ़रवरी, १९४१

भारतीय-संस्कृति की एकता के सभी प्रयत्न क़ीमती समझे जाने चाहियें। 'विश्व-वाणी' ने इसी उद्देश्य को लेकर इस नये वर्ष से हिन्दी साहित्य-जगत में प्रवेश किया है। वह भारत की सांस्कृतिक एकता को साबित तो करेगी ही, उसे बढ़ायेगी भी, और भावी संस्कृति का स्वरूप भी निर्मित करने की कोशिश करेगी। हिन्दू और मुसलिम, दोनों संस्कृतियों में जो समानताएं हैं (और समानताओं की कमी नहीं है) उन्हीं पर ज़ोर देकर वह एक संयुक्त संस्कृति का स्वरूप गढ़ना चाहती है। हमें हर्ष है कि 'विश्ववाणी' ने भविष्य पर अपनी दृष्टि गड़ा रखी है। 'विश्ववाणी' हिन्दी में एक स्तुत्य प्रयत्न है। उसके लेखकों में दोनों संस्कृतियों के वे प्रतिनिधि लेखक योग दे रहे हैं, जिन्होंने भारत में सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक

विषय-सूची

मई १९४१

आर्ट पेपर पर चित्र—१५
नक़्शे ७

विश्ववाणी

गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अपने ८०वें जन्म दिन पर

विश्ववाणी

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ

वर्ष १	मई, १९४१	अङ्क ५

विश्ववाणी के लिये दो शब्द

सेवाग्राम SEVAGRAM, سیواگرام
वर्धा सी.पी. WARDHA, C.P. وردھا-سی-پی

२९-३-४१

यातो मैं किसी अख़-
बारको आशीर्वाद में
कुछ संदेशा नहिं भेजता
हूं. नये अख़बारोंकी
आवश्यकता भी मैं
महसूस नहिं करता
हूं. लेकिन जब
पंडित सुन्दरलालजी

यों तो किसी अख़बार को आजकल मैं कुछ संदेश नहीं भेजता हूं। नये अख़बारों की आवश्यकता भी मैं महसूस नहीं करता हूं। लेकिन जब पण्डित सुन्दरलाल जी ने 'विश्ववाणी' के लिये मुझसे दो शब्द मांगे तो मैंने उस मासिक को चन्द मिनट दीं। उसकी विशेषता, कि उसमें ज़ाहिर खबर (विज्ञापन) लिये नहीं जाते हैं और लिये जायंगे तो केवल चुनी हुई पुस्तकों के ही, मुझे बहुत प्रिय लगी। इसलिये मैं व्यवस्थापकों को धन्यवाद देता हूं।

मुझे यह भी अच्छा लगा कि विश्ववाणी में सब धर्मों के लेखकों के लेख भरे हैं।

एक बात चुभी जो जातक* दिया गया है वह अहिंसा के समर्थन में है। लेकिन सचमुच तो नहीं है। और ऐसी काल्पनिक वस्तु देने से अगर वह ठीक हो तो भी नास्तिक पर शायद ही असर डाले।

मो० क० गान्धी

---

* देखिये फ़रवरी महीने में भदन्त आनन्द कौसल्यायन का लेख "प्राचीन भारत में सत्याग्रह"।

क्रान्ति-गीत

निग्रो-कवि, लैङ्गस्टन ह्यू जेज़

तब तक मेरे लिये वही बात !
सीरा लि ओन के बन्दरगाह हों,
अलबामा के रुई-खेत हों,
किम्बर ले की हीरक-खान हों,
हेटी के काफ़ी के मैदान हों,
सेण्ट्रल अमरीका में केले के बाग़ हों,
हरलेम की सड़कें हों,
चाहे मोरक्को हो, चाहे त्रिपोली हो !

मैं काले रङ्ग का निग्रो;
चुसा हुआ, पिटा हुआ, लुटा हुआ,
गोली से उड़ाया हुआ,
ख़ून से सने हैं मेरे—
डालर
पाउण्ड
फ्राङ्क
पेस्ता
लायर
शोषकों की पूंजी सभी—
मेरा ही रक्त है वह,
नसों में न लौटेगा जो !
जिससे प्रचण्ड होगी क्रान्ति की अथाह धारा,
जिससे बनेंगे लाल,
दुनिया के भण्डे सभी,
तीव्र प्रबल वेग में—
सीरा लिओन
किम्बरले
अलबामा
हेटी
सेण्ट्रल अमरीका
हरलेम
मोरक्को
त्रिपोली
सबकी जड़ें नष्ट हों,
क्षीण हो हत्यारी शक्ति,
क्षीण हो लुटेरी शक्ति,
क्षीण हो वह पूंजीवाद, पीड़ितों का नाशक जो !

शोषित स्वाधीन बनें,
पीड़ितों का रक्त बहे,
तब तक क्रम रुके नहीं,
दुनिया आज़ाद न हो—
डालर के डाकुओं से
पाउण्ड के डाकुओं से
फ्राक के डाकुओं से
पेस्ता के डाकुओं से
लायर के डाकुओं से
ज़िन्दगी के डाकुओं से

गूंजता यह नाद रहे—पीड़ित वर्ग एक बनो;
काले, गोरे, गेहुंए, पीले, लाल रङ्ग वाले सभी;
गगन को चूमता, इनका निशान उड़े;
ऐसा निशान जो न नीचे कभी झुके ज़रा—
तब तक है मेरे लिये वही बात।

आज़ाद हिन्दुस्तान में न फ़ौज होगी न हथियार होंगे

(४)

नैतिक दृष्टि

विज्ञान (बायोलाजी) क्या बताता है ?

श्री मज़हरअली मोख्ना

इससे पहले के लेख में हम दिखा चुके हैं कि मानव जाति एक बार आगे बढ़ कर फिर पीछे नहीं हटती। सम्पूर्ण मानव इतिहास पर एक साथ नज़र डालने से उसमें उन्नति के बाद अवनति, रचना के बाद विनाश या सभ्यता के बाद फिर से बरबरता का दौर नहीं मिलता। दूसरे शब्दों में मनुष्य जाति का इतिहास क़रीब-क़रीब सब दिशाओं में लगातार उन्नति का इतिहास है। अब आगे बढ़ने से पहले हमें यह साफ़ कर लेना चाहिये कि इस उन्नति में हमारा असली मतलब क्या है ? मानव उन्नति की इस तरह की परिभाषा कर सकना, जिसे सब मान लें आसान चीज़ नहीं है। मनुष्य का जन्म एक रहस्य के अन्दर हुआ है। उसकी पैदाइश, उसकी ज़िन्दगी और उसकी मौत सब रहस्य मय हैं। ये सब चीज़ें अखिल विश्व के विशाल और व्यापक अस्तित्त्व का केवल एक अंश हैं ! और हमारी बुद्धि स्वभाव से इतनी छोटी और परिमित है कि उस सम्पूर्ण अस्तित्त्व की हम कोई ठीक-ठीक कल्पना तक नहीं कर सकते। *इसीलिए मनुष्य का जीवन और उसका लक्ष्य दोनों* हमारे लिए एक अनन्त पहेली हैं। और हर शख़्स को इस बात की आज़ादी है कि इनके विषय में जो चाहे कल्पना कर ले और उसी कल्पना के अनुसार मानव उन्नति की अपने लिए जो चाहे परिभाषा गढ़ ले। न्याय या मन्तक़ से भी इस मामले में हमें कोई मदद नहीं मिल सकती। क्योंकि मन्तक़ में कुछ न कुछ ऐसी बातों की ज़रूरत पड़ती है, जिन्हें सब ठीक मानते हों और जिनके आधार पर नय्यायिक आगे के नतीजे निकाल सकें। किन्तु यहां इस तरह की कोई सर्व स्वीकृत चीज़ें नहीं हैं। क़ुदरती नतीजा यह है कि मानव-उन्नति क्या चीज़ है, इस बारे में जितने आदमी उतनी ही परिभाषाएं। न हमारे पास कोई ऐसी कसौटी है, जिस पर अपनी परिभाषा को कसकर हम किसी ऐसे आख़िरी फ़ैसले पर पहुँच सकें जिसे सब मान जांय।

इन लेखों में हम दर्शन या अध्यात्म की दृष्टि से बहस नहीं करना चाहते। हम अपने को केवल भौतिक (वैज्ञानिक) और बौद्धिक (रैसनलिस्टिक) पहलुओं तक ही परिमित रखना चाहते हैं। इसलिए मानव-उन्नति की परिभाषा भी किसी तरह के आदर्श-वाद या अध्यात्म की दृष्टि से करने की कोशिश करने के बजाय, हम इस उन्नति और उसकी गति *विधि को बायोलाजी (प्राणी-विज्ञान) और इतिहास* की दृष्टि से समझ लेना चाहते हैं।

विज्ञान (बायोलाजी) ने इस बात को साबित कर दिया है कि हर प्राणी के अन्दर शुरू से सब से ज़बरदस्त प्रवृत्ति यह होती है कि वह ज़िन्दगी से

चिपटे रहना चाहता है और मौत या विनाश से भागता है। इसी विचित्र और मज़बूत चट्टान पर मनुष्य-जीवन के हर विभाग की बुनियादें क़ायम हैं। मनुष्य का खाना, उसका रहना, उसकी नसल का बढ़ना और उसका आचार-व्यवहार सब की जड़ें इसी एक प्रवृत्ति में हैं। इसी प्रवृत्ति के सहारे मनुष्य के सब काम चलते हैं। यही उन्हें रूप-रंग देती है। और इसी के द्वारा मनुष्य अपनी रक्षा करता है और अपने को ज़िन्दा रखता है।

इससे मिलती-जुलती मनुष्य में एक और प्रवृत्ति है, जो इतनी ही स्वाभाविक है। यह प्रवृत्ति पहली से भी ज़्यादह व्यापक है और उसका असर और भी ज़्यादह दूर तक पहुँचता है। इसके कारनामे भी पहली के कारनामों के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादह रहस्य मय हैं। यह प्रवृत्ति मनुष्य के अन्दर अपने समुदाय, अपनी जाति या अपने गिरोह को क़ायम रखने और बनाए रखने की प्रवृत्ति है। ये दोनों प्रवृत्तियां साथ-साथ काम करती रहती हैं। इन दोनों में गहरा सम्बन्ध है। ये एक दूसरे के साथ इस तरह गुथी हुई हैं कि एक दूसरे के बिना नहीं चल सकतीं। इन ही दोनों प्रवृत्तियों की बदौलत मनुष्य-समाज ज़िन्दा है। जाने या अनजाने मनुष्य समाज इन्हीं के ज़रिये बढ़ता है, अपने सामूहिक जीवन के हर पहलू को इन्हीं की मदद से तरतीब देता है और बाहर की दुनिया और बाहर की परिस्थिति पर अपना असर डालता है। मनुष्य जीवन की तमाम क्रियाएं और चेष्टाएं असल में इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों के अनेक रूप हैं, इन्हीं से पैदा हुई हैं।

इन दोनों प्रवृत्तियों को जब हम पशु-जगत के अन्दर काम करते देखते हैं, तो हमें मालूम होता है कि क़रीब-क़रीब सब जानदारों में और ख़ास कर उन जानवरों में, जो संगठित गिरोह बनाकर रहते हैं और जिन्हें "सोशल ऐनिमल" (समाजी जानवर) कहते हैं। हर व्यक्ति का ज़िन्दा रहना और बढ़ना मां की देख-रेख और कहीं कहीं मां और बाप दोनों की देख-रेख, उनकी मोहब्बत और लगन पर निर्भर होता है। एक तो मां की तरफ़ बच्चे का क़ुदरती शारीरिक आकर्षण होता है। दूसरे बच्चा शुरू से अपनी हिफ़ाज़त और अपने आहार के लिए मां की तरफ़ देखता और उसी पर निर्भर रहता है। मां पर बच्चे की इस निर्भरता को यदि ग़ौर से देखा जावे, तो यह केवल वही क़ुदरती प्रवृत्ति है, जो शुरू से हर प्राणी में पायी जाती है और जिसके अनुसार हर प्राणी अपने को ज़िन्दा रखने की ख़्वाहिश और कोशिश करता रहता है।

किन्तु बच्चे का मां-बाप से चिपटे रहना, जितना अजीब और रहस्यमय है, उससे कहीं ज़्यादह अजीब और रहस्यमय मां-बाप का बच्चे को चिपटाये रहना है। दोनों में एक तरह की शारीरिक एकता और एक दूसरे की तरफ़ खिचाव है। लेकिन जिस तरह बच्चा बिना मां-बाप के अपने को असहाय महसूस करता है और यह महसूस करता है कि उसका ज़िन्दा रहना हर तरह मां-बाप पर निर्भर है, इस तरह की कोई बेबसी की भावना मां-बाप में बच्चे की तरफ़ से नहीं होती। बच्चे को पालने से मां बाप को अपनी ज़िन्दगी में किसी तरह की मदद नहीं मिलती। बल्कि उन्हें उसमें हद दर्जे के कष्ट उठाने पड़ते हैं और काफ़ी क़ुरबानियां करनी पड़ती हैं। फिर भी मां और बाप दोनों की जान बच्चे में अटकी रहती है। वे किसी तरह उसे अपने से अलग करना नहीं चाहते। इस घटना का कोई काफ़ी सबब भी दिखाई नहीं देता। मां-बाप को ख़ुद पता नहीं होता कि वे बच्चे से इतना प्यार क्यों करते हैं। वे बेबस होते हैं। प्रकृति उन्हें उस ओर खेंचे रखती है। असल में उन्हें इस बात की ख़बर हो या न हो, बच्चे की रक्षा और हिफ़ाज़त करने में वे समस्त मनुष्य जाति की हिफ़ाज़त करते हैं और उसे ज़िन्दा रखते हैं। प्रकृति की अपार योजना में, उसकी रहस्यमय लीला में यही कार्य उनके लिए नियुक्त है।

प्रकृति की विशाल योजना में बाप, मां और बच्चा तीनों मिलाकर एक अविभक्त और अखण्ड इकाई हैं। इन तीनों की एक पवित्र त्रिमूर्ति है। यह

त्रिमूर्ति ही पूरे मानव समाज का यानी अधिक विशाल मानव कुटुम्ब का एक छोटा सा नमूना है। मानव समाज की व्यवस्था के तमाम बुनियादी असूल बीज रूप से इस त्रिमूर्ति के अन्दर मौजूद हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि इस व्यवस्था की मुख्यतम प्रवृत्ति जो उसे क़ायम रखती है, यही है कि हर व्यक्ति अपने को क़ायम रखने और बढ़ने की कोशिश करता है। मनुष्य समाज की सारी आध्यात्मिक, मानसिक और सामाजिक इमारत इसी एक नींव के ऊपर खड़ी है। समस्त जीवन-विज्ञान का यही बुनियादी असूल है।

इसके बाद हमें यह देखना है कि प्रकृति इस असूल को व्यावहारिक जीवन में किस तरह अमल में लाती है। हम फिर पिता, माता और पुत्र ही की मिसाल लेते हैं। इसे देखने से हमें पता चलता है कि एक छोटे से कुटुम्ब की इस अविभक्त इकाई के अन्दर भी प्रकृति ने सबसे पहले अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग काम नियत कर दिये हैं। मां बच्चे को पैदा करती है, और उसे खाना देती है। किन्तु उसकी ठीक-ठीक रक्षा के लिए, बाहर के खतरों और लड़ाई झगड़ों से उसकी हिफ़ाज़त के लिए, उसे किसी दूसरे की मदद की भी ज़रूरत होती है। बाप इन शुरू की ज़िम्मेवारियों से बरी रहता है। इसलिए बाहर के ख़तरों का मुक़ाबला करने और न केवल अपने लिए, बल्कि अपने, अपनी पत्नी और अपने बच्चे तीनों के लिए खाने का सामान जुटाने का कार्य ख़ास तौर पर उसे करना पड़ता है। इन सब कामों के इस बटवारे (डिवीज़न आफ़ फ़ङ्कशन्स) को हम और ध्यान से देखें, तो मालूम होगा कि यह बटवारा हरेक के अलग-अलग कड़े से कड़े फ़र्ज़ या कर्तव्य मुक़र्रिर कर देता है; लेकिन उसके मुक़ाबले के किसी के कोई अधिकार या हक़ मुक़र्रिर नहीं करता। सच यह है कि यह बटवारा व्यक्ति को समाज के अधीन करके व्यक्ति के अस्तित्व ही को समष्टि के अस्तित्व में लीन कर देता है। मां को बच्चे के पालन-पोषण में अनन्त कष्ट उठाने पड़ते हैं और अचिन्त्य क़ुरबानियां करनी पड़ती हैं; अपनी रक्षा या अपने सुख के लिए नहीं, बल्कि जाति या समाज को जारी रखने के लिए। इसी तरह बाप को अनन्त ख़तरों का मुक़ाबला करना पड़ता है और बड़ी-बड़ी मेहनतें करनी पड़ती हैं; केवल अपने लिए नहीं, बल्कि अपने, अपने बच्चे और उसकी मां तीनों के लिए। इसमें सन्देह नहीं कि अपने-अपने कर्त्तव्य को पूरा करने में हरेक को एक ख़ास आनन्द मिलता है, किन्तु वह आनन्द कर्तव्य पालन का क़ुदरती नतीजा होता है, मुख्य और असली चीज़ केवल कर्त्तव्य और उसका पालन है। प्रकृति की योजना में हक़ या अधिकार के लिए कोई स्थान नहीं। इस योजना की बुनियाद ही कर्तव्य पालन पर है। इस योजना के पूरा होने के लिए यह लाज़मी है कि हम अपने-अपने अन्दर के अहम भाव को, अपने व्यक्तित्व के उस अंश को, जो सामाजिक जीवन के विरुद्ध जाता है, जो कुटुम्ब या समाज के मिलकर रहने में रुकावट डालता है, और जो समाज में फूट पैदा करता है, सदा दबा कर और वश में रखे।

इसके साथ-साथ ज़िन्दगी का यह ख़ास असूल, जो इस योजना की जान है, यह है कि मनुष्य मात्र एक व्यवस्था या निज़ाम के मातहत रह कर एक दूसरे के साथ मिल कर काम करे, न कि एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करे या एक दूसरे के साथ टकरावे।

बाप, मां और बच्चा केवल तभी ज़िन्दा रह सकते हैं, बढ़ सकते हैं और ज़िन्दगी का सुख भोग सकते हैं, जब कि वे एक दूसरे से मुहब्बत करें और एक दूसरे की मदद करें। एक दूसरे की तरफ़ से उदासीनता या घृणा, या अपने-अपने व्यक्तिगत सुख भोग के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा, इन चीज़ों के लिए इस योजना में कोई स्थान नहीं। इनका नतीजा कुटुम्ब की रक्षा और उसकी सुख वृद्धि के बजाय केवल फूट और विनाश ही हो सकता है।

कुटुम्ब की हिफ़ाज़त, उसकी बेहतरी और उसकी तरक्क़ी के यही बुनियादी असूल हैं। इन ही की रोशनी में हम अपने समस्त आचार-व्यवहार के उन नियमों का पता लगा सकते हैं, जो इस सम्बन्ध

को क़ायम रखने के लिये ज़रूरी या मुफ़ीद हैं। जब हम इस तरह सोचते हैं, तो हमें यह साफ़ नज़र आता है कि—किसी को हानि न पहुँचाओ, हमेशा सच बोलो, कभी किसी को धोखा मत दो, एक दूसरे के साथ उतना ही प्रेम करो बल्कि हो सके तो उससे भी ज़्यादह, जितना तुम अपने साथ करते हो, इत्यादि नियम इस सम्बन्ध को क़ायम रखने और कुटुम्ब को ज़िन्दा रखने के लिए ज़रूरी और लाज़मी हैं। कोई इससे इन्कार नहीं कर सकता। विशाल मनुष्य समाज के सम्बन्ध में जिन नियमों की उपयोगिता में अकसर शक किया जाता है, छोटे से कुटुम्ब के सम्बन्ध में वे ही नियम अकाट्य और अनिवार्य दिखाई देते हैं। किन्तु जब हम यह सोचते हैं कि यह त्रिमूर्ति, मनुष्य समाज की यह शुरू की इकाई ही वह छोटा सा जीवाणु है, जिससे बढ़ते-बढ़ते इस विशाल मनुष्य समाज की रचना हुई है, ठीक उसी तरह अरबों और खरबों छोटे छोटे जीवाणुओं (सैल) से मिल कर मनुष्य का शरीर बनता है, और जब हम सोचते हैं कि इस इकाई के बने रहने पर ही समाज का जीवन अवलम्बित है, तो हमें तुरन्त इस बात का पता चल जाता है कि मनुष्य के विशाल सामाजिक जीवन के साथ इन नियमों का कितना गहरा और कितना जीवित सम्बन्ध है। कुटुम्ब का बढ़ते-बढ़ते एक विशाल क़बीले, क़ौम या जाति की शक्ल अख़्तियार कर लेना केवल इसी इकाई, इसी त्रिमूर्ति की संख्या का बढ़ते जाना है। इस तरह की लाखों और करोड़ों इकाइयों से मिलकर एक बड़ी इकाई तय्यार हो जाती है। इसलिए सामाजिक शरीर के केवल आकार-प्रकार के बढ़ जाने से जीवन के बुनियादी असूल, उसकी बुनियादी ज़रूरतें नहीं बदल जातीं।

इसमें सन्देह नहीं कि इस आकार-प्रकार के बढ़ जाने से हमारी सामाजिक समस्याओं की संख्या बहुत बढ़ जाती है और उनके हल करने में नई-नई पेचीदगियां पैदा हो जाती हैं। इसमें भी शक नहीं कि सामाजिक शरीर के बढ़ने के साथ-साथ नई-नई परिस्थितियां, नई-नई शक्तियां और परस्पर विरोधी गिरोह और संस्थाएं विशाल सामाजिक शरीर के अंग बन जाती हैं। किन्तु इस सब से गोकि हमारी सामाजिक समस्या पहले से ज़्यादह गम्भीर और जटिल हो जाती है और लोगों का इन असूलों पर चलना और ज़्यादह मुशकिल हो जाता है, लेकिन इससे किसी तरह भी इन असूलों या नियमों की मौलिकता, सत्यता और अनिवार्यता के असली सवाल पर कोई असर नहीं पड़ता।

एक और कठिनाई हमारे सामने आती है। जिस तरह बाप, मां और बच्चा तमाम, सामाजिक ज़िन्दगी की इकाई हैं, और उनका एक दूसरे पर निर्भर होना सामाजिक जीवन का बुनियादी असूल है, उसी तरह मनुष्य स्वभाव के अन्दर अहमभाव, अपनी ख़ुदी का जज़बा भी उस स्वभाव का उतना ही क़ुदरती और आवश्यक अंग है। बायोलाजी यानी प्राणी-विज्ञान मनुष्य स्वभाव के इन दोनों पहलुओं को क़ुदरती मानता है। अब यदि सामूहिक दृष्टि से देखें, तो यह त्रिमूर्ति एक अखण्ड इकाई है। तीनों मिल कर मानों एक हैं। इस शरीर का ज़िन्दा रहना, क़ायम रहना और सुखी रहना तीनों के एक दूसरे पर निर्भर होने और उनकी सामूहिक ज़िम्मेवारी पर ही निर्भर है। लेकिन जब इन तीनों को अलग-अलग देखा जावे, तो इसमें भी शक नहीं कि पिता, माता और बच्चे तीनों का अलग-अलग अपना-अपना व्यक्तित्व है। हरेक के अपने-अपने दिल और दिमाग़ हैं। हरेक हर बात में एक दूसरे से आज़ाद है। हरेक के अन्दर ख़ुदी का जज़बा और स्वार्थमय प्रवृत्तियां भी हैं, जो उतनी ही सच्ची और क़ुदरती हैं, जितनी उनके अन्दर की सामूहिक या एक दूसरे की सेवा और भलाई करने की प्रवृत्तियां। मनुष्य जीवन की यही असली कठिनाई, और यही उसकी असली मुसीबत है। हम ऊपर कह चुके हैं कि यही इस जीवन की सब से बड़ी और सब से मुशकिल समस्या है। यानी यह

कि मनुष्य स्वभाव की इन दोनों परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों को अर्थात् उसकी सामाजिक भावना और उसकी ख़ुदी को, उसकी परोपकार दृष्टि और उसकी स्वार्थ दृष्टि को, जो एक दूसरे को काटती रहती हैं, कैसे इस तरह मिला कर साथ साथ चलाया जावे, जिससे दोनों एक दूसरी की सहायक हो सकें और सामाजिक जीवन शान्ति और प्रेम के साथ चल सके।

हम ऊपर यह भी देख चुके हैं कि मनुष्य में तर्क शक्ति के जागने से पहले, जब कि मनुष्य केवल अपनी प्राकृतिक चेतना के सहारे चलता था, इन दोनों प्रवृत्तियों का परस्पर विरोध इतना तीव्र और इतना नाशक नहीं था। किन्तु धीरे धीरे तर्क शक्ति जितना जितना बढ़ती जाती है, इस विरोध की तीव्रता और नाशकता भी उतना-उतना ही बढ़ती जाती है। क्योंकि जब तक इस तर्क शक्ति को धार्मिक भावनाओं, आत्मसंयम के नियमों और उच्चतर संस्कृतियों की मदद से एक ख़ास तरह के परमार्थ या परोपकार के सांचों में न ढाला जावे, तब तक यह तर्क शक्ति ख़ुदी या अहंकार को बढ़ाती है और क़ुदरती तौर पर समाज को फूट, अराजकता और बरबादी की तरफ़ ले जाती है। सोशल ऐनिमल्स यानी गिरोह बनाकर रहने वाले जानवरों और मनुष्य इन दोनों की ज़िन्दगियों का मुक़ाबला करने से हमारी यह बात अच्छी तरह समझ में आ जावेगी।

शुरू का मनुष्य अपने सांसारिक जीवन के अगाध, अपार और अभेद्य रहस्य का चिन्तन करके ही भय और आश्चर्य के भावों से भर जाता है। जब तक ये भाव मनुष्य के हृदय में सर्वोपरि रहते हैं, उसका दिमाग़ क़ाबू में रहता है। उसे इस बात का आभास तक नहीं होता कि इस रहस्य का जो कुछ मतलब उसने समझ रखा है, वह कितना अधूरा और अपर्याप्त है। इस समस्या की विशालता और गम्भीरता का चिन्तन करके ही उसका मस्तक झुक जाता है। वह अपनी तुच्छता, और अल्पज्ञता को अनुभव करने लगता है। वह कुछ बातों को बिना बहस किये स्वतः सिद्ध मान लेता है और फिर जो कुछ सोचता है, उन्हीं के दायरे के अन्दर रह कर सोचता है। उसे अपने भीतर से यह साफ़ आवाज़ उठती हुई मालूम होती है कि यह सारा संसारचक्र निरुद्देश्य ही नहीं हो सकता। एक सचेत और सतर्क 'विधि' के रूप में वह प्रकृति की कल्पना करता है। इस देवी के रहस्यमय कारनामों को वह पवित्र और दया पूर्ण मानता है। उन कारनामों के मौलिक औचित्य, उनकी अच्छाई या उनकी सामाजिक उपयोगिता में सन्देह करना उसे पाप मालूम होता है। वह समझता है कि इस तरह का सन्देह मन में लाना ही उसके लिए भयंकर आपत्तियों का कारण बन जायगा। प्रकृति के फ़ैसलों को वह अटल और अमिट समझता है और समझता है कि, चाहे मनुष्य इन फ़ैसलों को समझ सके या न समझ सके, मनुष्य का सारा जीवन इन्हीं फ़ैसलों के अनुसार मुड़ता और चलता रहता है। इसी से वह इस बुनियादी नतीजे पर पहुंचता है कि कोई न कोई रहस्यमय किन्तु महान् शक्ति मनुष्य के भाग्य का फ़ैसला करने वाली और मनुष्य को उस ओर ले जाने वाली ज़रूर है। इसी से उसके दिल में उस शक्ति को जानने और उसकी मरज़ी के अनुसार जीवन व्यतीत करने की ज़बरदस्त उत्कण्ठा पैदा होती है। यह नतीजा और यह उत्कण्ठा ये दोनों चीज़ें ही मनुष्य के सारे इख़लाक़ी यानी नैतिक और धार्मिक विचारों की जड़ हैं। जब एक बार मनुष्य इस नतीजे पर पहुँच जाता है और इस खोज में लग जाता है, तो उसे अपनी तर्क शक्ति को मर्यादा के अन्दर रख कर उससे काम लेने और अपने सांसारिक जीवन को व्यवस्थित करने के लिए मानों एक तरह की कसौटी या कम्पास मिल जाती है। वह इसी महान् और रहस्य मय शक्ति की छत्र छाया में जीता है और उसी की छाया में रह कर सब काम करता है। क़ुदरती तौर पर वह अपने जीवन की समस्त सफलताओं और सुखों का कारण इसी शक्ति के अनुग्रह और दयालुता को और अपनी समस्त नाकामियों

और दुःखों का कारण उसकी अप्रसन्नता और रोष को समझने लगता है। इस अदृष्ट शक्ति की न्याय प्रियता में और इस बात में कि वह सब का भला चाहने वाली है, उसे इतना अगाध विश्वास हो जाता है कि फिर सख़्त से सख़्त कष्टों में वह हिम्मत नहीं हारता। जब कभी वह किसी बात की कोशिश करता है और उसे कामयाबी हासिल नहीं होती, तो इसका कारण वह अपने ही अन्दर की किसी न किसी बुराई, कमज़ोरी या अज्ञानता को समझ लेता है, क्योंकि उसकी राय में उस अदृष्ट शक्ति के फ़ैसले में कभी ग़लती नहीं हो सकती और न उस शक्ति का कोई फ़ैसला न्याय या दयालुता के विरुद्ध हो सकता है।

बाप, मां और बेटे की यह वैज्ञानिक (बायोलाजिकल) और ऐतिहासिक इकाई, नैतिक दृष्टि से एक पवित्र त्रिमूर्ति है। समस्त मानव समाज या विशाल मानव कुटुम्ब का यह एक छोटा सा नमूना है। मनुष्य को यह उसके आगे का मार्ग दिखाने वाली और उसे प्रोत्साहित करने वाली है। जो व्यवस्था एक दूसरे को मदद देने का, जो भाव और एक दूसरे की ओर, जो स्नेह इस त्रिमूर्ति के तीनों व्यक्तियों में पाया जाता है, वह इसे 'विधि' की देन है। यही तीनों चीज़ें 'विधि' की दयालुता, उसकी रचनात्मक शक्ति और उसकी अगाध किन्तु रहस्यमय बुद्धिमत्ता का एक ज़बरदस्त प्रमाण हैं। इसी 'विधि' को मनुष्य जगह-जगह काम करते देखता है। इसी की व्यवस्था द्वारा वृक्ष उसे रसीले मीठे और पुष्टिकारक फल देते हैं, सूर्य उसे रोशनी और गरमी देता है, ज़मीन उसे खिलाने और ज़िन्दा रखने के लिए सुन्दर अन्न पैदा करती है। मालूम होता है कि समस्त प्रकृति एक प्रेममयी माता की तरह उसके लालन-पालन में लगी हुई है। मनुष्य इस सब पर एक नैतिक दृष्टि डालता है। वह अपनी कल्पना द्वारा इस ज़बरदस्त शक्ति को तरह तरह के रूप देकर अनेक रूपों में उसकी पूजा करने लगता है। इसी की प्रेरणा से मनुष्य अपने समस्त समाज को एक जीवित शरीर की तरह समझने लगता है, और इस बात को महसूस करने लगता है कि मानव समाज का सुख और उसकी उन्नति केवल इसी बात पर निर्भर है कि उसके समस्त अंगों और प्रत्यंगों में एक दूसरे के साथ प्रेम, मिलकर काम करने की आदत और हमदर्दी हो; न कि एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा, शत्रुता और कश-म-कश। उसके हृदय में यह विश्वास जम जाता है कि मनुष्य समाज को असली सुख और शान्ति केवल उसी दरजे तक नसीब हो सकती है, जिस दरजे तक कि ये फूट के सामान सामाजिक जीवन से निकाल कर बाहर कर दिये जावें। अपने पड़ोसियों का नुक़सान करके, या सब के भले का ख़याल न रख के, केवल अपने को सुख पहुंचाने की इच्छा, मनुष्य को इस आदर्श के प्रतिकूल दिखाई देती है। यही उसे समाज के अन्दर सारी फूट की जड़ नज़र आती है। इसलिए मनुष्य की नैतिक दृष्टि इस तरह की इच्छा को क़ाबू में करके धीरे-धीरे उसका अन्त कर देना अपनी योजना का मुख्यतम अंग बना लेती है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए मनुष्य समाज हर शख़्स के अपने-अपने अलग-अलग अधिकारों के विचार को हटा कर, उसकी जगह सारा ज़ोर धर्म यानी कर्तव्य पालन, सेवा और त्याग पर देता है। मनुष्य के सामाजिक जीवन से फूट, अव्यवस्था और अराजकता को मिटाने का प्रकृति के पास इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं। यदि मनुष्य प्रकृति की इस चेतावनी की अवहेलना करता है, तो समाज की नैतिक दृष्टि उसे सावधान कर देती है कि उसे उसके नतीजे सर्वनाश के रूप में भोगने होंगे।

दूसरी तरफ़ मनुष्य की तर्क शक्ति जितना बढ़ती जाती है, जीवन के रहस्य को समझने में अपने को असमर्थ पाकर, उसे अधिकाधिक बेचैनी मालूम होने लगती है। यह तर्क शक्ति जब इस रहस्य का पार नहीं पा सकती, तो वह पहले उसकी अवहेलना करती है, फिर उसका मज़ाक़ उड़ाती है, और अन्त में उसे निन्दनीय ठहराने लगती है। तर्क शक्ति मनुष्य की निगाह को हर काम के स्थूल और तात्का-

लिक नतीजे की तरफ़ ले जाती है। वह यह दिखाने की कोशिश करती है कि किसी काम से उस काम के करने वाले को स्वयं अपने लिए तत्क्षण क्या लाभ हुआ या क्या हानि हुई। इस तरह का मनुष्य पिछले समय के तजरुबों पर निगाह डालने में अधीर हो उठता है। आदर्शवाद, परमार्थ और परोपकार की बातों को वह सहन नहीं कर सकता। वह जीवन में केवल इस समय के हानि-लाभ को देखता है। नैतिक दृष्टि उसे थोथी, बांझ अव्यवहारिक और नापाक दिखाई देने लगती है। उसकी बुद्धि इख़लाक़ या नीति के इस तरह के बुनियादी असूलों के मुक़ाबले में जैसे—किसी की जान मत लो, चोरी मत करो, सच बोलो, एक दूसरे से प्यार करो इत्यादि अपने इस तरह के दूसरे असूल पेश करती है, जैसे—जब मारना ज़रूरी हो मारो, चोरी कर सको तो करो, झूठ बोलने से फ़ायदा होता हो तो ज़रूर बोलो, अपने विरोधियों और दुशमनों से नफ़रत करो—इत्यादि इत्यादि। इन असूलों के मुक़ाबिले में नीति के असूल इस तर्क शक्ति को न ज़्यादह ऊंचे मालूम होते हैं, न ज़्यादह सामयिक और न ज़्यादह फ़ायदे के। अपने इन नये असूलों में से हर एक की उपयोगिता के सबूत में मनुष्य आम मानव स्वभाव से, इतिहास के पन्नों से, धार्मिक और दूसरे ग्रन्थों से, और इन सब से बढ़कर अपनी उसी तर्क शक्ति से, जिसे अब वह सर्वथा निर्भ्रान्त और सबसे बड़ा प्रमाण मानने लगता है, तरह तरह की दलीलें लाकर पेश करता है। उसकी दलीलें भी एक दरजे तक ला जवाब होती हैं। सबब यह है कि मनुष्य का स्वभाव इतना पेचीदा, उसका ज्ञान इतना कम, उसकी नज़र इतनी परिमित और उसके जीवन की समस्या इतनी जटिल और विशाल है कि मनुष्य की नैतिक दृष्टि और भौतिक यानी तार्किक दृष्टि इन दोनों को मिला सकना या एक कर सकना आज तक कभी भी सम्भव नहीं हुआ। नैतिक दृष्टि सदा मनुष्य जीवन के अन्तिम आदर्श और सबके भले पर ज़ोर देती रही है, और मनुष्य स्वभाव के उसी तरह के पहलुओं को बढ़ाती रही है। इसके विपरीत तार्किक या भौतिक दृष्टि सदा स्वार्थ और भोगविलास की भावनाओं को पैदा करती रही है और सेवा, त्याग, संयम और आत्मसमर्पण के उन बन्धनों को सदा तोड़ती और कमज़ोर करती रही है, जिनमें मनुष्य की नैतिक बुद्धि समाज और व्यक्ति दोनों को बांध कर लाने की कोशिश करती है।

जैसा हम कह चुके हैं नैतिक दृष्टि क़ुदरती तौर पर कौटुम्बिक जीवन की वैज्ञानिक (बायोलाजिकल) व्यवस्था को अपनी विशाल सामाजिक योजना में शामिल कर लेती है। उसी को वह अपनी सामाजिक योजना की आधार शिला बनाती है। नैतिक दृष्टि वाला मनुष्य प्रकृति के अभेद्य रहस्य और उसकी अपार शक्ति के सामने सर झुका देता है। वह प्रकृति की दयालुता और उपकारिता में विश्वास करता है। प्रकृति के फ़ैसलों को न्यायमङ्गत और अकाट्य मानता है। इसके ख़िलाफ़ तर्क शक्ति प्रकृति की तरफ़ एक विजेता या शासनकर्ता का सा रुख़ अख़्तियार करती है। तर्क शक्ति वाला मनुष्य प्रकृति के नियुक्त किये हुये कुटुम्ब के नमूने को ठुकरा देता है। कौटुम्बिक व्यवस्था के वैज्ञानिक (बायोलाजिकल) अर्थों का मज़ाक़ उड़ाता है। वह गम्भीर और मौलिक शंकाएं पैदा करता है। प्रकृति के फ़ैसलों पर वह खुले ऐतराज़ करता है और कहता है कि इस तरह के फ़ैसले करने का प्रकृति को क्या अधिकार था। वह पूछता है—बिना मनुष्य की रज़ामन्दी के मनुष्य को पैदा करने का प्रकृति को क्या हक़ था? मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा के विरुद्ध उसे तरह-तरह के सांचों में ढालने का प्रकृति को और समाज को क्या अधिकार है? अगर वे ऐसा करते हैं और उसके नतीजे समाज को भुगतने पड़ते हैं, तो समाज भुगते!—वह फिर पूछता है—प्रकृति को क्या हक़ था, कि उसने स्त्री को बच्चे पैदा करने की मशीन बनने के लिए विवश कर दिया, और स्त्री के शरीर को इतना कमज़ोर कर दिया कि वह सदा के लिए पुरुष की आश्रित बन गई? बच्चे के बारे

में वह समझता है कि जिस तरह उद्योग-धंधों में किसी प्रधान चीज़ के बनाने में अकस्मात् कोई दूसरी गौण चीज़ निकल पड़ती है, जिस तरह गुड़ या चीनी के बनाने में शीरा निकल पड़ता है, उसी तरह बिना मां-बाप की इच्छा के अकस्मात् बच्चा पैदा हो जाता है। बच्चे को वह महज़ एक बेकार का बोझ और मां-बाप के सुख भोग में घातक समझता है। वह कहता है कि समाज को जारी रखने के लिए प्रकृति मां-बाप की कमज़ोरी से इस तरह बेजा फ़ायदा उठाती है! मां और बच्चे के सारे सम्बन्ध को और बच्चे की पैदाइश को वह प्रकृति का एक छल बताता है। वह कहता है, आख़िर समाज क्यों जारी रहे? इसकी क्या ज़रूरत? और अगर समाज जारी रहना चाहती ही है, तो मां-बाप को इसकी परवाह क्यों हो? यदि समाज ज़िन्दा रहना चाहती है, तो निस्सन्देह उसे इस बात की इजाज़त नहीं दी जा सकती कि वह अपनी इस ख़्वाहिश को पूरा करने के लिए मां-बाप को क़ुरबान करदे! इसके बाद वह और पूछता है कि मनुष्य दूसरों की परवाह क्यों करे? वह सबके भले या समाज के भले की चिन्ता क्यों करे? त्याग का सिद्धान्त भिखमंगों और निकम्मे लोगों के लिए है! यह सिद्धान्त मनुष्य की सारी रचना और उसके स्वभाव के विरुद्ध है। और यह स्वभाव बदल नहीं सकता! प्रकृति का सबसे बड़ा नियम है—जिसकी लाठी उसकी भैंस। जिसमें जिस किसी चीज़के ले लेने की ताक़त है, वह उसकी है। ताक़त ही अधिकार है। यही सत्य है। न्याय, अधिकार या हक़ ये सब कल्पानाएं मनुष्य की गढ़ी हुई हैं। अन्त में,—हर एक आदमी को अपने लिए ख़ुद क़ानून बनाने का अधिकार है, और ख़ुदा, प्रकृति या समाज तीनों में से किसी को यह अधिकार नहीं है कि ज़बरदस्ती किसी मनुष्य से भी अपनी आज्ञा का पालन करावे या उसे अपनी इच्छा के अनुसार चलावे!

ये सब सवाल बड़े बुनियादी सवाल हैं। मनुष्य जीवन के क़रीब-क़रीब हर पहलू पर इसी तरह के अनेकानेक सवाल उठाए जा सकते हैं। प्रकृति या विज्ञान या मनुष्य का तर्क कोई भी इन सवालों का अन्तिम उत्तर नहीं दे सकता। क्योंकि जैसा हम बार-बार कह चुके हैं, मनुष्य जीवन और उसका अन्तिम लक्ष्य दोनों एक घने रहस्य में लिपटे हुए हैं। जब तक इन दोनों की कोई इस तरह की साफ़ साफ़ व्याख्या या परिभाषा न हो जाय, जिसे सब समझ सकें और सब ठीक मान लें, तब तक इस तरह के सवाल उठते ही रहेंगे और मनुष्य जाति को तूफ़ान, बरबादी और मुसीबतों में से होकर गुज़रना ही पड़ेगा। बदक़िस्मती से स्वार्थ और व्यक्तिगत सुख भोग की इच्छा यानी ख़ुदी की भावना मनुष्य में इतनी ज़बरदस्त है कि उसे क़ाबू में करना मुशकिल और भड़का देना बहुत आसान है। कर्म के क्षेत्र में भी यह भावना तीर की तरह सीधे और बिजली की तरह तेज़ असर डालती है। इसके ख़िलाफ़ सामूहिक जीवन शक्ति सबको साथ लेकर चलने की भावना, बहुत चक्कर के रास्तों से काम करती है और बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ़ती है। मनुष्य स्वभाव के अन्दर की ख़ुदी मनुष्य का स्वार्थ एक-एक क़दम पर उसके रास्ते मे ज़बरदस्त रुकावटें डालता रहता है। व्यक्ति के दिल और दिमाग़ दोनों को इस तरह के सांचों में ढाल देना, जिससे कुटुम्ब, क़बीला, क़ौम और जाति सब एक-एक कर उसके प्रेम के दायरे के अन्दर समाते जावें, पहाड़ की चढ़ाई की तरह मुशकिल है। इन सांचो को इतना विशाल कर देना कि समस्त मनुष्य समाज उनके अन्दर आ जावे, बिना ईश्वरीय सहायता के नामुमकिन है। इस महान् कार्य को सिद्ध करने के लिए प्रकृति को इस तरह के अनेक बड़े-बड़े वीभत्स काण्ड रचने पड़ते हैं, जिस तरह का एक काण्ड आज हम अपनी आंखों के सामने देख रहे हैं।

हमने बायोलाजी की रोशनी में मनुष्य की उन्नति और विकास पर नज़र डाल कर यह देख लिया कि क़ुदरत ने इस विकास को किन-किन क़ानूनों का पाबन्द बनाया है। इन क़ानूनों और उनके अन्तर्गत

असूलों की छान-बीन करने से पता चलता है कि खुदी यानी व्यक्तिगत भावनाओं की जगह मानव हृदय के अन्दर सामूहिक ज़िम्मेवारी के ख़याल को क़ायम करना और स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ और परोपकार को जगह देना, यही समस्त मानव उन्नति और विकास का सब से बड़ा असूल है ! इसी असूल के मातहत समस्त विश्व के जीवन को एक कर देने के लिए एक ज़बरदस्त और व्यापक प्रवृत्ति विश्व में लगातार अपना काम कर रही है। किन्तु दुनिया अभी तक इस असूल पर पूरी तरह अमल नहीं कर पाई। मनुष्य की तर्क शक्ति बराबर अधिकाधिक ज़ोरदार होती जा रही है। और हमेशा नई-नई और निस्सन्देह मौलिक शंकाएं खड़ी करती रहती है। किन्तु उसकी तुच्छ दलीलों और क्षुद्र मन्तक का प्रकृति की चाल पर कोई असर नहीं पड़ता। प्रकृति बराबर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती जाती है।

साथ ही बायोलाजी बड़े गम्भीर स्वरों में, जिस तरह मानों स्वयं 'विधि' आगे के भाग्य की चेतावनी दे रही हो, इस पृथ्वी के उस ज़माने की, जिसे "टरशियरी" युग कहा जाता है, उन करोड़ों क़ुदरती क़बरों की तरफ़ संकेत कर रही है, जिनमें उस युग के कई-कई सौ गज़ लम्बे उन अद्भुत विशाल जानवरों के पिंजर दबे पड़े हैं, जो किसी समय इस पृथ्वी पर राज करते थे, किन्तु जिनकी नसलें इसलिए ख़त्म हो गईं क्योंकि वे प्रकृति के नियमों से नावाक़िफ़ थे और प्रकृति की तब्दीलियों और नई परिस्थितियों के साथ-साथ अपनी आदतों और अपने तरीक़ों को न बदल सके।

और मानव इतिहास, अकथनीय पीड़ा के साथ सृजन और प्रलय, रचना और विनाश की अपनी लम्बी दुःख गाथा को खोल कर उनके सामने पेश कर रहा है और धीरे-धीरे किन्तु स्पष्ट और असंदिग्ध गति के साथ उस लक्ष्य की ओर बढ़ता जा रहा है, जिसका अन्तिम छोर हमारी निगाहों से ओझल है।

सेवागांव में भोजन और इलाज के प्रयोग

पण्डित सुन्दरलाल

जनवरी की विश्ववाणी में "सेवागांव की एक झलक" शीर्षक से मेरा एक लेख छपा है। उसमें मैंने ख़ुराक के बारे में डाक्टर सतीशचन्द्र दास के तजरुबों का सरसरी ज़िक्र किया था। उन तजरुबों की निस्बत कुछ मित्रों ने मुझसे और अधिक जानने की इच्छा प्रकट की है। यह जानते हुए कि मैं न डाक्टर हूं और न साइन्सदां मैं जो कुछ डाक्टर दास से समझ सका, उसे इस लेख में दे रहा हूं।

पहले तो डाक्टर दास का थोड़ा परिचय ज़रूरी है। डाक्टर सतीशचन्द्र दास कलकत्ता विश्वविद्यालय के ऐल० ऐम० ऐस, एडिनब्रा युनिवर्सिटी के ऐल० आर० सी० पी० ऐण्ड ऐस०, ग्लासगो युनिवर्सिटी के ऐल० आर० ऐफ़० पी० ऐण्ड० ऐस०, और डबलिन के ऐल० ऐम० हैं। कई साल नैपाल में चीफ़ मैडिकल अफ़सर रहे। उसके बाद कलकत्ते और दार्जिलिङ्ग में प्राइवेट प्रैक्टिस करते रहे। कहते हैं दार्जिलिङ्ग में किसी समय सबसे चोटी के डाक्टर समझे जाते थे। ख़ूब आमदनी थी। कुछ दिनों शान्तिनिकेतन और बनारस युनिवर्सिटी में भी रह चुके हैं। उम्र इस समय क़रीब साठ साल है। लेकिन काफ़ी तन्दुरुस्त। कई-कई मील सुबह और शाम बड़ी तेज़ी के साथ घूम आते हैं, और दिन-दिन भर अपने काम में लगे रहते हैं। प्रैक्टिस छोड़ने की वजह एक दिन बात करते-करते मुझे यों बताते थे—

मैंने देखा कि हमारी ज़्यादहतर बीमारियों की वजह खाने की ग़लतियां हैं। दवाओं में मुझे बिल्कुल विश्वास नहीं। क़रीब-क़रीब सब बीमारियों में दवाएं फ़ायदा बहुत कम और नुक़सान बहुत ज़्यादह करती हैं। ख़ुराक को ठीक करके या अदल बदल करके क़रीब-क़रीब सब रोग अच्छे हो सकते हैं। लेकिन जो मरीज़ मेरे पास आते थे उनसे जब मैं इस तरह की बात करता तो किसी तरह उनकी समझ में न आता। वे लम्बे-लम्बे नुसख़े चाहते थे। बिना डाक्टरों और दवाओं पर रुपए ख़र्च किये उनकी तसल्ली न होती थी। उन बड़े शहरों में और उस तरह की ज़िन्दगी में मुझे भी रुपए की ज़रूरत रहती थी। उन्हें दवाएं देने का पाप मुझे करना पड़ता था। अन्त में इसीलिए मैं उस जीवन को छोड़कर भाग आया।

डाक्टर दास के कहने को मैंने क़रीब क़रीब उन्हीं के शब्दों में संक्षेप के साथ और ज़रा सी तरतीब देकर बयान किया है।

डाक्टर दास बड़े भावुक, सरल हृदय और ईश्वर भक्त हैं। पच्छिम की साइन्स और पूरब के आस्तिक्य भाव का उनके जीवन में एक सुन्दर संगम है। आज क़रीब दस बरस से वह तरह-तरह के खानों पर तजरुबे कर रहे हैं। यही उनका ख़ास काम है। साइन्स और ख़ास कर डाक्टरी के बारे में वह ताज़ा से ताज़ा साहित्य पढ़ते रहते हैं। गान्धी जी के बड़े भक्त हैं। दोनों में बड़ा प्रेम है। अपना शेष जीवन उन्हीं की सेवा में बिताना चाहते हैं। इसलिये सेवा-गांव आश्रम ही इस समय उनके तजरुबों का ख़ास केन्द्र है।

डाक्टर दास कहते हैं कि खाने में आदमी को तीन बातों का ख़ास ख़याल रखना चाहिये—

१—क्वालिटी—(गुण) यानी शरीर को किस किस चीज़ की ज़रूरत है और किस किस खाने में क्या-क्या गुण हैं।

२—क्वाण्टिटी (मात्रा)—यानी क्या क्या चीज़ कितनी-कितनी खानी चाहिये। और

३—कम्पैटिबिलिटी (मेल)—यानी क्या-क्या चीज़ें एक साथ खाई जा सकती हैं और क्या-क्या नहीं।

आज कल की डाक्टरी के अलावा, वह कहते हैं कि, प्राचीन वैद्यक के ग्रन्थों में भी इन तीनों बातों पर ज़ोर दिया गया है।

क्वालिटी या गुण के ख़याल से वह तमाम खाने की चीज़ों को मोटे तौर पर नौ अलग-अलग श्रेणियों में बांटते हैं—

१—कन्सेण्ट्रेटेड कारबोहाइड्रेट यानी वह चीज़ें, जिनमें कारबोहाइड्रेट की मात्रा ज़्यादह है, जिससे ज़्यादहतर हमारे जिस्म के पट्ठे बनते हैं। जैसे—गेहूं, चावल, जौ, साबूदाना, मक्का, बाजरा. जवार, केला, खजूर, अमरूद, आलू, शकरक़न्द, किशमिश, मुनक़्क़ा, और खरबूज़ा।

२—कन्सेण्ट्रेटेड प्रोटीन यानी वह चीज़ें, जिनमें प्रोटीन की मात्रा ज़्यादह है, जो कारबोहाइड्रेट के बाद शरीर के लिए ख़ास कर नसों के लिए ज़रूरी हैं। जैसे मूंग, उड़द, अरहर इत्यादि सब तरह की दालें, चना, मटर, सेम, सेम की तरह की फलियां (बीन्स) मछली, अंडा, गोश्त, पनीर और छाना।

३—दूध और दही—इन दोनों को वह एक अलग श्रेणी में रखते हैं।

४—वह चीज़ें, ख़ास कर वह सब्ज़ियां, जिनमें कारबोहाइड्रेट और प्रोटीन दोनों थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मौजूद हैं। जैसे—गाजर, मूली, गोभी, बैंगन, शलजम, लौकी, कुम्हड़ा, करेला, भिंडी, कद्दू, ककड़ी, सहजन, परवल, प्याज़, टिण्डा, पपीता, आम और जामुन।

५—कन्सेण्ट्रेटेड वैजिटेबल प्रोटीन और फ़ैट की चीज़ें, जिनमें एक ख़ास तरह का यानी बनस्पति का प्रोटीन भी बहुत है और फ़ैट यानी तेल भी ख़ूब होता है। इनमें वह ज़्यादहतर सूखे मेवों (नट्स) जैसे—बादाम, काजू, नारियल, पिस्ता, मूंगफली और अखरोट, और उन सब चीज़ों को शामिल करते हैं जिनमें तेल निकलता है।

६—शुद्ध फ़ैट (चिकनाई) जैसे—मक्खन, घी, तेल और मलाई।

७—ऐसिडफल, यानी वह फल जिनके रस में एक ख़ास तरह की तुर्शी होती है। जैसे—सन्तरा, मोसम्बी, अंगूर, निम्बू और टोमैटो।

८—मीठे फल। जैसे—केला, अमरूद, खजूर, किशमिश, आम, मुनक्क़ा, पपीता।

९—हरी पत्तियां जैसे—नीम, धनिया, पोदीना, पालक, मेथी, और क़रीब-क़रीब सब हरे साग।

इन नौ तरह की चीज़ों में कोई-कोई एक से ज़्यादह श्रेणी में हैं। जैसे केला, अमरूद, खजूर, किशमिश और मुनक्का नं० ८ में भी हैं और नं० १ यानी कन्सेण्ट्रेटेड कारबोहाईड्रेट खानों में भी। ऐसे ही आम और पपीता नं० ८ में भी शामिल हैं और नं० ४ में भी।

डाक्टर दास के सिद्धान्तों में सब से ख़ास और किसी-किसी बात में सब से विचित्र चीज़ 'काम्पैटिबिलिटी' (मेल) का विचार है, यानी यह कि किन-किन चीज़ों का आपस में मेल है और कौन-कौन बे मेल हैं। यानी कौन-कौन चीज़ें एक साथ खाई जा सकती हैं और कौन-कौन नहीं खाई जा सकतीं। इस फ़रक़ की ख़ास वजह वह यह बताते हैं कि अलग-अलग चीज़ें हज़म होने के लिए मेदे और अंतड़ियों में से अलग अलग तरह के रस खेंचती हैं, कोई 'ऐसिड' यानी आम्ल रस चाहती हैं और आम्ल रस ही खेंचती हैं और कोई 'एल्केलाइन' यानी क्षार रस चाहती हैं और क्षार रस ही खेंचती हैं। एक तरह का रस खेंचने वाली चीज़ें मेलवाली (कम्पैटिबिल) और अलग-अलग तरह का रस खींचने

श्रेणी नं० ८ की चीज़ें यानी वह फल जिनमें मिठाई ज़्यादह है,—केला, अमरूद, खजूर, किशमिश मुनक्का—श्रेणी नं० १ की चीज़ों जैसे गेहूं की रोटी या भात वग़ैरह के साथ खाई जा सकती हैं। लेकिन श्रेणी नं० २ की किसी चीज़ जैसे दाल या चने के साथ श्रेणी नं० ८ की कोई चीज़ नहीं खानी चाहिये।

पपीता और आम ये दोनो फल श्रेणी नं० १ की, २ की, या तीन की किसी भी चीज़ के साथ खाये जा सकते हैं।

पपीता और आम अपने विटेमिन के लिहाज़ से बहुत ही अच्छी चीज़ें हैं। ख़ास कर आम बहुत ही अच्छा आहार है।

श्रेणी नं० ७ का कोई फल श्रेणी नं० ८ के किसी फल के साथ मिलाकर एक साथ नहीं खाना चाहिये। मसलन सन्तरा और केला एक साथ कभी नहीं खाना चाहिये। फलों के बारे में सब से अच्छा नियम यह है कि एक दफ़े में कोई एक फल ही खाया जावे दो तरह के फल एक साथ न खाए जावें।

श्रेणी नं० ९ में से धनिया, पौदीना नीम, मेथी, या पालक इन में से कोई न कोई एक या अधिक क़िस्म की हरी पत्ती, कच्ची, दो चार माशे हर खाने के साथ ज़रूर खानी चाहिये। बहुत मुफ़ीद है। इनमें विटेमिन बहुत होते हैं।

अब विटेमिन क्या चीज़ हैं? कारबोहाइड्रेट, प्रोटीन और फ़ैट, जो रोटी, चावल, दाल और घी में ज़्यादह हैं, वह मसाला यानी सामिग्री हैं, जिनसे शरीर की रचना होती है। विटेमिन वह राज या कारीगर हैं जो अन्दर जाकर इस मसाले से इमारत बनाते हैं। इसलिये थोड़े बहुत विटेमिन का शरीर में पहुंचना ज़रूरी है। विटेमिन कई तरह के हैं। यूं तो गेहूं, चावल, दाल वग़ैरह में भी यानी इनके छिलकों में कुछ न कुछ विटेमिन होते हैं, लेकिन वह विटेमिन पकाने में थोड़े बहुत नष्ट हो जाते हैं। धनिया, पौदीना, नीम की पत्ती, ताज़ा आंवला और पान का पत्ता ये विटेमिन की खाने हैं। बशर्ते कि इन्हें कच्चा और ताज़ा खाया जाय और पान को यूंही चबा लिया जाय, लगा कर नहीं। ज़्यादहतर फलों में भी काफ़ी विटेमिन होते हैं।

सब्ज़ियों के विटेमिन भी पकाने से बहुत कुछ नष्ट हो जाते हैं। इसलिये डाक्टर दास की राय है कि जो सब्ज़िया कच्ची खाई जा सकती हैं जैसे गाजर, मूली, शलजम, करमकल्ला, लौकी; भिंडी उन्हे कच्चा खाना ज़्यादह मुफ़ीद है। जिन्हें पकाना ज़रूरी है, उन्हें भी कम से कम देर आग पर रखना चाहिये। दूध अगर सफ़ाई से मिल सके, तो कच्चा पीना ज़्यादह मुफ़ीद है। वह तजरुबों की बिना पर कहते हैं कि जो बच्चे बजाय मां के दूध के केवल गाय या बकरी के उबले हुए दूध पर रखे जाते हैं, वह कभी तन्दुरुस्त नहीं रह सकते। बच्चों के लिये सबसे अच्छा मां का दूध, वह न मिल सके तो किसी दूसरी स्त्री का दूध, नहीं तो गाय या बकरी का ताज़ा, कच्चा दूध पानी मिलाकर। अगर यह न हो सकता हो, तो भी दूध को कम से कम गरम किया जाय और उसके साथ सन्तरे अंगूर या टोमैटो का थोड़ा सा रस दूध के उस अंश को पूरा करने के लिये, जो उबालने में नष्ट हो जाता है, रोज़ बच्चे को दे देना चाहिये।

बारीक़ मैदा, जिसमें से गेहूं का छिलका बिल्कुल निकाल दिया गया है, बिना छिलकों की दालें, मिल के कुटे चावल, वह भात जिसमें से मांड़ निकाल दिया गया है, खोया, रबड़ी, पूरी, पकवान मिठाइयां और मसालेदार चीज़ें, इन सबको डाक्टर दास "डेडफ़ूड्स" यानी मुर्दा खाने कहते हैं और हानिकर बताते हैं। कच्ची सब्ज़ियों और फलों के बड़े तरफ़दार हैं। चीनी को वह सफ़ेद ज़हर कहते हैं। चाय और तम्बाकू के इस्तेमाल को बहुत ही बुरा बताते हैं। गुड़ की बड़ी तारीफ़ करते हैं। उसे श्रेणी नम्बर १ में यानी 'कन्सेण्ट्रेटेड कारबोहाइड्रेट' में गिनते हैं। गेहूं की रोटी, गुड़ और घी को मिलाकर, या दलिया गुड़ और घी को मिलाकर या भात गुड़ और घी को मिलाकर खाना बहुत ही अच्छा बताते हैं। केवल

कोढ़ी शास्त्री की सेवा में लगे गांधी जी
पण्डित सुन्दरलाल जी पास ही खड़े हैं
पण्डित श्रीराम शर्मा के सौजन्य से]
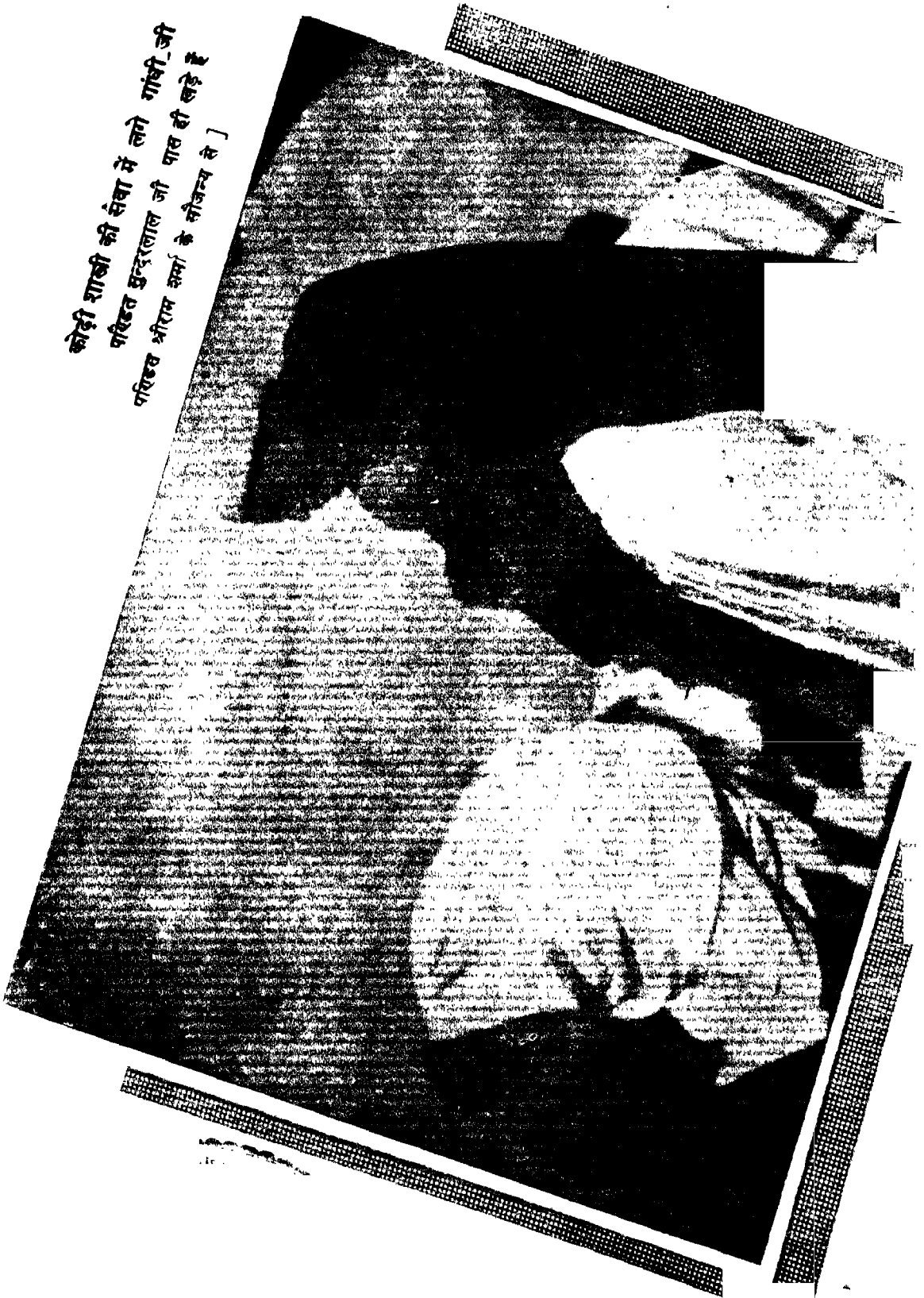
गान्धी जी कोढ़ी-शास्त्री के खुरंट उतार रहे हैं

कनु गान्धी के सौजन्य से]

गान्धी जी कोढ़ी-शास्त्री की मालिश कर रहे हैं

कनु गान्धी के सौजन्य से]

उसके साथ औसत से सब्ज़ी या पत्तो ज़रूरी है। दूध और दलिए को ग़लत बताते हैं। दूध या दही के साथ गुड़ नहीं खाया जा सकता। केले और घी का मेल बहुत अच्छा बताते हैं। केला और दूध नहीं। घी से मक्खन को अच्छा बताते हैं और डबलरोटी से चपाती को। सब्ज़ी वह आमतौर पर कच्ची या महज़ थोड़ी सी उबली हुई बताते हैं। नमक ऊपर से खाया जा सकता है; लेकिन न खाया जाय, तो क़ुदरती चीज़ों, नाज, दूध, सब्ज़ी में इन्सान के लिए काफ़ी नमक है।

आमतौर पर डाक्टर दास इस असूल को मानते हैं—Always leave the dining room with a pleasant sense of hunger यानी खाना कभी डट कर नहीं खाना चाहिये। हमेशा थोड़ी हलकी भूख बाक़ी रह जाय।

अब सेवाग्राम आश्रम के अन्दर डाक्टर दास के तजुरबों का थोड़ा सा ज़िक्र कर देना नामुनासिब न होगा।

आश्रम के ज़्यादहतर लोग अपनी रज़ामन्दी से डाक्टर दास के प्रयोग में शामिल हो गये। मैं भी उनमें से एक था। ज़्यादहतर का वज़न शुरू में चन्द हफ़्ते घटा और फिर बढ़ना शुरू हो गया। यही हाल मेरा हुआ। अगरचे डाक्टर दास वज़न को बहुत कम महत्व देते हैं। फुर्ती, ताज़गी और ताक़त क़रीब-क़रीब सब को बढ़ती हुई मालूम हुई।

जो मरीज़ डाक्टर दास के इलाज में रहे, उनमें से मैं चार का थोड़ा सा ज़िक्र करूंगा। क़रीब-क़रीब हर मर्ज़ का इलाज वह उपवास से शुरू करते हैं। उसके बाद थोड़ा-थोड़ा एक तरीक़े से खाना देना शुरू करते हैं। दवाओं के नाम से उन्हें लगभग चिढ़ है।

१—सेठ जमनालाल जी बजाज की पत्नी श्रीमती जानकी बाई की तन्दुरुस्ती बरसों से गिरती जा रही थी। बवासीर के अलावा और भी कुछ तकलीफ़ें थीं। आपरेशन भी कराया गया। कोई ख़ास फ़ायदा न हुआ। पाख़ाने जाना रोज़ सख़्त तकलीफ़ का सामना करना था। कमज़ोरी इतनी बढ़ गई थी कि बिस्तरे से दो क़दम चल सकना भी मुशकिल था। करवट लेने में भी तकलीफ़ होती थी। एक दिन बिस्तरे पर पड़े-पड़े निराश होकर मुझसे कहने लगीं—"सुन्दरलालजी, अब मैं नहीं उठने की।" अपने बीमार मित्रों को आश्रम में बुला बुला कर रखने, उनका इलाज कराने और ख़ुद उनकी देखभाल और सेवा सुश्रुषा करने का गांधी जी को ख़ास शौक़ है। जानकी बाई भी मेरे सामने आश्रम में आईं। इसी बुरी हालत में। डाक्टर दास के इलाज में रखी गईं। उन्होंने न कोई दवा दी, न आपरेशन न इंजेक्शन। पहले चौदह दिन तक उपवास कराया। उपवास में रोज़ ऐनिमा दिया जाता था। उसके बाद खाना शुरू कराया। एक सन्तरा रोज़। हफ़्तों बाद एक सन्तरे से दो, दो से तीन, तीन से धीरे-धीरे चार और पांच तक नौबत पहुंची। जब मैं आख़ीर बार मिला, तो पांच सन्तरे रोज़ और थोड़ा सा उबली हुई सब्ज़ियों का पानी दिया जाता था। अन्न का कहते थे अभी नाम न लो। लेकिन जब केवल दो या तीन सन्तरे रोज़ मिल रहे थे, तभी से मरीज ने चलना फिरना शुरू कर दिया था। आख़ीर में वह हम लोगों के साथ दो तीन मील आसानी से घूम आती थीं। काफ़ी तेज़ चल सकती थीं और सीधी। रास्ते में कोई हाल पूछता तो हंसकर कहतीं—"तीन सन्तरों में तीन मील चलाने की ताक़त है—यह डाक्टर तो सचमुच जादूगर है।" जानकी बाई ने मेरे सामने नया जीवन पाया। उनका मामला सचमुच इस बात का जबरदस्त सबूत है कि ताक़त क़ायम रखने के लिये और तन्दुरुस्ती के लिये कितने कम खाने की जरूरत है। और हम लोग कितना फ़ज़ूल खाकर बीमारियां मोल लेते हैं।

२—श्री दासप्पा मैसूर के एक देशभक्त वकील। गठिया और जोड़ों के दर्द से हिलना-जुलना बैठकर उठना, हाथ ऊंचा ले जाना सख़्त तकलीफ़देह और मुसीबत की चीज़ थी। मैसूर के डाक्टर बहुत फ़ायदा

न पहुंचा सके। बापू ने आश्रम में बुलाकर रखा। डाक्टर दास ने वही लम्बे-लम्बे उपवास (रैगुलेटेड फास्ट) और उनके बाद थोड़ा-थोड़ा फलों का रस देना शुरू किया। दिन भर भूख लगी रहती थी। लेकिन मजबूरी थी। मेरे सामने देखते-देखते एक दो महीने के अन्दर ही जिस आदमी के लिये बैठ कर उठना एक संकट था, बिना दवा और बिना इंजेक्शन के वह तीन मील दौड़ सकता था, और दस मील साइकिल पर जा सकता था, और ४५ साल का आदमी चलता था बीस साल के लड़के से तेज़। वज़न क़रीब १५० पौण्ड से घटकर क़रीब ११८ पौण्ड रह गया था। डाक्टर दास कहते थे यह वजन ही तुम्हारा रोग था, अब इसे कभी ११८ से बढ़ने मत देना। खाना वही मुख्तसिर फल कच्ची सब्ज़ी वग़ैरह।

डाक्टर दास का इलाज शुरू होने से पहले दूसरे डाक्टरों ने श्री दासप्पा के सब दांत पायरिया कहकर निकाल कर फेंक दिये थे। डाक्टर दास को इसका बड़ा दुःख था। वह कहते थे इसी उपवास और खाना ठीक करने से पायरिया वायरिया सब चला जाता और दांत बच जाते। आमतौर पर डाक्टर लोग जितनी जल्दी पायरिया कहकर दांत निकाल डालते हैं, डाक्टर दास इसके सख्त ख़िलाफ़ हैं।

३—एक लड़के के, जो क़रीब दस बरस का था, दोनों तरफ़ के टौन्सिल बेहद बढ़ गये थे। काफ़ी तकलीफ़ थी और कमज़ोरी। दूसरे डाक्टरों ने टौन्सिल काट डालने की राय दी। डाक्टर दास ने मां को समझा कर आपरेशन को रोका, बच्चे के खाने से कारबोहाइड्रेट बहुत कम कर दिये। गुड़ बन्द कर दिया। क़रीब एक महीने के अन्दर दोनों तरफ़ के टौन्सिल ख़ुद-ब-ख़ुद उड़ गये। बच्चा तन्दुरुस्त हो गया।

वह कहते हैं देखना सिर्फ़ यह चाहिये कि मरीज़ के शरीर में किस चीज़ की ज़्यादती और किस की कमी है और उसी के अनुसार खाना ठीक कर देने से सब मर्ज़ दूर हो सकते हैं।

४—एक और मरीज़ का हाल मैं देना चाहता हूं, लेकिन वह अभी इतनी साफ़ सफलता की मिसाल नहीं है। एक 'शास्त्री जी', जिन्हें क़रीब १२ साल से कोढ़ का मर्ज़ है और मर्ज़ अपने पूरे ज़ोर पर है। नाक बैठ चुकी। बापू के प्रेम से आश्रम में मरने के लिये आए थे। आजकल वहीं हैं। जनवरी के अङ्क वाले लेख में मैंने उनका कुछ ज़िक्र किया था और लिखा था कि गांधी जी ख़ुद अपने हाथ से उनके सारे शरीर की मालिश करते हैं, उनके ज़ख़्मों से पीप निकालते हैं और उनके खुरंट उतार कर फेंकते हैं। दोनों में बड़ा प्रेम है। शास्त्री जी ने एक सप्ताह का निर्जल उपवास किया। यह मालूम रहना चाहिये कि आमतौर पर बड़े से बड़े डाक्टर इस रोग में उपवास को बहुत ही बुरा बताते हैं। लेकिन उस सप्ताह में जिस तरह शास्त्री जी के ज़ख़्म सूखने लगे और उनका रोग साफ़ क़ाबू में आने लगा—इतना बुरा और बढ़ा हुआ रोग, उसे देखकर सब चकित थे। फिर डाक्टर दास ने उनके खाने को ठीक करना शुरू किया। बहुत दिनों फ़ायदा होता दिखाई दिया। जो शास्त्री जी अपनी कुटिया से नहीं हिल सकते थे, एक दिन मैं देखकर दंग रह गया कि लम्बा कुरता पहने सड़क पर घूम रहे थे। लेकिन कुछ दिनों बाद रोग ने फिर कुछ नई अलामतें दिखाईं। डाक्टर दास फिर उपवास कराने की सोच रहे थे। उन्हें पक्का विश्वास है कि इन्हीं बार बार के उपवासों और व्यवस्थित ख़ूराक से शास्त्री जी कुछ दिनों में बिल्कुल तन्दुरुस्त हो जायेंगे। डाक्टर दास को इसमें तिल भर भी शक नहीं। बशर्ते कि जिस तरह डाक्टर दास कहें वैसा ही शास्त्री जी चल सकें। लेकिन इस मामले में डाक्टर दास को दो बड़ी दिक्क़तें हैं। एक तो रोग इतना कठिन और दूसरे कुछ दूसरे सहृदय समझ के शास्त्री जी के साथ अति प्रेम की वजह से खाने पीने का जिस तरह का परहेज़ डाक्टर दास चाहते हैं, वह कभी-कभी नहीं चल पाता। इसकी उन्हें शिकायत रहती है। रोग और इलाज में कुश्ती जारी है। लेकिन अगर डाक्टर दास जीत गये

और जीतना असम्भव दिखाई नहीं देता, तो दुनिया के वैद्यक के इतिहास में यह एक नई चीज़ होगी।

स्वयं बापू ने डाक्टर दास के सिद्धान्तों के अनुसार अपने खाने को काफ़ी बदला। एक बार उन्होंने यह महसूस किया कि उबली सब्ज़ी की जगह कच्ची सब्ज़ी खाने से उनका वह ख़ून का दबाव (ब्लड प्रेशर) जो किसी तरह नीचे न आता था एकदम काफ़ी दरजे नीचे उतर आया। लेकिन बापू का जीवन इतना असाधारण है और वह स्वयं इन मामलों में इतने काफ़ी डाक्टर हैं कि किसी प्रयोग का नतीजा उनके शरीर पर से जल्दी से नहीं निकाला जा सकता है। मैं कह चुका हूं डाक्टर दास और बापू में बड़ा प्रेम है। बापू उनके प्रयोगों में पूरी मदद देते हैं। दोनों की राय भी काफ़ी मिल जाती है। बापू को विश्वास है डाक्टर दास के इन प्रयोगों से काफ़ी काम की बातें निकल आवेंगी।

जो सज्जन इस विषय पर कुछ और पढ़ना चाहें उनके लिए डाक्टर दास ही की सलाह से कुछ पुस्तकों के नाम नीचे दिये जाते हैं—

1. "The Master Key to Health" by Rasmus Alsakar
   Price 10 s 6 d.
2. "Child Health via Food" by Rasmus Alsakar
   7 s. 6 d.
3. "Health via Food" by Rasmus Alsakar
   8 s. 6 d.
4. "Food" by Harry Benjamin. Indian edition, 12 as.

आम तौर पर इस विषय में The Sun Diet Health Library का साहित्य पढ़ने योग्य है। इसी तरह "Health Bulletin" by Indian Research Institute, Conoor. वहीं से Vitamin chart भी दो आने को मिल सकता है।

मैं भूल गया अब उन रागों की कड़ियां

विश्वम्भरनाथ

(१)

बिजली तड़पी फिर वज्रघात रव छाया,
सन् सत्तावन का वर्ष निराला आया;
सुनकर दुखियों का अतिशय कातर क्रन्दन,
हमने अपनी मा के तोड़े थे बन्धन;
जो स्वाभिमान की बची हुई पूंजी थी,
कुछ अली अली ! हर बम ! की ध्वनि गूंजी थी;
चुन चुन महलों ने अग्नि शिखा सुलगाई,
धधकी कुटिया, लपटें थीं नभ तक छाईं;
फिर लाल क़िले पर राष्ट्र ध्वजा फहराई,
वृद्धा दिल्ली पुलकित होकर मुसकाई;
इन हाथों में पड़ गईं पुनः हथकड़ियां,
मैं भूल गया अब उन रागों की कड़ियां;

(२)

थे विपथ तिलङ्गे बोलो किसकी थाती ?
अब तक लज्जा को उन पर लज्जा आती !
भूले सिक्खा अपनी मा का दुःख भूले,
हंस क्रूर गोरखे अहङ्कार में फूले;
विभ्रम निर्मम रजपूती शान अभागी,
उस आर्तनाद से नींद न उनकी जागी;
उस आयोजन की थी विराट तय्यारी,
हो दूर फिरङ्गी ध्वनि थी प्रलयङ्कारी;
पर भाई ही बन आया हत्याकारी,
हमने वह सारी जीती बाज़ी हारी;
फिर नयनों के मोती से गूंथी लड़ियां,
मैं भूल गया अब उन रागों की कड़ियां !

× × ×

(६)

देखे हमने फिर नये नये परिवर्तन,
काला काला नभ में छाया आवर्तन !
फिर गांवों को घेरा, वे गये जलाये !
थे जगह जगह फांसी के तख़्त लगाये !

था रुधिर हमारा बहता बनकर धारा !
थीं उगल रहीं नित बन्दूकें अंगारा !
अपने ही ख़ूं से हमने स्नान किया था !
ओ री ! स्वाधीने तेरा ध्यान किया था !
बिखराते जाते शहर, तोप के गोले !
उड़ते जाते थे गांव गांव में शोले !!
फिर रक्त-वरुण की बरसी थीं फुल झड़ियां !
मैं भूल गया अब उन रागों की कड़ियां !!

× × ×

(११)

पर आज कहो वह कैसे पर्व मनायें ?
किस मुंह से उन वीरों की गाथा गायें ??
मिल रुधिर हुआ था एक कीर्तिमानों का !
हिन्दू था सखा अभिन्न मुसलमानों का !!
हम जीकर ही क्या जिये देश यदि हारा ?
उस क़ुरबानी का मूल्य यही था सारा;
पर आज मुसल्मां नये तराने गाते,
मां को विक्षत कर पाकिस्तान बनाते !
हिन्दू पद - पाद - शहन्शाही के नारे,
'हिन्दी भाषा चिर जिये' - व्यग्र हैं सारे !
है क्रान्ति रो रही चुप गिन-गिन कर घड़ियां !
मैं भूल गया अब उन रागों की कड़ियां !!

(१२)

हम देश राग को भूल नया स्वर गाते,
इन्सां को बुत, बुत को इन्सान बनाते !
क्या धर्म हमें आपस में बैर सिखाते ?
भाई को ही भाई का शत्रु बनाते ??
यदि ये ही हिन्दू धर्म भ्रष्ट हो जाये !
यदि ये ही है इसलाम नष्ट हो जाये !!
हम ला-मज़हब हो जाय मगर इन्सां हों,
हम मिटकर मानवता के अमिट निशां हों।
युग पूछ रहा ग़ाफ़िल कब तक सोओगे ?
क्या गान्धी का नेतृत्व व्यर्थ खोओगे ?
उट्ठो तोड़ो ये बन्धन, ये हथकड़ियां,
मैं सीखूं नूतन राग, पुरातन कड़ियां* ।

* मई, सन् ५७ की पुण्य-स्मृति में एक अपूर्ण कविता—लेखक ।

हमारी ऐतिहासिक भ्रान्तियां

डाक्टर ईश्वरनाथ टोपा, एम० ए०, डी० लिट्

लोगों के दिलों में यह ख़्याल पैदा किया गया है कि मुसल्मानी हुकूमत शुरू होने से हिन्दुस्तान के हिन्दुओं की क़िस्मत का फ़ैसला हो गया। कहा जाता है कि जो मुसल्मान विजेता की हैसियत से यहाँ आये, वे अपने साथ तलवार और आग लेकर आये। वे हिन्दू-संस्कृति की पवित्र जड़ों को नष्ट करने, इस देश को उजाड़ने और यहाँ की जनता को बरबाद करने आये। यह भी कहा जाता है कि मुसल्मानों की शासन-सत्ता के आधार थे ज़ुल्म, शोषण, ज़ब्ती, ख़ूंख़ारी, निर्दयता और ख़ून बहाने में आल्हाद और देशवासियों के तीर्थस्थानों को बरबाद करने की एक अस्वाभाविक ख़ुशी। हिन्दू और मुसल्मानों की संस्कृतियों के आपसी मेल से जो कुछ हुआ, उसकी समन्वयात्मक दृष्टि से जाँच करने का अब तक बहुत कम प्रयत्न किया गया है। भारतीय इतिहास को पढ़ने के बाद तबियत में जो बेलुत्फ़ी पैदा होती है, उसका कारण केवल वह ढंग नहीं है, जिसका यहां के इतिहास लिखने में उपयोग किया गया है, बल्कि इसलाम जिस तरह ज़िन्दगी की क़ीमत आंकता है, उसकी तारीफ़ करने से परहेज़ भी है। इससे मेरा मतलब यह है कि उन मौलिक सिद्धान्तों को समझने की सच्ची कोशिश नहीं की गई, जिनके द्वारा इसलामी राज्य और इसलामी समाज तरक्क़ी कर सके। हमारा यह बड़ा दुर्भाग्य है कि भारतीय इतिहास लेखकों में कुछ ऐसा दिमाग़ी असर रहा है, जिससे रंगी बातों को बेहद बढ़ा-चढ़ा कर [illegible] ही उनका आम रवइया हो गया है और बिना किसी ऐतिहासिक सामग्री या प्रमाण के उन्होंने मनमाने नतीजे निकाल लिये हैं। ऐतिहासिक घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर ग़लत तरीक़े से और उनमें बुरी नीयत समझ कर उन्होंने हिन्दुस्तान की मुसलिम हुकूमत के बारे में लोगों के दिलों में ज़बरदस्त भ्रम पैदा कर दिया है।

इतिहास लेखक अपने समय की विचार-धारा के ही प्रतिरूप होते हैं, इसलिए जिस युग में ऐसे इतिहास लिखे गये हैं, उस युग की विचार-धारा भी निन्दनीय है। और भी साफ़ समझने के लिए कहना चाहिए कि इतिहास लेखकों के मन पर अपने युग की सामाजिक शक्तियों का बहुत ज़ोरदार असर पड़ता है। युग और समय विचारों के रूप में जनता के मानसिक जीवन को बनाते या बिगाड़ते हैं। सारे संसार पर युग और समय का शासन होता है और इन्हीं की प्रधानता होती है। इसी प्रकार भारतीय इतिहास लेखक भी आधुनिक भारत की उन्हीं शक्तियों से परिचालित हुए, जिनका सम्बन्ध पुरानी सांस्कृतिक धाराओं से बहुत अरसे से छूट गया है। भारतीय जनता के उस सांस्कृतिक जीवन से अलग हो जाने से ही भारतीय इतिहास लेखकों में एक साम्प्रदायिक दृष्टिकोण पैदा हो गया है; इसी से उस युग की विचार-धारा के बारे में भी ग़लतफ़हमी हो गई है और पुरानी बातों को समझने के लिए झूठी सांस्कृतिक कसौटी का उपयोग करने से इस देश में संकुचित विचार-धारा पैदा होने लगी है। इस तरह

का इतिहास लिखने से कुछ राजनैतिक मतलब निकल सकता है। लेकिन ऐसे इतिहास के पढ़ने से लोगों के मन में ज़बरदस्त ग़लतफ़हमियाँ पैदा हो जाती हैं।

मुसल्मानी हुकूमत के बारे में जो सब से अधिक भ्रम यहाँ फैला है, मेरी समझ से उसकी वजह इतिहास लेखकों का वह प्रयत्न है, जो उन्होंने राजनैतिक घटनाओं के पीछे धार्मिक नीयत देखने में किया है। मध्यकालीन हिन्दुस्तान का वास्तविक मूल्य भारतीय इतिहास लेखकों द्वारा आमतौर पर जिस कसौटी पर आँका गया है, वह या तो मुसलिम है या हिन्दू, और दोनों सूरतों में बेहद संकीर्ण है। यही उसका सब से बड़ा दोष है। मध्यकाल के जीवन की जाँच कुछ तो उस युग के आचार-विचार और साधारण समझ के अनुसार होनी चाहिए और कुछ उस मानवता पूर्ण व्यवहार के आधार पर, जो उस समय के बड़े-बड़े व्यक्तियों ने बरता।

मध्यकाल का समूचा जीवन अपने तर्ज़ तरीक़े दोनों में बेहद मध्मकालीन था। अत: आधुनिक जाँच के ढङ्ग मध्यकाल के लिए प्रयोग करने पर हम मध्य युग की प्रेरणा और उसकी आवश्यकता को आधुनिक दृष्टि से देखने पर बाध्य होते हैं। इससे हम उस युग की आत्मा और उस युग के जीवन को सच्चे मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से नहीं जान सकते। मध्यकालीन हिन्दुस्तान को समझने के लिए मध्यकाल के ही नैतिक और राजनैतिक मापदण्डों का उपयोग करना चाहिए। और भी साफ़ शब्दों में इसका मतलब यह है कि हिन्दुस्तान के महान मुसलिम शासकों के आला दिमाग़ों के कार्य और कार्य करने के तरीक़ों को हमदर्दी के साथ समझने में इतिहास लेखक असफल रहे हैं, क्योंकि उन्होंने मध्यकालीन सामाजिक और राजनैतिक जीवन की जाँच के लिए ग़लत मापदण्डों का इस्तेमाल किया है। और इस तरह पुराने ज़माने की धार्मिक, राजनैतिक, और सामाजिक बातों को उन्होंने अपने ही नुक़्ते नज़र से देखना चाहा है, न कि उस युग के महान शासकों और लोगों के नुक़्ते नज़र से। एक ऐसा तथ्य, जिसे सब ने मान लिया है, वह यह है कि इतिहास में कभी झूठ में मिला हुआ सच होता है और कभी ख़ुदग़रज़ी या नापाक ख़्याल से जान बूझ कर सच को झूठ में बदल कर पेश किया जाता है। इस तरह इतिहास अकुशल हाथों में एक विश्वास-घातक अस्त्र हो जाता है। हिन्दुस्तानी इतिहास लेखकों के हाथों में उसकी यही कैफ़ियत है।

इस बात से आमतौर पर सभी सहमत हैं कि कला की किसी महान कृति को समझने के लिये कलाकार की मानसिक स्थिति को देखना, अनुभव करना और समझना ज़रूरी है। यही बात इतिहास के लिये भी है। इतिहासकार का यह सबसे पहला और सबसे ज़रूरी फ़र्ज़ है कि वह ऊपर लिखे ढङ्ग से इतिहास का महत्व समझे। ऐसी सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से वंचित होने के कारण ही इतिहास लेखकों ने चारों तरफ़ ऐसी गड़बड़ी फैला दी है।

अगर भारतीय इतिहास की यह गड़बड़ी ऐसी होती, जिससे नुक़सान न हुआ होता या बहुत बुरा प्रभाव न पड़ा होता, तो इस देश का इतिहास नये सिरे से लिख डालना आसान होता। किन्तु इसके विपरीत इस प्रकार का इतिहास, जितने मुमकिन नुक़सान की कल्पना की जा सकती है, उतना अधिक नुक़सान पहुंचा चुका है। देश के विविध धर्मावलम्बियों के पारस्परिक दृष्टिकोण को ठीक से समझने और उनकी प्रशंसा करने की सम्भावनाओं तक को इस इतिहास ने कोसों दूर फेंक दिया है। इसलिये इस समय हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी ज़रूरतों में एक यह है कि हमारे देश का एक ऐसा इतिहास लिखा जाय, जो देश की उन्नति के लिये ठीक रङ्ग और ठीक भावों को व्यक्त कर सके। देश का भविष्य बहुत कुछ उस दृष्टिकोण पर अवलम्बित होगा, जिस दृष्टिकोण से इतिहास फिर से लिखा जायेगा। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि आजकल के इतिहास लेखकों के हाथों में ही देश का भविष्य निर्भर है। उनके ऊपर ज़बरदस्त ज़िम्मेवारी है। जिस विष को वे देश

के सामाजिक जीवन में पेवस्त करने के आदी हो गये हैं, उसको अब बन्द करना चाहिये। वर्तमान भारत को, अगर उसे अपना भविष्य उज्वल बनाना है, तो इस झूठे इतिहास की समस्या का सामना करना पड़ेगा और उचित जिज्ञासा के भाव से इतिहास की इस वैज्ञानिक खोज के काम को वह जितनी जल्दी शुरू करदे, उतना ही उसके भावी जीवन के लिये बेहतर होगा। अन्यथा इतिहास की इस भेद भाव बढ़ाने वाली शक्तियों को यदि अधिक समय तक हम रोकने में समर्थ न हो सके, तो ऐसी दुरवस्था पैदा हो जायगी कि भविष्य में अपने सामाजिक सम्बन्धों को फिर से ठीक कर लेना बहुत ही मुश्किल काम हो जायगा। उस दुर्दशा से हिन्दुस्तान की रक्षा करनी चाहिये।

ग़लतफ़हमी की एक वजह को बयान करने के बाद अब मैं एक क़दम और आगे बढ़कर दूसरी वजहों को ढूंढ़ने की कोशिश करूंगा। हिन्दुस्तानियों के दिलों में आपसी वहम और नफ़रत की जो वजह समझी जाती हैं, वे ये हैं कि तलवार के ज़ोर से इसलाम फैलाने की ग़रज़ से ही हिन्दुस्तान पर मुसलमानों का हमला हुआ, जज़िया कर लगा कर लोगों को आर्थिक दृष्टि से ग़ुलाम बना दिया गया, और हिन्दू समाज की धार्मिक बुनियादों को नष्ट करने के लिये जान-बूझकर मन्दिरों को तोड़ा गया। इन सब अत्याचारों की मज़हबी और राजनैतिक वजह इस्लाम को ही माना जाता है।

भारतीय इतिहास पर जो पुस्तकें लिखी गई हैं, वे ऐसे ही भ्रमपूर्ण नतीजों से भरी हुई हैं। इनसे हिन्दुस्तान में मुसल्मानी शासन के बारे में ग़लतफ़हमियां फैली हैं, फैल रही हैं, और फैले बिना नहीं रह सकतीं। क्या इन ऐतिहासिक पुस्तकों की इन भ्रमपूर्ण बातों में सत्य का ज़रा भी अंश है? क्या ये बातें ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर कही जाती हैं? यह एक झूठ है, दिमाग़ी आविष्कार है और बददिमाग़ी का नतीजा है। अब मैं इस मामले की जांच करके यह साबित करने की कोशिश करूंगा कि ऐसी घृणास्पद बातों में कहां तक ऐतिहासिक सत्य है। संक्षेप में ही मैं यह करूंगा। इसलाम को तलवार के ज़ोर से फैलाने के लिये भारत पर मुसलमानों का हमला हुआ, इसके बारे में मैं यही कहना चाहता हूं कि भारत में इसलाम के प्रचार का मुसलमानों के हमले से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इसलाम की पैदाइश से पहले काबुल और उसके आस-पास के प्रदेश हिन्दुस्तान के हिस्से समझे जाते थे। काबुल के लोगों की संस्कृति भारतीय संस्कृति ही मानी जाती थी। ग़ज़नवी बादशाहों के शासन काल में तो पूरा काबुल मुसलमान नहीं था। राजनैतिक दृष्टि से काबुल के सूबे को लेकर हमेशा लड़ाइयां होती रहती थीं। पञ्जाब के हिन्दू राजाओं की हमेशा यह कोशिश रहती थी कि काबुल को जीतकर अपने राज्य में मिला लें। ग़ज़नवियों के पहले और उनके समय से भी काबुल की लड़ाई राजनैतिक शक्ति की श्रेष्ठता की लड़ाई रही। यही उत्तर पश्चिम से मुसलमानों के सबसे पहले हमले की असली वजह है। ग़ज़नवी लोग हमले के लिये और काबुल को फिर से लेने के लिये भड़काये गये। मैं यहां यह बात भी कह सकता हूं कि महमूद के जो पहले हमले हुए वे यहां के हमलों के जवाब में हुए थे।

इस प्रश्न का राजनैतिक पहलू यही है। इसके साथ दूसरी नीयतें भी शामिल थीं। किन्तु इतिहास में ऐसा एक भी प्रमाण नहीं है, जिससे यह साबित हो सके कि इन हमलों में कोई इसलाम के प्रचार जैसी नीयत भी थी। यदि ग़ज़नवी लोग इसलाम के प्रचार के लिए लड़े होते, तो उनके हमलों के दौरान में लोगों को इसलाम में दीक्षित करने की मिसालें मिलतीं; फिर चाहे वह शांति पूर्वक किया गया होता या ज़बरदस्ती से। किन्तु उस काल की ऐतिहासिक सामग्री में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसलाम के प्रचारक या मिशनरी की हैसियत से, तो महमूद स्वयम् निन्दित खड़ा है। धर्म का प्रचार रक्त बहा कर और शस्त्र से कभी नहीं किया जा सकता। यदि उसे इसलाम प्रचार प्यारा होता, तो

वह पराजित लोगों और उनके मुल्कों की तबाही और उनके नाश करने में न लगा होता। अगर महमूद कट्टर मुसलमान होता, तो उसके लिए हिन्दू जाटों को अपनी सेना में भरती करना भी असम्भव होता। इन लोगों को उसने अक्सर शुद्ध मुसलमानी देश, जैसे तुर्किस्तान आदि को अपने अधीन करने के लिए अपनी सेना में रक्खा। महमूद एक विशेष प्रकार का व्यक्ति था और ऐसे व्यक्ति जिन नियमों से शासित होते हैं, वे नियम भी विशेष तरह के होते हैं। ऐसे प्रमाण हैं जिनसे हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यद्यपि वह मुसलमान था, पर उसने अनेक बार इसलाम के मूल भूत सिद्धान्तों के विरुद्ध काम किया। यदि इसलाम की दृष्टि से निर्णय किया जावे, तो अफ़ग़ानिस्तान के उत्तर के मुसलमानी देशों पर उसने जो हमले किये, वे इसलाम के विरुद्ध थे और शरीयत की नज़रों से ग़ैर इसलामी थे। उसने वहां भी वैसा ही किया, जैसा कि उसने हिन्दुस्तान में किया। जिस तरह हिन्दुस्तान में उसने मन्दिरों को तोड़ा, वैसे ही तुर्किस्तान में भी उसने इसलामी जगहों को विध्वंस किया। इसलामी मुल्क हों या ग़ैर इसलामी, हमेशा मुल्कों से धन इकट्ठा करने की ही उसमें बढ़ती हुई ख़्वाहिश थी। संभव है वह लालची रहा हो; लेकिन उसका ध्येय था ग़ज़नी को धनवान और सुन्दर बनाना। यही उसका आदर्श था और इस आदर्श की प्राप्ति के लिए जो कुछ भी वह मुमकिन तौर पर कर सकता था, उसने किया। साधन कैसे ही बुरे और घृणित हों, किन्तु साध्य की अच्छाई से वे भी न्याय युक्त मान लिये जाते हैं, अतः जो महमूद का साध्य था, उससे उसके काम भी एक तरह से न्याय युक्त हो जाते हैं। ग़ज़नी के लोगों के लिए तो महमूद एक सच्चा और आदर्श वीर था। किन्तु दूसरे मुसलमानों या ग़ैर मुसलमानों के लिए वह केवल एक निरंकुश विजेता था। उसकी दिमाग़ी बनावट ही दूसरे तरह की थी। इसीलिए उसने मानवीय आचार-शास्त्र और इसलामी शरीयत दोनों के ही विरुद्ध बर्ताव किया। सामाजिक शक्ति या मानवता की शक्ति के रूप में इसलाम के विस्तार या प्रचार करने का विचार उसके दिमाग़ में कभी आया ही नहीं, और अगर वह चाहता, तो भी वह इसलाम के राजनैतिक आदर्शों का सदा पालन करने वाला न हो सकता था। वह सामाजिक, नैतिक या धार्मिक, किसी भी बंधन से नहीं बंध सकता था। वह अपने युग का महान पुरुष था और साथ ही उसमें उस युग की सब कमज़ोरियां भी थीं। जिस युग में वह पैदा हुआ था, उस युग में पवित्र स्थानों को नष्ट करना, लोगों का वध करना, आदमियों और उनकी औलादों को उनके अक़ीदे या धार्मिक विश्वासों का ख़याल किये बग़ैर ग़ुलाम बनाकर बेच देना, प्रचलित थे। इन बातों में वह भी अपने युग के अनुकूल ही था। यह उसका दोष न था कि जहां वह जाता था वहां लूट खसोट करता था और तबाही फैलाता था। इसके लिये दोषी वह युग है। जब हम महमूद के व्यक्तित्व पर बहस करें, तो हमें उसके विश्वास के रूप में इसलाम को निशाना न बनाना चाहिये। राजनैतिक मामलों में ऐसे आदमी ख़ुद अपने को ही क़ानून बनाने वाला मानते हैं। हिन्दुस्तान में जो लोग विजेता की भांति आये, उनका भी यही ढंग था। उनका उद्देश्य अपनी राजनैतिक प्रधानता क़ायम करना था, न कि इसलाम का प्रचार करना। ये शासक जब हिन्दुस्तान में अपनी प्रधानता स्थापित कर लेते थे, उसके बाद की लड़ाइयों में हिन्दू राजाओं की सेनाओं से सहायता पाते थे। यह इस देश के इतिहास में आम बात हो गई थी। अगर राजनैतिक साधन का उपयोग करके इसलाम के प्रचार का ज़रा भी विचार रहा होता, तो नतीजे साफ़ दिखाई देते। एक तो मुसलिम शासकों को हिन्दू राजाओं ने जब तब जो मदद दी, उसका देना असम्भव होता, क्योंकि उस दशा में ऐसी सहायता से हिन्दू राजाओं और उनकी रिआया के नैतिक और धार्मिक जीवन का सत्यानाश हो जाता। दूसरे यदि ये लड़ाइयां धार्मिक ढंग की होतीं, तो हिन्दुस्तान की जनता बग़ावत कर बैठती। तब अपने धर्म की रक्षा करने

के लिए बग़ावत करना ही उस युग की मुख्य बात दिखाई देती। लेकिन सब से अधिक संतोष का विषय यह है कि ऐसी बग़ावत के लक्षण यहां भी नहीं दिखाई दिये। मुसलमान कहलाने वाले विदेशियों के विरुद्ध धर्म के नाम पर बग़ावत का झंडा खड़ा करने की वजह यहां के लोगों को नहीं मिली। लड़ाइयां जिन विशेष बातों पर होती थीं, वे राजनैतिक बातें थीं। धर्म ऐसी लड़ाइयों का आधार न हो सकता था। जैसे-जैसे मुसलिम हुकूमत फैलती गई, ऐसी लड़ाई के ढंग का वास्तविक महत्व और साफ़ होता गया। इससे एक बात साफ़ हो जाती है, वह यह कि हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों ने मिल कर मुसलमानों के विरुद्ध लड़ाइयां लड़ीं और इन दोनों ने मिल कर हिन्दुओं के विरुद्ध भी युद्ध किया। मध्यकाल की यह बात यह साफ़ कर देती है कि यह एक शुद्ध राजनैतिक संघर्ष था और मुसलमान राजनैतिक विचारों से ही प्रभावित थे, न कि धार्मिक तास्सुब से।

अब जज़िया लगाने तथा मन्दिरों के तोड़ने से जो बुरे नतीजे निकाले जाते हैं, उन पर मैं कुछ रोशनी डालना चाहता हूं। जज़िया हिन्दू जनता को आर्थिक ग़ुलामी में फंसाने वाला बताया जाता है और मन्दिरों का तोड़ना लोगों के सामाजिक जीवन की धार्मिक जड़ों को खोद डालने वाली शासन-नीति बताई जाती है। इन दोनों बातों के लिये वैज्ञानिक खोज की आवश्यकता है। जब तक हम इसे हल न कर लेंगे, तब तक आधुनिक भारत की हिन्दू-मुसलिम समस्या के मनोवैज्ञानिक पहलू को हम हल न कर सकेंगे। इसलिये इसे तुरन्त हल करना ज़रूरी है। इसके हल होने से केवल ग़लतफ़हमियां ही दूर न होंगी, बल्कि दिलों को ऐसी ताक़त मिलेगी कि वह हमारे ज़ख्मों को भर दे। जब तक दिमाग़ पर इस तरह के दिलों की प्रधानता न होगी, तब तक केवल व्यवस्थापक सभाओं के क़ानूनों से या सभाओं से यह समस्या हल न होगी, क्योंकि इसका संस्कृतियों के समन्वय और सामाजिक सामञ्जस्य उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भाग है। यह एक सचाई है कि प्रेम भावना पैदा करने वाली हृदय की शक्ति ने मध्यकालीन भारत की संस्कृति के निर्माण में बहुत बड़ा हिस्सा लिया।

इन समस्याओं पर अब मैं एक साथ विचार करना चाहता हूं। जज़िया का प्रश्न तो बहुत सीधा-सादा है। इस्लामी क़ानून के अनुसार ग़ैर मुसलमान लोग 'ज़िम्मी' कहलाते हैं। वह एक नाम मात्र की रक़म, जो जज़िया कहलाती है, हुकूमत को देकर इसलामी राज्य के संरक्षण में अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता क़ायम रख सकते हैं। सच तो यह है कि हर मुसलमान को फ़ौजी ख़िदमत के लिये मजबूर होना पड़ता था। पर ग़ैर मुसलमान जज़िया देकर इससे मुक्त हो सकता था।* ज़िम्मियों के अधिकारों की घोषणा से इसलामी राज्य की निरंकुश शक्ति का प्रयोग क़ानूनन सीमित हो जाता है। इस तरह ज़िम्मी लोगों की व्यक्तिगत और सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए और उन्हें उनके पवित्र स्थानों में पूजा की स्वतन्त्रता देने के लिये इसलामी गवर्नमेंट क़ानूनन ज़िम्मेदार हो जाती है। इसलामी गवर्नमेन्ट अपने धार्मिक क़ानून से बंधी रहती है। उसे ज़िम्मी लोगों के धार्मिक जीवन में दख़ल देने तक का क़ानूनी अधिकार नहीं होता, उनके पवित्र स्थानों को तोड़ने की तो बात ही क्या! यह तो हो ही नहीं सकता। जब 'ज़िम्मी' होने की शर्तें पूरी करदी जाती हैं, तब इसलामी हुकूमत पर यह स्वनिर्मित कर्तव्य भार आ जाता है। इसलामी संस्था में जज़िया का सिद्धान्त और व्यवहार इसी प्रकार का है। इसलामी गवर्नमेंट का एक बहुत ही विशेषता पूर्ण पहलू, जिस की ओर आमतौर पर ध्यान नहीं दिया जाता, वह यह है कि क़ानूनन सब ग़ैर मुसलमानों पर आमतौर पर जज़िया नहीं लगाया जा सकता। ग़ैर मुसलमानों में

---

* इतिहास में ऐसी बीसों मिसालें मिलती हैं, जबकि ग़ैर मुसलमानों ने जज़िया देने के बजाय फ़ौजी ख़िदमत करना ही स्वीकार किया।—सम्पादक

से कुछ लोग उससे मुक्त रहते हैं। ज़िम्मी होने पर भी पुजारियों, विद्यार्थियों, बेकारों, असमर्थों, भिक्षुओं, ग़रीबों, स्त्रियों और बच्चों को 'ज़िम्मीपन' की शर्तें पूरी नहीं करनी पड़तीं। इससे यह साफ़ ज़ाहिर है कि अधिकांश जनता इस जज़िया टैक्स से बरी रहती है। अतः हम देख सकते हैं कि इसलामी हुकूमत में, चाहे मुसलिम हों या ग़ैर मुसलिम, लोगों का जीवन असह्य नहीं होता, बल्कि उन्नति के लिये यथेष्ट अवसर रहता है।

अब हम देखें कि मुसलमानी हुकूमत के समय में हिन्दुस्तान में जो जज़िया लगाया गया और जो मन्दिर तोड़े गये, वे इसलाम के अनुसार कहां तक न्याय-युक्त थे ?

हिन्दुस्तान के इतिहास में मुसलमान शासकों द्वारा शरीयत के अनुसार यहां के ग़ैर मुसलमानों के रुतबे का फ़ैसला करने का निश्चित प्रयत्न कभी नहीं किया गया। इस नियम के अपवाद रूप केवल वे अरब वाले थे, जो आठवीं सदी में यहां आये थे। अरब शासन के बारे में विस्तार में मैं नहीं जा सकता। केवल यह ऐतिहासिक तथ्य मुझे बयान कर देना चाहिए कि ग़ैर मुसलमानों के रुतबे का निर्णय करके उन अरबों ने इसलामी क़ानूनों के आधारभूत सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने में आश्चर्यजनक सफलता पाई थी। भारत में अरबों के आधिपत्य के काल के इतिहास में इसका प्रमाण है कि जिन लोगों पर जज़िया लगाया गया, उनकी दशा अधिक अच्छी थी। उस समय धार्मिक सहनशीलता प्रचलित थी। भारतीय जनता ने अरबों की ओर शुभेच्छा प्रकट की, उनकी न्याय प्रियता और उनकी सचाई की तारीफ़ की और उन्हें नैतिक सहायता देकर लोगों ने उनके राज्य की जड़ों को दृढ़ किया। सच्चे इसलाम ने राजनैतिक शक्ति के रूप में हिन्दुस्तान में यही किया।

दूसरे मुसल्मान शासकों की, जो अपना मज़हब इसलाम बताते रहे, पर जिन्होंने ग़ैर मुसल्मानों के रुतबे का फ़ैसला करने की कभी परवाह नहीं की, इसलामी ढंग से जांच नहीं हो सकती। यदि वे इसलामी शासन करना चाहते, तो उस युग में उन्हें इसलामी नियमों से बँधना पड़ता। किन्तु यह ताज्जुब है कि उन्होंने इसलाम को अपने शासन का आधार बनाने का प्रयत्न कभी नहीं किया। हम यह नहीं जानते कि उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया। हम यही जानते हैं कि उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने राजनीति में धर्म का दख़ल बुद्धिमत्ता नहीं समझी, चाहे इसका कारण राजनैतिक विचार रहे हों, या दूरदर्शिता, या अपने में विश्वास की कमी। चाहे जो कारण रहा हो, उन्होंने ग़ैर मुसल्मानों के रुतबे का फ़ैसला करने, उसकी परिभाषा देने या सीमा बाँधने का काम नहीं किया। इसलिए इन मुस्लिम शासकों के नामों की जाँच इसलामी ढङ्ग से नहीं की जा सकती। और भी साफ़ शब्दों में, उनकी जाँच जैसे और इन्सानों की जाती है, उसी तरह होगी। अपने वक़्त की ज़रूरतों का मुक़ाबला करने के लिए हिन्दुस्तान के इन महान् शासकों ने जो क़ानून बनाये, उनसे इसलाम का एक राजनैतिक ताक़त या एक मज़हबी ताक़त की दृष्टि से कोई ताल्लुक़ नहीं। इसका मतलब यह हुआ कि अपनी राजनैतिक शक्ति को दृढ़ रखने के लिए उन्होंने, अपने समय तथा युग के लिए, जो कुछ सब में अच्छा समझा वह किया। उनके वक़्त के इतिहास से मालूम होता है कि जब जज़िया कर लगा हुआ था, तब भी मन्दिर तोड़े गये। एक ओर जज़िया लगाना और दूसरी ओर मन्दिरों को तोड़ना—ये दोनों चीज़ें— इसलामी आदर्श और क़ानून से कोई ताल्लुक़ नहीं रखतीं। जज़िया लगाने से 'ज़िम्मीपन' मान लेना साबित होता है और ऐसी सूरत में ग़ैर मुसलमानों को अपने ढङ्ग से रहने और पूजा करने की आज़ादी होती है। अतः मुसल्मान शासकों के मन की यह दशा यह ज़ाहिर करती है कि वे कभी-कभी उलेमाओं की मनचाही बातों से प्रभावित होते थे और उन्हीं के कहने के अनुसार करते थे। उनके यहाँ उलेमा उन्हें धार्मिक और राजनैतिक मामलों में सलाह देने के लिए हमेशा मौजूद रहते थे। उस युग के वास्त-

विक सन्देश से ये उलेमा बेख़बर थे। और घमण्डी इतने थे कि यदि उनकी व्याख्या के अनुसार इसलामी सिद्धान्तों और राजनीति में कोई विरोध दिखाई देता, तो वे राजनीति के वास्तविक अर्थों को समझने की कोशिश भी न करते थे।

अब मन्दिरों के तोड़ने के बारे में भी थोड़ा सा और कहना है। यह कहा जाता है कि भारतीय इतिहास में पवित्र स्थानों को नष्ट करने का काम मुसल्मानों से ही शुरू हुआ। इस बयान में सचाई नहीं है। इतिहास कुछ और ही बतलाता है। ऐतिहासिक सामग्री से साबित है कि मुसल्मानी हुकूमत क़ायम होने के बहुत पहले कितने ही बौद्ध मठों को तोड़ा फोड़ा गया था। इन्हें तोड़ने की ज़िम्मेदारी किस पर है? मुसल्मानों पर तो हो ही नहीं सकती। स्वयं हिन्दुओं ने यह किया था। कितने दुर्भाग्य की बात है कि इनकी बरबादी के लिए भी मुस्लिम शासकों को ही दोष दिया जाता है। यह एक प्रामाणिक बात है कि मध्यकाल की लड़ाइयों के तरीक़ों में से एक यह भी था कि विरोधी के पवित्र स्थानों के नष्ट कर दिया जावे। यह प्रश्न उठता है कि ख़ास तौर पर मन्दिरों को ही क्यों बरबाद किया गया? इसका उत्तर आसान है और समझ में आने योग्य है। मन्दिर पवित्र समझे जाते हैं और पवित्र समझे जाते थे। लोगों में यह विश्वास था कि मूर्तियों में असाधारण शक्ति होती है और ये मूर्तियां अपने भक्तों की रक्षा करती हैं। दूसरे मन्दिरों में दौलत का ख़ज़ाना रहता था और वे प्रभावशाली केन्द्र होते थे। लड़ाई के समय आक्रमण करने वाली फ़ौज के लिए सबसे पहला और सबसे ज़रूरी विचार विरोधी के केन्द्रों पर ही हमला करने का होता है। वहीं उसे सब से अधिक आघात पहुँचाया जा सकता है। मध्यकाल में मन्दिरों को नष्ट करने से विजय निश्चित हो जाती थी, क्योंकि देवताओं या मूर्तियों का गिर जाना लोगों के पतन का लक्षण समझा जाता था। देवता ही उनकी रीढ़ माने जाते थे और जब रीढ़ ही टूट गई, तो लोगों का नैतिक साहस नैतिक पराजय में परिणत हो जाता था। जो धन मन्दिरों में जमा रहता था, उस पर क़ब्ज़ा कर लेने से फ़ौजें बहुत समय तक तेज़ी और कड़ाई से लड़ सकती थीं। मध्यकाल में लड़ाइयों की ये ही चालें होती थीं। उन का उद्देश्य देश पर विजय पाना होता था और उस विजय प्राप्ति के ये साधन होते थे। इसीलिये लड़ाई के समय पवित्र स्थानों को बरबाद किया जाता था। युद्ध विज्ञान के अपने नियम हैं। धार्मिक और नैतिक विचारों की युद्ध के समय सुनवाई नहीं होती। युद्ध में तो एक ही बात का ध्यान रहता है—विजय या पराजय। अगर मुसलिम शासकों ने लड़ाई के बाद पवित्र स्थानों को नष्ट किया, तो वह इसलामी क़ानून के अनुसार नहीं, बल्कि उस समय के लड़ाई के क़ानूनों के अनुसार, किन्तु इतिहास में इसके भी यथेष्ट प्रमाण हैं कि मुस्लिम शासकों ने मन्दिरों के जागीरें दीं और इसलामी राज्य के ख़ज़ाने से मन्दिर बने। १५ वीं सदी का काश्मीर इसकी जीती जागती मिसाल है।

यहां हिन्दुस्तान में मुसल्मानी शासन की उन बातों में से कुछ पर विचार किया गया है, जिनके बारे में बहुत ग़लत फ़हमी है, जिनका निर्णय ठीक तरह नहीं किया गया और जिनकी याद से ही लोगों के दिलों में मुसल्मानी शासकों के प्रति घृणा और वैर उत्पन्न हो जाता है। मेरा यह विश्वास है कि इस भ्रम को दूर कर देने की बेहद संभावना है। मध्यकाल की बातों को ठीक तरह समझने के लिए मध्यकाल के मापदण्ड से ही उन बातों का निर्णय करना होगा। मध्यकालीन भारत को ठीक तरह समझने से भारतीय राष्ट्रीयता की सब से जटिल समस्या बहुत हद तक हल हो जावेगी। जहाँ तक देश के कल्याण का सम्बन्ध था, मध्यकालीन भारत में धर्म नहीं बल्कि राजनीति का ही बोल बाला था। हम अपने अगले लेख में इस मध्यकालीन राजनीति की विस्तार से चर्चा करेंगे।

चन्द्र-ग्रहण

श्री 'आनन्द'

श्री 'आनन्द' कन्नड़ के प्रसिद्ध कहानी लेखक हैं। आपकी दो कहानियां 'जीवन' और 'मेरी पत्नी' नाम से हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं और बहुत पसन्द की गई हैं। प्रस्तुत कहानी मैसूर के प्रसिद्ध हिन्दी-सेवी भाई हिरण्मय जी ने अनुवाद करके हमारे पास भेजी है। कहानी बहुत बड़ी है और पूर्वार्ध, उत्तरार्ध और उपसंहार में बांटी जा सकती है। इस अङ्क में हम कहानी का पूर्वार्ध दे रहे हैं। इसमें दाम्पत्य जीवन का लेखक ने सुन्दर विवेचन किया है।

खाना खा कर मैं छत पर जा बैठा। क़रीब नौ बजे का समय था। पूर्णमासी थी। रात्रि की शोभा का क्या पूछना! शुभ्र चाँदनी चारों तरफ़ पागल सी फैली थी। आसमान में बादलों की छाया तक नहीं थी। ठण्ढी हवा, मानों प्रेमियों की सेवा में ही बह रही थी। ज़मीन-आसमान चारों ओर छिटकी हुई चन्द्रिका समुद्र सी लहरा रही थी और उस सौरभपूर्ण समुद्र को पवन मथ रहा था। सुषुमा, प्रेमियों के प्रेम की नांई उमड़ रही थी। मेरे सुख का अनुभव उस समय चरम सीमा तक पहुँच गया था। सीमा पार करने के लिये केवल एक ही वस्तु की कमी थी और छत पर सोफ़े में बैठा बैठा मैं उसी की प्रतीक्षा कर रहा था। ह भर पहले ही मैंने अपने मन में, यह चाँदनी रात कैसे विताई जाय, इसकी योजना बनाली थी! अब तो इन्तज़ारी का हरेक पल मुझे पागल सा बना रहा था। मन ही मन मैंने कहा "कितनी देर हो रही है!...

यह प्रत्येक क्षण भी व्यर्थ सा जा रहा है।"

तंग आ कर मैं ज़ोर से बरस पड़ा—"हूं—हुं"

"यह कैसा हुंकार"! चित्रा पीछे से बोल उठी।

"कब आई?" यह कह कर पीछे मुड़ कर देखा।

"कब?—अब पूछ रहे हैं? कितनी देर हो गई! खड़े खड़े मेरे पैर दुखने लगे हैं।"

"वाह! ख़ूब बना रही हो!—इधर आओ चित्रा; कितना झूठ बोलती हो? आई तो चुप क्यों खड़ी रहीं?"

चित्रा मेरे बग़ल में आ कर बैठ गई। उंगलियों में दबाये हुए पान देते हुए—

"क्यों? स्वामी की मर्ज़ी का ख़्याल न करूँ? ठण्ढी हवा, शुभ्र चाँदनी में अपने आप में मस्ती! फिर हमारी क्या ज़रूरत?"

"अरे—सच बोलो; पास आ कर चुप रहने वाली जाति में तुम थोड़े ही हो!"

यह कह कर मैंने उसे अपने पास खींच लिया।

"बापरे! अब जात-पाँत की कैसी बात?"

"ख़ैर, इतनी देर क्यों की?"

"मिनट भर की देर होने से क्या प्राण उड़ जाते हैं?"

"एक मिनट क्यों कहती हो, चौथाई मिनट ही कहो!"

"उफ़! ऐसी दशा है तो दफ़्र में आप कैसे समय बिताते हैं ! कैसे काम करते हैं !"

"चित्रा, मेरा शरीर दफ़्र में रहता है, पर मन..............."

"बस कीजिये ! यही बात होती, तो सरकार का कारबार कैसे चलता !"

"अगर मुझ अकेले से सरकार चलती होती, तो अब तक उसकी............"

"उसकी दुर्दशा हो जाती ! यही न !" यह कह कर चित्रा हँसने लगी।

सुगंधित पान से शरीर की धमनियों का ख़ून नाचने लगा। मन के अंतराल में ये भाव-तरंगें उठने लगीं—"यह समां जैसा का तैसा रहे, यह राका रजनी, यह शीतल पवन, यह सुगन्ध, यह मेरी चित्रा, उसके शरीर का कंपन, यह सब स्थायी रहे।" इतने में कमरे में सोया हुआ बालू सपने में चिल्ला उठा। बालू हमारा लड़का है। उम्र सिर्फ़ चार वर्ष की है।

मैंने कहा "देखो, बच्चा सपना देख रहा है।"

चित्रा उठ कर अन्दर गई और दो-एक मिनट के बाद वापस आई।

"क्या सपना देख रहा है ?"

"और क्या ? अम्मा पोन—अम्मा पोन—यही ! बाप का गुन घोल कर पी लिया है।"

"क्या ? बात क्या है ?"

"क्या कहूँ—जब खाना खाता है, तो कहता है गाओ, सोता है तो कहता है गाओ—हमेशा उसके पास गाए जाओ।"

"जब वह पेट में था तब तुम्हीं तो ग्रामोफ़ोन ला देने के लिये हठ करती थीं। अब कहती हो कि बाप का गुन ले आया है !"

'मैंने ऐसा नहीं कहा"

'और क्या कहा ?"

"संगीत से प्रेम है इसमें शक नहीं। लेकिन मौक़े-बे-मौक़े हठ करना यह तुम्हारा कल्याण-गुण है !" यह कह कर चित्रा ज़रा हट कर बैठ गई।

मैंने कहा "चित्रा, ऐसे समय में कोई दूर बैठता है ?"

"कैसा समय ?"—यह कह कर, भौंहें टेढ़ी करके वह मुस्कुराने लगी।

"पूर्णमासी की यह कितनी मधुर रात्रि है ? कैसी सुन्दर है चित्रा ?"

"आप ही देखिये !"

"मेरे जीवन में भी तुम्हारी ही चांदनी फैली हुई है"—यह कह कर मैंने उसे फिर पास खींच लिया।

'ऊं हूं !"

"हाँ, चित्रा, इस पूर्णिमा की चाँदनी का ही प्रकाश तुम्हारी आँखों में सदा उमड़ा करता है। जब-जब तुम मेरे पास आती हो, तब मुझे ऐसा लगता है मानों धूप के तपे हुए शरीर को शीतल मन्द वायु का झोंका छू गया हो। मादक वायु आसमान में फैल जाती है और तुम्हारी प्रीति से मेरा हृदय भर जाता है।"

"बस बस !, देखती हूं चाँदनी ने आपको पागल बना दिया है।"

"चित्रा, इस चाँदनी में, इस शीतल वायु में—इस सुगन्ध में—इस चित्रा के कूल को छू कर पागलपन सरिता के समान प्रवाहित होता है।"

"वाह...ख़ूब ! क्या दफ़्र में भी यही कैफ़ियत रहती है ?

"वहाँ तो यह मस्ती भाग जाती है। दफ़्र जा कर सन्यास छाने लगता है। यहाँ इस चाँदनी में—ठण्डी हवा में—मनमोहक सुगन्ध-सागर में सन्यासी के दिल में भी एक बार ऐसी इच्छा होगी........"

"कैसी इच्छा होगी ?"

"ऐसी कि चित्रा जैसी......के.........साथ... छोटा सा घोंसला बना कर..................."

"रहने दीजिये आपकी कहानी !" यह कहते हुए उसने मेरे कन्धे पर अपना सिर रख लिया। थोड़ी देर मौन रहने के बाद धीमे-धीमे स्वर में 'शंकराभरण राग' आलापने लगी।

मैंने कहा "चित्रा, एक गीत तो सुनाओ।"

"मेहरबानी करके चुप रहिये। आपका कुंवर कन्हय्या जाग पड़ेगा, तो सुबह तक फिर उसका गाना चलेगा।"

मैं चुप हो गया। उसकी वेणी में गुंथे चमेली के फूल की ख़ुशबू में मेरे प्राण ग़ोता लगा रहे थे। उसे धीरे से सँवारते हुए मैंने पूछा "यह फूल कहाँ से आये?"

"शाम को लीलू आई थी। अपनी लता के फूलों की यह एक माला मुझे दे गई।"

"लीलू कौन है जी?"

"यह क्या बात!—मैं लीलू कहूं तो आप भी उसे लीलू कह कर पुकारें?"

"तो क्या कहूं!"

"लीलावतम्मा कहना चाहिये।"

"अच्छी बात है! लीलावतम्मा कौन है?"

"देखिये वहाँ—उस घर की रानी।"

हमारे घर के बग़ल में एक छोटा सा मैदान है। उस मैदान के सामने एक घर है। चिन्ना ने उसी घर की ओर इशारा किया।

"क्या जो नये महाशय आये हैं उन्हीं की पत्नी?

"जी हां"

"उन्हें उस घर में आये एक हफ़्ता भी नहीं गुज़रा और आप इसी बीच उसे 'लीलू' कह कर पुकारने लग गईं?"

"मैं उसे मुद्दत से जानती हूं, उसके पिताजी हमारे गांव में अमलदार थे। उसका ब्याह भी वहीं से हुआ था।"

"सबेरे उस घर के उद्यान में एक स्त्री फूल चुन रही थी बड़ा सुन्दर रूप, नीली साड़ी और गुलाबी रंग का ब्लाउज़ पहने हुए थी। लम्बे-लम्बे बाल—क्या वही लीलू?"

चिन्ना मेरी बात सुनते ही तन कर बैठ गई। कुछ मोटी आवाज़ से बोली—

"अच्छा! यहां तक! पड़ोस की स्त्री का इतना बयान!"

"देखो! इसी को कहते हैं टेढ़ी बुद्धि!"

"जी हां, मेरी बुद्धि टेढ़ी है; इस रंग की साड़ी पहने थी! ब्लाउज़ ऐसा था—उसके बाल ऐसे थे—नाक ऐसी थी—इस प्रकार दुनिया भर की स्त्रियों का बयान आपकी सीधी बुद्धि के लक्षण हैं। बस कीजिये!" यह कह कर उसने अपना मुंह मोड़ लिया।

"यह भी अजीब रहा! देखने का क्या यह अर्थ हो गया कि उसे जैसे कोई चाहने लगा?"

"ख़ूब! देखा ही नहीं, इतनी सारी बातें याद भी कर ली हैं।"

"जी हां, अगर कोई चीज़ सुन्दर हो, तो वह मन में रह जाती है।"

"ऐसी बात है? तब बताइये कि परसों रात को मैंने कैसी साड़ी पहनी थी? मेरा ब्लाउज़ किस रंग का था? बाल गुंथे हुए थे या नहीं? कहिये तो सही?"

"ज़रा ठहरो: यह परसों की बात है न?" यह कहकर मैं अपनी स्मृति को जगाने लगा।—परसों रात को मैं देर करके घर आया था।—चिन्ना चादर ओढ़े सो रही थी।—मैंने ढोंग समझ कर चादर हटा दी। चिन्ना हलकी गुलाबी रंग की साड़ी पहने हुए थी—साड़ी नई थी और उसी दिन ख़रीदी गई थी। मिरज़ई का रंग उससे मेल नहीं खाता था। ज़री किनारे की काले रंग की रेशम की मिरज़ई पहने थी। मेरे चादर हटाते ही वह उठ बैठी। बाल गुंथे नहीं थे—योंही बांध लिये थे। जब वह उठ बैठी, तो बाल बिखर कर पीठ पर फैल गये थे; मैं मन में ही ये सारी बातें याद कर रहा था। इतने में चिन्ना बोल उठी—

"बेचारे! जाने भी दीजिये!—कितनी देर तक याद कीजियेगा?

मैं बोला "हां ठीक, तुम हलके गुलाबी रंग की नई साड़ी पहने थीं।—कंचुकी काली ज़री किनारे की थी। बाल नहीं गुंथे थे।"

"कुछ भी हो! घर की चीज़ की कौन याद रखे?" कुछ उन्मन हो कर बोला।

इतने में पड़ोस के किसी घर में किसी के गाने की आवाज़ सुनाई दी, इस मुग्ध के समय में, मधुर कंठ की वह सुरीली स्वर-लहरी पूर्ण चन्द्रमा की शोभा को पुट देते हुए लहराने लगी। पूर्णिमा की चन्द्रिका में व्याप्त चित्रा के प्रेम में उद्दीप्त मेरा हृदय-संगीत के मधुर स्वर में उद्वेलित हो कर ताल देने लगा। आप ही आप मेरे मुंह से "अहा! शब्द निकल गया। चित्रा यह सुन कर कहने लगी—

"सबेरे, नीली साड़ी और गुलाबी रंग की मिरज़ई पहन कर फूल चुनती हुई वह लम्बे केशवाली सुन्दरी यह गा रही है! सुनिये—कान लगा कर सुनिये।"—यह कह कर वह मेरी भुजाओं को एक बार नोच कर रह गई।

गीत सुन कर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। "चिर सुख हो सदा यही भगवान" सात-आठ दिन हुए मेरे दोस्त गोपाल ने अपनी यह नई कविता मेरे पास भेजी थी। चित्रा ने उसे सीख लिया था। स्वर ताल में कभी-कभी वह उसे ख़ूब गाती है! उस गीत को सुन कर मैंने पूछा—

"क्यों जी, तुमने इतनी जल्दी यह कविता अपनी सखी को भी सिखा दी?"

"जी हां, वे पति-पत्नी भी बड़े सुखी हैं। जी चाहा कि लीलू भी उसे गा कर अपने स्वामी को सुखी बनावे। फिर गीत तो ऐसी चीज़ नहीं, जो दूसरों को सिखाने से कुछ घट जाय"—यह कह कर वह मुस्कराने लगी।

"मैंने कोई एतराज़ तो किया नहीं!"

"आप एतराज़ करेंगे तो जैसे कोई उसे सुनेगा भी!"

"तुम्हारी सखी तुम से छोटी है या बड़ी?"

"दूसरे घर की स्त्रियों की उम्र, रूप रेखा, नाम-धाम से आपको मतलब?"

"यूंही पूछा कि तुम में बड़ी कौन है?"

"वह मुझ से एक साल छोटी है।"

"तब तो तुमने उसे न जाने क्या-क्या पढ़ा दिया होगा।"

"हां, बहुत कुछ पढ़ा दिया।"

"क्या क्या?"

"वह सब आपको क्यों बताया जाय?"

"बड़ा रहस्य है न? मैं सब जानता हूं।"

"ज़रा सुनूं तो?"

"पति से लड़ना और झूठ-मूठ मान करना।"

"उसके बाद—"

"जेब से पैसा उड़ा लेना"

"कहे चलिये!"

"पति को कर्ज़ा देना—और चौगुना सूद वसूल करना।"

"और कुछ?"

"पति को पागल बनाने का पाठ भी तुमने ख़ूब पढ़ा दिया होगा।"

"मैं कहती हूं कि कितना ही पढ़ाइये, क्या फ़ायदा?"

"क्यों?"

"पतियों को पागल बनाने का हुनर केवल पत्नियां ही जानती होतीं, तो क्या ही अच्छा होता!"

"ऐसा क्यों कहती हो?"

"इसीलिये कहती हूं कि अगर भालू भी रंगीन साड़ी पहन कर नाचने लगे, तो उसे एक टक देखने वाले पति महाशय भी मौजूद हैं!"

"कभी-कभी ऐसा होता है कि जो भेद भालू को मालूम रहता है, उसे पत्नियां भी नहीं जानतीं।"

चित्रा को मेरी बात सुन कर कुछ गुस्सा आया—ज़रा खिसक कर बोली—

"ठीक है, मैं भालू से भी गई गुज़री हूं! पर याद रहे मैंने आपसे शादी नहीं की, आप ही ने मुझसे शादी की है!"

"यह खूब रहा ! तुम तो मालूम होता है गुस्सा हो गई !"

"आप हमेशा इसी तरह हैं ?"

"किस तरह ?"

"शिव पूजा में भालू का ज़िक्र किसने छेड़ा ?"

मुझे हँसी आई—मैं ज़ोर से हँस पड़ा। उसने पूछा "क्यों हँसते हैं ?"

"क्या कहूं कि क्यों ? भालू शब्द पहले किसके मुंह से निकला ?"

"जी हां- जी हां ! मेरा मुंह ख़राब है ! इसी-लिये उसमें भालू, बाघ, सब कुछ निकलता है !"

इस वक्त हमारे कमरे की घड़ी ने बारह बजाये और चिन्ना जँभाई लेने लगी।

सफ़ेदपोशों की अकड़

बातें हो रही थीं। किसी ने कहा, 'अब विनोबाजी किसान-जैसे दीखते हैं', तो दूसरे ने कहा 'लेकिन जब तक उनकी धोती सफ़ेद है, तब तक वे पूरे किसान नहीं हैं।' इस कथन में एक दंश था। खेती और स्वच्छ धोती की अदावत ही है इस मान्यता में दंश है। जो अपने को ऊपर की श्रेणीवाले समझते हैं उनको यह अभिमान होता है कि वे बड़े साफ़ रहते हैं, उनके कपड़े बिलकुल सफ़ेद, बगले के जैसे, होते हैं। लेकिन उनका यह सफ़ाई का अभिमान मिथ्या और कृत्रिम है। उनके शरीर की डाक्टरी जांच—मैं मानसिक जांच की तो बात ही छोड़ देता हूं—की जाय और हमारे परिश्रम करने वाले मजदूरों के शरीर की जांच की जाय और दोनों परीक्षाओं की रिपोर्ट डाक्टर पेश करे और कहदे कि कौन ज़्यादा साफ़ है। हम लोटा भी मलते हैं तो बाहर से। उसमें अपना मुंह देख लीजिये। लेकिन अन्दर से हमें मलने की ज़रूरत ही नहीं जान पड़ती। हमारे लिये अन्दर की क़ीमत ही नहीं होती। हमारी स्वच्छता केवल बाहरी और दिखावटी होती है। खेत की मिट्टी में काम करने वाला किसान भला कैसे स्वच्छ रह सकता है, ऐसी हमें शंका होती है। लेकिन मिट्टी में या खेत में काम करने वाले किसान के कपड़े पर जो मिट्टी का रंग लगता है, वह मैल नहीं है। सफ़ेद शर्ट के बदले किसी ने लाल शर्ट पहन लिया, तो उसे रंगीन कपड़ा समझते हैं। वैसे ही मिट्टी का भी एक प्रकार का रंग होता है। रंग और मैल में काफ़ी फ़र्क़ है। मैल में जंतु होते हैं, पसीना होता है, उसकी बदबू आती है। मिट्टी की तो 'पुण्य गंध' होती है। गीता में लिखा है,"पुण्योगंधः पृथिव्यांच"। मिट्टी का शरीर है, मिट्टी में ही मिलने वाला है, उसी मिट्टी का रंग किसान के कपड़े पर है। तब वह मैला कैसे ? लेकिन हमको तो बिलकुल सफ़ेद, कपास जितना सफ़ेद होता है, उससे भी बढ़कर सफ़ेद कपड़े पहनने की आदत पड़ गई है। मानों 'ह्वाइट वाश' ही किया है। उसे हम साफ़ कहते हैं। हमारी भाषा ही विकृत हो गई है।

अपनी उच्चारण-पद्धति पर भी हमें ऐसा ही मिथ्या अभिमान है। देहाती लोग जो उच्चारण करते हैं, उसे हम अशुद्ध कहते हैं। लेकिन पाणिनी तो कहता है कि आम जनता जो बोली बोलती है, वही व्याकरण है। तुलसीदासजी ने रामायण आम लोगों के लिये लिखी। वे जानते थे कि देहाती लोग 'ष' 'श' और 'स' के उच्चारण में फ़र्क़ नहीं करते। लोगों की ज़बान में लिखने के लिए उन्होंने रामायण में सब जगह 'स' ही लिखा। वे नम्र हो गये। उनको तो लोगों को रामायण सिखानी थी, तो फिर उच्चारण भी लोगों का ही सही। लेकिन आज के पढ़े-लिखे लोगों ने तो मजदूरों को बदनाम ही करने का निश्चय किया है।—विनोबा

नाग

हज़रत 'साग़र' निज़ामी साहब

हज़रत साग़र निज़ामी उर्दू के मशहूर और लोक प्रिय राष्ट्रीय कवि हैं। आपकी शैली ओजपूर्ण, भाषा सरल और विचार बहुत उदार हैं। आपकी कविताओं का हिन्दी संग्रह 'रस-सागर' नाम से अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत कविता आपकी अप्रकाशित कविता है।

आओ मैं सीने से लगा लूं ऐ बामी के बासी;
तन है ख़ाली, मन है सूना, रूह सुकूं१ की प्यासी;
आओ मैं तन-मन में बसा लूं ऐ बामी के बासी।

नाज़ुक-नाज़ुक से ये पौधे, हरी-हरी ये घास;
नन्हें-नन्हें ये गुल बूटे, भीनी-भीनी बास;
सुबह की गोदी में जागे हो, ऐ नींदों के मारे;
सीना ताने, फन फैलाये, कुछ-कुछ कुण्डली मारे।
औ जो युहीं हाथों में उठालूं
ऐ बामी के बासी?
आओ मैं तन-मन में बसालूं ऐ बामी के बासी!

सब्ज़े के दामन में हो यूं, कुण्डली मारे बैठे;
जैसे काजल आंख से बहकर रुख़सारों२ को घेरे,
सूरज की किरनों में ऐसे चमक रहा है मुखड़ा;
झिलमिल झिलमिल जैसे झूमर करे किसी दुलहन का।
इस झूमर को क्यों न चुरालूं
ऐ बामी के बासी?
आओ मैं तन-मन में बसालूं ऐ बामी के बासी।

मेरी आंखें एक अबदियत३ देख रही हैं तुम में;
ज़हरे ग़म तिरियाके मुहब्बत४ देख रही हैं तुम में;
हुस्न की लामहदूद५ जलालत६ देख रही हैं तुम में;
औ अपने मखसूद७ की सूरत देख रही हैं तुम में।
ठहरो इक तसवीर बनालूं
ऐ बामी के बासी।
आओ मैं तन-मन में बसालूं ऐ बामी के बासी।

---

१ शान्ति, २ गाल, ३ एक ईश्वर का सेवक होना, ४ प्रेमामृत, ५ अपरिमित, ६ श्रेष्ठता, ७ लक्ष्य।

मस्ती का लहराता पैकर८ सिर से पा तक काले;
मौत की वादी९ के रखवाले ऐ क़हरों१० के पाले;
अब्रे११ सियाह१२ उतरा है ज़मीं पर काला शबनम१३ पीने;
हब्शी कोई लूट रहा है या मीने के ख़ज़ीने१४।
मैं भी इक मोती को उठालूं
ऐ बामी के बासी?
आओ मैं तन-मन में बसालूं ऐ बामी के बासी।

अपनी ही मस्ती की धुन में झूम रहे हो ऐसे;
जैसे कोई दखिनी क्वांरी मदिरा पीकर झूमे;
अंधियारी दर्पन है तुम्हारा नूर तुम्हारा हाला;
रात की देवी क्या जङ्गल में भूल गई है माला?
अपने गले में तुझको डालूं
ऐ बामी के बासी?
आओ मैं तन-मन में बसालूं ऐ बामी के बासी।

कुसुम की टहनी पर भौंरों ने या डाला है डेरा;
बिन पत्तों की शाख़ पे है या कोयल रैन बसेरा;
बिजली से मामूर१५ घटाएं उमड़ रही हों जैसे;
या सावन की काली रातें सिमट गई हों जैसे।
आओ तुमको बीन बनालूं
ऐ बामी के बासी?
आओ मैं तन-मन में बसालूं ऐ बामी के बासी?

या कोई मग़रूर१६ जवानी झूम रही हो पीकर;
या तूफ़ानों में लहराए जैसे काला सागर;
पाप की मीठी अंधियारी हो या इसियां१७ का सवेरा;
मौत की रौशन१८ तारीकी हो या जीवन का अंधेरा।
उम्मीदों का दीप जलालूं
ऐ बामी के बासी।
आओ मैं तन-मन में बसालूं ऐ बामी के बासी।

८ चित्र, ९ घाटी, १० बलाओं, ११ बादल, १२ काला, १३ ओस, १४ ख़ज़ाना, १५ भरी हुई, १६ अभिमानी, १७ पाप, १८ उज्वल-अन्धकार।

झूठ बोलने की प्रवृत्ति

प्रोफ़ैसर राजाराम शास्त्री

झूठ बोलना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इच्छा का प्रकाश करना ही है। मूलतः झूठ बोलना मनुष्य को कठिनाइयों से बचाने का एक साधन है। यह दो प्रकार का होता है। जो झूठ केवल रक्षा के निमित्त बोला जाता है, उसे अपेक्षाकृत क्षम्य समझा जाता है। दूसरा वह होता है, जो द्वेषपूर्ण होता है, या अभ्यास वश सिर्फ़ झूठ बोलने के लिए ही बोला जाता है। पहले प्रकार का झूठ आत्मरक्षा का साधन मात्र है और वैसा ही उपयोगी है, जैसा जानवरों के लिए दाँत और पञ्जे। इस बात का यह प्रमाण है कि प्रारम्भिक अवस्था के मनुष्य, जिनका विकास नहीं हुआ है—जैसे हबशी इत्यादि, जब कभी किसी कठिनाई से निकलना चाहते हैं, तो बराबर झूठ का प्रयोग करते हैं। यही बात बच्चों में भी देखी जाती है। वे निरन्तर बातें बनाया करते हैं। बच्चों की यह प्रवृत्ति दुष्ट प्रवृत्ति नहीं कही जा सकती; क्योंकि इसका अर्थ केवल अपरिपक्व बुद्धि है। हम जानते ही हैं कि बचपन में कर्तव्याकर्तव्य का विवेक उत्पन्न नहीं हुआ होता। बच्चे अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर ही चलते हैं। जब कभी वे अपने को किसी कठिनाई में देखते हैं, तो झूठ बोल कर उससे निकल जाने में उन्हें कोई हिचक नहीं होती। एक चार वर्ष का लड़का, जिसने एक थाली तोड़ दी थी, यह आग्रह करने लगा कि नौकर ने थाली तोड़ी है। एक उससे बड़े लड़के ने स्कूल से भागने का दृढ़ता पूर्वक यह कारण बतलाया कि अध्यापक बीमार थे।

लड़कों के झूठ के बारे में हमारे विचार उदार होने चाहिएं। उनको ऐसा करने से मना तो करना ही चाहिए; लेकिन उसे कोई अस्वाभाविक या अनहोनी बात न समझना चाहिए। इस विषय पर बहुत भावुकता दिखाये बिना ही उन्हें शिक्षित करना चाहिए। सहानुभूति द्वारा बच्चे का विश्वास और प्रेम जीत कर इस सम्बन्ध में अधिक सफलता प्राप्त की जा सकती है। बहुत भावमय उद्गारों के द्वारा कितनी हानि पहुँचा दी जा सकती है, यह निम्न लिखित उदाहरण से जान पड़ेगा।

एक पचीस वर्ष की विवाहिता स्त्री की यह शिकायत थी कि उसे झूठ बोलने की बड़ी प्रबल प्रवृत्ति थी। किन्तु उसकी मानसिक अवस्था हर प्रकार से ठीक थी। इसलिए इसे एक ख़राब आदत के सिवाय कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु ख़राब आदतों के पोषण के लिए भी व्यक्ति के मानसिक जीवन में कोई न कोई कारण होना चाहिए। आठ वर्ष की उम्र में वह एक ऐसे स्थान में रहा करती थी, जहां उसके थोड़े से साथियों में एक ग्यारह वर्ष का लड़का था; जिससे उसका बड़ा साथ रहता था। एक दिन उन दोनों में कुछ ऐसी काम-क्रीड़ाएं हुई, जो बच्चों में कोई असाधारण बात नहीं है, और जिनका उस अवस्था में कोई विशेष महत्व नहीं है। एक प्रकार से इन्हें एक नक़ल कहा जा सकता है। यह बात उनमें महीनों तक जारी रही। एक दिन उसकी दादी ने इसे देख लिया। लड़के को खूब पीटा गया और लड़की को

ख़ूब डांट फटकार कर ही छोड़ दिया गया। क्योंकि वह अभी एक छोटी बच्ची ही थी। किन्तु उसका अपने साथी से मिलना-जुलना बन्द कर दिया गया। लड़की की माँ उस समय कहीं गई हुई थी। उसके आने पर लड़की ने स्नेहमय विश्वास के आवेश में उससे सब कुछ कह डाला। उसके इच्छा पूर्वक और स्पष्ट रूप से सब कुछ कह देने पर प्रसन्न होने के बजाय, उसकी मां क्रोध में आपे से बाहर हो गई, और उस छोटी लड़की को ख़ूब पीटा, हालांकि उसे इसके पहिले उसने कभी कोई शारीरिक दण्ड नहीं दिया था। इसके बाद उसने उसे एक कमरे में बन्द कर दिया और कई दिनों तक केवल रोटी और पानी पर रखा। इसके पश्चात् वह बराबर उसे उसके भयानक अतिक्रमण का स्मरण दिलाती रहती थी। लड़की के बारह वर्ष की होने पर जब कि एक रोज़ वह अपनी माता के साथ एक चौदह वर्ष के लड़के की मृतक क्रिया में जा रही थी, रास्ते में उसकी मां ने उससे कहा—"वहां पहुंचने पर तुम इस लड़के के माता-पिता को भयानक वेदना की दशा में देखोगी। उनका हृदय अपने अल्प वयस्क बालक की मृत्यु पर विदीर्ण हो रहा होगा, जो उनसे इतनी छोटी उम्र में छीन लिया गया। किन्तु क्या तुम जानती हो कि तुमने जो कुछ किया, उसको देखने की अपेक्षा मैं तुम्हारा मर जाना अधिक पसन्द करती हूं।" इस प्रकार मूर्खता और भावुकता के साथ उसकी माता ने उस स्थिति को देखा। लड़की की दादी अक्सर लड़की को याद दिलाया करती थी—'अब तुमने देखा। अगर तुम सिर्फ़ अपनी जिह्वा को लगाम दिए रहतीं, जैसा कि मैंने तुमसे कहा था, तो यह सब तुम्हें क्यों भोगना पड़ता।' बस इसी बात से लड़की के जीवन की दिशा ही बदल गई। स्पष्ट रूप से अपनी मां और तमाम संसार के साथ उसके सम्बन्ध में परिवर्तन हो गया। अब वह बहुधा अपनी माता से झूठ बोला करती थी। अपनी दादी के बिज्ञ-उपदेश के अनुसार उसने वस्तुतः अपनी 'जिह्वा' पर लगाम लगा दी। और जिस प्रकार वह अपनी माता के साथ व्यवहार करती थी, उसी प्रकार धीरे-धीरे समस्त संसार से करने लगी। बात यह थी कि उस अभागे अवसर की तरह सच्ची बात प्रगट न कर के वह अबोध पूर्वक निरन्तर अपनी माता से विरोध करने का प्रयत्न किया करती थी। अपनी इस आदत से उसको बड़ी व्यग्रता और दुःख होता था। कभी-कभी वह बाहर समाज में जाकर किसी किताब या नाटक के सम्बन्ध में बातें करते हुए जान बूझ कर सच्ची बात को विकृत कर देती थी। वह इस बात से ख़ूब परिचित थी। किन्तु इस दशा को सुधारने के लिए कुछ कर न सकती थी। यह उसके लिए एक विवशता हो गई थी।

ऐसी बातें असाधारण नहीं हैं, ये ऐसे लोगों में पाई जाती हैं, जिनकी बुद्धि बिलकुल स्वस्थ है और जिन्हें किसी प्रकार विक्षिप्त नहीं कहा जा सकता; उनके दोषों का मूल कारण प्रायः इसी तरह की घटनाओं में पाया जाता है, जिन्हें अत्यन्त भावमय महत्व दे दिया गया है।

उम्र बढ़ने के साथ हम से सच बोलने की आशा की जाती है। और कुछ हद तक साधारण स्वस्थ आदमी ऐसा कर भी लेते हैं। इस अवस्था में झूठ एक विशेष उद्देश्य का साधन हो जाता है। आमतौर से यह झूठ सुव्यवस्थित होता है और कभी-कभी बहुत ही जटिल और चतुराई से भरा होता है। यही बात अस्वस्थावस्था पर भी लागू होती है। झूठ बोलने वाला जितना ही बुद्धिमान होगा, झूठ को पकड़ना उतना ही कठिन होगा। प्रखर-बुद्धि, किन्तु चरित्रहीन अथवा विक्षिप्त मनुष्य अक्सर ऐसा अच्छा प्रभाव डालता है कि बहुत दिनों तक पकड़ा नहीं जाता। परन्तु बच्चों और अधिकांश बुद्धिहीन विक्षिप्तों के झूठ का पता लग जाना बहुत ही आसान बात है। और जो निम्नतम श्रेणी के मूर्ख होते हैं, आमतौर से झूठ बोलने की शक्ति ही नहीं रखते। उनकी मूर्खता उन्हें अपनी सीधी-सादी इच्छाओं पर बिना रोक-टोक चलने देती है। उनको इतना दिमाग़ ही नहीं होता कि वह झूठ बना सकें। ऐसे आदमी सत्य की मूर्ति

होते हैं। किन्तु औसत दर्जे के मनुष्यों में नितान्त सच्चा होना प्रायः असम्भव समझा जाता है। वस्तुतः प्रत्येक साधारण आदमी कुछ मौक़ों पर झूठ बोलता है। और यदि वह पकड़ा जाता है, तो कुछ हालतों में यह बात उसके ख़िलाफ़ भी नहीं गिनी जाती।

साधारणतः उसी आदमी को झूठा गिनते हैं, जिसमें बातें बनाने की प्रवृत्ति प्रायः दिखाई दे, और वह इस कार्य की पूर्ति में एक प्रकार की मन्द बुद्धि का भी परिचय देता हो। उदाहरण के लिए, "एक उच्च कुल की स्त्री, जो कि ऊपर से काफ़ी बुद्धिमती मालूम देती थी, झूठ बोलने के लिए प्रसिद्ध थी। जब वह मुझसे पिछली बार मिली, तो एक प्रसिद्ध डाक्टर के बारे में बात चीत करने का मौक़ा आया, उसने कहा — 'वह तो मुझसे बहुत प्रेम करते हैं।' मुझे इस पर बड़ा आश्चार्य हुआ, क्योंकि मैं उस डाक्टर के चरित्र को जानता था, और उसके लिए यह बात बड़ी विचित्र थी। मेरे आश्चर्य को देख कर उस स्त्री ने कहा—'मैं उनके लिए उनकी लड़की के समान ही हूं।' किन्तु मैं यह ख़ूब जानता था कि इस प्रकार का व्यवहार डाक्टर के स्वभाव के सर्वथा विपरीत था। इस स्त्री का झूठ बोलना रुग्णावस्था को प्राप्त हो गया था।

"इसी स्वभाव के एक डाक्टर ने मुझे बतलाया कि वह यूरोप के एक ऐसे दवाख़ाने में रहा था, जिससे मैं भली भांति परिचित था। वहां के मुख्याध्यापक की बात चलने पर उसने कहा—'वे तो मेरा इतना सम्मान करते हैं कि अपनी हाल की लिखी हुई एक किताब का प्रूफ़ मेरे पास सुधार और सलाह के लिए भेजा था।" हर एक झूठ का कोई न कोई आधार होना चाहिये। इस डाक्टर के झूठ का आधार यह था कि अध्यापक इस किताब का नया संस्करण निकालने वाले थे। मैंने पूछा—'क्या आपका मतलब इस किताब के तीसरे संस्करण से है?' उसने प्रतिकार के भाव से बड़े आवेश में कहा—'लेकिन किताब तो अभी भी मेरे पास मौजूद है। यह अभी तो मेरे पास आई है।' इस प्रकार उसने यह प्रकट किया कि जैसा मैं कह रहा था वैसा नहीं हो सकता। यह कह कर वह नाराज़ होकर चला गया। यह डाक्टर भी उपर्युक्त स्त्री की तरह झूठा मशहूर था। इस प्रकृति के लोग झूठ द्वारा निरन्तर अपनी न्यूनताओं की पूर्ति चाहते रहते हैं।

"मेरा एक मरीज़ था, जो देर करके आने पर क्षमा याचना के भाव से इस प्रकार की बातें कहा करता था—'डाक्टर साहब मुझे बड़ा खेद है कि मुझे देर हो गई। क्या करूं? मुझे अभी अमुक रानी के यहां न्योता करना पड़ा है।' और बड़े विस्तार से उस रानी के, उसकी दादी के और उससे सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी अन्तरङ्ग बातों के बारे में बतलाया करता था। दूसरी बार वह बतलाता कि उसे किसी राजा के यहां भोजन करना पड़ा। पहिले मैं कुछ समझ न सकता था। और वह एक हफ़्ते तक ऐसा ही करता गया। आख़िरकार मुझे पता चल गया कि उसके कथन में रत्ती भर भी सत्य का अंश न था। वह महत्ता की कल्पनाओं के द्वारा अपनी विकृत इच्छाओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करता था। उसका विश्वास था कि वह उच्च कुल की अवैध सन्तान है। उसने रईसों के विषय में अध्ययन किया था और इस कारण अपना पार्ट अच्छी तरह निभा लेता था। निस्सन्देह धीरे-धीरे वह स्वयं इस प्रवञ्चना में विश्वास करने लगा था।

"यह जानी हुई बात है कि साधारण झूठे अन्त में अपने झूठों पर स्वयं विश्वास करने लगते हैं और इस प्रकार अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं। कुछ वर्ष पहले मैं अक्सर अपने एक परिचित व्यक्ति से एक सैनिक शिक्षालय के निजी अनुभवों की बातें सुना करता था, जहां उसने अपने कथनानुसार कुछ वर्ष बिताए थे। वर्षों बाद जब मुझे उसकी चिकित्सा करने का अवसर मिला, तो मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसने इस शिक्षालय को कभी देखा तक नहीं था। उसने मुझे बतलाया कि दस वर्ष की उम्र में वह एक लड़के से, जो कि एक सैनिक विद्यार्थी था, आकर्षित होकर सैनिक शिक्षालय में

प्रवेश करने की बड़ी प्रबल इच्छा रखता था। वह सैनिक जीवन में बड़ा रस लेता था और उसने इस शिक्षालय के बारे में बहुत कुछ पढ़ा। लेकिन आर्थिक कठिनाइयों के कारण उसकी इच्छा कभी पूरी न हो सकी। इसके बाद जब उसने नौकरी के लिए पहिली बार प्रार्थनापत्र दिया, तो उसमें उसने साहस पूर्वक यह कह डाला कि वह उस स्कूल में पढ़ चुका है। और चूंकि वह झूठ छिपा ही रह गया, इसलिये वह वर्षों तक उससे चिमटा रहा और अन्त में स्वयं उसमें विश्वास करने लगा।" (ब्रिल)

इस सम्बन्ध में यह भी एक ध्यान देने की बात है कि बातें बनाने की प्रकृति बाहरी कारणों से भी उत्पन्न हो सकती है। यह दशा शराबियों में पाई जाती है। विष के प्रभाव से जन्म भर के सारे निरोध नष्ट हो जाते हैं और अपनी महत्ता की बड़ी से बड़ी काल्पनिक और लच्छेदार गाथाएं रचना सरल हो जाता है। ऐसे लोग पकड़े जाने पर भी बिलकुल नहीं घबराते। क्योंकि उनकी मानसिक शक्तियां जड़वत् हो जाती हैं। ऐसे मरीज़ से चाहे वह उस समय बिस्तर पर ही पड़ गया हो, यदि आप पूछें कि उसने सबेरे क्या किया था, तो वह बड़ी प्रसन्नता से इस प्रकार के उत्तर देता है—"मैं बाहर निकला, अमुक स्थान तक टहलने गया, और अमुक दूकान में अमुक व्यक्ति से मिला इत्यादि।" और वह बराबर चारपाई पर ही पड़ा हुआ था। किन्तु वह कहानी ऐसी सच्ची बनाता है कि जो उसे नहीं जानता उसके लिए उसमें अविश्वास करना कठिन है। उसे ज़रा सा इशारा देने की देर है और वह एक लम्बी कहानी प्रस्तुत कर देगा। उससे रुपया मांगिए—वह अपनी जेबों में खोजने लगेगा चाहे उसके पास नाम को एक फूटी कौड़ी भी न हो। उसे कोई दिक्क़त नहीं होती, सब बातें आसानी से फ़िसलती चली जाती हैं। बात यह है कि मानसिक दौर्बल्य चाहे किसी भी कारण से हो इच्छाओं का बाँध तोड़ देता है। और चूंकि वह इन इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकता, इस लिए वह यह प्रकट करता है कि उसने अपने सब महान कार्य सम्पन्न कर लिए हैं। इस विषय में यह व्यक्ति ऐसे स्वप्न देखने वाले से समानता रखता है, जिसको बहुत सी इच्छाएं पूरी करनी हैं, किन्तु वह इन इच्छाओं को धर्म-भावना के नियमों के निरोध के कारण निद्रावस्था में ही पूरी कर सकता है। और विकार ग्रस्त मिथ्यावादी, जिसमें मानसिक निरोध का पूर्ण विकास ही नहीं हुआ है, जाग्रत-काल में ही अपनी इच्छाओं को परिचालित कर देता है।

कुछ झूठ बड़े विचित्र प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिये, एक रोगिणी युवती की मूत्रोत्सर्ग क्रिया एकाएक बन्द हो गई। और जिस चिकित्सालय में उसकी चिकित्सा हो रही थी, उसके तमाम चिकित्सक उस से इस कार्य का सम्पादन कराने में विफल-प्रयत्न हुये। कभी वह कहती थी कि वह इस क्रिया में असमर्थ है, और कभी यह कि उसे उसकी आवश्यकता ही नहीं मालूम देती। बड़ी विचित्र बात यह है कि इधर तो डाक्टर लोग उसकी बीमारी में व्यस्त थे और उधर वह चोरी से तौलिए लेकर उनमें मूत्र विसर्जन करके खिड़की से फेंक दिया करती थी। यहां पर झूठ का कारण शैशव-कामेषणा की ओर चित्त-विपर्यय था, जो इस कामना में अभिव्यक्त हो रहा था, कि डाक्टर का ध्यान जननेन्द्रियों की ओर आकृष्ट किया जाय। इससे मिलता हुआ प्रो॰ वर्चाऊ का दिया हुआ लुई लेटो का उदाहरण है—जिसने खाना खाने से इन्कार कर दिया था, क्योंकि उसका कथन था कि वह एक सन्त है और उसे भोजन की आवश्यकता नहीं। वर्चाऊ ने मालूम किया कि उसकी शौच-क्रिया नियमित रूप से होती है। और यह निर्णय निकाला कि वह गुप्त रूप से भोजन करती है। क्योंकि उसका तर्क यह था और वह निश्चय ही ठीक था कि यद्यपि ईश्वर ने शून्य से ही संसार का निर्माण किया, किन्तु किसी मर्त्य प्राणी की यह शक्ति नहीं है कि वह शून्य से कोई वस्तु उत्पन्न करे। जो लोग इस प्रकार के मामलों में दिलचस्पी रखते हैं, उनको पुलीस के कागज़ात में बहुत सा मनोरञ्जक मसाला मिलेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय ठगों, छलियों और बहाने बाज़ों की जातियों का निर्माण ऐसे ही लोगों से होता है।

झूठे और पैदाइशी दुराचारी व्यक्ति में केवल मात्रा का भेद होता है। दुराचारी का मन निम्नतर श्रेणी का होने के कारण, उसे झूठ भी नहीं बोलना पड़ता। किसी चीज़ को देखकर उसे उसकी इच्छा होती है। और वह सीधे उसकी प्राप्ति के निमित्त अग्रसर होता है। यही कारण है कि साधारण, प्रकृत मनुष्यों की अपेक्षा दुराचारी मनुष्य बहुत कम स्वप्न देखता है; क्योंकि वह उनकी अपेक्षा बहुत अधिक इच्छाओं की पूर्ति कर लेता है।

झूठे मनुष्य की कवियों से भी समानता होती है, जिन्हें कृत्रिम स्वप्नद्रष्टा या लोक स्वीकृत मिथ्यावादी कह सकते हैं। प्रो० प्रेस्काट ने अपनी 'कविता और स्वप्न' विषयक मनोरंजक और अध्ययन पूर्ण ग्रन्थ में कविता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा है कि "यह हमारी अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति का दिग्दर्शन है।" यही बात अभ्यस्त झूठों में और कुछ कम मात्रा में साधारण व्यक्तियों में पाई जाती है। फिर इनमें भेद क्या है? साधारण असन्तुष्ट व्यक्ति कल्पनाओं का निर्माण करके ही सन्तुष्ट हो जाता है। और इन कल्पनाओं को वह बड़ी सतर्कता से अपने ही तक रखता है। वह अपनी गुह्य इच्छाओं को प्रकाशित नहीं करना चाहता। क्योंकि उसे ऐसा करने में लज्जा होती है। और इससे बड़ा कारण यह है कि वह जानता है कि उन कल्पनाओं में अन्य लोगों को कोई रुचि न होगी। झूठा आदमी अपनी शैशवावस्था से आगे बढ़ा ही नहीं। इसलिये उसकी कल्पनाएं और उसकी इच्छाएं बच्चों की सी होती हैं। वह अपने को वस्तुस्थिति के अनुकूल नहीं बना सकता, इसलिये वह अपने संसार का निर्माण शैशव के आधार पर ही करता है। इसीलिये उसकी कल्पनाएं आदि से अन्त तक उग्र अहंता से रंजित होती हैं। वह परमावश्यक, प्रायः अपने को ही हर पुरुषार्थ का नायक और हर स्थिति का परमावश्यक अंग देखता है, यही कारण है कि हम उससे घृणा करने लगते हैं। क्योंकि हम किसी दूसरे व्यक्ति को इस प्रकार सर्वेसर्वा रूप से व्यवहार करते देखना पसन्द नहीं करते। कवि या लेखक अपनी कल्पनाओं की अहंता संयत करके इन कठिनाइयों को जीत लेता है। वह उन्हें नायक के चरित्र में छिपा देता है। यही कारण है कि उसकी रचनाएं हमें शुद्ध सौन्दर्य्य का आनन्द देतीं हैं, हम उस स्थिति पर इसलिए मुग्ध हो जाते हैं कि वह हमें अपने को नायक के स्थान में रखने का अवसर देती है। इस प्रकार हमारा आनन्द गहरे मानसिक कारणों से उत्पन्न होता है। दूसरे शब्दों में कवि हमारे लिये एक ऐसा आकर्षक साधन उपस्थित कर देता है कि जिसके द्वारा हम अपनी ही मानसिक व्यग्रता को अंशतः शान्त कर लेते हैं। किन्तु झूठा मनुष्य बच्चे के समान सब कुछ प्राप्त करना चाहता है, और दूसरों के सम्मुख अपने अहंकार युक्त पुरुषार्थों के वर्णन में ही आनन्द पाता है।

साम्प्रदायिक एकता

डाक्टर मेहदी हुसेन, एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट०

सन् १९२० से यानी मायटेगू-चेम्सफ़ोर्ड सुधारों के बाद से, सारे देश में साम्प्रदायिक कटुता बेहद बढ़ गई है। कुछ लोग इसकी वजह जनतन्त्र को बताते हैं और कहते हैं कि हिन्दुस्तान पच्छिमी देशों की शासन प्रणाली के क़ाबिल नहीं है। कुछ लोग इसकी वजह मज़हब को बताते हैं और उनका ख़्याल है कि हिन्दू धर्म और इसलाम मौलिक रूप से एक दूसरे के विरोधी हैं। मगर इसकी असली वजह हमें कहीं और ढूंढ़नी पड़ेगी। उर्दू के मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने बहुत पहले मौजूदा तालीम के तरीक़े को ही इस निफ़ाक़ की जड़ बताया था। उनके नीचे लिखे शेर से मालूम होता है कि वे मर्ज़ की तह तक पहुंच गये थे। वे लिखते हैं—

इल्म पर भी इश्क़ की तासीर आख़िर पड़ गई,
तख़लिये की बात पबलिक के दिलों में गड़ गई;
वस्ल की शब मैने उस बुत से मिलाई थी ज़बान,
यह असर इसका हुआ—उर्दू से हिन्दी लड़ गई;

"साम्प्रदायिकता ने आख़िर शिक्षा के क्षेत्र पर भी हमला कर दिया और गुज़श्ता कई सदियों में हिन्दू धर्म और हिन्दुओं की भावनाओं का ख़याल रख कर विश्वास के साथ जो एक क़ौमी ज़बान और क़ौमी संस्कृति बनाने की कोशिश की गई थी, उसके मुताबिक़ एक ज़बरदस्त ग़लतफ़हमी पैदा हो गई; नतीजा यह हुआ कि हिन्दी और उर्दू एक दूसरे से टकरा गईं।"

सन् १८५७ की क्रान्ति के बाद हिन्दुस्तानी शिक्षा पद्धति बिलकुल उलट-पलट दी गई। उसे आधुनिक सांचों में ढाला गया। मगर इस आधुनिकता में ही उसका बहुत कुछ सौन्दर्य नष्ट हो गया। इस समय तक शिक्षा क्रम में न कोई साम्प्रदायिकता थी और न कोई विभिन्नता थी। किन्तु वर्तमान् शिक्षा पद्धति विभिन्नता की भावना को प्रोत्साहन देती है।

शिक्षा पद्धति को धर्मों, जातियों और सम्प्रदायों के साथ जोड़ देने से एक व्यावहारिक कठिनाई जो पैदा हुई, वह यह कि शिक्षा की समस्याओं और ख़ासकर भारतीय इतिहास की समस्याओं पर साम्प्रदायिक नुक़्ते नज़र से बहस होने लगी। चीज़ों को एक ख़ास दृष्टिकोण से देखा जाने लगा और घटनाओं का निष्पक्ष अध्ययन और गुणों और अच्छाइयों की बिना पर या उसकी वजह से किसी को तारीफ़ करना नामुमकिन हो गया। इसीलिये आज हम विश्व-विद्यालयों, कालेजों और स्कूलों में प्रचलित इतिहास की पुस्तकों में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण पाते हैं।

लीग आफ़ नेशन्स (राष्ट्र संघ) की एजूकेशन एक्सपर्ट्स की सब से पहली सलाह यह थी कि स्कूलों और कालेजों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की टेक्स्ट की कितावें इस तरह से दोहरा कर लिखी जायं कि उनसे क़ौमी ज़हर बिलकुल निकाल दिया जाय। यहां हिन्दुस्तान में इतिहास का जितना भी साहित्य पाया जाता है, वह साम्प्रदायिक कटुता को जगाता

और उभारता है। कई बरस हुए यू० पी० लेजेस्लेटिव कौन्सिल में इस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया गया था और यह तय पाया गया था कि इतिहास की पुस्तकों को दोहराया जाय। किन्तु इस सम्बन्ध में आज तक कोई अमली कार्रवाई नहीं की गई। *

यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि ज्ञान और विद्या के कोई साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय बन्धन नहीं हैं। इतिहास को, जो नागरिकता की सबसे अच्छी और सबसे ज़रूरी तालीम दे सकता है, साम्प्रदायिकता से ऊंचा उठाना चाहिये।

यह दुःख की बात है कि हिन्दुस्तान के इतिहास की प्रचलित किताबें ज़रूरत से ज़्यादा इस बात पर ज़ोर देती हैं कि घटनाओं के सिलसिले में मज़हब का क्या हिस्सा रहा और सामान्य लेखक आर्थिक पहलू और ऐतिहासिक उल्लेखों की व्याख्या पर ज़रा सा भी या क़तई ध्यान नहीं देता। नतीजा यह है कि पाठकों के सामने, जो हिन्दुस्तान का इतिहास पेश किया जाता है, वह हिन्दू और मुसलमानों के बीच लगातार लड़ाइयों का एक लेखा है; और इसलाम हिंसा का पर्यायवाची समझा जाता है। कहा जाता है कि इसलाम हिन्दुस्तान में तलवार के ज़ोर से फैलाया गया; इसलाम में ज़रा भी सहनशीलता नहीं; और इसलाम मुसलमानों का यह फ़र्ज़ लाज़मी क़रार देता है कि हिन्दुओं को कलमा पढ़ने पर मजबूर किया जाय और उनके मन्दिर तोड़े जांय। कहा जाता है विधर्मी की हत्या करना मुसलमानों के लिए तारीफ़ की बात है। इस बात की ज़रूरत नहीं कि वह अपनी वासनाओं को दबाये या नफ़्स कुशी करे; यह भी ज़रूरी नहीं कि वह आध्यात्मिकता बटोरे। उसका काम सिर्फ़ अपने कुछ साथी इन्सानों को क़त्ल करना, या उनकी ज़मीनों और जायदादों को लूटना मात्र है और इस काम से ही उसकी आत्मा को स्वर्ग में जगह मिलेगी। ऐसा मज़हब, जिसके पैरोकारों को यह शिक्षा दी जाय कि हत्या करना और डाका डालना मज़हबी फ़र्ज़ है, वह मानव समाज की उन्नति या संसार की शान्ति के साथ मेल नहीं खाता।

सूरा दो आयत २५७ में क़ुरान कहता है—"लाइकराहा फी अद्दीन" यानी धर्म के मामले में किसी तरह की ज़बरदस्ती नहीं। यह ध्यान में रखना चाहिये कि पैग़म्बर ने किसी बाप को भी यह इजाज़त नहीं दी कि वह अपने यहूदी या मूर्ति पूजक बेटे को ज़बरदस्ती इसलाम में दीक्षित करे। तब अजनबियों को मुसलमान बनाने में कैसे ज़बरदस्ती की जा सकती है?

युद्ध के लिये इजाज़त देते हुए, जो आत्म रक्षा के लिये लड़ा जाय, क़ुरान कहता है—"ईश्वर के धर्म के नाम पर उन लोगों से लड़ो, जो तुमसे लड़ते हैं। किन्तु हद से बाहर न जाओ (कि उन पर अपनी तरफ़ से हमला करो) क्योंकि अल्लाह हद के बाहर जाने वालों से प्रेम नहीं करता।" (सूरा २,१८६)

किसी तरह की ज़बरदस्ती, हमला, अत्याचार, नर हत्या या क़त्ल की इजाज़त देना तो दूर रहा, इसलाम अहिंसा पर ज़ोर देता है। बहुत से प्रमुख सूफ़ियों ने मांसाहार को मना किया और पशु हत्या के रिवाज को वे पसन्द न करते थे। ख़ुद पैग़म्बर और उनकी इकलौती बेटी, उनकी अहले-बैत-फ़ातिमा, उसका पति अली और उनके बेटे हसन और हुसेन आमतौर पर जौ खाकर रहते थे। उनके खाने में नियम पूर्वक जौ की रोटी, नमक, ओलिव का तेल और दूध होता था, और यह खाना भी उन्हें बराबर नहीं मिलता था। कभी-कभी तो इसके बग़ैर कई दिन बीत जाते थे। कभी-कभी रोज़ों के दौरान में पैग़म्बर अपने हिस्से का

* हमें दुःख है कि कांग्रेसी मिनिस्टरों ने भी अपनी वज़ारत के दिनों में इतिहास पर इस नुक़्ते नज़र से ग़ौर नहीं किया। बिहार में शिक्षा मन्त्री ने इस तरह की एक तजवीज पर ग़ौर करने की हिम्मत की थी। मगर वहां के हिन्दू कांग्रेस जनों ने अन्दर ही अन्दर इस बात का घोर विरोध किया और रोशनी में आने से पहले ही उसे खत्म कर दिया। सच तो यह है कि अक़सर हिन्दू कांग्रेसमैन इसी तरह की तास्सुब बढ़ाने वाली इतिहास की पुस्तकें पढ़कर बड़े हुए हैं और राष्ट्रीयता के नाम पर भी वे अपनी इस कमजोरी और गलत दृष्टिकोण से ऊपर नहीं उठ पाते—सम्पादक

खाना ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों को दे देते थे और अहले-बैत भी उनका अनुकरण करती थीं।

पैग़म्बर मानव मात्र के पथ प्रदर्शक की हैसियत से आये और उन्होंने इस हैसियत से अपने धर्मावलम्बियों को अहिंसा का आदेश दिया। उन्होंने कहा कि परमात्मा ने उन्हें इस पृथ्वी पर ख़ास हुक्म देकर भेजा है—"हमने तुम्हें दुनिया पर सिर्फ़ रहम करने के लिये भेजा है।" (२१-१०७)

मुहम्मद ने पशुओं को भी दुःख देने और चोट पहुंचाने को मना किया है—"यदि कोई शख़्श निरपराध किसी गौरय्या चिड़िया को भी या किसी और को मारता है, तो परमात्मा उससे इस बारे में जवाब तलब करेगा।" "जो परमात्मा के प्राणियों पर दया दिखाता है, परमात्मा उस पर दया दिखाते हैं। परमात्मा के समस्त प्राणी उसका परिवार है, क्योंकि वे उसी के सहारे जीते हैं। इसलिये अल्लाह का सब से प्यारा वही शख़्श है, जो अल्लाह के परिवार के साथ भलाई करता है। अल्लाह सब में ज़्यादा किसे पसन्द करता है? सब से पहले उसी को जो उसके प्राणियों के साथ सब में ज़्यादा भलाई करता है।" पैग़म्बर आगे चल कर कहते हैं—"इन जानवरों की निस्बत ख़ुदा से डरो, जब वे सवारी के क़ाबिल हों, तभी उन पर सवारी करो और जिस वक़्त वे थक जायं, उस वक़्त उन पर से उतर पड़ो।"

एक दिन अपनी यात्रा के सिलसिले में मुहम्मद, एक उचित स्थान देख कर, नमाज़ पढ़ने के लिए उतर पड़े। लेकिन उन्होंने उस वक़्त तक अपनी नमाज़ नहीं पढ़ी, जब तक ऊंट की ज़ीन न खोल दी।

पैग़म्बर ने अपने अनुयाइयों से पूछा—"क्या तुम अपने सिरजनहार को प्यार करते हो, तब तुम्हें पहले उस के प्राणियों को प्यार करना चाहिये।" वे मनुष्यों के अधिकार के साथ-साथ जानवरों के अधिकारों पर भी ज़ोर देते थे। निस्सन्देह इन मूक पशुओं पर उपकार करने और उन्हें पानी पिलाने का हमें इनाम मिलेगा।

अपने उपदेशों के अनुरूप पैग़म्बर ने एक व्यभिचारिणी स्त्री को इसलिए माफ़ कर दिया कि उसने एक कुत्ते पर दया दिखाई थी। कुत्ता एक कुएं के पास पड़ा था। वह अपनी जीभ फैलाये प्यास के मारे क़रीब-क़रीब मर रहा था। उस स्त्री ने अपना जूता खोल कर अपने पल्ले से बांध कर कुएं में डाला और पानी निकाल कर कुत्ते को पिलाया और पैग़म्बर ने उसके इस सुकृत्य पर उसे व्यभिचार-दोष से माफ़ कर दिया।"

एक दूसरी स्त्री की इसलिए निन्दा की कि उसने एक बिल्ली के साथ लापरवाही बरती। "उसने बिल्ली को भूखी बांध दिया और वह भूखी मर गई। न उसने उसे खाने को दिया और न उसका बन्धन खोला (इब्न-ए-उमर)।

क़ुरान इनसानी ज़िन्दगी और पशुओं की ज़िन्दगी को यकसां बहुत महत्व देता है।"दुनिया का हर पशु और परों से उड़ने वाला पक्षी इनसानों की तरह ही है, और वे सब परमात्मा के पास लौट कर जावेंगे।"

कहा जाता है कि पुराने ज़माने के एक पैग़म्बर को एक चीटी ने काट लिया। उसने तमाम चीटियों को जला देने का हुक्म दिया। उसे परमात्मा से चेतावनी मिली—"यदि एक चीटी ने तुझे काट लिया, तो तू ने (अपने सरीखे) उन प्राणियों को जला डाला, जो परमात्मा की महिमा के गुण गाते थे।"

पैग़म्बर मुहम्मद अकसर इस तरह के आदेश अपने अनुयाइयों को देते थे कि वे पशुओं की ज़िन्दगी और उनके आराम का ख़याल रखें। "अपने घोड़ों के झूमर के बाल न काटो क्योंकि वे उसकी सुन्दरता को बढ़ाते हैं, न उसकी अयाल को क्योंकि उससे उसकी हिफ़ाज़त होती है, न उसकी पूंछ को क्योंकि वह मक्खियां उड़ाने के काम आती है।" पैग़म्बर ख़ुद अपने घोड़े की सेवा करते थे। बहुधा वे अपनी चादर से अपने घोड़े के मुंह का पसीना पोंछते थे। जब लोग इस पर एतराज़ करते, तो कहते—"रात को मुझे अपने घोड़े के मुताल्लिक परमात्मा से भर्त्सना मिली।"

एक बार पैग़म्बर ने देखा कि कुछ लोग एक मेंढे पर तीर का निशाना लगा रहे हैं। उन्हें वह दृश्य देखकर नफ़रत हुई और उन्होंने तीरन्दाज़ी बन्द करा दी। उन्होंने फ़रमाया—"ग़रीब पशु को हीनाङ्ग न करो।" एक दूसरे मौक़े पर उन्होने कहा—"किसी जानदार की ज़िन्दगी (तीर से) निशाना लगाकर न लो।" बांध कर और कस कर किसी की भी जान लेने से पैग़म्बर ने मना किया। उन्होंने जानवरों को आपस में लड़ाने की भी मनाही की।

एक बार उन्होंने देखा कि एक गधे के मुंह पर किसी ने दाग़ दिया है। "जिस आदमी ने यह दाग़ दिया है अल्लाह उसे श्राप देगा" यह कह कर उन्होंने फ़ौरन जानवरों को मुंह पर दाग़ने की मुमानियत कर दी।

पैग़म्बर पत्नियों के प्रति आदर दिखाने और ग़ुलामों का खयाल रखने पर बेहद ज़ोर देते थे। उस ज़माने में अरब में पत्नियों को और ग़ुलामों को मारने का आम रिवाज था। पैग़म्बर ने इसकी क़तई मनाही की और कहा जाता है कि यह फ़रमाया—"बहुत सी औरतें मेरे परिवार वालों के पास इकट्ठा हुईं और उन्होंने अपने पतियों के मुताल्लिक शिकायत की। जो पुरुष अपनी पत्नियों को मारते हैं वे सदाचरण नहीं करते...अपनी पत्नियों को न मारो। जिस तरस ग़ुलामों को कोड़े लगाते हो, उस तरह तुम में से कोई अपनी पत्नियों को कोड़े न लगाये···अल्लाह तुम पर स्त्रियों से अच्छा व्यवहार करने का फ़र्ज़ आयद करता है, क्योंकि वे तुम्हारी मांए, बेटियां और मासियां हैं।"

अन्त में पैग़म्बर ने एक मुसलमान के मौलिक गुणों और उसकी विशेषताओं के नियम मुक़र्रर किये। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि ख़ाली कलमा पढ़ लेना ही काफ़ी नहीं है। उसके साथ-साथ दिल और विचारों की पाकीज़गी और कर्म करना लाज़िमी है। "वह मोमिन (विश्वासी) नहीं है, जो व्यभिचार करता है, शराब पीता है, लूटता है या ग़बन करता है। ख़बरदार रहो।" पैग़म्बर ने समझाया कि "धर्म की पहचान रहम दिली है और जिसके अन्दर रहमदिली नहीं उसके अन्दर धर्म नहीं।"

उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि हर एक से, ग़ैर मुसलमानों से भी रहमदिली का बर्ताव करना चाहिये। "हर सताये हुये आदमी की मदद करो, चाहे वह मुसलमान हो या ग़ैर मुसलमान।" "जो अत्याचार पीड़ित की मदद करता है, अल्लाह उसके ७३ क़सूर माफ़ कर देता है।" जो "ज़ालिम को ज़ालिम समझ कर उसकी मदद करने जाता है, वह वास्तव में इसलाम के ही बाहर चला गया।" वह मनुष्य सच्चा मुसलमान नहीं है, जो अपना पेट भरले और अपने पड़ोसी को भूखा रहने दे।"

पैग़म्बर की अनेक कहावतों में से ये थोड़ी सी यहां उद्धृत की गई हैं। मिस्टर डी० एस० मारगोलियथ इन्हीं और ऐसी ही अनेक विश्वस्त कहावतों को पढ़ने के बाद लिखते हैं—

"पैग़म्बर ने शिकारियों को ज़िन्दा पक्षियों पर निशाना लगाने के लिए मना किया और उन लोगों पर एतराज़ किया, जो अपने ऊंटों के साथ बुरा सलूक करते हैं। जब उनके कुछ अनुयाइयों ने दीमक के दिमकौड़े को आग लगा दी, तो उन्होंने उसे बुझाने के लिए मजबूर किया। पहले मृतक की क़ब्र के पास उसके उंट को बांध देते थे जो भूखा प्यासा मर जाता था। यह रिवाज अब बन्द कर दिया गया। पहले नज़र लगने से बचने के लिए भेड़ों के ग़ल्ले की कई भेड़ें अन्धी कर दी जाती थीं। यह भी रोक दिया गया। पहले बारिश होने के लिए बैलों की पूंछ से जलती मशाल बांध कर उन्हें खुला छोड़ देते थे—वह भी बन्द कर दिया। घोड़ों के मुंह पर मारना बन्द कर दिया गया। उनकी अयाल और पूंछों का कटना मना कर दिया। प्रकृति ने अयाल को उन्हें गर्मी पहुँचाने के लिए बनाया था और पूंछ मक्खियां उड़ाने के लिए। गधों को मुंह पर दाग़ना और मारना बन्द कर दिया गया। यहां तक कि मुर्ग़ों और ऊंटों को गालियां देने को भी बुरा बताया गया।

एक स्त्री ने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि वह सही सलामत अपने गन्तव्य स्थान को पहुंच जायगी, तो वह अपने सवारी के ऊंट की क़ुरबानी देगी। पैग़म्बर ने जानवर की सेवा के इस इनाम के तरीक़े का मज़ाक़ उड़ाया और उस स्त्री को उसकी प्रतिज्ञा से मुक्त कर दिया।"

'इसलाम' के लफ़्ज़ी मायने हैं शान्ति, परमात्मा को आत्मसमर्पण, उसकी मरज़ी पर अपने आपको छोड़ देना, और अन्याय एवम् अधर्म से बचना। इसलाम की जो पैरवी (सन् ५७०-६३२ में) पैग़म्बर मुहम्मद ने की थी, उसके अनुसार वह दुनिया के हर हिस्से के पुराने धर्मों और उनके संस्थापकों को स्वीकार करता है और हर मुसलमान का फ़र्ज़ है कि वह उनके प्रति आदर दिखाये।

क़ुरान कहता है "हम मुख़्तलिफ़ पैग़म्बरों में कोई फ़र्क़ नहीं करते (सूरा, ३-७६)

पैग़म्बर के एक हिन्दू जीवनी लेखक के शब्द यहां ध्यान देने योग्य हैं—

"क़ुरान के अनुसार प्रारम्भ से लेकर आजतक जितने पैग़म्बर और धर्म संस्थापक हुये हैं, उन सब ने इसी एक सचाई की शिक्षा दी है और यही मानव जाति का वास्तविक सनातन धर्म और इसलाम बताया गया है। यहां इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि क़ुरान के अनुसार प्रत्येक क़ौम, प्रत्येक काल और प्रत्येक देश में बराबर पैग़म्बर आते रहे हैं, जिन्हें इसी प्रकार ईश्वर की ओर से सचाई को फैलाने की हिदायत होती रही है और जिन्होंने अपने काल में इसी सचाई का प्रचार किया है।"

जीवनी लेखक ने इसलाम के उसूलों और पैग़म्बर के उपदेशों को संक्षेप में इस तरह दिया है—

(१) मानव मात्र की सेवा; (२) प्राणिमात्र की ओर दया और रहम; (३) ईमानदारी और दयानतदारी; (४) न्याय, निष्पक्षता और विवेकशीलता; (५) सचाई; (६) नेकी और सदाचार; (७) क्षमा और सहनशीलता; (८) ग़ुलामों को मुक्ति; (९) स्त्रियों की वक़त और इज़्ज़त; (१०) असहाय और ग़रीब यतीमों और बेवाओं को दान और सहायता; (११) ख़ुदी और वासना को मारना; (१२) अध्यात्मिकता और आत्मिक उन्नति; (१३) मूर्ति पूजा और नक़ली देवताओं की पूजा का त्याग; (१४) केवल एक परमात्मा की पूजा में विश्वास जो अजर, अमर है, जो सर्वज्ञ, सर्व व्यापी और सर्व शक्तिमान है।

इसके अतिरिक्त मुसलमानों को सिर्फ़ उन्हीं चीज़ों को पाने और करने को हिदायत दी गई है, जिन्हें सब लोगों ने अच्छा समझा है और उन्हें उन बातों के करने की मनाई की गई है, जिन्हें सब लोग नापसन्द करते हैं और बुरा कहते हैं। मालूम होता है इसलाम का ध्येय भले बुरे की कोई नई कसौटी बनाना नहीं था। उसने उसी पुरानी कसौटी पर ही ज़ोर दिया। क़ुरान में भलाई और अच्छाई के लिए लफ़्ज़ है 'मारूफ़' (यानी माना हुआ) और बुराई के लिए क़ुरान का लफ़्ज़ है—'मुनकर' (यानी न माना हुआ)।

जब कि यूरोप में महा युद्ध छाया है, हमें चेकोस्लोवेकिया जैसे मुल्कों से एक सबक़ लेना चाहिये, जो दुश्मन के हाथों में चले गए। मुमकिन है हमारी स्थिति उनसे ज़्यादा मज़बूत हो, मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि साम्प्रदायिकता हिन्दुस्तान में घुन की तरह लगी हुई है; वह एक फोड़े की तरह है, जो हमारी सारी ज़िन्दगी बरबाद कर रहा है। हिन्दू मुसलिम समस्या इधर पिछले बरसों में नाख़ुशगवार अहमियत अख़्तियार करती जा रही है। हिन्दुस्तान जात पांतों और सम्प्रदायों से भरा हुआ देश है और बचपन से ही यहां दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है। मौजूदा शिक्षा पद्धति, ख़ासतौर पर हमारी इतिहास की किताबें हिन्दुस्तानी नौजवान की स्वाभाविक पृथकता और साम्प्रदायिकता को भड़का देती है। इसकी बेहद ज़रूरत है कि तमाम विद्यार्थी, चाहे वह किसी मज़हब के हों, उन्हें साथ-साथ हिन्दू धर्म और इसलाम के इतिहास और संस्कृति का अध्ययन करना चाहिये। और यदि मौजूदा परिस्थिति में यह सम्भव नहीं, तब बी० ए० के विद्यार्थियों को, आजकल जो

मध्यकालीन भारत का राजनैतिक इतिहास पढ़ाया जाता है, उसके साथ-साथ उन्हें ख़ासतौर पर इसलाम के उसूल और इसलामी संस्थाओं के बारे में भी बताना चाहिये। एम० ए० के इतिहास के क्रम में एक परचा इसलामी इतिहास और संस्थायें या इसलामी इतिहास और संस्कृति का और जोड़ा जा सकता है। यह और इसके अलावा और भी बहुत कुछ कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने किया है, जहां इसलामी इतिहास और संस्कृति का एक नया डिपार्टमेण्ट खोला गया है।*

मेरा विश्वास है कि इसलाम के मुतल्लिक़ सच्ची बातें जानकर न सिर्फ़ इतिहास की दृष्टि से ही विद्यार्थी पर अच्छा असर पड़ेगा, बल्कि हर तरह के सामाजिक और नागरिक सम्बन्ध और व्यक्तिगत, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से भी उस पर उदार असर पड़ेगा। हर सूरत में इतिहास इस तरह से पढ़ाना चाहिये, जिससे विद्यार्थी के दिमाग़ के भारतीय नागरिकता के लिये तय्यार किया जा सके और जो बक़ौल श्रीमती सरोजिनी नायडू के हिन्दू-मुसलिम मेल के लिये उसे तत्पर कर सके।

इसलाम प्राचीन भारत और आधुनिक यूरोप को जोड़ने वाली एक कड़ी है। इसलाम आधुनिक यूरोप की देहलीज़ पर खड़ा है। *यूनिवर्सिटी में विद्यार्थी को* इसलाम के अध्ययन से वंचित करने का मतलब है, उसे प्राचीन युग से आधुनिक युग को जोड़ने वाली कड़ी के समझ सकने से रोक देना।

* सर एस० राधाकृष्णन ने भी इस तरह की एक तजवीज़ बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में पेश करने का इरादा किया था। मगर ख़र्च की तंगी की वजह से यह तजवीज़ मुल्तवी करनी पड़ी।—सम्पादक।

इसलाम ने दर्शन, ज्योतिष, गणित और वैद्यक पर यूनानी और रोमी लेखकों के ग्रन्थों की रक्षा की। कारडोवा, बग़दाद, कैरो और सेवील के विश्वविद्यालयों में इसलामी संस्कृति ने उन्नति पाई। इस संस्कृति ने ईरान में शायरी को प्रोत्साहन दिया; जहां-जहां इसलाम गया, इस संस्कृति ने निर्माण कला पर अपना असर डाला; हिन्दुस्तान में इसने फूलों और मनोहर उद्यानों की रचना की। बाहरी दुनिया से हिन्दुस्तान का फिर से नाता जोड़ा। चोलों के पतन के बाद से हिन्दुस्तान की जहाज़ी शक्ति और जहाज़ी व्यापार जो घट गया था, वह फिर से जीवित हुआ। विन्ध्या के उत्तर में हिन्दुस्तान में अन्दरूनी शान्ति, बिला मज़हबी लिहाज़ के एक सी शासन प्रणाली, विशिष्ट वर्ग की एक सी पोषाक और सामाजिक रीति रिवाज का चलन हुआ। प्रान्तीय भाषाओं और बोलियों यानी *बङ्गला, पञ्जाबी, सिन्धी, काशमीरी, गुजराती, तामिल,* मलयालम, तेलगु, उड़िया, बलूची आदि के साथ-साथ एक राष्ट्र भाषा हिन्दुस्तानी या उर्दू नाम से प्रचलित हुई। इन सब भाषाओं के मुसलमान भी इस्तेमाल करते थे और इसलाम के सम्बन्ध और बहुत से अरबी और फ़ारसी शब्दों के मिल जाने से भारतीय भाषाओं का शब्द कोष बढ़ा। उर्दू को उसी तरह 'मुसलमानी हिन्दी' कहा जा सकता है, जिस तरह *बङ्गाली मुसलमानों की ज़बान के 'मुसलमानी बङ्गला'* कहते हैं। उर्दू की तरह सिन्धी, पंजाबी, तामिल और काशमीरी ने अरबी लिपि इस्तेमाल करनी शुरू की। इसके अतिरिक्त भारत में एकेश्वरवाद के धार्मिक आन्दोलन शुरू हुए। ज़ाब्ते से इतिहास लिखने की कला ने भी प्रोत्साहन पाया और नये ऐतिहासिक साहित्य का निर्माण हुआ। युद्ध के तरीक़ों और सभ्यता के दूसरे क्षेत्रों में भी भारत ने बेहद तरक़्क़ी की।

वितस्ता के कूल पर

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

प्रस्तुत लेख में बहिन सत्यवती जी ने अपने काशमीर के जीवन के प्राकृतिक और सांस्कृतिक संस्मरणों की रेखा चित्रित किया है। बहिन सत्यवती ने अपना शैशव और कौमार्य काशमीर में ही बिताया, बल्कि यूं कहना चाहिये कि वे काशमीर की ही बेटी हैं; काशमीर की उनके जीवन पर अमिट छाप है। हाल ही में प्रकाशित उनके सुन्दर कहानी संग्रह 'दो फूल' में भी पाठकों को इस नैसर्गिक जीवन की झांकी मिलेगी। इस लेख को पढ़कर पाठक इसके सजीव चित्रण को अनुभव कर सकेंगे।

फलों फूलों एंव सूखे पत्तों तक के सिमट जाने के कारण, वह निराभरण धरणी, मानों शुष्क, नग्न और श्वेत टहनियों द्वारा, पश्चिमोत्तर से घिरती हुई काली घटाओं का आवाहन कर रही हो। कहीं-कहीं झोपड़ों में बैठा कुक्कुट उस लम्बी निस्तब्धता को, (जो श्रीनगर में शीत ऋतु के चारों प्रहर निरन्तर छाई रहती है), करुण स्वर में भंग करने का व्यर्थ प्रयास करने लगा।

साथ ही मेरे आंचल को स्पर्श करतीं, दो काशमीरी बच्चियां अपने नन्हें-नन्हें लाल, नीले कांपते हुए अंगों को समेटती सथू१ से नीचे नदी की ओर भाग गईं। तब सहसा मेरे कानों में एक पुरातन स्वर झंकृत हो उठा। शीन! पी पी! शीन पी पी।२

नेत्र उस मूर्ति को खोजने लगे, कान वह चिरपरिचित मधुर स्वर सुनने को एक बार पुनः व्याकुल हो उठे। किन्तु वह आज कहां है? जीवन के प्रथम चरण में, जिसने कन्धों पर बैठा कर, उंगली पकड़ कर, इन उमड़ते काले मेघों, जेहलम के फूटते संगीत, एवं इन बुलबुलों और शीन पी पी! की ओर इंगित करते हुए प्रकृति का बोध करवाया था! स्मृति में अनायास ही स्व० पण्डित तोताराम की लाल लाल दुखती आंखें, (जो सम्भवतः उसके युवक पुत्र की मृत्यु के कारण हो गई थीं) और उससे सुनी हर-मुख-गंगा की बातें उभर आईं।

बाहर सर्वत्र, सड़कें, छतें, मैदान, वृक्षों की नंगी सूखी शाखाएं, बिजली के खंभे तक बर्फ़ से ढंपे होते। सारे शहर में एक विचित्र श्वेत सन्नाटा छाया होता। अंगीठिओं और काँगड़ियों के सहारे प्रायः सब लोग घरों में चुपचाप पड़े होते।

भीतर रसोई घर में अंगीठी के पास भोजन बनाते और परोसते समय वह एक चित्र खींच देता। "बहुत दूर जगह है वह, दस पन्द्रह दिन लगेंगे। जिस दिन हरिद्वार में वैशाख-पूर्णिमा पर कुम्भ या पर्व होता है ठीक उसी समय, उसी दिन हर-मुख-गंगा कहीं पीछे से वेग पूर्वक प्रवाहित होती आएंगी

---

१ सथू अर्थात् नदी का ऊंचा किनारा [बन्ध]

२ शीन का अर्थ काशमीरी भाषा में हिम है और शीन पी पी नामक छोटा सा पक्षी [बुलबुल की भांति ही] जो हिम प्रपात से कुछ काल पूर्व आकर अपने झंकृत स्वर में—शीन—पी पी कह कर हिम पड़ने की भविष्यवाणी करता है।

और पर्व का समय समाप्त हो जाने पर एक दम सूख जाएंगी।"

जड़ी बूटियों, चीड़ और भोजपत्रों के सघन वन में से होता हुआ तोताराम उसी स्थान पर जाएगा; और पर्व के समय झट से गङ्गा के प्रवाह में अपने लड़के के फूल (अस्थियां) डाल देगा। रोटी खाते-खाते ग्रास वहीं रह जाता। उसके पुत्र की शक्ल नज़र आ जाती—और वह गङ्गा की कल्पना जादू भरी होते हुए भी व्यथापूर्ण लगने लगती।

गेंदों के फूलों से सुशोभित घरों में, यज्ञोपवीत के अवसरों पर, उसी के साथ गई हूं। बासन्ती वस्त्र पहने, तीन दिन तक उपवास धारण किये ब्रह्मचारी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो आती! यज्ञ के समय, वह मन्त्र-ध्वनि कितनी मधुर लगती। इन अवसरों पर तोताराम बहुधा कांसी के चित्रित काशमीरी कटोरों में नमकीन व मीठा, कई प्रकार का स्वादिष्ट पनीर, गुच्छियां भर-भर कर लाया करता।

शिवरात्रि के अवसर पर वह दो दिन की छुट्टी अवश्य लेता, क्योंकि वही उनका (पण्डितों का) प्रमुख त्योहार है। "कई दिन पूर्व तय्यारी करनी होगी" आधा-आधा मन चावल, मछली, दही भीगे अखरोट आदि लड़कियों व सम्बन्धियों को देने होते हैं। मुझे याद आ गया अपने घर में भी वह बड़ा सा टब, जिसमें कई दिन तक अख़रोट तैरते रहते। उस वर्ष कितनी अधिक बर्फ़ पड़ी थी जब मैं, भाई और छोटे चचा हम तीनों शिवरात्रि के दिन ऊपर शंकराचार्य के मन्दिर तक बर्फ़ के गड्ढों में कई-कई फ़िट तक घुसते हुए जा पहुंचे थे। हां तोताराम की केवल एक ही बात मुझे न सुहाती! "रात दस बजे तक काम करके वह अब इतनी सरदी में जाकर अपने घर खाना खाएगा।" "हतबों (मुसलमानों) के हाथ का छुआ खा सकता है और हमारे घर में, जिनसे वह इतना स्नेह करता है, नहीं खाता।" धीरे से मुस्कराते हुए मेरे कानों में उसका यह कथन "काशमीरी काशमीरी फिर भी भाई हैं एक खून है, बाहर से आए विदेशियों के हाथ का कैसे खाऊं!"—सुनकर मैं और भी झुंझला पड़ती।

सिर पर बड़ी सी पगड़ी, गले में रुद्राक्ष की माला, लम्बा सा टीका लगाए! वह शिवा पण्डित (हमारा पुराना रसोइया)। सोचती हूं कितने कलावन्त हैं यह लोग। उसके हाथ की बनी अत्यन्त बारीक कलाबत्तू एवं कारचोबी के काम की वस्तुऐं अभी तक घर में पड़ी होंगी। माता जी सुनाया करती थीं, मेरे जन्म से पूर्व, विशेषतया जाड़ों में, जब उसे अधिक काम न होता तो बैठा-बैठा दस्तकारी किया करता।

लम्बा सा ऊनी फ़िरन पहने, सिर पर गोल कसा साफ़ा, पैरों में लकड़ी की मोटी खड़ाऊँ, भाल में चन्दन, सिन्दूर मिश्रित लम्बा सा तिलक दिए वे पण्डित गोविन्द राज़धान! (उनका वह वेश) जो आज भी काशमीर की भूमि पर क़दम रखते ही, इस गौर-वर्ण जनता की इसी भूमि से परिष्कृत लोइओं, पट्टिओं, दोशालों और लम्बे कुरतों को धारण किए देख मुझे किसी लुप्त संस्कृति के चिन्हों का आभास दे जाता है।

हिम प्रपात के दिन भी वे बर्फ़ झाड़ते आते। लगने लगता है मानों वे ऊपर की मंज़िल में बैठे अभी भी मुझे गीता का पूरा अध्याय कण्टस्थ करने को दे रहे हों, और मेरी चंचल दृष्टि खिड़की से बाहर वृक्षों की टपती टहनिओं की ओर से तनिक भी न हट रही हो।

"तुम्हारे पण्डित जी के पास तो जूता भी नहीं, पायजामा भी नहीं! फ़िरन भी अच्छा नहीं"—मौसी कितना चिढ़ाया करतीं। निसन्देह मौसी जी के अध्यापक स्थानीय कालेज में प्रोफ़ैसर थे। सफ़ेद पश्मीने का फ़िरन—धोबी की धुली बारीक मलमल की गोल कसी पगड़ी, फ़िरन के ऊपर से होकर गले में लपेटा हुआ पश्मीने अथवा मलमल का दुपट्टा।

यज्ञोपवीत संस्कार काशमीरी पण्डित बहुत धूमधाम से मनाते हैं।

[शिवरात्रि के दिन शंकराचार्य की पहाड़ी पर शिव मन्दिर में—भीगे अखरोट, चावल, आदि लेकर पूजा करने जाते हैं—उसी स्थान को तख्त सुलेमान भी कहते हैं।]

स्वच्छ चूड़ीदार पायजामा, मोज़े एवं देशी जूते धारण किए रहते, माथे और कानों पर छोटा सा गोल टीका। वे शास्त्री और मेरे पण्डित जी विशारद।

कितनी झेंप आती! मुंह लाल हो उठता, किन्तु प्रतिवाद स्वरूप मौसी जी को मेरा केवल यही एक ही उत्तर होता (जिसे स्मरण कर आज हंसी ही आती है) "अच्छा जी! हमारे पण्डित जी ग़रीब ही सही, उनमें अभिमान तो नहीं है।" और मन ही मन अपने पण्डित जी के मोती से सुन्दर अक्षरों में लिखी जन्म पत्रिओं एवं शारदा* भाषा में लिखे लेखों को देखकर उनकी विद्वत्ता पर अभिभूत हो उठती।

जन्मभूमि से बिदा लेने के कुछ ही दिन शेष थे। वितस्ता के कूल पर घूमते-घूमते कितनी ही पुरातन स्मृतियां नवीन कल्पनाओं का रूप धारण किए शीतल पवन में मधुर लगने लगीं।

कुछ ही दिनों में पुनः उसी प्रकार सब कुछ हिमाच्छादित हो जाएगा—इन नंगे सूखे वृक्षों पर, मिट्टी, घास, टीन की नई पुरानी छतों पर ठोस बर्फ़ महीनों जमी रहेगी—और बूंद-बूंद टपक कर उनके किनारों पर लम्बी नुकीली सोटिओं सी लटकने लगेंगी। प्रभात बेला में, उस सन्नाटे को भङ्ग करता हुआ मानों सुप्त जनता को जगाने के लिए मसो! मसो! गर्म मसो! के स्वर से जगाता हुआ वही व्यक्ति मोटी लोई ओढ़े अपना खोमचा लाकर बीच मुहल्ले में गाड़ देगा। बच्चे और स्त्रियां बर्फ़ पर नंगे पैरों से चिन्ह बनाते हुए, घरों से भागते आयेंगी। अपनी अपनी टोपी उतार अथवा आंचलों में गर्मा-गर्म मसो डलवा कर लेकर भाग जायेंगी।*

फिर सारा दिन। वही लम्बी शान्ति। वही एकरसता।

ऐसे ही किसी दिन, किन्तु महीनों बाद मैदानों में पिघलते हुई हिम के नीचे से नई कच्ची घास को फूटते देख सारे शहर में हर्ष की एक गूंज भर उठेगी। बहार! बहार! क्रमशः शगूफ़ा! शगूफ़ा! गली और मुहल्लों में फिर से धीमे-धीमे स्वर! मोटे-मोटे जूतों के कीचड़ पर चटकने की आवाज़ें! काम काज! दुकानों के खुलते पट!—

बच्चों को गोदी में लिए खुले मैदानों में उन जीवनदायिनी किरणों का पान करने के निमित्त काशमीरी रमणियां निकलती होंगी और सांझ को लौटती बार वेदमुश्क की भरी लम्बी लम्बी डालियां हाथ में लिए होंगी, जिनकी सुरभि आधा-आधा मील दूर तक छाई होगी।

अहा! जब परिधान धारण कर उठेंगे लाल, श्वेत गुच्छों से सेब, नाशपाती, बादाम, ख़ुमानी, आड़ू, आलूचे के मीलों फैले वृक्ष। टोलियों की टोलियां उठ कर चल देंगी, हाथों में समावार, प्याले और कांसी की कटोरिआं लिए। चैत मास में नवरात्र के दिनों-हरि पर्वत की ओर!

काग़ज़ और मिट्टी के खिलौने वाले बच्चों को मार्ग में रिझायेंगे। श्वेत, गुलाबी, पुष्पों से झरते बादाम के पेड़ों तले सुगन्धित चाय बन रही होगी; बाहर मैदानों में ढेरों सूखे सिंघाड़े भूने जा रहे होंगे। उसी स्वस्थ मादक पवन का स्पर्श, नीलाकाश में उन दूर गए बादलों का भय। कहीं पुनः आकर न बरस पड़ें, मुझे तभी ऐसा प्रतीत होने लगा मानों मैं वहीं सहेलिओं के लिए हरि पर्वत के क़िले के चारों ओर की बृहत् भग्न चहार दीवारी पर चढ़ कर परिक्रमा कर रही हूं।

---

* देव नागरी अक्षरों में लिखी हुई काश्मीरी भाषा से तात्पर्य शारदा भाषा से है। गत वर्ष प्रताप कालेज मेगज़ीन में विद्यार्थिओं द्वारा लिखित कई सुन्दर लेख, कविताएं, आदि शारदा में ही लिखी देख अत्यन्त हर्ष हुआ। वैसे श्री नगर से 'श्री' नामक एक पत्रिका संस्कृत में आजकल डा० कुलभूषण जी के सम्पादकत्व में निकलती है।

* मसो वहां लाल रंग के उबले हुए लोबिया व रवां को कहते हैं। शीतऋतु में काशमीरी बच्चों के लिए यही अन्यतम स्वादिष्ट खाद्य है।

कभी नीचे कबरों के समीप, जहां शोबन के फूल उगने वाले हैं, उतर आती हूं, और कभी पहाड़ी के तनिक ऊपर शारदा के मन्दिर में, जहाँ से अनेकों कण्ठ-स्वर मिल कर आकर्षक मन्त्र-पाठ द्वारा उस सम्पूर्ण घाटी को गुञ्जारित कर रहे हैं, पहुंच जाती हूं। किन्तु मन्दिर में एक बृहत् शिला सिन्दूर से रंगी रखी है, जिस पर ढेरों पके चावल, कच्चा मांस, सूखे फल आदि चढ़ाए जा रहे हैं; जिसे मेरा ठोस आर्य्य-समाजी विश्वास देखना भी स्वीकार नहीं करता—बस मैं केवल दूर से ही वह ध्वनि सुन कर मुग्ध होती हूं।

नव-बसन्त का पूरा एक मास हिन्दू, मुसलमान सिख, पण्डित सभी जातिओं का मिश्रित वह त्योहार! जिसमें वे जाड़े के भयंकर कष्टों की स्मृति भूल, परस्पर हर्षित हो ख़ुशियां मनाते थे, मेरे बाल्यकाल की स्मृतिओं में निहित है। वैशाखी के दिन—गुल गंगा, और गर्मिओं में चिनारों से घिरे सरोवरों, विचार नाग, हज़रतबल पर आनन्द दायक त्योहार और ज़्यारतें कैसी अपूर्व वस्तु थीं!

नदी के रास्ते हरि पर्वत से लौटते हुए शिकारों में बैठ कर आना क्यों इतना रुचिकर होता था! सम्भवतः उन गर्म रेशमी रंगीन फ़िरनों के ऊपर गर्म अथवा रेशमी दुपट्टों के ढीले कमरबन्द बाँधे सुन्दर ब्राह्मण युवतियों के भोले चेहरों की स्वच्छ, सरल, गंभीर मुस्कान से अथवा उनके नवनीत से श्वेत, कोमल माथे पर सिन्दूर बिन्दु एवं कानों के पीछे लटकते हुए काले धागे में सौभाग्य के चिन्ह! उनके चमकदार श्वेत कसावों के नीचे से दो भागों में विभक्त काली केशराशिओं के कारण, विशेषतया जब वे घाटों पर से जल में उतर कर काँसी के चमकदार बर्तन धो रही होतीं।

किन्तु सब से आकर्षक वस्तु तो थी वे घास-फूस और मिट्टी से ढंकी कँगूरेदार छतों वाली पुरानी इमारतें। जिनमें कहीं-कहीं गेंदा के सूखे फूल लटके होते और कोई चारों कोनों वाली मस्जिद के ढंग की। पानी का बहाव उलटा होता, ज़ैना कदल से अमीरा कदल को आते हुए माझी पुलों के नीचे से ज़ोर लगा लगा कर भंवरों से समना कर रहा होता—और मेरी नज़रें किनारे पर की शाल, दुशाले, पेपरमेशी, अखरोट, चिनार की लकड़ी के काम से भरी कोठिओं से न हटतीं—एकटक देखती रहती। खिड़किओं की सह से इतनी बारीक कारीगरी पर जल्दी-जल्दी सुई धागा चलाते हुए, चाँदी पर ठोंक ठांक कर नक्काशी करते, रंगीन पत्थरों पर सूक्ष्म तराशी का काम करते हुए उन कारीगरों के निपुण हाथ।

ग्रीष्म ऋतु में! रघुनाथ जी के मन्दिर से आती हुई सान्ध्य वेला में घण्टों की ध्वनि—और स्वर्गीय महाराज द्वारा विसर्जित लाल कमलों से भरी हुई जेहलम का वह अनुपम सौन्दर्य्य।

× × ×

नदी के वक्ष पर से उठते कुहासे को अतृप्त नेत्रों से देखते हुए घर को मुड़ चलती। उस ओर से जहाँ नीचे ढलान में, उन नाशपातिओं के झूलते जंगल के स्थान पर, अब कान्वेण्ट की भारी इमारत है। सामने उस पार वही आबीगुज़र का मुहल्ला। सथू के ऊपर की सीढ़िओं के आस-पास एवं स्थान-स्थान पर वैसा ही मेला! काले कीचड़ से सनी वही लकड़ी की दीवारें। गँज से भरे हुए सिरों वाले वही हांजिओं और कलाकारों के छोटे बच्चे। मेरा हृदय क्षुब्ध हो कुछ पुकार उठता, ओ! धन-धान्य, फल-फूल से पूर्ण एवं अलौकिक सौन्दर्य्य के निवासिओं।

ज़बरन मैं अपने आन्तरिक भावों को दबाये लेती सामने का कोलाहल सुन, वह पुराना मुहल्ला, वह पुराना घर, जहाँ मेरे शैशव की अधिकांश स्मृतियां दबी पड़ी हैं, घूम जाता है। वह सर्दियां, वह रोज़े की साँझें, ईद और ज़्यारतें क्या कम कौतुक की वस्तुएं थीं।

आज भी मानों पिछली ओर की खिड़की खोलने पर नाई की औरत, उस लाल-लाल गालों वाली लजीली वधू के सिर पर लई टोपी रख सुर्ख़ कसावा

बड़े यत्न से कसकर बाँध रही हो१ और वधू को घेर कर मुहल्ले की औरतें एक स्वर में गीत गा रही हों—"श्यामन् , वनवोरी-बिस्मल वनकोरी साहिबों, माँ बो, मो नूरिए··········२"

दूसरी ओर शादी वाले घर में ज़याफ़त की तय्यारी हो रही होती—मेंहदी की सुबह को दो तीन भेड़ बकरों को बंधा देख, पूर्व ही हमें इसका अनुमान हो आता। घर के वह कोने याद आने लगे, जहाँ हम भाई बहन कानों में उंगलियां दिए छिप जाते कि किसी प्रकार वह भीषण चीत्कार का समय निकल जावे। जब साँझ होती, लहू की नालियां और बिखरी आंतों के बदले सुलगते चूल्हों पर बड़ी-बड़ी देगें पक रही होतीं। मुहल्ले के सरपंच आकर बड़े बड़े प्यालों में ऊपर तक भर कर ढंग से बढ़ियां चावल परोसते। जिन पर कई प्रकार का पका माँस सजा कर रखा होता। उस दिन मुहल्ले में फैली वह तेज़ गन्ध काफ़ी परेशान करती; किन्तु उन दावतों के देखने का आनन्द कुछ कम था क्या?

वह शहनाई की तू तू! ढोलों की ढमाढम और मशालों की रोशनी में—

दूल्हा का आगमन; मेंहदी लगाए; सफ़ेद सलवार, नया जूता—शुभ्र ऊनी फ़िरन, पश्मीना का शाल, सफ़ेद पगड़ी पर फूलों का सेहरा; घोड़ी पर चढ़ कर किस शान से वह आता! पीछे-पीछे हतबियां काँगड़ी में कालादाना की सुगन्धि करते हुए मंगल गीत गाती आतीं।

उस रात हम बिलकुल नहीं सो सकते। सारी रात घड़े पर जूती ठोक कर बजाने के ताल स्वर सुनाई पड़ते। पहले पतली सी आवाज़ में एक लड़का गाता, पीछे सारी मजलिस गीत के अन्तिम पद को गुँजा देती; कभी-कभी यही ध्वनि प्रभाती के समय मधुर जान पड़ती! हमारे परिवार में भी वही रागिनी जिसकी ध्वनि प्रतिध्वनि आज भी कानों में गूंज उठती है, प्रायः एक सप्ताह तक दोहराई जाती।

शादी के बाद! उस बूढ़े खुसरे का भोंड़ा नृत्य! और साथ में गला फाड़-फाड़ कर गाने वाले भाँड़ों का गान कितना कर्ण-कटु लगता! परन्तु ओह! अपने घर के साथ वाले छोटे मकान के बाम पर, उस दरवेश का मीठा इसराज और कभी-कभी चांदनी रात में चौकीदार हसनअली की सितार की मधुर गूंज! किसी अन्य लोक में पहुंचा देती।

लड़के की शादी में नव वधू देखने का कितना चाव होता था! स्कूल से लौट कर बरामदे, जंगले पर लटके-लटके घण्टों इसी होड़ में बीतते कि कौन पहले उस श्वेत चाँदी के ज़ेवरों से लदी, मोटी उभरी भुजाओं वाली सुन्दरी को देखता है? आठ दस दिन देखने के उपरान्त सारी उत्सुकता मिट जाती। वही सुकुमारी वधू, फ़िरन फैलाए शाली*सुखाने, कूटने पकाने, मुर्गिओं की रखवाली करने तथा दो एक महीने बाद जुएं निकालने में व्यस्त है।

हतबी रहमी! याद आता है जब भी माता जी उसे नया फ़िरन बनवा कर देतीं तब भी वह शाम को घर जाते समय अवश्य ही ऊपर मैला फ़िरन पहन लेती! उसका कथन युक्तिपूर्ण था। जो स्त्री उनमें खूब धुला हुआ वस्त्र पहनती, वह चरित्रहीन समझी जाती।

किसी दिन एक लकड़ी का सन्दूक आ जाता; मुहल्ले के पुरुष उस पर काला कपड़ा डाल दुर्गजन, (दुर्गजन के पुल के पास ही क़ब्रिस्तान है), की ओर चल देते। स्त्रियां जो प्रायः आपस में दिन भर लड़ाई झगड़ा करती थीं; उस समय सब वहीं एकत्रित हो जातीं—हाय! वह पीछे बाल खोले घरवालिओं का करुण चीत्कार! रुदन! "बला बलाहे लगी! म्यानी पुत्रा कुत गो? वला

१ लड़की की विदाई पर मंगल गीत—

२ विवाह के समय वधू के सिर पर टोपी के ऊपर जो लाल रंग का कसा हुआ कपड़ा बांध कर सुइओं और पिनों से सजाया जाता है, पण्डितानिओं में यही वस्त्र सफ़ेद होता है और पिनें व सुइयां अधिक नहीं लगाई जातीं।

* शाली:—धान।

म्यानी खुदाओ—घर की रोने वालियां बेहाल होतीं! और वह मोटी चौधरानी कैसे चाय बनाने में व्यस्त! उसी समय चीनी के फूलदार कुशादा प्यालों में आड़ू के फूलों सी लाल-लाल रंग की मक्खन डाल कर बढ़िया चाय ढुलकाई जाती। एक स्त्री आँचल में से एक-एक कुलचा निकाल कर बाँटती जाती। एक हाथ से नाक मुंह पोंछते हुए सब स्त्रिओं का ध्यान चाय और कुलचे की ओर खिंच जाता और बस रोना धोना समाप्त!

ईद! और रोज़े के दिन भी कितने महत्वपूर्ण होते थे। जब छोटे-छोटे बच्चे लाल टोपियों पर चाँदी का आभूषण पहने निकलते। घर-घर के आगे शहनाई बज उठती। और कहीं छत पर बैठी मां अथवा पत्नी का त्योहार के दिन—प्रिय के वियोग में करुण विलाप! रोज़ों की अन्धेरी चाँदनी रातों में उन गले में हाथ डाले दोनों ओर से पंक्तियां बना कर झूमती हुई कन्याओं के गीतों में तो हम लोग भी शामिल हो जाते! अनेक स्वरों एवं रागनिओं से मुहल्ला गूंज उठता।

× × ×

कहाँ गई वह ग्रीष्म की चहल पहल? बाग़, सरोवर और झीलों की ओर झालरदार शिकारों में सैलानी लोगों को घुमाते हुए हांजी परिवारों का आल्हाद!

× × ×

किन झकोरों में झर गईं, वे वितस्ता के अस्पष्ट मरमर में लाल सेबों से झुकी डालियाँ? वे अँगूरों के गुच्छे? सम्पूर्ण घाटी की हरीतिमा के साथ ही मानों धीरे-धीरे धीमा पड़ गया उन गोल्फ के मैदानों, अथवा उन, पालकिओं और घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ने वाले कुलिओं का भरा जोश? कहाँ गए पाम्पुर की सुरभित भूमि में केसर चुनने वालों के मादक राग?

जल, स्थल की शोभा पतझड़ के तूफानों के साथ ही उड़ गई! आज पुनः! इन काठ के घरों में और खाली डूंगों में, बड़े परिश्रम से संचित कमाई है केवल सूखे पत्ते, गोबर, सूखी टहनिआं और कुछ शाली!

अकेले ही घूमने निकली थी! चलो! चलो शीघ्र घर चलो की पुकार मचाने वाला कोई भी साथ में नहीं था। इसी से मज़े-मज़े रुक कर—इस सिमटते सौन्दर्य को आँखों में भर कर ले जाना चाहती थी—सिमटता क्यों? मेरे लिए यह चिनारों की नितान्त नग्न शाखें नदी का शान्त जल, सामने की बर्फ़ीली चोटिओं पर कुछ उभरे काले श्वेत घन-समूह ही क्या कम आकर्षक हैं?

किन्तु बिदाई के दिनों में इस अलौकिक भूभाग का निखरा सौन्दर्य्य ही नहीं—प्रत्युत उन अनेक मानव मूर्तियों की सुख-दुख भरी—अनुभूतियाँ, जो इसी धरती के अणु-अणु से निर्मित शरीर में अनजाने ही घुल मिल सी गई हैं, जाग उठती हैं।

वस्ता![1] गुफ़ारा (बढ़ई) वस्ता सदीका (आरीकश) वस्ता रमज़ाना (रंगसाज़) वस्ता माधोबट जो (मुझे सुई पकड़ा कर कितने स्नेह से सूचिकला द्वारा फूल पत्तों में रंग भरना सिखलाता था)। वह चेहरे पर काले कोयलों के धब्बों वाले दोनों भाई अज़ीज़ा और आधु (लोहार) और उनका बूढ़ा बाप अहमद, जो मेरा नाम बिगाड़ कर "हत सती! हत सती!" कह कर पुकारा करता था।

उनके लकड़ी चीरने, रंदा करने, और लाल सलाखों, व धौंकनिओं की आवाज़ मानों उस पार शेखबाग से उठती सी, मेरे कानों में आने लगी। बदिओं के पेड़ों तले, पतझड़ के दिनों सूखे पत्तों को रौंदते हुए, हम उनके आस-पास लोटा करते। किन्तु आज उस पार उसी स्थान पर बेल बूटिओं से, सुशोभित कई नई कोठिआं खड़ी हैं।

हमारे घर में वे कैसे सगे सम्बन्धियों की तरह आया करते। ईद, दीपावलि, वैशाखी पर मिठाई, बादाम, मिश्री के तोहफ़ों—का परस्पर लेन-देन होता था, ब्याह शादिओं में भी तो!

---

१ वस्ता अर्थात उस्ताद

कुछ दिन पूर्व की एक बात उसी समय स्मरण हो आई ! बाज़ार से लौटते समय हम दोनों बहनों के चेहरों पर एक दूसरे के प्रति शिकायत का भाव था—रास्ता चलते एक छोटी सी दुकान के सामने खड़े होकर एक हतबे दर्ज़ी को बड़ी श्रद्धा पूर्वक प्रणाम करना, छोटी बहन को बहुत अखर रहा था। बड़ी बहन की इस खाह-म-खाह की भावुकता पर मानों उसे लज्जा आ रही थी।

दूसरी ओर मुझे उसके प्रति यह शिकायत थी कि जो व्यक्ति हमारे घर में कभी इतना सम्मानित समझा जाता था; जिसे मैं अपने पूज्य चचा तुल्य समझती, उन्हीं वस्ता को यह लड़की पहचानती भी नहीं ! प्रणाम तक भी नहीं किया। आश्चर्य है !

किन्तु दूसरे दिन ही उन, तुषी रंग के फ़िरन पर सफ़ेद पगड़ी, सफ़ेद अलवान ओढ़े, स्निग्ध नेत्रों वाले "वस्ता अहमद जू" को पिता जी के साथ अत्यन्त स्नेह में भीगी बातें करते देख घर के सब छोटे बच्चे बाहर से झांक-झांक कर विस्मित हो उठे ! और जब-जब भी मैं चाय की मेज़ पर कुछ खाने की चीज़ें लाती वे कैसे स्नेह से कहते "बेटी बस ! यह तो मेरा फ़र्ज़ है, लड़कियों के लिए तो मुझे ही कुछ लाना चाहिए।" उनके उठ जाने के उपरान्त पिता जी ने बतलाया कि वे "कैसे आज से चालीस बयालीस वर्ष पहले पैदल श्री नगर पहुँचे थे !—जब यहां उन्हें कोई भी जानता पहिचानता न था। तब इसी व्यक्ति ने उन्हें भरपूर सहायता दी थी—उनके हृदय में वस्ता का आदर अपने सगे भाइयों से भी बढ़कर है।"

सम्यक् वाणी

भिक्षुओ, एक आदमी झूठ बोलना छोड़, झूठ बोलने से दूर रह सत्य बोलने वाला, सच्चा, लोक में यथार्थ-वादी होता है। वह सभा में, परिषद् में, भाई-चारे में, पंचायत में, वा राज-सभा में किसी भी जगह जाता है। वहाँ उससे गवाही पूछी जाती है कि 'जो जानते हो, उसे ठीक-ठीक कहो'। वह यदि नहीं जानता है, तो कहता है कि "नहीं जानता हूं", यदि जानता है, तो कहता है "जानता हूं।" जिस बात को नहीं देखता है, उसे कहता है कि नहीं देखता हूं, जिसे देखता है, उसे कहता है कि देखता हूं। इस प्रकार न वह अपने लिये न किसी दूसरे के लिये, न किसी लौकिक पदार्थ के ही लिये जान बूझ कर झूठ बोलता है।

वह चुगली करना छोड़, चुगली करने से दूर रह, यहाँ की बात सुनकर वहाँ नहीं कहता कि यहाँ के लोगों में झगड़ा हो जाये, वहाँ की बात सुन कर यहाँ नहीं कहता कि वहाँ के लोगों में झगड़ा हो जाए। वह एक दूसरे से पृथक् पृथक् होने वालों को मिलाता है, मिले हुओं को पृथक् नहीं होने देता। वह ऐसी वाणी बोलता है, जिस से लोग इकट्ठे रहें, मिल जुल कर रहें।

वह कठोर वाणी छोड़, कठोर शब्दों से दूर रह ऐसी वाणी बोलता है, जो कानों को सुख देने वाली, प्रेम भरी, हृदय में पैठ जाने वाली, सभ्य, बहुत जनों को प्रिय लगने वाली हो। वह जानता है :—

(१) जो लोग यह सोचते रहते हैं कि 'इसने मुझे गाली दी, इसने मुझे मारा, इसने मेरा मज़ाक उड़ाया', उनका वैर कभी शान्त नहीं होता।

(२) वैर वैर से कभी शान्त नहीं होता। अवैर से ही होता है—यही सनातन बात है।

फ़ज़ूल बोलना छोड़कर, फ़ज़ूल बोलने से दूर रह कर वह ऐसी वाणी बोलता है, जो समयानुकूल हो, यथार्थ हो, बेमतलब न हो, धर्मानुकूल हो, नियमानुकूल हो......।

भिक्षुओ, आपस में इकट्ठे होने पर दो बातों में से एक बात होनी चाहिये या तो धार्मिक बात-चीत या फिर आर्य-मौन।

भिक्षुओ, इसे सम्यक् वाणी कहते हैं।—"बुद्ध-वचन"

हिन्दुकुश के क़बीले

डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त, एम० ए०, पी-एच० डी०

मानव-जाति-शास्त्र के विद्वानों और भाषा-विज्ञान के विशारदों के लिये हिन्दुकुश के इलाक़े का बहुत महत्व है। हिन्दुकुश की सीमा पर हम भाषाओं को बंटा हुआ पाते हैं। उत्तर में ईरानी भाषा फैली हुई है (१) जब कि दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में संस्कृत से सम्बन्ध रखने वाली बोलियों का प्रचार है। इन बोलियों के बारे में कुछ लोगों की राय है कि ये बोलियां संस्कृत भाषा की उन्नति की विविध अवस्थाओं से सम्बन्ध रखती हैं। (२) जब कि ग्रिअरसन (३) जैसे दूसरे विद्वानों की राय है कि इन बोलियों में से कुछ पिसाक (Pisaca) यानी भाषा के एक दूसरे ही समूह के मातहत आती हैं। संस्कृत में पिसाक 'पैसाक प्राकृत' नाम से इस्तेमाल हुआ है।

चूंकि यह इलाक़ा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से बेहद दिलचस्प है, इसलिये मानव-जाति-शास्त्र की दृष्टि से भी यह उतना ही दिलचस्प होना चाहिये। इसीलिए इस इलाक़े की छान-बीन मानव-जाति-शास्त्र की दृष्टि से हमारे लिये बड़ी क़ीमती साबित होगी।

यह कहा जा चुका है कि ईरानी बोलने वाले क़बीले हिन्दुकुश की उत्तरी सीमा में रहते हैं और हम फ़िलहाल उन्हीं की छान-बीन करेंगे।

पामीर के जो लोग संस्कृत भाषा से मिली-जुली बोली बोलते हैं, यानी काफ़िर (४) चितराली, दर्द और ओस्ता, सामान्यतया मध्यमाकृति (Mesoceptalic character) के लोग हैं, यानी उनकी खोपड़ी मामूली साइज़ की होती है। जहां तक नाक की विशेषता का सम्बन्ध है, वे सामान्यतया लम्बी नाक वाले (Leptorrhius) होते हैं। इनके अलावा पामीर वासियों में दूसरे समूहों के लोग भी हैं, जैसे नाक़र, हुनज़ा, बुरिस्की, पख्तो, बालटिस, जो सामान्यतया साधारण खोपड़ी और लम्बी नाक वाले और मध्यमाकृति के लोग हैं।

---

(1) Encyclopedia des Islam–"Osteranische Familie", P. 165.

(2) G. Leitner–"the Languages and races of Dardistan" P. I.

(3) Grierson–"The Pisaca Language of North western India."

(४) सन् १९१२ में जब से अमीर अब्दर रहमान ने काफ़िरों के देश को फ़तह किया है, तब से काफ़िरों ने इसलाम स्वीकार कर लिया है, और अफ़ग़ानिस्तान भर में तितर बितर हो गये हैं। कुछ लोग चितराल भाग गये, जहां उनका पता ओसलो (नारवे) के विद्वान् मारगन स्टीर्न और कलकत्ता म्यूज़िअम के श्री गुप्ता ने लगाया। ये लोग अब तक अपने पुराने धर्म का पालन करते हैं।

दूसरी ओर यदि ईरानी भाषा बोलने वाले समूहों, यानी मस्तुजो, सारीकोली, वकली और फ़ैज़ाबादी क़बीलों को मिला कर देखा जाय, तो वे भारी खोपड़ी के (Brachycephots) और साधारण नाक (Mesorrtin) वाले मिलेंगे। ईरानी बोलने वालों के बारे में हमें जो परम्परागत ज्ञान है, यह उसके बिलकुल विपरीत है। पिछले लेखों में हमने ताजिक और गलचाओं की छान-बीन की है। इनके अलावा हिन्दुकुश के पहाड़ी इलाक़े की भारतीय सीमा और काशमीर में लोगों के ऐसे बहुत से समूह हैं, जिनकी शुमार लम्बे मस्तक वालों (Dolichoceptals) में की जायगी।

इस तरह हम देखते हैं कि इन पहाड़ों पर इस तरह की आबादी रहती हैं, जो भारतीय या भारतीय भाषा समूह की बोलियां बोलती है और जो शरीर-तात्विक (somatologically) दृष्टि से मध्यमाकृति और लम्बी नाक वाले हैं। इनमें एक समूह ऐसा है, जो इण्डो-यूरोपियन ज़बान नहीं बोलता और मध्यमाकृति और लम्बी नाक वाला है। फिर कुछ आबादी चौड़े मस्तक वाली (Brachycephots) और साधारण नाक वाली (Mesorrtin) है, जो ईरानी भाषा बोलती है। यह स्पष्ट है, यहां पर भाषा का जाति के साथ साम्य ढूंढ़ने की कोशिश नहीं की गई। इस इलाक़े में ख़ास तौर पर, जहां क़बीले वाले अपनी मातृ भाषा बदल डालते हैं। व ख़ी और सारीकोली क़बीलों की यही कैफ़ियत है। "वहां क़रीब-क़रीब हर सख़्श अपनी निजी ज़बान के अलावा साथ-साथ फ़ारसी भी बोलता है। स्वात, कूनर और पंजकोरा की वादियों में दर्द क़बीले के बहुत से लोग अपनी निजी बोली के अलावा पश्तो भी बोलते हैं।" (१)

ऊपर की बातों से हमने यह देखा कि हिन्दुकुश में, पामीर में और इन इलाकों के उस पार लम्बे तड़ङ्गे लोग (Dolichoid) पाये जाते हैं। पामीर में लम्बे तड़ङ्गे और लम्बी नाक वाले लोग कमो-बेश, उन क़बीलों में मिलेंगे, जिनका सम्बन्ध भारतीयों से है और जिनकी शारीरिक विशेषताओं के बारे में जोयस लिखता है—

ये लोग "बदामी रङ्ग के, मध्यमाकृति मस्तक वाले, लम्बे डील डौल के, झुकी हुई नाक (acquiline) वाले, काले उन्नतानत बाल वाले, काली आंखों वाले हैं। इस जाति को हम डेनीकर की सूची के अनुसार 'भारतीय-अफ़ग़ानी' (Indo-Afghans) कह सकते हैं। (२)

जायस एक ईरानी ज़बान बोलने वाली, चौड़े मस्तक और साधारण नाक वाली एक जाति के बारे में लिखता है—

"गोरी और गुलाबी वर्ण की जाति, बहुत चौड़े मस्तक वाली, साधारण क़द वालों से ऊंची, प्रमुख नाक वाली, जिसमें झुकी हुई और सीधी दोनों आकृति मिलेंगी, जिसके भूरे बाल और काली साधारण आंखें हैं। यही लापोज़े की 'होमो एलपाइन' जाति है।" (३)

यहां मुझे इस बात की कोई वजह नहीं दिखाई देती कि क्यों आमतौर पर इन फ़ारसी बोलने वाले लोगों को लम्बी नाक वाले कहा जाता है, जब कि जोयस के हिसाब से गलचा क़बीले में ६०.३ फ़ी सदी और १७.२ फ़ी सदी चपटी नाक वाले (Platyrrtin) हैं।

---

(1) Biddulpt—"Tribes of the HinduKush"

(2) Goyce—I. A. G. Bk 33. P. 468

(3) Ibid.

परिणाम

हमने अपनी छान-बीनों में यह बात मालूम की है कि अफ़ग़ान साधारण आकृति के मस्तक और शरीर वाले (Mesocephals) हैं और भारतीय सरहद के अफ़ग़ानों की जांच से वे लम्बे मस्तक वाले और साधारण मस्तक वाले और उंचाई में मामूली क़द से ऊंचे दिखाई दिये हैं। हमने यह भी देखा है कि हिन्दुकुश के कुछ निवासी लम्बे मस्तक वाले और मध्यमाकृति के लम्बी नाक वाले और लम्बे तड़ङ्गे हैं। स्वभावतः उन दोनों समूहों को एक साथ गिनने की प्रवृत्ति रही है, जिनमें कुछ मिलती जुलती विशेषताएं हैं।

पामीर के उत्तरी हिस्से में हमने ईरानी भाषा बोलने वाले एक ऐसे समूह को देखा है जो चौड़े मस्तक वाला और लम्बे क़द का है और कुछ लोगों ने उसकी शुमार लम्बी और पतली नाक वालों में की है; हालां कि हम उसकी शुमार साधारण नाक वालों में करेंगे। पामीर के पूरब में भी एक आबादी है, जो मध्यमाकृति की, लम्बी नाक वाली और मामूली क़द की है।

इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तान में एक ज़बरदस्त आबादी लम्बे मस्तक वालों की है। सामान्य तौर पर हिन्दुस्तानी लम्बे मस्तक लम्बी नाक और लम्बे मस्तक साधारण नाक के समूहों में बंटे हुए हैं। चपटी नाक वाले आमतौर पर दक्षिण में पाये जाते हैं। लम्बे मस्तक वाले मामूली क़द से लेकर ऊंचे क़द के होते हैं। मगर हमें किसी नतीजे पर पहुँचने से पहले बलूचिस्तान के मौजूदा क़बीले के बारे में छान-बीन करनी चाहिये। हम अपने अगले लेख में इन बलूची क़बीलों के बारे में ग़ौर करेंगे।

बसवेश्वर के बचन

मिट्टी का बर्तन अपना स्वरूप छोड़कर फिर मिट्टी नहीं बन सकता। मक्खन पिघलकर घी होने के पश्चात् फिर मक्खन नहीं बनता। सोना फिर लोहा नहीं होता। पानी में उत्पन्न होने वाला मोती फिर पानी नहीं होता। इसी तरह ईश्वर के सच्चे भक्त होने के बाद फिर मनुष्य कदापि विषयासक्त नहीं बनता।

क्या मैं कहूँ कि समुद्र बड़ा है ? वह तो भूमि पर आ जाता है। क्या मैं कहूँ कि पृथ्वी बड़ी है, वह शेषनाग के फणमणि पर रखी है। क्या नागराज सबसे बड़े हैं ? वह पार्वती की कनिष्ठका का छल्ला बने हैं। क्या उमा बड़ी हैं ? वह शिवजी की अर्धाङ्गिनी हैं। क्या परमपिता परमेश्वर का पद सबसे ऊँचा है ? किन्तु उन्होंने अपने भक्तों के मन की चोटी पर अपना घर बना लिया है।

तात्पर्य यह है कि पृथ्वी, शेषनाग, उमा और परमेश्वर इन सबसे भक्त ही श्रेष्ठ हैं, क्योंकि भक्तों के इशारे पर स्वयं परमात्मा ही नाचते हैं।

वैशाख-पूर्णिमा

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

कैसी सौभाग्यवती थी वह रात्रि! कैसा प्रकाशमान था वह चन्द्रमा, जो वैशाख की उस पूर्णिमा को उदय हुआ था।

उस वैशाख-पूर्णिमा को कपिलवस्तु और देवदह के रास्ते में स्थित एक उद्यान में—लुम्बिनी नामक उद्यान में—राजा शुद्धोदन की रानी महामाया देवी के गर्भ से एक बालक का जन्म हुआ था, जिसका नाम था सिद्धार्थ।

वैसी ही एक वैशाख-पूर्णिमा को सत्य-शान्ति की खोज में 'घर से बे-घर' हुए उस राजकुमार ने वर्तमान बुद्ध गया-मन्दिर के पश्चिम में स्थित बोधिवृक्ष के नीचे वह अलौकिक बोध प्राप्त किया था, जिसका नाम हुआ बुद्धत्व।

और वैसी ही एक और वैशाख-पूर्णिमा को अपने जीवन के पैंतालीस वर्षों की प्रत्येक घड़ी लोकोपकार में बिता, हज़ारों लाखों हृदयों में राग-द्वेष की जलती बत्ती बुझा, ज्ञान का दीपक जला, दो शाल वृक्षों की छाया के नीचे अपने पीत वस्त्रधारी शिष्यों की मण्डली में प्रकाशमान वह भुवन-प्रदीप सदा के लिए बुझ गया था।

वर्तमान कसया (कुशीनगर) के माथाकुंवर (मृतकुमार) में तथागत महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए थे।

उस वैशाख-पूर्णिमा की याद में, 'जिस दिन सिद्धार्थ का जन्म हुआ', उस वैशाख-पूर्णिमा की याद में, 'जिस दिन सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त किया' और उस वैशाख-पूर्णिमा की याद में, 'जिस दिन गौतम बुद्ध ने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया' संसार का एक तिहाई हिस्सा प्रति वर्ष एक उत्सव मनाता है—वैशाख-महोत्सव।

उस देश में, जिस में वह राजकुमार पैदा हुआ था, उस देश में, जिसमें उसने बुद्धत्व प्राप्त किया था, उस देश में, जिसमें उसने अपना धर्म-चक्र चलाया था उस देश में, जिसमें संसार की वह ज्योति सदा के लिए बुझ गई थी—उस देश में भले ही एक दिन की छुट्टी भी इस लिए न होती हो, जिस दिन उस देश के निवासी, उस महान् चरित्र का चिन्तन कर अपने चरित्र की कालिमा को कुछ हलका कर सकें, उस विशाल भारत के महान् पुरोहित का ध्यान कर अपने प्राणों में कुछ जीवन का संचार कर सकें; लेकिन सिंहल, स्याम, बर्मा, चीन, जापान, तिब्बत आदि देशों के लिए यह बुद्ध-दिन ही वह दिन है, जिस दिन वह अपने-अपने जातीय जीवन में कुछ नई शक्ति का संचार कर लेते हैं।

हम प्रसन्न हैं कि हमारा प्यारा वैशाख एक बार फिर आया—पूरे एक वर्ष के बाद—लेकिन फिर आया।

पिछली बार जब वह आया था, तब उसने हमें एक सन्देश दिया था। वह सन्देश था अपने-अपने जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का।

हमने उस महान् सन्देश को सुना, उस पर विचार भी किया और शायद उसे अपने जीवन में

उतारने का संकल्प भी; लेकिन प्रश्न है क्या हम उतार पाये ? क्या हम अपने जीवन में कुछ कहने सुनने योग्य परिवर्तन ला सके ? हां कुछ-कुछ, लेकिन उस स्वभाव-दोष से—उस मानसिक आलस्य के कारण, जो हम निकम्मों का स्वभाव बन गया है - हम फिर प्रवाह में पड़ कर प्रवाह में बह गए।

आज फिर यह आया है—वह हमारा प्रिय महोत्सव वैशाख, और लाया है अपने साथ अपना जीवन-दायिनी संदेश।

हम भारत वासियों—विशेष कर हिन्दुओं—का प्रत्येक दिन एक धार्मिक त्योहार का दिन है। बड़े-बड़े त्योहारों की भी कमी नहीं। लेकिन मालूम होता है; जैसे प्रत्येक त्योहार सो गया है—मर गया है।

हमारी विजयदशमी हमारे साम्राज्यवाद की मरी हुई याद मात्र है। हमारी होली ? उच्छृङ्खलता को स्वतन्त्रता समझ बैठने की ग़लत प्रथा है। हमारी दीवाली ? घर-फूंक तमाशा देखने का खेल है। हमारे अनेकों व्रत ? परम्परा गत रूढ़ियों को संयम समझे रहने का भ्रम हैं।

और हमारे मुस्लिम भाइयों की मुहर्रम ? भारत के जातीय जीवन के चलते अपने वर्तमान रूप में शायद कभी न पनप सकने वाला पौधा है।

इतने त्योहारों के मरते जीते रहने पर भी हमें वैशाख-पूर्णिमा को मनाने की आवश्यकता है। 'मरते जीते' इसलिए क्योंकि जब कभी दो त्योहार एक साथ इकट्ठे हो जाते हैं, तो वह रक्ताक्षरों में अपनी जीवनी-शक्ति का प्रमाण पेश कर देते हैं। यदि वैशाख-पूर्णिमा भी इन्हीं 'मरते जीते' त्योहारों में एक और त्योहार की वृद्धि मात्र बनना चाहती है, तो हमें उसकी आवश्यकता नहीं। फिर हमें उसकी आवश्यकता क्यों है ? किस लिए है ?

इसीलिए कि उस दिन हम अपने बुद्ध को याद करना चाहते हैं। इसीलिए कि उस दिन हम अपने बुद्ध की शिक्षाओं का स्मरण करना चाहते हैं। इसीलिए कि उस दिन हम अपनी संस्कृति के प्रथम-प्रचारकों, भिक्षुओं के संघ का मानसिक दर्शन करना चाहते हैं।

और ! और इसलिए कि उस दिन हम अपने बुद्ध का नाम लेने वाले देश विदेश में स्थित करोड़ों नर-नारियों के साथ एकता के सूत्र में बंध जाना चाहते हैं।

और ! और इसलिए कि अपने एक भूले हुए जातीय त्योहार को फिर अपनाना चाहते हैं; लेकिन उससे अधिक इसलिए ताकि हम कहीं इकट्ठे बैठकर सारे भेद-भावों को छोड़ कर वैशाख-पूर्णिमा की अमरवाणी को सुन सकें।

क्या हम इस वर्ष कहीं इकट्ठे होंगे और श्रद्धा पूर्वक कहेंगे :—

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि
संघं सरणं गच्छामि
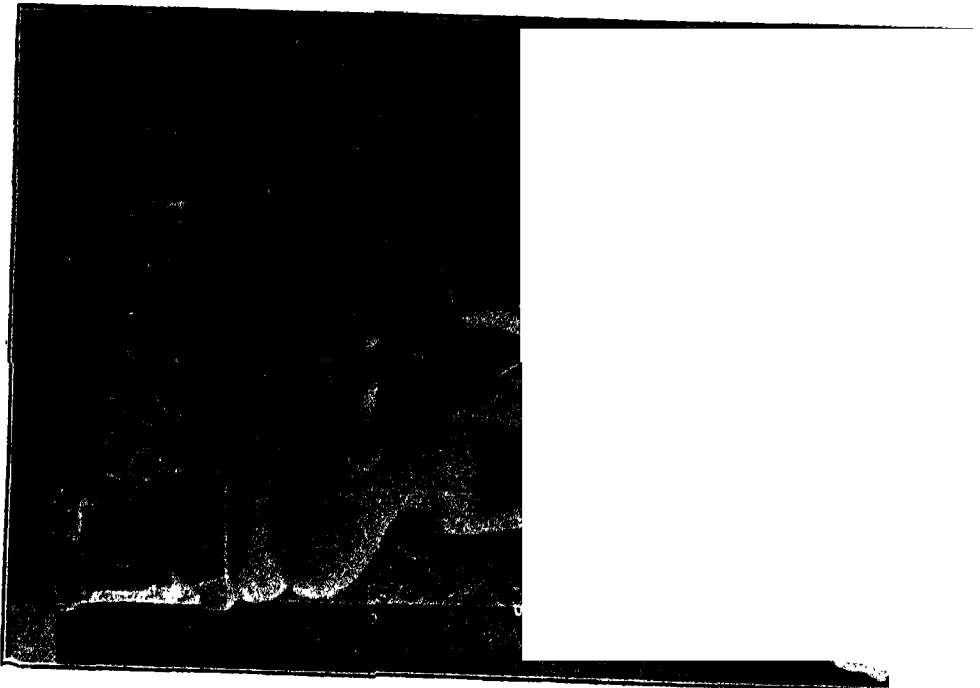
कला की दृष्टि से भगवान बुद्ध की यह प्रतिमा संसार भर में प्रसिद्ध है यह गुप्त काल की है और सारनाथ के म्यूज़िअम में है।
म—बोधि सोसायटी के सौजन्य से]
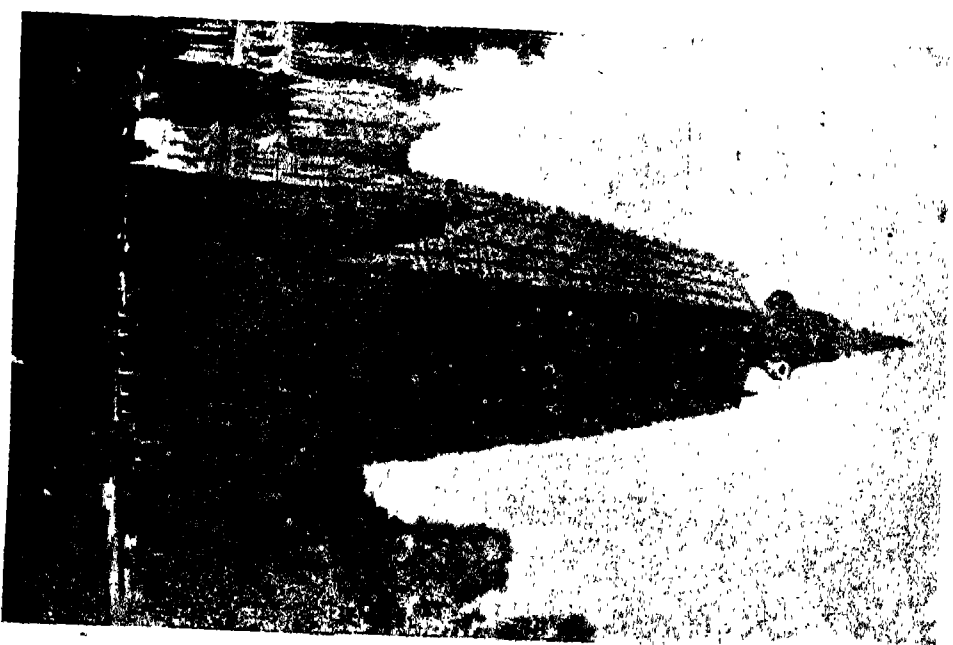
बौद्ध मन्दिर—सारनाथ
महाबोधि सोसायटी के सौजन्य से]

—बुद्ध गया का मन्दिर—
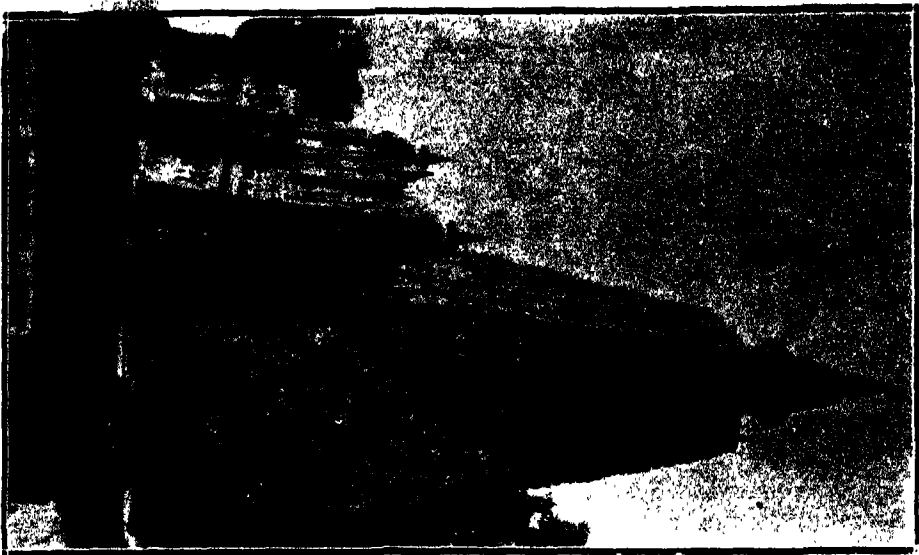
महाबोधि सोसायटी के सौजन्य से]

वर्तमान कसया (कुशी नगर) के माथा कुंवर (मृत कुमार) में तथागत महा परिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे।

महाबोधि सोसायटी के सौजन्य से]

मातृवाणी

पूजनीया माताजी, पाण्डुचेरी

श्री अरविंदाश्रम की प्रातः वंदनीया श्री माता जी की कुछ पवित्र वाणी "Words of the Mother" नाम से अङ्गरेजी में छप चुकी है। इस वाणी के दो भाग हैं। द्वितीय भाग का हिंदी रूपांतर "माता जी से वार्त्तालाप" नाम से "कल्याण" और "वैदिक-धर्म" में धारावाहिक रूप से छप रहा है। हिंदी-भाषा-भाषियों का यह बड़ा सौभाग्य है कि अब इसके प्रथम भाग का रूपांतर करने की अनुमति श्री माता जी ने दे दी है। अतः हम इस अङ्क से आरंभ कर श्री माता जी की कल्याणकारी वाणी के कुछ अंश को "विश्ववाणी" के पाठकों की भेंट कर सकेंगे। संसार वर्तमान असामंजस्यपूर्ण वातावरण से आजिज़ आ गया है और इसके पथ-प्रदर्शक एक ऐसी सामंजस्य-मय मानव-एकता की खोज में हैं जो संसार से आसुरी भावों को दूर करने और इसके विकास में तीव्रता लाने में सहायक हों। हम आशा करते हैं कि श्री माता जी की इस वाणी द्वारा सभी सद्‌पाठकों का कल्याण होगा—अनुवादक

जिस सार्वत्रिक लक्ष्य को हमें प्राप्त करना है वह है एक प्रगतिशील विश्वव्यापी सामंजस्य का आविर्भाव।

जहां तक पार्थिव भूमिका से संबंध है वहां तक इस लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन है, सब किसी में उसके अन्दर रहने वाले भगवान् की, जो सब किसी के अन्दर एक ही सद्वस्तु है, जागृति द्वारा सब किसी का अपने अन्दर रहने वाले भगवान् की यहां अभिव्यक्ति करने द्वारा,—मानव-एकता की सिद्धि।

दूसरे शब्दों में—ईश्वर के साम्राज्य की, जो हम सभी के अन्दर है, यहाँ स्थापना करके एकता की सृष्टि करना।

तो, जिस अत्यन्त उपयोगी काम को करना है वह है :

(१) व्यक्तिगत रूप से, प्रत्येक व्यक्ति उसके अन्दर जो भगवान् की उपस्थिति है उससे सचेतन हो और उसके साथ अपने को तादात्म्य करे।

(२) सत्ता की वे अवस्थाएं जो अभी तक मनुष्य के अन्दर कभी भी जागृति नहीं हुई हैं उन्हें व्यक्ति भावापन्न करे और इस कार्य द्वारा पृथ्वी का, विश्व शक्ति के एक या अधिक और अंशों के साथ, जो अभी तक उसके लिये बन्द पड़े हैं, संबन्ध स्थापित करे।

(३) संसार को फिर से उस सनातन शब्द को एक नये रूप में, जो उसकी वर्त्तमान मनोवृत्ति के उपयुक्त हो, सुनावे।

यह जो शब्द होगा उसके अन्दर समस्त मानव-ज्ञान का समन्वय होगा।

(४) सामूहिक रूप से, किसी अनुकूल स्थान में एक आदर्श समाज की स्थापना की जावे जहां यह नयी जाति, ईश्वर के पुत्रों की जाति, फले फूले।

× × ×

दो प्रक्रियाओं द्वारा पार्थिव भूमिका रूपांतरित और सामंजस्य पूर्ण हो सकती है, और ये दोनों

प्रक्रियाएं यद्यपि परस्पर विरोधी दिखाई देती हैं, लेकिन इन्हें संयुक्त हो जाना होगा,—ये एक दूसरे के लिये कार्य करेंगी और एक दूसरे के लिये पूरक होंगी।

(१) व्यक्तिगत रूपांतर, अर्थात् एक आंतरिक विकास जिसके द्वारा भागवत उपस्थिति के साथ एकता हो जावे।

(२) सामाजिक रूपांतर, अर्थात् एक ऐसी परिस्थिति का निर्माण करना जो व्यक्ति के प्रस्फुटन और वृद्धि के लिये अनुकूल हो।

चूंकि परिस्थिति का व्यक्ति पर असर होता है और दूसरी ओर परिस्थिति का मूल्य व्यक्ति पर निर्भर करता है इसलिये व्यक्तिगत रूपांतर और सामाजिक रूपांतर का कार्य साथ-साथ चलना चाहिये। परन्तु यह काम परिश्रम के बंटवारे से ही हो सकेगा और इसके लिये एक संघ की प्रतिष्ठा करनी होगी, जिसे यदि संभव हो तो कई श्रेणियों में बांट दिया जावे।

संघ के सदस्यों का कार्य त्रिविध होगा :—

(१) जिस आदर्श को प्राप्त करना है उसे अपने आप में सिद्ध करना। उस अचिन्त्य की उसके समस्त धर्मों, गुणों और विशेषणों को लिये हुए जो पहली अभिव्यक्ति होगी उसका एक सर्वाङ्ग संपूर्ण पार्थिव प्रतिनिधि बनना।

(२) इस आदर्श का शब्दों द्वारा, और सबसे अधिक अपने सजीव उदाहरण द्वारा उपदेश देना, जिससे कि वे लोग जो इसको यथाक्रम अपने आप में सिद्ध करने के लिये तथा इस मुक्ति का संदेशवाहक बनने के लिये तैयार हैं, उन्हें खोज निकाला जावे।

(३) एक आदर्श समाज की स्थापना करना या जो पहले से मौजूद हैं उनका पुनर्संगठन करना।

× × ×

प्रत्येक व्यक्ति को भी निम्नलिखित द्विविध काम साथ करना होगा, जिसकी प्रत्येक दिशा एक दूसरे की सहायता करेगी तथा एक दूसरे को पूर्ण बनावेगी:

(१) आंतरिक विकास करना, अर्थात् भागवत प्रकाश के साथ प्रगतिशील एकता प्राप्त करना,—यही एकमात्र अवस्था है जिसके द्वारा मनुष्य सदा विश्व जीवन की महान् धारा के साथ एक स्वर में मिला हुआ रह सकता है।

(२) कोई बाध्य कर्म करना, जिसे हरेक को अपनी क्षमताओं और तरजीहों के अनुसार चुन लेना है। यह जो विश्व कन्सर्ट बज रहा है इसमें उसका जो स्थान है, जिसकी केवल वही पूर्ति कर सकता है, उसको उसे ढूंढ़ निकालना होगा और फिर अपने आपको उस पर न्यौछावर कर देना होगा, और इस बात को भूल नहीं जाना होगा कि इस पार्थिव भूमिका पर यह जो सर्वसम्मिलित गत बज रही है उसके संगठन में वह केवल एक तोड़ा ही बजाता है और फिर भी जिस टुकड़े को वह बजाता है वह इस गत की जो समग्र समस्वरता है उसके लिये अनिवार्य है, और वह टुकड़ा जितना शुद्ध होगा उसी पर उसका मूल्य निर्भर करेगा।

अनुवादक—श्री मदनगोपाल गाड़ोदिया

नरगिस का पुष्प-हार

डाक्टर एन० एस० वर्धन, एम० ए०, डी० फ़िल

जापानी कहते हैं यदि तुमने निक्को के मन्दिर नहीं देखे, तो तुमने कुछ भी नहीं देखा। मैंने निक्को के मन्दिर देखे हैं और मैं यह मानता हूं कि वे भव्य और आलीशान हैं, मगर उन्हें संसार की निर्माण-कला की इति श्री कहना, केवल जापानियों को सन्तुष्ट कर सकता है; दुनिया को उससे तोष नहीं हो सकता।

मैं इसका दावा नहीं करता कि मैंने दुनिया की निर्माण-कला के सभी उत्कृष्ट नमूने देखे हैं। हां यूरोप, एशिया और अफ़रीका की अपनी यात्राओं के दौरान में मैंने अनेक सुन्दर इमारतें देखी हैं। मिस्री फेरोओं के पिरेमिड, बाबुली सप्त-स्तूप, यूनानी रङ्गशाला, बेहिस्तून के ईरानी शिलालेख, चीन की बड़ी दीवार और अजन्ता की गुफ़ाएं सबको मेरे नेत्रों ने अपने स्मृति-पटल पर अंकित और संचित किया है। बरबस मेरा मस्तक उन ज्ञात और अज्ञात कलाकारों और शिल्पियों के चरणों पर झुका है, जिनकी महान कृतियों ने आधुनिक को पुरातन से जोड़ कर हमें सान्त्वना दी है कि व्यक्ति क्षणभंगुर हो सकता है, मानव-जीवन नहीं। वह अनन्त है और हमारी बहु-मूल्य थाती है।

मैं न शिल्पी हूं और न कलाकार और न तुलना का ही अधिकार रखता हूं। किन्तु एक साधारण यात्री की हैसियत से यह कह सकता हूं कि आगरे के ताज महल को देखकर मुझ पर जो प्रभाव पड़ा, वह सचमुच अनिर्वचनीय है। कलाकार की कल्पना और शिल्पियों के चातुर्य्य का इतना परिपूर्ण नमूना मेरी नज़रों से नहीं गुज़रा। कितने ही वर्ष बीत चुके हैं। दक्षिणी सुरभि चैत्र के मधुमास को लाज-विह्वल कर रही थी। आगरे की तङ्ग गलियों को पार कर उजाड़, सुनसान सड़क का चक्कर काटता, अर्ध निमीलित नेत्रों से मैं चला जा रहा था। जिस गाड़ी पर मैं बैठा था, उसे द्वापर युग के रथों का दौहित्र ही कहना चाहिये। उसका घोड़ा झटके के साथ रुका और मैंने अपने आपको एक आलीशान लाल फाटक के सामने पाया। सहसा उस गर्वोन्नत मेहराब के फ्रेम में जड़ी हुई धवल सौन्दर्य की तसवीर मुझे दिखाई दी। चमचम सङ्गमरमर का ऐश्वर्य निकेतन, जिसकी मीनारें मेघ-हीन नीलाकाश के अन्तर में मानों चुभ जाना चाहती हों।

ताज—महलों का मुकुट—फाटक से बहुत दूर एक भीमकाय चबूतरे पर स्थिर और निश्चल। दृष्टिपथ के सामने मनोरम उद्यान, जल-विभोर फ़व्वारे और शस्य-श्यामला दूब का क़ालीन। ताज के दोनों ओर चिर प्रहरियों की तरह लाल मसजिद और लाल महल। मुमताज के चरण छूती हुई कालिन्दी मानो स्वर-विह्वल होकर कहती है—"राधिका के वियोग को भूल कर वृन्दावन से मैं यहां आई थी मुमताज, तुम्हें इसका भी ध्यान न रहा!"

मेरी आत्म-विस्मृति को भङ्ग करता हुआ गाइड बोल उठा—'हुज़ूर इसके बनाने में सत्रह बरस और बीस हज़ार मज़दूर लगे थे।' गणित के अङ्कों में यह प्रेम का तख़मीना! सुनकर तबियत में मतली सी होने

लगी। मगर गाइड का क्या अपराध ? 'बजट' के दुकूलों के बीच से जिनकी जीवन-सरिता बहती है, ऐसे विलायत के साहब गाइड से यही पहला प्रश्न करते हैं।

सङ्गमरमर की चादर ताने शाहजहां अपनी राज-प्रेयसि के पार्श्व में, कालों की सीमा को तोड़कर, मानों एकीकृत हो चुका हो।

ताज की पूरी इमारत इतनी निर्दोष उसके विविध अङ्गों का संयोग इतना उत्कृष्ट, और सम्पूर्ण प्रभाव इतना ललित है कि जब तक कोई चबूतरे पर जाकर न खड़ा हो जाये, तब तक ताज की भव्यता की कल्पना तक नहीं कर सकता। ताज की इमारत स्वयं सौन्दर्य की राशि है। कितना महान कलाकार रहा होगा, जिसने ताज की कल्पना की थी। उसके पार्श्वों में कितनी एकता और आकर्षण है। निर्जीव पाषाण मानों हज़ार जिह्वाओं से प्रेम के अनन्त सङ्गीत की तान छेड़ना चाहते हैं।

जिस परिवेष्टन में प्रेम और सौन्दर्य का यह अनुपम नगीना जड़ा हुआ है, ताज का सारा वातावरण, कितना अनुकूल और कितना सामञ्जस्य पैदा करता हुआ है। जितना सुन्दर चित्र है, उतना ही भव्य फ्रेम है। आभास होने लगता है मानों सारा दृश्य कल्पना के कैनवास पर खिंचा हुआ सुन्दरता का एक दैवी चित्र है। दर्शक आश्चर्य-चकित होकर एकटक निहारता रहता है और सौन्दर्य की इस अपार राशि को देख सकने के लिये अपने को सौभाग्यवान समझता है। अपनी स्मृति में ताज के उस दृश्य की अमिट तसवीर लेकर वह वहां से बिदा होता है।

रौज़े का मेहराबनुमा प्रवेश-द्वार काले अरबी पारिजातों का गजरा पहने खड़ा है। सफ़ेद रूपच्छटा पर यह काले रङ्ग की माल कितनी सुन्दर मालूम होती है ! सङ्गमरमर की जाफ़रियों से छन-छन कर दिनकर की रजत-रश्मियां धूप-छांह खेलती हैं। हलके-हलके प्रकाश की क्षीण रेखाओं से मृत्यु-सदन आलोकित होता रहता है। हाल के बीच में सङ्गमरमर की जालीदार कनात खड़ी है, मानो किसी महान यात्रा के पड़ाव पर सम्राज्ञी परदे में शृङ्गार कर रही हो। सङ्गमरमर की उस जाफ़री में बहुमूल्य नग जड़े हुए हैं—सूर्यकान्त और सङ्ग-सुलेमानी, अक़ीक़ और पुष्पराग, नीलम और चन्द्रकान्त तरह-तरह के फूलों और बेल-बूटों की शक्ल में। इसी के भीतर शाहजहां और उसकी अर्धाङ्गिनी अनन्त निद्रा में शयन कर रहे हैं।

× × ×

पूर्णिमा की चांदनी में मध्यरात्रि के समय मैं फिर ताज महल पहुंचा। प्रकृति ज्योत्स्ना का परिधान पहने हुए थी। दक्षिणी समीर अचला की रूप-राशि पर गन्धनाल बिखेर रहा था। आम के सौरभ पर बैठी हुई कोयल इसराज के तार सम्हाल रही थी। ताज महल के दक्षिण पार्श्व में सूखे से धूमिल रक्त-वर्ण के उस लाल महल के आंगन में खड़ा होकर मैं निर्निमेश नयनों से ताज की शोभा निहारने लगा। उद्यान के वृक्ष घने अन्धकार से पुञ्जीभूत होकर शाखाएं फैलाए मानों उस महल से मूक स्वर में चिर सुख-दुख की कहानी कहने में व्यस्त थे। युग बीत गया उन घटनाओं को देखे हुये, मगर कितनी स्पष्ट हैं वे स्मृतियां उनके हृदय पर अंकित। बरगद का वह पेड़ तब निरा अबोध शिशु था। ज़ेबुन्निसा ने लाड़ में जब उसकी कोपलें तोड़ी थीं, तो शाहजहां ने कितने रोष में उसे डांट कर हसरत भरी निगाहों से उस बरगद के शिशु-बदन पर अपने शाही हाथ फेरे थे। केवल उसी एक स्मृति को लिये हुये वह आज अपने पोषक की अनन्त शय्या की ओर निहारता रहता है। दिल उसका खोखला हो गया है, तो क्या हुआ ? वह अपने लड़खड़ाते पैरों पर खड़ा है, मानो क़यामत के दिन अंगड़ाई तोड़कर उठते हुए उस राज दम्पति से कहेगा—"जहांपनाह ! मैं तुम्हारा चिर अनुचर हूं।" कुछ वृक्ष अपनी शिथिल शाखें यमुना की ओर बढ़ाकर मानों मिन्नतें कर रहे हैं—"बहिन, ठहरो ! तुम तो दिल्ली से आ रही हो। बहादुर शाह के बाद तुमने दीवाने ख़ास की कोई बात नहीं बताई। क्यों क्या

लाल क़िले की दीवारें तुम्हें देख कर अब मुंह फेर लेती हैं !" पर यमुना अनमनी होकर बहती चलती है !

ताज के पूर्वी पार्श्व में लाल मसजिद खड़ी हुई है। धवल सङ्गमरमर से टकरा कर ज्योत्स्ना मसजिद के गुलाबी बदन पर सफ़ेद चादर ढंकने का निरर्थक प्रयत्न कर रही थी। ताज के पीछे से शहर की ओर यमुना इस तरह बहती है, मानो मुमताज के परिधान का रुपहला गोटा सिलन तोड़कर बिखर गया हो। ताज से तीन मील दूर काले धब्बे की तरह क़िला और जहांगीरी महल खड़े हुए थे। बाहर के लाल पत्थर की चहारदीवारी अंधेरे में स्पष्ट नहीं दिखाई देती, किन्तु क़िले के भीतर से सङ्गमरमर की मोती मसजिद साफ़ चमक रही थी।

× × ×

रात्रि की निस्तब्धता में इतिहास की टूटी कड़ियों पर रङ्ग भरते हुए मैंने कितनी रात बितादी इसका मुझे भान न रहा। शीतल चन्द्र किरणें, मन्द-मन्द वायु, उज्वल और धवल ताज महल—सारा दृश्य और वातावरण इतना अजीबो-ग़रीब था कि मेरे प्राण अटक कर रह गये। सहसा उस सुनसान महल को तरङ्गित करती हुई इसराज की मधुर ध्वनि मेरे कानों में गूंज गई। सङ्गीत चिर परिचित-सा मालूम हुआ। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मैंने यह अनुभव किया कि उसी सुनसान महल के भीतर से संगीत की यह तरङ्ग-ध्वनि उठ रही थी। मैं कांपते हुये हृदय से कान लगाकर सुनने लगा।

सहसा इसराज बन्द हो गया और ईरानी नृत्य के पदचाप सुनाई दिये। इसराज के तार फिर अपनी कम्पन से वायु को मथकर उन्मत्त करने लगे। नृत्य की झङ्कार भी गति पकड़ने लगी। मैं मदहोश होकर घुंघरुओं के स्वर में झूमने लगा। मेरे पैर बरबस नृत्य का ताल-स्वर भरने लगे। इसके बाद एकाएक सन्नाटा छा गया। मैं हैरान होकर सोचने लगा कि इसराज के तारों पर इतना जीवित उन्मत्त कम्पन किन उंगलियों ने पैदा किया ? यह नृत्य और गान आख़िर हो कहां रहा है ? मैं यह सब सोच ही रहा था कि मेरे कानों में दमिश्क के एक अरबी प्रेम-गीत की पंक्तियां पड़ीं। क्या अपनी पिछली यात्रा में दमिश्क में मैंने यही प्रेम-गीत नहीं सुना ? किन्तु यहां उस गीत पर कलाकार के कोमल स्वरों ने मधुरता का मुलम्मा फेर दिया था। स-र-ग-म के मध्यम स्वर पर अलाप दौड़ रहा था। 'गाम्बूस' के केवल तीन तारों पर उंगलियां फिर रही थीं। मगर मेरा हृदय गाम्बूस की कम्पन के साथ तड़पता और चीत्कार करता, रात्रि की निस्तब्धता को चीरता, चाँदनी और अंधकार में मंडराता, पेड़ों की शाखों पर नाचता, यमुना की तरंगों में झूमता, वातावरण को कम्पित करता अनन्त में व्याप्त हो जाना चाहता था। ऐसा लगता था मानों बसन्त के प्रभात में पपीहा अपनी सारी करुणा-ध्वनि बटोर कर प्रियतम के साथ एकत्व लाभ करना चाहता हो। गायक के स्वरों में इतना जादू था कि मेरी आंखों पर विस्मृति का परदा पड़ गया। ताज, आगरे का शहर, मसजिद और यमुना, सारी चीज़ें आंखों के सामने से धूमिल होकर मिट गईं। मुझे ऐसा लगा कि दमिश्क की तङ्ग गली से हो कर मैं ख़लीफ़ा मुआविआ के भग्न प्रासाद की ओर चला जा रहा हूं। नीलाकाश में चमचमाता हुआ पूनों का चांद दोनों हाथों से ज्योत्स्ना की निधि बिखेर रहा था। दूर पहाड़ी के नीचे मकानों की क़तार पर पहाड़ी की धूमिल छाया अलसायी हुई पड़ी थी। उसी छाया में मैंने देखा एक आदमी तिनतारा अरब गाम्बूस की झङ्कार पर स्वर भर रहा था। गायक का स्वर क्या था—मानों ज़िन्दगी की अन्तिम साध मिट रही हो, धीमे मधुर स्वर में पृथ्वी की सारी रसना एकत्रित हो रही हो। तन्मय होकर मैं वह मस्त सङ्गीत सुनता रहा, और जाने कब तक सुनता रहा।

पाठक मुझे मूर्ख और पागल कहेंगे। मगर उन्हें यह न भूलना चाहिये कि मैं कहां था, मैं क्या सोच रहा था, मैंने क्या देखा और क्या सुना ! जो कुछ

मैंने देखा और सुना उसकी वास्तविक तसवीर उतार सकना मेरे लिये बिलकुल असम्भव है।

जब तक वे व्याकुल, कांपते हुए संगीत-स्वर रजनी के सौन्दर्य पर रीझे हुए गूंजते रहे, मैं मौन हो कर एकटक सुनता रहा। सहसा सङ्गीत फिर थम गया। स्थिर चित्त होकर जब मैंने सोचा, तो मालूम हुआ सङ्गीत की ध्वनि उसी इमारत की ऊपर की मंज़िल से आ रही थी। मन में भावना उठी— गायक से साक्षात्कार क्यों न किया जाय? कई चक्करदार सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ, प्रकाश और अन्धकार से गुज़रता मैं ऊपर की मंज़िल के लिये राह बनाने लगा। इसराज के तार फिर झनझना उठे और शब्दों को ही लक्ष्य कर के मैं रास्ता पाने लगा। एक अधखुली खिड़की की दरार से प्रकाश की पतली रेखा छन छन कर आ रही थी। सीढ़ियां छत पर एक छोटे से बरामदे में ख़त्म होती थीं। बरामदे के बाद थी बड़ी सी छत।

चांदनी की स्निग्ध किरणें छत को धो रही थीं। तीस फिट लम्बे चौड़े सीमेन्ट के फ़र्श पर मख़मली क़ालीन बिछा हुआ था। चार व्यक्ति उस क़ालीन पर बैठे थे और सब से पहले जिस पर मेरी निगाह पड़ी, वह एक वृद्ध था। चौड़ी छाती, उन्नत भाल, लम्बी झुकी हुई नाक, उभरी हुई गाल की हड्डियां, डाढ़ी और भौंहें दोनों सफ़ेद। वृद्ध आंखें मूंदे हुए ध्यान-मग्न हो इसराज के तारों पर उंगलियां फेर रहा था। वृद्ध के सामने एक ज़री गाव तकिये के सहारे एक सुन्दरी और उसके पीछे दो कमसिन लड़कियां बैठी हुई थीं। सुन्दरी होगी लगभग बीस वर्ष की, चमकते हुए सोने के रङ्ग की, काली घनी केश राशि, आंखें बादाम जैसी, द्रवित और स्निग्ध, घुंघराले काले लच्छे केशों पर लटकते हुए, नाक पतली लेकिन सीधी, मदन की प्रत्यंचा जैसे गुलाबी ओठ, मोतियों के से दांत, गोल ठुड्डी और लम्बा चेहरा। हाथ, पैर और कान छोटे किन्तु अत्यन्त सुडौल और भरे हुए। सुन्दरी गहरे लाल रेशम की कुरती, सफ़ेद सैटिन की जाकेट, सुनहला कामदार रत्न-जटित, सर से घुमट किया हुआ हलके गुलाबी रङ्ग का सुनहले गोटे से टँका और सलमा सितारों से भरा दुपट्टा। सुन्दरी अपने एक हाथ में लापरवाही के साथ नरगिस के फूलों का गुच्छा पकड़े हुये थी। ऐसा मालूम होता था कि वह संगीत में डूबी हुई है। चाँद की किरनों में सुन्दरी का चेहरा इतना आकर्षक मालूम होता था कि मैं लोक-व्यवहार भूल कर एक टक उसे देखता रहा। दोनों सहेलियां भी ज़री और रेशमी कपड़े पहने हुए थीं। चारों में से कोई मेरी उपस्थिति को अनुभव न कर पाया।

× × ×

मैं मंत्र-मुग्ध हो कर चुपचाप वहां खड़ा रहा। वृद्ध की पटु उङ्गलियों के स्पर्श मात्र से इसराज पागल हो उठता था। मादक प्रेम सङ्गीत, कमनीय लास्य और नृत्य वातावरण में जादू का समां बांध रहे थे। ऐसा लगता था मानों निराश हृदय निश्वास भर रहे हों।

सहसा मजलिस का गाना रुक गया और सब के सब मुंडेर के पास आकर नीचे बहती हुई कालिन्दी के उस पर तुषार का परिधान पहने आगरे की सुप्त नगरी की ओर ध्यान से देखने लगे। मैं भी सहमा हुआ सा मुंडेर के पास पहुंचा। जो कुछ देखा मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मिटते हुए कुहरे से स्पष्ट होता हुआ सिर्फ़ एक मेहराब वाला सङ्गमरमर का एक पुल ताज से फैलता हुआ जमना के दूसरे किनारे पर आकर ठहर गया। वहां हूबहू एक दूसरा ताज महल स्पष्ट आकार में चमकने लगा। उतना ही धवल, उतना ही सुन्दर, उतना ही कला-पूर्ण मानों ताज की साकार छाया खड़ी हो। पुल का रास्ता, छत, मेहराब, खिड़कियां सब धवल सङ्गमरमर की बनी हुई थीं। वह सारा दृश्य क्या कभी आंखों से भुलाया जा सकता है? पुल क्या था मानों सङ्गमरमर का धनुष एक ताज को दूसरे ताज से जोड़ रहा था।

मैं अतृप्त होकर उस दृश्य के पुट के पुट अपनी स्मृति में भर रहा था कि कालिन्दी के जल से बना

कुहरा उठकर उस सम्पूर्ण वातावरण और आकाश पर छाने लगा। आगरे का शहर उस पार का ताज महल, पुल, नदी, और दूर क्षितिज सब के सब उस कुहरे के बुर्क़े में अदृश्य हो गये। मैंने आकाश की ओर देखा, तो पूर्णेन्दु पश्चिम में क्षितिज के आलिङ्गन में आबद्ध दिखाई दे रहे थे। लुप्त होती हुई चांदनी नीली पड़ रही थी और ज्योत्स्ना बिदाई के वक्त अधिक एकाग्रता से घनीभूत हो रही थी।

मैंने मुड़कर सुन्दरी और उसके साथियों की ओर देखा, मगर वहां उनकी गन्ध तक न थी। बिना किसी आवाज़ के वे सब के सब मानों हवा में बिलीन हो गये थे। वह मखमली क़ालीन, रेशमी चादर ज़री गाव तकिया, इसराज, किसी चीज़ की परछाईं तक न बची थी। उस सारी मजलिस के स्मृति स्वरूप रह गया था केवल सदा सुवासित वह नरगिस का पुष्पहार। मैंने एक ठण्ढी आह भर कर धीरे से उसे उठा लिया।

× × ×

एक सर्द हवा के झोंके ने मुझे चैतन्य कर दिया। मैंने आगरे की ओर दृष्टि दौड़ाई। रेलवे के इञ्जनों और कारख़ानों की चिमनियों का धुंआ कुण्डलीकार उठ कर दक्षिण दिशा में छा रहा था। दूर क्षितिज में पहाड़ियों की एक क़तार थकी माँदी पड़ी थी। मैं हतप्रभ होकर सोचने लगा वह दूसरा ताज, वह सङ्गमरमर का पुल क्या केवल मेरी कल्पना और भ्रम था? फिर वह रूपवती शहज़ादी, वह बूढ़ा गायक क्या वह भी स्वप्न था? वे नवयौवना सहेलियां झूम-झूम कर लास्य करती हुईं, क्या वह भी भ्रम था? नहीं, बिलकुल असम्भव! मैं उन सब के चेहरों की राई राई बनावट दोहरा सकता हूं। बूढ़ा गायक, कितना सुरीला उसका गाना—कितना स्वर ताल से बंधा हुआ, कितना स्पष्ट और कितना सत्य था? यह सब मेरे दिमाग़ की उपज थी? असम्भव! असम्भव! यदि वह सब कल्पना थी, किन्तु यह नरगिस का पुष्पहार? इसकी गन्ध, इसकी पंखुड़ियां, इसकी मादकता—सब कितना सजीव है? मैं इसे हाथों से छू रहा हूं। यदि यह सपना नहीं है, तो जिस लावण्यमयी ने इसे अलसाये हाथों में उलझा रखा था, वह कैसे सपना हो सकती है?

उषा ने कुंकुम का थाल धीरे से बिखेर दिया। प्रभा ने हंसकर उसके कपोलों पर चुम्बन छाप लगाई। सूर्य ने कनखियों से उनकी यह प्रेम-लीला देखी। आम के सौरभ पर बैठी हुई कोयल हूक उठी। नीचे बाग़ की सफ़ाई और इक्का दुक्का दर्शक की राह रस्म शुरू हो गई। मैं निश्चेष्ट और थका हुआ भारी पैरों से सीढ़ियां तय करता नीचे आया। दूर खड़े हुए एक बूढ़े ख़बरगीर के पास जाकर मैंने रात के गाने की बात पूछी। बूढ़े ने अवज्ञा से टाल दिया। पर जब मैंने सुन्दरी की बात कही बूढ़ा लड़खड़ा गया, उसकी लाठी हाथ से छूट कर गिर पड़ी। वह कलेजा थाम कर बैठ गया। जब सम्हल कर उठा, तो अस्पष्ट स्वर में शहज़ादी! शहज़ादी! कहता हुआ एक ओर चला गया। मैं उससे अधिक कुछ न सुन सका।

उस पूर्णिमा की रजनी की बात मैं किससे पूछूं? लोग मुझे पागल समझेंगे। मुझे इसकी भी परवाह नहीं लोग मुझे पागल कह लेते; किन्तु मैं यह नहीं चाहता कि कोई शहज़ादी का मज़ाक़ उड़ाये। वह सदा सुवासित नरगिस का पुष्पहार अब भी यत्न पूर्वक मेरे कमरे में चायना के फूलदान पर पड़ा हुआ है।

गुरुदेव

आचार्य गुरुदयाल मल्लिक, शान्तिनिकेतन

सूर्य अस्त हो चुका था और मैं अपनी सैर से वापस कुटिया को आ रहा था कि एकायक मेरे मन में यह ख्याल आया कि "उत्तरायण" की तरफ़ से होता चलूं। यदि गुरुदेव बरामदे में बैठे होंगे, तो दर्शन हो जायेंगे। यदपि ऐसा होना सम्भव नहीं था, क्योंकि इधर कई दिनों से उनकी हालत अच्छी न थी और कोई उनसे इसीलिये मिलने न जाता था। जब मैं "उत्तरायण" के पास पहुँचा, तो काफ़ी अंधेरा हो चुका था। आगे बढ़ते-बढ़ते जब बरामदे के नज़दीक पहुँचा, तब कोई बैठा है ऐसा लगा। बरामदे पर चढ़ते-चढ़ते मालूम हो गया कि गुरुदेव बैठे हुए हैं। गुरुदेव एक आराम कुर्सी पर आंखें बन्द किये हुए ध्यान में बैठे थे। मैं चुपचाप उनके चरणों के पास बैठ गया। कुछ देर बाद उन्होंने आंखें खोलीं; मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद दिया और चुप बैठे रहे। कुछ देर यों ही बीत जाने पर उन्होंने अपना मस्तक ऊंचा किया और दाहिने हाथ से आकाश के चमकते हुए तारों की तरफ़ इशारा करके कहा "मुझे यह ताराओं से भरा पूरा अंधकार बहुत अच्छा लगता है। जब दुनियां के झगड़े-रगड़े मिट जायेंगे, तब भी इन ताराओं की सत्य-साक्ष हमेशा की तरह वैसी ही रहेगी, जैसी कि हज़ारों वर्ष से रहती आई है। वे तो हमेशा शान्तं, शिवं, अद्वैतं का गीत गाते रहते हैं।"

यह कहकर वे शांत हो गये। मैं प्रणाम करके उनके पास से उठ अपनी कुटी की ओर चला। चलते-चलते मुझे उस दिन से २१ वर्ष पहले की एक स्मृति याद आ गयी, जबकि पहली बार मैं शान्तिनिकेतन में आया था। जिस दिन मैंने प्रथम प्रथम गुरुदेव के दर्शन किये थे, वह दिन तो जीवन के कलेण्डर में लाल स्याही से अंकित है, क्योंकि जिस व्यक्ति को मैंने कई वर्ष तक केवल कवि के रूप में उसकी कविताओं के द्वारा जाना था, उसे ही मेरी आत्मा ने आज अपने गुरुदेव के रूप में पहिचाना, पुकारा और प्रणाम किया है।

आश्चर्य की बात है उस दिन के बाद बार-बार मैं शान्तिनिकेतन आया हूं और उनके समीप रहने का मुझे सौभाग्य भी काफ़ी मिला है, लेकिन मैंने कभी उनसे कोई प्रश्न पूछने का साहस नहीं किया है। कई दफ़ा उनको प्रणाम करने गया हूं, लेकिन कुछ देर बैठकर वापस चला आया हूं। एक दफ़ा तो हँसी में गुरुदेव ने मुझसे कहा—"तुमि कखनो किछु बोलो ना, तुमि तो केवल खेपा" (तुम तो कभी कुछ कहते नहीं, तुम तो केवल पागल हो।) उस दिन से मुझे यह 'पागल' नाम बहुत ही प्यारा है। और सत्य तो यह है कि मैं उनके प्रेम का ऐसा ही एक पागल हूं, जैसा कि परवाज शमा का होता है। प्रेमी लोग पण्डित ही कब हुए! लेकिन यह ज़रूर ही कहूंगा कि मैंने उनके पास रहकर जो कुछ पाया है वह अमूल्य है।

उनके प्रेम के पारस में मेरे जीवन को तांबे से सोने में बदलने की क्षमता है। उनके प्रेम के द्वारा

मुझे यह विश्वास हो गया है कि यद्यपि मैं न कवि हूं और न कलाकार, साहित्यकार हूं न पण्डित ही, तब भी मेरे जीवन का कुछ न कुछ प्रयोजन तो ज़रूर होगा। गुरुदेव के नाटक "डाक घर" में दही बेचने वाला अमल से मिलकर अपने कार्य के मूल्य को अनुभव करता है, जब वह रुग्ण लड़का उससे कहता है—"अरे भाई, दही वाले, जब मैं अच्छा हो जाऊं, तो तुम मुझे भी "दही! दही! लो दही!" की पुकार करना अवश्य सिखाना। जिन जगत् विख्यात कवि सम्राट गुरुदेव के निकट जाने के लिये हज़ारों व्यक्ति तरसते हैं, उनके सामने मुझ जैसा क्षुद्र व्यक्ति आज़ादी के साथ आ जा सकता है, इसका कारण इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि गुरुदेव ने प्रेम के 'एक्सरे' से बाहर के आडम्बरों को भुलाकर मेरे अन्तर में जो परमात्मा बसता है, उसी को देख लिया है। इसका फल यह हुआ है कि मैंने उनसे एक प्रकार की आन्तरिक दीक्षा पाली है।

इस दीक्षा के मन्त्र को जब मैं शब्दबद्ध करने की चेष्टा करता हूं, तो मुझे उनकी "गीताञ्जली" में से तीन वाक्य याद आ जाते हैं, जो मेरे विचार से उस मन्त्र की सबसे अच्छी टीका है। यही तीन वाक्य सदा मेरे सामने लगे रहते हैं। मेरी मिट्टी की कुटिया की दीवारों पर भी यही लिखा है।

"जब कोई, हे प्रभु! तुझे पहचान लेता है, तब फिर उसके लिये कोई पराया नहीं रह जाता।"

"मेरे जीवन का सिर्फ़ इतना ही अंश बाक़ी रहे, जिससे हे प्रभु! मैं तुझको अपना सर्वस्व कह कर जानूं।"

"हे जीवन-देवता, क्या प्रतिदिन मैं तेरे सम्मुख खड़ा रह सकूंगा।"

इन तीन वाक्यों में जो सत्य है, वह गुरुदेव की कई किताबों में विस्तृत रूप में पाया जाता है। एक दृष्टि से देखा जाये, तो गुरुदेव के साहित्य का मूल मन्त्र यही है; जो सत्य या पदार्थ सीमाबद्ध है, उसका सम्बन्ध असीम के साथ बांधा जाये और जो सत्य या पदार्थ असीम की ओर उन्मुख है, उसे सीमाबद्ध किया जाये। इसीसे उन्होंने एक कविता में कहा है कि ईश्वर और सत्य का एक रूप नीड़ और दूसरा रूप आकाश। नीड़ का सम्बन्ध आकाश के साथ-उसके द्वार के साथ बांधा गया है, और मुक्त विस्तृत आकाश अपने आपको नीड़ के दरवाज़े के सामने परिमित कर देता है। डाक घर का रुग्ण अमल कमरे में बन्द है; वह अपना सम्बन्ध बाहर के जगत् से कमरे की एक खिड़की के द्वारा जोड़ता है।

इस सीमा और असीम के बीच में पुल बांधने का काम कवियों और कलाकारों का है। कवि और कलाकार तो मरमी होते हैं। और वे जो मरमी होते हैं, ज़मीन और आसमान में "Jacob's ladder" यानी स्वर्ग नसेनी लटकती हुई देखते हैं। बाइबिल के मरमी जेकब ने अपने एक आध्यात्मिक अनुभव में ऐसा ही देखा था। अपने अनुभव का ज़िक्र करते हुये वह कहते हैं कि इस सीढ़ी पर आसमान से ज़मीन की तरफ़ ईश्वर के दूत ऊपर से नीचे आते हैं, और प्रभु के प्यारे पृथ्वी से आकाश की तरफ़ चरण चूमने जाते हैं।

मई महीने की पांचवीं तारीख़ को गुरुदेव के इस जीवन के अस्सी वर्ष पूरे हो रहे हैं। मैं उनको प्रेम पूर्वक नम्र हृदय से प्रणाम करता हूं। और अपने दिल की भावनाओं को इस टूटे फूटे गीत के रूप में प्रगट करता हूं।

—गुरुदेव, मेरे प्यारे, दिल में सरूर तेरा ॥
तेरी वो कमल नयनें—शान्ति भरा सरोवर,
मैं डूब के पाता हूँ उनमें वो प्रेम तेरा ॥गु०॥
ऊंची तेरी पेशानी कैसी वो शान वाली,
उसे देख याद आता मुझे आश्रम तेरा ॥गु०॥
कुछ बात है कि मुझको रहती है याद तेरी,
तेरी ज़िन्दगी का नूर हो राहे-चिराग़ मेरा ॥गु०॥

यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

श्री भगवतीप्रसाद जी चन्दोला, शान्तिनिकेतन

'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्'—'यहाँ समस्त विश्व के लिए आश्रय-नीड़ है'—इस वैदिक आदर्श-वाक्य को चरितार्थ करने के लिए कवि ने विश्व-भारती की स्थापना की है; विश्व-भारती का यही आदि-मंत्र है। जाति-भेद, धर्म-सम्प्रदाय, राष्ट्रीयता आदि के संकुचित विचारों से, जो सब हमारे युग के इतने सारे अभिशाप हैं, ऊपर उठ कर कवि ने उक्त मंत्र का उच्चारण कर समस्त मानवता का अपने इस नीड़ में आवाहन किया है। आधुनिक युग की बर्बर राष्ट्रीयता, संकीर्ण जात्याभिमान, व्यापारिक लूट-खसोट से पूर्ण अर्थलोलुपता और युद्ध-संघर्षों की जघन्य हिंसा से आक्रान्त दुनिया के लिए कवि की अमृत वाणी में उच्चरित यह आवाहन-मंत्र एक आशा का संदेश लिए हुए है। मानवता की आधारभूत एकता के जिस चरम आदर्श की अभिव्यंजना कवि के असंख्य गीतों, कविताओं, निबन्धों, कहानियों, नाटकों आदि के विभिन्न साहित्यिक रूपों में हुई है, उसी विश्वजनीन परम भाव की पूर्ति विश्व-भारती संस्था को स्वरूप देकर कवि गुरु श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने की है।

कवि की इस कृति को कोई शान्तिनिकेतन आश्रम के रूप में जानते हैं, कोई एक विद्यालय के रूप में, कोई कला-केन्द्र के रूप में और कोई साहित्यिक-तीर्थ के रूप में। इसे उक्त भिन्न-भिन्न रूपों में जानने वाले सभी अंशतः ठीक ही जानते-समझते हैं। परन्तु इतने अलग-अलग रूपों में ही, या फिर इन सब को एकत्र करके देखने की चेष्टा में ही इस की सम्पूर्ण व्याप्ति समझना भी कवि की इस कृति का वास्तविक महत्व अधिकांश में शायद न जानने के बराबर ही होगा। बात यह है कि कवि के व्यक्तित्व—उनके विचारों, आदर्शों और स्वप्नों से विच्छिन्न कर के हम उनकी इस कृति-विशेष के वास्तविक स्वरूप को भी—ठीक वैसे ही जैसे उनकी काव्य-कृति के मर्म को—हृदयंगम नहीं कर सकते। कवि के विचारों के समानान्तर ही इसका भी विकास हुआ है। अतः शान्तिनिकेतन आश्रम और विश्वभारती एक भावना—एक स्वप्न की अभिव्यक्ति के लिए अनवरत प्रचेष्टा एवं विकास-क्रम का नाम है; यह केवल एक स्थान और संस्था का नाम भर ही नहीं। इसमें स्वयं कवि के आन्तरिक विकास ने क्रमागत भाव से अभिव्यक्ति पायी है। आज से कोई तीन वर्ष पूर्व डाक्टर श्री सर्वपल्लि राधाकृष्णन गुरुदेव से मिलने और आश्रम को देखने के लिए आए थे। उक्त अवसर पर उनके स्वागतार्थ जो सभा हुई थी, उसमें भाषण करते हुए डाक्टर सर्वपल्लि ने कहा था कि गुरुदेव के दर्शन का मौक़ा मुझे पहले भी हुआ था, किन्तु आज ही पहले-पहल मैं उन्हें अपनी उस सही प्रतिष्ठा-भूमि पर देख रहा हूँ, जहां से वे अपनी आभा को बाहर चारों ओर विकीर्ण करते रहते हैं।' सच ही युग के दार्शनिक की यह बात कवि और उनकी इस कृति का सम्बन्ध सुस्पष्ट रूप से हमारे सामने रख देती है।

यहां पर ज़रा इस सम्बन्ध को, इसके आरम्भ से अब तक के विकास-क्रम की दृष्टि से, देखा जाय।

कवि को शान्तिनिकेतन आश्रम और उसमें सन्निहित भावना, अपने देवतुल्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से एक आध्यात्मिक विरासत के रूप में मिली थी। आश्रम की भूमि कलकत्ता से १०० मील की दूरी पर वीरभूम ज़िला के बोलपुर क़स्बे से एक-डेढ़ मील के फ़ासले पर है। आरम्भ में यह स्थान एक रूखे-सूखे निचाट मैदान के रूप में था। महर्षि देव एक बार कहीं यात्रा पर जाते हुए यहाँ से गुज़रे। उन्हें इस खुले स्थान के अनोखे सौन्दर्य ने कुछ ऐसा आकृष्ट किया कि उन्होंने यहीं दो सप्तपर्णी के वृक्षों (ये ही केवल दो वृक्ष उस समय यहाँ थे भी) के नीचे अपना डेरा गाड़ दिया और सारा समय ध्यान तथा ईश्वराधना में व्यतीत करने लगे। ये सप्तपर्णी के वृक्ष अब भी शान्त भाव से खड़े हुए महर्षि देव के ध्यान करने के चबूतरे पर अपनी छाया किए दिखाई देते हैं। चबूतरे के सिरे पर खड़ी संगमरमर की शिला पर महर्षि देव के ध्यान का मूल मंत्र बंगला अक्षरों में खुदा हुआ आज भी शान्तिनिकेतन आश्रम के उस आध्यात्मिक बीजारोपण की बात कह रहा है। वह बीज-मंत्र यह है—

'तिनि आमार प्रानेर आराम,
मनेर आनन्द,
आत्मार शान्ति।,
—'वह मेरे प्राणों के आराम,
मेरे मन का आनन्द,
(और) मेरी आत्मा की शान्ति हैं।,

इस खुले शुष्क मैदान की आध्यात्मिक प्राण-प्रतिष्ठा करने के साथ ही महर्षि ने इस स्थान की कायिक शोभा के रचना-विधान की ओर भी ध्यान दिया। बाहर से उपजाऊ मिट्टी लाई गई, वृक्ष लतादि लगाए गए, आमों का एक बगीचा लगाया गया, एक निवासगृह बना और कुछ दिन बाद एक उपासना मंदिर भी बनाया गया। यह सब ठीक हो जाने के बाद महर्षि ने इसे एक सार्वजनिक आश्रम के रूप में जनता को दान कर दिया। इच्छानुसार कोई भी यहां आकर ईश्वराधना का आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर सकता था।

परन्तु लगभग ३० वर्ष तक आश्रम प्रायः सूना ही पड़ा रहा। तत्पश्चात् सन् १९०१ ई० में कवि ने यहां एक विद्यालय की स्थापना की। उन्होंने स्वयं ही लिखा है कि इस विद्यालय की प्रेरणा के मूल में कोई नया शिक्षा-सम्बन्धी सिद्धान्त अथवा 'थ्योरी' न थी, बल्कि थी कवि के अपने बाल्य-जीवन की दुःखपूर्ण स्मृति। जब बाल्यावस्था में कवि को स्कूल में पढ़ने के लिए रखा गया था, तो वहां की यांत्रिकता से वे घबड़ा उठे थे। स्कूली जीवन की अतिरिक्त व्यवस्थाप्रियता तथा प्रकृति के सहज आनन्दपूरित जीवन से उसका विलगाव, कवि के लिए असह्य हो उठे थे। बीते दिनों की यही स्मृति भविष्य में शान्ति-निकेतन आश्रम विद्यालय के रूप में फलवती हुई, और कवि ने यहां बालकों को प्रकृति के आनन्द के भीतर से शिक्षा-संस्कार का अभिनव विधान किया। प्राचीन भारत के तपोवन के आदर्श को अपने सामने रख कर, उन्होंने बालकों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास की परिस्थितियां प्रस्तुत करने का उद्योग किया। स्वयं कवि के आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली एक और भावना का भी इसमें समावेश था। कवि ने लिखा है कि जैसे प्राचीन काल के कवि कालिदास के मन में, उज्जैनी की नागरिक दुनिया में रहते हुए अपनी जन्मभूमि काशमीर के नैसर्गिक सौन्दर्य की याद रह-रह कर आया करती होगी और वे जैसे अपने इस आध्यात्मिक देशान्तर के कारण छटपटाया करते होंगे, उसी तरह स्वयं कवि को भी कलकत्ते के नागरिक जीवन में एक आध्यात्मिक देशान्तर की व्यथा सदा व्यथित किये रहती थी। कवि का मन प्रकृति की आनन्द दायिनी गोद में आकर रहने के लिये उत्कंठित हो उठा। शान्ति-निकेतन आश्रम में उन्हें यह आध्यात्मिक गृह मिल गया। कवि का साहित्यिक कार्य और विद्यालय का कार्य साथ-साथ चलते रहे।

कुछ वर्षों के बाद सन् १९१३ ई० में कवि विलायत की यात्रा पर गए। नोबुल प्राइज़ के द्वारा इसी वर्ष यूरोप ने एशिया महाद्वीप के कवि को

सम्मान दिया था। इस यात्रा में उनकी दो ऐसे अंग्रेज़ सज्जनों से भेंट हुई, जिन का शान्तिनिकेतन आश्रम से मृत्युपर्यन्त सम्बन्ध रहा। वे दो अंग्रेज़ सज्जन थे देव-कल्प स्वर्गीय दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रयूज़ और रेवरेण्ड डब्ल्यू० डब्ल्यू० पियर्सन। १९१४ में ये दोनों सज्जन कवि के साथ ही भारत चले आए और आश्रम में अध्यापनादि का कार्य करने लगे। दो वर्ष बाद १९१६ में कवि ने जापान और अमरीका की यात्रा की। इस यात्रा में उन्हें उक्त दोनों देशों की, विशेषकर जापान की दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ती हुई अर्थलोलुपता का खतरा साफ़-साफ़ दिखाई दिया। इसी की प्रेरणा से उन्होंने स्वदेश लौटने पर भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति और उसके परम्परागत् महान् आदर्शों की ओर और भी अधिक ध्यान दिया। इस समय उन्हें एक ऐसी संस्था की आवश्यकता प्रतीत हुई, जो भारत ही नहीं, बल्कि समस्त पूर्वी गोलार्द्ध की संस्कृतियों का सच्चा केन्द्र बन सके। उन्हें अब यह महसूस हुआ कि शान्तिनिकेतन आश्रम अपने विकास में कम से कम एक ऐसी स्थिति पर पहुंच गया है, जब कि वह भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति के कार्य में समर्थ हो सकता है। इसी समय श्रीयुक्त विधुशेखर भट्टाचार्य तथा श्रीयुक्त क्षितिमोहन सेन महोदय यहां आए और इस प्रकार तब उच्च ज्ञान के अध्ययन और शोध-कार्य की व्यवस्था 'विद्या भवन' के रूप में की गई।

सन् १९१८ ई० में विश्व-भारती नाम का प्रथम सूत्रपात हुआ और संस्था को समस्त एशियायी संस्कृतियों और कलाओं के केन्द्र का रूप दिया गया। बालक-बालिकाओं के शिक्षा-संस्कार में कवि ने संगीत और चित्र-कला का स्थान सदा से बहुत महत्वपूर्ण माना है। इसी वर्ष 'कला-भवन' की कवि ने स्थापना की, जिसके अध्यक्ष कुछ ही समय बाद प्रसिद्ध कलाकार श्रीयुक्त नन्दलाल बोस हुए।

महासमर के बाद, १९२० में कवि ने यूरोप की फिर यात्रा की। इस समय उन्हें मालूम हुआ कि युद्ध के दानव का सताया हुआ यूरोप पूर्व के आध्यात्मिक भावों से पूरित नए आदर्शों से शान्ति पाने का अभिलाषी है। इस यात्रा में विश्व-भारती ने कवि के मन में अपनी पूर्ण भावना और स्वरूप पाया। पूर्व की संस्कृति और ज्ञान के साथ ही साथ उसमें पच्छिम के ज्ञान को भी कवि ने स्थान दिया। इस प्रकार विश्वभारती ने पूर्व और पच्छिम के एक मिलन-क्षेत्र का रूप पाया। कवि ने पच्छिम के विद्वानों का भी अपनी संस्था में आवाहन किया। उनके आमंत्रण पर सर्व प्रथम प्रसिद्ध फ्रेञ्च विद्वान प्रो० सिलवां लेवी महोदय शान्तिनिकेतन आए, और उन के बाद विन्टरनित्स प्रभृति अनेक यूरोपीय पंडितगण कवि के आश्रम में आ-आकर ज्ञान की चर्चा करते रहे।

इसलामी संस्कृति के अध्ययन के लिए शान्ति निकेतन में व्यवस्था हुई। इसलामी संस्कृति से सम्बन्धित ग्रन्थों का संग्रह किया गया और इस दिशा में खोज और अध्ययन के लिए योग्य विद्वान रखे गए।

विश्वभारती की भावना का विकास अभी एक और दिशा में होना अपेक्षित था। उसके अन्तर्गत कला और ज्ञान की चर्चा की सुविधाएं तो प्रस्तुत हो गई थीं; किन्तु आश्रम की आसपास की ग्रामीण जनता के साथ उसके एक सजीव और ठोस सम्पर्क का माध्यम अभी नहीं बन पाया था। यों तो कवि बहुत पहले से ही इस बात पर ज़ोर देते आ रहे थे कि कोई भी सार्वजनिक अनुष्ठान, जो देश की ग्रामीण जनता से सम्पर्कहीन है, कुछ करने की आशा नहीं कर सकता। अपने इसी विचार को समय आने पर कवि ने 'श्रीनिकेतन' के रूप में देश के सामने उपस्थित किया। एक उत्साही अंगरेज़ युवक के सहयोग से १९२१ में यह कार्य आरम्भ हुआ। यह अंगरेज़ सज्जन श्री एलम्हर्स्ट थे। इन्होंने अर्थ-सम्बन्धी सुविधाएं जुटा कर और स्वयं भी कार्य करके, शान्ति निकेतन से डेढ़ मील की दूरी पर स्थित ग्रामोद्धार संस्था 'श्रीनिकेतन' का महत्कार्य अग्रसर किया। शान्तिनिकेतन आश्रम में स्थित भिन्न-भिन्न शिक्षा-विभागों के अतिरिक्त विश्व-भारती संस्था के अन्तर्भूत श्रीनिकेतन के ग्रामोद्धार तथा अन्य शिल्प-

आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन शास्त्री
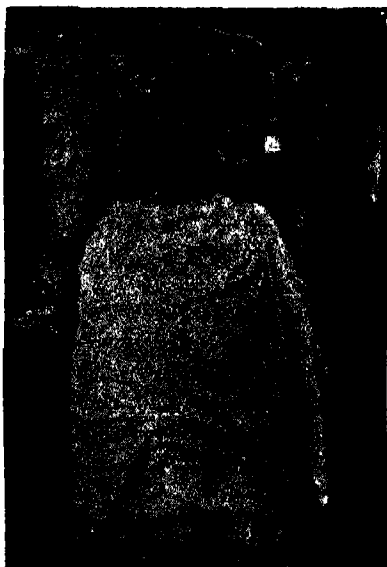
अध्यक्ष विद्या-भवन, शान्तिनिकेतन

श्रीनिकेतन के वार्षिकोत्सव में

गुरुदेव और डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद

हिन्दी भवन के उद्घाटन समारोह पर

गुरुदेव और पं० जवाहरलाल नेहरू
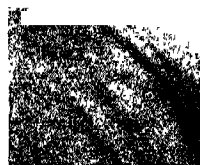
आचार्य गुरुदयाल मल्लिक, शान्तिनिकेतन

[श्री देवीप्रसाद गुप्त के सौजन्य से]
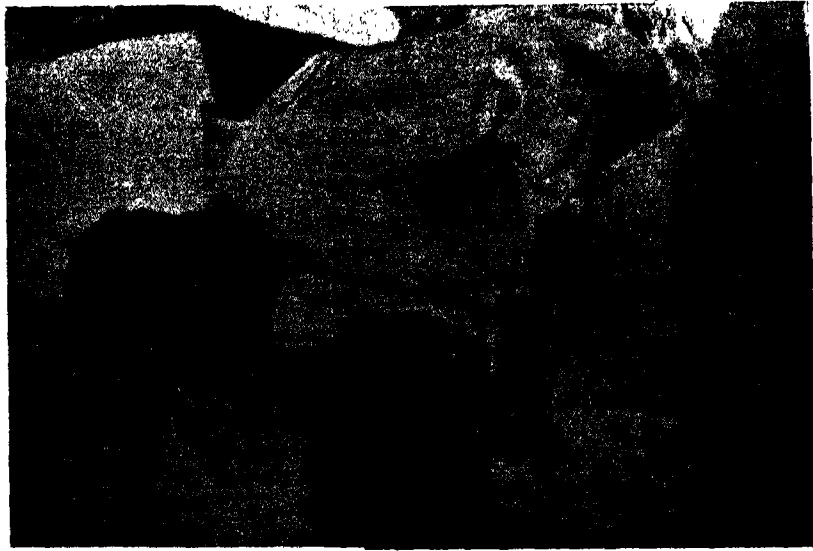
आचार्य नन्दलाल बोस
अध्यक्ष कला-भवन, शान्तिनिकेतन

प्रोफ़ेसर तान युन-शान
अध्यक्ष चीन-भवन, शान्तिनिकेतन

विभागों का भी बहुत महत्त्व है। श्रीनिकेतन में कवि की स्वयं बड़ी दिलचस्पी है, और वे इसे विश्वभारती का एक बहुत ही आवश्यक अंग समझते हैं।

इस प्रकार कवि ने विश्वभारती को नित्य नए नए रूपों में सँवार कर एक स्वरूप दे दिया, और इसे विश्व के लिए भारत का निमंत्रण घोषित करते हुए २२ दिसम्बर १९२१ ई० में 'विश्वभारती' की एक संगठित संस्था के रूप में स्थापना की। ऊपर की इस संक्षिप्त रूप-रेखा से यह अब प्रकट हो गया होगा कि कवि के विचारों के विकास के साथ ही साथ उनकी कृति ने भी, अपने विविध स्वरूपों और उन सब में निहित एक समन्वयात्मक भावना का कैसा क्रमागत भाव से विस्तार किया है! १९२१ के बाद, इधर के २० वर्षों में, संस्था ने उन्नति के कई क़दम आगे बढ़ाए हैं। उसके अन्तर्गत आज कितने ही विभाग अपना-अपना कार्य कर रहे हैं।

बहुत प्राचीन काल से भारत और चीन का सांस्कृतिक सम्बन्ध चला आ रहा है। पर बीच में उसकी कड़ी टूट गई थी। अब चीन की राष्ट्रीय सरकार ने शान्तिनिकेतन में 'चीन भवन' की स्थापना करके और भारतीय तथा चीनी संस्कृतियों के आदान-प्रदान की व्यवस्था करके, उस प्राचीन सम्बन्ध को नए सिरे से क़ायम किया है।

हाल ही में स्व०, सी० एफ़० एण्ड्रयूज़ साहब की प्रेरणा से हिन्दी के प्रचीन साहित्य के अध्ययन और शोध-कार्य के लिए हिन्दी-भवन की भी स्थापना हुई है।

लोग कभी-कभी यह प्रश्न करते हुए सुने जाते हैं कि कवि का यह स्वप्न कहां तक कार्य रूप में आया है? कवि के देशवासी इस प्रश्न को बजाय इस तरह पूछने के, यदि स्वयं अपने से इस तरह पूछें कि हम ने कवि के स्वप्न को कहां तक सच्चा बनाने में सहयोग दिया है?—तो यह कहीं अधिक संगत होगा। कवि ने तो अपनी ओर से देश-विदेश के सभी ज्ञानपिपासुओं को मुक्त-कण्ठ से पुकार कर कहा है—'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्'। उन्होंने अपना सर्वस्व लगा कर इसे जीवन दिया है और अब तक, प्रायः अस्वस्थ रहने पर भी, लगातार इसमें प्राण डालते आ रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ और बाहर के देशों के अनेक विद्वानों और महत्पुरुषों ने सक्रिय अथवा अन्य प्रकार से, आरम्भ से ही, कवि के इस अनुष्ठान में हाथ बटाया है। स्वयं महात्मा गांधी ने शान्तिनिकेतन को अपना 'दूसरा घर' कह कर स्नेह दिया है, और कहा है कि शान्तिनिकेतन स्वयं भारतवर्ष है। परन्तु साधारणतया देश-भाइयों की सहृदयता ने अभी अपना वैसा परिचय नहीं दिया, जैसा कि वाञ्छनीय था।

एक बात और है। इस समय जो सब लोग संस्था से सदस्यता द्वारा तथा अन्य किसी भी रूप से सम्बन्धित हैं, उनके मन में भी कभी न कभी यह प्रश्न उठे बिना नहीं रह सकता कि वे कवि के आदर्श के प्रति कहां तक प्रयत्नशील हैं, या कम से कम उसके सम्बन्ध में उन्होंने कितना विचार किया है। उनकी यह जिज्ञासा यदि सदैव बनी रहे, तो उसका भी कुछ कम मूल्य न होगा। उच्च कोटि के लोगों की शान्तिनिकेतन में पहले कभी कमी नहीं रही, और न अब ही उनका अभाव है। पर मैं यहाँ संस्था से सम्बन्धित अधिकांश लोगों की बात कह रहा हूं, क्योंकि इन पंक्तियों के लेखक जैसे सामान्य लोग भी यहां हैं। हम लोग उपर्युक्त जिज्ञासा को यदि सदा सजग रखे रहें, तो कवि के आदर्शों की दृष्टि से अपना इस संस्था से सम्बद्ध रहना अवश्य कुछ न कुछ सार्थक बना सकते हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। अपनी विशेषताएँ और साथ ही कुछ त्रुटियाँ तो मनुष्यों से सम्बद्ध होने के नाते, प्रत्येक संस्था में होंगी ही—यह सर्वथा स्वाभाविक बात है। विश्वभारती संस्था जीवन के जिस कलाकार की कृति है, उनकी ८० वीं वर्ष गांठ मनाते हुए और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता पूर्ण श्रद्धाञ्जलि भेंट करते हुए, गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में यदि हम आज यह निवेदन करना—

"गुण तुम्हार समुझहिं निज दोषू।"

न भूलें तो, इतनी बात तो निश्चित है कि हम गुमराह नहीं हैं।

ईरान, इराक़ और धुरी राष्ट्र

श्री वेण्टवर्थ डे

मौजूदा महायुद्ध का विजय-मन्त्र 'तेल' है। बिना तेल के हिटलर की विजय निरर्थक हो जायगी। न उसके हवाई जहाज़ उड़ सकेंगे, न जहाज़ चल सकेंगे और न पनडुब्बियां तैर सकेंगी।

शान्ति के समय जितने तेल की ज़रूरत होती है, जर्मनी में उतना तेल भी नहीं होता। इटली को जितने तेल की आवश्यकता होती है, उसका केवल नौ फ़ी सदी उसके यहां होता हैं। जापान की हालत इन तीनों में शोचनीय है। उसकी मामूली ज़रूरतों के लिए जितना तेल चाहिए, उसका केवल दसवां हिस्सा ही उसके यहां निकलता है। तेल के लिये यह त्रिराष्ट्र बाहर के देशों पर निर्भर करते हैं और बाहर के देशों में और इनके बीच में समुद्र हैं; जिन पर तैरते हैं अंग्रेज़ी जङ्गी जहाज़ !

इसीलिए जर्मनी ने रूमानिया पर क़ब्ज़ा किया और निकट पूर्व में फ़िलस्तीन और ईरान के सिर पर भयंकर युद्ध के बादल छा रहे हैं। निकट पूर्व ही जर्मनी के हमलों के क़रीब है और जहां इतना तेल मिल सकता है, जिससे जर्मनी और धुरी राष्ट्रों की ज़रूरतें पूरी हो सकें।

जर्मनी में मामूली ज़रूरतों के लिये सत्तर लाख टन तेल ख़र्च होता है। बावजूद अपनी तमाम वैज्ञानिक कोशिशों के जर्मनी में केवल पचास लाख टन तेल हर साल निकल पाता है; यानी उसकी मामूली ज़रूरतों में भी बीस लाख टन तेल की कमी रहती है। इस लड़ाई के दौरान में तो उसकी तेल की ज़रूरतें बेहद बढ़ गई हैं।

कहा जाता है कि ल्यूना में तेल का उसका सबसे बड़ा कारख़ाना था, पर अंग्रेज़ी हवाई जहाज़ों ने नष्ट कर दिया। बर्लिन ने भी इसे स्वीकार किया है। बेल्जियम, फ्रांस, हालेण्ड और नार्वे में जो तेल के ख़ज़ाने थे, उन्हें हवाई जहाज़ की मारों ने बहुत कुछ बरबाद कर दिया है। जो कुछ बचा होगा, एक बार ख़र्च हो जाने पर उसकी पूर्ति के कोई साधन नहीं हैं।

रूस आज कल अपने यहां का निकला हुआ समस्त तेल ख़र्च कर रहा है। ज़्यादा से ज़्यादा वह पांच लाख टन तेल बाहर भेज सकता है। लेकिन पिछली दफ़ा जो रूस ने आठ हज़ार सात सौ टन तेल जर्मनी भेजा था, वह इतना ख़राब था कि किसी काम न आ सकता था।

पोलेण्ड में भी बहुत थोड़ा पेट्रोल होता है और उसकी मिक़दार भी घट रही है। फ्रांस में, अलसास में कुछ तेल निकलता है और बाक़ी ज़रूरतों के लिए फ्रांस को विदेशों का मुंह जोहना पड़ता है। इटली का तेल का मामूली ख़र्च पैंतीस लाख टन है। इसमें से केवल सत्तर हज़ार टन इटली में होता है, तीन लाख टन अल्बानिया से आता है और बाक़ी विदेशों से।

रूमानिया में साढ़े बासठ लाख टन तेल हर साल निकलता है। यूनान और बल्गेरिया की ज़रूरतें भी रूमानिया के तेल से पूरी होती हैं; किन्तु रूमानिया किस-किस की ज़रूरत को पूरी करे ? निकट पूर्व के देशों से ये ज़रूरतें पूरी हो सकती हैं। मगर रास्ते में अंग्रेज़ी फ़ौजें और अंग्रेज़ी जंगी जहाज़ हैं। तुर्की इस युद्ध के ख़तरे को समझ रहा है। जर्मन
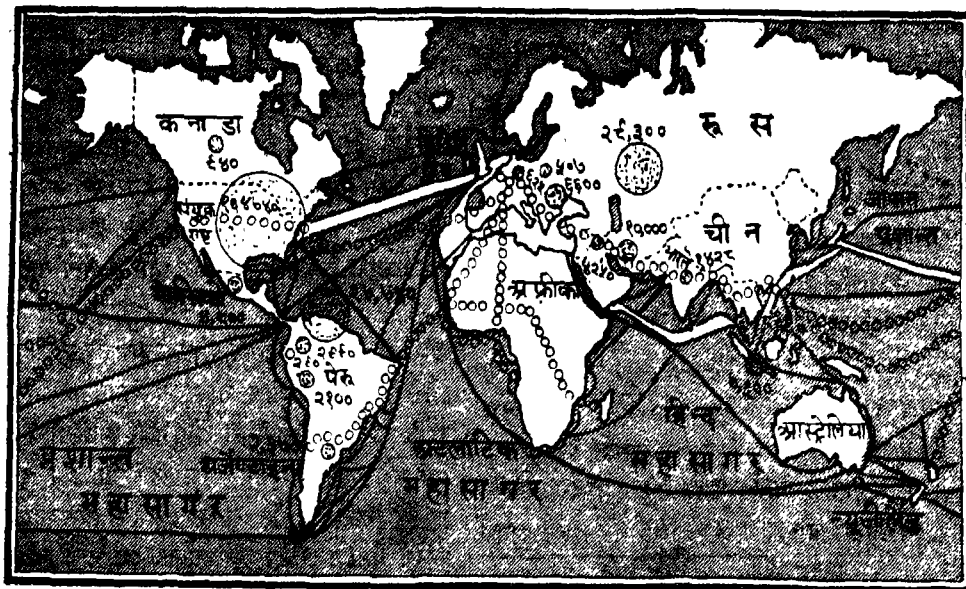
संसार में मिट्टी के तेल की उपज
तेल की उपज की मात्रा और भेजने के मार्ग
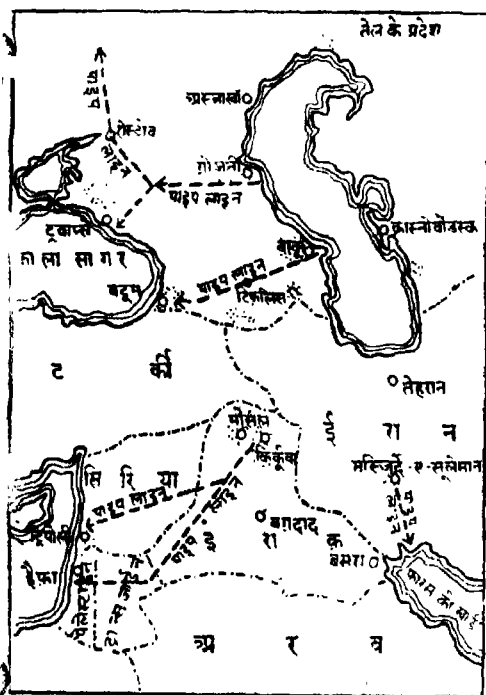
काकेशस के पड़ोस में मिट्टी के तेल के केन्द्र
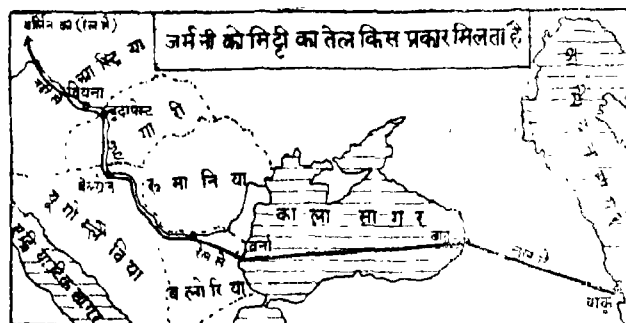
जर्मनी को मिट्टी का तेल किस प्रकार मिलता है

संरक्षण का अर्थ वह अपनी गुलामी समझता है। इसीलिए आज वह हमारा साथी है।

अब हम नाज़ी दुनिया और उसके साथियों के तेल के निकास पर ज़रा ग़ौर करें और उनके आंकड़ों को देखें :—

जर्मनी मय आस्ट्रिया,	टन प्रतिवर्ष
जेकोस्लोवेकिया और पोलेण्ड	५०,०००००
रूमानिया (निर्यात के लिये)	४०,०००००
रूस (")	५,०००००
इटली मय अल्बानिया	३,७००००
फ्रांस	२,५००००
एस्तोनिया (निर्यात के लिए)	१,०००००
बेल्जियम और हालेण्ड	४०,०००
कुल टोटल	१,०२,६००००

अब हमें ये देखना चाहिये कि यूरोप के इस हिस्से की ज़रूरतें कितनी हैं ? रूस को छोड़ कर शान्ति के दिनों में ये मुल्क हर साल एक करोड़ नब्बे लाख टन तेल इस्तेमाल करते हैं। और इससे कम तो वे आज भी नहीं करते होंगे। व्यक्तिगत मोटरों आदि के खर्च से जो पेट्रोल बचाया जाता होगा, उसका कई गुना ज़्यादह लड़ाई के उद्योग-धन्धों, फ़ौजों के लाने ले जाने, हवाई जहाज़ वग़ैरह के चलाने में खर्च हो जाता होगा।

निकट पूर्व का तेल का खजाना

हिटलर यह खूब समझता है कि सारे यूरोप में इस समय तेल की कमी है। उसकी यन्त्रचालित फ़ौजें बग़ैर तेल के बेकार साबित होंगी। तेल ज़रूरी चीज़ है और चाहे जहां से मिले। हिटलर बिजली की तरह कड़क कर, पलक झपते लड़ाई जीत लेना चाहता था और इसके लिए उसके पास काफ़ी तेल था; मगर इस तुरत जीत की अब तो कोई आशा नहीं दिखाई देती।

निकट पूर्व के देश हिटलर की इस दिक़्क़त को रफ़ा कर सकते हैं। इन मुल्कों में दो करोड़ टन तेल हर साल पैदा हो सकता है। रूमानिया अकेला इस समस्या को हल नहीं कर सकता। पिछले चार बरस से वहां तेल का निकास बराबर घटता जा रहा है। फिर इस तेल को भरने और ले जाने की भी दिक़्क़तें हैं। जर्मनी की जो रेलें आती-जाती हैं, वे जंगी सामान से बेहद भरी होती हैं। फिर रूमानिया का यह तेल इकट्ठा करके कहां रखा जाय—यह भी एक समस्या है। रूमानिया इस काम के लिये उपयोगी है कि उसे यूनान पर हमले का अड्डा बनाया जाय और न सिर्फ़ यूनान पर बल्कि यूनान के ज़रिये तुर्की और स्याम की ओर भी क़दम बढ़ाये जाएं। फिर ईरान के तेल के कूओं की ओर नजर डाली जाय, जहां एक करोड़ टन तेल हर साल पैदा होता है। इराक़ में हर साल चालीस लाख टन तेल निकलता है। बहरेन में इस समय नौ लाख टन तेल हर साल निकलता है, मिश्र में भी छः लाख टन तेल हर साल मिल जाता है।

ईरान की खाड़ी के मुहाने के पास कोव्हेक नामक एक छोटा सा राज्य है। यहां भी तेल का अनुसन्धान मिला है। तुर्की में भी इस साल तेल के कूएं निकले हैं। शाम में तो तेल मिलता ही है।

ईरान की खाड़ी में अबादान के पास तेल साफ़ करने का दुनिया में सबसे बड़ा कारख़ाना है। स्वेज़ के बन्दरगाह में तेल इकट्ठा करने के तालाब हैं, जिनसे आधे अंग्रेज़ी जंगी जहाज़ों का काम चल सकता है। मोसल में जो तेल के कूएं हैं, वहां से पाइप लाइन के द्वारा फ़िलस्तीन के हैफ़ा शहर में तेल आता है। यहां हर साल २० लाख टन तेल साफ़ होता है।

इस बीच ग्रेट ब्रिटेन अपनी फ़ौजों, जंगी जहाज़ों, हवाई जहाज़ों और लड़ाई की ज़रूरतों के लिये सारा का सारा तेल अमरीका और पश्चिमी डच-हिन्द से पूरा कर सकता है।

यदि हिटलर तुर्की को रौंद डाले और उसके टिड्डी दल शाम में फैल जाएं और वे फ़िलस्तीन के तेल के पाइपों को नष्ट करदें; फिर भी हिटलर निकट पूर्व के तेल पर क़ाबिज़ न हो सकेगा। क्योंकि

इसकी बहुत-सी मिक़दार अबादान, दम्मान, रासता-नूरा और बहरेन से होकर ईरान की खाड़ी के रास्ते अंग्रेज़ी जंगी जहाज़ों की रक्षा में सुएज़ नहर से होकर अंग्रेज़ी हलक़ों में पहुंचती है। इस तेल को लाने के लिये साठ लाख टन वज़न के जहाज़ लगे हुए हैं। इसीलिये निकट पूर्व के तेल के अनुपम ख़ज़ाने को इस्तैमाल करने के लिये मिस्र का बहुत बड़ा महत्व है।

आन्दोलन और क़ब्ज़ा

पिछले कई वर्षों से ईरान, जहां सबसे ज़्यादह तेल पैदा होता है, जर्मन प्रचारकों से भर गया है। ईरान ब्रिटेन का नाम-मात्र का दिखावटी दोस्त है; किन्तु एंग्लो ईरानियन आयल कम्पनी का इस सारे तेल पर क़ब्ज़ा है। इस कम्पनी की लगभग पचास करोड़ रुपये की लागत में से क़रीब सोलह-सत्रह करोड़ रुपये के हिस्से केवल अंग्रेज़ सरकार के हैं। जो लोग क़ब्ज़ा जमाये हुए हैं, उन्हें जर्मन प्रचार की रत्ती भर भी परवाह नहीं है।

जापान हर साल चालीस लाख टन तेल इस्तेमाल करता है। जापान में अपना तेल कुल तीन लाख टन पैदा होता है। इसीलिये उसकी निगाहें पूर्वी डच-हिन्द पर हैं, जहां हर साल ७३,९४००० टन तेल निकलता है। किन्तु तेल ले जाने वाले जापानी जहाज़ कुल ४,२९००० टन के ही हैं। जर्मनी के पास २,५६०९३ टन के और इटली के पास ४,२६००० टन के तेल ले जाने वाले जहाज़ हैं—यानी इन सब की तादाद इङ्गलैण्ड का केवल छठवां हिस्सा है। इटली को साम्राज्य की बेहद ख़्वाहिश है; किन्तु उसे लिबिया, इरीट्रिया और एबीसीनिया कहीं भी तेल न मिला। तेल के लिहाज़ से इटली की हालत बड़ी नाज़ुक है। पिछले दिनों जापान को जितने तेल की ज़रूरत होती है, उसका पचहत्तर फ़ी सदी उसे अमरीका से मिलता है और इटली की दो तिहाई ज़रूरत भी अमरीका, पश्चिमी डच-हिन्द और मैक्सिको पूरी करता रहा है।

इस तरह हर नुक़्ते नज़र से धुरी राष्ट्र दक्षिण-पूर्व की ओर तेल की खोज में रेगिस्तानी सल्तनतों में जाने के लिये मजबूर हैं। तेल उनकी वार मशीनों का जीवनदायक रक्त है।

यदि धुरी राष्ट्र इस रेगिस्तानी लड़ाई में जीत भी गये, तब भी उनकी दिक़्क़तें हल नहीं होंगी। फ़र्ज़ कीजिये, जर्मनी पूर्वी भू-मध्य सागर में हैफ़ा पर और शाम में त्रिपोली के बन्दरगाहों पर क़ब्ज़ा करले। तब भी उनकी पचास फ़ी सदी ज़रूरतें बाक़ी रहेंगी। फ्रान्स के पतन के पहले इराक़ का बीस लाख टन तेल पाइप लाइन के ज़रिये त्रिपोली के बन्दरगाह में आता था। फ्रान्स के पतन के बाद यह पाइप लाइन इराक़ की सीमा में हैफ़ा की पाइप लाइन से मिलती थी; किन्तु अब त्रिपोली की पाइप लाइन तो इस्तेमाल नहीं होती; केवल हैफ़ा की पाइप लाइन से बीस लाख टन तेल हर साल मिल सकता है।

मूल-मन्त्र

शायद लोग नहीं जानते कि मिस्र भी तेल के लिहाज़ से एक बड़ा महत्व पूर्ण स्थान रखता है। शेल कम्पनी ने मिस्र में 'एंग्लो इजिप्शियन आयल फ़ील्ड्स' नाम से काम शुरू किया है। पिछले कई वर्षों से वह हरग़ज़ा और रासग़रीब की तेल की खानों में काम कर रही है, मगर तेल का निकास बराबर मिक़दार में नहीं होता—किसी साल ज़्यादा होता है, तो किसी साल कम। फिर भी पिछले साल क़रीब छः लाख टन तेल निकला था। कोई ताज्जुब न होगा यदि यहां ढङ्ग से काम किया जाय, तो तेल का निकास बहुत बढ़ सकता है।

फेरोओं की ऐश्वर्य भूमि में, जहां दुनिया की सब में पुरानी सभ्यता दफ़न पड़ी हुई है, चमकते हुए नक्षत्र-मण्डल के नीचे जो रेत के अपार समुद्र को एकटक निहारा करता है, बाइबिल की वर्णित इस भूमि के आधिपत्य में ही दुनियां के भविष्य का मूल-मन्त्र छिपा हुआ है।

सोवियत् रूस और 'नई व्यवस्था'

वेरा मिचेल्स डीन

एक ओर जर्मनी ने इंगलैण्ड के बन्दरगाहों और फ़ौजी औद्योगिक अड्डों पर ज़ोर शोर से गोलाबारी शुरू की और दूसरी ओर उसने यूरोप से अंग्रेज़ी असर के मिटाने के लिए सोवियत् यूनियन से पच्छिम के समस्त इलाक़े पर अपना क़ब्ज़ा शुरू किया। २७ सितम्बर सन् १९४० को बर्लिन की एक कान्फ्रेंस में जापान ने जर्मनी और इटली के साथ एक दसवर्षीय समझौता किया, जिसकी ख़ास शर्त यह थी कि यूरोप और एशिया की लड़ाइयों में, जो मुल्क इस समय लगे हुए हैं, इन्हें छोड़कर यदि कोई बाहर की ताक़त दख़ल दे, तो ये तीनों राष्ट्र एक दूसरे को उसके ख़िलाफ़ फ़ौजी और आर्थिक मदद देंगे। इस समझौते की दूसरी ख़ास शर्त यह थी कि यूरोप और एशिया की नई व्यवस्था के निर्माण करने में ये तीनों राष्ट्र एक दूसरे को मदद देंगे। ब्रिटेन को अमरीका की मदद और चीन को सोवियत् यूनियन की मदद उस वक़्त तक पहली शर्त के मातहत न समझी गई।

धुरी राष्ट्रों की इस सन्धि के पीछे जिन दो सब में बड़े राष्ट्रों का ख़तरा उन्हें दिखाई दिया, वे थे—अमरीका और सोवियत् रूस। यूरोप और एशिया की जिस लड़ाई में ये दोनों राष्ट्र दख़ल देंगे, उस लड़ाई का पासा पलट सकता है। समझौते की पांचवीं धारा में जर्मनी, इटली और जापान ने यह ऐलान किया कि इस समझौते का उन तीनों राष्ट्रों और सोवियत् रूस के व्यक्तिगत सम्बन्ध पर किसी तरह का कोई असर न पड़ेगा। इस पांचवी धारा का बाहरी दुनिया पर यह असर पड़ा कि इस समझौते की मुराद रूस की अपेक्षा अमरीका को ही गम्भीर चेतावनी देना है। इस समझौते की भूमिका में तीनों राष्ट्रों ने अमरीका, रूस और किसी भी अन्य मुल्क को मदद देने का वादा किया, जो अपना अलग प्रभाव-क्षेत्र क़ायम करना चाहता हो।

धुरी राष्ट्रों के इस समझौते के बाद इस बात की कोशिश की गई कि यूरोप के दूसरे मुल्क भी इस समझौते में शरीक़ हो जाएं। २४ अक्टूबर सन् १९४० को बावजूद रूज़वेल्ट, जार्ज छठवें और चर्चिल की प्रार्थना के मार्शल पेतां ने जर्मनी के साथ क्षणिक समझौते को एक सन्धि के रूप में स्वीकार कर लिया। फ़्रांस ने यूरोप की नई व्यवस्था में जर्मनी को सहायता देने का वचन दिया है। इस सन्धि पर अभी विस्तार के साथ बहस नहीं की गई है। स्पेन को इस नई व्यवस्था में शामिल होने की दावत दी गई है। उसे यह बताया गया कि यदि वह जिब्राल्टर पर हमला करे, तो इनाम के बतौर उसे अफ़्रीका के फ्रेंच उपनिवेश की एक फांक दी जा सकती है। हिटलर और जनरल फ्रेंको में २२ अक्टूबर को इस सम्बन्ध में बातें हुईं, मगर उसके बाद कोई सरकारी वक्तव्य नहीं निकला। २० नवम्बर को वियना में हंगरी ने इस धुरी राष्ट्र समझौते पर दस्तख़त कर दिये। २३ नवम्बर को रूमानिया ने और २४ नवम्बर को स्लोवेकिया ने भी इस त्रिगट्ठ में शामिल होना स्वीकार कर लिया।

३० सितम्बर सन् १९४० को सोवियत् रूस के मुख पत्र 'प्रवदा' ने लिखाः—

"धुरी राष्ट्रों का यह समझौता एक दूसरे के प्रभाव-क्षेत्रों को खुल्लमखुल्ला स्वीकार करता है और हमले की सूरत में एक दूसरे को मदद देने का विश्वास दिलाता है। समझौते के अनुसार सुदूर पूर्व का एशियाई इलाक़ा जापानी क्षेत्र है। और यूरोप, जर्मनी और इटली का प्रभाव क्षेत्र है यह एक दूसरा सवाल है कि क्या समझौते पर दस्तख़त करने वाले प्रभाव-क्षेत्रों का सचमुच बटवारा करने में कामयाब हो सकेंगे या नहीं; यह बहुत कुछ लड़ाई के नतीजों पर निर्भर करता है।"

मोलोतोव की बर्लिन-यात्रा

नाज़ी कूटनीति को कई मैदान सर करने थे। उसका मक़सद न सिर्फ़ ब्रिटेन और अमरीका के सामने यूरोप की ऐसी कैफ़ियत रखनी थी, जिस पर नाज़ी विचार-धारा हावी हो, बल्कि ये भी ख़याल था कि बल्कान के मुल्क ब्रिटेन और यूनान को मेडिटरेनियन की लड़ाई में किसी क़िस्म की मदद न दे पाएं। यूरोपियन काण्टिनेंट पर अपनी हुकूमत पुख़्ता करने के लिये, और तुर्कों को अंग्रेज़ों की तरफ़दारी करने से रोकने के लिये, हिटलर को अपनी नई व्यवस्था की तजवीज़ों के लिये सोवियत रूस की इजाज़त की ज़रूरत थी। इसी इजाज़त को हासिल करने के लिये नाज़ियों ने व्याचेसलेव मोलोतोव को, जो सोवियत् के प्रधान मन्त्री और वैदेशिक मन्त्री हैं, १२ नवम्बर को बर्लिन आने की दावत दी। ब्रिटेन और अमरीका सोवियत् को अपनी ओर करना चाहते थे और जर्मनी अपनी ओर। रूस को लेकर दोनों दलों की बाज़ी आसमान पर चढ़ने लगी। इसी बीच अक्टूबर के महीने में नाज़ियों ने अपनी फ़ौज का एक हिस्सा रूमानिया भेज दिया। मुमकिन है जर्मनी ने ईमानदारी के साथ यह समझा हो कि अंग्रेज़ों के ख़ुफ़िया षड्यन्त्र से उसे रूमानिया के पेट्रोल की रक्षा करनी है। लेकिन एक मक़सद यह भी था कि रूमानिया की फ़ौजों को नाज़ी तरीक़े से संगठित किया जाय, ताकि रूमानिया को अड्डा बनाकर दक्षिण और पूर्व की तरफ़ जर्मन फ़ौजें बढ़कर ब्रिटेन और उसके दो बचे हुए साथी तुर्की और यूनान के ख़िलाफ़ आगे बढ़ सकें। किन्तु रूमानिया पर जर्मनी के क़ब्ज़े का एक अर्थ यह भी निकल सकता था कि यदि सोवियत् यूनियन काले सागर में जर्मनी के हस्तक्षेप का विरोध करे और धुरी राष्ट्रों के ख़िलाफ़ तुर्की को मदद दे, तो रूमानिया की यह फ़ौज मास्को का मुक़ाबला करने के लिए तत्पर मिले। फिर भी जर्मन प्रेस और रेडियो ने यह असर डालने की कोशिश की कि सोवियत् रूस की अनुमति से नाज़ियों ने रूमानिया पर क़ब्ज़ा किया। लेकिन १५ अक्टूबर को सोवियत् न्यूज़ एजेंसी 'तास' ने इस बात का ऐलान किया कि इस मामले में सोवियत् से कोई सलाह नहीं ली गई।

मास्को के ख़र्चे को कम करने के लिये और तुर्की आदि को सोवियत् की मदद से अपने पक्ष में करने के लिये नाज़ियों ने बर्लिन में मोलोतोव के सामने यूरोप की नई व्यवस्था की कई योजनाएं रक्खी हैं। मोलोतोव से यह कहा गया कि यदि सोवियत् इस नई व्यवस्था को स्वीकार कर ले, तो जर्मनी सोवियत् की यूरोपीय सीमाओं को हाथ न लगायेगा और दूसरे इलाक़ों में सोवियत् को लूट में भी हिस्सा देगा। इस बात की भी ख़बर थी कि जर्मनी ने सोवियत् को यह कहा है कि यदि सोवियत् चाहे, तो वह दर्रेदानियाल और तुर्की के कुछ हिस्से पर क़ब्ज़ा करले और या ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, हिन्दुस्तान और हिन्द महासागर को अपना प्रभाव-क्षेत्र बना ले।

एक ओर तो बर्लिन से यूरोप की नई व्यवस्था के सिलसिले में सोवियत्-जर्मन परामर्श चल रहा था और दूसरी ओर मास्को में सोवियत् वैदेशिक विभाग और नये जापानी राजदूत लेफ्टिनेन्ट जनरल तातेकाव में इस बात पर मशविरे हो रहे थे कि रूस और जापान आपस में निष्पक्षता की सन्धि कर लें। जहां तक मालूम है, मोलोतोव ने बर्लिन में धुरी राष्ट्रों की

और मास्को में जापान की बातों को विधिवत् सुन लिया, मगर अपनी निश्चित राय न तो एशिया के मामले में दी और न यूरोप के मामले में। जब जर्मन अख़बारों में यह ख़बर छपी कि हङ्गरी ने सोवियत् की रज़ामन्दी से त्रिराष्ट्र सन्धि पर हस्ताक्षर किये हैं, तो २३ नवम्बर को तास एजेंसी ने इस बात का ऐलान किया कि इसमें पूरी सचाई नहीं है और न जापान को ही इस बात में कामयाबी मिली कि चुङ्किङ्ग सरकार को सोवियत् की मदद में वह कमी करा सके। इसके विपरीत जब जापान ने वांगचिंगवे की नानकिङ्ग सरकार को मान लिया, तो ५ दिसम्बर को सोवियत् का ऐलान निकला कि चीन के सम्बन्ध में उसकी राय ज्यों की त्यों है।

सोवियत् पहेली

ब्रिटेन और जर्मनी एक दूसरे से ऐसी लड़ाई में गुंथ गए हैं, जो जल्दी ख़त्म होते नहीं दीखती। ऐसी सूरत में यूरोप और एशिया पर लड़ाई के क्या नतीजे होंगे, यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि सोवियत् और अमरीका क्या रवय्या अख़्तियार करते हैं। यूरोप और अमरीका के बहुत से लोग, जो रूसी इतिहास और उसकी जनता के चरित्र से बेख़बर हैं, वे सोवियत् की वैदेशिक नीति को एक पहेली समझते हैं। कुछ लोगों का ख़याल है कि रूस में ऐसे अशिक्षित जङ्गली रहते हैं, जिनका पच्छिमी संस्कृति में कोई स्थान नहीं। कुछ का ख़याल है कि रूस का यह फ़र्ज़ है कि वह नाज़ी हमलों से पच्छिमी दुनिया को बचाये। पिछले बीस बरस से, जब से रूस में बोलशेविज़्म का जन्म हुआ, तब से यह ग़लतफ़हमी और ज़्यादा बढ़ गई है। कुछ लोगों का ख़याल है कि यह रूसी साम्यवाद नाज़ीवाद से भी ज़्यादा भयङ्कर है और कुछ लोगों की नज़र में आधुनिक समाज को नाश से बचाने के लिये यही एक महौषधि है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में रूस की क्या स्थिति होगी, और साम्यवाद का क्या उद्देश्य है, इससे भी यह ग़लतफ़हमी बढ़ी है।

अगस्त १९३९ के बाद मास्को ने जो तरीक़ा अख़्तियार किया, उससे पेचीदगी और बढ़ गई है। यूरोप की बड़ी शक्तियों में रूस ही अकेला एक ऐसा मुल्क था, जिसने हमला करने को सरकारी तौर पर बुरा बताया, मगर रूस ही ने नाज़ियों के साथ दूसरे मुल्कों पर हमला करने की सूरत में चुप रहने की सन्धि कर ली। सोवियत् की सरकार, जिसका जन्मदाता लेनिन था और जिसने साम्राज्यवाद का इतना विरोध किया कि ज़ार के वक़्तों के जीते हुए तमाम मुल्कों को वापस करने की ठान ली; उसी सोवियत् ने साम्राज्यवादी रूप धारण करके एक साल के अन्दर-अन्दर पूर्वीय पोलैण्ड, दक्षिणी फ़िनलैण्ड, बाल्टिक के देश और रूमानिया के दो प्रान्तों पर क़ब्ज़ा कर लिया है। इनमें बुकोविना को छोड़कर सब ज़ारशाही साम्राज्य के अन्तर्गत थे। स्टालिन, जिसने बार-बार इस बात का ऐलान किया कि रूस शान्ति चाहता है और वह दूसरों के मुल्क की एक इञ्च ज़मीन भी न लेगा, फ़िनलैण्ड के साथ लड़ाई में उलझ पड़ा। इसी की वजह से सोवियत् के दोस्त और दुश्मन सब हैरान और परेशान हो गए। उनकी यह हैरानी उस सूरत में और भी बढ़ गई, जब रूस के बाहर की कम्यूनिस्ट पार्टियां मास्को की नई नीति का समर्थन करने लगीं।

साम्राज्यवादी लड़ाइयां और लेनिन

मास्को की वैदेशिक नीति को ठीक तरह समझने के लिये यह ध्यान में रखना ज़रूरी है कि जब सन् १९१७ में सोवियत् सरकार के हाथों में शक्ति आई, तब न तो उसे जर्मनी से ही मोहब्बत थी और न मित्र राष्ट्रों से। बोलशेविक नेताओं का विश्वास था कि जर्मनी, मित्र राष्ट्र और रूस की ज़ारशाही सब मिलकर एक साम्राज्यवादी लड़ाई लड़ेंगे और महायुद्ध का चाहे जो नतीजा हो, उससे जनता का लाभ न होकर केवल शासित वर्ग का ही लाभ होगा। उनकी राय में मज़दूरों का तब तक कोई देश न था, जब तक उन्होंने सोवियत् यूनियन में साम्यवादी पितृभूमि नहीं

सन् १९१४ के यूरोप का एक अध्ययन

क़ायम कर ली। लेनिन महायुद्ध के ज़माने में अप्रैल सन् १९१७ तक स्वीज़रलैण्ड में रहा। उसका विश्वास था कि इससे पहले की जितनी लड़ाइयां थीं, वे क़ौमी लड़ाइयां थीं; मगर सन् १९१४ का महायुद्ध इतिहास में पहला युद्ध था, जो राष्ट्रीय नहीं बल्कि साम्राज्यवादी था। उसके पूंजीवादी प्रतिद्वन्दी मार्के के अड्डों, उपनिवेशों, मण्डियों और कच्चे माल के लिये लड़ रहे थे। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी की क़ौमी लड़ाइयों से पूंजीवाद शुरू हुआ और इन साम्राज्यवादी लड़ाइयों से ही उसका अन्त होगा। लेनिन की राय में इस तरह के कई साम्राज्यवादी युद्धों के बाद पूंजीवाद का ख़ात्मा होगा।

लेनिन की राय में साम्राज्यवादी लड़ाइयें पूंजीवाद की बेतरतीब उन्नति के अमली परिणाम हैं। जैसे फ्रांस और ब्रिटेन की वजह से जर्मनी, इटली, जापान और अमरीका की प्रगति रुकी हुई है। लेनिन के अनुसार नये साम्राज्यवादी मुल्क पुराने साम्राज्यवादी मुल्कों के हाथ से ताक़त छीनने का प्रयत्न करने लगे। इन नये और पुराने साम्राज्यवादियों की लड़ाइयों में ग़ुलाम मुल्कों की आज़ादी या मज़दूरों की भलाई की भावना नहीं है; बल्कि दूसरे मुल्कों की क़ीमत पर एक या अधिक मुल्कों की पूंजीवादी ठेकेदारी को मज़बूत करना है। चुनांचे लेनिन पहले महायुद्ध के हर लड़ाके देश को एकसा साम्राज्यवादी देश समझता था। लेनिन की इस ऐतिहासिक विवेचना के अनुसार रूस और बाहर के कम्यूनिस्ट इस दूसरे महायुद्ध में ब्रिटेन और जर्मनी दोनों को साम्राज्यवादी राष्ट्र समझते हैं और दोनों में से किसी की भी जीत को मज़दूरों की दृष्टि से अच्छा नहीं समझते। किन्तु एक रूसी समालोचक के अनुसार यदि लेनिन ज़िन्दा होता, तो वह जापान के विरुद्ध चीन की लड़ाई को आज़ादी की लड़ाई और चीन के ख़िलाफ़ जापान के युद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध कहकर दुनिया के तमाम मज़दूरों से चीन की सहायता और जापान का विरोध करने के लिये कहता।

लेनिन की राय में महायुद्ध का एक ही अच्छा नतीजा हो सकता है और वह यह कि विश्वव्यापी पैमाने पर इससे सामाजिक क्रान्ति का ज़बर्दस्त अवसर मिलता है। मुमकिन है इस युद्ध से सारे यूरोप के देशों की एक 'यूनाइटेड स्टेट्स आफ़ रिपब्लिकन यूरोप' नामक सरकार क़ायम हो सके। लेनिन ने ऐलान किया कि बिना मुल्कों के राष्ट्रीय सांचों को तोड़े हुए पूंजीवादी सरकारों की जगह साम्यवादी सरकार क़ायम नहीं हो सकती; जिस तरह बग़ैर राष्ट्र की भावनाएं पैदा हुए सामन्तशाही की जगह पूंजीवादी सरकार नहीं क़ायम हो सकती।

रूस की सफल क्रान्ति के बाद लेनिन ने ऐलान किया कि पूंजीवादी राष्ट्रों के आपस के मतभेद चाहे जितने बड़े दिखाई दें, किन्तु आधुनिक दुनिया में असली मौलिक मतभेद पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच में है। लेनिन के अनुसार कभी न कभी इन दोनों में से कोई प्रणाली विजयी होगी; और रूस को सदा पूंजीवादी हमले से सतर्क रहना चाहिये। रूस को अमन क़ायम करने की कोशिश करनी चाहिये, मगर साथ ही साथ उसे साम्यवादी पितृभूमि की रक्षा के लिए भी तत्पर रहना चाहिये और उसकी अमन की ख़्वाहिश सोवियत् राष्ट्र की रक्षा के लिए फ़ौजी आक्रमणों के रास्ते में रुकावट न होनी चाहिये। जो लोग ऐसे फ़ौजी आक्रमणों का विचार तक छोड़ देना चाहते हैं, वे न केवल मूर्ख हैं, बल्कि मुजरिम हैं।

पिछले महायुद्ध के बाद यूरोपीय राजनीति हमेशा रूसी साम्यवाद के ख़तरे से डरती रही। रूस के महायुद्ध के दोस्तों ने रूस की नाकाबन्दी करके उसे बेदम करना चाहा; पर उन्हें इस बात में कामयाबी न मिल सकी। रूस ने भी धीरे-धीरे एशिया और यूरोप के मामलों में दख़ल देना शुरू किया। पश्चिमी शक्तियों ने उसके असर को कम करने की कोशिश की और कुछ हल्क़ों को इस बात का विश्वास था कि अन्त में सोवियत् सरकार का नाश हो जायगा और संसार साम्यवाद के ख़तरे से मुक्त हो जायगा।

रूस और साम्यवाद के इस डर को ही हिटलर ने बड़ी सावधानी और चतुराई के साथ इस्तेमाल किया। उसने ऐलान किया कि साम्यवाद पच्छिमी सभ्यता का दुश्मन है और नाज़ीवाद साम्यवाद का मुक़ाबला करने में अपने प्राणों की बाज़ी लगा देगा। हिटलर पश्चिमी सभ्यता का एक नया मसीहा माना जाने लगा; देश और विदेश में उसके बेशुमार भक्त पैदा हो गए। स्पेन के गृह-युद्ध को लेकर जर्मनी और इटली को फ्रेंको को मदद देने का मौक़ा मिला। फ्रांस और ब्रिटेन इच्छा रहते हुए भी स्पेन की रिपब्लिकन पार्टी को इसलिए मदद नहीं दे सके कि उन्हें साम्यवाद के फैलने का ख़तरा दिखाई दे रहा था। इस तरह पूंजीवाद और साम्यवाद के परस्पर भय ने नाज़ीवाद की जड़ें मज़बूत कीं।

इस तरह पिछले बीस बरस में एक ओर रूस और दूसरी ओर फ्रांस, ब्रिटेन और अमरीका में कोई प्रेम नहीं रहा। सच पूछा जाय, तो बोलशेविक क्रान्ति के बाद रूस के साथ पहले जिन दो मुल्कों ने प्रेम सम्बन्ध क़ायम किया, वे थे—जर्मनी और तुर्की। जर्मनी और रूस के मौजूदा सम्बन्ध को समझने के लिए यह निहायत ज़रूरी है। बिस्मार्क के समय से, जिसने सन् १८७१ में जर्मन राष्ट्र की बुनियाद डाली, रूस की ओर जर्मन नीति दो मुख्य बातों से प्रभावित होती रही। एक यह कि जर्मनी रूस को कच्चे माल और खाने की जिनिस का अपने लिए प्रधान स्रोत समझता है, और जहां जर्मनी का बना हुआ माल सरलता से बिक सकता है। दूसरी बात यह कि जर्मनी को अपनी दोनों सीमाओं पर लड़ाई का ख़तरा है और वह अपनी पूर्वी सीमा पर लड़ाई लड़ने को तैयार नहीं। जब अगस्त सन् १९३९ में हिटलर ने रूस के साथ समझौता किया, तो उसने जर्मनी को दुतरफ़ा लड़ाई के ख़तरे से बचा लिया और जर्मनी के लिए रूस से कच्चे माल और खाने-पीने की चीज़ों का भी प्रबन्ध कर दिया।

सोवियत्-जर्मन समझौते के नतीजे

पिछले बीस महिने की लड़ाई की रोशनी में सोवियत्-जर्मन समझौते पर हमें ग़ौर करना होगा। सोवियत् के युद्ध-मन्त्री मार्शल तिमोशेंको ने पिछले दिनों बयान देते हुए सोवियत् सरकार की सुलह और ग़ैर जानिबदारी को व्यक्त किया; मगर साथ ही साथ दुनिया की क्रान्ति में सोवियत् की सतर्कता पर ज़ोर देते हुए कहा,—"सोवियत् यूनियन ने अपनी सरहदों को बढ़ाया है, मगर जो कुछ हमने हासिल किया है, उससे हमें सन्तोष नहीं हो सकता। सोवियत् के सरकारी हलके में हिटलर की यूरोपीय नई व्यवस्था के बारे में जो राय निकली है, उसका सार इस प्रकार है—

(१) सोवियत् की रक्षा की चिन्ता :—

सोवियत् सरकार का इस बात पर विश्वास नहीं है—कि दूसरे महायुद्ध के अब तक जो नतीजे हुए हैं, उनसे सोवियत् की रक्षा की सम्भावना बढ़ गई हो। सोवियत् सुप्रीम कौंसिल के सभापति श्री मिखाइल केलीनिन ने रेड आर्मी के सामने व्याख्यान देते हुए कहा, 'हम एक घिरे हुए क़िले की तरह हैं; हालांकि यह क़िला बहुत बड़ा है, दुनिया का छठवां हिस्सा, मगर बाक़ी पांच हिस्से दुनिया हमारी भयङ्कर शत्रु है।' उन्होंने अनन्त सतर्कता पर ज़ोर दिया।

(२) निष्पक्षता की नीति :—

सोवियत् सरकार को इस बात का गर्व है कि उसने लड़ाकुओं के बीच में बेलेंस रख कर अपने आपको लड़ाई से बचा रक्खा है। जर्मनी, इटली और जापान के २७ सितम्बर के समझौते पर कम्युनिस्ट पार्टी के मुख पत्र 'प्रवदा' ने लिखा था कि यह त्रिराष्ट्र सन्धि इंगलैण्ड और अमरीका के सम्मिलित हमले को रोकने के ख़याल से की गई है और इससे लड़ाई का विस्तार बढ़ेगा। सोवियत् को इस सन्धि से कोई आश्चर्य नहीं हुआ और सोवियत् को जर्मन सरकार ने इसकी पहले से इत्तला दे दी थी। यह ख़ुशी की बात है कि धुरी राष्ट्रों ने अपने समझौते

की धारा पांच में सोवियत् यूनियन की निष्पक्षता के प्रति आदर दिखाया है। सन् १९३९ में मास्को ने जर्मनी के साथ जो समझौता किया था, उसके अनुसार उसे ख़याल था कि दोनों दल लड़कर चूर हो जाएंगे और मास्को की शक्ति बढ़ेगी; किन्तु जर्मनी की जीत पर जीत होने से मास्को की आशंका बढ़ने लगी। स्टालिन को यह ख़याल पैदा हुआ कि रूस के चिर शत्रु अंग्रेज़ और जर्मनी अपनी लड़ाई को बलकान की ओर मोड़ कर रूस को उसमें फंसा देंगे। जुलाई १९४० में जब जर्मनी ने पेरिस पर क़ब्ज़ा किया, तो हिटलर ने एक ऐसे फ्रांसीसी उल्लेख-पत्र का ज़िक्र किया, जिसके अनुसार इंगलैण्ड और फ्रांस तुर्की और ईरान की मदद से काकेशस में रूस के तेल के कुओं पर हमला करने वाले थे। इस बात का मास्को पर बहुत असर पड़ा। मास्कोने कोशिश की कि हिटलर की नई व्यवस्था में तुर्की और यूगोस्लेविया शामिल न हों। इन दोनों मुल्कों के लड़ाई में शामिल हो जाने से पश्चिमी मुल्कों को इन देशों को अड्डा बना कर रूस पर हमला करने का मौक़ा मिलेगा।

(३) सीमा विस्तार :—

फिनलैण्ड को छोड़कर हर जगह बिला लड़ाई रूस ने अपनी सीमाएं बढ़ाई। ३ नवम्बर सन् १९३९ को पोलैण्ड के पश्चिमी हिस्से को रूस में मिला लिया गया। इसका क्षेत्रफल ७७,७०३ वर्ग मील और आबादी १,२०,००,००० है। सोवियत् फिनलैण्ड की लड़ाई ३० नवम्बर सन् १९३९ को शुरू हुई और दोनों में १२ मार्च १९४० को मास्को में सन्धि हुई। मास्को की इस सन्धि के अनुसार फिनलैण्ड को करेलियन इस्थमस मय फिनलैण्ड के दूसरे बड़े शहर वाइबर्ग और मैनरहिम की क़िलेबन्दी के, रूस को दे देने पड़े। लाडोगा की झील, जो यूरोप की सब से बड़ी झील है और आर्कटिक के समुद्र तट का एक भाग, जिसमें पेतसामो का गरम पानी का बन्दरगाह भी शामिल है, रूस को दिये गए। फिनलैण्ड की खाड़ी में हैंगो प्रायद्वीप ३० बरस के लिए पट्टे पर रूस को दिया गया। इसके एवज़ में रूस को ८० लाख फ़िनिश सिक्के देने होंगे। यहां पर रूस का जहाज़ी और फ़ौजी अड्डा बनेगा। फिनलैण्ड को इस बात पर भी राज़ी होना पड़ा कि श्वेत सागर से फिनलैण्ड होते हुए केमीजीर्वि तक, जो फिनलैण्ड और स्वीडन की सरहद है, रेलवे लाइन बनानी पड़ेगी, जिससे बग़ैर चुङ्गी लिये हुए रूसी माल को नार्वे जाने देना होगा। इसके अतिरिक्त फिनलैण्ड को यह वादा करना पड़ा कि वह सिवाय यात्रा के जहाज़ों के न तो जंगी जहाज रखेगा और न पनडुब्बियें। जो इलाक़ा फिनलैण्ड का रूस के क़ब्ज़े में आया, उसमें महत्व पूर्ण खाने हैं। इस इलाक़े की केवल एक फ़ी सदी फ़िनिश आबादी ने
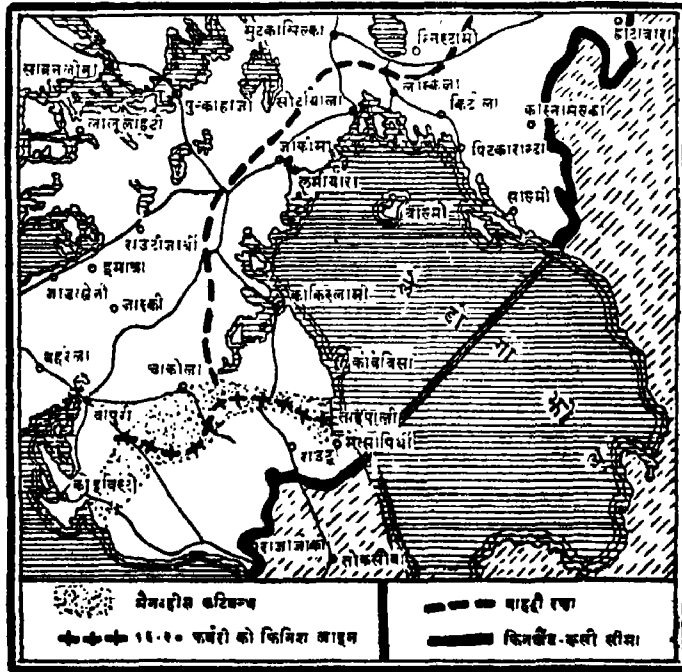
कारेलियन स्थलसंयोजक की स्थिति

रूस में रहना स्वीकार किया और बाक़ी चार लाख फ़िनलैण्ड की जनता फ़िनिश इलाक़े में चली गई। ३१ मार्च सन् १९४० को सोवियत् फ़रमान के मुताबिक़ ये इलाक़ा 'यूनाइटेड करेलो फ़िनिश सोशलिस्ट

२३ फर्वरी १९४० के
रूस और फिनलैंड की सीमा

रिपब्लिक' के नाम से सोवियत् में मिला दिया गया। दोनों मुल्कों ने एक दूसरे से हर साल ७५ लाख डालर का माल ख़रीदने का वादा किया। फिनलैण्ड बिजली का सामान, तांबे के तार, चमड़ा, काग़ज़, मक्खन, गोश्त रूस भेजता है और रूस ने गेहूं, राई, तेल, मेंगनीज़, रुई और तम्बाकू फिनलैण्ड भेजने का वादा किया है। फिनलैण्ड ने ये भी वादा किया कि वह आलैण्ड द्वीप की क़िलेबन्दी को तोड़ देगा।

२६ जून को कम्पेन में फ्रांस और जर्मनी की क्षणिक संधि के बाद ही रूस ने फ़ौरन रूमानिया को नोटिस दिया कि वह बेसराबिया और उत्तरी बुकोविना के ज़िले फ़ौरन ख़ाली कर दे। मास्को ने इन ज़िलों को ऐतिहासिक और राष्ट्रीय दृष्टि से रूसी इलाक़ा बताया। बेसराबिया एक ग़रीब इलाक़ा है। इसका क्षेत्रफल १७,१५१ वर्ग मील है। सन् १८१२ से सन् १९१८ तक यह रूसी साम्राज्य का अंग था, जब रूमानिया ने उस पर ज़बर्दस्ती क़ब्ज़ा कर लिया। सोवियत् सरकार ने रूमानिया के इस काम को कभी न्यायोचित नहीं समझा। बुकोविना में ४,७६००० रूसी आबादी है और वह ज़बान और क़ौमियत के लिहाज़ से रूसी है।

इसके दो हफ़्ते बाद १४ और १५ जुलाई को एस्तोनिया, लेटविया और लिथूनिया, जहां सोवियत् यूनियन ने हवाई और जहाज़ी अड्डे क़ायम करने की सुविधा हासिल करली थी, ख़ुद अपनी राय से सोवियत् यूनियन में शामिल हो गए। तीन, पांच और छः अगस्त को ये तीनों राष्ट्र ज़ाब्ते से सोवियत् के अंग बन गए। विशेषज्ञों के अनुसार ये तीनों राष्ट्र जर्मनी के ख़िलाफ़ सोवियत् की रक्षा-चौकी का काम करेंगे। इन मुल्कों में ज़मीन का बटवारा नये सिरे से हो रहा है।

सोवियत् की विजयों पर ब्रिटेन और अमरीका की निन्दा :—

सोवियत् के सीमा-विस्तार की ब्रिटेन और अमरीका ने घोर निन्दा की। इन दोनों साम्राज्यवादी देशों ने रूस की इन नई विजयों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। इस बात से भी रूस और मित्र राष्ट्रों का आपसी सम्बन्ध मैत्री पूर्ण न हो सका। २२ जुलाई को अमरीका के स्थानापन्न वैदेशिक मन्त्री

मि० सुमनर वेलेस ने इस बात का ऐलान किया कि 'सोवियत् ने कुटिल चालों से बलकान राष्ट्रों को विध्वंस किया। अमरीका की जनता सोवियत् की इस नीच हरकत को कभी स्वीकार न करेगी।' इसके बाद अमरीका ने बाल्टिक मुल्कों की १,७०,००००० डालर की जो मिल्कियत अमरीका में थी, उसे ज़ब्त कर लिया। ब्रिटिश सरकार ने भी लगभग ५ करोड़ रुपये की इन मुल्कों की जायदाद और ३० जहाज़ हड़प लिये। सोवियत् के प्रीमियर मोलोतोव ने १ अगस्त की अपनी तक़रीर में अमरीका और इङ्गलैण्ड की इस हरकत को ग़ैर क़ानूनी और डाकेज़नी बताया था।

बाल्टिक तट के अल्पायु राज्य

मगर बल्कान में जर्मन कामयाबियों के बाद, और जापान के दक्षिण-पूर्व एशिया की ओर बढ़ने के अन्देशे से ब्रिटेन और अमरीका ने रूस के साथ फिर से दोस्ती गांठने का मन्सूबा किया। सर स्टेफर्ड क्रिप्स को ब्रिटिश एम्बेसेडर बना कर मास्को भेजा गया। मास्को में ब्रिटिश राजदूत से और वाशिंगटन में सोवियत् राजदूत से कई महीने बात चीत चली; मगर अभी तक उसका कोई नतीजा नहीं निकला। इन बहसों का नतीजा यह हुआ कि अमरीका और सोवियत् में, और इङ्गलैण्ड और सोवियत् में क्षणिक व्यापारिक समझौते हो गए हैं। सन् ३९-४० में सोवियत् ने ६,७७,७९००० डालर का माल और अमरीका ने २,३९,१६००० डालर का माल रूस से ख़रीदा।

सोवियत्-जर्मन व्यापार

अब कि इङ्गलैण्ड और रूस का व्यापारिक सम्बन्ध निश्चित रूप से तय नहीं हो पाया, जर्मनी को इस बात का सन्तोष है कि रूस ने अपने वादे को पूरा किया। १९३९ में रूस ने इस बात का वादा किया था कि वह ७,२०,००००० डालर का कच्चा माल दो बरस में जर्मनी को देगा और उसके बदले में जर्मनी ने ८ करोड़ डालर की मशीनें देने का वादा किया। जर्मनी ने रूस से ये भी प्रार्थना की है कि २ करोड़ पौंड का जो माल रूस इङ्गलैण्ड भेजता था, वह भी जर्मनी को दे दे, मगर अभी तक ऐसा मालूम होता है कि रूस इसके लिये तैयार नहीं; वह अपने लिये भी कुछ बचा कर रखना चाहता है।

मास्को भविष्य में क्या करेगा?

मास्को की भविष्य में क्या नीति होगी, इसे ठीक तरह समझने के लिये यह बात ध्यान में रखना ज़रूरी है कि मास्को जर्मनी और दूसरी शक्तियों को अपना बुनियादी दुश्मन समझता है और उसका विश्वास है कि कभी न कभी ये शक्तियां मिल कर या अकेले सोवियत् पर हमला करेंगी। रूस की इस नीति में जर्मनी के प्रति तब्दीली भी हो सकती है, यदि रूस ने यह देखा कि जर्मनी भी उसी क्रान्ति के भीतर से होकर गुज़र रहा है, जिसके भीतर से सन् १९१७ में रूस गुज़रा था। रूसी-जर्मन समझौते के बाद
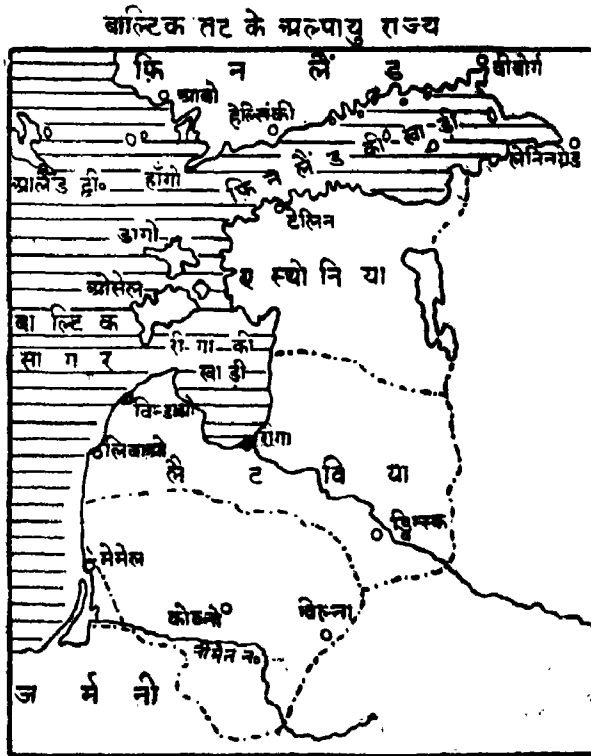
हिटलर मज़दूरों की तरफ़दारी में स्टालिन से भी एक क़दम आगे बढ़ना चाहता है। साम्यवादियों का ख़याल है कि नाज़ीवाद पतनोन्मुख पूंजीवाद की आख़िरी सीढ़ी है। सवाल यह है कि दोनों दुश्मनों में से मास्को के लिये कौन सब में ज़्यादा ख़तरनाक है?

पिछले महायुद्ध के बाद जब जर्मनी कमज़ोर था और मित्र राष्ट्र मज़बूत, तो सोवियत् को मित्र राष्ट्रों का डर था। मित्र राष्ट्रों ने उस वक़्त साइबेरिया, क्रीमिया और उत्तरी रूस में अनुचित हस्तक्षेप किया था! जब १९३९ में हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी मज़बूत और मित्र राष्ट्र कमज़ोर हो चले, तो रूस को जर्मनी से ख़दशा हो चला। इस ख़याल से वह लीग आफ़ नेशन्स में भर्ती हुआ था, मगर जब उसने देखा कि फ्रांस और ब्रिटेन ने जर्मनी को आस्ट्रिया और चेकोस्लोवेकिया पर क़ब्ज़ा कर लेने दिया और हिटलर को पूर्वी यूरोप की ओर बढ़ने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया, तो उसे दोनों की तरफ़ से शंका हो गई। मित्र राष्ट्रों की मदद की उम्मीद उसकी जाती रही और जर्मनी के पूर्वी हमले से बचने के लिये उसने हिटलर के साथ ग़ैर जानिबदारी का समझौता कर लिया और अपनी रक्षा की तैयारी में लग गया।

जर्मनी और इङ्गलैण्ड के हमलों से सुरक्षित होने का मतलब यह नहीं कि सोवियत् को जर्मनी का कोई ख़तरा नहीं रहा या वह एशिया की नई व्यवस्था को स्वीकार करता है। इसके विपरीत आज उसे जर्मनी से कहीं अधिक ख़तरा दिखाई देता है। जर्मनी आज पूरे यूरोप पर हावी है। मगर इस वक़्त मास्को हिटलर से लड़ाई मोल लेने को तैयार नहीं है। वह जर्मनी, ब्रिटेन और अमरीका तीनों से एक साथ समझौते की बात चीत करके अपने को लड़ाई के ख़तरे से महफ़ूज़ रखना चाहता है।

मास्को का यह ख़याल है कि इस दूसरे महायुद्ध को न इङ्गलैण्ड जीत सकेगा और न जर्मनी। दोनों एक दूसरे से लड़ कर इतना पस्त हो जाएंगे कि फिर उनसे रूस को बरसों तक किसी तरह का ख़तरा न रह जायगा। उसे दोनों में से किसी की जीत में ख़ुशी नहीं है। इसलिये मास्को एशिया और यूरोप की इन लड़ाइयों से क़तई अलहदा रहेगा और सिर्फ़ वहीं दख़ल देगा, जहां उसकी अपनी सीमाओं पर चोट पड़ेगी, जैसा उसने चीन, पोलैण्ड, बाल्टिक राष्ट्र और रूमानिया के सम्बन्ध में किया है या आगे यूगोस्लेविया या तुर्की के सम्बन्ध में कर सकता है।

२३ नवम्बर को मालूम होता था कि बल्गेरिया धुरी राष्ट्रों में शामिल होकर तुर्की और यूनान से उलझ पड़ेगा। बल्गेरिया के अख़बार ज़ोर से तुर्की और यूनान के खिलाफ़ लिखने लगे। २५ नवम्बर को सोवियत् के वैदेशिक मन्त्री के प्रतिनिधि आर्कोडी सोबोलेव सोफ़िया आये और उन्होंने शाह बोरिस से मिलकर उसे यह साफ़-साफ़ बताया कि सोवियत् बल्कान में लड़ाई को बढ़ाने के खिलाफ़ है। सोबोलेव के रवाना होते ही बल्गेरिया के पत्रों में यूनानी और तुर्की विरोधी वक्तव्य बन्द हो गए। यही नहीं, इसके बाद सोफ़िया और अंकारा में आपसी सुलहनामे की चर्चा चल पड़ी।

एक ओर सोवियत् वक़्तन-फ़वक़्तन इस तरह का दख़ल देता रहेगा, और दूसरी ओर उस अवसर की तलाश में रहेगा, जब नाज़ी शासन से थक कर यूरोप की जनता सोवियत् प्रणाली का स्वागत करने को तैयार होगी। सोवियत् लेनिन के उस आदेश को अब भी अपना आदर्श समझता है कि साम्राज्यवादी युद्ध को गृह-युद्ध में बदल दो और इस तरह के गृह-युद्ध में सोवियत् रूस संसार की महान् क्रान्ति का झंडाबरदार बने। दूसरी ओर नाज़ी यह कहते हैं कि यदि जर्मनी हार गया, तो यूरोप में साम्यवाद फैल जायगा, जहां कि जनता अब भी साम्यवाद को एक हौवा समझती है। धीरे-धीरे यूरोप की जनता ये समझ जायगी कि नाज़ीवाद का लक्ष्य भी उतनी ही बड़ी क्रान्ति करना है, जितना कि साम्यवाद का और नाज़ी लेनिन के उस आदेश को साम्यवादियों से कहीं अधिक अच्छी तरह पूरा कर सके हैं, जिसमें लेनिन ने यह कहा था कि साम्राज्यवादी मुल्कों के आपसी मतभेदों से फ़ायदा उठाओ।

क्या वे क़त्ल कर दिये गये ?

यूगोस्लेविया की एक युद्ध की कहानी

श्री ईवान कैङ्कर

सोने से पहले रोज़ बच्चे आपस में गपशप किया करते थे। वे भट्टी के पास चबूतरे के चौड़े किनारे पर बैठ जाते और फिर मनमानी गपशप लड़ाया करते। छोटे झरोखे से फूलती सन्ध्या का प्रकाश-पुंज कमरे को भर देता और फिर कमरे का कोना कोना चित्र-विचित्र कहानियों से गुनगुना उठता।

जो कुछ भी मन में आता बच्चे कह डालते। लेकिन उनके मन में सुन्दर विचार ही आते। वे सूर्य के धवल तथा आशापूर्ण प्रकाश और ओज की कहानियां कहते। बड़े दिन से ईस्टर तक के सारे दिन उनके लिये मांगलिक थे। सारा भविष्य ही उनके लिये आनन्दमय अवकाश-काल था। उनके अन्दर था जीवन और थी गति। फूलों की झाड़ी के पीछे बैठ कर वे आनन्द से बहुत धीरे-धीरे बात चीत करते। कोशिश करने पर भी उनके शब्द पूरी तरह समझ में न आते। उनकी कहानियों का न आदि होता और न अन्त। और न तो वे अपनी कहानियों को कोई निश्चित स्वरूप ही दे पाते। कभी-कभी तो चारों बच्चे एक साथ ही बोलने लगते, पर इससे किसी को बाधा न होती। बाल-हृदय स्वर्गीय प्रकाश से आलोकित था, जहां प्रत्येक शब्द साफ़ और सत्य मालूम पड़ता, जहां प्रत्येक कहानी सजीव होती और उसका अन्त भी उज्वल होता।

चारों बच्चों की शक्ल एक दूसरे से बिल्कुल मिलती जुलती थी। संध्या के धुंधले प्रकाश में चार साल के टांकेक और दस साल के लाज़क में अन्तर करना कठिन था। चारो बच्चों के मुंह लम्बे और पतले थे। उन की बड़ी-बड़ी आंखें उनके हृदय के भावों की दर्पण थीं।

बच्चे बड़े खुश थे। उनके जीवन में स्वर्गीय आनन्द था। वे अपने भविष्य की कथा, कहानियों और मनोरम कल्पनाओं से अतिरंजित करते और फिर वे अपने सुनहले संसार को अपनी किलकारियों से गुंजा देते। इस प्रकार प्रतिदिन बच्चों की दिन-चर्या समाप्त होती। लेकिन उस दिन शाम को बच्चों के कोमल हृदय को बड़ा धक्का लगा। डाकिये ने ख़बर दी कि इटली के साथ लड़ते हुए उनके पिता वीर गति को प्राप्त हुये। अज्ञात देश से आई हुई इस ख़बर ने उनके काल्पनिक आनन्द के प्रवाह को रोक दिया। उनकी कहानियों को काठ सा मार गया। बच्चे स्तब्ध से रह गये। उनके लिये यह सन्देश एक अज्ञात और विचित्र पहेली सा था। वे ऐसी ख़बरों से अपरचित थे। इसका सम्बन्ध न तो बाज़ारू चंचल जीवन से और न तो स्वप्निल गोधूली तथा मनोरम कहानियों से ही था। फिर भी यह सूचना उनकी कल्पना पर छा गई थी।

यह ख़बर मनोरंजक न थी। फिर भी इसको दुखदायी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि बच्चों की कल्पना इससे अछूती थी। वे इससे अनभिज्ञ थे। फिर भी यह उनके भय का कारण थी, वे अवाक थे। उनके सामने यह अशुभ सन्देश एक दानव के रूप में खड़ा था।

—'पिताजी कब आयेंगे ?' टांकेक ने शंकित हो कर पूछा।

—'वे तो वीरगति को प्राप्त हो गये। वे अब कैसे आ सकते है ?' भौंहें सिकोड़ते हुये लाज़क ने कहा। सब शून्य में विलीन हो गया। बच्चे शान्त थे, उनके सम्मुख वही भावना एक डरावनी काली दीवार की तरह खड़ी थी ! वे सब इसी में उलझे थे।

—'मैं भी युद्ध में जाऊंगा', सात साल का मैटिक बोल उठा मानों उसने मार्ग पा लिया हो। उस समय यही कहा भी तो जा सकता था।

—'तुम बहुत नादान हो'। टाँकेक ने गम्भीर होकर कहा।

—'युद्ध क्या है ?' डरते-डरते धीरे से मिल्का ने पूछा। मिल्का सबसे दुबली पतली थी। अपनी अम्मा के बड़े दुशाले को ओढ़े हुये वह इस समय एक मुसाफ़िर की गठरी सी लगती थी। मैटिक ने जवाब दिया—'लड़ाई में लोग एक दूसरे को छुरा भोंकते हैं, तलवार से गला काट देते हैं, एक दूसरे पर गोली चलाते हैं, और बम बरसाते हैं। जो जितना अधिक वध करता है, वह उतना ही अच्छा समझा जाता है। इसके लिये कोई किसी को कुछ भी नहीं कहता। लड़ाई में ऐसा ही होता है। इसी को लोग युद्ध कहते हैं।'

—'लेकिन लोग एक दूसरे की हत्या क्यों करते हैं ?' फिर मिल्का ने पूछा।

—'देश के लिये'; मैटिक ने कहा।

सब चुप थे। उनकी धुंधली आँखों के सामने एक विशाल वस्तु 'देश की कल्पना', गौरव की ज्योति से दीप्तिमान हो उठी। बच्चे इस समय ऐसे शान्त और स्थिर थे, जैसे कि लोग प्रार्थना के समय गिरजा में रहते हैं।

—मैं भी शत्रु से लड़ने जा रहा हूं' उस घोर शान्ति को भंग करते हुये मैटिक ने ज़ोर से कहा।

—'शत्रु कैसा होता है ! क्या उसके सींग होती है ?' मिल्का की धीमी आवाज़ गुनगुना उठी।

—'हां, अवश्य उसके सींग होती है। नहीं तो उसको शत्रु ही कैसे कहेंगे।' आवेश से टाँकेक ने कहा। इस समय मैटिक को भी कोई समुचित उत्तर न सूझ पड़ा।

—'उसके सींग होती है ? मैं तो ऐसा नहीं समझता।' मैटिक ने अनिश्चित रूप से रुकते हुये कहा।

—'उसके सींग कैसे हो सकती हैं ! वह भी तो हमी लोगों जैसा हाड़-मांस का होता है।' अनिच्छा पूर्वक लाज़क ने कहा।

—'लेकिन उसकी आत्मा नहीं होती ?' पुनः गम्भीरता पूर्वक सोचकर उसने कहा।'

—'युद्ध में आदमी कैसे गिरता है ?' पीछे की ओर झुक कर गिरने का अभिनय करते हुये—क्या इस प्रकार ?' बहुत देर स्तब्ध रहने के उपरान्त चार साल के टांकेक ने प्रश्न किया।

—'युद्ध में आदमी गिरता नहीं, उसे जान से मार डालते हैं' धीरे-धीरे मैटिक ने कहा।

—'पिता जी ने मेरे लिये एक बन्दूक़ लाने को कहा था।'

—'वे तो युद्ध में मार डाले गये, तुम्हारे लिये बन्दूक़ कैसे लावेंगे ?' लाज़क ने कहा।

—'क्या वे क़त्ल कर दिये गये ?'

—'हां'।

बच्चे शान्त थे। उनकी विशाल आँखें अन्धकार में देख रहीं थीं। उनके चारों ओर दुःख और निराशा का साम्राज्य था। वहीं झोपड़ी के सामने बेंच पर बूढ़े दादी और दादा बैठे हुये थे। सूरज की अन्तिम रक्तिम किरणें काली पत्तियों से छन कर बाग़ में बिखर रही थीं। सन्ध्या की नीरवता पशुशाला से निकलती हुई लम्बी हिचकियों से भंग हो रही थी। टांकेक की मां सिसक रही थी।

दोनों वृद्ध सिर झुकाये बैठे थे। वे एक दूसरे के हाथों को ऐसे पकड़े हुये थे, मानों बहुत दिनों बाद मिल रहे हों। उनकी आंखों में आँसू न थे। वे शान्त भाव से शून्य में देख रहे थे।

सभ्यता का सङ्कट काल

गत १४ अप्रैल को शान्तिनिकेतन में गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की ८०वीं वर्ष गांठ का महोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर गुरुदेव ने नीचे लिखा अत्यन्त मार्मिक सन्देश दुनिया को दिया।

इस वर्ष के आगमन के साथ-साथ मैंने अपनी ज़िन्दगी के ८० वर्ष समाप्त कर लिये। इस समय जिस मंज़िल पर मैं पहुंचा हूं, यहां से बहुत साफ़ मैं अपनी ज़िन्दगी के बीते हुए काल पर नज़र डाल सकता हूं। जब मैं अपनी ज़िन्दगी के शुरु और उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि पर और अपने देशवासियों की मानसिक स्थिति पर नज़र डालता हूं, तो मुझे पिछले ज़माने और इस वक्त की स्थिति में एक साफ़ मौलिक परिवर्तन दिखाई देता है। मेरी बात पर विश्वास कीजिये, इस परिवर्तन से मुझे ज़बर्दस्त व्यक्तिगत कष्ट पहुंचा है।

बाहरी दुनिया के साथ हमारे सीधे राह-रस्म और उन अंगरेज़ों के समकालीन इतिहास से सम्बन्ध है, जिनके सम्पर्क में हम उस शुरू ज़माने में आये। हमारे देश में आये हुये इन अजनबियों के साहित्य से हमने इनके मुताल्लिक़ बहुत कुछ अपनी राय बनाई। उस ज़माने में जो हमें शिक्षा दी जाती थी, उसमें न कोई विशेषता होती थी न भिन्नता और न उसमें वैज्ञानिक अनुसन्धान की भावना ही थी। शिक्षा का इतना छोटा दायरा था कि पढ़े-लिखे लोग अङ्गरेज़ी भाषा और साहित्य को ही शिक्षा का आधार बनाते थे। उनके दिन और उनकी रातें बर्क की तक़रीरों से गूंजती थीं। मैकाले के लम्बे-लम्बे वाक्य, शेक्सपीयर के नाटकों पर बहसें, बायरन की कविता और उन्नीसवीं सदी की अंगरेज़ी राजनीति की उदार वृत्ति हमारे सामने थी।

अंगरेज़ों की सहृदयता

हालांकि अपनी आज़ादी हासिल करने की हमारी दृढ़ कोशिशें चल रही थीं; फिर भी अङ्गरेज़ क़ौम की सद्भावना और उदारता पर हमारा विश्वास न हटा था।

हमारे नेताओं के दिलों में इस विश्वास ने गहरी जड़ें पकड़ ली थीं और उन्हें उम्मीद थी कि विजेता खुद पराजितों की आज़ादी के लिये रास्ता बना देगा।

इस विश्वास की बुनियादें थीं, क्योंकि इङ्गलैण्ड उस समय सारी दुनिया के मुसीबतज़दों को अपने यहां आश्रय देता था। जो शख्स अपने देश की एकता और आज़ादी की कोशिशें करता था, वह अङ्गरेज़ों से खुले दिल से स्वागत पाने की उम्मीद कर सकता था। उनके चरित्र में परोपकार के पवित्र आदर्श दिखाई दिये और मेरे दिल में उनकी ज़बरदस्त इज्ज़त होगई। उनके स्वभाव की उदारता उस समय तक साम्राज्यवादी अभिमान से दूषित नहीं हुई थी। सब में विशेष बात यह थी कि जब हमें विदेशियों में यह उदारता दिखाई दी, हमने मुक्त-हृदय से उसकी प्रशंसा की।

मानवता के श्रेष्ठ और उदार गुणों पर किसी एक क़ौम या एक मुल्क का अनन्य अधिकार नहीं होता। उनका क्षेत्र सीमित नहीं होता, न कंजूस के धन की तरह वे ज़मीन में दफ़न करके रखे जा सकते हैं।
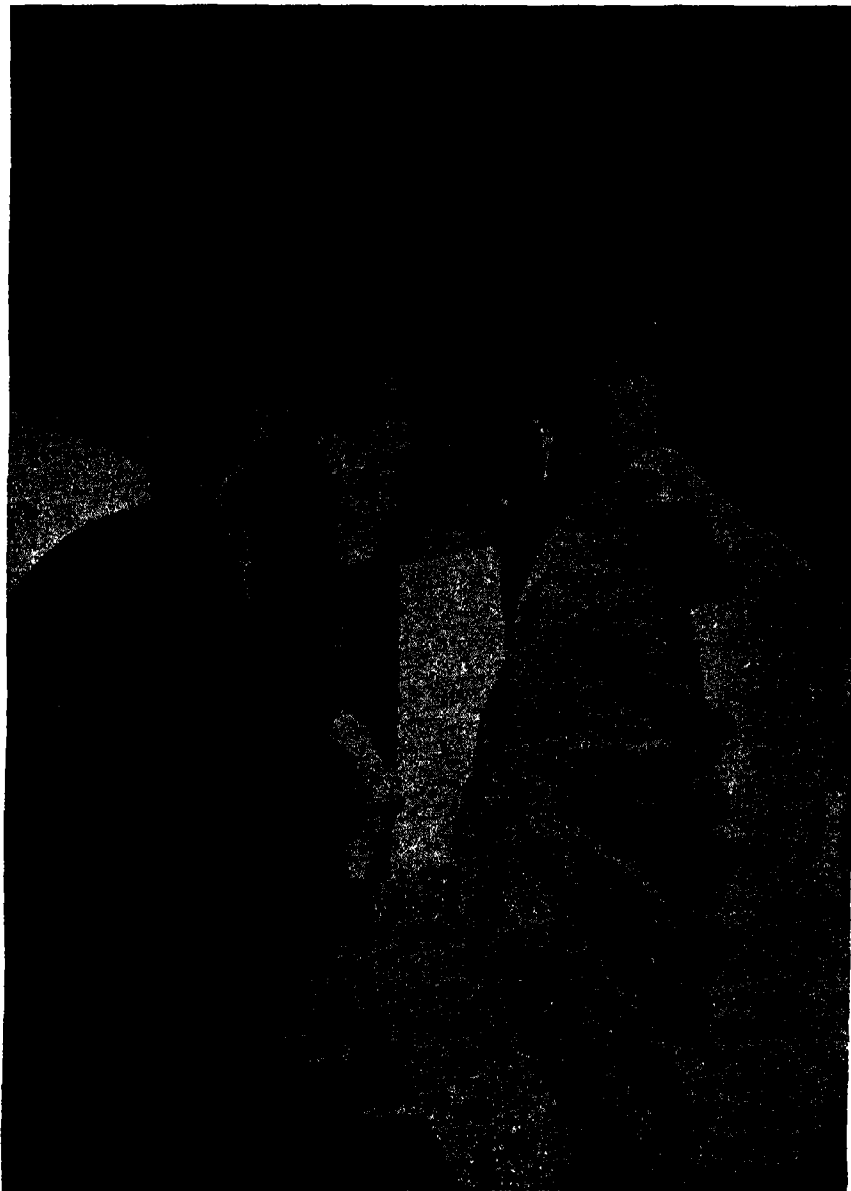
गुरुदेव और गान्धी जी

श्री नवीन गान्धी के सौजन्य से]

इसीलिये अङ्गरेज़ी साहित्य, जिसने बचपन में हमारे दिमाग़ों को पुष्ट बनाया था अब भी हमारे दिलों के अन्दर अपनी उदार भावना का असर डालता है।

सभ्यता

अङ्गरेज़ी शब्द 'सिविलीज़ेशन' (सभ्यता) के लिये मुझे कोई उपयुक्त बंगला शब्द नहीं मिलता। इस मुल्क में इस शब्द का अर्थ था सदाचार। दूसरे शब्दों में कुछ नैतिक नियमों का पालन ही सभ्यता थी। ये नैतिक नियम भौगोलिक सीमाओं के अन्दर ही पैदा हुए। सरस्वती और द्रिसद्वती नदियों के बीच के देश ब्रह्मवर्त को पीढ़ियों तक जिन नियमों ने बांध रखा था, सदाचार के वे ही नियम आमतौर पर समाज को चलाते थे। या यं कहिये कि हमारे पूर्वजों ने, जो नियम बनाये और लौकिक रूढ़ियों और परम्पराओं ने जिनको क्रम बद्ध किया, चाहे वे नियम कितने ही हृदय शून्य और अन्याय से भरे हुए रहे हों, उन्हीं पर समाज चलता था। इस तरह स्वतन्त्र विचारों और सदाचारों के आदर्श पर लोकाचार हावी हो गया और ब्रह्मवर्त में मनु के बनाये हुए सदाचार नियम सामाजिक अत्याचारों में बदल गये।

मेरे बचपन के दिनों में अङ्गरेज़ी शिक्षा पाये हुए बंगाल के शिक्षित और सभ्य समाज में इन लोकाचार के नियमों के विरुद्ध बग़ावत की भावना ने घर किया। उस समय के शिक्षित वर्ग के सम्बन्ध में श्री राजनरायन बोस ने जो कुछ लिखा है, उससे मेरे इस बयान का समर्थन होता है। सदाचार के नियमों की जगह अङ्गरेज़ों के चरित्र में जो सभ्यता का आदर्श दिखाई दिया उसको हमने स्वीकार किया।

हमारे अपने परिवार में भी इस बदली हुई भावना का स्वागत किया गया। इसकी युक्ति-पूर्ण विचार-धारा हमारे सारे जीवन को प्रभावित करने लगी। मैं उस वातवरण में पैदा हुआ और चूंकि मुझे साहित्य से सहजभाव से ही अनुराग था, मैंने अङ्गरेज़ों को अपने हृदय के सिंहासन पर आसीन कर लिया। मेरे जीवन के शुरू के अध्याय में यह कैफ़ियत थी। और उसके बाद हमारे रास्ते जुदा हुये और इस भ्रम के दूर होने से मुझे बेहद मानसिक कष्ट पहुँचा।

मुझे बार-बार यह बात महसूस हुई की जिन लोगों ने सभ्यता की सर्वोत्तम सचाइयों को ग्रहण किया है, उन्हीं लोगों ने जब-जब अपनी ग़रज़ और लालच का सवाल आया, इन आदर्शों को उठा कर ताक पर रख दिया।

फिर एक वक्त आया, जब मुझे महज़ साहित्य की प्रशंसा और सभ्यता की महान दुनिया के बारे में केवल सोचना बन्द कर देना पड़ा। जब मैंने घटनाओं को रोशनी में देखा, तो हिन्दुस्तान की जनता की ज़बर्दस्त ग़रीबी को देखकर मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। अपने सपनों से बल पूर्वक जागकर मैंने यह महसूस करना शुरू किया कि दुनिया के मौजूदा मुल्कों में एक भी मुल्क ऐसा नहीं है, जहां ज़िन्दगी की मामूली से मामूली ज़रूरतों की भी इतनी ज़्यादा कमी हो, जितनी हिन्दुस्तान में है।

फिर मैंने सोचा कि यही हिन्दुस्तान अंगरेज़ों के ख़ज़ाने को बराबर भरता रहा है। मानव-आदर्शों को इस तरह बिगाड़ लेना और सभ्य कहलाने वाली क़ौमों के सोचने के तरीक़े में यह गन्दगी आ जाना, करोड़ों असहाय हिन्दुस्तानियों के तरफ़—यह नफ़रत से भरी हुई अवज्ञा दिखाना! मैंने कभी इसकी कलपना तक भी न की थी। अंगरेज़ों के साहित्य को देखकर मैंने समझा था कि अंगरेज जाति के अन्दर सभ्यता के उच्चतम आदर्श हैं!

जापान और रूस

जिन मशीनों के ज़रिए अंग्रेज़ों ने अपने महान साम्राज्य को मज़बूत किया था, उन मशीनों को उन्होंने इस असहाय मुल्क से छिपा कर दूर रखा। और क्या हमने अपनी इन्हीं आंखों से नहीं देखा कि जापान ने उन्हीं मशीनों से अपने उद्योग-धन्धों को उन्नत करके थोड़े से अरसे में कितना

कमाल कर दिखाया। मैंने यह भी देखा कि जापान की सभ्य हुकूमत ने अपनी चौमुखी तरक्की से तमाम देश को फ़ायदा पहुँचाया। सोवियत् रूस कितने अथक उत्साह से अपने यहां की बीमारियों और और अशिक्षा को दूर करने की कोशिश कर रहा है। यह भी मुझे देखने का सौभाग्य मिला कि अपने उद्योग और अपनी कार्यक्षमता से सोवियत् रूस निश्चित रूप से अपने यहां की अशिक्षा और ग़रीबी को उस बड़े महादेश से दूर कर रहा है। वहां की जनता ने जातियों और श्रेणियों के भेद भावों को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने उस मानव-सम्बन्ध के प्रभाव का चारों ओर प्रचार किया, जो हर छोटी-छोटी और ख़ुदग़र्ज़ी से भरी चीज़ों से ऊंचा होता है। उनकी आश्चर्य में डाल देने वाली तीव्र उन्नति ने मुझे सुखी भी बनाया है और साथ ही साथ मेरे मन में ईर्षा भी पैदा की है।

जब मैं मास्को में था, तब मुझे सोवियत शासन की एक बात बहुत ही सुन्दर लगी। वहां मुसलमानों और ग़ैर मुसलमानों के बीच में कम्युनल अवार्ड को लेकर किसी तरह के झगड़े न थे। सच्चे अर्थों में एक सभ्य शासन प्रणाली दोनों के हितों की निष्पक्ष होकर रक्षा करती है।

नया ईरान

मैंने ईरान को भी देखा है। ऐसा ईरान, जो राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता का ज्ञान लेकर अभी अभी सचेत हुआ है, जो यूरोप की शक्तियों के ख़ौफ़नाक चक्की के पाटों से छुटकारा पाकर अपना भाग्य निर्माण करने की कोशिश कर रहा है। यह एक ध्यान देने लायक बात है कि उसका सौभाग्य उसी दिन से शुरू होता है, जिस दिन उसने यूरोपियन कूट नीति के जाल से अपने को पूरी तरह निकाल लिया। अपने सम्पूर्ण हृदय से मैं ईरान की भलाई चाहता हूं और प्रार्थना करता हूं कि क़िस्मत उसका साथ दे।

पड़ोसी राष्ट्र अफ़ग़ानिस्तान में शिक्षा और समाज को लेकर बहुत कुछ सुधारों की गुंजाइश है। इसकी पूरी सम्भावनाएं भी हैं। और यह इसलिये क्यों कि अब तक वह, अपनी सभ्यता में जकड़ लेने वाले किसी यूरोपियन के प्रभाव में नहीं आया है। इस तरह यह मुल्क सच मुच वास्तविक उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं।

भारत के सम्बन्ध में

ब्रिटिश शासन के ठोस वज़न के नीचे दबकर हिन्दुस्तान अब भी उसी गड्ढे में पड़ा हुआ है— अब भी उसी प्रकार पूरी तरह असमर्थ है। चीन जैसी प्राचीन महान सभ्यता को भी, उसकी जनता में ज़बर्दस्ती अफ़ीम की आदत डालकर, नाश की ओर ले जाने की कोशिश की गई। निस्सन्देह ग़रीबों के शोषण की निश्चित नीति के अनुसार ही यह किया गया। हम जब उस शर्मनाक इतिहास को भूल रहे थे कि किस तरह अंग्रेज़ों ने चीन के एक हिस्से पर क़ब्ज़ा कर लिया; हमें एक दूसरी घटना से आश्चर्य और दुःख हुआ—

जबकि जापान शान्ति के साथ उत्तरी चीन को हड़प रहा था; उसके इस वहशी आक्रमण को ब्रिटिश कूटनीति के गुस्ताख़ नेताओं ने एक साधारण वाक़ा कह कर बयान किया। हमने इतनी दूर से इस बात का नज़ारा देखा था कि किस तरह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने चतुराई के साथ रिपब्लिकन स्पेन के नीचे की ज़मीन ही खिसका ली। और हमने यह भी देखा कि किस तरह बहादुर अङ्गरेज़ों ने स्पेन के लिये वीरता पूर्वक अपनी जानें दे दीं। हालाकि चीन के सम्बन्ध में अङ्गरेज़ों ने अपनी ज़िम्मेवारी महसूस नहीं की, फिर भी अपने पड़ोस में वे व्यक्तिगत स्वाधीनता के लिये अपनी क़ुरबानी करने में नहीं झिझके। इस तरह की वीरता के कामों ने मुझे फिर एक बार अपने बचपन की उस सच्ची अङ्गरेज़-भावना की याद दिलाई, जिस पर मेरा पूरा विश्वास था। जर्मनी और अङ्गरेज़ों में उस वक़्त जो मैत्री-भाव था, उसकी ओर मैं इशारा भी नहीं करना चाहता। जो बात मुझे परेशान कर रही है वह यह है, कि किस तरह उसके

साम्राज्यवादी लोभ ने इतने थोड़े से समय के भीतर एक इतनी बड़ी जाति के चरित्र को इस तकलीफ़देह तरीक़े से तोड़ फोड़ डाला।

एक दिन मैंने अङ्गरेज़ों को एक स्वस्थ राष्ट्र के रूप में देखा, उद्दाम शक्ति से भरे हुए, हर एक को मदद करने में तत्पर। किन्तु आज मैं उन्हें वक़्त से पहले बूढ़ा और उस प्लेग से जर्जर, जिसके दुष्परिणामों ने देश के कल्याण का नाश कर दिया।

फूट फैलाकर हुकूमत करो

किस तरह हमने धीरे-धीरे पश्चिमी सभ्यता में अपना विश्वास खो दिया, यह दर्दनाक कहानी हमें कहनी पड़ रही है। हिन्दुस्तान को देखते हुए हम यह महसूस करते हैं कि ब्रिटिश शासन के आगमन से जो सब में भयङ्कर दुष्परिणाम हुआ, उसके आगे शासकों की ज़िन्दगी की मामूली से मामूली ज़रूरतों को देशवासियों के लिये जुटा सकने की लापरवाही कोई चीज़ नहीं।

उनकी असफलता कहीं इतनी ज्यादा दिखाई नहीं देती, जितनी उस क्रूरता पूर्ण तरीक़े में, जिस के मुताबिक उन्होंने हिन्दुस्तानियों में आपस में ही फूट डलवा दी। इस बात पर सब में ज्यादा तकलीफ़ होती है कि इसकी ज़िम्मेवारी वे अब हमारे कन्धों पर डाल रहे हैं। भारतीय इतिहास की यह कुरूप और वहशी पराकाष्ठा कभी सम्भव न होती, यदि साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता और परस्पर अविश्वास को जान बूझ कर इतनी उत्तेजना न दी जाती कि वह अपना वर्तमान भयंकर रूप अख़्तियार करले। और यह सब किया शासन में सब से ऊंची ज़िम्मेवारी लिये हुये लोगों ने षड़यन्त्र से।

मैं इस बात पर कभी विश्वास नहीं कर सकता कि हिन्दुस्तानी जापानियों से बुद्धि या बल में किसी तरह कम हैं। दोनों के बीच में मौलिक अन्तर यह है कि जब कि हिन्दुस्तानी न सिर्फ़ असहाय हैं, बल्कि अंग्रेज़ों के द्वारा असहाय बनाये गये हैं; जापान ने कभी परोपकार की घोषणा करने वाली किसी यूरोपियन शक्ति को अपने ऊपर दख़ल जमाने नहीं दिया। हमारे शासकों ने ऐसी सरकार क़ायम की जिसे वे कहते हैं "ला एण्ड आर्डर" द्वारा क़ायम की हुई सरकार पर दूसरे शब्दों में पुलिस वालों का शासन।

अब यह हमारे लिए ज़रा भी सम्भव नहीं कि हम सभ्यता के इस उपहास की ओर ज़रा भी इज्ज़त दिखायें ऐसी सभ्यता, जो तलवार के ज़ोर से हूकूमत क़ायम रखना चाहती है और जो स्वतन्त्रता में ज़रा भी विश्वास नहीं रखती। उनकी सभ्यता में जो कुछ भी उत्तम है, उसे कंजूसी के साथ हम से बचाये रखा। हिन्दुस्तानियों के साथ सच्चा मानव सम्बन्ध क़ायम न करके अङ्गरेज़ों ने हमारे लिये सभ्यता के समस्त दरवाज़े सफलता पूर्वक बन्द कर दिये।

फिर भी मेरा यह सौभाग्य है कि मैं बहुधा उदार मना अङ्गरेज़ों के घनिष्ट सम्पर्क में आया। मैं निस्सङ्कोच यह कह सकता हूं कि इनके उदार चरित्र की तुलना नहीं। किसी क़ौम या किसी मुल्क में मुझे ऐसी महान आत्माएं नहीं मिलीं। इस तरह की मिसालों की वजह से मेरा उस जाति के ऊपर विश्वास क़ायम रहा जिसने इन्हें जन्म दिया। मेरा यह अनोखा सौभाग्य था कि एण्ड्रूज, एक सच्चे अङ्गरेज़, मेरे अन्यतम मित्रों में से थे। आज मृत्यु की रोशनी में उनकी निस्वार्थता और साहस पूर्ण क्षमता और अधिक चमक रही है। सारा हिन्दुस्तान उनके परोपकार के विविध कामों और समूचे जीवन की सेवा के लिये ऋणी है। मगर ज़ाती तौर पर मैं उनका ऋणी हूं। क्योंकि इस बुढ़ापे में उन्होंने अंङ्गरेज़ जाति की ओर मेरे उस विश्वास को क़ायम रखा, जिसे बचपन में मैंने उनके साहित्य को पढ़कर अपने अन्दर क़ायम किया था और जो अब पूरी तरह नष्ट हो जाता। उनकी स्मृति के साथ-साथ उनकी क़ौम की महानता मेरे दिल में

हमेशा के लिये बनी रहेगी। एण्ड्रूज़ जैसे अङ्गरेज़ को न सिर्फ़ मैं अपना व्यक्तिगत और ज़ाती मित्र समझता हूं, बल्कि वे सारी मानव जाति के मित्र थे। इनसे परिचित होना मेरा सौभाग्य है। उनके कारण मेरे अन्दर यह विश्वास आया कि अङ्गरेज़ जाति की प्रतिष्ठा हर तरह के तूफ़ानों से बचाई जा सकती है। यदि मैं इनसे न मिला होता, तो पच्छिमी देशों के सम्बन्ध में मेरी निराशा में ज़रा भर भी कमी होने की आशा न रहती।

बर्बरता का दानव

इसी बीच सारा दिखावा छोड़कर बर्बरता का दानव अपने ख़ूंखार पंजों या दांतों को बगैर छिपाये सारी दुनिया के टुकड़े कर बरबादी फैलाने को निकल पड़ा है। एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक नफ़रत का ज़हरीला धुंआ वातावरण को परागन्दा कर रहा है। पच्छिमी सभ्यता में निहित अत्याचार का यह प्लेग जाग कर आफ़त ढा रहा है और मानव के प्राणों को नष्ट कर रहा है। अपनी मौजूदा भाग्यहीन, असहाय और दुर्दैव द्वारा लादी हुई ग़रीबी की परिस्थिति में हमने क्या सारे संसार भर ने नाश फैलाने वाली वृत्ति नहीं देखी है? एक शक्ति और दूसरी शक्ति के बीच में ज़िन्दगी और मौत का घमासान शुरू हो गया है और कोई नहीं कह सकता कि अन्त में इसका क्या नतीजा होगा।

तक़दीर की गर्दिश किसी न किसी दिन अङ्गरेजों को अपना भारतीय साम्राज्य छोड़ने के लिये मजबूर करेगी। किन्तु किस तरह का भारत वे अपने पीछे छोड़ जावेंगे? दुर्भाग्य से पूर्ण। जब कि उनके सदियों के शासन का चस्मा सूख जायगा तब वे अपने पीछे कितना कीच और गन्द छोड़ जावेंगे? एक ज़माना था जब मेरा विश्वास था कि सभ्यता के सोते यूरोप के हृदय से फूटेंगे। और आज जब कि मैं दुनिया से बिदा लेने वाला हूँ, मेरा वह ज़बर्दस्त विश्वास बिल्कुल जाता रहा।

मानव के ऊपर विश्वास

आज मेरी एक आख़री उम्मीद है कि इस अकाल पीड़ित मुल्क में वह त्राण कर्ता पैदा हो और पूरब से उसका दैवी सन्देश सारी दुनिया के मानव हृदयों को असीम आशा से भर दे। ज्यों ज्यों मैं ज़िन्दगी की मंज़िल में आगे बढ़ता हूं, मुझे पीछे गोबर के निरर्थक छत्तों की तरह सभ्यता के टूटे हुए खण्डहर दिखाई दे रहे हैं। और बावजूद इसके मैं मानव के ऊपर अविश्वास करने का भयङ्कर पाप न करूंगा। इन खण्डहरों के साफ़ होने पर वातावरण में जब सेवा और त्याग की भावना आवेगी, उस दिन मुझे आशा है, मानव का नया इतिहास शुरू होगा। शायद वह सुप्रभात होगा क्षितिज की इस पूर्व दिशा से, जहां से सूर्योदय होता है। एक दिन आवेगा जब अपराजित मानव तमाम बन्धनों को पार कर अपने पैतृक अधिकार को प्राप्त करने के लिये यश के मार्ग से उल्टे क़दम लौटेगा। यह विश्वास करना कि मानवता का आख़री तौर पर अवश्य नाश हो जायगा, यह एक जुर्म होगा। मगर मैं वास्तविकता की जगह काल्पनिक बातें कहने का दोषी भी न बनूंगा।

अन्त में मैं इस बात का ऐलान करूंगा कि वह दिन अब आ गया है, जब दुनिया की बड़ी से बड़ी शक्ति सन्तोष की सांस न ले सकेगी। हमें अपने ऋषियों की वाणी की सचाई को अनुभव करना चाहिये—

"अन्याय से एक आदमी फल-फूल सकता है, ज़िन्दगी में सुख देख सकता है, अपने दुश्मनों पर विजय पा सकता है; किन्तु अन्त में अन्याय उस पर छाकर उसका अवश्य नाश कर देगा।"

—

सम्पादकीय-विचार

'विश्ववाणी' को जन्म लिए चार महीने हो गए। इस अरसे में मुल्क के हिन्दू और मुसलमान विद्वानों और साहित्यकों ने जिस प्रेम के साथ विश्ववाणी का स्वागत किया और उसकी कमज़ोरियों और लाचारगियों को नज़रअन्दाज़ करके, केवल उसके लक्ष्य को नज़र में रखते हुए, उसे सराहा; वह प्रेम ही इस कांटों भरे रास्ते पर विश्ववाणी का एकमात्र सहारा और इस यात्रा में उसकी एक मात्र पूंजी है। देश के कोने-कोने से हर श्रेणी और हर विचार के लोगों ने जिस तरह हमारी इस नाचीज़ कोशिश की हौसले अफ़ज़ाई की है, हमारे दिल पर उसका गहरा असर है और हमारी ईश्वर से यही दुआ है कि हम इस प्रेम के एक सौवें हिस्से के भी अधिकारी साबित हो सकें।

———

किन्तु जितने मशकूर हम अपने सैकड़ों प्रशंसकों के हैं, उससे ज़्यादह मशकूर हम अपने उन दो-चार दोस्तों के हैं, जिन्होंने इस थोड़े से समय में हमारी कुछ कमियों की तरफ़ हमारा ध्यान दिलाने की कोशिश की है। विश्ववाणी के उद्देश्य हमने पहले ही अङ्क में बयान कर दिये थे। लेकिन फिर भी ज़रूरी मालूम होता है कि हम अपनी एक-दो कमियों के बारे में अपनी स्थिति को ज़रा और साफ़ कर दें।

सबसे पहला सवाल विश्ववाणी की ज़बान का है। इसमें हम पर दो तरह के एतराज़ हुए हैं। एक तरफ़ से यह कि हम हिन्दी के अन्दर अपरिचित उर्दू और फ़ारसी शब्दों को भर रहे हैं और दूसरी तरफ़ से यह कि विश्ववाणी के लेखों में कहीं-कहीं इतने मुशकिल संस्कृत के लफ़्ज़ आ जाते हैं कि अकसर उर्दूदां मुसलमान दोस्त ख़्वाहिश रखते हुए भी, उन्हें नहीं समझ पाते। ये दोनों एतराज़ एक दरजे तक सच हैं। एक दरजे तक अभी हम इसके लिए मजबूर भी हैं।

———

ज़बान के बारे में हम इस समय हिन्दी-उर्दू के झगड़े को मुल्क की सब से बड़ी मुसीबत और हिन्दू-मुसलमानों के मनमुटाव का सबसे ज़बरदस्त सबब मानते हैं। हम इस समय इस झगड़े के इतिहास में जाना नहीं चाहते। हम न उस उर्दू को सराह सकते हैं, जिसमें फ़ारसी अरबी के मुशकिल लफ़्ज़ों की भरमार हो और न उस हिन्दी के पक्ष में हैं, जिसमें संस्कृत के मुशकिल शब्द और संस्कृत के तद्भव शब्द भरे हुए हों। दूसरी तरफ़ न हम इस विचार के हैं कि उर्दू से हिन्दी संस्कृत शब्दों या हिन्दी से उर्दू फ़ारसी शब्दों को अछूत समझ कर निकाला जावे। हम इन दोनों के एक दूसरे से ज़्यादह-ज़्यादह नज़दीक आने के तरफ़दार हैं, और अन्त में दोनों के पूरे मेल या संगम के स्वप्न देख रहे हैं। हमारी राय में हम एक थे, हम फट गए, हमें फिर एक होना है, इसी में हमारी दोनों की और इस देश की ख़ैरियत है और यही इस बदक़िस्मत मुल्क के लिये सलामती और आज़ादी का एकमात्र रास्ता है।

———

रहा इस बारे में हमारा आदर्श, हमारा मयार, सो वह एक ऐसी आसान, बामुहावरा और मिली-जुली ज़बान है, जिसे आसान उर्दू, आसान हिन्दी या हिन्दुस्तानी तीनों में से कुछ भी कहा जा सके। वही आइन्दा को हमारी क़ौमी ज़बान बन सकती है। हम यह भी जानते हैं कि इस तरह की सब की समझ में आने वाली ज़बान लिखी जा सकती है और लिखी जा रही है। लाहौर के उर्दू रिसाले "हुमायूं" में "बरात" पर जो कविता छपी है, वह हमारी राय में आदर्श "हिन्दुस्तानी" है। हम अपने हितचिन्तकों को यक़ीन दिलाते हैं कि अगर अभी तक हम उस तरह की ज़बान नहीं लिख पा रहे हैं, तो कमी इरादे की नहीं, कमी हममें अभी तक क़ाबलीयत या योग्यता की है। हम इसमें अपने लेखकों और प्रेमियों से मदद की प्रार्थना करते हैं।

हमारी यह भी राय है कि अगर हिन्दी वाले दो चार सौ ज़रा मुशकिल लेकिन प्रचलित उर्दू फ़ारसी लफ़्ज़ों से और उर्दू वाले उतने ही और उसी तरह के संस्कृत हिन्दी शब्दों से जानकारी हासिल करलें, तो एक दूसरे को समझने में बड़ी ही आसानी हो और हमारी आधी मुशकिल हल हो जाय।

विश्ववाणी के जो लेखक हमें उर्दू हरूफ़ों में लेख लिखकर भेजते हैं, उनकी ज़बान को हम नागरी हरूफ़ों में ज्यों का त्यों छापा करेंगे। जो लफ़्ज़ हिन्दी वालों के लिए मुशकिल मालूम होंगे, उनके लिए हिन्दी शब्द साथ-साथ ब्रैकेट में दे दिये जायंगे।

हमें इस बात का बड़ा अफ़सोस है कि पिछले अङ्कों में प्रूफ़ की कुछ शर्मनाक ग़लतियां रह गईं। सम्राट बहादुर शाह की नज़्म में 'लाज़िम' का 'लाजिम' और 'ज़ेबा' का 'जेबा' छप गया। मिस्टर बशीर अहमद बैरिस्टर, सम्पादक "हुमायूं" के "मुसलमान क्या चाहते हैं" शीर्षक लेख में क़ुरान शरीफ़ की यह आयत ही—"ला इक्राहाफ़िद्दीन" (यानी धर्म के मामले में किसी से किसी तरह की ज़बरदस्ती नहीं करना चाहिये) ग़लत छप गई। प्रोफ़ैसर मेहदी हसन साहब के लेख में स्वर्गीय डाक्टर इक़बाल के एक शेर में "बाज़ुनी" की जगह "बातुनी" छप गया। इत्यादि। हमारा रास्ता एक हद तक नया रास्ता है। हिन्दी के प्रूफ़रीडर और हिन्दी पत्रों के स्टाफ़ अभी तक उर्दू, फ़ारसी लफ़्ज़ों से इतने अच्छे परिचित नहीं हैं। फिर भी हमें इन ग़लतियों का अफ़सोस है और हम आइन्दा अपनी शक्ति भर ज़्यादह सही छपाई की कोशिश करेंगे। हम समझते हैं, ज़बान के बारे में हमने अपने इरादों और अपनी कठिनाइयों दोनों को साफ़-साफ़ बयान कर दिया।

एक दूसरा हलका सा एतराज़ हम पर एक मित्र की ओर से अहिंसा के बारे में किया गया है। इस विषय में भी हम अपने विचारों को साफ़ कर देना चाहते हैं। हम इस मुल्क की मुकम्मिल सियासी आज़ादी के शैदा हैं। उस आज़ादी को हासिल करने के लिए हमें इस समय अहिंसा के रास्ते के सिवा कोई दूसरा मुमकिन रास्ता नज़र नहीं आता। इस लिहाज़ से हम इस मुल्क के ऊपर महात्मा गांधी के ज़बरदस्त अहसान के क़ायल हैं। इससे और आगे बढ़ कर हम श्रीयुत मंज़रअली साहब सोख़्ता की उस लेख माला को भी, जो विश्ववाणी में शुरू से छप रही है, देश वासियों के लिए ख़ास ध्यान देने और ग़ौर करने की चीज़ समझते हैं। इस समय यूरोप के अन्दर बेगुनाह इन्सानों की हत्या में लगी हुई दुनिया के लिये अहिंसा के सन्देश को हम एक क़ीमती और उपयोगी सन्देश मानते हैं।

भगवद्गीता, क़ुरान शरीफ़ या कोई दूसरा धर्म ग्रन्थ किसी ख़ास हालत में हथियार उठाने की इजाज़त भले ही देता हो, लेकिन हम यह नहीं मानते कि अहिंसा का रास्ता ख़ासकर इस देश की इस समय की हालत में किसी भी धर्म के

ख़िलाफ़ जाता है या किसी धर्म के अनुसार निषिद्ध या ममनूअ है। इस देश की आज़ादी की लड़ाई हमेशा हमारे दिल और दिमाग़ दोनों को अपनी तरफ़ खींचती रहेगी। विश्ववाणी का सम्पादक देश की पिछली आज़ादी की लड़ाइयों में कई बार जेल जा चुका है, जिसका उसे अभिमान है। अब भी, जब कि उसके अनेक साथी जेल में हैं, अगर वह ख़ुद जेल से बाहर है, तो केवल इसलिए क्योंकि उसके दिल में यह बात बैठ गई है कि—जब तक इस मुल्क के रहने वाले हिन्दू और मुसलमानों के दिल एक दूसरे से न मिलेंगे; जब तक हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी इत्यादि समस्त भारतवासियों के लिए अपने इस वतन में रह कर अपने-अपने ढंग से अपने ख़ुदा को याद करने और अपने मज़हबी रसूम को अदा करने की पूरी आज़ादी न होगी; जब तक सब हिन्दुस्तानी एक दूसरे को भाई-भाई दिखाई न देंगे और सब सारे हिन्दुस्तान को अपना न कह सकेंगे; जब तक सब अपने-अपने रंगों और अपनी-अपनी ख़ुशबूओं से क़ुदरत के इस सुन्दर बाग़, जन्नत निशान के सौन्दर्य और उसकी महक को बढ़ाते हुए इस देश में एक इस तरह का सार्वजनिक जीवन तामीर करने की कोशिश न करेंगे, जिसमें सबका एक समान हिस्सा हो;—तब तक इस तरह के सत्याग्रहों के एक हज़ार हथौड़े भी हमारी ग़ुलामी की ज़ंजीरों को तोड़ने में कामयाब नहीं हो सकते। हम फिर से एक संयुक्त भारतीय राष्ट्र, एक मुत्तहिदा हिन्दुस्तानी क़ौमियत के स्वप्न देख रहे हैं। हमारा यह स्वप्न कभी पूरा होगा या न होगा, सिवाय उस एक परवरदिगार के दूसरा कोई नहीं जानता। किन्तु हम एक क़दम और बढ़ेंगे। हमारे दिल में यह विश्वास अटल रूप से जमा हुआ है कि जब तक हिन्दुस्तान के नेताओं और विचारकों के दिलों में अल्लाह और ईश्वर एक ही सर्वोपरि अस्तित्व के नाम दिखाई नहीं देते, जब तक उन्हें हिन्दू, मुसलमान, और पारसी सबके अन्दर एक ही परमात्मा का नूर नज़र नहीं आता, तब तक यह देश, इसकी आर्थिक और राजनैतिक हालत चाहे कुछ भी हो, दुनिया के लिए सिवाय एक बोझ और मुसीबत होने के, किसी तरह दुनिया की तरक़्क़ी और बहबूदी में मददगार नहीं हो सकता।

——

हमें यह भी विश्वास है कि अंगरेज़ी हुकूमत के क़ायम होने से पहले, ख़ासकर दिल्ली के मुग़ल बादशाहों के ज़माने में हमारे क़दम बड़ी शान के साथ इस सार्वांगिक एकता, और एक संयुक्त संस्कृति की ओर बढ़ रहे थे। हमारी वह प्रगति रुकी। रुकी, कुछ तो ग़ैरों की बदख़्वाहियों और तरकीबों से, लेकिन उससे कहीं ज़्यादह हमारे अपने अन्दर की तंग ख़्यालियों से, जिनसे ग़ैरों ने पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया और उन्हें तरह-तरह से भड़काया। हमें फिर उसी राह पर मुड़ना होगा, जिससे हम भटक गए हैं। हमें अपने दिलों को टटोलना होगा। हिन्दू राज्य और मुसलिम राज्य के स्वप्न—अगर किसी के भी दिमाग़ में हैं तो—केवल हमारी बदक़िस्मती और बरबादी के लच्छन हैं। भावी आज़ाद हिन्दुस्तान न केवल हिन्दुओं का होगा और न केवल मुसलमानों का, वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सबका और सबका यकसां होगा। इसके लिए ज़रूरी है कि हम फिर से एक दूसरे के धर्मों, एक दूसरे के महापुरुषों, एक दूसरे के इतिहास और एक दूसरे के कारनामों और साथ ही अपने पिछले मुशतरका कारनामों को पढ़ें और जानें और फिर से एक दूसरे की क़द्र करना सीखें। हमारे दिलों में फिर से एक दूसरे के लिए दर्द और मुहब्बत हो। हम दूसरे को इलज़ाम देने के बजाय केवल अपने-अपने दिलों को टटोलें। यही विश्ववाणी का उद्देश्य है। इसके पूरा करने के लिए हम उन सब हिन्दू और मुसलमानों से मदद और हमदर्दी की आशा करते हैं, जिन्हें इस देश की भावी एकता में विश्वास है। अभी तो हम विश्ववाणी का वह ढांचा भी पूरा नहीं कर पाए, जो इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमारे दिमाग़ में है। हम यह भी महसूस करते हैं कि बिना विश्ववाणी के उर्दू एडीशन के यह

उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। हमें अपने सहायकों और प्रेमियों की मदद से उसके भी जल्दी ही निकल आने की आशा है।

हम एक पिछले अंक में लिख चुके हैं कि विश्ववाणी के सम्पादक ने जो कुछ सीखा, क़रीब १८ साल पं० सुन्दरलाल जी के क़दमों के पास बैठ कर सीखा है। उनके धार्मिक और नैतिक आदर्श ही विश्ववाणी के धार्मिक और नैतिक आदर्श हैं। विश्ववाणी का सम्पादक जब कि सब धर्मों का एक समान आदर करता है और दूसरों के लिए पूरी मज़हबी आज़ादी का क़ायल है, वह ख़ुद "मज़हबे इश्क़" में विश्वास रखता है, जो मौलना रूम के अनुसार—"सब दीनों से अलग है," और जिसमें ख़ुदा ही मज़हब और ख़ुदा ही मिल्लत है।"

मजहबे इश्क़ अज़ हमां दीनहा जुदास्त।
आशिक़ांरा मजहबो मिल्लत ख़ुदास्त॥

उसने पिछली मर्दुमशुमारियों में से किसी में अपने आपको धर्म के मामले में किसी ख़ास लैबिल से मुमताज़ किये जाने की इजाज़त नहीं दी। अपने लिये इस मामले में वह वही आज़ादी चाहता है, जो वह दूसरों को देने को तय्यार है।

लेकिन हमारा यह दुर्भाग्य है कि इन चार महीने के अन्दर जब से विश्ववाणी निकली है, पंडित सुन्दर लाल जी को चार दिन भी इलाहाबाद में रहने का मौक़ा नहीं मिला। इसकी वजह से जो तफ़सीली सलाह और मदद हर बात में हमें उनसे मिल सकती वह भी नहीं मिल सकी। फिर भी वह जगह-जगह से लेख लिख कर हमें भेजते रहते हैं। हमारी त्रुटियां भी, कभी-कभी हमें दिखाते रहते हैं। उनका हाथ हमारे सर पर है। इसी तरह हम देश भर के उन सब बुजुर्गों और दोस्तों से मदद और सलाह की भीख मांगते हैं, जिनके दिलों की हालत अपने इस प्यारे मुल्क की बाबत इन पंक्तियों से ज़ाहिर होती हो—

यहि आशा अटक्यो रहत, अलि गुलाब के मूल।
अइहैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल॥

मुसलिम लीग का अधिवेशन

गत ईस्टर की छुट्टियों में मद्रास में मुसलिम लीग का अधिवेशन धूम-धाम से हो गया। मिस्टर जिन्ना ने अपने अध्यक्ष पद के भाषण से कहा—"मुसलिम लीग की पुनर्जागृति की बुनियाद अप्रैल १९३६ में बम्बई में रखी गई। पिछले पांच वर्षों में उन्होंने मुसलिम लीग का मुल्क के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सङ्गठन किया। मुसलमान आज से पहले न कभी इतनी अच्छी तरह सङ्गठित थे, न उनमें कभी इतनी ज़िन्दगी थी और न कभी इतनी जागृति।" मुसलिम लीग के मक़सद की ओर ध्यान दिलाते हुए मिस्टर जिन्ना ने कहा—"मुसलिम लीग का मक़सद है कि हिन्दुस्तान के पश्चिमोत्तर और पूर्वीय इलाक़ों में एक पूर्णतया स्वाधीन सत्ता क़ायम हो, जिसके हाथों में शासन की बागडोर, मुल्क की हिफ़ाज़त और बाहरी मुल्कों के साथ ताल्लुक़ात, जहाज़ी चुङ्गी, मुद्रानीति और विनिमय की दर तय करने की आज़ादी हो।" आगे चलकर आपने कहा—"हम किसी भी सूरत में अखिल भारतीय केन्द्रीय शासन को स्वीकार नहीं कर सकते। यदि हमने इसे स्वीकार किया, तो मुसलमानों का अस्तित्व ही मिट जायगा।" जनतन्त्र और बहुमत के शासन के सम्बन्ध में अपनी स्थिति साफ़ करते हुए मिस्टर जिन्ना ने फ़रमाया—"जनतन्त्र का अर्थ है बहुमत की हुकूमत। एक मुल्क में एक ही क़ौम द्वारा बहुमत की हुकूमत समझ में आती है। किन्तु इस महादेश में दो क़ौमें और दो मुल्क हैं, मुसलिम क़ौम और हिन्दू क़ौम।" दो अलग-अलग मुल्क बनाने के बाद भी अल्पमत की समस्या रह जाती है। इस सम्बन्ध में मिस्टर जिन्ना ने कहा—"जहां-जहां भी अल्पमत हों, उनके संरक्षण का प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये। कोई सरकार उस वक़्त तक कामयाब नहीं हो सकती, जब

तक व अल्पमत वालों के दिलों में विश्वास की भावना न पैदा करे।"

मुसलिम लीग के इस अधिवेशन में लाहौर का पाकिस्तान का प्रस्ताव मुसलिम लीग का लक्ष्य स्वीकार किया गया। इस बात का ऐलान किया गया कि आठ करोड़ मुसलमानों का ध्येय होगा इस देश का बटवारा करके पाकिस्तान की स्थापना। एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा एक कमेटी बनाई गई, जो पंच-वर्षीय योजना बनाकर मुसलमानों को राजनैतिक तालीम देगी और उनकी आर्थिक स्थिति को सुधार कर, उनमें शिक्षा का प्रचार करेगी।

इस तरह इस मद्रास अधिवेशन में पाकिस्तान न सिर्फ़ एक राजनैतिक प्रोग्राम ही रह गया, बल्कि वह मुसलिम लीग का एक ध्येय बन गया। दुनिया को बताया गया कि पाकिस्तान के लिये मुसलमान मरेंगे और पाकिस्तान के लिये ही मुसलमान जियेंगे।

मिस्टर जिन्ना की तक़रीरों और मुसलिम लीग के प्रस्ताव से कई मौलिक सिद्धान्तों पर बहस ज़रूरी हो जाती है। (१) मिस्टर जिन्ना मुल्क का बटवारा क़ौम के लिहाज़ से नहीं, बल्कि मज़हब के लिहाज़ से करना चाहते हैं, (२) किसी भी अल्पमत को मुल्क के अन्दर अलग मुल्क बनाकर रहने की आज़ादी देना चाहते हैं और (३) मुसलमान मुसलमान की हैसियत से एक अलहदा क़ौम हैं!

हमें ख़ुशी इस बात की है कि मुसलिम लीग के इस अधिवेशन में पाकिस्तान की बहस ने एक उसूली रुख़ अख़्तियार कर लिया है। अब तक मुल्क की सैकड़ों सभाओं में मुसलिम लीग के प्लैटफ़ार्म से यह ऐलान किया गया था—चूंकि कांग्रेसी सरकारों ने मुसलमान जनता पर ज़्यादती की है, लिहाज़ा पाकिस्तान ज़रूरी है। अब मामला ज़रा साफ़ हो गया। कांग्रेस की ज़्यादतियों और ज़ुल्मों का अब सवाल ही नहीं रहा। चूंकि इसलाम धर्म के मानने वाले मुसलमान एक क़ौम हैं, चूंकि मुसलमानों की तहज़ीब और संस्कृति जुदा है, लिहाज़ा क़ौमी हैसियत से उनका एक अलग मुल्क है और इसलिये पाकिस्तान ज़रूरी है।

प्रश्न उठता है, क्या इसलाम के नाम पर यह अलहदगी जायज़ है? क़ुरान के मुताबिक़ सब का सिरजनहार और परवरदिगार एक है। क़ुरान कहता है—तुम सब एक ही परमात्मा के नाम लेवा हो, तुम सबके पथ प्रदर्शकों ने तुम्हें एक ही पथ दिखलाया है। फिर यह कैसी गुमराही की पराकाष्ठा और बुद्धि का दिवाला है कि सूत्र एक है, लक्ष्य एक है, लेकिन एक समुदाय दूसरे समुदाय का शत्रु है, एक शख़्स दूसरे शख़्स से नफ़रत करता है और फिर ये लड़ाई झगड़े किसके नाम पर किये जाते हैं? उसी परमात्मा और उसी परमात्मा के धर्म के नाम पर, जिसने सबको एक ही चौखट पर झुकाया था और सबको एक भ्रातृत्व के सूत्र में बांधा था। क़ुरान कहता है—

"और उन लोगों की सी चाल मत स्वीकार कर लेना, जो अलग-अलग हो गये और जिन्होंने आपस में विरोध पैदा कर लिये।" सू० ३, आ० १०१।

"और यह मेरी राह है बिलकुल सीधी राह, इसलिये उसी एक राह पर चलो और तरह तरह के मार्गों के पीछे न पड़ो। वे तुम्हें ईश्वरीय मार्ग से हटाकर पृथक-पृथक कर देंगे।" सू० ६, आ० १५५।

और उस परमात्मा के एक मार्ग के सम्बन्ध में क़ुरान कहता है—

"देखो ख़ुदा तो मेरा और तुम्हारा दोनों का परवरदिगार है। इसलिये उसकी उपासना करो यही धर्म का सीधा मार्ग है।" सू० १९, आ० ३९।

मिस्टर जिन्ना हमें माफ़ करें, हमारी नाचीज़ राय में इसलाम दुनियां में मेल और मोहब्बत पैदा करने के लिये आया है, दुनिया के टुकड़े-टुकड़े करने के लिये नहीं आया। मिस्टर जिन्ना इसलाम का नाम लेकर हिन्दू और मुसलमानों में आज फ़र्क़ डालने को तय्यार हैं, मगर क़ुरान कहता है—

"जो लोग परमात्मा और उसके पैग़म्बरों को नहीं मानते और चाहते हैं कि परमात्मा और उसके

पैग़म्बरों में भेद करें (यानी किसी को ख़ुदा का रसूल मानें और किसी को न मानें), और कहते हैं कि इनमें से हम किसी को मानते हैं और किसी को नहीं मानते, फिर चाहते हैं कि बीच का कोई तीसरा मार्ग अख्तियार करलें। विश्वास करो ये ही लोग हैं जिनके कुफ़ में कोई शक नहीं। जिन लोगों की राह अविश्वास की राह है और उनके लिये ईश्वरीय कोप तैयार है।" सू० ४, आ० १४९।

इसलाम का रास्ता सच्चाई का रास्ता और नेकी का रास्ता है। सिर्फ़ एक सच्चा मुसलमान अपने आस-पास नेक कर्मों का प्रकाश फैला देता है, बिछुड़ों को मिला देता है और दुनिया में अमन और शान्ति का सन्देश पहुंचाता है। ख़ुद हज़रत मुहम्मद साहब ने उत्तर अरब के यहूदी और ईसाई बाशिन्दों से जो सुलहनामे किये, उनमें यह साफ़-साफ़ लिखा कि "हम मुसलमान, ईसाई और यहूदी मिल कर एकउम्मत बनाते हैं।" इस 'उम्मत' को ही मौजूदा पार्लिमेण्टों की मां समझना चाहिये। यदि केवल मुसलमानों का ही उम्मत बनाना जायज़ होता, तो हज़रत पैग़म्बर इस उम्मत में यहूदियों और ईसाइयों को क्यों शरीक करते। सीरिया, मिस्र, फ़िलस्तीन, मोरक्को, स्पेन, बल्गारिया, अल्बानिया और रूस में सैकड़ों वर्ष तक मुसलमान और ईसाई साथ साथ रहे हैं और दोनों ने मिलकर देश के शासन प्रबन्ध में हिस्सा लिया है। ईरान में पिछली चौदवीं सदी तक ज़रथुस्त्री और मुसलमान साथ-साथ देश का शासन प्रबन्ध चलाते रहे। पिछली आठरहवीं सदी तक काबुल की गलियों में मुसलमान, ज़रथुस्त्री और हिन्दू साथ-साथ रहे। चीनी तुर्किस्तान, सिङ्कियाङ्ग और युन्नान में बौद्धों के साथ चार करोड़ चीनी मुसलमान देश के सुख-दुख में हिस्सा लेते रहे और चीन की चार करोड़ मुसलमान आबादी, रूस की लगभग तीन करोड़ मुसलमान आबादी जनतन्त्र के सिद्धान्तों को बीसियों वर्षों से मान रही है। मज़हब की बिना पर क़ौम और मुल्क का बटवारा करने का दावा केवल मिस्टर जिन्ना के लिये सुरक्षित था।

यदि मज़हब की बिना पर मुल्क के टुकड़े नहीं हो सकते, तो क्या क़ौम की बिना पर हो सकते हैं? क्या हिन्दुस्तान के मुसलमान एक अलहदा क़ौम हैं? क्या मुसलमान होने से ही कोई अलहदा क़ौम में हो जाता है? यदि वास्तव में यह बात होती, तो आज मिस्र, इराक़, सीरिया, तुर्की, बहरैन, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान आदि मुल्कों में बेहद भाई चारा होता और वे सब मिल कर एक क़ौम और एक मुल्क होते और यदि ऐसा होता, तो कोई विदेशी क़ौम उन्हें अपने पैरों से न रौंद सकती। मगर सच्चाई यह नहीं है। इन तमाम मुल्कों में सैकड़ों बरस तक आपसी लड़ाइयां चलती रहीं। ख़िलाफ़त के ज़माने में मुसलमानों की आपस की भयंकर लड़ाइयों से अब तक रूह कांप उठती है। सच तो यह है अरब, अरब है, मिस्री, मिस्री, ईरानी, ईरानी और तुर्क, तुर्क। मज़हब के नाम पर इनका क़ौमी बटवारा नहीं है बल्कि मुल्क के नाम पर। मिस्र में रहने वाले क़ुफ़्ती ईसाई उतने ही मिस्री हैं, जितने कि वहां के मुसलमान।

सवाल उठता है क्या भारत के हिन्दू और मुसलमान एक क़ौम हैं? हमारी तुच्छ राय में सौ फ़ी सदी एक क़ौम हैं। क़ौमें भौगोलिक सीमाओं और आबोहवा से बनती हैं। हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमानों के बाप दादे एक, रङ्ग एक, चेहरे की बनावट एक, शरीर का गठन एक, स्वभाव एक, रस्म रिवाज और आचार विचार एक, दोनों की बोल चाल की ज़बान एक और दोनों की भावनाएं एक। सच पूछा जाय, तो एक बङ्गाली हिन्दू और बङ्गाली मुसलमान एक दूसरे के कहीं ज़्यादा नज़दीक हैं, बनिस्बत एक गुजराती मुसलमान और बङ्गाली मुसलमान के। डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी और मिस्टर फ़ज़लुल हक़ में कहीं ज़्यादा साम्य है बजाय मिस्टर फ़ज़लुल हक़ और मिस्टर जिन्ना के। सर सिकन्दर हयात इस बात को ख़ूब समझते हैं इसीलिये वे पाकिस्तान के बजाय "हम पञ्जाबी" कह कर बात करते हैं।

हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान एक हज़ार बरस से मिल-जुलकर साथ रहते आये हैं। अभी २०

वर्ष पहले तक हमारा सामाजिक जीवन एक दूसरे से गुंथा हुआ था। पानीपत के मैदान में हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान दोनों ने मिलकर विदेशी अहमद शाह अब्दाली का मुक़ाबला किया था। इतिहास का पन्ना-पन्ना इस बात का गवाह है कि हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान एक क़ौम थे, एक क़ौम हैं और एक क़ौम रहेंगे। दुनिया की कोई ताक़त उन्हें हमेशा के लिये जुदा नहीं कर सकती। सर सिकन्दर हयात ख़ां; ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ां, सय्यद अब्दुला, मि० अल्ला बख़्श और इनके लाखों साथियों को कुचल कर ही पाकिस्तान को अंजाम दिया जा सकता है। क्या मिस्टर जिन्ना को इतना दावा है कि काशमीर, सरहद, पञ्जाब, सिन्ध और बलूचिस्तान के मुसलमान उनके पाकिस्तान का साथ देंगे? सर अब्दुल्ला हारून, राजा ग़ज़नफ़र अली और सरदार औरङ्गज़ेब ख़ां भले ही लनतरानियां हांकें, मगर इन सूबों का मुसलमान बहुमत पाकिस्तान के लिये किसी क़ीमत पर भी तय्यार नहीं।

हम मिस्टर जिन्ना से नम्रता के साथ कहेंगे—"क़ायदे आज़म, आपकी इस योजना का समर्थन न मज़हब करता है, न इतिहास! इसलाम और ही कुछ सिखाता है, इतिहास और ही कुछ बताता है और अक़्ल का तक़ाज़ा कुछ और ही है। आप चाहे जितनी कोशिश करें, मगर यदि आने वाली भयंकर मुसीबतों से इस देश के ग़रीब मुसलमानों और न सिर्फ़ मुसलमानों, बल्कि बदक़िस्मत हिन्दू और मुसलमान दोनों को आप को बचाना है, तो उसका रास्ता पाकिस्तान, सिखिस्तान, द्रविड़स्तान, हिन्दू पद-पादशाही आदि नहीं है। उस रक्षा का मूल मंत्र है—मुत्तहिदा हिन्द ज़िन्दाबाद!

खादी और मुसलिम लीग

मुसलिम लीग के मद्रास अधिवेशन में व्याख्यान देते हुए मुफ़्ती फ़ख़रुल इसलाम ने खादी का ज़िक्र करते हुए कहा—"खादी के बनाने वाले मुसलमान हैं और इस्तेमाल करने वाले हिन्दू।" अखिल भारतीय चरखा संघ के सैकड़ों उत्पत्ति केन्द्रों में मुसलमान जुलाहे और ग़रीब कत्तिनें हज़ारों की तादाद में काम करती हैं। बिहार भूकम्प के दिनों में हमने सिमरी (मधुबनी) केन्द्र में बीसों मुसलमान बहिनों को सूत लिये हुए चरखा संघ के केन्द्र पर बैठे हुए देखा है। खादी आन्दोलन के संचालकों के दिलों में ज़रा भी हिन्दू मुसलमानों का प्रश्न नहीं। ग़रीब हिन्दू और मुसलमान यकसां उससे लाभ उठाते हैं। देश के इन हज़ारों ग़रीबों को किसी संस्था के राजनैतिक कार्यक्रम से कोई दिलचस्पी नहीं। इनके सामने भूख की समस्या सब में ज़बरदस्त है। मुफ़्ती फ़ख़रुल इसलाम ने मुसलमानों से खादी को अपनाने की अपील की।

मुसलिम लीग अपना अलग आर्थिक कार्यक्रम बनाना चाहती है। लीग के नेताओं का ख़याल है कि हिन्दुस्तान के आर्थिक ढांचे में मुसलमानों का अलग स्थान है। हिन्दू सभा ने और मुसलिम तनज़ीम कमेटियों ने अरसा हुआ एक दूसरे के आर्थिक बायकाट की कोशिश की थी, मगर वे नाकामयाब रहे। बिहार के श्री मोहम्मद यूनुस के अनुसार हिन्दुस्तान की ९० फ़ी सदी हिन्दू मुसलिम आबादी का आर्थिक जीवन एक दूसरे से इतना गुंथा हुआ है कि उसे अलग करना असम्भव है और वे दोनों हमेशा के लिये जुदा नहीं किये जा सकते। "यदि हिन्दू काछी तरकारी पैदा करता है, तो मुसलमान कुंजड़ा उसे बेचता है।" एक हज़ार बरस के इस आर्थिक ताने बाने को हज़ार मुसलिम लीगें और हिन्दू सभाएं नहीं तोड़ सकतीं। बेहतर हो यदि हमारे ये साम्प्रदायिक नेता अपने साम्प्रदायिक प्रोग्रामों के लिये मुल्क के ग़रीबों को सूली पर न चढ़ायें।

पञ्जाब सरकार की साम्प्रदायिक एकता की स्कीम

सर सिकन्दर हयात की सरकार ने पञ्जाब में साम्प्रदायिक एकता का प्रचार करने के लिये जो स्कीम बनाई है, उसमें आठ तरह के कार्यक्रम हैं। इस काम के लिये एक लाख रुपया भी अलग कर

लिया गया है। इस स्कीम के मातहत जो काम किए जायंगे उनमें से कुछ ये हैं—

"इस तरह की प्रामाणिक ऐतिहासिक घटनाओं को इकट्ठा करना, जिससे पिछले और इस समय के हिन्दू, मुसलमान और सिख शासकों के प्रति लोगों के दिलों में उदार भावना बढ़े, साम्प्रदायिक एकता के सम्बन्ध में योग्य नेताओं द्वारा कालेजों और सीनियर स्कूलों के विद्यार्थियों में व्याख्यानों का प्रबन्ध, ख़ास-ख़ास त्योहारों को मिल-जुल कर मनाने में प्रोत्साहन देना, विद्यार्थियों में अपने धर्म के अलावा दूसरे धर्मों के ग्रन्थों को भी अध्ययन करने में उत्साह दिलाना, सब मज़हबों के संस्थापकों के जन्म दिनों को मिल-जुल कर मनाना और ऐसे समाचार पत्रों और मासिक पत्रों को प्रोत्साहन देना, जो साम्प्रदायिक राजनीति से अपने आपको बचाते हैं।"

हम पञ्जाब सरकार की इस स्कीम का दिल से स्वागत करते हैं और इसके लिये सर सिकन्दर हयात ख़ां को मुबारक बाद देते हैं। हाला कि इतने बड़े काम के लिये एक लाख रुपया कोई चीज़ नहीं, मगर फिर भी कुछ न करने से कुछ करना बेहतर है। स्कीम की सफलता बहुत कुछ उन व्यक्तिओं पर निर्भर होगी जो उसको अञ्जाम देंगे।

ढाका से अहमदाबाद

पिछले एक महीने से ढाका के शहर और आस-पास के देहातों में हिन्दू मुसलिम दङ्गा चल रहा है। पचासों आदमियों की जानें गईं और सैकड़ों व्यक्ति घायल हुए। एसोशियेटेड प्रेस के वक्तव्य के अनुसार एक कालेज के विद्यार्थी की हत्या के जुर्म में प्रोफ़ेसरों के मकानों की तलाशी हुई और वे गिरफ़्तार किये गये। सन्देह में कई वकील और पढ़े लिखे लोग भी पकड़े गये हैं। एक दूसरे को और सरकार को दोष देकर साम्प्रदायिक नेता अपना फ़र्ज़ अदा कर रहे हैं। ग़ैर ज़िम्मेवारी से भरी हुई, हिन्दू और मुसलमान नेताओं की, तक़रीरों का ही यह दुष्परिणाम है। ऐसी आग लगा दी गई है, जो उनके बुझाये नहीं बुझ रही है। म्युनिसिपैल्टियों और असेम्बलिओं में अपना उल्लू सीधा करने वाले ये नेता इन्हीं दंगों और ख़ून ख़राबियों के बल पर फलते फूलते हैं। गुण्डों और अधिकारियों को दोष देने से काम नहीं चलेगा। इसके लिये दोषी हम पढ़े लिखे समझदार आदमी हैं।

हमने पिछले दिनों मिस्टर फ़ज़लुल हक़ और डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी के व्याख्यान पढ़े। इसी तरह के व्याख्यान इन दङ्गों के लिये ज़िम्मेवार हैं। बाद में मिस्टर फ़ज़लुल हक़ ने फ़रमाया कि "यदि किसी हिन्दू पर ख़ंजर चलाया जायगा, तो वह मुझ पर चलाया जायगा।" २० अप्रेल के एसोशियेटेड प्रेस की ख़बर है कि ढाका के दंगे के हिन्दू पीड़ितों के लिये मिस्टर फ़ज़लुल हक़ ने सौ रुपये और मुसलमान पीड़ितों के लिये सर नृपेन्द्र सरकार ने सौ रुपया चन्दा दिया।

परमात्मा इन हिन्दू और मुसलमान नेताओं को सुबुद्धि दे ताकि सन् १९०७ के बङ्ग-भङ्ग आन्दोलन के समय का भ्रातृभाव का नारा ये फिर से दोहरा सकें—"भाई-भाई एक ठांइ, भेद नांइ भेद नांइ" अन्यथा ढाका के बाद अहमदाबाद और उसके बाद इस साम्प्रदायिकता की बलिवेदी पर जाने कितनी बेगुनाह जानें क़ुरबान होंगी। कहां हैं स्वर्गीय इक़बाल जो फिर एक बार हमें सुनाते—

मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर करना,
हिन्दी हैं, हम वतन हैं, हिन्दोस्तां हमारा।

लखनवी सत्याग्रह

पाठकों ने पिछले तीन हफ़्तों से लखनऊ में सुन्नी भाइयों के सत्याग्रह की निस्बत अख़बारों में पढ़ा होगा। तब से लेकर अब तक क़रीब ३ हज़ार सुन्नी सत्याग्रही जेल के अन्दर बन्द हैं। हज़रत मोहम्मद साहब के बाद उनके जो पहले तीन उत्तराधिकारी अबुबक्र, उमर और उसमान हुए हैं उन्हें सुन्नी जायज़ उत्तराधिकारी मानते हैं और शिया हज़रत पैग़म्बर के बाद हज़रत अली को जायज़ उत्तराधिकारी समझते हैं। इसी बात को लेकर पिछले चार बरस से

लखनऊ में कभी शिया भाई सत्याग्रह करते हैं, तो कभी सुन्नी भाई। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने पिछले दिनों कांग्रेस मिनिस्ट्री के ज़माने में एक क्षणिक समझौता करा दिया था, मगर आपस के मत-भेद फिर खड़े हो गये। इस बदक़िस्मत मुल्क में भाइयों भाइयों के बीच में एक-न-एक झगड़ा बना ही रहता है।

मैसूर में हैदर अली के शासनकाल में एक बार यही शिया-सुन्नियों का झगड़ा शुरू हो गया। हैदर अली ने दोनों के नेताओं को बुलाकर समझाया कि "जायज़ उत्तराधिकारी की बात का फ़ैसला अल्लाह क़यामत के दिन करेगा, तुम लोग मौजूदा मसलों का फ़ैसला करो, वरना मैं दोनों को तोप से बांध कर उड़ा दूंगा।" फिर मैसूर में यह झगड़ा नहीं चला। मिस्टर जिन्ना ने मुसलिम लीग की तरफ़ से बहुतेरी इस बात की कोशिश की कि शिया और सुन्नी उनको अपना पञ्च मुक़र्रर करके उनके फ़ैसले को मानें, मगर इसके लिये कोई तय्यार नहीं हुआ।

हम बहुत अदब के साथ इन भाइयों से इस्तदुआ करते हैं कि फ़ैसला करना अल्लाह का काम है; हम बन्दों का फ़र्ज़ तो मोहब्बत और नेकी की ज़िन्दगी बिताना ही है।

भाई चारे की भावना

कलकत्ता यूनिवर्सिटी से बिदाई के समय यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसरों और विद्यार्थियों ने सर सर्वपल्लि राधाकृष्णन को बिदाई के उपलक्ष में एक मानपत्र दिया। इसके उत्तर में सर सर्वपल्लि ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में संसार की वर्तमान परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए भारत के सम्बन्ध में कहा—

"चाहे जो कुछ हो, तुम अपने तईं सच्चे रहो और अपने भाई चारे की भावना की इज्ज़त करो। हमारे देश की यही सब में विशेष बात रही है। इतिहास के शुरू से लेकर अब तक हमारा यह देश चाहे जिस परिस्थिति से होकर गुज़रा हो, किन्तु बन्धु-भाव भारतीय सभ्यता की विशेषता रही है। मैं आपसे ज़ोर देकर पूछता हूं कि आप इस तरह की कोई संस्कृति या कोई सभ्यता बताइये, जिसने अपने यहां की अल्प जातियों की इस तरह प्रेम से रक्षा की है। जैसी हमने यहूदियों, ईरानियों और मुसलमानों की है; यह हमारी संस्कृति के ही लोग थे, जिन्होंने सिनागाग, गिरजे, मन्दिर और मसजिदें बनवाकर विविध धर्मावलम्बियों को अपना-अपना धर्म पालन करने की सुविधाएं दीं। उन्होंने सच्चे जनतन्त्र का सबूत दिया, उस आध्यात्मिक जनतन्त्र की मिसाल उन्होंने पेश की, जो संसार के इतिहास के प्रारम्भ से चली आ रही है। यदि आप नवयुवक और नवयुवतियां इस भारतीय आकांक्षा और भावना की गहनतम पुकार को सुनेंगे, तो भारत अवश्य बच जायगा और यदि भारत बच जायगा, तो वह संसार को भी बचा लेगा।"

क्या हमारे देश के नवयुवक और नवयुवतियां भारत की संस्कृति के इस महान प्रतिनिधि की अपील पर ध्यान देकर, धर्म और मज़हब के बन्धनों से परे, एक दूसरे से आदर और स्नेह करेंगे? इसी में इस देश का कल्याण है।

शिक्षा प्रसार

महाबोधि सोसायटी हाल कलकत्ता में "बङ्गला साहित्य" पर व्याख्यान देते हुए श्री रामानन्द चैटर्जी ने कहा—

"साहित्य के प्रचार के लिये अशिक्षा हटाना ज़रूरी है। एक समय था जब अमरीका में निग्रो लोगों के पढ़ने की कोई सुविधा न थी। सन् १८६५ में उन्हें सुविधा दी गई। उस समय तक निग्रो में एक फ़ीसदी भी पढ़े लिखे लोग न थे। किन्तु ६५ वर्ष के अन्दर सन् १९३० की गणना से पता लगा कि ८४ फ़ीसदी निग्रो लिखना पढ़ना जानते हैं। किन्तु भारत में १५० वर्ष के अङ्गरेज़ी शासन के बाद भी केवल ११ फ़ीसदी लोग पढ़े लिखे हैं। आज हम जिसे समाज का निम्नतम भाग कहते हैं, उसे ही यदि शिक्षा की सुविधा दी जाय, तो उसी में से कवि और शिक्षक

निकल सकते हैं। हम जनता के साहित्य की बात करते हैं, किन्तु जनता का साहित्य वे लोग नहीं तय्यार कर सकते, जिन्हें जनता के जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी वाक़फ़ीयत नहीं है।"

सच तो यह है यदि शिक्षा का काफ़ी प्रचार हो जाय, तो आज जो बहुत से नेता सम्प्रदायों के नाम पर जनता को भुलावा देते रहते हैं, वह सब बन्द हो जाय।

सांस्कृतिक समन्वय

बोलाङ्गिरि (पटना) में १२ अप्रैल को पांचवें अखिल भारतीय सांस्कृतिक एकता सम्मेलन के अध्यक्ष पद से व्याख्यान देते हुए डाक्टर देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने कहा—

"हिन्दुस्तान एक ऐसा मुल्क है, जहां समय-समय पर विविध जातियां आकर बस गई। यदि इस ऐतिहासिक समय में ही बहुत सी विदेशी क़ौमें, और जातियां अपनी भिन्न-भिन्न सभ्यताएं और संस्कृतियां लेकर यहां आईं, तो क्या हमारा यह कहना ग़लत होगा कि हिन्दुस्तान भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का मिलन केन्द्र था, जो सबकी सब एक संस्कृति में ढाली गई और अब भी ढाली जा रही हैं और इसी का नाम हिन्दुस्तानी कलचर या संस्कृति है। इन भिन्न-भिन्न क़ौमों ने समय-समय पर अपने विचारों की छाप भारत पर लगाई और भारत ने इनकी सुन्दर और स्थायी बातों को ग्रहण करके उन्हें अपनी वस्तु बना लिया। हिन्दुस्तान ने ही पूरबी एशिया, अफ़ग़ानिस्तान, चीनी तुर्किस्तान आदि को सभ्य बनाया।"

हमें दुःख है डाक्टर भण्डारकर का पूरा व्याख्यान और कान्फ्रेंस की विस्तृत कार्रवाई किसी भी पत्र में नहीं छपी। ज़रूरत इस बात की है कि भारतीय संस्कृति की एकता की अखण्डता के इस तरह के प्रयत्नों को हम अधिक से अधिक महत्व दें।

महावीर जयन्ती

गत ९ अप्रेल को देश भर में जैन समाज ने भगवान महावीर की जयन्ती मनाई। भगवान महावीर बुद्ध के समकालीन थे। वैशाली के पास कुण्डग्राम में वृजिगण के ज्ञात्रिक नाम के एक कुल में राजा सिद्धार्थ के घर पैदा हुए थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था और उनका अपना नाम वर्धमान्। सिद्धार्थ और त्रिशला तीर्थङ्कर पार्श्व नाम के एक धर्म सुधारक के अनुयायी थे, जो प्रायः दो शताब्दी पहले बनारस में हुए थे। वर्धमान भी उन्हीं की शिक्षा पर चले। बड़े होने पर यशोदा नाम की देवी से उनका विवाह हुआ, जिससे एक लड़की हुई। तीस बरस की आयु में उन्होंने घर छोड़ा। बारह बरस के भ्रमण और तप के बाद उन्होंने "कैवल्य" (ज्ञान) पाया। तब से 'अर्हत्' (पूज्य), 'जिन' (विजेता), 'निर्ग्रन्थ' (बन्धन हीन) और महावीर कहलाने लगे। उनके अनुयाइयों को अब हम जैन कहते हैं। बुद्ध निर्वाण के एक बरस पहले मल्लों की पावापुरी (पटना) में उनका निर्वाण हुआ।

भगवान महावीर तप और कृच्छ् तप को जीवन-सुधार का एक मुख्य उपाय मानते थे। अहिंसा के पालन को उन्होंने चरम सीमा तक पहुंचाया था। मगध और कलिंग में उनके जीते जी उनकी शिक्षा का प्रचार हो गया। उनके निर्वाण के एक शताब्दी बाद उनका मत पूरी तरह फैल गया। पोप ग्रिगरी के अनुसार अबीसीनिया और फ़िलस्तीन में पहली सदी ईसवी में जैन सन्तों के आश्रम मौजूद थे। जैनों का धार्मिक साहित्य बहुत बड़ा है और वह कोशल की पुरानी प्राकृत अर्ध मागधी में है।

आज इस ढाई हज़ार बर्ष के बाद भी भगवान महावीर की शिक्षा की दुनिया को कितनी अधिक ज़रूरत है! भगवान के अनुयायी आज सक्रिय अहिंसा की शिक्षा से भले ही दूर हों, किन्तु भगवान जैसी महान आत्मा किसी एक जाति या सम्प्रदाय के एकाधिपत्य की वस्तु नहीं। वे मानवमात्र के कल्याण साधन हैं। दुनिया के रंगमंच पर भले ही दूसरे दृश्य दिखाई दे रहे हों, किन्तु आइन्दा आने वाली दुनिया भगवान महावीर के सिद्धान्तों पर ही चलेगी। इसके अतिरिक्त कल्याण का कोई दूसरा मार्ग नहीं।

क्या हम अपने जैन भाइयों से यह आशा करें कि आइन्दा वे महावीर जयन्ती को इस रूप में मनायेंगे, जिसमें सभी धर्मों के लोग उसमें आमन्त्रित किये जांय और भगवान की जयन्ती हमारा एक राष्ट्रीय त्योहार बन सके।

ज्योतिर्मय भगवान बुद्ध

ढाई हज़ार बरस पहले जब शक्ति शाली और संघ बद्ध आर्यों के समाज-संगठन के नीचे भारत भूमि की बीसों आर्य पूर्व जातियां अपमानित, लांच्छित और दुःखमय ज़िन्दगी बिता रही थीं, अनेकों दल और क़बीले आपस में टकरा रहे थे, हिंसा पूर्ण यज्ञों और आडम्बर मय कर्मकाण्डों के भार से मनुष्य समाज दबा जा रहा था, ऐसे समय में भगवान बुद्ध का जन्म हुआ।

उन्होंने उपदेश दिया—'अत्ता ही अत्तनो नाथो, अत्ताही अत्तनो गति'--(तुम) आप ही अपने मालिक हो और आप ही अपनी गति हो। और आगे चल कर उन्होंने दृढ़ कण्ठ से कहा—'अत्ता ही अत्तनो नाथो कोहि नाथो परो सिया।' (तुम) आप ही अपने मालिक हो और कौन मालिक हो सकता है? भगवान बुद्ध ने जाति-भेद के विरुद्ध प्रचार कर के मनुष्य मात्र की समता का प्रतिपादन किया। उन्हीं के उपदेशों के परिणाम स्वरूप बृहत्तर भारत की झांकी सम्भव हो सकी। भारत उन्हीं के उपदेशों के द्वारा उन्नति की चरम सीमा तक पहुंच सका। भूमध्य सागर से लेकर जापान तक भारतीय संस्कृति का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष असर क़ायम हो गया और जिस दिन हम अपने उस विराट रूप को छोड़कर संकुचित बने, उसी समय से हमारा पतन शुरू हो जाता है।

भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया—"भिक्खु एक दूसरे से पृथक्-पृथक् होने वालों को मिलाता है, मिले हुओं को पृथक् नहीं होने देता। वह ऐसी वाणी बोलता है, जिससे लोग मिलजुल कर रहें, इकट्ठे रहें।"

आगे चल कर भगवान ने कहा—"वैर वैर से कभी शान्त नहीं होता। अवैर से ही होता है—यही सनातन बात है।" दुनिया को आज भगवान के इस आदर्श पर चलने की जितनी ज़रूरत है, उतनी शायद पहले कभी न थी।

वैशाख-पूर्णिमा को भगवान के इस जन्म-दिन, सिद्धि-दिन और निर्वाण-दिन पर हम उनको प्रणाम करते हैं।

गुरुदेव शतायु हों।

इसी पांचवीं मई को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का ८० वां जन्म दिवस है। हम गुरुदेव के इस जन्म दिवस पर गान्धीजी के इस सन्देश से पूरी तरह सहमत हैं कि ८० वर्ष काफ़ी नहीं हैं और गुरुदेव शतायु हों। संसार की नज़रों में गुलाम भारत की प्रतिष्ठा क़ायम करने का बहुत बड़ा श्रेय गुरुदेव को है। गुरुदेव हमारी बहुत बड़ी निधि हैं और अभी हमें अपने पथ प्रदर्शन में उनकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। गान्धी जी से यदि हमने आत्मबल पाया है, तो गुरुदेव से हमें मिली है आत्म-संस्कृति।

"विश्ववाणी" तो उन्हीं के आशीर्वाद का फल है। "विश्ववाणी" नाम ही गुरुदेव का दिया हुआ है। उनकी इस पुण्य जयन्ती के दिन उनके चरणों में हमारे शत-शत प्रणाम हैं।

गान्धी जी का वक्तव्य

'टाइम्स आफ़ इण्डिया' की, सत्याग्रह बन्द करने की दोस्ताना अपील पर गान्धी जी ने निम्न लिखित बयान दिया है—

"काश कि मैं हौसले बढ़ाने वाला जवाब दे सकता। मगर मैं मजबूर हूं। सत्याग्रह शुरू करने से पहले जो कुछ मैंने कहा है, उस पर मैं दृढ़ हूं। मैं इतना मूर्ख नहीं कि मैं इसके ज़रिये कोई करिश्मा कर लेना चाहता था। जिस भावना से यह शुरू किया गया, वही भावना अब भी है, यानी आज दुनिया की भयङ्कर और दिल दहला देने वाली परिस्थिति में अहिंसा की शक्ति में अमिट विश्वास का ऐलान।

"मेरा उस अगम और अगोचर शक्ति की अमोघता पर उससे अधिक विश्वास है, जितना नाश की शक्तियों पर, जो मिलकर हमारी इस दुनिया को बरबाद कर रही हैं। लेकिन यह अगम शक्ति मानव को ही निमित्त बनाकर अपना उद्देश्य पूरा करती है। मैं नहीं कह सकता कि वह निमित्त कांग्रेस है या नहीं। लेकिन मेरा यह विश्वास है कि कांग्रेस चाहे जितनी अपूर्ण हो या उसमें विश्वास की चाहे जितनी कमी हो, फिर भी वही एक संस्था है, जो साहस के साथ शान्तिमय उपायों के लिये खड़ी है।

"इस परिस्थिति में जहां तक मेरा सम्बन्ध है पीछे हटने का कोई सवाल नहीं। इसका कोई महत्व नहीं कि सत्याग्रह चाहे एक व्यक्ति करे या अनेक। वह तमाम मुश्किलों के बावजूद चलता रहे। कांग्रेस वाले उसे परित्याग कर सकते हैं। तब वह एक संस्था का आन्दोलन न रह जायगा। मैं स्वीकार करता हूं कि तब वह किसी भी सूरत या उपाय से कामयाब चीज़ न रह जायगा। किन्तु यदि अहिंसा की शक्ति में विश्वास रखने वाला अकेला मैं ही बच जाऊं, तब भी मुझे इसमें सन्तोष होगा।"

"मैं ज़ोरों से इस बात का खण्डन करता हूं कि इस आन्दोलन की कल्पना में या इसके अनुष्ठान में यह किसी तरह भी साम्प्रदायिक, या मुसलिम-विरोधी, या अङ्गरेज़-विरोधी रहा है। जो लोग इसकी सचाई जानना चाहते हैं, उनके लिये इस बात की यथेष्ट गवाही है कि आन्दोलन को सीमित और अहिंसक रखने के लिये हर मुमकिन अहतियात ली गई।

"बहुत से सरकारी आदमियों ने यह स्वीकार किया है कि उनकी कल्पना के अनुसार सत्याग्रह बिलकुल बेकार साबित हुआ है। टाइम्स आफ़ इण्डिया के सम्पादक ने भी यही कहा है। और दोनों सही हैं। सत्याग्रह की यह मन्शा ही नहीं थी कि लड़ाई की कोशिशों पर असर पड़े। यह तो नैतिक दृष्टि से हमारे नाम पर लड़ाई चलाने का एक महान विरोध मात्र है। अहिंसा के ज़रिये स्वतन्त्रता प्राप्त करने की पैंतीस करोड़ जनता की भावना और इसके ज़रिये दुनिया के भविष्य पर असर डालने की इच्छा का यह आन्दोलन एक प्रतीक है।

"यदि मेरा वश चलेगा, तो कांग्रेस किसी भी जायज़ हक़ को क़ुरबान करके स्वतन्त्रता न स्वीकार करेगी, बशर्ते कि वह हक़ करोड़ों मूक जनता के हक़ के विरोध में न हो, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान या दूसरे। मैं इसको नहीं मानता कि यदि कांग्रेस आज सात सूबों में वज़ारत करती होती, तो पाकिस्तान की सदा इतनी बुलन्द न होती। वज़ारत छोड़ने की वजह नैतिक थी, वह मुसलिम या दूसरे हक़ों के साथ संघर्ष के कारण नहीं छोड़ी गई। इसका मूल कारण था भारत का ऐसी लड़ाई की कोशिशों से असहयोग, जिसमें शामिल होने के लिये हमसे कोई सलाह नहीं ली गई।......

"मैं हिम्मत के साथ यह कह रहा हूं कि जब लड़ाई ख़त्म होगी और हम क्षणिक या स्थायी शान्ति करने बैठेंगे, तो इतिहास स्वीकार करेगा कि कांग्रेस की यह कोशिश इन्सान की इज़्ज़त को बिना बट्टा लगाये एक आदर्श नैतिक लड़ाई थी।"

अन्त में महात्मा जी ने हसरत भरे लफ़्ज़ों में यह कहा—

"दुनिया की ज़िन्दगी के और मेरी ज़िन्दगी के इस ख़ास मौक़े पर क्या मेरे दोस्त मुझसे एक ऐसे विश्वास को छोड़ देने के लिये कहेंगे, जो मेरा आधी शताब्दी तक आधार रहा है।"

ईख की समस्या

जब से यू० पी० और बिहार की सरकार ने यह फ़ैसला किया है कि सन् १९४०-४१ में केवल ७,२०,००० टन चीनी बनाई जावे, तब से ईख की काश्त पर एक बड़ा सङ्कट सा छा गया है। दोनों प्रान्तों में लाखों मन ईख यूंही खड़ी रह जायगी। इन प्रान्तों की सरकारें जब इस सङ्कट को समझ रही थीं, तो उन्हें ईख के काश्तकारों को पहले से ही आगाह कर देना था। सरकार ने यह नहीं किया और उसका ख़मियाज़ा इन दोनों प्रान्तों के हज़ारों किसानों को

भुगतना पड़ेगा। इन सरकारों ने यह भी फ़ैसला किया है कि सन् १९४१–४२ में केवल ५,५०,००० टन चीनी बनाई जावे। कूबा एक छोटा सा मुल्क है, किन्तु वहां हिन्दुस्तान से तिगुनी चीनी बनती है और उसकी खपत होती है। सरकारी रुख से साफ़ पता चलता है कि किसानों को अगले साल ईख की फ़सल कम से कम दो तिहाई घटा देनी पड़ेगी। चीनी का उद्योग हमारे देश में काफ़ी बढ़ रहा था। इस धक्के को वह कितना बर्दाश्त करेगा, यह भविष्य बता सकेगा। हमारी तो यही सलाह है किसान भाई उतनी ही ईख बोएं, जितनी वे आसानी से पेर कर गुड़ बना सकें।

सराहनीय प्रयत्न

जब से महायुद्ध शुरू हुआ है तभी से विदेशी समालोचक इस बात की तीव्र आलोचना कर रहे हैं कि हिन्दुस्तान में जहाज़, मोटरकार और हवाई जहाज़ बनाने के कारख़ाने खोलना निहायत मूर्खता का काम होगा। इन विदेशियों की नज़रों में इस देश के पास इतने साधन नहीं कि वह सफलता के साथ इन कारख़ानों को चला सके। इसीलिये जब हमने श्री वालचन्द हीराचन्द का वक्तव्य पढ़ा कि भारत में मोटर कार के उद्योग के अनन्त साधन हैं, तो हमें ख़ुशी हुई। श्री वालचन्द हीराचन्द के अनुसार यदि भारत में कपड़े की मिलें, इस्पात और लोहे के कारख़ाने चल सकते हैं और जब कच्चे माल की यहां इतनी बहुतायत है, तो मोटरों का उद्योग भी अवश्य सफलता के साथ चल सकता है। रहा विदेशी आलोचकों की बात, तो वे भला कब चाहेंगे कि हम अपने पैरों पर खड़े होकर स्वतन्त्र उद्योग चलाएं?

युद्ध की प्रगति

आज़ादी की लड़ाई के इतिहास में यूगोस्लेविया के पतन के साथ-साथ एक सुनहला सफ़ा और जुड़ गया। शाह पीटर ने इतनी देर से लड़ने का फ़ैसला किया कि इसके अतिरिक्त कोई दूसरा नतीजा न निकल सकता था। किन्तु आज यूगोस्लेविया अपने ऊपर गर्व कर सकता है कि यदि वह धराशायी हुआ, तो भी आत्मसम्मान के साथ। इस समय लड़ाई का केन्द्र यूनान में है। ब्रिटेन ने भी अपने को ख़तरे में डालकर बहादुर यूनानियों को मदद देने का फ़ैसला किया। उत्तर अफ़रीका में अंग्रेज़ी जीतों को जो कुछ धक्का पहुँचा है, वह इसीलिये कि उनकी फ़ौज के अनेक दस्ते इस समय यूनानियों के कन्धों से कन्धा लगाकर जर्मन सेना का मुक़ाबला कर रहे हैं। जब तक फ्रान्सीसी उत्तर अफ़रीका में जर्मन फ़ौजों के यातायात को नज़रअन्दाज़ करेंगे, तब तक उत्तर अफ़रीका में जर्मनी की शक्ति लगातार बढ़ती ही जायगी।

इसी बीच जापान और रूस में ग़ैर जानिबदारी की सन्धि हो गई है। दोनों पक्षों का ख़याल है कि इस सन्धि से दोनों को लाभ हुआ है। कम से कम इस सन्धि से रूस ने मांचुकाओ पर जापानी प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया है। अमरीकन अख़बारों का ख़याल है कि इस सन्धि से जापान अब निश्चिन्त हो कर दक्षिणी समुद्र की ओर मुड़ सकता है और वैसी सूरत में अमरीका और जापान की लड़ाई अवश्यम्भावी है। अमरीकन पत्र इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि अमरीका जो जहाज़ इङ्गलैण्ड को दे, वे यह समझ कर दे कि उसे अब प्रशान्त महासागर की लड़ाई लड़नी है।

चीनी राष्ट्रीय केन्द्रों में इस सन्धि से मातम-सा छा गया था। रूस की ही मदद के कारण चीन अब तक सफलता से जापानी मुक़ाबला करता आ रहा है। इस सन्धि से चीन में यह शङ्का हो गई थी कि अब उसे रूस से लड़ाई के सामान की मदद न मिल सकेगी। किन्तु रूसी प्रीमिअर मोलोतोव ने चीनी प्रतिनिधि को मास्को में आश्वासन दिलाया कि बावजूद इस सन्धि के रूस चीन को अपनी मदद बराबर देता रहेगा।

अटलाण्टिक में अङ्गरेज़ी जहाज़ों और जर्मन यूबोटों का संघर्ष बराबर जारी है। पिछले महीने क़रीब ३,५०,००० टन वज़न के अङ्गरेज़ी जहाज़

जर्मन यूबोटों ने डुबाये। किन्तु श्री चर्चिल ने वक्तव्य देते हुए यह कहा कि जर्मनी के यूबोटों के क़हर को अङ्गरेज़ी ताक़त बहुत कुछ दवाने में सफल हुई है।

बलकान के युद्ध के बाद सबका ध्यान इस सवाल पर जाता है कि हिटलर का अगला क़दम अब क्या होगा ! हिटलर की नज़र मोसल के तेल के कुओं की तरफ़ है। मोसल की तरफ़ बढ़ने के लिए रास्ता या तो तुर्की दे और या फिर मिस्र। तुर्की जिस दयनीय परिस्थिति में अपने को पा रहा है, वह क़ाबिले रहम है। तुर्क एक बहादुर क़ौम हैं। वे लड़ेंगे और हिम्मत से लड़ेंगे। किन्तु सवाल यह है कि क्या सोवियत् की नीति यह साफ़ बताती है कि उसे सिर्फ़ इस बात की फ़िक्र है कि लड़ाई चाहे जहां चले, रूस की सीमा के अन्दर न पहुंचे। तब क्या तुर्की भी जर्मनी के त्रिराष्ट्र समझौते पर दस्तख़त कर देगा ? सन् १९३७ में तुर्की, इराक़, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के बीच में सादाबाद में एक सुलहनामा हुआ था। हालांकि उस सुलहनामे के मुताबिक एक दूसरे को फ़ौजी मदद देना लाज़मी नहीं, मगर फिर भी क्या ये इसलामी मुल्क दुनिया की इस आफ़त का मिलकर मुक़ाबला करेंगे ? यह सही है कि जर्मनी पहले लीबिया की ओर से स्वीज़ कैनाल पहुंचने की कोशिश करेगा। यदि वहां से उसे सफलता न मिली, तब वह अनातोलिया की ओर मुड़ेगा। मिस्र इस सारे मामले की कुंजी है। एक तुर्की पत्र के अनुसार "यदि जर्मनी मिस्र और बलकान को जीत लेगा, तो तुर्की बिलकुल कटकर रह जायगा। परिस्थिति यह है कि यदि रूस और अङ्गरेज़ों ने तुर्की को मदद का विश्वास दिलाया और सादाबाद के सन्धि कर्ताओं ने मिलकर लड़ने की ठानी, तो मोसल तक पहुँचने के हिटलर के मन्सूबे कामयाब न हो सकेंगे। अङ्गरेज़ सरकार ने ऐन मौक़े पर अपनी फ़ौजें इराक़ पहुंचादी हैं। यदि तुर्की ने लड़ने का फ़ैसला किया, तो ब्रिटेन की पूरी मदद उसे मिलेगी ? हिटलर का अगला क़दम न सिर्फ़ कुछ इसलामी मुल्कों की क़िस्मत का फ़ैसला करेगा, बल्कि लड़ाई को हमारे दरवाज़े तक पहुँचा देगा।

समालोचना

खेद है स्थानाभाव के कारण हमें इस अङ्क के लिये अनेक की हुई समालोचनाएं रोकनी पड़ीं—सम्पादक

मन के भेद

लेखक—प्रो० राजाराम शास्त्री; प्रकाशक—अभिनव भारती ग्रन्थ माला, कलकत्ता; मूल्य—१।)

मानव-मनोविज्ञान पर हिन्दी में ग्रन्थ-प्रकाशन का अभिनव भारती ग्रन्थ माला का यह अभिनव एवं स्तुत्य प्रयास है। यह विज्ञान हमारे जीवन से जितना संलग्न और जाना-पहचाना-सा लगता है, उतना ही सर्व साधारण के लिए नया और अपरिचित है। ग़लतफ़हमियों और ग़लत तरीक़ों से पैदा हुई सामाजिक बीमारियों की एक मात्र चिकित्सा यही है कि एक-दूसरे को ठीक से समझा जाए। इसीलिए जीवन के हर एक क्षेत्र में, हर पहलू से मानस-शास्त्री सफल होने की उम्मीद रखने का हक़दार है। अपराध-विज्ञान प्रधानतया इसी पर निर्भर करता है और कला, संस्कृति तथा साहित्य पर भी इसका पूर्ण प्रभाव है। सबसे अधिक इसकी सार्थकता शिक्षा-प्रणाली में है।

प्रस्तुत पुस्तक में १—चित्त-विश्लेषण का इतिहास, २—मनोविज्ञान का जीवन में प्रयोग, ३—आत्मग्लानिका व्यावहारिक निरूपण, ४—आत्म श्लाघा, ५—जीवन-प्रणाली, ६—प्राचीन स्मृतियां, ७—मनोवृत्तियां और चेष्टायें, ८—स्वप्न और उसकी व्याख्या, ९—बच्चों के शिक्षा की समस्या, १०—समाज भावना, व्यावहारिक ज्ञान और आत्मग्लानि, ११—विवाह प्रेम-समस्या आदि बारह अध्याय हैं।

प्रत्येक अध्याय में अपने विषय की सारगर्भित विवेचना संक्षेप में है। इसका पहला अध्याय तो बहुत क़ीमती है।

इस कठिन विषय को लेखक ने जिस सहज भाव से लिखा है, वह यह बताता है कि मनोविज्ञान और दर्शन शास्त्र पर लेखक का अधिकार है। जहां तक हमारी जानकारी है, हम कह सकते हैं कि न केवल हिन्दी भाषा में बल्कि तमाम भारतीय भाषाओं में अपने विषय में यह पुस्तक बेजोड़ है। श्री शास्त्री जी डा० भगवानदास जी के शिष्य हैं; और उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह उस गौरव के अनुरूप ही है। पुस्तक के साथ विषयानुक्रमणिका देकर पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ा दी गई है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य—

संकलनकर्ता—श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन। प्रकाशक—अभिनव भारती-ग्रन्थ-माला, १७१-ए, हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ संख्या १८७, जिल्द सहित मूल्य १॥)

हिन्दी-साहित्य-परिषद्, मेरठ के पिछले जलसे पर, हिन्दी के ११ साहित्यकारों के आधुनिक हिन्दी साहित्य पर दिये हुए व्याख्यान इसमें संकलित हैं। भूमिका में श्री स० ही० वात्स्यायन ने लिखा है—"हमारी आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य की गति-विधि का एक सिंहावलोकन किया जाय, साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियां पहचानी और समझी जांय, उनके आत्यन्तिक महत्व का मूल्यांकन किया जाय, और उसके आधार पर भविष्य के लिए कुछ मार्ग-निर्देश प्राप्त किया जाय। इतना ही नहीं, जिन रूढ़ियों और विश्वासों, जिन शास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर हम अब तक मूल्यांकन के अभ्यस्त रहे हैं, उन मान्यताओं को भी नवीन युग की आवश्यकताओं और विशेषताओं पर परखने की अत्यन्त आवश्यकता है।"

प्रस्तुत पुस्तक में जो कुछ है, इसी दृष्टिकोण के अनुकूल है। हां, विभिन्न विचारकों के विचारों में फ़रक ज़रूर है। और इस फ़रक से भी यह फ़ायदा है कि इस प्रकार विभिन्न विचार-धाराओं की रोशनी हिन्दी साहित्य पर पड़ती है। प्रस्तुत निबन्धों में—'परिस्थिति और साहित्यकार' में बुद्धिमत्ता पूर्ण विश्लेषण है। इस विश्लेषण में विचारक कहीं किसी भी दल के विचारों से आक्रान्त नहीं हुआ है। 'छायावादी कविता में असन्तोष भावना' में विचारक दलगत विचारों से आक्रान्त है; पर लेखक ने जो कुछ कहा है, वह इतने ज़ोर से कहा है कि कविता में काल्पनिकता की जड़ें हिल जाती हैं। यह निबन्ध पढ़ने के बाद पाठक सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। 'प्रेमचन्द की देन' बहुत कम में है, इतनी कंजूसी की बनिस्बत प्रेमचन्द पर कुछ न कहने में बुराई नहीं थी। 'आधुनिक हिन्दी-साहित्यिक-नाटक' एक अच्छा अध्ययन है। 'कथा-आख्यायिका और उपन्यास' में इस विषय के प्राचीन और नवीन दोनों रूपों पर अच्छी रोशनी पड़ती है।

इस समय हिन्दी साहित्य में विश्लेषण और रहनुमाई की ज़रूरत है। इस ग्रन्थ में साहित्य की वृत्तियों का विभिन्न दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है।

"पूर्व की राष्ट्रीय जागृति"—

लेखक—प्रो० शंकर सहाय सकसेना एम० ए०, प्रकाशक श्री भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दाबन। मूल्य १॥)

यों तो हंस कोहन आदि कई विद्वानों ने इस विषय पर अंग्रेज़ी में काफ़ी प्रकाश डाला है, पर हिन्दी के लिये यह नवीन प्रयत्न है। इसमें पूर्वीय देशों—मिस्र, टर्की, सीरिया, पैलेस्टाइन, मैसोपोटैमिया मध्य अरब, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान, की राष्ट्रीय जागृति का परिचय कराया गया है। इन देशों में साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ कैसे आन्दोलन हुये और उनमें किस प्रकार के उतार चढ़ाव आये? साम्राज्यवाद के शासन का तरीक़ा क्या है?, वह किस प्रकार देश के अन्दर फूट पैदा कर के उसका शोषण करता है?, सीरिया,

पैलेस्टाइन और इराक़ में किस प्रकार साम्राज्यवाद ने साम्प्रदायिक कलह कराकर इन देशों के राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ने से रोका ? और किस प्रकार इन मुल्कों पर शोषण करने के लिये ज़ोर जुल्म किये गये ? इन सारी बातों का विद्वान लेखक ने संक्षिप्त अध्यायों में सुन्दर तरीके से वर्णन किया है। पुस्तक उपयोगी है। प्रत्येक हिन्दुस्तानी को पढ़ना चाहिये।

कमला

सम्पादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, शान्ति प्रिय द्विवेदी। वार्षिक मूल्य ४॥), एक प्रति का।=). पता—मैनेजर 'कमला', गया घाट, बनारस।

प्रस्तुत अङ्क कमला का नव वर्षाङ्क है। १६० पृष्ठ का यह वृहत् अङ्क गम्भीर पाठ्य सामग्री से भरा हुआ है। श्रीमती महादेवी वर्मा का 'अतीत का चल चित्र' संस्मरणों को एक नई प्रणाली से पेश करने का प्रयत्न है। इसमें उन्हें बेहद सफलता मिली है। श्री शम्भू शरण रतूड़ी का 'समाज और कला', श्री राजेन्द्र का 'चीन की महिला जागृति', सुश्री मंदाकिनी पावंजेका 'दाम्पत्य जीवन', सुश्री शकुन्तला खरे का 'सुभद्रा कुमारी चौहान' श्रीमती वियोत्तमा देवी शर्मा का 'मुग़ल काल की शिक्षिता बेगमें', कुमारी गायत्री देवी शर्मा की कहानी 'विधवा' और श्री नीलकण्ठ तिवारी की कविता 'प्रेम और भूख' आदि चीज़ें सुन्दर पठनीय और मननीय हैं।

इस अङ्क के साथ 'कमला' अपने तीसरे वर्ष में प्रवेश करती है। यह युग नारी जाग्रति का युग है। हमें विश्वास है श्री पराड़कर जी और श्री शान्ति प्रिय जी के हाथों में 'कमला' नारी जागृति की कर्णधार साबित होगी। हम घर-घर में कमला के प्रचार के इच्छुक हैं।

जीवन सखा

सम्पादक—श्री बालेश्वर प्रसाद सिंह और श्री विट्ठलदास मोदी। वार्षिक मूल्य ३), एक प्रति का चार आना। पता—मैनेजर 'जीवन-सखा' कार्यालय ८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद।

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य के लिए प्राकृतिक जीवन और प्रकृतिका साहचर्य ज़रूरी है, और रोगों का मूल कारण प्रकृति में विकार या अप्राकृतिक जीवन है। इसीलिए रोगों से छुटकारा पाने का सीधा उपाय है क़ुदरती तरीके से प्रकृतिके विकार को दूर करना और इस प्रकार जीवन के शारीरिक, मानसिक और नैतिक पहलू को प्रकृति के अनुकूल रखना। 'जीवन सखा' का हर पेज इन्हीं प्रयोगों से भरा रहता है, 'जीवन सखा' के लेख कोरे किताबी ज्ञान के आधार पर नहीं होते; बल्कि उसमें अनुभवों की सच्चाई होती है।

पिछले पांच वर्षों से 'जीवन सखा' हिन्दी भाषा भाषियों के सामने शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक स्वास्थ्य का महात्म रख रहा है। "जीवन सखा" अपने ढङ्ग का एक विशेष पत्र है। इसके प्रचार का अर्थ है बीमारियों के ख़िलाफ़ तन्दुरुस्ती का बीमा।

अनेकान्त

सचित्र मासिक, वार्षिक मूल्य ३), एक किरण का।=), मिलने का पता—वीर सेवा मन्दिर, सरसावा, ज़िला सहारनपुर।

प्रस्तुत अङ्क 'अनेकान्त' का नव वर्षाङ्क है। प्रसिद्ध जैन मुनि समन्त भद्र के सिद्धान्तों पर ही अनेकान्त की नीति का परिचालन होता है। समन्त भद्र का मुनि जीवन और आपत्काल पर सम्पादक जी का एक अत्यन्त सुन्दर विवेचनात्मक लेख है। अन्य लेखों में श्री शीतल प्रसाद जी का 'अहिंसातत्व' श्री अजित प्रसाद जैन का 'जैन धर्म और अहिंसा' बड़े विचार पूर्ण ढङ्ग से लिखे गये हैं। प्रो०, ए० चक्रवर्ती एम० ए० का 'तामिल भाषा का जैन साहित्य', नामक लेख और पं० ईश्वरलाल जैन का 'ऐतिहासिक जैन सम्राट चन्द्र गुप्त', बड़ी खोज के परिणाम हैं। हम इस विचार पूर्ण सामग्री के इकट्ठा करने पर सम्पादक महोदय को बधाई देते हैं।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद।

पैलेस्टाइन और इराक़ में किस प्रकार साम्राज्यवाद ने साम्प्रदायिक कलह कराकर इन देशों के राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़ने से रोका ? और किस प्रकार इन मुल्कों पर शोषण करने के लिये ज़ोर ज़ुल्म किये गये ? इन सारी बातों का विद्वान लेखक ने संक्षिप्त अध्यायों में सुन्दर तरीके से वर्णन किया है। पुस्तक उपयोगी है। प्रत्येक हिन्दुस्तानी को पढ़ना चाहिये।

कमला

सम्पादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर, शान्ति प्रिय द्विवेदी। वार्षिक मूल्य ४||), एक प्रति का |=)। पता—मैनेजर 'कमला', गया घाट, बनारस।

प्रस्तुत अङ्क कमला का नव वर्षाङ्क है। १६० पृष्ठ का यह वृहत् अङ्क गम्भीर पाठ्य सामग्री से भरा हुआ है। श्रीमती महादेवी वर्मा का 'अतीत का चल चित्र' संस्मरणों को एक नई प्रणाली से पेश करने का प्रयत्न है। इसमें उन्हें बेहद सफलता मिली है। श्री शम्भू शरण रतूड़ी का 'समाज और कला', श्री राजेन्द्र का 'चीन की महिला जागृति', सुश्री मंदाकिनी पावंजेका 'दाम्पत्य जीवन', सुश्री शकुन्तला खरे का 'सुभद्रा कुमारी चौहान' श्रीमती वियोत्तमा देवी शर्मा का 'मुग़ल काल की शिक्षिता बेगमें', कुमारी गायत्री देवी शर्मा की कहानी 'विधवा' और श्री नीलकण्ठ तिवारी की कविता 'प्रेम और भूख' आदि चीज़ें सुन्दर पठनीय और मननीय हैं।

इस अङ्क के साथ 'कमला' अपने तीसरे वर्ष में प्रवेश करती है। यह युग नारी जागृति का युग है। हमें विश्वास है श्री पराड़कर जी और श्री शान्ति प्रिय जी के हाथों में 'कमला' नारी जागृति की कर्णधार साबित होगी। हम घर-घर में कमला के प्रचार के इच्छुक हैं।

जीवन सखा

सम्पादक—श्री बालेश्वर प्रसाद सिंह और श्री विट्ठलदास मोदी। वार्षिक मूल्य ३)। एक प्रति का चार आना। पता—मैनेजर 'जीवन-सखा' कार्यालय ८७ हिम्मतगंज, इलाहाबाद।

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य के लिए प्राकृतिक जीवन और प्रकृतिका साहचर्य ज़रूरी है, और रोगों का मूल कारण प्रकृति में विकार या अप्राकृतिक जीवन है। इसीलिए रोगों से छुटकारा पाने का सीधा उपाय है क़ुदरती तरीके से प्रकृतिके विकार को दूर करना और इस प्रकार जीवन के शारीरिक, मानसिक और नैतिक पहलू को प्रकृति के अनुकूल रखना। 'जीवन सखा' का हर पेज इन्हीं प्रयोगों से भरा रहता है, 'जीवन सखा' के लेख कोरे किताबी ज्ञान के आधार पर नहीं होते; बल्कि उसमें अनुभवों की सच्चाई होती है।

पिछले पांच वर्षों से 'जीवन सखा' हिन्दी भाषा भाषियों के सामने शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक स्वास्थ्य का महात्म रख रहा है। "जीवन सखा" अपने ढङ्ग का एक विशेष पत्र है। इसके प्रचार का अर्थ है बीमारियों के ख़िलाफ़ तन्दुरुस्ती का बीमा।

अनेकान्त

सचित्र मासिक, वार्षिक मूल्य ३), एक किरण का |-), मिलने का पता—वीर सेवा मन्दिर, सरसावा, ज़िला सहारनपुर।

प्रस्तुत अङ्क 'अनेकान्त' का नव वर्षाङ्क है। प्रसिद्ध जैन मुनि समन्त भद्र के सिद्धान्तों पर ही अनेकान्त की नीति का परिचालन होता है। समन्त भद्र का मुनि जीवन और आपत्काल पर सम्पादक जी का एक अत्यन्त सुन्दर विवेचनात्मक लेख है। अन्य लेखों में श्री शीतल प्रसाद जी का 'अहिंसातत्व' श्री अजित प्रसाद जैन का 'जैन धर्म और अहिंसा' बड़े विचार पूर्ण ढङ्ग से लिखे गये हैं। प्रो०, ए० चक्रवर्ती एम० ए० का 'तामिल भाषा का जैन साहित्य', नामक लेख और पं० ईश्वरलाल जैन का 'ऐतिहासिक जैन सम्राट चन्द्र गुप्त', बड़ी खोज के परिणाम हैं। हम इस विचार पूर्ण सामग्री के इकट्ठा करने पर सम्पादक महोदय को बधाई देते हैं।

VISHWA-VANI, [Single Copy As. 10]   Registered No. A.—704

विश्ववाणी ही क्यों पढ़ें ?

विश्ववाणी हिन्दी की युग परिवर्तन कारी पत्रिका है

विश्ववाणी का नामकरण विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने किया है

अमर ऐतिहासिक ग्रन्थ 'भारत में अंगरेज़ी राज' के रचयिता पं० सुन्दरलाल इसके संरक्षक हैं

१—विश्ववाणी हिन्दी की एक मात्र सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक पत्रिका है ।

२—विश्ववाणी भारत की पूर्ण राजनैतिक स्वाधीनता की प्रचारक है ।

३—विश्ववाणी मनुष्य मात्र की समता और विश्वप्रेम की प्रतिपादक है ।

४—विश्ववाणी सच्ची भारतीय सभ्यता का, जो भारत के सब धर्मों और सम्प्रदायों के मेल से बनी है, समर्थन करती है ।

५—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और युद्ध के सम्बन्ध में जो बातें भारत के किसी हिन्दी पत्र में नहीं छपती, वे विश्ववाणी में पढ़ने को मिलेंगी ।

६—इतिहास की बातें जिनकी खोज में बीसों वर्ष खर्च हुए हैं वे सिर्फ विश्ववाणी में पढ़ने को मिलेंगी ।

७—विश्ववाणी के लेखक देश और विदेश के बहुत ही उच्चकोटि के मशहूर विद्वान और नेता हैं, जिनकी रचनाएं सिर्फ विश्ववाणी में पढ़ने को मिलेंगी ।

८—राजनैतिक ग[illegible]मी और साम्प्रदायिक कलह से कितना गहरा सम्बन्ध है, विश्ववाणी इसे इतिहास के पन्नों से [illegible]कालकर पेश करेगी ।

९—विश्ववाणी में दुनिया की विविध सभ्यताओं, संस्कृतियों और धर्मों का सरल और चित्ताकर्षक वर्णन मिलेगा ।

१०—विश्ववाणी में अपने पड़ोसी देश चीन, अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, रूस, तुर्की आदि की सही सही तस्वीर मिलेगी ।

११—विश्ववाणी इस देश में रचनात्मक क्रान्ति की सन्देश वाहक है ।

नमूने के अंक के लिये दस आने के टिकट भेजिये ।

मैनेजर—विश्ववाणी, साउथ मलाका, इलाहाबाद ।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद ।